भी भगवान्के हाथका स्पर्श होनेके कारण अज्ञानसे मुक्त होकर भगवान्के समान पीताम्बर धारण किये दिव्य चतुर्भुजरूप हो गया ॥ ६ ॥ गजेन्द्र पूर्व जन्ममें इन्द्रद्युम्न नाम पाण्ड्यदेशका राजा था। उससमय द्रविडदेशनिवासियोंमें वह श्रेष्ठ गिना जाता था और सर्वदा विष्णु भगवान्के व्रतोंमें तत्पर रहा करता था ॥ ७ ॥ आत्मज्ञानी, इन्द्रद्युम्न, राज्यभोग त्याग कर कुलाचलपर एक आश्रममें जटा धारण किये तपस्वीके वेषसे भगवान्के भजनमें लगा रहता था। एक दिन उपासनाके समय स्नान करके मौन-व्रत धारण किये इन्द्रद्युम्न राजा भगवान्का ध्यान कर रहा था, इसी समय महायशस्वी अगस्त्य मुनि शिष्योंको साथ लिये इच्छानुसार विचरते हुए उसी स्थानपर उपस्थित हुए। इन्द्रद्युम्न राजा ईश्वरके ध्यानमें मग्न था, इसकारण वह मौनव्रत धारण किये बैठा रहा, उसने अगस्त्य मुनिका न तो पूजन किया और न "आइये बैठिये" कहकर वाणीसे ही सत्कार किया। यह देखकर मुनिको बहुत ही कोप हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ मुनिने कुपित होकर शाप दिया कि—"यह दुष्ट असाधु और अशिक्षित है, इसीसे आज इसने इसप्रकार ब्राह्मणजातिका निरादर किया। यह जड़ हाथीके समान मदमत्त होकर बैठा है, इसकारण यह गजकी योनि पाकर अज्ञानमें निमग्न हो" ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! भगवान् अगस्त्य यों शाप देकर शिष्यगणसहित चले गये। राजर्षि इन्द्रद्युम्न भी, इस घटनाका मूलकारण दैव ही है—ऐसा विचार करते करते गजयोनिको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ गजयोनिमें आत्मस्मृति विनष्ट हो जाती है, किन्तु राजा इन्द्रद्युम्न हरिकी आराधनाके प्रभावसे गज होकर भी अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तको नहीं भूले ॥ १२ ॥ पद्मनाभ, गरुड़वाहन, भगवान्ने गजेन्द्रको यों संकटसे छुड़ाकर अपना पार्षद कर लिया एवं उसको साथ लेकर अपने लोकको प्रस्थान किया। गन्धर्व, सिद्ध और देवगण हरिकी अद्भुत कीर्तिका गान करतेहुए पीछे पीछे अपने अपने लोकोंको गये ॥ १३ ॥ महाराज! हमने तुमसे गजेन्द्रमोक्षरूप यह भगवान् हरिका माहात्म्य वर्णन किया है। जो लोग हरिके इस प्रभावको सुनते हैं उनको इस लोकमें यश और अन्तमें स्वर्ग प्राप्त होता है; कलिकलुष और दुःस्वप्न उनके निकट भी नहीं आते। अतएव मङ्गलकी कामना करनेवाले द्विजातियोंको प्रातःकाल उठ पवित्र होकर दुःस्वप्नकी शान्तिके लिये इसका पाठ करना योग्य है ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! सर्वव्यापक भगवान् नारायणने [illegible]र सब प्राणियोंके आगे गजेन्द्रसे यह बात कही थी कि "जो लोग [illegible]को जागकर सावधानतासहित प्रयत होकर मैं, तुम, यह सरोवर [illegible] और कन्दरा, ये बेंत—कीचक बाँस और वेणुकी झाड़ियाँ, ये देवृक्ष [illegible] और [illegible] निवासका स्थान शिखर, मेरी परमप्रिय आवासभूमि

१ इस [illegible] मिलेंगी [illegible] जिन [illegible] ले [illegible]

क्षीरसागर, तेजोमय श्वेतद्वीप, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, पक्षिराज गरुड़, मेरी सूक्ष्मकला शेषनाग, मेरे हृदयमें वास करनेवाली लक्ष्मी देवी, ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, शिवजी, प्रह्लाद, मेरे मत्स्य-कूर्म-वराह आदि अवतारोंके कियेहुए सब पवित्र कार्य, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ओंकार, सत्य, गऊ, ब्राह्मण, भक्तिलक्षणयुक्त धर्म, धर्म-चन्द्र-कश्यपआदिकी स्त्री–दक्षकी कन्याएँ, गङ्गा, सरस्वती, नन्दा, कालिन्दी, ऐरावत हाथी, ध्रुव, सप्त ब्रह्मऋषि एवं अन्यान्य पवित्र यशवाले महात्मा मनुष्य आदि मेरे विविध रूपोंका स्मरण करते हैं वे सब प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। हे गजेन्द्र! जो लोग पिछले पहर ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर पूर्वोक्त मेरी मूर्तियोंमें मेरी स्तुति करते हैं और तुम्हारे कहेहुए स्तोत्रका पाठ करते हैं उनको मैं अन्त समयमें सुमति और सद्गति देता हूँ" ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच—इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ॥
हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! हृषीकेश भगवान् यों कहकर पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनिसे देववृन्दको आनन्दित करते हुए वैकुण्ठलोक जानेके लिये गरुड़जीकी पीठपर आरूढ़ हुए ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय

ब्रह्माकृत भगवान्की स्तुति।

श्रीशुक उवाच—राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ॥
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! यह गजेन्द्रमोक्ष नामक पापनाशक हरिका चरित्र हमने तुमको सुनाया। अब रैवत मन्वन्तरकी कथा सुनो ॥ १ ॥ पञ्चम मनुका नाम रैवत था, वह तामस मनुके सहोदर भाई थे। अर्जुन, बलि, विन्ध्य आदि उनके कई पुत्र हुए ॥ २ ॥ रैवत मन्वन्तरमें विभु नाम इन्द्र, भूतरय आदि एवं हिरण्यरोमा, ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि थे ॥ ३ ॥ स्वयं भगवान् न... इस मन्वन्तरमें शुभ्रके वीर्यसे उनकी स्त्री विकुण्ठाके गर्भमें वैकुण्ठवासि... सहित अपने अंशद्वारा वैकुण्ठ नामसे अवतार लिया ॥ ...

प्रिय करनेके लिये, उन्हीकी प्रार्थनासे, वैकुण्ठ भगवान्‌ने वैकुण्ठलोक निर्मित किया, उस वैकुण्ठ लोकको सभी लोग सादर प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥ इन वैकुण्ठ भगवान्‌के माहात्म्य एवं परम अभ्युदयशाली गुणोंका हमने बहुत ही साधारण वर्णन किया है, क्योंकि जो कोई पृथ्वीके रेणुओंकी गणना कर चुका है वही कदाचित् विष्णुके अनन्त गुणोंका वर्णन कर सकता है ॥ ६ ॥ छठे मनुका नाम चाक्षुष है, यह चक्षुके पुत्र हैं । पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि इनके पुत्र हुए ॥ ७ ॥ चाक्षुप मन्वन्तरमें मन्त्रद्रुम नाम इन्द्र आप्यादि देवगण एवं हविष्मान् और वीरक आदि सप्तऋषि विद्यमान थे ॥ ८ ॥ इस मन्वन्तरमें जगत्पति नारायण भगवान् वैराजकी भार्या देवसम्भूतिके गर्भमें अजितनामधारी होकर अपने अंशसे प्रकट हुए ॥ ९ ॥ अजित भगवान्‌ने जलके भीतर अपने ही दूसरे कच्छप-रूपकी पीठपर घूम रहे मन्दराचलको धारण करके क्षीरसागरको मथा और देवगणको अमृत पान कराया ॥ १० ॥ राजा परीक्षित्‌ने पूछा कि ब्रह्मन्! भगवान्‌ने जिसके लिये, जिस कारण, और जैसे क्षीरसागरको मथा एवं कच्छप अवतार लेकर पीठ पर मन्दराचल धारण किया, जिस प्रकार देवगणने अमृत पीनेके लिये पाया एवं इस व्यापारमें जो जो घटनाएँ हुईं, आप कृपापूर्वक सब वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ मेरा अन्तःकरण बहुत दिनसे सांसारिक त्रिविध तापोंसे तप रहा था, इसीकारण भक्तवत्सल भगवान्‌की परम अद्भुत महिमा जो आप कहते हैं उससे मेरा मन तृप्त नहीं होता, बरन् और भी सुननेकी इच्छा प्रबल होती है ॥ १३ ॥ सूतजी अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि—हे द्विजगण! राजा परीक्षित्‌के यों प्रश्न करनेपर श्रीमहर्षि शुकदेवजी हरिके चरित्रोंकी प्रशंसा करके यों कहनेलगे ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—राजन्! असुरगण जब युद्धमें तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रोंके प्रहारसे देवगणका विनाश करने लगे और अनेकानेक देवता युद्धभूमिमें गिर कर फिर न उठे एवं दुर्वासाऋषिके शापसे इन्द्रसहित तीनो लोक श्रीविहीन हो गये और सब यज्ञादिकार्य एकदम बन्द हो गये तब इन्द्र और वरुण आदि लोकपाल मिलकर यह संकट टालनेके लिये उपाय सोचने लगे, परन्तु कोई भी उपाय न ठीक कर सके । अन्तको सब देवगण सुमेरुके शिखरपर ब्रह्माजीकी सभामें गये और ब्रह्माजीको प्रणाम करके सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ इन्द्र आदिको निःसत्व,

---

१ इसकी कथा यों है कि एक समय दुर्वासाजी वैकुंठसे आ रहे थे, राहमें ऐरावत पर चढ़े [illegible] मिले । मुनिने त्रिलोकाधिपति जान कर विष्णुके प्रसादकी माला इन्द्रको दी, इन्द्रने जिन[illegible]के कारण वह माला ऐरावतके मस्तक पर डाल दी । ऐरावतने वह माला सूँढमें ले कर [illegible]नो [illegible] [illegible]र्वासाने इन्द्रको शाप दिया कि तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा । लि[illegible]

प्रभाहीन और तीनो लोकोंको अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त एवं असुरोंको इसके विपरीत सबल और हृष्टपुष्ट सन्तुष्ट देखकर ब्रह्माजी एकाग्र चित्तसे परमपुरुष परमेश्वरका ध्यान करते करते प्रसन्नमुख होकर देवगणसे यों कहनेलगे ॥ १९ ॥ २० ॥ "मैं, शिव, तुम लोग, असुरगण और मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष एवं स्वेदज जन्तु आदि सब जीव जिनके अवतारकी अंश-कलासे उत्पन्न हुए हैं, आओ, हम सब उन्हीके शरणागत हों ॥ २१ ॥ जिनकी दृष्टिमें न कोई मारने योग्य है, न कोई रक्षणीय है, न कोई उपेक्षाके योग्य है और न कोई आदरका पात्र है, सभी समान हैं, तथापि जो समयानुसार सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणको स्वीकार करते हैं, वह इससमय शरीरधारियोंके कल्याणके लिये सत्त्वगुण ग्रहण किये हुए हैं; यह उनका विश्वपालनका समय है, अतएव चलो हम उनकी शरणमें चलें। जगद्गुरु भगवान् अपने जन जो हमलोग हैं उनका कल्याण करेंगे। हमलोग उनको प्रिय हैं" ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे शत्रुमदन ! देवगणसे यों कहकर उनको अपने साथ लियेहुए ब्रह्माजी तमोगुणके अपर पारमें अवस्थित क्षीरसागरको गये। वहाँ पहुचकर एकाग्रमन हो वैदिक वचनोंके द्वारा अदृष्टस्वरूप अथच श्रुतपूर्व परमपुरुषकी स्तुति करनेलगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले—"हे देव ! आप सबसे श्रेष्ठ हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। आप आदिपुरुष, अनन्त, विकाररहित, सत्यस्वरूप सबके अन्तर्यामी, उपाधिहीन, अचिन्त्य और वाणीके द्वारा अगम्य विषय हैं, आपका वेग मनसे भी अधिक है। वाणी आपका निर्देश नहीं करसकती, आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ अहो जो मन, प्राण, बुद्धि और अहंकारसे अभिज्ञ हैं, जो इन्द्रिय और विषयरूपसे प्रकाश पाते हैं, तथापि स्वप्न देखनेवालेके समान अज्ञानरहित हैं, जिनका कोई देह नहीं है, जो अक्षर और आकाशकी भाँति सर्वत्र व्याप्त हैं (क्योंकि जीवका पक्ष ग्रहण करनेवाली अविद्या और उसको निवृत्त करनेवाली विद्याका उनसे संसर्ग नहीं है) जो तीनो युगोंमें प्रकट होते रहते हैं, हम उन परब्रह्मकी शरण हैं ॥ २७ ॥ यह जीवका देह, चक्रकी भाँति, मायाके द्वारा घुमा करता है। यह मनोमय है एवं दश इन्द्रिय और पाँच प्राण इसके आरे हैं। इसका वेग बहुत ही सत्वर है। तीनो गुण इसकी नाभि हैं। इसकी गति विजलीकी भाँति चञ्चल है। आठ प्रकृतियाँ नेमिके समान इसके आवरण हैं। जो परमात्मा इस चक्रका अक्ष (केन्द्र) हैं, हम उन्ही सत्यस्वरूपको शरणागत हैं ॥२८॥ जो जीवके पास ही अवस्थिति करते हैं, अथच ज्ञानही जिनका एकमात्र स्वरूप है, जो प्रकृतिसे परे एवं अदृश्य हैं, जो अव्यक्त हैं, जिनका अन्त नहीं है,-पार नहीं हैं, धीर योगीजन योगरूप साधनोंसे जिनकी उपासना करते रहते हैं, जिनकी मायामें मो[illegible] लोग आत्माका स्वरूप जाननेमें नहीं समर्थ होते, जिनकी नमी माय[illegible]

नहीं जा सकता, उस मायाके गुण और वही माया जिनके वशमें है, जो परम ईश्वर हैं एवं सर्वत्र समभावसे विचरण करते हैं, हम उन्हीको नमस्कार करते हैं ॥२९॥३०॥ ये सब ऋषिगण एवं सब देवता और हम लोग, उन्हीके परमप्रिय रूपसे अर्थात् सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए हैं-अतएव उनकी सूक्ष्म गति (शक्ति) हमारे भीतर और बाहर बराबर प्रकाश पा रही है; तथापि, जब हम लोग उस सूक्ष्म गतिको नहीं जान पाते तब असुरादिक अन्यान्य जीवगण कैसे जान पावेंगे? उनकी तो रजोगुण और तमोगुणसे सृष्टि हुई है। जिसपर चतुर्विध प्राणी सब निवास करते हैं उस पृथ्वी-मण्डलकी जिन्होने सृष्टि की है, एवं यह पृथ्वी ही जिनके दोनो चरण हैं-वह विराट्-रूप, महापुरुष, महाविभूतिशाली ब्रह्म हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥३१॥३२॥ लोक एवं लोकपालगण जिस जलसे उत्पन्न हैं एवं वृद्धिको प्राप्त होते और जीवित रहते हैं, वही उदारशक्तिशाली सलिल जिनका रेतस् (वीर्य) है वह महाऐश्वर्य-सम्पन्न परमात्मा हमपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ जो चन्द्र, देवगणका अन्न है, बल है और परमायु है एवं सब वृक्षों (औषधियों) का ईश्वर और प्रजागणका जन्मदाता है-वही चन्द्र जिनका मन है-वह महाविभूतिशाली ईश्वर हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ क्रियाकाण्डके लिये जिस अग्निका जन्म हुआ है और जिस अग्निसे वेदरूप धन उत्पन्न हुआ है एवं जो अग्नि जीवके उदरमें रहकर अन्नको पचाता है, वह अग्नि जिनका मुख है, वही महाविभूतिशाली महेश हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ देवयान अर्थात् अर्चिःआदि देवमार्गके अधिष्ठाता देवता वेदमय ब्रह्मकी उपासनाका स्थान मुक्तिका द्वार एवं अमृत और मृत्युरूप सूर्य जिनका लोचन हैं, वही महाविभूतिशाली परमेश्वर हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ जो वायु, चराचर जगत्का प्राण, बल, उत्साह और विक्रम है एवं हम लोग भृत्यकी भाँति जिस सम्राट्स्वरूप वायुके अनुगत रहते हैं, वह वायु जिनके प्राणसे समुत्पन्न हुआ है, वही महाऐश्वर्यशाली, प्रभु हमपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ जिनके श्रोत्रसे दश दिशा, हृदयसे देहगत छिद्रसमूह, एवं नाभिसे दश प्राण, इन्द्रिय, मन, और देहका आश्रय आकाश उत्पन्न हुआ है, वही महाविभूति-शाली विभु हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ जिनके बलसे महेन्द्र, प्रसन्नतासे देवगण, क्रोधसे महेश, बुद्धिसे ब्रह्मा, देहगत सम्पूर्ण छिद्रोंसे वेद और ऋषिगण, एवं मेढ्र इन्द्रियसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, वही महाविभूतिशाली भगवान् हरि हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिनके वक्षःस्थलसे लक्ष्मीदेवी, छायासे पितृगण, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म, शिरसे स्वर्ग और विहारसे अप्सराओंके वृन्द उत्पन्न हुए हैं वही महाविभूतिशाली महेश्वर हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥४०॥ जिनके मुखसे ब्राह्मण और परम गुह्य वेद, दोनो बाहुओंसे क्षत्रिय और बल, दोनो ऊरुओंसे वैश्य और निपुणता, एवं पैरोंसे सेवावृत्ति और शूद्र उत्पन्न हुए हैं

वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके अधरसे लोभ, ऊपरके ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कान्ति, स्पर्शसे पाशविक काम, दोनो भ्रुकुटियोंसे यमराज, और पलकोंके खुलने मुँदनेसे काल उत्पन्न हुआ है, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ पण्डितलोग ही पञ्चभूत, काल, कर्म, गुण और अनित्य संसार आदि सबका निराकरण कर सकते हैं, अतएव ये सब विषय दुर्विभाव्य अर्थात् साधारण जनोंके बुद्धिगम्य नहीं हैं। ज्ञानीलोग इन उक्त विषयोंको जिनकी अहितकारिणी माया कहकर निर्देश करते हैं वही महाविभूतिशाली हरि हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ४३ ॥ भगवान् प्रशान्त शक्तिमय हैं। स्वाराज्यके लाभसे उनका आत्मा परिपूर्ण है और वह दर्शनादि इन्द्रियवृत्तियोंके द्वारा मायाके गुणोंमें आसक्त नहीं होते; जिनकी सब लीलाएँ वायुके समान हैं। हम उन ब्रह्मको प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ हे भगवन्! जिसको हम अपनी इन्द्रियोंसे प्राप्त हो सकें ऐसी अपनी मूर्ति, और मुसकानसे मनोहर मुखारविन्द, हम शरणागत और दर्शनाभिलाषी अनुगत भक्तोंको शीघ्र ही दिखलाइये ॥ ४५ ॥ प्रभो! हमलोग जिन जिन कामोंके करनेमें असमर्थ हैं उन सब कामोंको, आप स्वयं समय समयपर अपनी इच्छाके अनुसार पूर्ण करते हैं ॥४६॥ विषयोंमें आसक्त शरीरधारी लोग जिन कर्मोंको करते हैं उनमें कष्ट अधिक हैं किन्तु फल साधारण ही है और कभी कभी उनसे कुछ फल ही नहीं होता। किन्तु जो कर्म आपको अर्पण कर दिये जाते हैं वे उक्त कर्मोंकी भाँति कभी नहीं निष्फल जाते ॥ ४७ ॥ कर्म चाहे स्वल्पही हो, पर ईश्वरको अर्पण करनेसे उसीसे श्रम सफल हो जाता है, क्योंकि ईश्वर ही पुरुषका परमप्रिय आत्मा और हितकारी हैं ॥ ४८ ॥ जैसे वृक्षके मूलमें जल डालनेसे उसके स्कन्ध और शाखाएँ भी सिंच जाती हैं, वैसे ही विष्णुकी आराधना करनेसे सब प्राणियोंकी और आत्माकी भी आराधना हो जाती है ॥ ४९ ॥ .

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ॥
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च सांप्रतम् ॥ ५० ॥

हे भगवन्! आप अनन्त हैं; आपके स्वभाव और कर्मोंका निर्णय तर्कोंके द्वारा नहीं हो सकता। आप निर्गुण अथच सगुण ईश्वर हैं। आज कल आपकी स्थिति सत्त्वगुणमें ही है। हम सब लोग आपको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

अमृत निकालनेके लिये देवता और दैत्योंका उद्योग

श्रीशुक उवाच—एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥
तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—देवगणके इसप्रकार स्तुति करनेपर भगवान् हरि उनके आगे प्रकट हुए। सहस्र सूर्योंका एक साथ उदय होनेपर जैसा प्रकाश हो वैसा ही प्रकाश हरिके शरीरकी कान्तिमें था ॥ १ ॥ उस तेजसे अकस्मात् देवगणके नेत्र चकाचौंध गये। देवगण आकाश, दिशा, पृथ्वी, यहाँतक कि अपनेको भी कुछ कालतक न देख सके, तब ईश्वरको देखना कैसे संभव था? ॥ २ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा और महेश्वरने उनकी मरकततुल्य श्यामल और स्वच्छ कान्ति देख पाई। उस श्यामल शरीरमें दोनो नेत्र पद्मगर्भकीसी अरुण प्रभाका विस्तार कर रहे थे ॥ ३ ॥ तपायेहुए सुवर्णके सदृश पीतवर्ण रेशमी वस्त्रसे उनके सुप्रसन्न सुन्दर सब अङ्ग आवृत (ढकेहुए) थे। उनका मुख और दोनो भ्रुकुटियाँ अत्यन्त रमणीक और मनोहर थीं ॥ ४ ॥ मस्तकमें उत्तम मणिमय किरीट मुकुट, दोनो कानोंमें मकराकृत कुण्डल एवं दोनो भुजाओंमें केयूर शोभायमान थे। मनोहर दोनो कपोलोंपर कुण्डलोंकी झलक अपूर्व बहार देती थी, जिससे मनोहर मुखारविन्दकी अद्भुत शोभा थी ॥ ५ ॥ काञ्ची, वलय, हार और नूपुर आदि आभूषण शरीरमें शोभित थे, एवं कौस्तुभमणिसे कण्ठकी दीप्ति विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त थी। वनमालाविभूषित लक्ष्मीदेवी हृदयमें विराजमान थीं, एवं सुदर्शन आदिक सब अस्त्र शस्त्र मूर्तिमान् होकर भगवान्के स्वरूपकी सेवामें उपस्थित थे। ऐसी मनोहर मूर्तिको देखकर ब्रह्माजी और शङ्करदेवने देवगणसहित साष्टाङ्ग प्रणाम किया और परम पुरुषकी इसप्रकार स्तुति करनेलगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ "हे भगवन्! यह श्रीमूर्तिका आविर्भावमात्र है, वास्तवमें आप निर्गुण हैं, अतएव आपका जन्म, स्थिति और विनाश नहीं है। इसीलिये पण्डितगण आपको मुक्तिसुखका सागर बतलाते हैं। तथापि आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, वास्तवमें आपकी मूर्तियोंकी संख्या नहीं है। आपके प्रभावकी भावना करना भी दुःसाध्य है। आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! हे विधाता! जिन लोगोंको मङ्गलकी अभिलाषा हो उनको योग्य है कि तान्त्रिक और वैदिक योगद्वारा आपके इसरूपकी पूजा करें। सब विश्व इसी मूर्तिमें विद्यमान है, अतएव हमलोग इसरूपमें अपनेको और तीनो लोकोंको देखते हैं ॥ ९ ॥ आप स्वाधीन हैं; अतीत, वर्तमान और भविष्यत् सभी आपमें अधिष्ठित है, मृत्तिका जैसे आदि कार्योंका आदि, मध्य और अन्त है वैसे ही आप भी इस जगत्का

आदि, मध्य और अन्त हैं, क्यों कि आप पर (माया) से भी परे हैं ॥ १० ॥ आप निजवशवर्तिनी मायाद्वारा निर्मित विश्वके अभ्यन्तरमें प्रविष्ट हैं। तत्त्वज्ञानी शास्त्रज्ञ यतिलोग गुणोंके परिणाममें भी मनद्वारा आपके निर्गुण रूपका दर्शन करते हैं ॥ ११ ॥ जैसे काष्ठमें अग्नि, गऊमें घृत, पृथ्वीमें जल और अन्न एवं पुरुषार्थ (उद्यम) में जीविका निहित है एवं जिसभाँति मनुष्यगण विशेष विशेष उपायोंके द्वारा काष्ठादिसे अग्निआदिको पाते हैं, वैसे ही आप भी मायाके सब गुणोंमें वर्तमान हैं। पण्डितगण कहते हैं बुद्धिरूप उपायके द्वारा चतुर और पण्डितलोग आपको गुणगणमें ही पाते हैं ॥ १२ ॥ हे नाथ! हे पद्मनाभ! आप हम लोगोंकी चिरवाञ्छित वस्तु हैं। योगसे ही आपतक पहुँच होती है। आपको अपने नयनगोचर होते देखकर हम लोग उसीप्रकार शान्ति और आनन्दको प्राप्त हुए हैं, जैसे दावानलकी ज्वालाओंसे सन्तप्त गजगण गङ्गाजीके शीतल जलको देखकर सुस्थ हों ॥ १३ ॥ सब लोकपालोंसहित हमलोग जिस कामनासे आपके चरणोंकी शरणमें आये हैं उसे आप इस समय पूर्ण कीजिये। आप बाहर और भीतर, सबके साक्षी हैं; आपको क्या अपनी अभिलाषा जताएँ? ॥ १४ ॥ (ब्रह्माजी कहते हैं कि) मैं, शिवजी, देवगण और दक्ष आदि प्रजापतिगण सब—जिसप्रकार अग्निसे चिनगारियाँ निकलती हैं, उसप्रकार—आपसे ही अलग अलग प्रकाश पाते हैं, अतएव हमलोग अपने मङ्गलका कुछ भी ज्ञान नहीं रखते; अब आप ही उस उपायका अवलम्बन करिये—जिससे देवता और ब्राह्मण आदिका कल्याण हो" ॥ १५ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—हे राजन्! ब्रह्माआदि देवगण इसप्रकार स्तुति करके इन्द्रिय-संयमपूर्वक शिरपर अञ्जली बाँधे खड़े रहे। अन्तर्यामी परमेश्वर हरि उनके हृदयके भावको भलीभाँति जानकर मेघके समान गम्भीर स्वरसे बोले ॥ १६ ॥ भगवान् नारायणने अकेले ही सुरकार्य सम्पादनमें समर्थ होकर भी समुद्रमथन आदि लीला करनेकी इच्छा करके कहा कि "हे ब्रह्माजी! हे शम्भुदेव! हे देवगण! हे गन्धर्वगण! जिस उपायसे तुम्हारा हित होगा, सो मैं बताता हूँ, सब लोग सावधान होकर सुनो ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ इससमय शुक्राचार्यके अनुकूल होनेसे दैत्यगणकी जय हुई है। जितने दिनतक तुम्हारी वृद्धिका समय न आवे तबतक जाकर दानव और दैत्योंसे सन्धि (मेल) कर लो, क्योंकि यह समय उनके अनुकूल हैं, इससमय युद्ध करके तुम जय नहीं पा सकोगे ॥ १९ ॥ कार्यकी सिद्धि कठिण देख पड़े तो अपना प्रयोजन निकालनेके लिये, जैसे मूषकने सर्पसे सन्धि कर ली थी[१] वैसेही

१ एक मूसा दैवयोगसे एक पेटीमें वन्द हो गया, वह पेटी एक मदारीकी थी, उसमें एक साँप भी था। साँपने अपना मतलब निकालनेको मूसेसे कहा-भाई! पेटी काट डालो हम तुम दोनो निकल चलें। पहले मूसेने न माना और कहा तुम मुझे खाकर नि॰

शत्रुसे सन्धि कर लेनी चाहिये ॥ २० ॥ अतएव दैत्य और दानवोंसे मेल करके शीघ्र ही अमृत निकालनेका प्रयत्न करो । अमृतके पीनेसे मृत्युग्रस्त प्राणी भी अमर हो सकता है ॥ २१ ॥ उसका उपाय यह है कि–क्षीरसागरमें सब तृण, लता, औषध, और वनस्पति डालो और मन्दराचलको मथानी एवं वासुकिनागको रस्सी बनाओ । इसप्रकार मेरी सहायतासे दैत्योंके साथ मिलकर एकाग्रचित्त होकर सागरको मथो । उसका फल अर्थात् अमृत तुमको मिलेगा और दैत्योंको केवल श्रम ही होगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे देवगण! इससमय असुरगण जो इच्छा करें उसमें तुम सहमत हो जाना । देखो सन्धिसे जिसप्रकार कार्य सिद्ध होता है वैसा युद्ध करनेसे नहीं होता ॥ २४ ॥ सागरसे पहले कालकूट विष निकलेगा, उससे भय न करना एवं और और जो रत्न निकलेंगे उनमें लोभ या अभिलाषा, अथवा अभिलाषा पूर्ण न होनेपर भी कोप न करना" ॥ २५ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! स्वच्छन्दगामी पुरुषोत्तम भगवान् ईश्वर इसप्रकार आज्ञा देकर देवगणके आगे ही अन्तर्धान होगये ॥ २६ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा और भगवान् शंकर उन हरि भगवान्‌को प्रणाम करके अपने अपने लोकको गये एवं इन्द्रादि देवगण प्रणाम करके राजा बलिके निकट सन्धिकी इच्छासे आये ॥ २७ ॥ देवगण युद्धकी तैयारी करके नहीं आये, तथापि उनको देखते ही बलिकी सेनाके योद्धालोग क्षोभक साथ संग्रामके लिये उद्यत हुए । किन्तु यशस्वी बलिने उनको रोक दिया, क्योंकि वह (बलि) सन्धि और विग्रहके अवसरको भलीभाँति समझते थे ॥ २८ ॥ राजा विरोचनके पुत्र त्रिलोकविजयी महाराज बलि बैठे थे, चारो ओर बड़े बड़े असुरनायक उनकी रक्षाके लिये सेवामें खड़े थे । उससमय बलिकी बड़ी ही शोभा थी ॥ २९ ॥ देवगण क्रमशः उनके पास आकर उपस्थित हुए । भगवान् पुरुषोत्तमने जिसप्रकार कहनेके लिये उपदेश किया था, उसीप्रकार महाबुद्धिमान् इन्द्रने मधुरवाणीसे सान्त्वनापूर्वक उन सब बातोंको कहा ॥ ३० ॥ इन्द्रकी "अमृत निकालनेकी" सलाह, बलि, शम्बर, अरिष्टनेमि, आदि सभामें बैठेहुए प्रधान असुरोंको और त्रिपुर-निवासी दानवोंको भी भली जान पड़ी ॥३१॥ हे शत्रुदमन! असुर और सुरगण परस्पर मेल करके मित्रभावसे अमृत निकालनेके लिये उद्यत हुए॥३२॥परिघके समान विशाल और बलिष्ठ बाहुओंसे बलपूर्वक मन्दराचलको पृथ्वीसे उखाड़कर बलदर्पित और समर्थ देवता और दानवगण सिंहनाद करतेहुए क्षीरसागरकी ओर चले ॥ ३३ ॥ किन्तु बहुत दूरतक बोझा ले चलनेसे इन्द्र और बलि आदि सब देव और दानव थक गये । पर्वत तो मार्गमें ही गिर पड़ा । कनकमय मन्दराचलके राहमें गिर पड़नेसे

जाओगे, पर अन्तको सर्पके कहनेपर विश्वास करके धोखा खाया । पेटी जब मूसेने काट डाली तब सर्पने उसे खा लिया और उसी छेदसे निकल गया । उसी प्रकार मतलब निकालनेके लिये राजनीतिमें निपुण लोग अवसर पाकर शत्रुसे सन्धि भी करलेते हैं ।

उसके नीचे पड़कर अनेक देवता और दानव चूर्ण हो गये ॥३४ ॥ ३५ ॥ गरुड़-वाहन भगवान् विष्णु उन लोगोंके बाहु, कन्धे आदि अङ्ग भग्न हुए देखकर और उनको हतोत्साह जानकर गरुड़पर चढ़ेहुए उसी स्थानपर प्रकट हुए, एवं पर्वतके गिरनेसे जिन देवता तथा दानवोंके शरीर चूर्ण हो गये थे उनको फिर अपने कृपाकटाक्षसे जीवित कर दिया। उनके अङ्ग फिर वैसेही सम्पूर्ण हो गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर नारायणने उस पर्वतको लीलापूर्वक एक हाथसे उठाकर गरुड़की पीठकर धर लिया और सुरासुरगणसहित क्षीरसागरकी ओर चले ॥ ३८ ॥

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः ॥
ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥

गरुड़जीने वहाँ पहुँच मन्दराचलको पीठसे उतारकर सागरके किनारे धर दिया, और आप हरिकी आज्ञाके अनुसार चल दिये ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

समुद्रके मथनेसे कालकूटकी उत्पत्ति

श्रीशुकउवाच–ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ॥
परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे कुरुश्रेष्ठ! "सागर मथनेसे जो अमृत निकलेगा उसमेंसे कुछ तुमको भी देंगे"–यों कहकर देवता और दानवोंने नागराज वासुकिको मथानीकी रस्सी बननेके लिये उत्साहित किया। फिर उसी वासुकिको रस्सी बनाकर देव और दैत्य प्रसन्न और एकाग्र होकर मन्दराचलद्वारा समुद्र मथनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥ पहले हरिने और उसके बाद सब देवतोंने वासुकिके मुखको पकड़ा। किन्तु दैत्यलोग महापुरुषके इस कर्ममें सहमत न हुए। उन्होने कहा "हम वेदपाठी हैं, हमने सब शास्त्रोंकी शिक्षा पाई है, जन्म और कर्मोंके द्वारा हम सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, अतएव हमलोग सर्पकी पूछ न पकड़ेगे क्योंकि, वह अमङ्गल अङ्ग है" ॥ २ ॥ ३ ॥ यह कहकर जब दैत्यलोग चुपके खड़े रहे, तब उनका कथन सुनकर मुसकातेहुए देवगणसहित हरि भगवान् सर्पके मुखको छोड़कर दूसरी ओर चले आये और पूछको पकड़ा ॥ ४ ॥ इसप्रकार स्थान-विभाग हो जानेपर कश्यपपुत्र दानवगण और देवगण, परम यत्नके साथ, अमृतके लिये सागरको मथनेलगे ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन! सागरको सब लोग मथनेलगे,

किन्तु मन्दरपर्वत जिसपर नीचे टिके ऐसा कोई आधार न था, इसकारण बड़े बड़े बली देवता और दानवोंके रोकनेपर भी वह बड़ा भारी पर्वत जलके भीतर धसने लगा ॥ ६ ॥ प्रबल दैवने इसप्रकार चेष्टा विफल कर दी, यह देखकर देवता और दैत्योंके मन खिन्न हो गये, एवं मुख फीके पड़ गये ॥ ७ ॥ किन्तु ईश्वर हरिका वीर्य अनन्त है, उनकी अभिसन्धि (इरादा) अव्यर्थ है। विघ्नेश्वर गणेशकी पहले पूजा नहीं की गई, अतएव विघ्नेशविरचित यह विघ्न देखकर भगवान्‌ने अति अद्भुत कच्छप शरीर धारण कर जलके भीतर अपनी पीठपर पर्वतको रोक लिया ॥ ८ ॥ मन्दराचलको ऊपर उठा हुआ देखकर देवता और दानव फिर प्रसन्न चित्तसे समुद्रको मथनेलगे। कच्छरूप भगवानने एक द्वीपके समान लाख योजन चौड़ी अपनी पीठपर उस पर्वतको धर लिया ॥९॥ हे राजन्! देवता और दैत्यगण अपनी बली बाहुओंसे पर्वतको घुमा रहे थे। उस पर्वतके घूमनेके घिस्सेसे आदिकच्छप हरिको वैसे ही सुखका अनुभव होता था जैसे कोई पीठ खुलजाता हो ॥ १० ॥ तदनन्तर हरि भगवान्‌ने असुराकारसे असुरोंके शरीरोंमें और देवाकारसे देवगणके शरीरोंमें प्रवेश करके उन लोगोंके बल और वीर्यको बढ़ाया। अलक्ष्यभावसे वासुकि नागके भी अभ्यन्तरमें प्रवेश करके हरिने उसकी शक्तिको बढ़ाया एवं सहस्र बाहुओंसे मन्दराचलको धारण कियेहुए उसके ऊपर विराजमान हुए; उससमय आकाशमण्डलमें जान पड़ा कि पर्वतराजपर दूसरा विशाल पर्वत शोभा पा रहा है। ब्रह्मा, इन्द्र और शङ्कर आदि सब देवगण स्तुति करतेहुए उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ ऊपर, नीचे, पर्वतमें, वासुकिनागमें और देवता व दानवोंमें हरिने प्रवेश किया; जिससे देवासुरगण अधिक बलशाली होकर इस तेजसे समुद्रको मथनेलगे कि समुद्रजलके भीतर रहनेवाले मगर, ग्राह आदि हिंस्र जन्तुगण व्याकुल हो उठे ॥ १३ ॥ मथते मथते नागराज वासुकिके नेत्रोंसे और मुखोंकी हजारों कठोर श्वासाओंसे विषैले धूम्रसे युक्त अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं; उनकी झारसे पौलोम, कालेय एवं इल्वल आदि असुरगण दावानलसे जलेहुए साँखूके वृक्षोंकी भाँति प्रभाहीन होगये ॥ १४ ॥ नागके श्वासानलकी लपकसे देवगणकी भी प्रभा मलिन होगई और वस्त्र, माला, कञ्चुक तथा मुखमण्डल धूम्रवर्ण हो गये। किन्तु उसी समय ईश्वरकी इच्छाके वशवर्ती मेघमण्डल भगवद्भक्त देवगणकी ओर शीतलजलकी फुहारें छोड़नेलगे, एवं सागरतरङ्गसङ्गमसे सुशीतल वायु चलनेलगा। उक्त प्रकारकी हरिकृपासे देवगणको उस विषैले धूम्रसे वैसा कष्ट नहीं हुआ जैसा असुरोंको हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन्! इसप्रकार बड़े बड़े प्रधान देवता और दैत्योंके मथनेपर भी समुद्रसे जब अमृत न निकला, तब अजित भगवान् देवता और दैत्योंको हटाकर स्वयं समुद्रको मथनेलगे। उस समय जयशील

और जगतको अभय देनेवाले बाहुओंसे सर्पके दोनो छोर पकड़कर मन्दराचलकी मथानीद्वारा समुद्रको मथ रहे भगवान्‌की अपूर्व शोभा हुई। वह दूसरे पर्वतके तुल्य विराजमान हुए। भगवान्‌के मेघतुल्य श्याम शरीरपर पीताम्बरकी ऐसी शोभा हुई जैसे मेघके चारो ओर कनककी रेखा हो। कानोंमें हिलरहे कुण्डल बिजलीके समान चमकनेलगे। शिरपर घुँघवारी अलकोंका और हृदयमें मणिमालाका हिलना बहुत ही सोहावना जान पड़नेलगा। अरुणवर्ण नेत्र और भी मनोहर हो गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसप्रकार जब स्वयं अजित भगवान् समुद्रको मथनेलगे, तब उसके भीतर रहनेवाले मीन, मकर, सर्प, और कच्छप आदि जीव व्याकुल व चञ्चल हो पड़े। सबसे पहले सागरसे हालाहल नाम बहुत ही तीव्र विष निकला ॥ १८ ॥ वह भयङ्कर दारुण विष उग्र वेगसे ऊपर, नीचे और चारो ओर फैलनेलगा, एवं सब लोकोंको असह्य हो उठा। सब प्रजा और प्रजापति लोग उससे अपनी रक्षा न देखकर भयभीत हो मृत्युञ्जय सदाशिवकी शरण गये; क्योंकि सिवा शिवके उनको कोई अपना रक्षक न देख पड़ा ॥ १९ ॥ उन लोगोंने कैलास पर्वतपर पहुँचकर देखा कि त्रिलोकीकी उत्पत्तिका कारण, देवदेव, चण्डीनाथ भवानीसहित पर्वतके शिखरपर बैठेहुए मुनियोंके कल्याणके लिये उनके मनोमत तप कर रहे हैं। देखकर सबने स्तुति करतेहुए प्रणाम किया ॥ २० ॥ प्रजापतिगणने कहा—हे देवदेव! हे महादेव! हे प्राणियोंके आत्मा! हे भूतभावन! हम आपकी शरणमें आये हैं! इस त्रिलोकीको भस्म करनेवाले विषसे हमारी रक्षा करो ॥ २१ ॥ आप सब प्राणियोंको बन्धन और मुक्तिके देनेवाले हैं, गुरु हैं, दीन पीड़ित प्राणियोंका दुःख हरनेवाले हैं। इसीसे ज्ञानीजन आपका पूजन करते हैं ॥ २२ ॥ हे विभो! हे परमतेजस्वी! आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है। आप अपनी गुणमयी शक्ति, जो इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेकी इच्छा है, उससे ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादि भिन्न भिन्न नाम धारण करते हैं ॥२३॥ आप परम गोपनीय ब्रह्म हैं; आपसे ही देवता, पशु, पक्षी आदि सब पदार्थ प्रकाश पाते रहते हैं। आप जगदीश्वर और आत्मा हैं। आप अनेक शक्तियोंद्वारा चराचर जगत्‌के रूपसें परिणत होकर प्रकाश पाते हैं। वेदकी उत्पत्ति आपसे है। आप जगत्‌का आत्मा (अहङ्कार) और आदि (महत्तत्त्व) हैं। आपके गुण प्राण, इन्द्रिय और द्रव्योंके कारण हैं अर्थात् आप (अहङ्काररूप) राजस, तामस और सात्त्विक–त्रिविध हैं। स्वभावस्वरूप भी आप ही हैं। सङ्कल्प-काल-सत्य-ऋतस्वरूप धर्म आप हैं। त्रिगुणात्मक प्रधानतत्त्व अथवा त्रिवृत् प्रणवका आश्रयस्थल आप ही हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे लोकप्रभव! सर्वदेवमय अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके चरणकमल है, काल आपकी गति है, सब दिशाएँ आपके कान हैं, वरुण आपकी रसना हैं,

आकाश आपकी नाभी है, वायु आपकी श्वास है, सूर्य आपका नेत्र हैं एवं जल आपका शुक्र (वीर्य) है। आपका आत्मा, उत्कृष्ट और अपकृष्ट जीवात्मासमष्टिका आश्रय है चन्द्रमा आपका मन है, स्वर्ग आपका मस्तक है ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे वेदत्रयीस्वरूप! समुद्रसमूह आपकी कुक्षि हैं, सब पर्वत आपकी अस्थियाँ हैं, सब औषधियाँ और लताएँ आपकी रोमराजी हैं। साक्षात् सब वेद (सातो गायत्री आदि छन्द) आपकी सात धातुएँ हैं एवं धर्म आपका हृदय है ॥२८॥ हे ईश्वर! पाँचो उपनिषद् अर्थात् तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान ये पाँच मन्त्र आपके मुख हैं। इन मुखोंसे अड़तीस (३८) मन्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है; साक्षात् ज्योतिःस्वरूप प्रसिद्ध शिवनामक परम आत्मतत्त्व ही आपकी अवस्थिति है ॥ २९ ॥ अधर्मकी जिन दम्भ लोभ आदि तरंगोंसे जगत्का ध्वंस होता है वे सब आपकी छाया हैं एवं सत्त्व, रजः, तम आपके तीन नेत्र हैं। आप शास्त्रकर्ता हैं, सांख्यशास्त्र आपका आत्मा है, वेद आपकी पवित्र दृष्टि हैं ॥ ३० ॥ हे गिरीश! आपकी परमज्योतिको सब लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु या सुरेन्द्र, कोई भी नहीं जान पाते, क्योंकि उसमें सत्त्व, रज और तम नहीं हैं—वह निर्गुण (देहहीन) ब्रह्म है ॥ ३१ ॥ आप कामदेव, दक्षयज्ञ, त्रिपुर और कालकूटविष आदि अनेक हिंस्र और व्यक्तियोंका संहार करनेवाले हैं (यहाँपर शिवके द्वारा कालकूटका संहार अवश्य होनहार जानकर देवगणने सिद्धकामकी भाँति उसका निर्देश किया है)। यह कालकूट विष पान कर लेना कुछ आपकी प्रशंसा जतानेवाला महान् कार्य नहीं है, क्योंकि आपकी ही रचना यह विश्व, प्रलयकालमें, आपके ही नयनसे निकले अग्निकी ज्वालाओंमें किसप्रकार जल जाता है-इसकी आपको खबर भी नहीं होती। विश्वको मङ्गलका उपदेश करनेवाले साधुगण आपके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं, तो भी आप स्वयं तपमें तत्पर हैं। अतएव जो लोग आपको भगवती पार्वतीके पास वास करते और श्मशानभूमियोंमें भ्रमण करते देखकर कामी, क्रूर और हिंसाशील समझते हैं वे निर्लज्ज आपकी लीलाओंको जाननेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ आप सदसत्स्वरूप, श्रेष्ठ एवं अतीव महान् हैं। ब्रह्माआदि देवगण भी आपके स्वरूपको नहीं जान पाते, तब आपकी स्तुति ही कैसे कर सकते हैं ?। हमलोग आपकी आधुनिक सृष्टि अर्थात् ब्रह्माआदिके पुत्रोंके भी पुत्रोंसे उत्पन्न हैं, अतएव भला कैसे आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सकते हैं। तथापि जितनी शक्ति थी उसीके अनुसार आपके गुणोंका वर्णन हमने किया ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर! हमने इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ आपका और कोई रूप नहीं देखा। हम इसीके दर्शनसे कृतकृत्य हो गये। आपकी लीला जानी नहीं जाती, केवल लोक-रक्षाके लिये ही आपका यह रूप प्रकाशमान होता रहता है" ॥ ३५ ॥ शुक-देवजी कहते हैं—सब प्राणियोंके हितचिन्तक भगवान् शङ्कर प्रजागणकी यह

विपत्ति देख करुणाके कारण समधिक व्यथित होकर अपनी प्रियतमा सतीसे कहने-लगे ॥ ३६ ॥ महादेवजीने कहा—भवानी देवी ! इधर देखो, क्षीरोदमथनसे उत्पन्न कालकूट विषसे प्रजागणको कैसा सङ्कट आ पड़ा है । ये लोग प्राणोंकी रक्षाके लिये बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं, इनको निर्भय करना हमारा कर्तव्य है, पीड़ित-की पीड़ा हरनेसे ही समर्थ होनेकी सफलता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसीलिये साधु-लोग जीवनको क्षणभङ्गुर जानकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । सब प्राणी दैवकी मायासें मोहित होकर परस्पर परस्परकी हिंसा करनेसें तत्पर होते हैं ॥ ३९ ॥ जो लोग उनपर कृपा प्रकट करते हैं उनपर सर्वमय हरि प्रसन्न होते हैं । भगवान् हरिके सन्तुष्ट होनेपर चराचरजगत्सहित मैं सन्तुष्ट होता हूँ । अतएव मैं इस विषको पिये लेता हूँ, मेरी सब प्रजाओंका कल्याण हो ॥ ४० ॥ शुकदेवजी कहते हैं—इसप्रकार भगवती भवानीसे कहकर विश्वभावन भगवान् महेश्वर वह हलाहल विष पान करनेसें प्रवृत्त हुए । पार्वती देवी शङ्करका प्रभाव जानती थीं, इसलिये उन्होने भी शङ्करकी इच्छाका अनुमोदन कर दिया ॥ ४१ ॥ भूत-भावन महादेवने करुणावश उस सर्वतोव्याप्त हलाहलको हथेलीसें लेकर पी लिया ॥ ४२ ॥ जलके दोष उस विषने महादेवजीपर भी अपना प्रभाव दिखाया, जिससे नीलकण्ठके कण्ठके नीलिमा आ गई; किन्तु वह नीलवर्ण परोपकारी शम्भुके लिये आभूषण हो गया ॥४३॥ जो साधु परोपकारी जन हैं वे लोगोंका दुःख नहीं देख सकते । दूसरेके दुःखमें हृदयसे सच्ची सहानुभूति करना ही सर्वमय पुरुषकी सबसे प्रधान आराधना है ॥ ४४ ॥ दयामय देवदेव शम्भुके इस उदार कर्मका वृत्तान्त सुनकर देवी पार्वती, प्रजागण, ब्रह्मा, और विष्णुदेव उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥४५॥

प्रस्कन्नं पिबतः प्राणैर्यत्किञ्चिज्जगृहुः स्म तत् ॥
वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥ ४६ ॥

महादेवजीने जिस समय विष पान किया उस समय जो कुछ विष उनकी अँगुलियोंकी सन्धियोंसे गिर पड़ा उसको सर्प, बीछू आदि काटनेवाले विषैले जन्तुओंने एवं विषौषधियोंने बाँट लिया ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय

भगवान्‌का मोहिनी अवतार

श्रीशुक उवाच–पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ॥
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! वृषभवाहन शङ्करने जब विष पान कर लिया तब फिर देवता और दानवगण प्रसन्न होकर बलपूर्वक सागरको मथनेलगे। तब सागरसे कामधेनु प्रकट हुई ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी ऋषिगणने ब्रह्मलोकके मार्गतक पहुँचानेवाले यज्ञिय पवित्र घृतकेलिये उस अग्निहोत्री धेनुको ले लिया ॥ २ ॥ उसके बाद चन्द्रमाके समान उज्ज्वल उच्चैःश्रवा नाम घोड़ा उत्पन्न हुआ। बलिने वह अश्व पानेके लिये अभिलाषा प्रकट की, किन्तु इन्द्रने ईश्वरकी शिक्षाके अनुसार चित्त नहीं चलाया ॥ ३ ॥ फिर समुद्रसे ऐरावत नाम गजराज निकला। चन्द्रतुल्य श्वेतवर्ण ऐरावतके शिखरसमान चार दन्त, भगवान् भवानीपतिके कैलास पर्वतकी शोभाको फीका कर रहे थे। महाराज! तदनन्तर ऐरावत आदिक आठ दिग्गज और उनकी अभ्रमु आदि आठ हथनियाँ प्रकट हुईं। अन्तमें महोदधिसे पद्मराग (कौस्तुभ) नाम मणि उत्पन्न हुआ। हरि भगवान्‌ने उस मणिको अलङ्कारकी भाँति वक्षःस्थलमें धारण करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसके बाद स्वर्गलोकका आभूषण कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ। राजन्! पृथ्वीपर आप जैसे याचकोंकी कामना पूरी करते हैं वैसे ही स्वर्गमें कल्पवृक्ष भी निरन्तर प्रार्थिगणकी प्रार्थना सफल करता है ॥ ६ ॥ फिर कण्ठमें पदक धारण किये, सुन्दर वस्त्र पहने अप्सराएँ प्रकट हुईं। मनोहर गति, और विभ्रमपूर्ण चितवनसे उन्होने स्वर्गवासियोंके चित्तोंको अपने हाथमें कर लिया ॥७॥ अन्तमें अङ्गोंकी प्रभासे दिशाओंके मण्डलको प्रकाशित करती हुई हरिपरायणा साक्षात् लक्ष्मी देवी–सुदामापर्वतके शिखरसे बिजलीके समान–जलतलसे प्रकट हुईं ॥ ८ ॥ उनके रूप, उदारता, यौवन, वर्ण और महिमामें सभीके चित्त मोहित हो गये, अतएव सभी देवता, दैत्य और मनुष्योंकी यह इच्छा हुई कि 'लक्ष्मीदेवी हमको प्राप्त हों' ॥ ९ ॥ देवराज इन्द्रने उनको एक अद्भुत आसन भेंट किया एवं श्रेष्ठ नदियोंने स्त्रीरूप धारणकरके सुवर्णके कलशोंमें अपना अपना पवित्र जल लाकर अर्पण किया। ऐसे ही पृथ्वीने, अभिषेकमें जिनकी आवश्यकता होती है वे सब औषधियाँ लाकर भेंट कीं। गउओंने पञ्चगव्य और वसन्तने चैत्र और वैशाखके फल फूल भेंट किये ॥ १० ॥ ११ ॥ तदनन्तर ऋषिगणने यथाविधि लक्ष्मी देवीका अभिषेककार्य सम्पन्न किया। गन्धर्वगण मङ्गलगान करनेलगे और नटियाँ (अप्सराएँ) नाचने गानेलगीं ॥ १२ ॥ एवं सम्पूर्ण मेघगण, मृदङ्ग, पणव, मुरज, गोमुख, आनक,

शङ्ख, वेणु और वीणा आदि गम्भीर शब्दवाले अनेक प्रकारके बाजे बजानेलगे ॥ १३ ॥ चारो दिग्गज सुवर्णके कलशोंसे पद्महस्ता लक्ष्मी देवीको अभिषेक करनेलगे और ब्राह्मणगण वैदिक मन्त्र पढ़नेलगे ॥ १४ ॥ समुद्रने एक जोड़ा रेशमी पीताम्बर लक्ष्मीजीको दिया। वरुणदेवने मधुमदमत्तमधुकरमण्डलीमण्डित एक वैजयन्ती माला और प्रजापति विश्वकर्माने अनेक आभूषण, सरस्वतीने हार, ब्रह्माजीने पद्म एवं नागगणने दो कनककुण्डल भेट किये ॥१५॥१६॥ देवी लक्ष्मी, तदनन्तर माङ्गलिक वे-भूषा समाप्त करके कोमल कमलतुल्य हाथोंमें जिसपर भँवर गुञ्जार करते थे, एक फूलोंकी माला लियेहुए इधर उधर भ्रमण करनेलगीं। देवीके श्रवणस्थित कुण्डल कपोलोंपर डोलनेसे परम मनोहर देख पड़नेलगे, लज्जायुक्त हास्यसे उनका मुखमण्डल परम सुन्दर हो गया ॥ १७ ॥ उनके कुङ्कुमरञ्जित कुचयुगल परस्पर समान थे, मध्यमें कुछ भी अवकाश न था; चरणोंमें नूपुरोंका महामनोहर शब्द हो रहा था। देवी लक्ष्मी कमलवासिनी स्वर्णलताकी भाँति शोभित होकर इधर उधर भ्रमण करनेलगीं उससे जान पड़ा कि मानो वह अपने नित्यसद्गुणयुक्त नित्य-आश्रयका अनुसन्धान कर रही है। किन्तु गन्धर्व, सिद्ध, असुर, यक्ष, चारण एवं त्रिलोकवासी अन्यान्य जीवोंमें, कहीं भी, लक्ष्मी देवीको अपने अनुरूप आश्रय न देख पड़ा ॥१८॥१९॥ लक्ष्मीने देखा, जहाँ दुर्वासा आदिमें तप है तो वे क्रोधको नहीं जीत सके हैं। कहीं बृहस्पति, शुक्र आदिमें ज्ञान है तो वह सङ्गरहित नहीं हैं। कोई ब्रह्मा, सोम आदिक महान् (बड़े) हैं तो कामको नहीं जीत सके हैं। इन्द्र आदि दूसरे (विष्णुआदि त्रिदेव) का मुख देखनेवाले हैं, इसलिये वे स्वयं ईश्वर नहीं हैं ॥ २० ॥ कहीं परशुराम आदिमें धर्म है तो प्राणियोंसे सौहार्दका व्यवहार नहीं है। कहीं शिवि आदि नरपतियोंमें आत्मत्याग है, पर वह मुक्तिका कारण नहीं हो सकता। कहीं सहस्रबाहु अर्जुन आदिमें वीर्य है, पर वह कालके वेगमें ठहरनेवाला नहीं है। कोई सनकादिक गुण-सङ्गवर्जित हैं तो वे वर न होंगे, क्योंकि सदैव समाधिनिष्ठ रहते हैं ॥ २१ ॥ कोई मार्कण्डेय ऋषि आदि चिरजीवी हैं तो उनमें शील और मङ्गलका अभाव है। कहीं हिरण्यकशिपु आदिमें वह भी है तो यह नहीं विदित है कि कबतक वे जीवित रहेंगे। जहाँ श्रीशिवमें ऊपर कही हुई दोनो बातें हैं तो वह देखनेमें अमङ्गल हैं, और जो कोई (श्रीनारायण देव) सबप्रकार निर्दोष और मङ्गलरूप है वह आकाङ्क्षा नहीं रखता ॥ २२ ॥ भगवती लक्ष्मीने यों विचार कर मुकुन्दको ही वरभावसे वरण किया अर्थात् हरिको ही अपना वर चुना। लक्ष्मीने देखा कि हरि भगवान् नित्यसद्गुणशाली हैं, वह दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखते। प्राकृतिक गुणगण उनके समीप जानेका भी साहस नहीं करते, अतएव वह सर्वोत्तम हैं। वह यद्यपि निरपेक्ष हैं तथापि अणिमा आदि

गुणसमूह उनको अपना आश्रय बनायेहुए हैं ॥ २३ ॥ जो हो, लक्ष्मीने नारायणके गलेमें वह कोमल कमलकलित जयमाला डाल दी, जिसकी सुगन्धमें मतवारे भ्रमर आसपास गुञ्जार करते रहते हैं । जयमाला पहनानेके बाद लक्ष्मीजी मौनभाव धारण करके लज्जापूर्ण मन्द मुसकानसे विभासित एवं विकसित नयनों-द्वारा हरिके वक्षःस्थलमें स्थान बनाकर अवस्थित हुईं ॥ २४ ॥ त्रिलोकीके परम पिता नारायणने अपने वक्षःस्थलको विशिष्टविभवशालिनी जगज्जननी लक्ष्मी देवीके निवासका स्थान बना दिया । नारायणके हृदयमें स्थिरभावसे अवस्थित लक्ष्मीदेवीने करुणापूर्ण कटाक्षसे सब प्रजा और प्रजापतिगणसहित तीनो लोकोंको परिवर्धित किया ॥ २५ ॥ उस समय स्त्रीगणसहित देवानुचरणगण नाचने और गानेलगे और उसके साथ ही शङ्ख, तूर्य और मृदङ्ग आदि बाजोंके शब्द अलग अलग सुनाई पड़नेलगे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा, रुद्र और अङ्गिरा आदिक सम्पूर्ण विश्वस्रष्टागण हर्षसे फूलोंकी वर्षा करते हुए विष्णुप्रतिपादक यथार्थ मन्त्रोंसे विष्णु भगवान्‌की स्तुति करनेलगे ॥ २७ ॥ देवगण एवं प्रजा-पतिगण, लक्ष्मीके कृपाकटाक्षद्वारा शीलआदि सद्गुणोंसे सम्पन्न होकर परम शान्तिसुखको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ लक्ष्मीद्वारा उपेक्षित होनेके कारण दैत्य और दानवगण, बल उद्योगसे हीन, निर्लज्ज एवं लोभी हो गये ॥२९॥ राजन्! तदनन्तर समुद्रसे एक कमकनयनी वारुणी नाम कन्या निकली, हरिकी अनुमति पा-कर दैत्योंने उसको ले लिया ॥ ३० ॥ महाराज! उसके बाद कश्यपके पुत्र (देव-दानवगण) फिर अमृतकी अभिलाषासे समुद्रको मथनेलगे । अबकी बार एक परम अद्भुत पुरुष, अमृतभरा कलश हाथमें लिये, प्रकट हुए । उनकी दोनो भुजा लम्बी, चौड़ी और मोटी, ग्रीवा शङ्खके तुल्य, वर्ण श्यामल, युवा अवस्था एवं वक्षःस्थल विशाल था । नेत्र अरुण थे और गलेमें माला व सब अङ्गोंमें आभूषण शोभायमान थे । वह पीताम्बर व उज्वल मणिमय कुण्डल धारण किये हुए थे । उनके केशोंके प्रान्तभाग चिकने, श्यामल और घूँघरवाले थे । उनका रूप स्त्रियोंके मनको लुभानेवाला और पराक्रम सिंहके समान था । कलाइयोंमें मणिवलय (कड़े) धारण कियेहुए वह साक्षात् विष्णुके अंशांशावतार वैद्यशिरोमणि धन्वन्तरिजी थे । वह आयुर्वेदके प्रथम आचार्य हैं एवं उनको यज्ञोंमें भाग भी दिया जाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ धन्वन्तरिके हाथमें अमृतसे पूर्ण कलश देखकर, सब वस्तुओंमें सबके पहले लेनेकी इच्छा प्रकट करनेवाले असुर-गण बलपूर्वक झपटकर उसे छीन ले गये ॥ ३५ ॥ यह देखकर देवगण बहुत ही खिन्न हो हरि भगवान्‌के शरणागत हुए । भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान्‌ने इसप्रकार देवगणकी दीन दशा देखकर कहा कि—"तुम लोग खेद न करो । मैं अपनी मायाके बलसे तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध कर देता हूँ" ।

हे राजन्! उधर लोभपरायण दैत्यगण, पहले अमृत पीनेके लिये "मैं पहले" "तुम नहीं, मैं पहले"—यों कहतेहुए परस्पर क्रोधपूर्वक लड़नेलगे ॥३६॥३७॥३८॥ उनमें जो दुर्बल थे वे कहनेलगे कि "देवगणने भी समान परिश्रम किया है। अतएव सबयज्ञके समान उनका भी इसमें अंश है, सो उनको मिलना चाहिये, यही सनातन धर्म है"। हे राजन्! दुर्बल दानवगण, मात्सर्यपूर्ण होकर जिन सब प्रबल दैत्योंने अमृतका कलश छीन लिया था उनको यों वारंवार कहकर रोकनेलगे ॥ ३९ ॥४०॥ इसी अवसरमें सब उपायोंके जाननेवाले ईश्वर हरिने अनिर्वचनीय एवं परम अद्भुत स्त्रीका स्वरूप धारण किया ॥ ४१ ॥ उस रूपका वर्ण नीलकमलके समान श्याम और दर्शनीय था, सभी अङ्ग सुन्दर सुडौल थे, दोनो कान समान और आभूषणोंसे भूषित थे, दोनो कपोल मनोहर एवं नासिका उन्नत थी ॥ ४२ ॥ नवयौवनसे दोनो स्तनोंका वृत्त (घेरा) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त था एवं पीन और उन्नत स्तनोंके भारसे उदर कृश हो गया था। मुखके सुगन्धमें आसक्त भ्रमर आसपास गुञ्जार कर रहे थे, जिससे उस मोहिनी मूर्तिके दोनो नेत्र, चञ्चल होकर उद्विग्नताका भाव प्रकट कर रहे थे ॥ ४३ ॥ मनोहर केशपाश (वेणीके जूड़े) में फूलीहुई मल्लिकाकी माला लिपटी हुई थी। कमनीय कण्ठमें अनेक आभूषण चलनेसे हिल रहे थे। विचित्र बाहुओंमें वलयादि विभूषण विभूपित थे ॥ ४४ ॥ निर्मल श्वेत वस्त्रसे वेष्टित नवलनितम्बरूप द्वीपमें काञ्चनकाञ्चीकी लड़ें शोभा पा रही थीं, चलनेसे दोनो चरणोंमें नूपुरकी सोहावनी ध्वनि होती जाती थी ॥ ४५ ॥

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ॥
दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥

वह मोहिनीमूर्ति लज्जापूर्ण मधुर मुसकानके साथ भ्रुकुटीरूप धनुषको विचलित करके मोहनेवाली दृष्टिसे वारंवार दैत्यपतियोंके अन्तःकरणोंको कामके बाणोंसे वेधनेलगी ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

अमृत बाँटना

श्रीशुक उवाच—तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः ।
क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥१॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! दानवगण सुहृद्भाव त्याग कर एवं दस्युधर्म ग्रहण करके आपसमें अमृतके पात्रकी छीनाझपटी कर रहे

थे। इसी अवसरसें पूर्वोक्त उसी जगन्मोहिनी मूर्तिको अपनी ओर आते देख वे दानवगण एकदम मन्त्रमुग्धसे होकर विचारने लगे कि–"अहो! इस स्त्रीका कैसा उत्तम रूप है! कैसी कान्ति है! कैसी नवीन अवस्था है!"! यों सोचते-हुए कामातुर दैत्यलोग उस मोहिनीमूर्तिके निकट जा कर यों पूछनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ "हे कमलनयनी! तुम कौन हो? कहाँसे आ रही हो? तुम्हारा उद्देश्य ही क्या हो? हे वामोरु! तुम किसकी भार्या हो? सत्य बताओ। तुम हमारे मनको मानो मथे डालती हो ॥ ३ ॥ हमें जान पड़ता है कि मनुष्यकी कौन कहे, देवता, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, चारण एवं लोकपालगण भी, निश्चय ही तुम्हारे शरीरको नहीं छू सके हैं ॥ ४ ॥ हे सुन्दर भ्रुकुटीवाली सुन्दरी! करुणावरुणालय विधाताने क्या प्राणियोंके चित्त और इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेके लिये ही तुमको यहाँ भेजा है? अथवा तुम आप ही अपनी इच्छाके अनुसार आई हो? निश्चय ही जान पड़ता है तुमको विधाताने भेजा है ॥५॥ हे भामिनि! हम सब आत्मीयजन एक वस्तु (अमृत) के लिये आपससें स्पर्धा करतेहुए एक एकके शत्रु हो रहे हैं। हम सब कश्यपऋषिके पुत्र हैं, सुतरां भाई भाई हैं। सभीने समान परिश्रम किया है। इससमय तुम इसप्रकार न्यायानुमोदित रीतिसे वह वस्तु हम सब लोगोंसें बाँट दो जिससें हमारा आपसका सब झगड़ा निबट जाय और कल्याण हो" ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसप्रकार दैत्यगणके निवेदन करनेपर मायामोहिनीरूप हरिने हँसतेहुए मनोहर कुटिल कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखकर दानवोंसे कहा कि–"हे कश्यपऋषिके पुत्रो! तुम मुझ पुंश्चली स्त्रीका क्यों इतना अनुसरण करते हो? पण्डितलोग कभी ऐसी स्त्रियोंका विश्वास नहीं करते ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे दानवो! कुत्ते और कुलटा स्त्रियाँ नित्य नवीनकी खोज करती हैं, अतएव उनकी मित्रता सदा अनित्य कही गई है" ॥ १० ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—हे राजन्! मोहिनीजीके इन व्यर्थ वाक्योंसे दैत्यगणको और भी उनपर विश्वास हो गया। तब उन्होंने हृदयके भावको गम्भीर मुसकानसे प्रकट करतेहुए अमृतका कलश मोहिनीजीके हाथमें दे दिया ॥ ११ ॥ हरिने अमृतका पात्र हाथसें लेकर कुछ मुसकान मिलीहुई वाणीसे यों कहा–देखो, मैं, जो कुछ करूँ वह भला हो या बुरा, किन्तु तुमको अङ्गीकार करना होगा; कहो तो हम तुमको अमृत बाँटना आरम्भ करें ॥१२॥ प्रधान प्रधान असुरगणने मोहिनीजीका कहना स्वीकार करतेहुए कहा–'अच्छा, ऐसा ही होगा' इसका कारण यही था कि, वे दानव मोहिनीजीको विष्णु न जानकर एक साधारण स्त्री समझे हुए थे ॥ १३ ॥ तदनन्तर असुरोंने उपवास करके स्नान और फिर अग्निमें हवन किया। उसके बाद ब्राह्मणोंके स्वस्त्ययनपाठ करनेपर वे सब दानव, गऊ और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके अपनी अपनी इच्छाके अनुसार नवीन या पुराने वस्त्र पहनकर

पूर्वमुख हो कुशासनोंपर बैठे ॥१४॥१५॥ हे राजेन्द्र ! धूप-गन्धसे सुगन्धित एवं माला व दीपकोंसे सुशोभित शाला (भवन) में देवता और दानवगण जब पूर्वमुख होकर बैठे तब उसी कुम्भस्तनी, मदविह्वलाक्षी, करभोरु मोहिनीमूर्तिने अमृतका कलश हाथमें लेकर, मनोहर दुकूलसे घिरेहुए श्रोणीतटके भारसे मन्द मन्द चरण धरतेहुए एवं कनककलित नूपुरोंके मधुर शब्दसे मानो गान करते करते उस भवनमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ लक्ष्मीकी सहचरी, परम देवता मोहिनीजीके कानोंमें कनककलित कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा थी एवं उनके कान, नासिका, कपोल और मुख आदि अङ्ग अद्भुत सुन्दर थे; उनकी मुसकानयुक्त दृष्टि विश्वविमोहिनी थी । उनकी स्तनपट्टिका (कञ्चुकी या छोटा कपड़ा) के किनारे वारंवार खुल खुल जाते थे, जिनको देखकर देवता और दानव मोहित हो गये ॥ १८ ॥ तब मोहिनीरूप हरिने विचारा कि सर्पोंको दूध पिलानेके समान असुरोंको अमृत देना भी योग्य नहीं है; क्योंकि सर्प और दुष्ट असुर स्वाभाविक क्रूर होते हैं । ऐसा विचार करके अच्युत भगवान्ने असुरोंको अमृतका भाग नहीं दिया ॥१९॥ जगत्पति हरिने देवता और दानवोंकी अलग २ दो पङ्क्तियाँ बिठलाईं और देवतोंको देवतोंकी पङ्क्तिमें व असुरोंको असुरोंकी पङ्क्तिमें बिठलाया ॥ २० ॥ फिर मोहिनीजी, कलश हाथमें लेकर दैत्योंकी ओर मुख करके मीठे २ वचनोंसे उनको भुलाती हुई पिछले पैरोंसे देवतोंकी पङ्क्तिमें आ पहुचीं और उनको अजर अमर कर देनेवाला अमृत पिलानेलगीं ॥२१॥ राजन् ! असुरगण अपनी प्रतिज्ञाका पालन करतेहुए चुपचाप बैठे रहे, क्यों कि वे यह स्वीकार कर चुके थे कि "तुम भला या बुरा चाहे जो करोगी, हम उसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे" । दूसरे निन्दनीय होनेके कारण स्त्रीके साथ झगड़ा करना उनको अभीष्ट न था । तीसरे वे मोहिनीजीपर तनमनसे अनुरक्त और आसक्त थे और उनको (मोहिनीजीपर) स्नेह भी अधिक हो गया था । उसी स्नेहके नष्ट होने और मोहिनीजीके चिढ़ जानेके भयसे असुरोंने, रोकना कैसा, कोई रूढ़ वचन भी नहीं कहा ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे राजन् ! राक्षस राहु, देवतोंके चिन्ह धारण करके देवतोंकी पंक्तिमें छिपा बैठा था । जैसे भगवान्ने राहुको अमृत दिया वैसे ही पास बैठेहुए चन्द्र और सूर्यने भगवान्को सूचित कर दिया कि यह देवता नहीं है, असुर राहु है । हरिने यह सूचना पाते ही तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे अमृत पीतेमें ही चटपट राहुका शिर काट डाला । अमृत कण्ठसे नीचे नहीं आया था, इसलिये कवन्ध कट कर गिर गया और शिर अमर हो गया । ब्रह्माजीने सूर्य आदिके समान उसको भी 'ग्रह' कर दिया । वैरभाव धारण किये राहुग्रह, अब भी प्रत्येक पर्वमें ग्रसनेकी इच्छासे सूर्य और चन्द्रमाकी ओर दौड़ता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ महाराज ! जब सब देवगणने सम्पूर्ण अमृत पी लिया तब लोकोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् हरिने दैत्योंके आगे ही अपना

रूप धारण कर लिया और वह मोहिनीरूप त्याग दिया ॥ २७ ॥ देश, काल, हेतु, प्रयोजन, कर्म और मति आदि सामग्री यद्यपि देवता और दानव, दोनोकी एक ही थी तथापि फलमें भेद हुआ । अर्थात् हरिके चरणकमलका आश्रय लेनेके कारण देवगणने सहजमें ही फलस्वरूप अमृत पीनेको पाया और हरिसे विमुख होनेके कारण दैत्यगण उससे वंचित रहे ॥ २८ ॥

यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-
र्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ॥
तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वा-
त्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥

मनुष्यगण ईश्वरसे भिन्न मान कर जो कुछ तन, मन, धन कर्म और वचनसे स्त्री, पुत्र शरीर आदिके लिये करते हैं सो सब भेदभावयुक्त होनेके कारण व्यर्थ है और उन्ही तन, मन, धन और वचनोंद्वारा ईश्वरके उद्देशसे स्त्री, पुत्र, शरीरआदिके लिये जो किया जाता है सो सब अभेदभावयुक्त होनेके कारण महाफलदायक होता है, क्योंकि ईश्वर सबका मूल है । जैसे मूलमें जल छोड़नेसे वृक्षकी सब शाखा प्रशाखा हरी हो जाती हैं किन्तु शाखाओंमें जल सींचनेसे प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और वृक्ष सूख जानेसे सींचना भी व्यर्थ हो जाता है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय

देवासुरसंग्राम

श्रीशुक उवाच-इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ॥
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! दैत्य और दानव दोनोने ही कार्यमें प्रयत्न किया, किन्तु हरिसे विमुख होनेके कारण दानवोंने अमृत नहीं पाया ॥ १ ॥ हरिने युक्तिपूर्वक दानवोंसे अमृत ले लिया और देवगणको पिलाया एवं सबके सामने ही गरुड़की पीठपर चढ़कर वैकुण्ठलोकको चलेगये ॥ २ ॥ इधर शत्रुओंकी ऐसी बढ़ती देखकर दानवगण उसको न सह सके और अपने अपने अस्त्र लेकर देवतोंकी ओर युद्ध करनेके लिये झपटे ॥ ३ ॥ अमृतपान करके हरिचरणानुगत देवगणका बल बढ़ गया था, अतएव अस्त्र शस्त्र लेकर वे भी दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ४ ॥ सागरके तटपर देवता और दैत्योंका देवासुर नाम घोर

महासंग्राम ठन गया, जिसके सुननेसे भी रोमाञ्च होता है ॥ ५ ॥ इस समरमें परम कुपित शत्रुगण परस्पर भिड़कर बाण, खड्ग आदि अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे प्रहार करनेलगे। उस समय शङ्ख, तूर्य, मृदङ्ग, भेरी और डमरु एवं हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका महाभीषण तुमुल कोलाहल होनेलगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ रणभूमिमें रथीसे रथी, पैदलसे पैदल, घोड़ोंसे घोड़े और हाथियोंसे हाथी भिड़गये ॥ ८ ॥ दोनो सेनाओंके योद्धा लोग ऊँट, हाथी, गर्दभ, गौरमृग, भालू, व्याघ्र, सिंह, गिद्ध, कङ्क, बक, श्येन, भास, तिमिङ्गिल, शरभ, महिष, गेंडा, गऊ, बैल, गवय, अरुण, शृगाल, मूषक, कृकलास, खरगोश, मनुष्य, छाग, कृष्णसार, हंस, सूकर एवं अन्यान्य प्रकारके विकट आकारवाले जलचर और स्थलचर पशु पक्षियोंपर चढ़ युद्धभूमिमें प्रवेशकर एक एकके सामने आये ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ शूर वीर देवता और दानवोंकी सेनाके दोनो दल दो विशाल सागरोंके समान देख पड़नेलगे। अनेक प्रकारकी पताका और चित्रविचित्र ध्वजा एवं धवल विमल छत्र, उनके महामूल्य हीरकखचित दण्ड, मयूरपुच्छविनिर्मित व्यजन और चामर, वायुके चलनेसे हिलरहे पगड़ियोंके पेंच और उनपर लगी हुई कलगियाँ एवं उत्तरीय पट, सूर्यकी किरणोंका प्रकाश पड़नेसे चमक रहे उज्वल और निर्मल शक्ति, कवच, आभूषण आदि एवं योद्धा लोगोंकी श्रेणियाँ उन महासागररूप उमड़ रहे दोनो दलोंमें मकर, ग्राह आदि हिंस्र जलजन्तुओंके समान देख पड़ते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ राजन्! मय दानवने सम्पूर्ण आश्चर्यमय वस्तुओंसे पूर्ण एक वैहायस नाम कामनाके अनुसार गमन करनेवाला अप्रतर्क्य और अचिन्तनीय रथ बनाया था। उसमें यह गुण था कि वह कभी दृष्टिगोचर होता था और कभी अदृश्य हो जाता था। इस समय युद्धकी सब सामग्री उसपर धरी थी एवं विरोचनके पुत्र राजा बलि स्वयं दैत्यसेनाके सेनापति बनकर रणभूमिमें उसी रथके शिखरपर बैठे थे और उनके दोनो ओर चँवर हो रहे थे, शिरपर छत्र लगा हुआ था। उस समय राजा बलि, उदयाचलको जा रहे तारापति चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ जिनके हाथोंसे देवगणकी अनेक बार हार हुई है वे नमुचि, शम्बर, बाणासुर, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्तापन, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शङ्कुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, शत्रुजित्, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्टासुर, अरिष्टनेमि, त्रिपुरके स्वामी मयासुर एवं पौलोम, कालेय, निवातकवच आदि अन्यान्य असुरसेनापतिगणने रथोंपर चढ़कर बलिको चारो ओरसे घेर लिया। ये सब दानव अमृतमें भाग न पानेके कारण केवल क्लेशके ही भागी हुए अतएव इन्होने दारुण क्रोध करके सिंहनाद करतेहुए गम्भीर शब्द करनेवाले अपने अपने शङ्ख बजाकर युद्धमें उत्साह प्रकट

किया। उधर शत्रुओंका ऐसा उत्साह और दर्प देखकर इन्द्रको बहुत ही कोप हुआ। जैसे झरतेहुए झरनोंसे युक्त उदयाचलपर सूर्यनारायण आरोहण करते हैं, वैसे ही स्वयंप्रकाशयुक्त पुरन्दर भी मदस्रावी दिग्गज ऐरावतपर चढ़कर आकाशमें अवस्थित हुए ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ पवन, अग्नि, वरुण आदि लोकपाल देवगण अनेक प्रकारके वाहनोंपर चढ़कर चित्रविचित्र ध्वजा और पताका एवं अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित होकर अपने अपने अनुचरगण सहित देवराजको चारो ओरसे घेरकर अवस्थित हुए ॥ २६ ॥ पूर्वोक्त देवदानवगण, एक एकके निकट पहुँचकर, एक एकका नाम ले ले कर बुलातेहुए, वचनोंसे परस्परोंका तिरस्कार करके द्वन्द्वयुद्ध करनेलगे ॥ २७ ॥ देवराज इन्द्रसे राजा बलि, कार्तिकेयसे तारकासुर, वरुणसे हेति, मित्रसे प्रहेति, यमराजसे कालनाभ, विश्वकर्मासे मयासुर, त्वष्टासे शम्बर, सवितासे विरोचन, अपराजितसे नमुचि, अश्विनीकुमारसे वृषपर्वा, सूर्यदेवसे बाण आदि बलिके सौ पुत्र, चन्द्रमाके साथ राहु, वायुके साथ पुलोमा- वेगवती देवी भद्रकालीसे शुम्भ व निकुम्भ, वृषाकपिसे जम्भासुर, विभावसुसे महिषासुर, ब्रह्माके पुत्रोंसे इल्वल और वातापी, कामदेवसे दुर्मर्ष, मातृगणसे उत्कल, बृहस्पतिजीसे शुक्राचार्य, शनिसे नरकासुर, मरुद्गणसे निवातकवच नामक दानवगण, वसुगणसे कालकेय नामक असुरगण, विश्वेदेवगणसे पौलोम नामक दैत्यगण एवं रुद्रगणसे क्रोधवश नामक दानवगण द्वन्द्वयुद्ध करनेलगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ असुर और देवेन्द्रगण इसप्रकार द्वन्द्व-युद्धमें प्रवृत्त होकर जयकी इच्छासे एक एक पर तीक्ष्ण बाण, खड्ग और तोमर आदि शस्त्रोंसे प्रहार करनेलगे, एवं भुशुण्डी, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, परश्वध, निस्त्रिंश, भल्ल, परिघ, मुद्गर और भिन्दिपाल आदि अस्त्र शस्त्रोंसे एक एकका शिर काटनेलगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंके एवं अन्यान्य वाहन और उनपर चढ़नेवालोंमें किसीके बाहु, किसीकी जङ्घा, किसीकी ग्रीवा और किसीके पैर कट गये। इसभाँति अनेक प्रकारोंसे खण्डित होकर वे गिरनेलगे एवं उनके ध्वजा, धनुष, कवच और आभूषण सब अङ्गोंसे च्युत हो पड़े ॥ ३७ ॥ हे राजन्! देवता और दानवोंके पादप्रहारसे एवं रथचक्रोंके आघातसे परिमर्दित होनेके कारण रणभूमिसे प्रचण्ड धूल उड़ी, जिसने सब दिशाओंको और सूर्यसहित आकाशमण्डलको छा लिया; किन्तु थोड़ी ही देरमें युद्धभूमि रुधिरकी नदियोंसे भर गई और सब धूल जहाँकी तहाँ बैठ गई ॥ ३८ ॥ अगणित योद्धा लोगोंके कटेहुए शिरोंसे युद्धभूमि छा गई। उन शिरोंसे कुण्डल गिरपड़े हैं, उस मृत अवस्थामें भी वैसे ही उनके नेत्र क्रोधसे लाल हैं और दाँतोंके नीचे अधर दबे हुए हैं। बड़ी बड़ी विशाल भुजाएँ कटकर गिर पड़ी हैं—उनमें अस्त्र शस्त्र वैसे ही दबेहुए

हैं, एवं हाथीकी सूँड़के समान अगणित जङ्घाएँ कटी हुई पड़ी हैं। इन सबसे युक्त रणभूमिने बहुत ही विकट रूप धारण किया ॥ ३९ ॥ रणभूमिमें असंख्य कबन्ध (मुण्डहीन रुण्ड) उत्थित हुए, वे पृथ्वीपर कटकर गिरे-हुए अपने शिरोंके नेत्रोंसे देखते हुए हाथोंमें अस्त्र शस्त्र ले ले कर योद्धा लोगोंके ऊपर प्रहार करनेके लिये इधर उधर दौड़नेलगे ॥ ४० ॥ इधर राजा बलिने महेन्द्रपर दश बाण मारे और ऐरावतके तीन बाण तथा चारो साधारण महावत, जो चारो ओर ऐरावतके पैरोंकी रक्षा कर रहे थे—उनके एक एक बाण और प्रधान महावतको एक बाण मारा ॥ ४१ ॥ किन्तु वे बाण पास भी न आने पाये, बीचमें ही महापराक्रमी इन्द्रने उतने ही भल्लनामक तीक्ष्ण बाणोंसे लीलापूर्वक हँसते हँसते शीघ्रताके साथ उनको काट डाला ॥ ४२ ॥ इन्द्रके इस प्रशंसनीय कर्मको देखकर राजा बलिको डाह हुआ और उन्होने एक प्रचण्ड शक्ति इन्द्रपर चलानेके लिये हाथमें ली, किन्तु चलाने भी न पाये, इन्द्रने महाउल्कासदृश प्रज्वलित वह शक्ति उनके हाथमें ही काट डाली ॥ ४३ ॥ तदनन्तर असुरराजने कुपित होकर एक एक करके शूल, प्रास, तोमर और ऋष्टि आदि शस्त्र हाथमें लिये; परन्तु जो जो शस्त्र इन्द्रपर चलानेके लिये बलिने उठाया उसीको प्रतापी पुरन्दरने फुर्तीके साथ काट डाला ॥४४॥ तब असुर बलिने आकाशमें अन्तर्हित होकर अनेक आसुरी मायाएँ प्रकट कीं। राजन्! पहले देवसेनाके ऊपर एक बड़ा भारी पर्वत प्रकट हुआ और उससे असंख्य वृक्ष दावानलके द्वारा जल जल कर देवदलपर गिरनेलगे, एवं नुकीली शिलाएँ गिर गिर कर देवसेनाको विनष्ट करने लगीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसके बाद महासर्प, वृश्चिक और काटनेवाले अन्यान्य विषैले जीव एवं सिंह, व्याघ्र व वराह प्रकट हुए। बड़े बड़े हाथी और पूर्वोक्त सर्पादिक जीव, शत्रुसेना अर्थात् देवदलको नष्ट और पीड़ित करनेलगे ॥ ४७ ॥ हे नरनाथ! उसके अनन्तर "मारो मारो काटो काटो" कहतेहुए शूल हाथमें लिये वस्त्रविहीन विकट राक्षस और राक्षसियाँ इधर उधर दौड़तेहुए देवदलमें देख पड़े। आकाशमण्डलमें भीमनाद करतेहुए घोर मेघों-का मण्डल देवदलपर अङ्गारोंकी वर्षा करता हुआ प्रचण्ड वेगसे इधर उधर फिर-नेलगा। वायुके आघातसे उन मेघोंमें कभी कभी बड़ा घोर शब्द होता था ॥४८॥ ॥४९॥ उसके बाद दानवराज बलिने प्रचण्ड अग्नि प्रकट किया। वह पावक देखते ही देखते प्रलयानलके समान प्रज्वलित हो उठा, एवं वायुके द्वारा संचालित हो-कर देवसेनाको भस्म करनेलगा। प्रचण्ड वायुके झोंकोंसे उठ रहे चञ्चल तरङ्गोंके आवर्तोंसे भीषण समुद्र देख पड़ा कि मानो उमड़कर पृथ्वीको जलमग्न कर देगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जिनकी गति और स्थिति नहीं देख पड़ती उन महामायावी असुरोंने इसप्रकार युद्धभूमिमें बहुतसी विकट और भयावनी मायाएँ प्रकट कीं;

जिनको देखकर सुरसेनाके योद्धा लोग बहुत ही खिन्न हुए ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! इन्द्रादि देवगण किसीप्रकार उन मायाओंका कुछ प्रतीकार नहीं करसके। तब उन्होने विश्वपालक भगवान् हरिका ध्यान किया। ध्यान करते ही उसी स्थान-पर नारायण प्रकट हुए ॥ ५३ ॥ सबने देखा कि पीताम्बरसे सुशोभित, चतुर्भुज, कमललोचन हरि, गरुड़की पीठपर सुकोमल पादपद्मपल्लव धरेहुए हैं, भुजाओंमें शङ्ख, चक्र आदि आठ अस्त्र शोभित हैं एवं हृदयआदि अङ्गोंमें लक्ष्मीदेवी और कौस्तुभमणि, कनककलित किरीट मुकुट व कुण्डलकी अपूर्व दीप्ति देख पड़ती है ॥ ५४ ॥ महाराज ! जिसप्रकार जागनेपर स्वप्नावस्था दूर हो जाती है वैसे ही पूजनीय हरिके उस युद्धभूमिमें प्रकट होनेपर उनकी महामहिमासे असुरोंकी कूटमन्त्रमय सब मायाएँ सहसा निरस्त हो गईं। सो ठीक ही है; हरिका स्मरण करनेसे सब प्रकारकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ ५५ ॥ समरभूमिमें गरुड़वाहन हरिको देखकर सिंहपर चढ़ेहुए कालनेमि दानवने कराल त्रिशूल घुमाकर गरुड़के ऊपर चलाया। वह त्रिशूल गरुड़के शिरपर गिरने भी नहीं पाया और हरिने लीलापूर्वक उसको हाथपर रोक लिया, एवं उसीसे सिंह सहित कालनेमिको नष्ट कर दिया ॥ ५६ ॥

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्य-
च्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ॥
आहत्य तिग्मगदयाहनदण्डजेन्द्रं
तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाद्यः ॥ ५७ ॥

भगवान्के चक्रप्रहारसे माली और सुमाली नाम दोनो दानवोंके शिर कट गये और वे दोनो प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उसके बाद माल्यवान् नाम असुरने हरिके निकट आकर गरुड़पर कठिन गदा चलाई और सिंहनाद करने लगा; वैसेही आदिपुरुष नारायणने सुदर्शन चक्रसे उसका भी शिर काट डाला ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय

देवासुरसंग्रामकी समाप्ति

श्रीशुक उवाच—अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः
परस्य पुंसः परयाऽनुकम्पया ॥
जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादय-
स्तांस्तान्रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! महेन्द्र और पवन आदि देवगण परमपुरुषकी परम दयासे सचेत हुए एवं पहले जिन्हो (दानवों) ने रणभूमिमें इनपर प्रहार किये थे उनपर ये भी द्विगुण उत्साहसे प्रहार करनेलगे ॥ १ ॥ इन्द्रने क्रोध करके विरोचनके पुत्र बलिके ऊपर चलानेको जब वज्र उठाया तब प्रजागण हाहाकार करनेलगे। वज्रधारी इन्द्रने रणभूमिमें अपने सामने अवस्थित, सुशिक्षित, मनस्वी बलिसे यों तिरस्कारके वाक्य कहे ॥ २ ॥ ३ ॥ "रे मूढ़ दैत्य! हम लोग सब मायाओंके अधीश्वर हैं, तू नटोंकी भाँति इन तुच्छ मायाओंसे हमें जीतना चाहता है! जैसे नट लोग दृष्टि बाँधकर बालकोंका धन ठग लेते हैं ॥ ४ ॥ जो लोग मायाके द्वारा स्वर्गपर आरोहण करनेकी या स्वर्गको नाँघकर मुक्तिलाभ करनेकी कामना करते हैं उन दस्युवृत्ति निर्बोध पुरुषोंको उनके पूर्वपदसे भी मैं नीचे गिरा देता हूँ ॥५॥ तू दुष्ट, मायावी और मूढ़ है; इस शतपर्व (सौ खण्ड) वाले वज्रसे तेरा शिरा काटता हूँ। इससमय जातिवाले असुरोंसहित तू अपनी रक्षा कर" ॥ ६ ॥ यह इन्द्रका कथन सुनकर राजा बलिने उत्तर दिया कि "हे इन्द्र! इतना गर्व क्यों करते हो? लोग कालके द्वारा प्रेरित होकर संग्राममें प्रवृत्त होते हैं। कीर्ति, जय या पराजय व मृत्युको क्रमशः सब ही लड़नेवाले पाते हैं ॥ ७ ॥ इसीलिये विज्ञ वीरगण जगत्को कालके अधीन मानते हैं, अतएव उनको जय या पराजयमें आनन्द या शोक कुछ भी नहीं होता। तुम इस विषयसे अनभिज्ञ हो ॥ ८ ॥ तुम्हारे ये कटु वाक्य मर्मभेदी हैं, तथापि मैं इनके कहनेका बुरा नहीं मानता। इसका कारण यही है कि, तुम लोग अपने ही पराक्रमको जय और पराजयका कारण मानेहुए हो, अतएव साधुजनोंके आगे शोचनीय हो" ॥९॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—वीरोंका दर्प दूर करनेवाले बलिने यों आक्षेपपूर्ण वचनोंसे पहले प्रहार करके फिर कानतक तानकर कई एक नाराच बाण भी इन्द्रके ऊपर चलाये ॥ १० ॥ स्पष्टवादी शत्रुके प्रहारोंको इन्द्र न सह सके और अङ्कुशाहत हाथीके समान झुँझलाकर बलिपर शत्रुमर्दन अमोघ वज्र चलाया। वज्र लगते ही, पक्ष कटनेपर जैसे कोई पर्वतराज गिर पड़ता है उसभाँति राजा बलि

विमानके सहित आकाशसे पृथ्वीतलपर गिर पड़े ॥ ११ ॥ १२ ॥ महाराज ! बलिका सखा और हितकारि एक जम्भ नाम दानव था, उसने अपने प्रियसखा बलिको जब इसप्रकार गिरते देखा तब मरेहुए मित्रका बदला लेनेके लिये वह सिंहवाहन महाबली असुर आगे बढ़ा और गदा लेकर ऐरावत हाथीके कन्धेपर मारी और फिर इन्द्रपर चलाई ॥ १३ ॥ १४ ॥ गदाके प्रहारसे गजराज बहुत ही विह्वल होकर दोनो जानुओंसे पृथ्वीपर बैठ गया। तब मातलि सारथी एक रथ ले आया; जिसमें हजार घोड़े जुतेहुए थे। इन्द्रदेव हाथीसे उतरकर उस रथपर आरूढ़ हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ जम्भ दानवने मातलि सारथीके उस कर्मकी प्रशंसा करके मुसकातेहुए प्रज्वलित अग्निके समान त्रिशूल मातलिपर चलाया ॥ १७ ॥ उस त्रिशूलके लगनेकी दुःसह वेदनाको धैर्य और दृढ़ताके साथ मातलिने सह लिया, उधर इन्द्रने कुपित होकर वज्रसे जम्भका मस्तक काट डाला ॥ १८ ॥ नारदऋषिके मुखसे जम्भकी मृत्युका संवाद पाकर नमुचि, बल और पाकनामक उसकी ज्ञातिवाले शीघ्रताके साथ युद्धभूमिमें आये और इन्द्रको कठोर वाक्य कहतेहुए, मेघमाला जैसे पर्वतोंपर जल बरसाती है वैसे ही, देवराजपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १९ ॥ २० ॥ क्षिप्रहस्त बल दानवने इन्द्रके हजारो घोड़ोंको एकसाथ एक एक बाणसे मारा ! पाक दानवने केवल एकबार ही संधान और मोचन करके सौ बाणोंसे साङ्गोपाङ्ग रथको और सारथी मातलिको एकसाथ ही अलग अलग आहत किया। यह कर्म युद्धभूमिमें सबको ही अद्भुत जान पड़ा ॥ २१ ॥ २२ ॥ नमुचि दानवने भी युद्धभूमिमें स्वर्णपुङ्खयुक्त पन्द्रह सौ सुतीक्ष्ण बाण इन्द्रपर मारकर जलपरिपूर्ण जलदजालके समान गम्भीर सिंहनाद किया ॥ २३ ॥ जैसे वर्षाकालकी घोर घनघटाएँ सूर्यको चारो ओरसे छिपा लेती हैं वैसे ही असुरगणने चारो ओरसे बाणोंकी वर्षा करके रथ और सारथी सहित सुरनायक इन्द्रको घेर लिया और आच्छन्न कर दिया ॥ २४ ॥ शत्रुसेनाके मध्यवर्ती देवगण और देवानुचरगण देवराजके न देख पड़नेपर बहुत ही विह्वल हो गये और नायकविहीन होकर उन वाणिज्य करनेवाले वणिग्जनोंके समान हाहाकार करनेलगे, जिनका जहाज समुद्रबीचमें टूट गया हो। शत्रुपक्षके द्वारा निर्जित देवगण इधर यों व्याकुल हो रहे थे, उधर देखते ही देखते सहस्रलोचन इन्द्रदेवने ध्वजा व अश्वयुक्त रथ और सारथी सहित उस बाणपिंजरसे बाहर निकलकर, जैसे सूर्यदेव रात्रिके अन्तमें प्रकट होकर अपने तेजसे दश दिशा आकाश और पृथ्वीको प्रफुल्लित व प्रकाशित करते हैं, उसप्रकार तीनो लोकोंको सुस्थिर और प्रसन्न बनाया ॥ २५ ॥ २६ ॥ अपनी सेनाको शत्रुदलके द्वारा पीड़ित होते देखकर इन्द्रने बहुत ही कोप किया और शत्रुका संहार करनेके लिये वज्र हाथमें लिया ॥ २७ ॥ इन्द्रने उसी आठ धारावाले सुदृढ़ और तीक्ष्ण वज्रसे अन्य असुरोंके सामने ही बल और

पाक नाम दोनो असुरोंके शिर काट डाले; यह देखकर अन्य असुरोंके हृदयोंमें भी भयका सञ्चार हुआ ॥ २८ ॥ बल और पाकका विनाश देखकर नमुचि दैत्य असह्य शोक और कोपके आवेशसे उन्मत्तसा हो गया, एवं इन्द्रको मारनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करनेलगा ॥ २९ ॥ नमुचि दैत्य दारुण क्रोधके कारण पाषाणसदृश सुकठिन स्वर्णभूषणविभूषित घण्टायुक्त त्रिशूल हाथमें लेकर "अब तू मरा" यों कहता हुआ झपटा और पास पहुँचकर घोर सिंहनाद करतेहुए वही शूल इन्द्रपर चलाया ॥ ३० ॥ महावेगशाली वह शूल आकाशमार्ग होकर आ रहा था, राहमें ही प्रतापी इन्द्रने बाणोंसे उसके हजारों टुकड़े कर डाले। फिर कुपित पुरन्दरने नमुचिकी ग्रीवापर, उसका शिर काटनेके विचारसे, सुतीक्ष्ण वज्र चलाया, किन्तु कैसे आश्चर्यकी बात हुई कि, उस बलपूर्वक इन्द्रके द्वारा चलाये गये वज्रकी चोटसे शिर कटना कैसा, थोड़ीसी त्वचा (खाल) भी न भिन्न हुई! इससे बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है कि जिसने प्रचण्ड दानव वृत्रासुरका शिर काट डाला' आज उसी वज्रका यों नमुचिकी त्वचासे अपमान हुआ!! ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ तब शत्रु नमुचिसे इन्द्रको बहुत ही भय हुआ। नमुचिके अङ्गमें वज्रको विफल होते देखकर देवराज इन्द्र यों अपने मनमें विचारनेलगे कि "दैवयोगसे लोगोंकी बुद्धिको चक्करमें डालनेवाली यह कैसी अद्भुत घटना हुई? ॥ ३३ ॥ जब पूर्व-समयमें दुर्दान्त पर्वतगण सपक्ष थे और वे ऊपर उड़कर देशोंपर गिरते व उनका संहार करते थे तब मैंने प्रजाको नष्ट होते देखकर इसी वज्रसे उन पर्वतोंके पक्ष काट दिए और इसी वज्रसे वृत्रासुरका शिरभी काटा। इस वज्रको विश्वकर्माने तपस्याके सारांश (दधीचि ऋषिके अस्थिपञ्जर) से बनाया है। इसी वज्रने उन अनेकानेक अन्यान्य महावीरोंका विनाश किया था जिनकी त्वचा-तक अन्य सुतीक्ष्ण अस्त्रोंसे नहीं कटी, किन्तु आज यह वही अप्रतिहत वज्र, इस क्षुद्र असुरपर विफल हो गया! अब मैं इसे नहीं धारण करूँगा, यह एक सामान्य दण्डके समान हीहै, ब्रह्मतेज होनेपर भी प्रयोजन सिद्ध करनेको समर्थ नहिं हुआ, इसलिये इसका धारण करना व्यर्थ ही है" ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इन्द्रदेव इसप्रकार विषाद कर रहे थे, उसी समय बिना शरीरकी आकाशवाणी हुई कि "यह दानव सूखे या गीले पदार्थसे नहीं मर सकता; हे इन्द्र! मैंने इसको वर दिया है कि 'तेरी सूखे या गीले किसी पदार्थसे मृत्यु न होगी'-इस लिये तुम इसके मारनेका कोई और उपाय निकालो" ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसप्रकारकी दैववाणी सुननेपर इन्द्रने चित्तसंयमपूर्वक विचार करके देखा कि जलका फेना न सूखा और न गीला ही है। बस, इन्द्रने उसी समय समुद्रसे जलका फेना लेकर उसीसे नमुचि दानवका शिर काट डाला। तब मुनिगण फूलोंकी वर्षा करतेहुए देवराजकी स्तुति करनेलगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ विश्वावसु और परावसु नाम दोनो श्रेष्ठ गन्धर्व

उनका गुणगान करनेलगे, स्वर्गमें देवतोंने नगाड़े बजाये और अप्सराएँ आनन्दसे नृत्य करनेलगीं ॥ ४१ ॥ सिंहगण जैसे मृगोंके झुण्डको मार भगाते हैं वैसे ही वायु, अग्नि और वरुण आदि अन्यान्य देवगण भी सुतीक्ष्ण अस्त्रोंके प्रहारसे अपने अपने प्रतिद्वन्द्वी असुरोंका संहार करनेलगे। देवता और दानवोंका यों क्षय होते देखकर ब्रह्माजीने देवर्षि नारदको युद्ध निवृत्त करनेके लिये भेजा ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ नारदजीने आकर देवगणसे कहा कि-"देवगण! नारायणके बाहुबलका आश्रय लेकर तुम लोगोंने अमृत पाया और कमलाके कृपाकटाक्षपातसे तुम्हारे बल, वीर्य और वैभवकी वृद्धि हुई है, अतएव अब युद्ध बन्द करो" ॥ ४४ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! मुनिके वाक्योंको सब देवतोंने सादर स्वीकार किया अर्थात् क्रोधके वेगको शान्त करके, अनुचरगणकी की हुई स्तुतियाँ सुनते-हुए स्वर्गधामको गये ॥ ४५ ॥ जो दानव युद्धभूमिमें बच रहे थे वे मुनि नारदकी आज्ञाके अनुसार जीवहीन बलिके शरीरको लेकर अस्ताचल (शुक्राचार्यके आश्रम) को गये। वहाँ शुक्राचार्यने जिन दानवोंके अङ्ग और रुण्ड मुण्ड नष्ट नहीं हुए थे उनको अपनी सञ्जीविनी नाम विद्यासे फिर सजीव कर दिया ॥४६॥४७॥

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ॥
पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥

शुक्रका हाथ लगते ही बलिने जीवित होकर फिर संज्ञालाभ किया। यद्यपि बलिका पराजय हुआ तथापि लौकिक तत्त्वका भलीभाँति अभिज्ञ होनेके कारण वह थोड़ा भी खिन्न या उदास नहीं हुए ॥ ४८ ॥

इति श्रीभागवते अष्टमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय

मोहिनीरूप देखकर महेशका मोहित होना

श्रीबादरायणिरुवाच—वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ॥
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! 'नारायणने मोहिनीरूप धारणकर दैत्योंको मोहित किया और देवगणको अमृत पान कराया'—यह वृत्तान्त सुनकर महादेवजी नन्दीश्वरकी पीठपर प्रियतमा पार्वतीसहित आरूढ़ हुए, एवं भूत-गणको साथ लेकर जहाँ मधुसूदन हरि निवास करते हैं वहाँ (वैकुण्ठ लोकमें) उनके दर्शन करनेकी कामनासे गये ॥ १ ॥ २ ॥ भगवान्ने आदरपूर्वक शिव और गौरीकी अभ्यर्थना की। महादेवजी भी विष्णुके प्रति सम्मान दिखाकर सुन्दर

आसनपर सुखपूर्वक बैठे और थोड़ी देरतक विश्राम करनेके बाद मन्द मुसकानके साथ हरिसे यों कहनेलगे ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले—हे देवदेव, जगत्भरमें व्याप्त, जगन्मय, जगदीश ! आप सब पदार्थोंके आत्मा कारण और ईश्वर हैं। जिन सत्स्वरूप चिन्मय ब्रह्मसे इस विश्वका आदि अन्त और मध्य प्रतीत होता है, किन्तु जो स्वयं आदि अन्त और मध्यसे रहित हैं, जो दृश्य भी हैं और द्रष्टा भी हैं, जो भोज्यवस्तु भी हैं और भोग करनेवाले भी हैं, आप वही सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ विषयसुखसे विरक्त होकर निर्वाणमय मङ्गलकी कामनावाले मुनिगण इसलोक और परलोककी आसक्तिको त्यागकर आपके ही चरणकमलोंका पूजन करते हैं ॥ ६ ॥ आप पूर्ण, सुखस्वरूप, नित्य, आनन्दमय, निर्गुण, निर्विकार और शोकशून्य ब्रह्म हैं । आपसे विभिन्न कुछ भी नहीं है, तथापि आप सबसे अलग (निर्लिप्त) हैं; विश्वकी सृष्टि, स्थिति और ध्वंसका कारण एवं आत्माके नियन्ता हैं । सम्पूर्ण विश्व आपका मुखापेक्षी है, किन्तु आप निरपेक्ष हैं ॥ ७ ॥ जैसे एक सुवर्ण, कुण्डल आदि अलङ्कारोंके रूपमें परिणत होकर अनेक हो जाता है, वैसे ही परमकारणस्वरूप आप भी कार्य और कारणके रूपमें परिणत होकर विभिन्न जान पड़ते हैं, किन्तु स्वर्णके सदृश आपमें भी वास्तविक विभिन्नता नहीं है। आप उपाधिरहित हैं। किन्तु आपका सम्बन्ध गुणोंसे है, इसीलिये अज्ञ पुरुष आपमें भेदभावना या भेदकी कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ कोई (वेदान्ती लोग) ब्रह्म कहकर, कोई (सांख्यमतावलम्बी) प्रकृति और पुरुषसे भिन्न परमपुरुष परमेश्वर कहकर, कोई (मीमांसावाले) धर्म कहकर, कोई (पञ्चरात्रमतावलम्बी) नवशक्तियुक्त परम पुरुष कहकर, और कोई (पतञ्जलिमतवादी) स्वाधीन अविनाशी महापुरुष कहकर आपका ही निर्देश करते हैं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा और मरीचिआदि ऋषिगण एवं मैं—सब सत्त्वगुणके द्वारा उत्पन्न हुए हैं; तथापि आपकी दुरन्त मायामें चित्त मोहित रहनेके कारण आपके रचे विश्वका भी तत्त्व नहीं जानते (आपका तत्त्व जाननेकी बात तो सुदूरपराहत है) जब उत्तम सृष्टिमें उपजेहुए हम लोग जाननेमें असमर्थ हैं तब दैत्य मनुष्य आदि जीवगण, जो रजोगुण व तमोगुणसे उत्पन्न हैं, वे कैसे जान सकते हैं ? उनकी प्रवृत्ति तो सदा राजसी व तामसी ही रहती है ॥ १० ॥ आप, प्राणियोंकी चेष्टा, इस विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और विनाश, एवं संसार, बन्धन व मोक्ष, सब जानते हैं । वायु जैसे चर और अचर शरीरसमूहोंमें एवं आकाश(शून्य)में व्याप्त है, वैसे ही आप भी आत्मस्वरूपसे सम्पूर्ण चराचर जगत्में व्याप्त हो रहे हैं; आप ज्ञानस्वरूप हैं, सुतरां सबके आत्मा हैं ॥ ११ ॥ गुणगणमें रमण करतेहुए आप जिन जिन रूपोंसे समय समय पर जगत्में अवतीर्ण हुए हैं उन सब अवतारोंको मैंने देखा है; अतएव आपने अभी जो

स्त्रीशरीर धारण किया है वह भी देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १२ ॥ आपने जिस रूपसे दैत्यदलको मोहित करके देवतोंको अमृतपान कराया वही मोहिनी-स्वरूप देखनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ; वह रूप देखनेके लिये मुझको बड़ा ही कौतूहल है ॥ १३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—शङ्कर भगवान्की यह प्रार्थना सुनकर मन्दमुसकानसे हृदयका गम्भीर भाव प्रकट करतेहुए भगवान् नारायणने कहा ॥ १४ ॥ "भगवन्! अमृतका कलश दानवगण छीन ले गये तब मैंने देखा कि स्त्रीरूप धारण करनेसे देवगणका 'अमृतलाभ'रूप कार्य सिद्ध होगा। अतएव दानवोंके हृदयमें कौतूहल उत्पन्न करनेके लिये ही मैंने मोहिनीरूप धारण किया था। हे देवदेव! आप उसको देखना चाहते हैं, अतएव मैं आपको वह रूप दिखाऊँगा। वह रूप कामोद्दीपन करनेवाला है, अतएव कामी जनोंके लिये बड़े ही आदरकी वस्तु है ॥ १५ ॥ १६ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! इतना कहकर देखते ही देखते भगवान् हरि वहाँसे अदृश्य हो गये। पार्वतीदेवीसहित महेश्वर शङ्कर चकितभावसे इधर उधर देखनेलगे। क्षण-भरके बाद महेश्वरने देख पाया कि विचित्र फूल, फल व रक्तवर्ण नवपल्लवआदि-से सुशोभित उपवनमें एक परम सुन्दरी कामिनी गेन्द उछाल उछाल कर क्रीड़ा कर रही है। उसके दुकूलद्वारा आवृत नितम्बोंमें सुवर्णकी मेखला (कर्धनी) पड़ी है ॥ १७ ॥ १८ ॥ गेन्द उछालने और रोकनेमें उस ललनाका लवङ्गलतातुल्य ललित सुकुमार शरीर हिलता है और उससे उसके पीन पयोधर कम्पायमान होकर देखनेवालेके चित्तको चञ्चल करते हैं। दोनो स्तन, उत्तम माला और ऊरुओंके भारसे पग पग पर उसकी क्षीण कटि मानो टूटने चाहती है। वह सुन्दरी इसी भाँति चलते चलते एक स्थानसे अन्यस्थानपर्यन्त प्रवालसदृश अरुण चरणोंको ले जाती है ॥ १९ ॥ गेन्द अनेक ओर भ्रमण करता है, अतएव उस सुन्दरीके कमनीय नयनतारा उसके पीछे पीछे चञ्चल भावसे भ्रमण करते हैं। सुन्दर दोनो कानोंमें कनकके कुण्डल शोभा पाते हैं और उनकी झलक पड़नेसे गोल गोल अनमोल सुडौल कपोलोंकी कान्ति और भी अधिक मनोहर देख पड़ती है। दोनो कमनीय कपोल और बिखरी हुई अलकोंसे मञ्जुल मुखमण्डल अलङ्कृत हो रहा है ॥ २० ॥ उसका दुकूल और वेणी शिथिल हो पड़ी है, उनको मनोहर बाएँ हाथसे सँभालती हुई मोहिनी, दूसरे हाथसे गेंदको उछालकर व रोककर अपनी मायासे जगत्को मोहित कर रही है ॥२१॥ वह विनोदमें तत्पर मोहिनी लज्जायुक्त मृदुल मन्द मुसकानके साथ कुटिल कटाक्षबाण छोड़ रही है। देवदेव महादेव उसके उन्हीं कटाक्षोंकी विषम चोट खाकर हतबुद्धि हो गये। शिवजी एकटक उसी कामिनीकी ओर देखनेलगे और वह भी इनकी ओर कटाक्षपात करनेलगी; उससे वृषभवाहन नीलकण्ठजी ऐसे विह्वल हो गये कि उनको अपनी, पास ही उपस्थित गौरीकी एवं प्रमथगणकी भी सुधि नहीं रही ॥ २२ ॥ एकबार उस कामिनीकी थपकीसे वह

गेंद दूर चला गया और वह उसको रोकनेके लिये दौड़ी; इसी अवसरमें वायुने काञ्चनकी काञ्चीसहित उसका सूक्ष्म वस्त्र उड़ा दिया। महेश्वर देव एकटक उसी ओर ताक रहे थे, इसकारण यह व्यापार उन्होने देखा ॥ २३ ॥ रुचिर अपाङ्ग (नेत्रके प्रान्तभाग) वाली उस मनोरम और दर्शनीय सुन्दरीने तिर्छी चितवनसे देखकर महेश्वरका ज्ञान हर लिया और भगवान् भवानीपतिका चित्त उस-पर अत्यन्त आसक्त हो गया। दारुण कामदेवके बाणोंसे पीडित शङ्कर, भवानीके आगे भी, लज्जा त्यागकर मोहिनीकी ओर दौड़े ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस समय वस्त्र उड़ जानेसे कामिनी नग्न थी, अतएव शिवको अपनी ओर आते देख-कर अत्यन्त लज्जित हुई, तथापि हँसते हँसते वृक्षोंकी आड़में होकर भागी ॥२६॥ भगवान् शङ्करकी इन्द्रियाँ उन्मत्त हो उठीं एवं कामदेवके वशीभूत होकर गजराज जैसे हथनीके पीछे दौड़ते है उसभाँति उस सर्वाङ्गसुन्दरी नारीके पीछे पीछे दौड़ते चले ॥ २७ ॥ बहुत वेगसे अनुगमन करके अन्तको उसके पास पहुँच गये। शिवजीने उस स्त्रीकी इच्छा न होनेपर भी पीछेसे वेणी पकड़कर रोक लिया और दोनो बाहुओंसे बलपूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥ २८ ॥ हाथी जैसे हथनीका आलिङ्गन करे उसप्रकार शिवने मोहिनीको हृदयसे लगा लिया। मोहिनी अपनेको छुड़ानेके लिये बल करनेलगी और उसकी वेणी इस बलप्रयोगमें खुल गई ॥ २९ ॥ महाराज ! तदनन्तर देवदेव शङ्करके दोनो हाथोंके बीचसे अपनेको छुड़ाकर वह नारायणनिर्मिता विशालनितम्बवती माया (मोहिनी) फिर भागी ॥ ३० ॥ कामदेवने पूर्ववैरका स्मरण करके ही मानो शिवजीको इस समय परास्त किया ! महादेवजी भी कामके वशीभूत होकर विचित्र कीर्तिवाले भगवा-न्के मायामय मोहिनीरूपके पीछे पीछे दौड़नेलगे ॥ ३१ ॥ अनुगमन करते करते ऋतुमती हथनीके अनुगामी हाथीकी भाँति, अमोघवीर्य महादेवका वीर्य स्खलित होनेलगा ॥ ३२ ॥ राजन् ! महात्मा रुद्रका वीर्य जहाँ जहाँ पृथ्वीपर गिरा वह स्थान सोने और चाँदीके आकर (खनियाँ) हो गये ॥ ३३ ॥ नदी, सरोवर, पर्वत, वन, उपवन एवं जिन जिन स्थानोंमें ऋषिगण वास करते थे उन सभी स्थानोंमें मोहिनीका पीछा करतेहुए महादेवजी गये ॥ ३४ ॥ वीर्य स्खलित होने-पर शिवजीको स्मरण हुआ कि ईश्वरकी मायाने मुझको जड़ बना दिया है, उसीसमय उनका मोह निवृत्त होगया ॥३५॥ शिवजी, जगत्के आत्मा और अविज्ञेयवीर्य नारा-यणकी महिमा जानते थे, अतएव उनकी मायाके निकट परास्त होना उनको कुछ विचित्र न जान पड़ा। महाराज ! महादेवजी लज्जित वा अप्रतिम नहीं हुए; यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक नारायणने (अपनी पुरुष—आकृति फिर प्रकट करके) यों कहा कि ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ "हे देवश्रेष्ठ ! आप मेरी स्त्रीरूपधारिणी मायामें अपनी इच्छासे ही मोहित हुए। यह बड़े ही सौभाग्यका विषय है कि, इस-समय आप प्रकृतिस्थ होकर स्थिरचित्त हो गये हैं। आपके सिवा और कौन

व्यक्ति, एक बार वशीभूत होकर, फिर अनेक हाव भाव प्रकट करनेवाली और अजितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा अपरिहार्य मेरी प्रबल मायाको एकदम छोड़कर प्रकृतिस्थ और सुस्थिर हो सकता है? अबसे वह माया, सृष्टि आदिका सूक्ष्म कारण जो कालस्वरूप मैं हूँ उसके साथ रजःप्रभृति अंशोंसे सम्मिलित होकर अर्थात् मेरे ही अधीन होकर और कभी आपको न परास्त कर सकेगी'' ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—राजन्! श्रीवत्स-विभूषित भगवान्‌के द्वारा इसप्रकार प्रशंसा और सत्कार पाकर शिवजीने उनकी प्रदक्षिणा की एवं उमा व पार्षदगण सहित अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ४१ ॥ हे भारत! तदनन्तर महादेवजी, अपने अंशसे उत्पन्न उस मायाके विषयमें मुख्य मुख्य ऋषियोंके आगे प्रीतिपूर्वक पार्वती देवीसे यों कहनेलगे ॥ ४२ ॥ कि—"हे प्रिये! जन्मरहित परमदेव परमपुरुषकी माया तुमने देखी! मैं सब मायाओंका अधीश्वर होकर भी इस प्रबल मायामें मोहित होगया; अतएव जिनका चित्त व इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं वे उसके वशीभूत हों तो कौनसी आश्चर्यकी बात है! ॥ ४३ ॥ मैं जब सहस्र वर्षतक योग करके समाधिसे निवृत्त हुआ था तब तुमने जिन परमपुरुषके विषयमें प्रश्न किया था, यह नारायण वही साक्षात् परम पुरुष हैं। काल अथवा वेद, इन भगवान्‌की महिमाका निर्णय नहीं कर सकते'' ॥ ४४ ॥ **शुकदेवजीने कहा**—हे वत्स! जिन शार्ङ्गधनुषधारी हरिने समुद्र मथनेके समय महान् मन्दर पर्वतको पीठपर धारण किया, उनका बलविक्रम मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ४५ ॥ जो लोग वारंवार इसको पढ़ते और सुनते हैं उनका उद्यम कभी विफल नहीं होता, क्यों कि उत्तमश्लोक भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन संपूर्ण सांसारिक क्लेशोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ४६ ॥

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ॥
कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥

असज्जन जिसको नहीं पा सकते, केवल भक्तिसे ही जो मिल सकती है—उसी हरिचरणनौकाका आश्रय देवगणने लिया था। इसी कारण भगवान् सुन्दर मोहिनीवेष धारण करके दानवदलको मोहित किया और देवगणको समुद्रमथनसे प्राप्त अमृत पिलाया, उन्ही भक्तवत्सल भगवान्‌को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। वह जगदीश्वर अपने आश्रित जनोंकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते अष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

वैवस्वत आदि मन्वन्तरोंके विवरणका वर्णन

श्रीशुक उवाच—मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ॥
सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! सूर्यदेवके पुत्र श्राद्धदेव नाम सातवे मनु इस समय वर्तमान हैं। उनके सन्तानोंका विवरण मुझसे सुनो ॥ १ ॥ इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, कारूप, पृषध्र और वसुमान्-ये दश वैवस्वत (श्राद्धदेव) मनुके पुत्र हुए ॥ २ ॥ ३ ॥ वैवस्वत मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार एवं ऋभुगण नामक देवता हैं और इनके स्वामी पुरन्दर नामक इन्द्र हैं ॥ ४ ॥ कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सप्तऋषि हैं ॥ ५ ॥ इस मन्वन्तरमें भी कश्यपके वीर्यसे अदितिके गर्भसे भगवान्‌का वामन अवतार हुआ है। वामनजी अदितिके सब पुत्रोंमें छोटे हैं ॥ ६ ॥ मैंने संक्षेपसे ये सातो मन्वन्तर तुमसे कहे हैं; अब आगे होनेवाले सात मन्वन्तरोंका विवरण सुनो। इन सब मन्वन्तरोंमें विष्णुकी शक्ति व्याप्त है ॥ ७ ॥ सूर्यकी संज्ञा और छाया नाम दो स्त्रियाँ थीं, दोनो ही विश्वकर्माकी कन्या थीं; इनका वृत्तान्त हम तुमसे कह चुके हैं ॥ ८ ॥ कोई कोई सूर्यकी एक और (तीसरी) बड़वा नाम भार्या बतलाते हैं, किन्तु मेरे मतमें संज्ञाने ही बड़वा (घोड़ी) का रूप धारण किया था, इसकारण उसीका नामान्तर बड़वा है। संज्ञाके यमराज, श्राद्धदेव मनु और यमुना नाम कन्या हुई। अब दूसरी स्त्री छायाके जितने सन्तान हुए सो सुनो ॥९॥ छायाके सावर्णि नाम मनु, शनैश्चर और तपती नाम कन्या हुई। तपतीका विवाह राजा सम्वरणके साथ हुआ। बड़वाके अश्विनी-कुमार नाम दो पुत्र हुए। राजन् ! इसके बाद आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि नाम मनु होंगे। उनके निर्मोक और विरजस्क आदि पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें सुतपा, विरज, अमृतप्रभ नाम देवगण और उनके स्वामी इन्द्रका पद विरोचनके पुत्र राजा बलिको प्राप्त होगा। बलिराजा तीन पग पृथ्वी माँग-रहे हरिको सम्पूर्ण त्रिलोकी देकर प्रसन्न करेंगे और सप्तम मन्वन्तरमें मिलेहुए इन्द्रपदको त्यागकर भगवान्‌के प्रसादसे पीछे सिद्धकाम हो जायँगे ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ पहले परीक्षा करनेके लिये भगवान् वामनने बलिको बँधवा दिया, किन्तु उनकी धर्मनिष्ठा देखकर फिर प्रसन्न हुए और उनको सुतल लोकमें भेज दिया। अब राजा बलि वहाँ इन्द्रके समान वैभवसे वास करते हैं। वह लोक स्वर्गसे भी अधिक शोभायुक्त और ऐश्वर्यपूर्ण है ॥ १४ ॥ इस अष्टम मन्वन्तरमें गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रृङ्ग

और हमारे पिता भगवान् बादरायण वेदव्यास, ये सप्तऋषि होंगे; जो कि इस-समय अपने अपने आश्रमोंमें तप कर रहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ राजन्! इसी सावर्णि मन्वन्तरमें देवगुह्यके वीर्यद्वारा सरस्वतीके गर्भमें सार्वभौम नाम हरिका अवतार होगा। ईश्वरका अंश परम प्रतापी सार्वभौमजी बलपूर्वक पुरन्दरसे स्वर्गका राज्य लेकर राजा बलिको देंगे ॥ १७ ॥ नवम मनु दक्षसावर्णि होंगे। वह वरुणके पुत्र होंगे। उनके श्रुतकेतु और दीप्तकेतु आदिक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें पार और मरीचिगर्भ आदिक देवता एवं अद्भुत नाम इन्द्र तथा द्युतिमान् आदि सप्तऋषि होंगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस मन्वन्तरमें आयुष्मान्के वीर्यद्वारा अम्बुधाराके गर्भसे ऋषभ नाम परम प्रसिद्ध नारायणका अवतार होगा। भगवान् ऋषभजी अपने बाहुबलसे अद्भुतनाम इन्द्रको सर्वसमृद्धिसम्पन्न त्रिभुवनके राज्यका भोग करावेंगे ॥ २० ॥ दशम मनु उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि होंगे। उनके पुत्र भूरिषेण आदि होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय और मूर्ति आदि सप्तऋषि और सुवासन, अविरुद्ध आदि देवगण एवं उनके स्वामी शंभुनाम इन्द्र होंगे। इस मन्वन्तरमें भी विश्वस्रष्टागणके गृहमें विषूचीके गर्भसे विष्वक्सेन नाम भगवान्का अंशांशावतार होगा। विष्वक्सेनसे और शम्भु इन्द्रसे परस्पर मित्रता होगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ ग्यारहवें मनु आत्मज्ञानी धर्मसावर्णि होंगे, उनके सत्यधर्म आदि दश पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें विहङ्गम, कालगम और निर्वाणरुचिनामक देवगण और उनके स्वामी वैधृत नाम इन्द्र एवं अरुण आदिक सप्तऋषि होंगे। आर्यकके वीर्यसे वैधृताके गर्भमें धर्मसेतु नाम हरिका अंशावतार होगा। धर्मसेतु हरि धर्मकी मर्यादा सहित त्रिलोकीका पालन करेंगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ बारहवे मनु रुद्रसावर्णि होंगे। देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि उनके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें ऋतधामा इन्द्र, हरित् आदि देवगण एवं तपस्वी आग्नीध्रक आदि सप्तऋषि होंगे। सत्य-सह विप्रकी सूनृता नाम स्त्रीके गर्भसे स्वधामा नाम नारायणका अंशावतार होगा। स्वधामा देवके जन्मसे यह मन्वन्तर बहुत ही प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ तेरहवें देवसावर्णि नाम मनु होंगे। देवसावर्णिके चित्रसेन और विचित्र आदि पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें सुकर्मा और सुत्रामा नाम देवगण एवं उनके स्वामी दिवस्पति नाम इन्द्र तथा निर्मोक व तत्त्वदर्शी आदि सप्तऋषि होंगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस मन्वन्तरमें योगेश्वर देवहोत्रके वीर्यद्वारा बृहतीके गर्भसे अमूर्ति नाम हरिका अंशावतार होगा, जिसके द्वारा उस समयके दिवस्पति नाम इन्द्रकी सब कामनाएँ सिद्ध होंगी ॥ ३३ ॥ चौदहवें मनुका नाम इन्द्रसावर्णि होगा। उरु, गम्भीर और ब्रध्न आदि इनके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें पवित्र और चाक्षुष आदिक देवगण और उनके स्वामी शुचि नाम इन्द्र एवं अग्निबाहु,

शुचि, शुद्ध और मागध आदि सप्तऋषि होंगे। इस मन्वन्तरमें सत्रायणके वीर्य-द्वारा विनताके गर्भसे बृहद्भानु नाम हरिका अवतार होगा। बृहद्भानु देव महा-राजोंकेसे महा उद्यम करेंगे (अर्थात् विशेषरूपसे नीतिनियम करेंगे) ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चतुर्दशमनूनां च कथां यः कीर्तयेन्नरः ॥
शृणुयाद्वापि राजेन्द्र तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥ ३७ ॥

हे महाराज! ये भूत, भविष्य और वर्तमान चौदहो मनु हमने तुमसे वर्णन किये। ये चौदह मनु सहस्र युगपर्यन्त भोग करेंगे। सहस्र युग हो जानेपर एक कल्प पूर्ण होगा ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते अष्टमस्कन्धेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय

मनु आदिके कर्मोंका भिन्न भिन्न विवरण

राजोवाच–मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे ॥
यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले—भगवन्! पूर्वोक्त मनु, और इन्द्र आदि सब, भिन्न भिन्न मन्वन्तरमें, जो, जिसप्रकार, जिसके द्वारा जिस कार्यमें प्रवृत्त होता है सो सब हमसे आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले—राजन्! मनुगण, मनुपुत्रगण, सप्तर्षिगण, इन्द्रगण और देवगण–सब उसी परमपुरुष नारा-यणके आज्ञाकारी अनुगत हैं। जिन यज्ञ आदि ईश्वरके अवतारोंका पहले वर्णन कर चुके हैं वे समय समय पर प्रकट होकर मनुगणको जगत्का कार्य निबा-हनेमें प्रोत्साहित करते हैं और उनकी प्रेरणा व आज्ञाके अनुसार मनुगण जगत्का रक्षणावेक्षण करते हैं। चार युगके अन्तमें काल पाकर जब श्रुतियोंका लोप हो जाता है तब सप्तर्षिगण अपने तपोबलसे फिर उनको प्राप्तकर प्रकट करते हैं। उन श्रुतियोंसे ही सनातनधर्म आजतक चला आता है, लुप्त नहीं हुआ। मनुगण, नारायणकी आज्ञाके अनुसार अपने अपने समयमें पृथ्वीमण्डलपर यथाशक्य पूर्ण अखण्ड धर्मका प्रचार करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ मनुके सब पुत्र एवं स्वर्ग और पृथ्वी प्रभृतिके कर्मलिप्त अधिवासियों सहित यज्ञभोजी देवगण पुत्रपौत्रादिक्रमसे युगान्तपर्यन्त प्रजापालन करते रहते हैं ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्र भगवान्ने दियेहुए त्रिभुवनके सब ऐश्वर्यका भोग करतेहुए त्रिभुवनका पालन और यथासमय वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ हरि भगवान् प्रत्येक युगमें

सनकादि सिद्ध-रूप धारण करके ज्ञानका और याज्ञवल्क्यादि ऋषिरूपसे कर्मका एवं दत्तात्रेय आदि योगेश्वररूपसे योगका उपदेश करते रहते हैं ॥ ८ ॥ भगवान् मरीचि आदिके रूपसे सृष्टि करते हैं, राजाके रूपसे दस्युगणका वध करते हैं, एवं कालके रूपसे शीत उष्ण आदि विविध गुण धारण करके सम्पूर्ण संसारका संहार कर देते हैं ॥ ९ ॥ नाम-रूप-मयी मायाके द्वारा विमोहित ये मनुष्यगण अनेक शास्त्रोंसे उनकी स्तुति अर्थात् निरूपण करते हैं, किन्तु देख नहीं पाते ॥ १० ॥

एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥
यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥

राजन्! कल्प और विकल्पका यह परिमाण हमने तुमसे कहा। पुरावृत्त जाननेवाले जन इतने ही समयमें चौदह मन्वन्तरोंका निर्देश करते हैं (अर्थात् एक कल्पमें चौदह विकल्प होते हैं) ॥ ११ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदश अध्याय

बलिका स्वर्गविजय

राजोवाच—बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ॥
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—ब्रह्मन्! हरिने परमेश्वर होकर भी किस लिये दीन जनोंकी भाँति राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगी? और फिर माँगी हुई पृथ्वी पाकर भी किसलिये राजा बलिको बँधवाया? ॥ १ ॥ यह वृत्तान्त हम जानना चाहते हैं। पूर्ण ब्रह्म ईश्वरकी भिक्षा और निर्दोष बलिका बन्धन, इन दोनो अद्भुत विषयोंके जाननेके लिये हमको बड़ा ही कौतूहल है ॥ २ ॥ शुकदेवजीने कहा—इन्द्रने राजा बलिको मारकर उनकी राज्यलक्ष्मी हर ली, किन्तु शुक्राचार्यके अनुग्रहसे दैत्यपतिने फिर जीवनलाभ किया। तदनन्तर परम उदार राजा बलि, भृगुकुलके शिष्य होकर, धनदानपूर्वक, मन, वाणी और शरीरसे उन (शुक्रादि भृगुवंशियों) की उपासन करनेलगे ॥ ३ ॥ महा-प्रभाव भृगुवंशीय ब्राह्मणगणने स्वर्गजयाभिलाषी बलिका विधिपूर्वक महाभि-षेक किया और उनकेद्वारा विश्वजित् नाम महायज्ञका अनुष्ठान कराया ॥ ४ ॥ उस यज्ञमें हव्यकी आहुति देनेपर अग्निकुण्डसे सुवर्णमण्डित एक रथ, इन्द्रके अश्वोंके समान हरिद्वर्ण कई एक घोड़े, सिंहके चिह्नसे युक्त ध्वजा, काञ्चनालं-

कृत धनुष, अक्षय वाणपूर्ण दो तूणीर एवं दिव्य कवच प्रकट हुआ । बलिने यह सब युद्धकी सामग्री पाई, तब उनके पितामह प्रह्लादने उनको एक ऐसी माला दी कि जिसके फूल कभी मलिन नहीं होते, और शुक्राचार्यने एक शङ्ख दिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंने दैत्यपतिको इसप्रकार तपोवलसञ्चित युद्धसज्जासे सज्जित करके स्वस्त्ययन पाठ किया, तब बलिने उनको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की, तदनन्तर अपने पितामह प्रह्लादको सादर सम्भाषणसहित प्रणाम किया ॥ ७ ॥ फिर महारथी बलिने गलेमें माला धारण करके भृगुप्रदत्त दिव्य रथपर आरूढ़ हो कवच धारण किया एवं धनुष, खड्ग और तूणीर ग्रहण किये ॥ ८ ॥ सुवर्णके अङ्गद उनकी भुजाओंमें शोभा पानेलगे, एवं मकराकृत कुण्डलोंकी कान्ति कपोलोंपर पड़कर सोहावनी हो गई । इसप्रकार रथपर आरूढ़ दैत्यराजा बलि, कुण्डमें स्थित प्रज्वलित अग्निके समान शोभायमान हुए ॥ ९ ॥ आयु, बल एवं ऐश्वर्यमें उन्हीके समकक्ष दैत्ययूथपतिगणने बलिको चारो ओरसे घेर लिया । वे मानो दृष्टिसे आकाशमण्डलको पान कर डालेंगे और दिशाओंको भस्म कर देंगे ऐसा प्रतीत होने लगा । इसप्रकार दैत्ययूथपपरिवृत महाबली राजा बलिने बहुत सी दैत्यसेना साथ लेकर स्वर्ग और पृथ्वीको कम्पायमान करतेहुए सुसमृद्ध इन्द्रपुरीकी ओर यात्रा की ॥ १० ॥ ११ ॥ नन्दन आदि सुन्दर उपवनोंसे इन्द्रपुरीकी शोभा बहुत ही रमणीय जान पड़ती है । उन सब उपवनोंमें लगेहुए दिव्य वृक्षोंकी शाखाएँ प्रवाल, फल और फूलोंके भारसे झुकी रहती हैं । उन डालोंमें बैठेहुए पक्षियोंके जोड़े मधुर कलरव करते हैं और भ्रमरगण गुंजार करतेहुए इधर उधर भ्रमण करते हैं । वहाँ हंस, सारस, चक्रवाक और कारण्डव आदि पक्षियोंके झुंडोंसे सुशोभित अनेकानेक सरोवर हैं; सुरसेविता अप्सराएँ उनके स्वच्छ जलमें केलि किया करती हैं । आकाशगङ्गा इन्द्रपुरीको परिखा (खाई) के रूपसे चारो ओर घेरेहुए हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ सुवर्णका प्राकार (चहारदीवारी) इन्द्रपुरीके चारो ओर बना हुआ है । उस प्राकारपर अतीव उन्नत युद्ध करनेके स्थान बनेहुए हैं । पुरद्वारोंके कपाट सुवर्णमय हैं एवं गोपुर सब स्फटिकनिर्मित हैं । राजमार्गोंका उत्तमरूपसे विभाग कियाहुआ है । वह इन्द्रपुरी विश्वकर्माकी बनाई हुई है । उसमें अनेकानेक उपवेशनस्थान (सभा), प्राङ्गण, उपमार्ग (छोटी गलियाँ), कोटि कोटि विमान, चतुष्पथ (चौराहे) एवं हीरे और विद्रुमकी बनी हुई वेदियाँ शोभा पाती हैं । वहाँकी स्त्रियोंका यौवन और सुकुमारता चिरकालतक समभावसे रहती है; वे स्त्रियाँ निर्मल वस्त्र धारण कियेहुए अग्निके समान प्रभापूर्ण रहती हैं । उन रूपवती स्त्रियोंकी अवस्था सोलह सत्रह वर्षकी रहती है ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ वहाँके मार्गोंमें सुरललनाओंके केशपाशोंसे गिरेहुए सुगन्धित माल्यपुष्पोंकी

सुगन्धसे युक्त वायु मृदुमन्दभावसे डोला करता है ॥ १८ ॥ स्वर्णमय गवाक्षों-(झरोखों)से पाण्डुरवर्ण, अगुरुगन्धयुक्त धूमजाल निकलकर सब मार्गोंको छा लेता है। सुरसुन्दरियाँ उन्ही सुगन्धित मार्गोंसे अभिसार-यात्रा करती हैं ॥ १९ ॥ वह इन्द्रपुरी—मुक्तामण्डित चन्द्रातप (चँदोवे), मणिमय और स्वर्ण-मय ध्वजदण्ड एवं विविध पताका आदिसे सुशोभित बहुविध विमानोंके अग्र-भागोंसे व्याप्त हो रही है। मयूर, कपोत (कबूतर) एवं भ्रमरगण पुरीमें मनोहर शब्द करते हैं। विमानवासी देवगणकी कामिनियाँ मधुर रवसे गान करके पुरीके मङ्गलका सम्पादन करती हैं। मृदङ्ग, शङ्ख, पटह और दुन्दुभीके शब्दसे और ताल-युक्त वीणा, मुरज, एवं वंशीकी ध्वनिसे तथा गन्धर्वगणके नाचने, गाने और बजानेसे—इन्द्रपुरी, बहुत ही मनको रमानेवाली रहती है। उसकी अपूर्व प्रभाके आगे साक्षात् प्रभाकी अधिष्ठात्री देवताको भी हार माननी पड़ती है। वहाँ अधर्मी, दुष्ट, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले (अर्थात् प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले), शठ, मानी, और लोभी नहीं जा सकते। उक्त दोषोंसे रहित लोग ही वहाँ जाते हैं। दैत्यसेनाके अधिपति राजा बलिने देवगणकी राजधानी(अमरावती)को चारो ओरसे घेर लिया और उसके बहिर्भागमें अवस्थित होकर शुक्राचार्यका दिया हुआ गम्भीर-नादकारी महाशङ्ख बजाया; जिसका शब्द सुनकर देवाङ्गनाओंके हृदयोंमें यका-यक भयका सञ्चार हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ राजन्! राजा बलिके इस परम उद्यमको जानकर देवगणसहित पुरन्दर इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिके निकट जाकर कहा कि-"हे भगवन्! हमारे पूर्ववैरी बलिका अबकी बार बड़ा भारी उद्यम देख पड़ता है। जान पड़ता है इसके प्रचण्ड तेजकों हम नहीं सह सकते (अर्थात् सामना नहीं करसकते)। गुरुवर! किस कारणसे इसका तेज इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त हुआ है? ॥ २४ ॥ २५ ॥ मैं अनुमान करता हूँ कि इस समय कोई भी इस दैत्यका सामना नहीं करसकता और न इसके महान् उद्यमको ही विफल कर सकता है। यह दैत्य प्रलयकालके अग्निके समान प्रचण्ड और असह्य हो रहा है। मानो मुखसे इस विश्वको पी जायगा, जिह्वासे दश दिशाओंको चाट जायगा एवं नेत्रोंसे त्रिलोकीको भस्म करदेगा। जिसकारण मेरा शत्रु ऐसा दुर्धर्ष हो उठा है एवं जिसप्रकार इसके इन्द्रियबल, देहबल, पराक्रम और परम-उद्यमकी वृद्धि हुई है सो आप मुझसे वर्णन कीजिये" ॥ २६ ॥ २७ ॥ बृहस्पतिजीने कहा—"हे पुरन्दर! जिस कारणसे तुम्हारे वैरीका प्रताप बहुत बढ़ा है सो मैं भलीभाँति जानता हूँ। ब्रह्मवादी भृगुवंशीय शुक्र आदि मुनिगणकी कृपा और स्नेहसे इसके तेजकी इतनी उन्नति हुई है ॥ २८ ॥ हरि भगवान्के सिवा तुम या तुम्हारे समान प्रभावशाली अन्य व्यक्ति, कोई भी, इस समय महाबली बलिको परास्त नहीं कर सकता। ब्रह्मतेजसे इसके बलकी वृद्धि हुई है;

अतएव कोई भी इसको नहीं जीत सकता। लोग जैसे कराल कालके सामने नहीं ठहर सकते, वैसे ही बलिके आगे भी ठहरना अशक्य है ॥ २९ ॥ इससमय युक्ति यही है कि तुम सब अपने निलय स्वर्गको छोड़कर अलक्ष्य-भावसे छिपकर रहो और शत्रुकी अवनतिके समयकी प्रतीक्षा करो ॥ ३० ॥ इससमय इसका विक्रम वृद्धिपर है और ब्राह्मणोंकी कृपासे और भी बढ़ेगा; किन्तु जिनकी कृपासे और अनुकूल होनेसे इसकी उन्नति हुई है-अन्तमें उन्हीं ब्राह्मणोंका कहा न माननेसे इसका वंश-सहित विनाश (राज्यनाश) होगा" ॥ ३१ ॥ कार्यदर्शी गुरुने सुमन्त्रणापूर्वक इसप्रकार कर्तव्य स्थिर करके सत्परामर्श (उत्तम सलाह) दिया; तब कामरूपी देवगण उसे मानकर स्वर्गको छोड़ अदृश्य हो गये ॥ ३२ ॥ जब देवगणसहित इन्द्र पुरी छोड़कर चले गये तब राजा बलिने देवशून्य पुरीपर अधिकार कर लिया एवं त्रिभुवनको अपने वशमें करके उसका शासन करनेलगे ॥ ३३ ॥ शिष्यवत्सल भृगुगणने विश्वविजयी और वशंवद बलिसे एक सौ अश्वमेध यज्ञ कराये। महाउदार बलि सौ अश्वमेधके प्रभावसे दश दिशाओंमें कीर्ति फैला कर नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥ ३६ ॥

वह अपनेको कृतकृत्य मानकर बाहुबलसञ्चित तथा ब्राह्मणोंके प्रसादसे प्राप्त राज्यविभवका भोग करनेलगे ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय

अदितिको कश्यपकृत पयोव्रतका उपदेश

श्रीशुक उवाच—एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ॥
हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! जब देवगण इसप्रकार अलक्ष्य-भावसे इधर उधर रहनेलगे और स्वर्गका राज्य दैत्यगणने छीन लिया तब देवी अदिति अनाथोंकीभाँति विलाप करनेलगीं ॥ १ ॥ इसी अवसरमें उनके पति प्रजापति कश्यपजी, बहुत दिनके बाद समाधि त्यागनेपर उनके उत्सव और आनन्दसे शून्य आश्रम(भवन)में आये ॥ २ ॥ स्त्रीके द्वारा भलीभाँति सम्मानित और यथाविधि पूजित कश्यप ऋषि आसनपर बैठे और अदितिको उदासीन व मलिन-

सुखी देखकर कहनेलगे कि "हे भद्रे! लोकमें धर्म, ब्राह्मण या मृत्युके वशवर्ती लोगोंके लिये कोई अशुभ घटना तो नहीं हुई? हे सती गृहिणी! गृहस्थ लोग योगी न होकर भी जिस गृहाश्रममें रहकर स्वधर्माचरणके द्वारा योगके फल (मुक्ति) को पाते हैं उस गृहाश्रममें धर्म, अर्थ एवं कामका तो कोई अमङ्गल नहीं हुआ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ अथवा तुम कुटुम्बके कार्यमें लगी रहीं और किसी दिन कोई अतिथि द्वारपर आकर विना पूजा पाये विमुख तो नहीं लौट गया? ॥ ६ ॥ जिन घरोंमें जलसे भी अतिथिगणका सत्कार नहीं होता और वे वैसे ही लौट जाते हैं उन घरोंको निश्चय ही शृगालविवरतुल्य अमङ्गल और विफल कहना चाहिये ॥ ७ ॥ हे भद्रे! मैं प्रवासमें था, अतएव तुम्हारा मन उद्विग्न रहता होगा, इसीकारण तुम किसी दिन यथासमय अग्निहोत्र करना तो नहीं भूल गई? ॥ ८ ॥ गृहस्थ लोग अग्निहोत्र करके सब कामना पूर्ण करनेवाले लोगोंको प्राप्त होते हैं; ब्राह्मण और अग्नि, ये दोनो सर्वव्यापक विष्णुके मुख हैं ॥ ९ ॥ हे उदारमनवाली प्रिये! तुम्हारे पुत्रगण तो कुशलसे हैं? अनेक चिन्ह देखकर मुझे जान पड़ता है कि तुम्हारा अन्तःकरण स्वस्थ नहीं है" ॥१०॥ **अदितिने कहा—** ब्रह्मन्! गौ, ब्राह्मण, धर्म एवं सम्पूर्ण लोगोंका मङ्गल है। मेरा यह गृह भी धर्म, अर्थ और कामको भलीभाँति सम्पन्न करता है। मैं आपका ध्यान किया करती हूँ, उसीसे अग्नि, अतिथिगण, भृत्य, भिक्षुक एवं जो लोग बलिके प्रार्थी हैं वे सब तृप्त हो जाते हैं और सन्तुष्ट रहते हैं। आप प्रजापति स्वयं मुझको उपदेश करके धर्मकी ओर प्रेरणा करते हैं; भला मेरी कौन अभिलाषा अपूर्ण रहेगी?। हे मरीचिनन्दन! सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृतिके सब प्रजागण आपके ही मन और शरीरसे उत्पन्न हुए हैं, अतएव आपकी दृष्टिमें देवता आदि सब ही सन्तान समान हैं; तथापि आपऐसे सामर्थ्यशाली लोग भक्तोंपर अधिक स्नेह रखते हैं। हे नाथ! अतएव मैं आपको परम भक्तिसे भजती हूँ, कृपा करके जिसप्रकार मेरा कल्याण हो वह उपाय कीजिये। हे सुव्रत! मेरी सौतके पुत्र दैत्योंने मेरे पुत्रोंका राज्य और रहनेका स्थान (स्वर्ग) छीन लिया है। आप पुत्रोंसहित मेरी रक्षा कीजिये। शत्रुगणने मुझे पुत्रोंसहित निर्वासित कर दिया है; मैं दुःखके सागरमें मग्न हो रही हूँ। प्रबल दैत्यगणने मेरा ऐश्वर्य, श्री, यश और अधिकार हर लिया है। मेरे पुत्र जिससे फिर ऐश्वर्य आदि पा सकें, वही कल्याणकारी उपाय आप अपनी बुद्धिसे सोचिये" ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं—**हे राजन्! अदितिके इसप्रकार प्रार्थना करनेपर प्रजापति कश्यपजीने कुछ विस्मित होकर कहा कि—"विष्णुमायाकी कैसी असीम शक्ति है! यह जगत् स्नेहपाशमें जकड़ा हुआ है! आत्मासे भिन्न भौतिक देह कहाँ, और प्रकृतिसे भिन्न आत्मा कहाँ!। हे भद्रे! कौन किसके पति, पुत्र आदिक हैं?

इन सब सम्बन्धोंका कारण केवल मोह ही है ॥ १८ ॥ १९ ॥ तुम आदिपुरुष भगवान् जनार्दनकी उपासना करो। वह अन्तर्यामी और जगद्गुरु हैं। वह श्रीहरि ही तुम्हारा मङ्गल करेंगे। वह दीन जनोंपर कृपा करते हैं। भगवान्की सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। उसके सिवा और किसी कर्मसें कुछ फल नहीं है" ॥ २० ॥ २१ ॥ अदितिने पूछा—"हे ब्रह्मन्! मैं किसप्रकार उन जगद्गुरुकी उपासना करूँ? जिससे वह मेरी इच्छा पूर्ण करें, सो उपाय बतलाइये। मैं पुत्रोंसहित घोर कष्टसें पड़ी हुई हूँ। जिस विधिसे उपासना करनेसें वह सत्यप्रतिज्ञ देव हमपर शीघ्र प्रसन्न हों सो बतलाइये" ॥ २२ ॥ २३ ॥ कश्यपने कहा—हे देवी! जब प्रजा उत्पन्न करनेकी मेरी इच्छा हुई थी तब मैंने यही प्रश्न ब्रह्माजीसे किया था। ब्रह्माजीने जो हरिको सन्तुष्ट करनेवाला व्रत मुझे बतलाया था वही मैं इससमय तुमको बतलाता हूँ ॥२४॥ फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षके पहले बारह दिनोंमें पयोव्रत (केवल दूध आहार करनेका नियम) धारण करके भक्तिपूर्वक कमललोचन भगवान्का पूजन करे ॥ २५ ॥ यदि मिले तो चतुर्दशीयुक्त अमावास्याके दिन वराहकी खोदी हुई मृत्तिका शरीरसें लगाकर नदीके जलमें स्नान करे एवं धारामें खड़े होकर इस मन्त्रका उच्चारण करे–'हे देवी! आवासस्थानकी इच्छासे आदिवराहजी तुमको रसातलसे जलके ऊपर लाये हैं; तुमको नमस्कार है। मेरे सब पापोंको दूर करो'। व्रत करनेवालेको चाहिये कि वह नित्य नैमित्तिक क्रिया सम्पन्न करके एकाग्रचित्तसे प्रतिमामें, हवनकी वेदीमें, सूर्यमें, जलमें, अग्निमें अथवा गुरुमें देवदेव हरिका पूजन करे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ पूजाके समय निम्नलिखित नव मन्त्रोंसे भगवान्का आवाहन आदिक करे। वे नव मन्त्र ये हैं—(१) 'भगवन्! आप आराध्यदेव, महापुरुष और साक्षी हैं; आप सब प्राणियोंका आवासस्थान हैं एवं सबके अन्तःकरणमें प्रकाशमान हैं;–आपको नमस्कार है'। (२) 'आप अव्यक्त सूक्ष्म, चौवीसो तत्त्वोंके प्रधान पुरुष और सांख्ययोगके प्रचारक हैं; आपको प्रणाम है'। (३) 'आप यज्ञफलके दाता हैं। आप यज्ञरूप हैं; आपके दो मस्तक, तीन चरण, चार श्रृङ्ग एवं सात हाथ हैं। त्रयीविद्या आपका आत्मा है, आपको प्रणाम है'। (४) 'आप रुद्र और शिव (मङ्गलस्वरूप) हैं, शक्तिमान् हैं, सब विद्याओंके और भूतगणके अधिपति हैं, आपको प्रणाम है'। (५-६) 'आप सूत्ररूपी प्राण, जगत्के आत्मा एवं योगके करण हैं, योगैश्वर्य आपका शरीर है, आपको प्रणाम है। आप आदिदेव, सबके साक्षीस्वरूप, ऋषिवेषधारी नर-नारायण हरि हैं, आपको नमस्कार है'। (७) 'आप केशव हैं, आपके शरीरका वर्ण मरकतमणिके तुल्य श्याम है, आप लक्ष्मीका आश्रय हैं, आपका वस्त्र मनोहर पीतवर्ण है, आपको प्रणाम है'। (८) हे वरेण्य! वरदानियोंमें श्रेष्ठ! आप पूजनीय हैं।

पण्डितगण मङ्गललाभके लिये आपके चरणरेणुकी उपासना करते हैं' । (९) 'अहो! देवगण और लक्ष्मीदेवी उन्हीं चरणकमलोंकी सुवासके लोभसे आपको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टामें लगी रहती हैं। हे वासुदेव! आप हमपर प्रसन्न होइये' ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे साध्वी! इन नव मन्त्रोंसे आवाहनपूर्वक श्रद्धासहित पाद्य अर्घ्यआदिसे भगवान्‌का पूजन करे ॥ ३८ ॥ चन्दन-माल्यआदिसे पूजन करके विभुको दुग्धसे स्नान करावे। फिर द्वादशाक्षर मन्त्र पढ़तेहुए वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य आदिसे पूजा करे। सम्पत्ति हो तो दूध और चाँवलकी खीरका नैवेद्य लगावे और उसमें घी व मिठाई मिलाकर हरिको निवेदन करनेके उपरान्त द्वादशाक्षर मन्त्रसे अग्निमें उसीकी आहुति छोड़े। नैवेद्यका अन्न भगवद्भक्त जनको खिलावे या आप ही भोजन करे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पूजाके बाद आचमन कराकर पानका बीड़ा अर्पण करे, एक सौ आठ बार "द्वादशाक्षर" मन्त्रका जप करके भगवान्‌की स्तुति, प्रदक्षिणा और दण्डवत् प्रणाम करे ॥ ४२ ॥ अन्तमें निर्माल्यको शिरसे लगाकर विसर्जन करे एवं दोसे अधिक ब्राह्मणोंको पायस खिलावे और उनकी आज्ञा लेकर बन्धुबान्धवगणसहित शेष अंश आप भोजन करे। फिर ब्रह्मचारी रहकर वह रात्रि वितावे। सवेरा होनेपर यथोक्त विधिके अनुसार स्नान करके पवित्र और एकाग्र चित्तसे स्नान कराकर भगवान्‌का पूजन करे। जितने दिनतक व्रत पूर्ण न हो तबतक दूधसे हरिको स्नान कराकर और स्वयं दूधका ही आहार करतेहुए विष्णुकी पूजामें श्रद्धापूर्वक तत्पर रहकर इस महाव्रतका अनुष्ठान करे। हे देवी! पहले जैसे कह आये हैं उसी रीतिसे नियमानुसार अग्निमें हवन करे। और ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इसप्रकार भगवान्‌की आराधना, हवन और पूजा करके एवं ब्राह्मणभोजन कराकर बारह दिन अर्थात् प्रतिपदासे लेकर द्वादशी-तक यह पयोव्रत करना चाहिये। इन बारह दिनोंतक ब्रह्मचर्यसे रहे, शय्या त्यागकर पृथ्वीमें शयन करे और त्रिकाल स्नान करे। असत् वार्ता-लाप एवं उत्कृष्ट या अपकृष्ट, सब प्रकारके भोग इसमें वर्जित हैं। हिंसा त्याग कर वासुदेवपरायण होकर त्रयोदशीके दिन पञ्चामृतसे विधि जाननेवाले ब्राह्म-णोंके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे विष्णुदेवको स्नान करावे। वित्तके अनुसार पूजा करनी चाहिये; पूजामें वित्तशाठ्य करना निषिद्ध है। दूधमें चरु (खीर) पकाकर विष्णुको अर्पण करे, एवं एकाग्रमन होकर पूर्वोक्त मन्त्रोंसे परमपुरुषका पूजन करे। जिससे भगवान्‌की तुष्टि हो ऐसा गुणयुक्त भोग भेंट करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ज्ञानसम्पन्न आचार्यको और ऋत्विक् लोगोंको वस्त्र, धेनु बहुमूल्य अलंकार आदि देकर सन्तुष्ट करे। प्रिये! उनकी आराधना ही हरिकी आराधना है ॥ ५३ ॥ और जो ब्राह्मण वहाँ आये

हों उनको भी यथाशक्ति उत्तम भोजन करावे ॥ ५४ ॥ गुरु और ऋत्विक् जनोंको यथायोग्य दक्षिणा दे, शेष आयेहुए चाण्डालपर्यन्त सब लोगोंको अन्न आदि देकर सन्तुष्ट करे ॥ ५५ ॥ दीन, अन्ध, दरिद्र आदि सबको विष्णुकी प्रीतिके लिये भोजन कराकर आप भी बन्धुगण सहित भोजन करे ॥ ५६ ॥ व्रतकालमें बारह दिनतक नित्यप्रति नृत्य, गीत, वाद्य, स्तुति, स्वस्ति-वाचन एवं हरिकथा आदिसे भगवान्‌की आराधना करे ॥ ५७ ॥ इसीका नाम 'पयोव्रत' है; इसके द्वारा परमपुरुषकी परम आराधना होती है। मैंने पितामह ब्रह्मासे इसको सुना था, वही इससमय तुम्हारे आगे वर्णन किया ॥ ५८ ॥ तुम इस व्रतको उत्तम रूपसे करके भजनीय अव्यय विष्णुको एकाग्रचित्त होकर शुद्ध-भावसे भजो ॥ ५९ ॥ यह व्रत सब यज्ञों और व्रतोंके समान है, यही सब प्रकारकी तपस्याओंका सारांश है, यही महादान है; क्योंकि इसके करनेसे ईश्वर प्रसन्न होते हैं। हे भद्रे! जिससे हरिभगवान् प्रसन्न हों वही सफल और यथार्थ यम, नियम, तप, दान, व्रत और यज्ञ है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ॥
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥

अतएव हे सती! तुम मनको वश करके श्रद्धापूर्वक इस व्रतको करो। निश्चय ही इससे प्रसन्न होकर भगवान् हरि शीघ्र ही तुमको वाञ्छित वर देंगे ॥६२॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय

अदितिके गर्भसे वामनरूप भगवान्‌का जन्मग्रहण

श्रीशुक उवाच—इत्युक्ता साऽदिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥
अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! देवी अदितिने अपने स्वामी महर्षि-कश्यपके निकट ऐसा उपदेश पाकर आलस्य छोड़ बारह दिनतक पयोव्रत कर-नेका नियम ग्रहण किया ॥ १ ॥ देवी अदिति अपनी बुद्धिको सारथी बनाकर, उसके द्वारा इन्द्रियरूप दुष्ट अश्वोंको वशमें लाकर, एकाग्रमनसे भगवान्‌का ध्यान करनेलगीं, एवं सर्वव्यापक भगवान् वासुदेवमें एकाग्रबुद्धिसहित मन लगाकर यथाविधि नित्यप्रति पयोव्रत करनेमें प्रवृत्त हुई ॥ २ ॥ ३ ॥ हे राजन्! अदितिके इसप्रकार व्रत करनेसे प्रसन्न होकर पीताम्बरधारी चतुर्भुज हरि भग-वान्‌ने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, धारण कियेहुए मनोहर रूपसे उनको दर्शन

दिया ॥ ४ ॥ आँखोंके आगे भगवान्‌को प्रकट हुए देखकर देवी अदिति सम्भ्रमसहित सहसा उठ खड़ी हुई और प्रेमके कारण विह्वल होकर धरणीमें सादर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उठकर अञ्जलि बाँधकर स्तुति करनेकी इच्छासे खड़ी हुई, किन्तु स्तुति करनेकी शक्ति उनमें नहीं रही! उनके दोनो नयन आनन्दके आँसुओंसे भर गये, देहभरमें रोमाञ्च हो आया और नारायणके देखनेसे उत्पन्न महा आनन्दके कारण शरीर काँपनेलगा ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! नयनोंसे मानो पान कर लेंगी, देवी अदिति इसप्रकार थोड़ी देरतक हरि भगवान्‌को एकटक निहारती रहीं; उसके उपरान्त प्रेमपूर्ण गद्गद वाक्योंसे धीरे २ लक्ष्मीपति, जगत्पति, यज्ञपतिकी स्तुति करनेलगीं ॥ ७ ॥ अदितिने कहा—हे यज्ञेश्वर! हे यज्ञपुरुष! आपके चरणोंसे जगत्‌को पवित्र करनेवाला तीर्थ (गङ्गा) उत्पन्न हुआ है, और आपकी कीर्ति भी तीर्थतुल्य पतित पातकी पुरुषोंको पवित्र करनेवाली है। हे आद्य! आपका नाम सुननेसे ही मनुष्योंका मङ्गल होता है; हमारा मङ्गल कीजिये। हे भगवन्! आपका नाम दीनबन्धु है। शरणागतलोगोंके पापोंकी राशियोंका नाश करनेकेलिये ही आपका आविर्भाव होता है ॥ ८ ॥ आप महान् हैं, विश्व आपका स्वरूप है। विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार आपसे ही होता है। आप अपनी इच्छाके अनुसार मायाके गुणोंको ग्रहण करते हैं, किन्तु अपने रूपको नहीं छोड़ते। जो पूर्ण ज्ञान नित्य वृद्धिको प्राप्त हो रहा है उसके द्वारा आप मायारूप अन्धकारको अपनेसे दूर हटाये रखते हैं—आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे अनन्त! आपके सन्तुष्ट होनेपर ब्रह्माकी ऐसी सुदीर्घ परमायु, वाञ्छनीय सुन्दर शरीर, अतुल ऐश्वर्य, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल एवं योगकी अणिमा आदि सिद्धियाँ और केवल ब्रह्मज्ञान आदि सब कामनाएँ प्राप्त हो सकती हैं। तब शत्रुजय आदि साधारण कामनाओंका पूर्ण होना कौन बडी बात है? ॥ १० ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! अदितिके इसप्रकार स्तुति करनेपर कमलनयन अन्तर्यामी हरिने कहा कि—"हे देवजननी! मैं तुम्हारी चिरकालकी कामनाको भलीभाँति जानता हूँ। देवशत्रु असुरोंने बलपूर्वक सौभाग्यलक्ष्मी हरकर तुम्हारे सन्तानोंको स्वर्गधामसे निकाल दिया है ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी यही कामना है कि तुम्हारे पुत्रगण युद्धमें उन दुर्धर्ष दैत्योंको जीतकर फिर विजयलक्ष्मी लाभ करें, एवं तुम उनके साथ एकत्र वास करो ॥ १३ ॥ तुम्हारे पुत्रगण दैत्योंका वध करें और उन मरेहुए दैत्योंकी विधवा नारियाँ दुःखित होकर विलाप करें—यही तुम देखना चाहती हो ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रगण वृद्धिको प्राप्त हो दैत्योंके हाथसे विजयलक्ष्मी छीन कर स्वर्गधाममें विहार करें—यही तुम देखना चाहती हो ॥ १५ ॥ किन्तु देवी! मेरी समझमें इससमय वे दैत्यगण किसीप्रकार किसीके द्वारा परास्त नहीं हो सकते।

समर्थ ब्राह्मणगण उनके सहायक और रक्षक हैं, इसकारण पराक्रमके द्वारा जय और मङ्गल पानेकी आशा वृथा है ॥ १६ ॥ तथापि हे देवी ! तुम्हारे व्रत करनेसे मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ, अतएव तुम्हारे मङ्गलका कोई उपाय अवश्य निकालूँगा । मेरी पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती; श्रद्धाके अनुरूप उसका फल अवश्य होता है ॥ १७ ॥ तुमने पुत्रोंकी रक्षाके लिये पयोव्रतद्वारा यथाविधि मेरा पूजान किया है और गुणगानपूर्वक स्तुति की है । अतएव मैं कश्यपजीके तपोवीर्यसे अपने अंशद्वारा तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा ॥ १८ ॥ हे भद्रे ! तुम इससमय अपने निष्पाप पतिके पास जाकर उनको भजो । भजनकालमें यह भावना करना कि मानो मैं इसी रूपसे कश्यपजीमें अवस्थित हूँ ॥ १९ ॥ इस वृत्तान्तको पूछनेपर भी किसी दूसरेसे न कहना । देवतोंका रहस्य (एवं और सब भारी काम) जितना गुप्त रहता है उतना ही उत्तमरूपसे उनकी सिद्धि होती है" ॥ २० ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! भगवान् इतना कहकर वहीं-पर अदृश्य हो गये । अदितिदेवी अपने गर्भमें प्रभु हरिके परम दुर्लभ जन्मके लाभसे परम कृतार्थ होकर दृढ़ भक्तिसे पतिकी सेवा करने लगीं । जिनकी दृष्टि कभी व्यर्थ नहीं होती ऐसे उनके स्वामी कश्यपजीने समाधि-योगसे जाना कि उनमें हरि भगवान्के अंशने प्रवेश किया है । जैसे सर्वत्र समान वायु काष्ठसंवर्षणसे द्वारा वनदाहक अग्निको उत्पन्न करता है वैसे ही प्रजापति कश्यपने मनको स्थिर करके बहुकालतक कठोर तपसे जिस वीर्यका सञ्चय किया था उसको अदितिके गर्भमें स्थापित किया । सनातन भगवान् अदितिके गर्भमें अधिष्ठान करके अव-स्थित हैं–यह जानकर हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजी इसप्रकार गुप्त नामोंसे हरिकी स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे उरु-गाय ! हे भगवन् ! आपकी जय हो, आपको प्रणाम है। आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपको नमस्कार है । हे त्रियुग ! आपको नमस्कार है–नमस्कार है ॥ २५ ॥ पूर्व-जन्ममें इन्ही अदितिका नाम पृश्नि था, आप इनके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । वेद सब आपके गर्भमें अवस्थिति करते हैं। हे विधाता ! तीनो लोक आपका नाभिस्थल हैं, आप त्रिलोकीके ऊपर अवस्थित हैं। आपका नाम शिपि-विष्ट है, अर्थात् आप सब यज्ञपशुओंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हैं। आप विष्णु अर्थात् यज्ञपुरुष हैं; आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ आप इस त्रिभुवनके आदि, अन्त और मध्य हैं; पण्डितगण आपको अनन्तशक्तिशाली पुरुष कहते हैं । जैसे घोर गम्भीर तरङ्ग जलपतित तृण आदिको खींचता है वैसे ही कालस्वरूप आप इस विश्वको प्रलयकालमें अपनी ओर लीन करनेके लिये खींचते हैं ॥ २७ ॥

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ॥
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥२८॥

आपसे ही सम्पूर्ण चराचर प्रजा एवं प्रजापतियोंकी उत्पत्ति होती है। हे देव! जलमें डूबरहे व्यक्तिके लिये जैसे नौका आश्रय है वैसे ही स्वर्गसे भ्रष्ट देवगणका आप ही एकमात्र आश्रय हैं! ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय

बलिके यज्ञमें वामनरूप हरिका गमन

श्रीशुक उवाच–इत्थं विरिञ्चिस्तुतकर्मवीर्यः
प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! ब्रह्माजीने इसप्रकार भगवान्के कर्म और प्रभावोंका कीर्तन करतेहुए स्तुति की। तदनन्तर जन्म-मृत्युरहित, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी, पीतवासा, कमललोचन परम पुरुषने अदितिके गर्भसे जन्म लिया। भगवान्का वर्ण श्याम और स्वच्छ था, मुखकमल मकराकृतकुण्डलोंकी कान्तिसे शोभायमान था; वलय, अङ्गद, किरीट, काञ्चीदाम, सुन्दर नूपुर आदि अलङ्कार श्रीअङ्गोंमें शोभायमान थे। हृदयमें श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी अपूर्व शोभाथी। जिसपर मदमाते मधुकरोंके झुण्ड गुञ्जार कर रहे थे ऐसी वनमाला कण्ठमें विराजमान थी। भगवान्के तेजसे कश्यपजीके भवनका अन्धकार दूर हो गया ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान्के जन्मके समय सब दिशाएँ और सरोवर प्रसन्न (निर्मल) हो गये; सब चराचर जगत्को प्रसन्नता प्राप्त हुई। सब ऋतुओंने अपने अपने गुण धारण किये एवं स्वर्ग, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवगण, धेनुगण, द्विजगण और पर्वतगण–सभी परम प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ भगवान्ने भाद्रपदमासकी शुक्ल द्वादशीके दिन, श्रवणनक्षत्रके प्रथम चरण और अभिजित् मुहूर्तमें जन्मग्रहण किया। इस दिन चन्द्रमा श्रवणनक्षत्रमें अवस्थित थे। अश्विनीआदि नक्षत्र एवं बृहस्पति, शुक्रआदि ग्रहगण भी अनुकूल एवं शुभफलसूचक थे ॥ ५ ॥ पण्डितजन कहते हैं कि द्वादशीके दिन ठीक दोपहर(मध्यान्ह)में हरिका जन्म हुआ। वह द्वादशी विजय-द्वादशी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ६ ॥ वामनदेवका जन्म होते ही शङ्ख, दुन्दुभी, भेरी, मृदङ्ग, पणव, आनक और अन्यान्य तुरी आदि बाजोंका

तुमुल कोलाहल होनेलगा ॥ ७ ॥ प्रसन्नचित्त अप्सराएँ नृत्य करनेलगीं, गन्धर्वगण गानेलगे एवं मुनिगण स्तुति करनेलगे । मनुष्य, पितृगण, देव, अग्नि, सिद्ध, किम्पुरुष, विद्याधर, चारण, किन्नर, पिशाच, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, भुजङ्गम एवं देवानुचरगण गाते और नृत्य करते हुए आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ देवी अदिति, योगमायाद्वारा शरीर धारणकर हरिको अपने गर्भसे जन्म ग्रहण करते देख विस्मित और सन्तुष्ट हुईं । कश्यप प्रजापतिने भी विस्मित होकर जय-शब्दका उच्चारण किया ॥ ११ ॥ अव्यक्त ज्ञानस्वरूप भगवान्‌की चेष्टाएँ अत्यन्त अद्भुत हैं । उन्होने जिस प्रभा, आयुध और आभूषणोंके द्वारा स्पष्ट प्रकाशमान देहको धारण कर जन्म लिया था उसी देहसे देखते ही देखते नटोंकी भाँति वामनस्वरूप ब्राह्मणकुमार बन गये ॥ १२ ॥ महर्षिगण वह ब्राह्मणकुमारकी वामनमूर्ति देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए, एवं कश्यपजीके साथ उनके सब जातकर्म करने-लगे ॥ १३ ॥ जब वामन भगवान्‌का यज्ञोपवीत होनेलगा उस समय सूर्य भगवान्‌ने स्वयं सावित्री(गायत्री)का उपदेश किया; बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) और कश्यपजीने मेखला पहनाई ॥ १४ ॥ उन वामनस्वरूप जगत्पतिको वसुन्धरा पृथ्वीने कृष्णाजिन, वनस्पति सोमने दण्ड, माता (अदिति) ने कौपीन वस्त्र, स्वर्गने छत्र, ब्रह्माने कमण्डलु सप्तर्षिगणने कुश (पवित्री) एवं सरस्वतीने अक्ष(रुद्राक्ष)माला दी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसप्रकार यज्ञोपवीत पड़ जानेपर धनपति कुबेरने उनको भिक्षाके लिये पात्र दिया और साक्षात् भगवती अम्बिका देवीने भिक्षा दी ॥ १७ ॥ वह सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणकुमार वामनजी इस-प्रकार ब्राह्मणोचित सब सामग्री पाकर अपने ब्रह्मतेजसे उस ब्रह्मर्षिगणशोभित सभामें सबसे बढ़कर शोभायमान हुए अर्थात् उनके तेजके आगे सब सभा-सदोंका तेजःपुञ्ज फीकासा हो गया । तदनन्तर उन्होने पूर्वस्थापित यज्ञोपवीत-कर्मसम्बन्धी प्रज्वलित अग्निके चारो ओर संमार्जन तथा कुशकण्डिका कर्म एवं देवपूजन करके उसमें समिध-हवन किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसी समयमें वामन-जीने सुना कि भृगुवंशीय ब्राह्मणगण महाबली बलि राजासे अश्वमेधनाम महायज्ञ करा रहे हैं । यह सुनते ही वामनजी उस ओर चले । सम्पूर्ण जगत्‌का बल और शक्ति उन्हीमें स्थित है, अतएव चलतेसमय उनके हरएक पगपर पृथ्वीतल कंपायमान होने लगा ॥ २० ॥ राजन् ! नर्मदा नदीके उत्तर-तटपर भृगुकच्छ नाम क्षेत्रमें राजा बलिको उनके पुरोहितगण अश्वमेध नाम श्रेष्ठ यज्ञ करा रहे थे । उसी स्थानमें भगवान् जाकर पहुँचे । वामनजीको आए देखकर ब्राह्मणोंने जाना कि निकट ही मानो सूर्यदेवका उदय हुआ है ॥ २१ ॥ सब पुरोहित, यजमान बलि एवं सदस्यगण वामनजीके तेजसे प्रभाहीन हो गये, और विचारनेलगे कि क्या सूर्यनारायणजी यज्ञ देखनेकी इच्छासे आ रहे हैं? या अग्निदेव आ रहे हैं ?

अथवा साक्षात् ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार महर्षि आ रहे हैं? ॥ २२ ॥ शिष्यसहित भृगुगण, वामनजीके सम्बन्धमें इसप्रकार मन ही मन तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि इतनेमें दण्ड, छत्र एवं जलपूर्ण कमण्डलु हाथमें लिये भगवान् वामनजीने अश्वमेध यज्ञके मण्डपमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ मायावामनरूपधारी हरिकी कमरमें मुञ्जनिर्मित मेखला पड़ी हुई थी, कृष्णाजिनमय उत्तरीय यज्ञोपवीतके समान बाएँ कंधेपर पड़ा था, मस्तकमें जटाजूटकी अपूर्व शोभा थी, शरीर बहुत ही छोटा था। उनको देखते ही उनके तेजसे परास्त भृगुगणने अग्नि और शिष्य-गण तथा राजा बलिसहित सम्भ्रमके साथ उठकर उनकी अभ्यर्थना की ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ यजमान बलिने दर्शनीय मनोहर रूपके अनुरूप अनूप अङ्गोंसे शोभित वामनजीके दर्शनसे अत्यन्त आनन्दित होकर उनको आसन दिया एवं स्वागत-प्रश्नपूर्वक वन्दना करके पैर धोये और मुक्तसङ्ग मनोरमरूप भगवान्‌का पूजन किया ॥ २७ ॥ धर्मज्ञ बलिने कुलभरके पातक दूर करनेवाले भगवान्‌के चरणोदकको शिरपर धारण किया। हे राजन्! वह चरणोदक सामान्य नहीं है। चन्द्रशेखर देवदेव महादेव उसको परमभक्ति और श्रद्धासे शिरपर धारण किये हुए हैं! वह चरणोदक परम मङ्गलमय है ॥२८॥ राजा बलिने कहा—हे ब्रह्मन्! आपको प्रणाम है। आप यहाँतक सुखपूर्वक आये हैं न? आनेमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आज्ञा कीजिये-हम आपकी कौन कामना पूर्ण करें? हे प्रभो! जान पड़ता है आप सब ब्रह्मर्षियोंके। एकत्रित तप हैं, मूर्तिमान् होकर यहाँ आवे हैं। ॥ २९ ॥ आपके चरण यहाँ आनेसे आज हमारे सब पितर तृप्त हो गये, आज हमारा कुल पवित्र हुआ, आज यह यज्ञ भलीभाँति सम्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ हे विप्रनन्दन! आज हमारा अग्नियोंमें यथाविधि हवन करना सार्थक (सफल) हुआ। आपके चरणोदकसे हमारे सब पातक नष्ट हो गये एवं आपके इन छोटे छोटे चरणोंसे आज यह भूमि भी पवित्र हो गई! ॥ ३१ ॥

यद्यद्बटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये
गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् ॥
ग्रामान्समृद्धाँस्तुरगान्गजान्वा रथाँस्तथार्हत्तम संप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥

हे बटु ब्राह्मण! आपको जो अभिलाषा हो सो मुझसे लीजिये । मैं अनुमान-से कहता हूँ कि आप कुछ माँगने ही आये हैं। भूमि, सुवर्ण, उत्तम रहनेका स्थान, मिष्टान्न, गुण-रूपवती कन्या, विभवसम्पन्न ग्राम, अश्व, गज या रथ, इनमें आप जो लेना चाहते हों, कहिये। मैं आपको वही दूँगा । आप मुझसे मनचाही वस्तु लीजिये ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय

वामनजीका बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगना

श्रीशुक उवाच—इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तंससूनृतम् ॥
निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! बलिके ये धर्मसङ्गत सत्य वाक्य सुनकर भगवान् प्रसन्न हुए एवं उनकी प्रशंसा करते हुए यों कहनेलगे ॥ १ ॥ वामनजीने कहा—हे नरदेव ! पारलौकिक धर्मसें तुम्हारे कुलवृद्ध शान्त पितामह प्रह्लादजी और ये भार्गव ब्राह्मणगण निदर्शन (नमूना) हैं, अतएव तुमने जो ये सत्य वाक्य कहे सो धर्मयुक्त, यशस्कर एवं तुम्हारे कुलके उचित ही हैं ॥ २ ॥ इसकुलमें किसी ऐसे निःसत्त्व या कृपण पुरुषने नहीं जन्म लिया जिसने ब्राह्मणको दान देना स्वीकार न किया हो, अथवा पहले 'देंगे' कहकर फिर न दिया हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे कुलमें उत्पन्न पुरुष, दानके समय, अथवा युद्धके समय, किसी युद्ध अथवा धनआदिके प्रार्थीके प्रार्थना करनेपर, उसके देनेसे विमुख नहीं हुए । तुम्हारे वंशमें सब ही उदार हुए हैं । देखो तुम्हारे बाबा प्रह्लाद, जगत्में निर्मल कीर्तिकी कान्ति फैलाकर आकाशमण्डलमें चन्द्रमाके समान शोभायमान हैं ॥ ४ ॥ तुम्हारे वंशमें हिरण्याक्षने जन्म लिया था। जो अकेले गदा हाथमें लिये विश्वभरमें दिग्विजयके लिये घूम आया, पर कोई भी ऐसा वीर उसको न मिला जो युद्धमें सामना कर सकता ॥ ५ ॥ विष्णु जब पृथ्वीका उद्धार कररहे थे उस समय हिरण्याक्ष उनके पास गया । नारायणने बड़े ही कष्टसे उसको जीता, तथापि उसके महापराक्रमका स्मरण करतेहुए अपनेको विजयी मानकर प्रसन्न नहीं हुए ॥६॥ हिरण्याक्षका भाई बली हिरण्यकशिपु अपने सहोदर भाईके वधका वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त क्रोध करके भ्रातृहन्ता विष्णुको मारनेके लिये वैकुण्ठको चला ॥ ७ ॥ उस शूल हाथमें लिये दैत्यको कराल कालके समान आतेहुए देखकर महामायावी और समयके जाननेवाले विष्णुने विचारा कि "मैं जहाँ जहाँ जाऊँगा वहाँ वहाँ प्राणियोंकी मृत्युके समान यह भयानक असुर जायगा, सहजमें पीछा न छोड़ेगा; अतएव मैं इसके हृदयमें प्रवेश कर जाऊँ तो यह मुझे बाहर न देख पाकर अवश्य ही इस विचारको छोड़ देगा" ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा निश्चय करके विष्णुने दौड़कर आ रहे शत्रुके हृदयमें नासिकाके छिद्रसे सूक्ष्म देह धरकर प्रवेश किया । मारे भयके विष्णुका चित्त बहुत ही उद्विग्न हो रहा था, इसलिये यों छिपकर उन्होने प्राण बचाये ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुने जब विष्णुको न देख पाया तो उनके भवनके चारो ओर घूमकर घोर सिंहनाद किया । कुपित दैत्यराज विष्णुकी खोजमें पृथ्वी, स्वर्गलोक, दश दिशा,

आकाशमण्डल और सातो समुद्रोंमें घूमा, किन्तु कहीं भी, अपने ही हृदयमें छिपे नारायणको उस वीरने न देख पाया ॥ ११ ॥ तब दैत्यपतिने कहा कि "मैंने यह सब जगत् खोज डाला; अतएव जान पड़ता है कि मेरे भाईको मारनेवाला विष्णु निश्चय ही उस लोकको चला गया है, जहाँ जा कर फिर मनुष्यगण नहीं लौटते" ॥ १२ ॥ महाराज! यहाँ देहधारियोंकी शत्रुता मृत्युपर्यन्त ऐसी ही प्रबल रहती है; क्योंकि क्रोधकी उत्पत्ति अज्ञानसे और वृद्धि अहङ्कारसे ही होती है ॥ १३ ॥ प्रह्लादके पुत्र विरोचन, जो तुम्हारे पिता थे, उनके समान कोई ब्राम्हणोंका भक्त ही न होगा। उन्होने यह जानकर भी कि-ये मेरे वैरी देवगण ब्राह्मणवेष धारण करके आये हैं, उन छद्मवेषधारी वैरी देवतोंको, याचना करनेपर, अपनी परमायु दे डाली! इससे बढ़कर ब्राम्हणभक्ति और उदारता और क्या हो सकती है? ॥ १४ ॥ गृहस्थ ब्राह्मणगण और प्राचीन वीरगण एवं अन्यान्य यशस्वी व्यक्ति जिन सब धर्मोंका अनुष्ठान कर गये हैं उन्ही धर्मोंको तुम भी कर रहे हो ॥ १५ ॥ अतएव हे दैत्येन्द्र! हम तुमसे अपने पैरोंकी नापसे तीन पग पृथ्वी माँगते हैं। यद्यपि तुम वरदानियोंमें श्रेष्ठ हो और सब कुछ दे सकते हो पर हम तुमसे यह थोड़ी सी पृथ्वी ही चाहते हैं ॥ १६ ॥ तुम उदार दाता और जगत्के ईश्वर हो सही, किन्तु हमारी तुमसे और कुछ प्रार्थना नहीं है; क्योंकि विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जितना आवश्यक हो उतना ही दान ले अथवा याचना करे। ऐसा करनेसे वह दोषभागी नहीं होता ॥ १७ ॥ वामनजीके ये वचन सुनकर राजाबलिने कहा—"हे विप्रतनय! आपकी बातें तो वृद्धोंकी ऐसी हैं, किन्तु आप अभी बालक हैं, अतएव आपकी मति मूर्ख मनुष्योंकी ऐसी है। आपको अपने स्वार्थका भलीभाँति बोध नहीं है ॥ १८ ॥ मैं त्रिलोकीका अधीश्वर हूँ; चाहे तो एक द्वीप पृथ्वी दान कर सकता हूँ। किन्तु आप ऐसे ही अबोध हैं कि वाक्यालापसे मुझको सन्तुष्ट करके तीन पग (वह भी अपने पैरोंकी नापसे) सामान्य पृथ्वी माँगते हैं! ॥ १९ ॥ पुरुष मेरे पास पहुँचकर और मुझे प्रसन्नकर फिर दूसरेसे याचना नहीं करता, अर्थात् मैं उसको पूर्णकाम कर देता हूँ। अतएव हे बटु वामन! जिससे तुम्हारी जीविका सुखपूर्वक चल सके उतनी पृथ्वी मुझसे माँग लो" ॥ २० ॥ श्रीभगवान्ने कहा—राजन्! त्रिलोकीमें जितनी प्रियतम अभीष्ट वस्तुएँ हैं वे सब अजितेन्द्रिय मनुष्यको नहीं तृप्त करसकतीं ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति तीन पग पृथ्वीसे सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसकी अभिलाषा नवखण्डयुक्त एक द्वीपके लाभसे भी नहिं पूर्ण हो सकती; क्योंकि वह फिर सातो द्वीप पृथ्वी पानेकी कामना करेगा ॥ २२ ॥ हमने ऐसा भी सुना है कि सातो द्वीप पृथ्वीके पति वैन्य, गद आदि नरपतिगण सम्पूर्ण अर्थ-काम-भोग करके भी विषयभोगकी तृष्णाका पार

नहीं पा सके ॥ २३ ॥ सन्तुष्ट व्यक्ति यदृच्छा-प्राप्त वस्तुका ही भोग करके सुखसे रहता है, किन्तु अजितेन्द्रिय लोलुप व्यक्ति त्रिलोकीके वैभवको पाकर भी नहीं सुखी होता ॥ २४ ॥ पण्डितजन कहते हैं कि–अर्थकामनामें असन्तोष ही पुरुषके संसारबन्धनका कारण है, यदृच्छाप्राप्त वस्तुमें सन्तुष्ट रहनेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ २५ ॥ जो कुछ विना यत्नके प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट ब्राह्मणका ब्रह्मतेज बढ़ता है। असन्तोषी ब्राम्हणका तेज जलमें गिरे हुए अग्निके समान बुझ जाता है ॥ २६ ॥ हे वरदानियोंमें श्रेष्ठ! इसकारण हम तुमसे केवल तीन पग पृथ्वी हि माँगते हैं। इतनी पृथ्वी पानेसे ही हम अपनेको कृतकृत्य समझेंगे। प्रयोजनभरका धन ही सुखदायक होता है, अधिक धन होनेसे अनेक प्रकारके क्लेश उठाने पड़ते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं-वामनरूप हरिकी ये बातें सुनकर हँसतेहुए बलिने कहा "अच्छा जो आपकी इच्छा हो वही लीजिये"। महात्मा बलिने यों कहकर वामनजीको पृथ्वी देनेके लिये हाथमें जलका पात्र लिया ॥ २८ ॥ किन्तु सर्वज्ञ दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी विष्णु भगवान्‌के उद्देश्यको जानकर, विष्णुको भूमिदान करनेपर उद्यत अपने शिष्य बलिसे यों कहनेलगे ॥ २९ ॥ हे बलि! इनको साधारण ब्राह्मणकुमार न समझो; यह साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं। देवगणका कार्य सिद्ध करनेके लिये कश्यपके वीर्यद्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३० ॥ तुम अपने ऊपर आनेवाली महाविपत्तिको नहीं जानते; इसीसे तुमने इनको पृथ्वी देना स्वीकार कर लिया है। मैं भलीभाँति समझता हूँ कि दैत्यगणके लिये महाघोर विपत्ति उपस्थित हुई है! मैं इस तुम्हारे कर्मको अच्छा नहीं समझता ॥ ३१ ॥ तुमने यह क्या करडाला! यह मायावामनरूपी विष्णु तुम्हारा स्थान, ऐश्वर्य, श्री, तेज यश और विद्या आदि सर्वस्व छीनकर इन्द्रको दे देंगे ॥ ३२ ॥ सम्पूर्ण विश्व इनका विराट्-शरीर है, यह तीन पगमें तीनो लोक नाप लेंगे। अपना सर्वस्व तो विष्णुको दे दोगे, तुम्हारे पास निर्वाहके लिये क्या रह जायगा? यह तुम्हारी मूढ़ता नहीं तो क्या है? ॥ ३३ ॥ इन वामनरूप विष्णुके एक चरणमें पृथ्वी और दूसरेमें स्वर्ग तथा विशाल विराट् शरीरमें आकाश आ जायगा। अब तुम ही बताओ तीसरा चरण कहाँ जायगा? ॥ ३४ ॥ तुमने 'देंगे' कहकर दान करना अङ्गीकार कर लिया है, किन्तु उस समय तुम्हारे पास देनेके लिये और कुछ भी नहीं रह जायगा। सुतरां स्वीकृत वस्तुको देनेमें असमर्थ होनेके कारण तुम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकोगे, प्रतिज्ञाभङ्ग होनेपर निश्चय ही तुम्हे नरकमें जाना होगा ॥ ३५ ॥ जिस पुरुषके निर्वाहके लिये कोई वृत्ति है वही दान, यज्ञ, तप आदि सम्पूर्ण सत्कर्म कर सकता है। जिस दानसे धनोपार्जनके द्वार और वृत्तिका नाश हो जाय, पण्डितजन उस दानकी प्रशंसा नहीं करते ॥ ३६ ॥ पुरुषको चाहिये कि वह अपनी सम्पत्तिके

पांच विभाग करके उन्हे धर्म, यश, अर्थ, काम और स्वजनके लिये खर्च करे। ऐसा करनेसे इस लोक और परलोक, दोनो लोकोंमें सुख मिलताहै ॥ ३७ ॥ हे असुरश्रेष्ठ! इस सम्बन्धमें बहृचश्रुतिमें जो कहा है सो हमसे सुनो। 'हाँ देंगे' इस स्वीकार-वाक्यको श्रुतिमें 'सत्य' कहा है। उसके उपरान्त 'नहीं,-नहीं देंगे' इस अस्वीकार-वाक्यको 'मिथ्या' कहा है ॥ ३८ ॥ देहरूप वृक्षके फूल फल 'सत्य' है; क्योंकि यह श्रुतिका वाक्य है। तब देखो वृक्षके न रहनेसे फूल फल अवश्य ही नष्ट हो जायँगे; इसलिये काया रखकर धर्म करना चाहिये। देखो, विना मिथ्याके देहकी रक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि मिथ्या ही देहरूप वृक्षकी जड़ है। जिसप्रकार मूलके उखड़ जानेसे वृक्ष गिर पड़ता और सूख जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति मिथ्याको एकदम तज देता है उसका शरीर शीघ्र ही शीर्ण जीर्ण होकर निश्चय नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ("सब समय सत्य बोलनेसे निर्वाह नहीं हो सकता"—यह स्पष्ट करनेके लिये सत्यके दोष और मिथ्याके गुण कहते हैं)—जिस वस्तुके लिये 'ओं' (हाँ देंगे) यह कहा जाय उसमें फिर अधिकार नहीं रहता, अतएव 'हाँ देंगे' यह शब्द अपूर्ण अर्थात् पूर्ण स्वीकारसूचक नहीं है और दूरार्थवाची अर्थात् दाताके अर्थको लेकर दूर गमन करनेवाला है (क्योंकि समस्त सम्पत्ति दान करनेपर भी याचककी आशा नहीं पूर्ण की जा सकती) ॥४१॥ भिक्षुक-जो कुछ प्रार्थना करे वह सब देना जो कोई स्वीकार करता है वह स्वयं नहीं भोग करने पाता; अतएव 'नहीं देंगे' यही वाक्य पूर्ण है[2], क्योंकि वह अन्यके विषयको अपनी ओर आकृष्ट करता है। किन्तु 'नहीं है—नहीं देंगे' यह मिथ्या वाक्य सर्वदा न कहना चाहिये; क्योंकि जो सर्वदा यही बात कहते हैं वे अकीर्तिभागी एवं जीवन रहते भी मुर्दोंकेतुल्य होते हैं ॥ ४२ ॥

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ॥
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४३ ॥

स्त्रीको प्रोत्साहनद्वारा वश करतेसमय हास परिहासमें, विवाहके समय वरके गुणकीर्तन करनेमें, अपनी जीविकाकी वृत्ति नष्ट होती हो तो उसकी रक्षाके लिये, प्राणोंपर सङ्कट आ पड़ा हो उस समय प्राण बचानेके लिये, गऊ ब्राह्मणका हित होता हो तो उसमें एवं किसीके सत्य कहनेसे प्राण जाते हों तो उसकी

---

१ श्रुतिमें यही कहा है, यथा—"परागवा एतद्रिक्तमक्षरं यदेतदोमिति"।

२ जैसा श्रुतिमें कहा है—"अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यन्नेति स यत् पूर्वं नेति ब्रूयाद्यापि चास्य का कीर्तिर्जायेत सा एवं तत्रैव हन्यादिति"।

रक्षाके लिये झूठ बोलना पाप नहीं है[1]। इन अवसरोंके सिवा झूठ बोलना दोषावह है। इसकारण हे बलि! अपनी जीविकाकी वृत्ति बचानेके लिये तुम स्वीकृत दानमें 'नहीं' करसकते हो— अभी कुशल है! ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्ध एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय

विष्णुका विश्वमय विराट् रूप

श्रीशुक उवाच—बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥
तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! गृहपति बलिने कुलगुरु शुक्राचार्यके वाक्य सुनकर क्षणभर चुप रहकर विचार करनेके उपरान्त गुरुवरसे यों कहा ॥ १ ॥ आपका कहना सत्य है कि जिससे कभी अर्थ, काम, यश और वृत्तिमें बाधा न हो वही गृहस्थोंका यथार्थ धर्म है ॥ २ ॥ किन्तु मैं प्रह्लादजीका पौत्र हूँ; 'दूँगा' कहकर दानकरना अङ्गीकार कर चुका हूँ। इससमय धनके लोभसे सामान्य वञ्चक मनुष्यकी भाँति कैसे ब्राह्मणसे कहूँ कि 'नहीं दूँगा'? ॥ ३ ॥ मिथ्या बोलनेसे बढ़कर और अधर्म नहीं है। पृथ्वी कहती है कि मैं सबको अपने ऊपर धारण कर सकती हूँ, पर मिथ्यावादीका भार मुझको असह्य है! ॥ ४ ॥ गुरुवर! ब्राह्मणसे वञ्चना करनेसे मैं जितना डरता हूँ उतना मुझे नरक, दरिद्रता, स्थानच्युति अथवा मृत्युसे भी भय नहीं है ॥ ५ ॥ पुरुष जब परलोकको यात्रा करता है तब इस लोककी पृथ्वी आदिक सब वस्तुएँ अवश्य ही उसे छोड़कर यहीं रह-जाती हैं। उनसे यदि ब्राह्मणको प्रसन्न किया जा सके तो इससे बढ़कर उनकी सफलता और क्या हो सकती है? इसके अतिरिक्त वह दान ही किस कामका, जिससे ब्राह्मणकी तुष्टि न हो? इसलिये जो वस्तु जितनी ब्राह्मण माँगे वह वस्तु उतनी ही देना योग्य है (अर्थात् ब्राह्मण जितना माँगे उससे कम देनेमें ब्राह्मणको सन्तोष न हुआ तो वह दानही व्यर्थ है)॥ ६ ॥ दधीचि और शिबि आदि साधुगण अपने दुस्त्यज प्राण देकर भी प्राणियोंका हितसाधन कर गये हैं, तब इस साधारण पृथ्वीके त्याग करनेमें काहेकी द्विविधा है? ॥ ७ ॥ युद्धमें जो कभी

---

१ यही याज्ञवल्क्यजीने अपनी स्मृतिमें कहा है; यथा—"वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् ॥" और श्रुति भी इस विषयमें यों कहती है कि —"तस्मात्काल एव दद्यात्काले न दद्यात्तत्सत्यानृते मिथुनीकरोति।"

विमुख नहींहुए ऐसे बड़े बड़े जो दैत्यपति इस पृथ्वीका भोग कर गये हैं उनके भोग आदिको कराल कालने नष्ट कर दिया, किन्तु वे लोग पृथ्वीमें जो यश छोड़ गये हैं वह अब भी अक्षय-रूपसे बना हुआ है ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षिवर! प्रतियोद्धाकी प्रार्थनाके अनुसार युद्धमें देहत्याग करनेवाले वीर पुरुष सुलभ हैं-बहुत पाये जाते हैं; किन्तु सत्पात्रके उपस्थित होनेपर उसको श्रद्धापूर्वक उसका माँगा-हुआ धन देनेवाले दानवीर पुरुष बहुत ही दुर्लभ हैं ॥ ९ ॥ सामान्य याचककी अभिलाषा पूर्ण करके दरिद्र हो जाना जब दयाशील दाता मनुष्यके लिये गौरव बढ़ानेवाली बात है तब इन सरीखे ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणको दान करके दरिद्र हो जानेके लिये क्या कहना है? इसलिये यह ब्राह्मणकुमार जो माँगते हैं, मैं वही इनको दूँगा ॥ १० ॥ आप लोग वेदविहित विधिके अनुसार यज्ञ आदिसे जिनका पूजन करते हैं, यदि यह वही वरदानी विष्णु हैं और शत्रु ही हैं, तथापि मैं इनको इनकी माँगीहुई पृथ्वी अवश्य दूँगा ॥ ११ ॥ मैं निर्दोष हूँ; चाहे यह अधर्मपूर्वक मुझको बाँधें तो भी मैं भीरु ब्राह्मणरूपधारी और शत्रु इन विष्णुकी हिंसा न करूँगा ॥ १२ ॥ यह उत्तमश्लोक विष्णु यदि अपने यशको कलंकित करना न चाहेंगे तो युद्धमें मुझको मारकर यह पृथ्वी लेंगे, अथवा मेरे द्वारा निहत होकर युद्धभूमिमें शयन करेंगे ॥ १३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! शिष्यने इसप्रकार अश्रद्धा करके आज्ञाका पालन नहीं किया, तब गुरु शुक्राचार्यने दैवके द्वारा प्रेरित होकर सत्यप्रतिज्ञ असुरश्रेष्ठ बलिको शाप देतेहुए इसप्रकार कहा कि "तू अज्ञ है, किन्तु अपनेको निश्चयके साथ पण्डित मानकर अभिमान करता है। तूने उपेक्षा करके हमारी आज्ञाका उल्लङ्घन और हमारा निरादर किया, अतएव तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा" ॥ १४ ॥ १५ ॥ निजगुरुके यों शाप देनेपर भी महाउदार राजा बलि सत्यसे नहीं डिगे, एवं पूजन करके जल हाथमें लेकर वामनजीको पृथ्वीदान कर दिया ॥ १६ ॥ उस समय मुक्ताभरण और पुष्पमालासे विभूषित बलिकी भार्या रानी विन्ध्यावलिने वामनजीके चरण धोनेके लिये जलपूर्ण सुवर्णका कलश लाकर बलिको दिया ॥ १७ ॥ यजमान बलिने हर्षपूर्वक स्वयं वामनजीके सुन्दर चरणारविन्द धोये एवं उस विश्वपावन जलको शिरपर धारण किया ॥ १८ ॥ उससमय स्वर्गमें देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारणगण—सभी आनन्दित होकर बलिके इस महान् उदार कार्यकी प्रशंसा करतेहुए फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १९ ॥ स्वर्गमें वारंवार सहस्र सहस्र दुंदुभी बजनेलगीं एवं-"इस उदार बलिने बहुत ही दुष्कर कर्म किया, जो जान बूझकर अपने शत्रु विष्णुको त्रिभुवनका दान करदिया" यह कहतेहुए गन्धर्व, किन्नर और किम्पुरुषगण सुस्वरसे बलिकी कीर्तनीय कीर्तिका कीर्तन करनेलगे ॥ २० ॥ देखते ही देखते हरिका वह वामनरूप

आश्चर्य बढ़ानेवाले ढंगसे बढ़नेलगा। भगवान्‌का विराट् शरीर त्रिगुणात्मक है; अतएव पृथ्वी, आकाश, दिशा, सात स्वर्ग, अतल आदि सातो विवर, सब समुद्र, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषिगण सभी उस विराट् शरीरके अन्तर्गत देख पड़नेलगे ॥ २१ ॥ राजा बलिने तथा उनके ऋत्विक् आचार्य और सदस्यगणने हरिके महाविभूतिशाली उस त्रिगुणात्मक शरीरमें पञ्चतत्त्व, इन्द्रियगण, इन्द्रियोंके विषय, चित्त और जीवसमूहसे युक्त इस गुणमय विश्वको देख पाया ॥ २२ ॥ इन्द्रसेन अर्थात् राजा बलिने उन परम पुरुष विश्वमूर्ति हरिके पदतलमें रसातल, दोनो चरणोंमें पृथ्वी, दोनो जंघाओंमें पर्वतसमूह, दोनो जानुओंमें पक्षिगण, दोनो ऊरुओंमें मरुद्गण, वसनमें सन्ध्याकाल, गुह्यमें प्रजापतिगण, जघनस्थलमें असुरगणसहित आप (राजा बलि), नाभिमें आकाशमण्डल, कुक्षिमें सातो सागर, वक्षःस्थलमें नक्षत्रनिचय, हृदयमें धर्म, स्तनद्वयमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, उरःस्थलमें पद्म, हाथमें लिये लक्ष्मीदेवी, कण्ठमें सामवेद और शब्द, चारो भुजाओंमें इन्द्रादिक सब देवता, दोनो कानोंमें दश दिशा, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघमण्डली, नासिकामें वायु, नेत्रोंमें सूर्य, मुखमें अग्नि, वाक्यमें सब वेद, रसनामें वरुण, दोनो भ्रुकुटियोंके मध्यमें निषेध और विधि, पलकोंमें दिन और रात्रि, ललाटमें क्रोध, अधरमें लोभ, स्पर्शमें काम, शुक्रमें जल, पृष्ठमें अधर्म, पादन्यासमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसीमें माया, रोमसमूहमें सब औषधियाँ, नाड़ियोंमें सब नदी, नखोंमें शिलासमूह, बुद्धिमें ब्रह्मा, इन्द्रियोंमें देवगण और ऋषिगण एवं अंगोंमें स्थावर-जङ्गम प्राणीमात्रको देखा॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥ हे महाराज! सर्वव्यापक विश्वरूप वामनजीके शरीरमें इसप्रकार सम्पूर्ण त्रिभुवन देखकर असुरगण बहुत ही विस्मित हुए। उस समय असह्यतेजयुक्त सुदर्शन चक्र, मेघकी भाँति गम्भीरशब्दपूर्ण शृङ्गनिर्मित (शार्ङ्ग) धनुष, वेगयुक्त कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शतचन्द्र-शोभित असि, अक्षय बाणपूर्ण दोनो तूणीर एवं सुनन्द आदि श्रेष्ठ पार्षदगण मूर्तिमान् होकर हरिकी सेवामें उपस्थित हुए और स्तुति करनेलगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय दीप्तिमान् किरीट मुकुट, अङ्गद, मकराकृत कुण्डल, रत्नश्रेष्ठ श्रीवत्स, मेखला, पीतवस्त्र एवं भ्रमरसेवित वनमाला धारण कियेहुए अतुलविक्रम हरिकी अपूर्व शोभा हुई ॥ ३२ ॥ भगवान्‌ने एक चरणसे बलिकी पृथ्वी नाप ली, आकाशमण्डल शरीरमें और दिशाएँ बाहुओंमें आ गईं ॥ ३३ ॥

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३४ ॥

उसके उपरान्त दूसरा चरण फैलानेपर उसमें स्वर्ग आदि ऊपरके लोक आ गये (वे भी पूर्ण नहीं हुए! क्योंकि भगवान्का दूसरा पैर ऊपरके सातो लोक नाँघता हुआ सत्यलोकतक पहुँच गया और बलिका राज्य स्वर्गतक ही था), किन्तु तीसरे चरणके लिये कुछ भी न बचा। दूसरा ही चरण क्रमशः महर्लोक, जनलोक और तपोलोकको नाँघता हुआ सत्यलोककी सीमातक पहुँच गया ॥३४॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय

विष्णुकेद्वारा बलिका बन्धन

श्रीशुक उवाच—सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि-
र्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः
सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! भगवान् वामनजीके चरणको सत्यलोकमें उपस्थित होते देखकर मरीचि आदि ऋषिश्रेष्ठ और बालब्रह्मचारी सनन्दन आदि योगीजनोंसहित भगवान् ब्रह्मा हरिचरणके निकट आये। हरि-पद-नखरूप चन्द्रकी आभासे ब्रह्मलोक और मुनिगणसहित स्वयं ब्रह्माजीकी कान्ति फीकी पड़गई ॥ १ ॥ वेद, उपवेद, नियम, यम, इतिहास, तर्क, वेदाङ्ग (ब्राह्मण, निरुक्त, शिक्षा आदि), पुराण एवं सम्पूर्ण संहिता आदिने मूर्तिमान् होकर वहाँ आकर वामनजीके पवित्र चरणको प्रणाम किया। योगरूप वायुके संयोगसे उज्वल ज्ञानरूप अग्निके द्वारा जिनके कर्मफल भस्म हो गये हैं और विष्णुके स्मरणके प्रभावसे जो उस कर्मसंसर्गविहीन ब्रह्मलोकको गये हैं उन्होने भी निकट आकर वामनजीके चरणको प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्माजीने, जिनके नाभिकमलसे स्वयं आप उत्पन्न हुए हैं उन भगवान्के ऊपरके उन्नत चरणको जलसे धोकर उसका पूजन किया और फिर भक्तिपूर्वक हरिकी स्तुति करने-लगे— ॥२॥३॥४॥वह विधाताके कमण्डलुका जल, जिससे ब्रह्माजीने वामनजीके चरणको स्नान कराया—हरिचरणके स्पर्शसे परम पवित्र होकर स्वर्गकी नदी आकाश-गङ्गा हो गया। वह गङ्गाजल अबतक हरिकी पवित्र कीर्तिके समान आकाशसे पृथ्वी-में गिरकर त्रिभुवनको पवित्र कर रहा है ॥ ५ ॥ विष्णु भगवान्ने क्रमशः विशाल शरीरको छोटा करके वही पहलेकीभाँति वामनरूप धारण कर लिया। तब ब्रह्मा आदि लोकपालगणने अनुचरोंसहित आ कर, अपने स्वामी वामनजीकी,

शीतल जल, सुन्दर माला, गन्धित चन्दन और कर्पूरादि अनुलेपन, सुगन्धपूर्ण धूप, दीप, खील, अक्षत, फल, अङ्कुर आदिसे पूजा और स्तुति की एवं भगवान्‌के वीर्य और माहात्म्यका उल्लेख करके जयजयकार करनेलगे । देवगण अनेक प्रकारके बाजे बजाकर नृत्य और गान करनेलगे; स्वर्गमें शङ्ख और दुन्दुभियोंका शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऋक्षराज जाम्बवान् भेरी (ढोल) बजातेहुए मनके समान वेगसे पृथ्वीमण्डलभरमें वामनजीके विजयमहोत्सवकी घोषणा कर आये ॥ ८ ॥ यज्ञकी दीक्षा लियेहुए अपने स्वामी बलिकी सम्पूर्ण पृथ्वी (सर्वस्व) वामनजीके द्वारा तीन पग भूमि माँगनेके छलसे हरी गई देखकर असुरगण महा क्रोधसे कहनेलगे—"यह ब्राह्मणबालक नहीं है; यह तो महामायावी विष्णु है । देवगणका काम बनानेके लिये ब्राह्मणके वेषमें छिपकर आया है । इस वैरी विष्णुने बटु ब्राह्मणके रूपसे भिक्षुक बनकर हमारे स्वामीका सर्वस्व हर लिया । हमारे प्रभु सदा सत्य ही बोलते हैं, कभी मिथ्या बोलनेका विचार भी नहीं करते । विशेषकरके इससमय यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेके कारण इन्होने दण्ड त्याग कर दिया है । इसके सिवा यह ब्राह्मणोंके भक्त और दयाशील हैं । अतएव इनकी आज्ञा विना पाये भी इस वामनरूपी शत्रुको मारना हमारा धर्म है; इससे स्वामीकी यथेष्ट सेवा होगी" । यह कहकर बलिके सेवक असुरोने वामनजीको मारनेके लिये शस्त्र उठाये ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ जब बलिकी इच्छा न होनेपर भी वे महाबली दैत्य, कुपित होकर, शूल पट्टिश आदि शस्त्र लियेहुए मारनेके लिये भगवान् वामनकी ओर बढ़े तब उन आ रहे दैत्यसेनापतियोंको दस दस हजार हाथीके बलवाले नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, पक्षिराज गरुड़, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त और सात्त्वत आदि हरिके प्रधान पार्षदोंने रोका और हँसतेहुए शस्त्र ले लेकर दैत्यसेनाका संहार करनेलगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ भगवान्‌के पार्षदोंद्वारा अपने कुपित अनुचरोंका विनाश होते देखकर महात्मा बलिने अपने गुरु शुक्राचार्यके दियेहुए शापको स्मरणकर उन्हे युद्ध करनेसे रोका ॥ १८ ॥ बलिने कहा—हे विप्रचित्ति, राहु और नेमि आदिक वीर दैत्यो! मेरा कथन सुनो। इससमय न लड़ो, युद्धसे निवृत्त हो जाओ । यह समय हमारे अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ यह साक्षात् ईश्वरका स्वरूप काल सब प्राणियोंको सुखी और दुःखी बनानेमें समर्थ है; इसको पौरुषके द्वारा टालना असंभव है ॥ २० ॥ उसी कालके अनुकूल होनेसे पहले हमारा उदय हुआ था और देवतोंकी अवनति हुई थी ॥ २१ ॥ बल (सेना), उत्तम मन्त्री, बुद्धि, दुर्ग, उत्तम सलाह, औषध अथवा साम आदि राजनैतिक उपायोंसे, किसी प्रकार, कोई भी 'काल'को नहीं जीत (टाल) सकता ॥ २२ ॥ पहले तुमने कईबार इन हरिके अनुचरोंको मार भगाया

है, पर इससमय दैवके अनुकूल होनेसे वे ही ये हम लोगोंको युद्धमें हराकर जयनाद कर रहे हैं ॥ २३ ॥ यदि हमपर दैव प्रसन्न होगा तो फिर हम लोग इनको जीत लेंगे, इसलिये तुम लोग तबतक अपने अनुकूल समयके आनेकी प्रतीक्षा करो ॥ २४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्!** अपने स्वामी बलिके वाक्य सुनकर विष्णुपार्षदोंके द्वारा ताड़ित दैत्यदलपतिगण रसातलको चले गये ॥ २५ ॥ तदनन्तर पक्षिराज गरुड़ने हरि भगवान्के अभिप्रायको जान-कर यज्ञीय सोमलतापानके दिन वरुणके पाशोंसे महात्मा बलिको बाँध लिया ॥ २६ ॥ विष्णुजीकी इच्छाके अनुसार गरुड़द्वारा बलिके बाँधे जानेपर आकाश, पृथ्वी और दश दिशाओंमें महा हाहाकार होनेलगा ॥ २७ ॥ श्रीसे भ्रष्ट होने-पर भी प्रतिज्ञामें स्थिर एवं वरुणके पाशोंमें बँधेहुए महायशस्वी महात्मा बलिसे भगवान् वामनने कहा–हे असुरवर! तुमने मुझको तीन पग पृथ्वीका दान दिया था; मैंने दो ही पगमें तुम्हारी पृथ्वी व स्वर्ग नाप लिया–अब तीसरे चरणके लिये स्थान बतलाओ ॥ २८ ॥ २९ ॥ यह सूर्य जहाँतक तपते हैं, जहाँतक नक्षत्रगणसहित चन्द्रमा अपनी प्रभा फैलाते हैं एवं जितनी दूरतक मेघ जलकी वर्षा करते हैं, वहाँतक तुम्हारी यह पृथ्वी है ॥ ३० ॥ तुम्हारे आगे ही मैंने एक पगसे सब भूलोक, शरीरसे आकाश और सब दिशाएँ एवं दूसरे पगसे तुम्हारा स्वर्गलोक नाप लिया ॥ ३१ ॥ इसप्रकार मैंने तुम्हारा सर्वस्व हर लिया तथापि, तुम अपनी दी हुई तीन पग पृथ्वी न पूरी कर सके। अतएव तुम्हारा नरकमें वास होना उचित है। तुम्हारे गुरु शुक्राचार्य भी तुम्हारे नरकनिवासका अनुमोदन कर चुके हैं ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मणके निकट (कुछ देनेकी) प्रतिज्ञा करके फिर उसको पूर्ण नहीं कर सकता, उसकी वासना (इच्छा) विफल हो जाती है। स्वर्ग तो उससे दूर ही रहता है। अतएव उसका अधःपतन होता है ॥ ३३ ॥

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ॥
तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४ ॥

तुमने आपनेको धनी मानकर "देता हूँ" कहकर मुझसे छल किया, इस प्रतारणा एवं मिथ्या बोलनेका फल यही है कि तुम कुछ दिन नरक-भोग करो ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय

हरिका बलिपर प्रसन्न होकर 'उनका द्वारपाल होना' स्वीकार करना

श्रीशुक उवाच—एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ॥
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! भगवान्ने इसप्रकार, निग्रह करके बलिको सत्यसे डिगाना चाहा (अर्थात् कठिन परीक्षा ली), किन्तु दैत्यपतिका चित्त किसीप्रकार विचलित नहीं हुआ ॥ १ ॥ बलिने निर्भय भावसे यों कहा कि हे हरि! हे पुण्यश्लोक! हे देवश्रेष्ठ! मैंने जो कहा है उसे आप मिथ्या समझते हैं। किन्तु मैं अपने वचनको झूठा न होने दूँगा, सत्य कर दिखाऊँगा। मेरा कथन वञ्चनामय नहीं है। आप अपना तीसरा चरण मेरे शिरपर स्थापित कीजिये ॥ २॥ मैं अपनी अकीर्तिसे बहुत डरता हूँ। मुझको नरकसे, पाशके बन्धनसे, दुःखसे, धनकष्टसे अथवा आपके कियेहुए इस निग्रहसे उतना भय नहीं है ॥३॥ योग्यतम व्यक्ति जो दण्ड देते हैं वह मेरी समझमें मङ्गलकारी होनेके कारण परम अभीष्ट है; क्योंकि (अन्धस्नेहके कारण) माता, पिता, भाई अथवा और सुहृद्गण वैसे हित-कारी दण्डका विधान नहीं कर सकते। आप देखनेमें असुरोंके शत्रु हैं, किन्तु यथार्थमें (हम लोगोंके) परम हितकारी गुरु हैं। हम लोग राज्यलक्ष्मी और प्रभुताके मदसे अन्ध हो रहे थे, आपने राज्यलक्ष्मी व प्रभुतासे भ्रष्ट करके हमारे मदको दूर कर दिया; जिससे फिर हमारे ज्ञानरूप नेत्र उघर गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ योगीलोग जिस सिद्धिको प्राप्त होते हैं उसी सिद्धिको अनेकानेक असुरोंने आपसे घोर शत्रुता करके पाया है ॥ ६ ॥ इससमय उन्ही बड़े बड़े कार्योंको सिद्ध करने-वाले परमगुरु आपने वरुणपाशमें बाँधकर मेरा निग्रह किया है ॥ ७ ॥ किन्तु हे भगवन्! हे प्रभो! यह आपका दिया हुआ दण्ड, निग्रह (दण्ड) नहीं, परम अनुग्रह है। मैं अकिञ्चन किसीप्रकार आपके इस असाधारण अनु-ग्रहका पात्र नहीं हूँ। जान पड़ता है आपने अपने परम भक्त एवं प्रीतिपात्र प्रह्लादका पौत्र जानकर ही मुझपर यह अनुग्रह किया है। मेरे उन पितामहकी प्रशंसा चारो ओर सर्वत्र प्रकट है। उनका पिता (हिरण्यकशिपु) आपका घोर शत्रु था, यद्यपि पिताने आपसे शत्रुभाव रखनेके लिये वारंवार विवश किया, तथापि महात्मा प्रह्लादजीने आपका ही आश्रय लिया। उनका यह दृढ़ विचार था कि— "देहसे क्या प्रयोजन है? क्यों कि आयु शेष होनेपर देह अवश्य ही साथ छोड़ देगा। स्वजनोंको लेकर ही क्या प्रयोजन है? वे नाममात्रके स्वजन हैं—वास्तवमें तो दस्यु (ठग) हैं, क्यों कि अनेक मिससे धनका अपहरण करते रहते हैं। स्त्रीसे ही क्या प्रयोजन निकल सकता है? क्यों कि वही तो अनर्थमय संसारका

मूलकारण है। गृहसे ही क्या लाभ है? जिसमें वृथा आयुका व्यय होता है"। मेरे पितामहने ऐसा स्थिर निश्चय करके आपके चरणोंकी शरण ली थी। हे सत्तम! यद्यपि आप उनके वैरी और जातिका संहार करनेवाले थे, तथापि उन अगाधबोध दानवकुलतिलकने बन्धनरूप स्वजनोंसे भीत होकर आपके ही अकुतोभय चरणोंका आश्रय लिया। प्रभो! आपके इन चरणोंके आश्रित होनेसे फिर कोई पतित वा भ्रष्ट नहीं होता। आप यद्यपि मेरे भी शत्रु हैं; किन्तु दैवने अकस्मात् मेरी सम्पत्ति हरकर मुझे आपके निकट उपस्थित कर दिया है। इससे मेरा मङ्गल ही हुआ। क्योंकि सम्पत्तिमें बुद्धि जड़ हो जाती है और पुरुष यह नहीं समझ सकता कि इस जीवनका कोई भरोसा नहीं है; सब समय शिरपर मृत्यु सवार है ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—हे कुरुश्रेष्ठ! बलि इसप्रकार कह ही रहे थे कि महात्मा प्रह्लादजी वहाँ आकर उपस्थित हुए; उनके आनेसे जान पड़ा—मानो पृथ्वीपर पूर्ण चन्द्रका उदय हो गया॥१२॥श्रीयुक्त प्रह्लादजीका वर्ण श्याम और नयन कमलपत्रके तुल्य विशाल, शरीर उन्नत एवं भुजा जानुपर्यन्त लम्बी थीं। वह पीताम्बर धारण किये थे। देवेन्द्रका दर्प हरनेवाले बलिने सौभाग्यशाली व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ अपने पितामह प्रह्लादजीको देख केवल शिर झुकाकर प्रणाम करके ही उनका सत्कार किया; क्योंकि हाथ पैर बन्धे रहनेके कारण पहलेकी भाँति अनेक सामग्रियोंसे पूजन करना असंभव था। बलीके दोनो नेत्रोंमें आँसू भर आये और उन्होने लज्जित होकर शिर नीचा कर लिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ साधुजनोंके स्वामी हरि बलिके निकट बैठेहुए हैं—सुनन्द और नन्द आदि अनुचरगण उनकी सेवामें उपस्थित हैं—यह देखकर महात्मा प्रह्लादने जाना कि, 'पौत्रपर भगवान्‌का अनुग्रह हुआ है' इससे प्रह्लादजीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये। प्रह्लादजीने हरिके निकट जाकर पृथ्वीमें शिर धरके प्रणाम किया और कहा—"हे भगवन्! आपने ही इस (बलि) को समृद्धिसम्पन्न इन्द्रपद दिया था और इससमय आपने ही वह हर लिया। मेरी समझमें इसपर आपने जो राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट कर दिया सो परम अनुग्रह किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ लक्ष्मी पाकर मनुष्य अपनेको भूल जाता है। जिस लक्ष्मीसे विद्वान् एवं संयत व्यक्ति भी मोहित होजाते हैं उस लक्ष्मीके रहते कौन व्यक्ति यथार्थ रूपसे आत्माका तत्त्व जान सकता है? आपने इसपर दया की। आप जगदीश्वर नारायण हैं, आप सब लोकोंके साक्षी हैं, आपको नमस्कार है" ॥ १७ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—हे राजन्! ब्रह्माजी, अञ्जलि बाँधकर खड़ेहुए महात्मा प्रह्लादके सामने ही हरिसे कुछ निवेदन किया चाहते थे, इतनेमें बलिकी पत्नी विन्ध्यावलि हरिके निकट कुछ कहनेके लिये आई, अतएव उसके सम्मानार्थ

कुछ कालके लिये चुप हो गये । साध्वी विन्ध्यावलिने पतिको पाशसें बन्धाहुआ देखकर भीत-भावसे उपेन्द्र(वामनजी)को प्रणाम किया एवं अञ्जलि बान्धकर मुख नीचा करके कहा कि—"हे ईश्वर ! आपने क्रीड़ा करनेके लिये इस त्रिभुवनकी रचना की है; आपको भूलकर जो इस जगत्के कर्ता होनेका अभिमान करते हैं वे दुर्बुद्धि हैं । आप ही इस त्रिभुवनके कर्ता, पालक और संहारकारी हैं । आपके ही द्वारा जिनपर केवल कर्तृवादमात्रका आरोपण है वे आपको क्या दे सकते हैं? जो लोग अपना स्वामित्व प्रकट करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके प्रभु जो आप हैं उनको कोई वस्तु अर्पण करते हैं वे कुबुद्धि और निर्लज्ज हैं" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे भूतनाथ? हे देवदेव! हे जगन्मय! आपने बलिका सर्वस्व हर लिया है; अब इसको छोड़ दीजिये । यह महात्मा बलि निग्रहके योग्य नहीं है ॥ २१ ॥ बलिने उदारताके साथ आपको अपनी सब पृथ्वी दे दी । सुकृत्यके द्वारा जिन सब लोगोंको प्राप्त किया था, उनको भी इसने अर्पण कर दिया । इसके सिवा अपना शरीर और सर्वस्व भी इसने अमलिन मनसे आपकी भेंट कर दिया है ॥ २२ ॥ जिन आपके चरणोंमें सरल भावसे जलमात्र चढ़ाने एवं दूर्वाङ्कुरसे केवल पूजन करनेसे लोगोंको सर्वोत्तम गति मिलती है उन चरणोंमें इसने अकुण्ठित चित्तसे त्रिभुवन अर्पण कर दिया है; भला कैसे इसे निग्रहका कष्ट भोगना उचित है? ॥ २३ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी ! मैं जिसपर कृपा करता हूँ उसका धन और विभव पहले हर लेता हूँ । क्यों कि मनुष्य धन, सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे मतवाला होकर सब प्राणियोंका और मेरा निरादर करता है ॥ २४ ॥ जीवात्मा अपने कर्मोंसे पराधीन होकर कृमि-कीट आदि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ जब कभी मनुष्ययोनिको प्राप्त होता है तब यदि जन्म, कर्म, यौवन, रूप, विद्या, ऐश्वर्य या धन आदिके कारण गर्वित न हो तो जानना चाहिये कि उसपर मेरा अनुग्रह हुआ है ॥ २५ ॥ २६ ॥ ऊपर लिखेहुए अभिमान उत्पन्न करनेवाले जन्म आदि अभिमानरूप अनम्रताका निमित्त-कारण हैं एवं वे ही सम्पूर्ण मङ्गलोंमें बाधा डालनेवाले हैं । किन्तु जो लोग मेरे भक्त हैं उनको उनमें मोह नहीं होता ॥ २७ ॥ यह राजा बलि दैत्य और दानवोंमें श्रेष्ठ एवं उनकी कीर्तिको बढ़ानेवाला है । इसने मेरी दुर्जय मायाको जीत लिया; क्योंकि इतना कष्ट पानेपर भी मोहित न हो कर अपने वचनपर स्थिर रहा ॥ २८ ॥ धनसे हीन और स्थानसे च्युत हो गया, आक्षेपके वचन सुने, शत्रूके द्वारा बाँधा गया, जातिवालोंने त्याग कर दिया, अनेक यातनाओंका भोग किया, गुरुके तिरस्कार और अभिशापको सहा तथापि इस सत्यव्रत बलिने सत्य धर्मको नहीं छोड़ा । मैंने बहाना देतेहुए छलपूर्वक इसके आगे जिस धर्मका वर्णन किया उसको भी इसने नहीं ग्रहण किया;

अतएव यह अत्यन्त भक्त और सत्यवादी है ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैं इसपर परम प्रसन्न हूँ, इसलिये जो स्थान देवगणको भी दुर्लभ है वह इसको देता हूँ। यह सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होगा; मैं इसकी सबभाँति सहायता करूँगा। जबतक यह सावर्णि मन्वन्तरका आरम्भ न हो तबतक यह विश्वकर्माद्वारा निर्मित सुतल लोकमें वास करे। उस लोकमें रहनेवालोंको मेरी कृपादृष्टिसे आधि (मानसी चिन्ता), व्याधि, श्रान्ति, तन्द्रा, पराभव एवं कोई भौतिक उत्पात होनेकी संभावना नहीं रहती ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वामनजीने बलिसे कहा कि हे महाभाग इन्द्रसेन! तुम अपनी जातिवाले असुरोंसहित सुतल लोकको जाओ; तुम्हारा मङ्गल हो। अधिक क्या, लोकपालगण भी तुमको परास्त न कर सकेंगे। वह सुतल लोक ऐसा रमणीय और समृद्धिसम्पन्न है कि देवगण वहाँ रहनेकी अभिलाषा करते हैं। जो दैत्यगण तुम्हारी आज्ञाके विरुद्ध काम करेंगे उनको मेरा सुदर्शन चक्र नष्ट करेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मैं तुम्हारे अनुचरगण सहित तुम्हारी, सबप्रकार सब संकटोंसे सब समय रक्षा करूँगा। तुम मुझको वहाँ अपने द्वारपर इसी रूपसे नित्य निकट देख पाओगे ॥ ३५ ॥

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः ॥
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥

दानव और दैत्योंके संसर्गसे उत्पन्न तुम्हारा आसुरस्वभाव, उस स्थानमें मेरा प्रभाव अवलोकन करनेसे उसी समय कुण्ठित होकर नष्ट हो जायगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय

बलिका सुतललोकको जाना

श्रीशुक उवाच—इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं
महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो
भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराब्रवीत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! यह कह रहे पुराणपुरुष भगवान्से, साधुजनोंद्वारा प्रशंसा पानेयोग्य आनन्दाश्रुपूर्णनयन महानुभाव बलिने भक्तिभावसे व्यग्र होकर हाथ जोड़के गद्गद वाणीसे यों कहा ॥ १ ॥ "अहो! अपको प्रणाम करनेकी कैसी अपार महिमा है! जिसके लिये केवल उद्यम (चेष्टा)

करनेसे ही आपके शरणागत भक्तोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। आपकी जिस दयाको पहले बड़े बड़े लोकपाल देवगणने नहीं पाया, आज केवल प्रणामकी चेष्टा करनेसे ही मुझसरीखे निकृष्ट असुरने उस दयाको प्राप्त कर लिया। धन्य आपकी दीनदयालुता!" ॥ २ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—इतना कहकर ब्रह्मा और शिवसहित हरिको प्रणाम करके बन्धनसे मुक्त राजा बलि आनन्दपूर्वक असुरगणसहित सुतल लोकको चले गये ॥ ३ ॥ हरिने इसप्रकार इन्द्रको स्वर्गका राज्य फिर लौटा दिया एवं अदितिकी इच्छा पूर्ण करके उपेन्द्ररूपसे त्रिभुवनका शासन किया ॥ ४ ॥ भगवान्‌का प्रसाद प्राप्तकर वंशधर पौत्र बलि बन्धनसे मुक्त हो गये—यह देखकर भक्तचूड़ामणि प्रह्लादने भक्तिपूर्वक भगवान्‌से कहा ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन! सम्पूर्ण विश्व जिनके आगे शिर झुकाता है वे भी आपकी वन्दना करते हैं। आप विश्ववन्दनीय होकर भी हम असुरोंके दुर्गरक्षक हुए, इस प्रसादको, औरोंकी कौन कहे—ब्रह्मा, महेश्वर अथवा साक्षात् लक्ष्मी देवीने भी नहीं पाया ॥ ६ ॥ हे भक्तवत्सल! ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगण जिनके चरण-कमलमधुका पान करके महाविभूतियोंका भोग करते हैं उन्ही आपके कृपाकटाक्षके पात्र हम क्रूर योनिमें उत्पन्न दुराचर असुर हुए, यह हमारेलिये कम सौभाग्यकी बात नहीं है ॥ ७ ॥ आप सर्वज्ञ हैं; आपने ही अपरिमेय योगमायाकी लीलाद्वारा इस जगत्‌की सृष्टि की है, अतएव आप सबके आत्मा और समदर्शी हैं। कल्पवृक्षकी भाँति भेदभावहीन होकर सब लोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण करते हैं। तथापि आप सर्वदा भक्तोंका पक्ष लेते हैं। समदर्शी होनेपर भी आपका यह विषम-स्वभाव अति विचित्र है! ॥ ८ ॥ भगवान्‌ने कहा—वत्स प्रह्लाद! तुम सुतल लोकको जाओ; तुम्हारा कल्याण हो। वहाँ अपने पौत्रसहित आनन्दसे रहो और जातिवालोंको सुखी करो ॥९॥ वहाँ तुम मुझे सदा गदा हाथमें लिये सब समय द्वारपर स्थित देख पाओगे; मेरे दर्शनसे उत्पन्न आनन्दसे तुम्हारा अज्ञानमय कर्मबन्धन छूट जायगा ॥ १० ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सम्पूर्ण असुरसेनाके स्वामी विमलबुद्धि प्रह्लादने अपने पौत्र सहित अञ्जलि बाँधकर "जो आज्ञा" कहकर भगवान्‌की आज्ञाको शिरपर धारण किया एवं प्रदक्षिणा और प्रणाम करके उनकी अनुमति लेकर सुतल लोकको चले गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ राजन्! दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंकी सभामें ऋत्विजगणके बीच हरिके निकट ही बैठे थे। प्रह्लादसहित बलिके चले जानेपर वामनजीने उनसे कहा कि हे महर्षिवर! यज्ञ करनेवाले शिष्यके यज्ञमें जो कुछ कर्म रह गया हो उसे अब आप पूर्ण कर दीजिये। क्योंकि जो कर्म असम्पूर्ण रह जाता है उसकी पूर्ति ब्राह्मणोंके देखनेसे ही हो जाती है ॥ १३ ॥१४॥ शुक्राचार्यजीने कहा—भगवन्! आप यज्ञके स्वामी यज्ञपुरुष साक्षात् ईश्वर हैं।

जिसने अपना सर्वस्व अर्पण करके आपका पूजन किया उसका कर्म कैसे असम्पूर्ण रह सकता है ? स्वरादिकी विच्युति, क्रमकी विपरीतता और देश, काल, पात्र एवं दक्षिणा आदि सामग्रीकी सब असम्पूर्णता आपके गुणानुवादके कीर्तनसे ही मिट जाती है । तथापि, हे ईश ! आप कहते हैं, इसलिये मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हूँ; क्योंकि आपकी आज्ञाका पालन करना ही पुरुषोंकेलिये परम-मङ्गलदायक कर्तव्य है ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—विप्रर्षिगणसहित शुक्राचार्यने इसप्रकार हरिकी आज्ञा ग्रहण करके बलिके यज्ञके अवशिष्ट अंशकी पूर्ति कर दी ॥ १८ ॥ महाराज ! वामनरूपी हरिने बलिके निकट इसप्रकार पृथ्वी माँगकर अपने भाई इन्द्रको शत्रुओंद्वारा हरा गया स्वर्गका राज्य लौटा दिया ॥ १९ ॥ प्रजापतियोंके पति ब्रह्मा, महादेव, देवगण, ऋषिगण, पितृगण, मनुगण, एवं दक्ष, भृगु, अङ्गिरा आदि प्रजापतिगण और सनत्कुमारजी–इन सबने मिलकर कश्यप और अदितिकी प्रसन्नता एवं सब प्राणियोंके मङ्गलके लिये वामनजीको सब लोक और लोकपालोंका स्वामी बना दिया । उक्त ब्रह्मा आदि देवगणने सब प्राणियोंकी समृद्धि बढ़ानेके लिये पालन-कार्यमें निपट निपुण उपेन्द्रजीको वेद, देवगण, धर्म, कीर्ति, लक्ष्मी, मङ्गल, व्रत, स्वर्ग और मोक्षके पालन-कार्यमें नियुक्त किया । उससमय सब प्राणियोंको बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ उसके बाद लोकपालगणसहित इन्द्रदेव ब्रह्माजीकी अनुमतिसे वामनजीको विमानपर चढ़ाकर आगे करके स्वर्ग धामको लेगये ॥ २४ ॥ महेन्द्रको त्रिभुवनका राज्य मिल गया और वह उपेन्द्रजीके बाहुबलकी सहायतासे भलीभाँति त्रिलोकीका शासन करनेलगे । इन्द्रकी सब चिन्ता और भय जाता रहा । वह उत्तम ऐश्वर्य-सम्पत्तिके अधीश्वर होकर आनन्दसे समय व्यतीत करनेलगे ॥ २५ ॥ महाराज ! ब्रह्मा, शिव, सनत्कुमार, भृगु आदि मुनिगण, पितृगण, सिद्धगण और वैमानिकगण आदि सम्पूर्ण प्राणी, मार्गमें हरिकी परम अद्भुत कीर्तिका कीर्तन एवं अदिति देवीके भाग्यकी प्रशंसा करतेहुए अपने अपने स्थानको गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन ! मैंने यह सब वामन अवतारकी कथा तुम्हारे आगे वर्णन की, इसके सुननेसे सब पातक दूर हो जाते हैं ॥ २८ ॥ जो मनुष्य विक्रमशील भगवान्‌की सम्पूर्ण अपार महिमाओंका उल्लेख करनेकी अभिलाषा करता है वह कदाचित् पृथ्वीभरके धूलिकणोंकी गणना भी करसकता है ! क्योंकि मन्त्रदर्शी ऋषिगणने स्पष्टरूपसे कहा है कि जो वर्तमान हैं या जो आगे होंगे, उनमें, कोई भी मनुष्य, पूर्ण-पुरुषकी महिमाका पार नहीं पा सकता[१] ॥ २९ ॥ जो कोई अद्भुत कर्म करनेवाले हरिके इस अवतारका विचित्र चरित्र सुनता है वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

---

१ तथाच मन्त्रः "न ते विष्णो जायमानो न जातो देवमहिम्नः परमन्तमाप ।"

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥

देवता, पितर वा मनुष्य-सम्बन्धी कर्म करनेके समय यदि इस चरित्रका कीर्तन किया जाय तो उन कर्मोंकी भलीभाँति पूर्ति हो जाती है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय

मत्स्य-अवतारका वर्णन

राजोवाच—भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! हमारी इच्छा है कि आप विचित्र कर्म करनेवाले भगवान्के मायामय मत्स्य अवतारकी आदि-कथा हमको सुनाइये ॥ १ ॥ मत्स्य-योनि तामस होनेके कारण दुःसह है और लोग उससे घृणा करते हैं। तब साक्षात् ईश्वरने कर्मपराधीन साधारण जीवकी भाँति किसलिये ऐसी घृणित मत्स्ययोनिमें अवतार लिया? सो आप कृपा करके ठीक ठीक कहिये। पवित्र कीर्तिवाले भगवान्का चरित्र सभी लोगोंके मनको आनन्दित करता है ॥ २ ॥ ३ ॥ सूतजी अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि—विष्णुभक्त परीक्षित् राजाके यों प्रश्न करनेपर शुकदेवजीने इसप्रकार मत्स्यावतारके सम्पूर्ण चरित्रको वर्णन करना आरम्भ किया ॥ ४ ॥ शुकदेवजी बोले—राजन्! गऊ, ब्राह्मण, देवता, साधु, धर्म, वेद एवं अर्थ (देवता आदिके प्रयोजन) की रक्षा करनेके लिये ईश्वर हरि समय समयपर अवतार लेते रहते हैं ॥ ५ ॥ वह ईश्वर, बुद्धिके गुणोंके संयोगसे वायुकी भाँति सम्पूर्ण उत्कृष्ट और निकृष्ट रूपों-(शरीरों)के नियन्ता-रूपसे भ्रमण करते रहते हैं तथापि स्वयं उत्कृष्ट या निकृष्ट नहीं होते; क्योंकि वह निर्विकार और निर्गुण हैं ॥ ६ ॥ राजन्! जो कल्प बीत गया उसके अन्तमें इसी निमित्तसे नैमित्तिक प्रलय हुआ एवं भू आदि तीनो लोक समुद्रके जलमें निमग्न हो गये ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने कालवश निद्रित होकर शयन किया। अचेत ब्रह्माजीके मुखसे निकलकर निकट ही पड़ेहुए वेदोंको महाबली हयग्रीव नाम दैत्य हर ले गया ॥ ८ ॥ भगवान् विष्णुने उस दैत्यके इस दुष्कर भयङ्कर कर्मको जानकर (उसे मारकर वेदोंका उद्धार करनेके लिये) उसी समय मत्स्यरूप धारण किया ॥ ९ ॥ उस समय सत्यव्रत नाम एक महात्मा

नारायणपरायण राजऋषि जलके भीतर बैठेहुए तपस्या कर रहे थे ॥ १० ॥ वही सत्यव्रत राजर्षि इस कल्पमें विवस्वान् अर्थात् सूर्यके पुत्र होकर श्राद्धदेव (इनका दूसरा नाम वैवस्वत भी है) नामसे विख्यात हुए; जिनको हरिने सातवें मनुका पद दिया है ॥ ११ ॥ राजर्षि सत्यव्रत एक दिन कृतमाला नदीके जलमें तर्पण कर रहे थे। इतनेमें उनकी अञ्जलिके जलमें एक छोटीसी मछली चली आई ॥ १२ ॥ राजन्! द्राविड़ेश्वर राजा सत्यव्रतने उस मछलीको अञ्जलीके जल-सहित नदीके जलमें फेंक दिया ॥ १३ ॥ उस मछलीने परम दयालु राजासे कातर होकर दीन स्वरसे कहा कि "हे दीनवत्सल! मैं निर्बल हूँ। मैं अपनी जाति-का ही संहार करनेवाले मगर ग्राह आदि अन्य सबल जल-जन्तुओंसे डरती हूँ। मुझ भयभीत शरणागत जीवको आप इस अगाध जलमें कैसे कठोर हृद-यवाले मनुष्योंकी भाँति फेंके देते हैं?"। हे कुरुकुलतिलक! सत्यव्रतपर ही कृपा करनेके लिये नारायणने मत्स्यशरीर धारण किया था, किन्तु सत्यव्रतको यह कुछ विदित न था, इसलिये उन्होने मछलीके दीन वाक्योंपर दया करके उसकी रक्षा करना विचारा। दयालु राजा उस छोटी सी मछलीको जलपूर्ण कम-ण्डलुमें डालकर अपने आश्रमको ले चले ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ वह छोटीसी मछली एक ही रातमें इतनी बढ़ गई कि, उसका उस छोटे लोटेमें रहना कठिन हो गया। तब उसने राजासे कहा कि हे नरवर! म इस कमण्डलुमें सुख-पूर्वक नहीं वास कर सकती; जिसमें मैं सुखसे रह सकूँ ऐसा कोई बड़ा स्थान मुझको दीजिये ॥ १७ ॥ १८ ॥ राजा सत्यव्रतने उस मछलीको कमण्डलुसे निकालकर मटकेके जलमें डाल दिया। दो घड़ीमें ही वह मछली तीन हाथ बढ़ गई ॥ १९ ॥ फिर उसने राजासे कहा कि महाराज! इस स्थानमें मैं सुखसे नहीं रह सकती। इससे भी बड़ा कोई स्थान मुझको दीजिये, क्योंकि मैं आपकी शरणमें आई हूँ ॥ २० ॥ महाराज! सत्यव्रतने उस मीनको मटकेसे निकालकर सरो-वरमें छोड़ दिया। कुछ ही कालमें वह मीन बहुत ही बढ़कर महामत्स्य हो गया ॥ २१ ॥ उस मीनने फिर राजासे कहा कि महाराज! मैं जलमें रहनेवाला जन्तु हूँ, मुझे इस सरोवरमें कष्ट होता है, क्योंकि यह छोटा है। अब मुझे किसी ऐसे जलाशयमें छोड़िये जिसका जल चुके नहीं (अर्थात् बहता हो), क्योंकि आपने मेरी रक्षाका भार लिया है ॥ २२ ॥ सत्यव्रतने उस मीनके यों कहनेपर उसे लेकर एक एक करके सब जलाशयोंमें छोड़ा, किन्तु उस अद्भुत मीनने अपने विशाल शरीरसे सबको ही परिपूर्ण कर दिया। जब किसी भी नदी आदि जला-शयमें उस महामत्स्यका निर्वाह न देख पड़ा तब अन्तको राजाने उसे सागरमें डालना चाहा। किन्तु जब सत्यव्रत उसको समुद्रमें छोड़ने लगे तो उसने फिर कहा कि हे वीर! मुझसे अधिक बलवाले मगर आदि जलके जीव मुझको खाजा-

यँगे; अतएव इस सागरके जलमें मुझे आप न छोड़िये—आपको ऐसा करना उचित नहीं है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसप्रकार मधुर वाक्य कहकर उस मत्स्यने राजाको मोहित कर दिया। तब राजा सत्यव्रतने उस महामत्स्यसे कहा कि आप कौन हैं, मत्स्यरूपसे हमको मोहित कर रहे हैं। हमने आपके समान वीर्यवान् जलचर जीव न कभी देखा है और न सुना है। आपने एक ही दिनमें सौ योजनके सरोवरको अपने वृद्धिशील विशाल शरीरसे व्याप्त कर लिया! आप निश्चय ही साक्षात् नारायण हरि हैं, प्राणियोंका मङ्गल करनेके लिये आपने यह जलचररूप धारण किया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको प्रणाम है। विभो! आप सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले ईश्वर हैं और मेरे समान विपद्ग्रस्त शरणागत भक्तोंके मुख्य आश्रय और आत्मा हैं। लीला करनेके लिये आपके जो जो अवतार होते हैं उन सबसे सम्पूर्ण प्राणियोंका मङ्गल होता है। भगवन्! आपने जिस उद्देश्यसे यह मत्स्यरूप धारण किया है सो मैं जानना चाहता हूँ। हे कमलनयन! आप सबके बन्धु और प्रिय आत्मा हैं। देहादि मिथ्या वस्तुओंमें वृथा अभिमान रखनेवाले साधारण जनोंके चरणोंकी सेवाके समान आपके चरणोंकी सेवा विफल नहीं जाती। आपने यह अपना अद्भुत शरीर प्रकट करके हमको विस्मयमें डाल दिया है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! यों कह रहे राजा सत्यव्रतसे, युगके अन्तसमयमें प्रलय सागरके बीच क्रीड़ा करनेके लिये मत्स्यरूप धारण कियेहुए भक्तजनोंके प्रिय जगदीश्वरने अपना उद्देश्य यों प्रकट किया ॥ ३१ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा**—हे शत्रुतापन! आजके सातवें दिन भूः, भुवः आदि तीनो लोक प्रलयसागरके जलमें डूब कर नष्ट हो जायँगे ॥ ३२ ॥ तीनो लोक प्रलयके जलमें जब डूबेंगे उस समय मेरी प्रेरणासे एक बड़ी भारी नाव तुम्हारे पास आकर उपस्थित होगी (यह नाव और कुछ नहीं पृथ्वी ही होगी, जो जनहीन हो कर उमड़े हुए प्रलयसागरके जलमें तैरती रहेगी) ॥ ३३ ॥ तुम सब औषधि और सब प्रकारके बीज एवं सब प्रकारके प्राणियोंको लेकर सप्तर्षिगण(जो पहलेहीसे उसपर बैठे होंगे) सहित उसी बड़ी नावपर चढ़कर सुस्थिर चित्तसे उस अन्धकारमय प्रलयसागरमें विचरते रहना। ऋषियोंके ब्रह्मतेजके प्रकाशसे तुम्हें उस घोर अंधकारमें कुछ भी कष्ट न होगा ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ जब प्रचण्ड वायुके झोंकोंसे वह नाव निराधार होनेके कारण हिलने डुलने अर्थात् झोंके खाने लगेगी उस समय मैं इसी रूपसे तुम्हारे निकट आकर उपस्थित होऊँगा। तब तुम महासर्प वासुकीके द्वारा मेरे विशाल श्रृंगमें उस नावको बाँधदेना ॥ ३६ ॥ मैं, ऋषिगण और तुम्हारे सहित उस नावको, जबतक ब्रह्माकी रात्रिका अन्त न होगा तबतक खींचता हुआ प्रलय-

सागरमें विचरता रहूँगा ॥ ३७ ॥ 'परब्रह्म'नामक जो मेरी महिमा है—उसको तुम्हारे पूछनेपर मैं तुम्हारे हृदयमें प्रकट करूँगा और मेरे अनुग्रहसे तुमको उसका ज्ञान होगा ॥ ३८ ॥ राजासे इतना कहकर भगवान् इसी सागरके जलमें अदृश्य हो गये। नारायण भगवान् जितने दिनके बाद प्रलय होना कह गये थे, राजा सत्यव्रत, पूर्वमुख कुशोंका आसन डालकर, उसपर पूर्वोत्तर कोणकी ओर मुख करके मत्स्यरूपी हरिके चरणोंका हृदयमें ध्यान करतेहुए, उतने दिनतक प्रलयकी प्रतीक्षा करते रहे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सातवें दिन राजाने देखा कि घोर घनघटा घिर आई और मुसलधार जलकी वर्षा होनेलगी। समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी और उमड़कर चारो ओरसे पृथ्वीको डबोनेलगा ॥ ४१ ॥ उस समय भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर रहे राजाने देखा कि उनके निकट एक नाव आकर उपस्थित हुई। राजा सब ओषधि और लता लेकर सप्तर्षिगणसहित उस नावपर सवार हुए[1] ॥ ४२ ॥ तब सप्तर्षिगणने प्रसन्न होकर सत्यव्रतसे कहा कि हे राजन्! इस समय केशव भगवान्‌का ध्यान करो, वही इस संकटसे रक्षा करके हमारा कल्याण करेंगे ॥ ४३ ॥ तदनन्तर राजाके ध्यान करनेपर उसी महासागरमें सुवर्णमय-मत्स्य-शरीरधारी भगवान् प्रकट हुए। उनके शिरपर एक विशाल शृङ्ग (सींग) था और उनका शरीर दश हजार योजन लम्बा और चौड़ा था ॥ ४४ ॥ प्रसन्नचित्त राजाने नारायणकी आज्ञाके अनुसार वासुकि नागके शरीरसे मत्स्यरूप भगवान्‌के सींगमें उस नावको बाँध दिया और मधुसूदन ईश्वरकी इसप्रकार स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ राजाने कहा कि—अनादि अविद्यामें जिनका आत्मज्ञान आच्छन्न हो रहा है, सुतरां जो लोग, अविद्या ही जिसका मूल कारण है उस संसारसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंके लाभकी चेष्टामें आतुर हो रहे हैं वे इस संसारमें जिसकी कृपासे जिसको प्राप्त होते हैं वही साक्षात् मुक्तिदाता आप परम गुरु हो कर हमारे हृदयकी अज्ञानरूप गाँठको छिन्न कीजिये ॥ ४६ ॥ ये सब अज्ञ जीव अपने पूर्वज कर्मोंमें आबद्ध होकर सुख पानेकी कामनासे कर्म करनेमें तत्पर होते हैं, किन्तु वास्तवमें सब कर्म दुःख-दायक हैं, क्योंकि उनसे संसारकी निवृत्ति नहीं होती। जिस भगवान्‌की सेवा करनेके फलसे उक्त अज्ञ जीव मिथ्या सुखकी अभिलाषाको छोड़ देते हैं वही परम गुरु ईश्वर हमारे हृदयकी मोहमय ग्रन्थिका छेदन करें ॥ ४७ ॥ चाँदी जैसे अग्निके स्पर्शसे मल त्यागकर अपना स्वच्छ वर्ण पाती है वैसे ही जिसकी सेवा करके जीवात्मा मलस्वरूप अज्ञान त्यागकर अपने रूपको प्राप्त

१ यह प्रलय किसी प्रकारका वास्तविक प्रलय न था, किन्तु भगवान्‌ने अपनी मायासे यह प्रलय सत्यव्रतको ही दिखाया, जैसा कि नरनारायणरूप भगवान्‌ने मार्कण्डेय ऋषिको प्रलय दिखाया था।

होता है वही ईश्वर आप हमारे गुरु हों; क्योंकि आप गुरुओंके भी परम गुरु हैं ॥ ४८ ॥ अन्यान्य देवता और गुरुजन सब एकत्रित होकर भी जिसकी कृपाके दशहजारवें (सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म) अंशके समान भी कृपा नहीं कर सकते, आप वही ईश्वर हैं; मैं आपकी शरण हूँ ॥ ४९ ॥ अन्धेको राह दिखानेवाला अन्धा होनेपर जैसे दोनो किसी न किसी गढ़ेमें गिरकर कष्ट उठाते हैं वैसे ही अज्ञ व्यक्तिका अज्ञ गुरु होनेपर दोनोको कष्ट होता है अर्थात् दोनो भवकूपमें गिरते हैं। किन्तु आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाशके समान स्वयंप्रकाशमान है; सुतरां आप सब इन्द्रियोंके प्रकाशक (चैतन्यदाता) हैं, हम आत्माकी गति (तत्त्व) जाननेके लिये उत्सुक हैं, अतएव आपको ही अपना यथार्थ गुरु मानकर प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥ मनुष्य, मनुष्यको जिस असत् मतिका उपदेश करते हैं वह दूषित है, उससे उपकारके वदले अपकार ही होता है; क्यों कि शिष्य उस मतिसे घोर अन्धकार(मोह)को प्राप्त होता है । किन्तु आप अमोघ अक्षय ज्ञानका उपदेश करनेवाले गुरु हैं; लोग उस ज्ञानको पाकर निश्चय ही अपने सच्चिदानन्द पदको पा सकते हैं ॥ ५१ ॥ आप सब लोगोंके प्रिय, मित्र, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान एवं वांछितसिद्धि हैं। आप सबके हृदयमें ही निवास करते हैं तथापि वे आपको नहीं जान पाते, क्योंकि उनकी बुद्धि अन्य ओर (विषयोंमें) लगी रहनेके कारण अन्धी हो रही है और विषयवासनाने उनके हृदयोंमें अपनी जड़ जमा रक्खी है ॥ ५२ ॥ हे देव! मैं ज्ञानलाभके लिये इसप्रकार सब देवतोंमें श्रेष्ठ और वरणीय ईश्वर जो आप हैं उनके चरणोंकी शरणमें आया हूँ। भगवन्! परमार्थप्रकाशक अपने वाक्योंसे मेरे हृदयमें उत्पन्न जो अहंकार आदि गांठें हैं उनको काट दीजिये और हमारा स्वरूप (ब्रह्म) हमको बताइये ॥ ५३ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—राजर्षि सत्यव्रतके इसप्रकार कहनेपर आदिपुरुष भगवान्ने प्रलयसागरमें महामत्स्यरूपसे विहार करतेहुए उनको परमतत्त्वका उपदेश दिया। भगवान्ने सांख्ययोग और क्रियासे युक्त दिव्य पुराणसंहिता (सम्पूर्ण मत्स्यपुराण) की व्याख्या एवं आत्मज्ञानका भी अनेक प्रकारसे उपदेश किया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ सप्तर्षिगणसहित राजा सत्यव्रतने उस नावपर बैठे बैठे भगवान्के मुखसे निःसंशय आत्मतत्त्व एवं सनातन वेदोंको सुना ॥ ५६ ॥ तदनन्तर वीतेहुए महाप्रलयके अन्तमें निद्रासे उठेहुए ब्रह्माको, मत्स्यरूपधारी दानवोंके शत्रु हरिने हयग्रीव दानवका संहार करके नष्टहुए वेद फिर लौटा कर दिये ॥ ५७ ॥ राजा सत्यव्रत, विष्णुकी कृपासे ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न होकर इस वर्तमान कल्पमें वैवस्वत नाम सातवे मनु हुए ॥ ५८ ॥ जो कोई मनुष्य, राजर्षि सत्यव्रत और मायामय मीनरूपधारी विष्णुका महाआश्चर्यपूर्ण संवाद (और कथा) सुनता है वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता

है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य नित्य हरिके इस मत्स्यावतारका पवित्र और विचित्र चरित्र पढ़ता है उसकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं और अन्तमें उसको परम गति प्राप्त होती है ॥ ६० ॥

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥
दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

ब्रह्माके अचेत होकर शयन करनेपर जब हयग्रीव दानव उनके मुखसे वेदोंको चुराकर चला गया, तब जिन्होने उसे मारकर वेदोंका उद्धार किया एवं अपने परम भक्त राजा सत्यव्रत और सप्त ऋषियोंको सनातन वेदोंका उपदेश किया उन्ही सम्पूर्ण जगत्के कारणस्वरूप मायामय मत्स्यरूपधारी भगवान् हरिको हम प्रणाम करते हैं ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

समाप्तोऽयमष्टमस्कन्धः ।
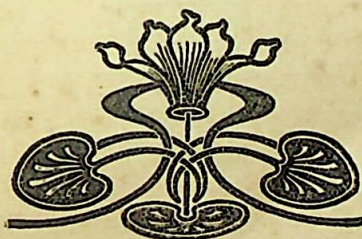
शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

नवमस्कन्धः

कपिलदेवजी और राजकुमार अंशुमान् ।

श्रीः

शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

नवमस्कन्धः

प्रथम अध्याय

सुद्युम्नराजाको स्त्रीयोनिप्राप्ति

राजोवाच—मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि—भगवन्! आपने सब मन्वन्तर और उन मन्वन्तरोंमें अनन्त पराक्रमवाले हरिके कियेहुए चरित्र कहे और मैंने सुने ॥ १ ॥ जो द्रविड़देशके राजा राजऋषि सत्यव्रत नाम थे, जिन्होने बीतेहुए कल्पके अन्तसें ईश्वरकी सेवा करके मत्स्यावतारके मुखसे ज्ञान प्राप्त किया था ॥ २ ॥ वही सूर्यके पुत्र वैवस्वत मनु हुए। उनका और उनके इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंका वर्णन भी मैंने आपसे सुना ॥ ३ ॥ हे महाभाग! इससमय उन इक्ष्वाकु आदि मनुके पुत्रोंका अलग अलग वंश और वंशधर राजाओंके चरित्र हमसे कहिये। हे ब्रह्मन्! हम ऐसे उत्तम चरित्र सुननेमें ऊबते नहीं हैं, बरन् यदि नित्य हुआ करें

तो उनके सुननेकी हमें वैसी ही श्रद्धा बनी रहेगी ॥ ४ ॥ मनुके वंशमें जो राजा हो गये हैं और जो होंगे एवं जो इससमय वर्तमान हैं उन पवित्र कीर्तिवाले राजाओंके चरित्र हमसे कहिये ॥ ५ ॥ सूतजी शौनक आदि ऋषियोंसे कहते हैं कि–इसप्रकार ब्रह्मज्ञानी लोगोंकी सभामें परीक्षित् राजाके प्रश्न करनेपर परम-हंसधर्मके जाननेवाले श्रीशुक भगवान् बोले ॥ ६ ॥ हे राजन्! मनुके वंशको सुनिये । इसको यदि कोई विस्तारसे वर्णन किया चाहे तो सौ वर्षमें भी नहीं कह सकता ॥ ७ ॥ चराचर प्राणियोंके आत्मा जो परमपुरुष नारायण हैं वही कल्पके अन्तमें थे, और जो यह विश्व देख पड़ता है सो कुछ भी न था ॥ ८ ॥ उन नारायण भगवान्‌की नाभिसे सुवर्णका एक कमल उत्पन्न हुआ । उस कमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जिनको स्वयम्भू कहते हैं ॥ ९ ॥ उन ब्रह्माजीके मनसे मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए, मरीचिके कश्यप हुए । उनकी स्त्री, दक्षप्रजापतिकी कन्या अदितिमें विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ सूर्यके संज्ञा नाम स्त्रीमें श्राद्धदेव नाम मनु हुए, उन्होने अपनी श्रद्धा नाम स्त्रीमें दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ ११ ॥ उन दसोंके नाम ये हैं–इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूपक, नरिष्यन्त, पृपध्र, नभग और कवि ॥ १२ ॥ पहले जब मनुको कोई पुत्र न था तब वसिष्ठ भगवान्‌ने पुत्र होनेके लिये राजासे मित्रावरुण देवका यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ उस यज्ञमें श्रद्धा नाम मनुकी स्त्री, जो यज्ञकी दीक्षामें केवल दूध ही पीकर रहती थी, वह होता (होम करनेवाले ऋषि) के पास आकर प्रणाम करके प्रार्थना करनेलगी कि महाराज! ऐसी कृपा कीजिये जिसमें मेरे कन्या उत्पन्न हो ॥ १४ ॥ अध्वर्युने होतासे जब हवनकी आहुति छोड़नेको कहा तब उसने रानीकी प्रार्थनाके अनुसार एकाग्र चित्तसे "कन्या उत्पन्न हो" ऐसा ध्यान करके "वषट् वौषट्" आदि वैदिक शब्द, जो हवन करतेमें कहे जाते हैं, उनका उच्चारण करके आहुति छोड़ी ॥ १५ ॥ हवन करनेवाले ब्राह्मणके इस व्यतिक्रमसे इला नाम कन्या उत्पन्न हुई । उसको देखकर मनुजी कुछ प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि उन्होने तो पुत्रके लिये यज्ञ किया था । मनुजी गुरुसे बोले कि ॥ १६ ॥ ब्रह्मन्! यह क्या हुआ? आप लोग वेदके जाननेवाले शुद्ध ब्राह्मण हैं, आपके कर्मका यह उलटा फल हुआ! बड़े कष्टकी बात है! यों मन्त्रका अन्यथा होना अयोग्य है! ऐसा तो न होना चाहिये! ॥ १७ ॥ भगवन्! आप लोग अमोघ मन्त्रोंके जाननेवाले और सुयोग्य हैं, तपसे आपके अन्तःकरणका मल दूर हो गया है। तब यह संकल्पसे विपरीत फल कैसे हुआ? देवपूजा कैसे विफल हुई? ॥ १८ ॥ राजाके ये वचन सुनकर भगवान् वसिष्ठने ध्यान किया और हवन करनेवालेके किये हुए व्यतिक्रमको जानकर मनु महाराजसे बोले ॥ १९ ॥ राजन्! आपके संकल्पके विरुद्ध फल प्राप्त होनेका कारण यह है कि हवन करने-

वाले ब्राह्मणने कन्याकी कामना करके आहुति छोड़ी है, इसमें हमारा या मन्त्रका कोई दोष नहीं है। तथापि हम अपने ब्रह्मतेजसे आपकी कामना पूर्ण करेंगे, यह कन्याही सुन्दर राजकुमार होगी ॥ २० ॥ महायशस्वी वसिष्ठजी इसप्रकार निश्चय कर इला कन्याके पुरुष होजानेके लिये आदिपुरुष ईश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ भगवान् हरि ईश्वरने सन्तुष्ट होकर वसिष्ठकी इच्छाके अनुसार वर दिया। वह इला कन्या पुरुष हो गई और उसका नाम सुद्युम्न हुआ ॥ २२ ॥ हे महाराज! वह वीर सुद्युम्न एक दिन सिन्धु देशके घोड़ेपर चढ़कर, सुन्दर धनुष और परम अद्भुत बाण ले कुछ मन्त्रियों और अनुचरोंके साथ उत्तर दिशामें शिकार खेलनेगये ॥ २३ ॥ २४ ॥ सुमेरु पर्वतकी तरहटीमें एक वन है, जहाँपर भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ रमण किया करते हैं, उसी वनमें राजकुमार सुद्युम्नने प्रवेश किया ॥२५॥ उस वनमें प्रवेश करते ही शत्रुसेनाका संहार करनेवाले सुद्युम्नने देखा कि वह स्वयं स्त्री हो गये हैं, उनका घोड़ा भी घोड़ी हो गया है ॥२६॥ इसीभाँति जितने लोग सुद्युम्नके साथ थे, सब अपने अपने रूपका बदलना देखकर मनमें उदास हो गये और विस्मित होकर एक एक को देखनेलगे ॥ २७ ॥ राजापरीक्षित् ने पूछा—भगवन्! वह स्थान ऐसा क्यों था कि वहाँ जानेपर पुरुष स्त्री हो जाते थे? किसीने उस स्थानको ऐसा बना डाला था या उस स्थानमें यह बात स्वाभाविक थी? इस मेरे प्रश्नका उत्तर कृपाकर दीजिये, मुझको इसके सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा है ॥ २८ ॥ शुकजी बोले कि—एक समय अपने तेजसे दिशाओंका अन्धकार दूर करतेहुए सप्त ऋषि लोग शिवजीका दर्शन करनेवास्ते इसी वनमें गये ॥ २९ ॥ उस समय अम्बिका देवी नग्न थीं, सो एकाएक उन ऋषियोंको आयेहुए देख बहुत ही लज्जित हुईं और शीघ्रतापूर्वक शंकरकी गोदसे उठकर वस्त्र पहन लिये ॥ ३० ॥ ऋषिगण भी दूरसे ही शिवशिवाको रमण करतेहुए देखकर लौट पड़े और उधरसे ही नरनारायणके आश्रमको चले गये ॥ ३१ ॥ उससमय भगवान् शिवने प्रियाका प्रिय करनेके लिये कहा कि आजसे जो कोई पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायगा ॥ ३२ ॥ राजन्! तबसे लोग उस वनमें नहीं जाते। इस शिवके आदेशको सुद्युम्न नहीं जानते थे। सुद्युम्न स्त्रीके रूपसे स्त्रीशरीरधारी सेवकोंसहित इधरसे उधर घूमने लगे ॥ ३३ ॥ उसी वनके पास चन्द्रके पुत्र बुधका आश्रम था, जिसमें बुध तप करते थे। वह स्त्री (सुद्युम्न) अपने साथकी स्त्रियोंसहित बुधके आश्रमके पास टहल रही थी। उसको देखकर बुध मोहित हो गये ॥ ३४ ॥ और वह स्त्री भी बुधपर आसक्त हो गई। बुध और वह स्त्री अर्थात् सुद्युम्न मिलकर उसी आश्रममें रहनेलगे ॥ ३५ ॥ हमने सुना है कि इसप्रकार स्त्री हो गये मनुवंशी राजकुमार सुद्युम्नने एकसमय अपने कुलके आचार्य

वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ वसिष्ठजी आये और सुद्युम्नकी यह दशा देखकर उन्हे बहुत ही दया आई। तब वह सुद्युम्नको पुरुष बनानेके लिये शिव भगवान्की आराधना करनेलगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! शिवजी प्रसन्न हुए, और वसिष्ठकी भी इच्छा पूरी हो और अपना वचन भी न मिथ्या हो, इस विचारसे यों कहनेलगे कि ॥ ३८ ॥ भगवन्! आपके कहनेसे सुद्युम्नके लिये मैं यह व्यवस्था किये देता हूँ कि एक महीनेतक यह स्त्री रहे और एक महीने पुरुष रहकर पृथ्वीका पालन करे ॥ ३९ ॥ अपने आचार्य वसिष्ठजीकी कृपासे शिवजीकी की हुई व्यवस्थाके अनुसार सुद्युम्न राजा पृथ्वीका पालन करनेलगे। किन्तु उनकी प्रजाको यह व्यवस्था भली न लगी ॥४०॥ राजा सुद्युम्नके उत्कल, गय और विमल नाम तीन पुत्र हुए, ये तीनो दक्षिण देशके राजा और परम धर्मात्मा हुए ॥ ४१ ॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥

जव सुद्युम्न राजा वृद्ध हुए, तब अपने बड़े पुत्र पुरूरवा (जो स्त्रीकी दशासें बुधसे उत्पन्न हुए थे) को सब राज्य देकर आप वनको चले गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय

करूपक आदि मनुके पाँच पुत्रोंके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच—एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥
पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—इसप्रकार जब सुद्युम्नजी पुरूरवाको राज्य देकर तप करने वनको गये तब पुत्रकी इच्छासे वैवस्वतजी मनुने सौ वर्षतक यमुनाके किनारे तप किया ॥ १ ॥ तिसके बाद मनुने पुत्रके लिये हरि भगवान्का पूजन किया। तब उनको उन्हीके समान इक्ष्वाकु आदि दश पुत्र हुए ॥ २ ॥ इन दश पुत्रोंमें पृषध्र नाम जो मनुके पुत्र थे उनको गुरुने गायोंकी रक्षाके काममें लगाया। वह रात्रिके समय गोशालामें तर्वार हाथमें ले वीर आसनसे बैठकर गायोंकी रक्षा किया करते थे ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिको पानी बरस रहा था, उसी समय एक सिंह गोशालाके भीतर घुस आया, उसे देखकर सोई हुई गायें उठकर भयके मारे इधर उधर बाड़ेमें भागनेलगीं ॥ ४ ॥ सिंहने एक गायको पकड़ लिया, और वह भयभीत होकर चिल्लानेलगी। उसका शब्द सुनकर पृषध्रजी तर्वार ले

सिंहको मारनेके लिये दौड़े । रात्रि अँधेरी थी, मेघ घिरे रहनेके कारण तारागण भी छिपेहुए थे । सिंहके धोखे इन्होने गायका शिर काट डाला ॥ ५ ॥ ६ ॥ किन्तु इनके प्रहारसे सिंहके भी कान काट गये और खड्गकी नोक लगनेसे घाव हो गया । तब वह भयभीत सिंह वहाँसे प्राण लेकर भागा । राहमें उसके घावसे रुधिर गिरता गया ॥ ७ ॥ पराई सेनाका नाश करनेवाले पृषध्रने जाना था कि मैंने सिंहको मारा, परंतु रात बीतनेपर सवेरे देखा कि सिंह नहीं मरा, गाय मरी है । यह देखकर उन्हे बड़ा ही दुःख हुआ ॥ ८ ॥ यद्यपि धोखेसे पृषध्रने गोवध किया था किन्तु कुलके आचार्य वसिष्ठजीने शाप दिया कि तू क्षत्रिय नहीं रहा, इस कर्मसे शूद्र हो गया ॥ ९ ॥ इसप्रकार गुरुने शाप दिया, उसको पृषध्रने हाथ जोड़कर स्वीकार किया और उसी समयसे मुनियोंके समान ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया (बालब्रह्मचारी हो गये, विवाह नहीं किया) ॥ १० ॥ सबके आत्मा, शुद्ध, परमपुरुष भगवान् हरिमें भक्ति करके तन्मय हो गये । सब प्राणियोंके मित्र और समदर्शी होकर ॥ ११ ॥ सब विपयोंका सङ्ग त्याग दिया, मनको शान्त किया, इन्द्रियोंको अपने वशमें किया । जो मिलता उसीको खा लेते, उसीमें निर्वाह करते, कुछ संचय नहीं करते, इसप्रकार मनको आत्मामें लगाकर एकाग्रभावसे ब्रह्मज्ञानमें सन्तुष्ट रहकर इस पृथ्वीमें जड़, अन्धे और बहरोंके समान विचरनेलगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ मुनि-अवस्थाको प्राप्त पृषध्रजी जीवन्मुक्त हो गये, वह केवल कर्मफल भोगकेलिये शरीर धारण कियेहुए थे, सो एक दिन यों हीं घूमते घूमते एक वनमें गये, वहाँ दावानल लगाथा, उसी अग्निमें शरीर भस्म होगया और वह परब्रह्ममें लीन हो गये ॥ १४ ॥ सबसे छोटे मनुके पुत्रका नाम कवि था, उनको बालपनसे ही विषयोंसे वैराग्य था । इसलिये वह भाइयोंपर, राज्यको त्यागकर वनको चले गये और चित्तमें स्वयं प्रकाशमान ईश्वरका ध्यान करतेहुए त्रिलोकीमें विचरनेलगे । उनकी सदा किशोर अवस्था रहती थी ॥ १५ ॥ मनुके पुत्र करूपसे ब्रह्मभक्त और भक्तोंपर प्रेम करनेवाले उत्तरापथके राजा कारूप नाम क्षत्रिय (जाति) हुए ॥ १६ ॥ मनुके धृष्टनाम पुत्रसे धार्ष्ट्य नाम क्षत्रिय हुए, वे अपने कर्मोंके द्वारा क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये । मनुके पुत्र नृगके सुमतिनाम पुत्र हुआ । सुमतिके भूतज्योति और उनके वसुनाम पुत्र हुआ ॥ १७ ॥ वसुके प्रतीक हुए, प्रतीकके ओघवान् हुए, ओघवान्के पुत्रका भी नाम ओघवान् हुआ और एक कन्या हुई उसका नाम ओघवती हुआ; जिसके साथ सुदर्शनने ब्याह किया ॥ १८ ॥ मनुके पुत्र नरिष्यन्तके चित्रसेन हुए, उनके ऋक्ष और ऋक्षके मीढ्वान्, उनके कूर्च, कूर्चके इन्द्रसेन, उनके वीतिहोत्र, उनके सत्यश्रवा, उनके उग्रश्रवा और उनके देवदत्त हुए ॥ १९ ॥ २० ॥ देवदत्तके अग्निवेश्य नामसे साक्षात् भगवान् अग्नि उत्पन्न हुए, उनको कानीन और महाऋषि जातूकर्ण भी

कहते हैं ॥ २१ ॥ अग्निवेश्यके वंशधर सब ब्राह्मण हो गये । हमने यह नरिष्यन्तका वंश कहा, अब दिष्टका वंश सुनो ॥ २२ ॥ दिष्टके पुत्र नाभाग हुए, आगे जिन नाभागकी कथा कहेंगे वह दूसरे हैं । दिष्टके पुत्र नाभाग अपने कर्मसे वैश्य हो गये । इनके पुत्र भलन्दन हुए, भलन्दनके वत्सप्रीति हुए ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिके प्रांशु और प्रांशुके प्रमति हुए । प्रमतिके पुत्र खनित्र और उनके चाक्षुष एवं चाक्षुषके विविंशति हुए ॥ २४ ॥ विविंशतिके रम्भ नाम पुत्र हुआ । रम्भके परम धर्मात्मा खनिनेत्र हुए और उनके करंधम नाम राजा हुए ॥ २५ ॥ करंधमके पुत्र अवीक्षित् हुए । उनके चक्रवर्ती महाराज मरुत् हुए । मरुत्को महायोगी अङ्गिरा ऋषिके पुत्रने महायज्ञ कराया ॥ २६ ॥ जैसा मरुत् राजाका यज्ञ हुआ वैसा यज्ञ आजतक किसीका नहीं हुआ, उनके यज्ञमें पात्रआदि सब सामग्री सुवर्णकी थी ॥ २७ ॥ इन्द्रको इतना सोमरस पिलाया गया कि वे बहुत प्रसन्न हुए और ब्राह्मणोंको इतना दान और दक्षिणा दी कि वे उसे ले न जासके । उनके यज्ञमें साक्षात् मरुत्गण भोजन परोसनेवाले थे और विश्वेदेवा सभासद थे ॥ २८ ॥ मरुत्के दम नाम पुत्र हुआ । दमके राज्यवर्धन और उनके सुधृति नाम राजा हुए । सुधृतिके नर और नरके पुत्र केवल तथा केवलके धुंधुमान् नाम पुत्र हुआ । धुंधुमान्के वेगवान् और वेगवान्के बुध एवं बुधके राजा तृणविन्दु हुए ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह बड़े ही गुणी और रूपवान् थे, अतएव इनपर अलंबुषा नाम अप्सरा मोहित हो गई । उस अप्सराके गर्भसे तृणविन्दुके कई पुत्र और इडविडा नाम कन्या हुई ॥ ३१ ॥ इडविडाने विश्रवा ऋषिको अपना पति बनाया । विश्रवा ऋषिने अपने परम पूज्य योगेश्वर पितासे परमविद्या प्राप्त करके राजकुमारी इडविडाके गर्भसे निधिनाथ कुबेरको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ राजा तृणविन्दुके विशाल, शून्यवन्धु एवं धूम्रकेतु ये तीन पुत्र हुए । उनमें विशालका वंश हुआ, उन्हीं विशालने अपने नामसे वैशाला नाम नगरी बसाई ॥ ३३ ॥ विशालके हेमचन्द्र नाम पुत्र हुआ । हेमचन्द्रके धूम्राक्ष और धूम्राक्षके संयम नाम पुत्र हुआ । संयमके कृशाश्व और देवाश्व नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ कृशाश्वके सोमदत्त हुए, उन्होने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपुरुष भगवान्की आराधना की और अन्तमें योगेश्वरोंकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥
एते वैशालभूपालास्तृणविन्दोर्यशोधराः ॥ ३६ ॥

सोमदत्तके पुत्रका नाम सुमति हुआ, सुमतिके जनमेजय नाम पुत्र हुआ । हे राजन् ! ये सब राजा नरपति विशालके वंशमें उत्पन्न हुए, जिन्होने अपने पूर्वज महाराज तृणविन्दुके यशको अपने कर्मोंसे उज्वल किया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

मनुके पुत्र शर्यातिके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच–शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥
यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—मनुके पुत्र शर्याति नाम राजा वेदका अर्थ जानने-वालोंमें श्रेष्ठ हुए। इन्होने अङ्गिरावंशज ऋषियोंके यज्ञमें दूसरे दिनका कर्म बताया ॥१॥ शर्यातिके सुकन्या नाम एक कमलनयनी कन्या थी। राजा शर्याति उसको साथ लेकर घूमते २ वनमें च्यवन ऋषिके आश्रममें पहुँचे ॥ २ ॥ सुकन्या अपनी सखियोंसहित वनमें घूमती हुई वृक्षोंकी बहार देख रही थी। इतनेमें बल्मीकि (बाँबी)के छेदमें उसने दो जुगनुओंकीसी चमक देखी ॥ ३ ॥ दैवसंयोगवश लड़कपनके मारे सुकन्याने उस चमकती हुई वस्तुमें काँटा भोंक दिया, काँटा लगतेही उसमेंसे बहुतसा रुधिर वहा ॥ ४ ॥ सुकन्या तो वहाँसे भयभीत होकर अपने डेरेमें चली आई। इधर सब सैनिकोंका और सामन्तोंका बड़ा बुरा हाल हुआ, सबका मलमूत्र बन्द हो गया। राजऋषि शर्याति यह देख-कर बहुत ही विस्मित हुए और अपने आदमियोंसे कहनेलगे ॥ ५ ॥ भाई! यहाँ भगवान् भार्गव (च्यवन) ऋषिका आश्रम है, तुम लोगोंमेंसे किसीने उनका कोई अपराध तो नहीं किया है? मुझको विदित होता है कि किसीने अवश्य उनके आश्रममें जाकर कोई उत्पात किया है ॥ ६ ॥ यह सुनकर सुकन्याने डरते डरते अपने पितासे कहा कि पिताजी! मैंने इतना अवश्य किया है कि दो चमकती हुई वस्तुओंको बिना जानेबूझे काँटेसे फोड़ दिया ॥ ७ ॥ यह सुनकर राजा शर्याति बहुत ही घबड़ाये और कन्याको साथ ले च्यवनजीके आश्रममें गये। जहाँ च्यवनजी तप करते करते बाँबियोंमें छिप गये थे वहाँ जाकर धीरे धीरे मुनिको प्रसन्न करने एवं कन्याका अपराध क्षमा करानेलगे ॥ ८ ॥ तिसके बाद मुनिके अभि-प्रायको जानकर राजाने अपनी कन्या उन्हे अर्पण कर दी। सब सेनाका कष्ट वैसे ही नष्ट हो गया और स्वस्थ होकर राजा शर्याति अपने पुरको लौटे ॥ ९ ॥ सुकन्याको बड़े ही क्रोधी च्यवनऋषि पति मिले। किन्तु चतुर सुकन्या सदा सावधानीसहित सेवा करके उनको सन्तुष्ट रखती थी ॥ १० ॥ कुछ कालमें एक समय अश्विनीकुमार च्यवनजीके आश्रममें आये, च्यवनजीने उनका पूजन किया और कहा कि हे स्वर्गके वैद्यो! तुम मुझे ऐसी अवस्था और ऐसा रूप दो जिसको देखकर स्त्रियाँ मोहित हो जाँय—तुम ऐसा कर सकते हो। इसके पलटेमें मैं भी कुछ उपकार करूँगा। इन्द्रने यज्ञमें तुम्हारा भाग बन्द कर दिया है, किन्तु मैं अपने तपोबलसे इन्द्रके आगे यज्ञमें तुमको भाग दिलाऊँगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह

सुनकर दोनो देव प्रसन्न हो बोले कि अच्छी बात है और उसी समय एक सिद्ध-सरोवर प्रकट करके कहा कि आप इस सिद्धोंके बनाये सरोवरमें गोता लगाइये ॥ १३ ॥ अश्विनीकुमारने यों कहकर, बुढ़ापेसे जिनके अङ्ग शिथिल हो गये हैं, नसें निकल आई हैं और शरीरमें झुर्रीं पड़ गईं हैं उन महावृद्ध च्यवन ऋषिको हाथ पकड़कर उस सरोवरमें अपने साथ स्नान कराया ॥ १४ ॥ उस सरोवरसे तीन परम सुन्दर पुरुष निकले। तीनोंका एकसा सुन्दर स्वरूप था, जिसे देखकर स्त्रियाँ मोहित होजायँ। तीनो कमलकी माला और सुन्दर वस्त्र एवं कुण्डल धारण कियेथे ॥ १५ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी उन तीनो एकही रूपके पुरुषोंको देखकर सुकन्या अपने पतिको न पहचान सकी। तब अश्विनीकुमारोंकी प्रार्थना की कि मेरे पतिको कृपा करके अलग कर दीजिये ॥ १६ ॥ सुकन्याके पतिव्रतधर्मसे दोनो देव बहुत ही सन्तुष्ट हुए और च्यवनजीको अलग कर दिया और उनसे आज्ञा लेकर अपने विमानमें बैठ स्वर्गको गये ॥ १७ ॥ इसी अवसरमें राजा शर्यातिने यज्ञ करनेकी इच्छा की और च्यवनजीके आश्रमको गये। वहाँ देखा कि अपनी कन्याके पास उन बूढ़े ब्राह्मणकी जगह एक सूर्यके समान तेजस्वी युवा पुरुष बैठा है ॥ १८ ॥ सुकन्याने उठकर प्रणाम किया, परन्तु मारे खेदके राजाने वाशीर्वाद नहीं दिया और कहनेलगे कि ॥ १९ ॥ तूने यह क्या किया? जिन महामुनिजीको तीनो लोक वन्दना करते हैं उनको बूढ़ा जानकर धोखा देकर इस पथिक जारको ग्रहण किया ॥ २० ॥ हे असती! तू कुलकामिनी है और यह कर्म कुलमें कलङ्क लगानेवाला है! हा, तेरी यह असत् बुद्धि कैसे हुई कि लोकलज्जा त्याग पराये पुरुषको अङ्गीकार कर अपने पिता और पतिके कुलको नरकमें गिरा रही है! ॥ २१ ॥ पिताके ये कठोर वचन सुनकर सुकन्या मुसकाई, क्योंकि उसको विदित था कि मेरे पिता इस घटनाका हाल कुछ भी नहीं जानते। सुकन्याने मनोहर हँसी हँसकर कहा कि हे पिताजी! यह आपके दामाद वही च्यवन ऋषि हैं ॥ २२ ॥ इसके पीछे जिसप्रकार अश्विनीकुमारकी कृपासे च्यवनजीको सुन्दर रूप और जवानी मिली, सो सब वृत्तान्त कह सुनाया। यह चरित्र सुनकर शर्यातिजीने बहुत विस्मित और प्रसन्न होकर कन्याको गलेसे लगा लिया ॥ २३ ॥ तिसके बाद शर्यातिजी च्यवनजीको लेकर अपने पुरको गये और उनके यज्ञमें च्यवनजी मुख्य आचार्य हुए। च्यवनजीने प्रतिज्ञाके अनुसार अपने तपोबलसे अश्विनीकुमारको भाग दिया ॥ २४ ॥ तब अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन करते देख इन्द्रको बड़ा क्रोध आया। उसी समय च्यवनजीको मारनेके लिये इन्द्रने वज्र उठाया। किन्तु महामुनिने अपने प्रभावसे वज्रसहित इन्द्रकी भुजाको रोक दिया ॥ २५ ॥ सब देवतोंने यद्यपि पहले वैद्य कह कर अश्विनीकुमारको देवसमाजसे बाहर कर दिया था और इन्द्रकी आज्ञासे उन्हें सोम-

रसका पात्र न मिलता था, परन्तु उस समयसे सब देवतोंने अश्विनीकुमारका भी भाग स्वीकार कर लिया ॥ २६ ॥ शर्यातिजीके उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें आनर्तके राजा रैवत हुए ॥ २७ ॥ उन्होने समुद्रके भीतर कुशस्थली नाम पुरी बनवाई और उसमें रहकर आनर्त आदि देशोंका शासन एवं शत्रुओंका दमन करनेलगे ॥ २८ ॥ उनके सौ पुत्र हुए, जिनमें बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी हुआ। ककुद्मीके रेवती नाम एक कन्या हुई। उस कन्याको लेकर उसके योग्य वरका पता पूछनेके लिये महाराज ककुद्मी ब्रह्मलोकको गये। पर वहाँ गन्धर्वगण गाना गा रहे थे, इसकारण ककुद्मीको पूछनेका अवसर न मिला, वह क्षणभर ठहरगये ॥ २९ ॥ ३० ॥ गाना समाप्त होनेपर उन्होने ब्रह्माजीको प्रणाम कर अपना प्रयोजन कहा। सो सुनकर ब्रह्माजी हँसे और बोले कि राजन्! तुम्हारे समयके राजालोग कालके कराल गालमें पड़कर नष्ट हो गये, इससमय उनके पुत्र पौत्र और नातियोंकेभी वंशका पता नहीं है; क्योंकि तुमको पृथ्वी छोड़े सत्ताईस चौजुगी बीत गईं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अच्छा जाओ, इस समय पृथ्वीपर विष्णुभगवान्के अंशावतार महाबलवान् बलभद्रजी हैं; उन पुरुषरत्नको यह अपना कन्यारत्न अर्पण करो ॥ ३३ ॥ इससमय श्रीविष्णु भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतरे हैं, जिनके नामको सुनना और कीर्तन करना मनुष्यको पवित्र कर देता है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर राजाने प्रणाम किया और अपनी उस पुरीमें आये, जिसको यक्षोंके भयसे भाइयोंने छोड़ दियाथा और इधर उधर भाग गये थे ॥३५॥

सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ॥
बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर नरपाल बलशाली बलभद्रजीको अपनी कन्या ब्याह कर आप श्रीबद्रिकाश्रममें तप करनेके लिये चलेगये ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

नाभाग व अंबरीष राजाका वृत्तान्त

श्रीशुक उवाच–नाभागो नभगापत्यं यतन्तं भ्रातरः कविम् ॥
यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—मनुके पुत्र नभगके पुत्र नाभाग हुए। नाभाग बहुत दिनोंतक गुरुकुलमें रहे, इधर और भाइयोंने यह जानकर कि नाभाग बालब्रह्मचारी

होंगे, गृहस्थ न होंगे—अपना अपना हिस्सा बाँट लिया और नाभागके लिये कुछ भी न रक्खा। जब नाभाग गुरुकुलसे लौटकर आये और अपना हिस्सा माँगा तब बड़े भाइयोंने पिताको ही छोटे भाईके हिस्सेमें दिया ॥ १ ॥ नाभागने कहा कि भाइयो! मेरे हिस्सेमें क्या रखदिया है? भाइयोंने कहा कि तुम्हारे पिताही तुम्हारे हिस्सेमें दिये गये। नाभागने पितासे आकर कहा कि हे पिता! मेरे बड़े भाइयोंने आपको मेरे लिये बाँट दिया है। पिताने कहा कि पुत्र! इसप्रकार तुम विश्वास न करो, उन्होने तुमसे छल किया है, मैं कोई भोग करनेकी वस्तु नहीं हूँ ॥ २ ॥ मैं तुमको तुम्हारे जीवनका उपाय बताता हूँ। हे विद्वन्! अङ्गिरस मुनिगण यज्ञ कर रहे हैं, किन्तु बुद्धिमान् होनेपर भी हर छठवें दिन कर्तव्यकर्ममें कर्तव्यमूढ हो जाते हैं, योंकि वे उस दिनके कर्मकी पूर्णता जिन सूक्तोंसे होती है उन्हे नहीं जानते ॥ ३ ॥ आज छठा दिन है। तुम वहाँ जाकर उनको वैश्वदेवसंबन्धी दो सूक्त (जिन्हें मैं बताता हूँ) बताओ। कर्म समाप्त होनेपर वे स्वर्गको चले जायँगे और जो कुछ यज्ञकी सामग्री बच रहेगी वह सब (संपदा) तुमको देजायँगे। हे राजन्! इसभाँति पिताके कहनेपर नाभागने (पितासे सूक्त पढ़कर) वैसाही किया एवं वे ऋषि भी यज्ञके अन्तमें स्वर्ग जाते समय यज्ञकी बची सामग्री राजकुमारको देगये ॥ ४ ॥ ५ ॥ किन्तु नाभागने जब उस सामग्रीको लेना चाहा, उस समय एक काले शरीरवाले पुरुषने उत्तर दिशासे आकर कहा कि "यह सब यज्ञका बचा हुआ धन मेरा है" ॥ ६ ॥ तब नाभागने कहा कि "ऋषियोंने यह सामग्री मुझको दी है"। उस पुरुषने कहा "अच्छा तुम्हारे पितासे ही हमारा तुम्हारा प्रश्न हो कि यह धन किसे मिलना चाहिये?"। नाभागने जाकर अपने पितासे पूछा ॥ ७ ॥ नाभागसे उनके पिताने कहा कि पुत्र! "जो कुछ यज्ञकी बची सामग्री है वह रुद्रका भाग है"—ऋषियोंने दक्षके यज्ञमें ऐसा नियम करदिया है। अतएव यद्यपि ऋषिगण तुमको वह सब वस्तु देगये हैं तथापि उसके अधिकारी रुद्र ही हैं। और यज्ञके उच्छिष्टकी क्या बात है, यज्ञकी सब सामग्रीके स्वामी वही हैं ॥ ८ ॥ नाभाग लौट कर रुद्रके पास आये और प्रणाम करके बोले कि "यह सब बची हुई सामग्री आप (रुद्र) की ही है। अतः अपना अपराध क्षमा करानेके लिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ" ॥ ९ ॥ रुद्रने कहा कि तुम्हारे पिताने धर्म नहीं छोड़ा और तुमने आकर सत्य सत्य कह दिया। तुम वेदमन्त्रोंके जाननेवाले हो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुमको ब्रह्मरूप सनातन ज्ञानका उपदेश करता हूँ ॥ १० ॥ और यह यज्ञका बचा हुआ धन भी मैं तुमको देता हूँ, इसे ग्रहण करो। यों कहपर भक्तवत्सल भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥ रुद्र और नाभागके संवादको जो कोई साँझ सवेरे एकाग्र होकर स्मरण करता है वह मन्त्रका ज्ञाता कवि होता है और आत्मा-

की गतिको जानता है ॥ १२ ॥ इन नाभागके पुत्र महाराज अम्बरीषजी हुए । यह बड़े ही भगवान्के भक्त और प्रतापी थे । ब्राह्मणका शाप, जो कभी कहींपर निष्फल नहीं होता, वह भी इनका कुछ नहीं बना सका ॥ १३ ॥ राजा परीक्षित् बोले—भगवन् ! उन बुद्धिमान् राजऋषि अम्बरीषका चरित्र सुननेकी मुझे बड़ी इच्छा है, क्योंकि अटल ब्रह्मदण्ड भी उनके आगे हार मान गया ! ॥ १४ ॥ शुकदेवजी बोले—महाभाग राजा अम्बरीषजी, जो पुरुषोंको बहुत दुर्लभ है वह सातो द्वीप पृथ्वीका राज्य, अतुल ऐश्वर्य और कभी न चुकनेवाली संपदा आदि पाकर भी उन्हे स्वप्नकी संपदाके समान मिथ्या मानते थे। इसका कारण यही था कि संपदा चार दिनकी चाँदनी है, सदा नहीं बनी रहती, यह बात वह जानते थे। उनको यह भी विदित था कि संपदाके मिलनेसे अथवा नष्ट होनेसे पुरुषको मोह होता है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ॥ १५ ॥ १६ ॥ वासुदेव भगवान्में और उनके परमभक्त साधुलोगोंमें राजा अम्बरीषको दृढ़ भक्ति थी; जिस भक्तिके होनेसे यह विश्व मिट्टीके समान तुच्छ जान पड़ता है ॥ १७ ॥ उन्होने अपने मनको कृष्ण भगवान्के चरणकमलोंमें और वाणीको वैकुण्ठवासी हरिके गुणानुवाद गानेमें, हाथोंको हरिमन्दिरके धोने वहारने और साफ करनेमें एवं कानोंको अच्युत भगवान्की सत्कथाओंके सुननेमें लगाया ॥ १८ ॥ नेत्रोंको हरिकी मूर्ति और मन्दिरोंके दर्शनमें, अङ्गोंको भगवद्भक्त साधुओंके अङ्गोंके स्पर्श करनेमें, नासिकाको हरिके चरणकमलोंमें चढ़ी हुई तुलसीकी सुगन्ध सूँघनेमें एवं जिह्वाको हरिके नैवेद्यका स्वाद लेनेमें लगाया ॥ १९ ॥ पैरोंको हरिके पवित्रस्थानों (तीर्थों) में जानेमें लगाया । शिरको हरिकी वन्दनामें लगाया । राजा अम्बरीष जो कुछ भोग करते थे उसे हरिका प्रसाद जानकर ग्रहण करते थे, विषयीजनोंकी भाँति विषयभोगमें लिप्त न थे । हरि भगवान्के भक्तोंमें भक्ति हो, इसलिये सब प्रकारके विषयोंको प्रथम हरिभक्तोंको अर्पण करके पीछेसे आप ग्रहण करते थे ॥ २० ॥ राजा अम्बरीष "वह ईश्वर आत्मारूपसे सबमें है" इस भावसे अपने कियेहुए कर्मोंको यज्ञपुरुष भगवान्को अर्पण करतेहुए भगवद्भक्त ब्राह्मणोंकी बताईहुई रीतिसे न्याय और धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करनेलगे ॥ २१ ॥ मरुप्रदेशमें, जहाँ सरस्वती नदीकी धारा उलटी बहती है उसी स्थानपर, राजा अम्बरीषने वसिष्ठ असित गौतम आदि महर्षियोंके द्वारा अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपुरुष भगवान्का यजन किया । उन यज्ञोंमें बहुत सी दक्षिणा दी और अनेक कृत्योंमें बहुतसा धन खर्च किया ॥ २२ ॥ राजाके यज्ञमें सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण कियेहुए 'सदस्य' और 'ऋत्विज' लोग विस्मयपूर्वक यज्ञको देखते थे, जिसमें उनकी पलक नहीं लगती थी । इस कारण वे वास्तवमें देवता[१] जान पड़ते थे ॥ २३ ॥

---

१ देवतोंकी निमिष अर्थात् पलक नहीं लगती इससे उनका नाम "अनिमिष" है ।

राजाकी कौन कहे, राजाके अधीन अथवा नगरवासी लोगोंने भी जो स्वर्ग देवतोंको प्रिय है उसकी चाह नहीं की, केवल हरिके पवित्र चरित्रोंके सुनने और गानेमें मन लगाये रहे ॥ २४ ॥ जो लोग मुकुन्द भगवान्‌को हृदयमें देखते हैं उनको, उस परमानन्दके आगे, स्वर्गादिक लोकोंके भोग, सिद्धजनोंको भी दुर्लभ हैं, तुच्छ मालूम पड़ते हैं । अतएव उनकी रुचि उक्त स्वर्गादि लोकोंमें नहीं होती ॥ २५ ॥ इसप्रकारके भक्तियोग और तपस्यायुक्त अपने धर्मसे हरिको प्रसन्न करतेहुए राजा अम्बरीपने धीरे धीरे सब कामनाओंको त्याग दिया ॥ २६ ॥ घर, स्त्री, पुत्र, बन्धु, उत्तम हाथी, रथ, उत्तम घोड़े, अनन्त रत्न, वस्त्र, आभूषण, शस्त्र अस्त्र और अक्षय कोप (खजाने) आदि वस्तुएँ राजा अम्बरीपकी दृष्टिमें मिथ्या और तुच्छ जँच गईं ॥ २७ ॥ भगवान् हरिने राजा अम्बरीपकी दृढ़ और शुद्ध भक्तिसे प्रसन्न होकर, दुष्टोंका नाश करनेवाला अपना सुदर्शन चक्र, राजाके द्वार-पर इसलिये रख दिया कि वह हरप्रकारकी आपत्तिसे राजाकी रक्षा करे ॥ २८ ॥ रानी भी अपने पतिके समान भगवान्‌की पूर्ण भक्त थीं । राजाने रानीसहित एक समय कृष्णभगवान्‌की प्रीतिके लिये एक वर्षकी एकादशियोंके व्रतका नियम लिया ॥ २९ ॥ राजाने नियम समाप्त होनेपर कार्तिकके महीनेमें तीन दिन निर्जल व्रत किया । यमुना नदीमें स्नान करके मथुरा तीर्थमें हरि भगवान्‌का पूजन किया ॥ ३० ॥ महाभिपेक (यज्ञके अन्तका स्नान) की विधिके अनुसार सब सामग्रीसे हरिपूजन किया । अर्थात् पहले आप स्नान किया फिर हरिभगवान्‌को स्नान कराया, वस्त्र और आभूषण पहना कर एकाग्रमन हो चन्दन और माला आदिसे पूजन किया । फिर भक्तिभावसे निष्काम ब्राह्मणोंकी पूजा की ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ फिर जिनके सोनेसे सींग और चाँदीसे खुर मढ़े हैं, पीठपर सुन्दर झूल पड़ी हैं, जो दुधार सूधी और देखनेमें सुन्दर व जवान हैं, ऐसी बछड़ेसहित ६० करोड़ गायोंको सब सामान सहित संकल्प करके सुपात्र ब्राह्मणोंके घर भेज दिया । और ब्राह्मणोंको सुन्दर स्वादयुक्त अन्न भोजन कराया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणलोगोंने सन्तुष्ट होकर सफल आशीर्वाद दिये और पारण करनेकी आज्ञा दी । राजा पारण करनेके लिये जा रहे थे कि इतनेमें भगवान दुर्वासाऋषि आकर उनके अतिथि[1] हुए ॥ ३५ ॥ राजा अम्बरीपने आदरसहित उठकर दुर्वासा-जीको प्रणाम किया, आसन दिया और पूजन किया, फिर चरणोंपर गिरकर भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ दुर्वासाजीने राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मध्यान्हका नित्यकर्म (स्नान संध्या, ब्रह्मयज्ञाङ्ग तर्पण, आदि) करनेके लिये यमुनानदीके तटपर गये । वहाँ जाकर नदीके पवित्र जलमें स्नान किया

---

१ जो भोजनके समय अथवा दोपहरके समय अपने यहाँ कहींसे आवे वह अतिथि (मेह-मान) है ।

और ईश्वरका ध्यान करनेलगे ॥ ३७ ॥ इधर द्वादशी एक ही घड़ी बाकी थी, धर्मज्ञ राजाने देखा कि शास्त्रमें लिखा है-द्वादशीमें यदि पारण न किया जाय तो एकादशीका व्रत निष्फल हो जाता है। अब राजाको धर्मसङ्कट पडा। यदि पारण नहीं करते तो व्रत निष्फल होता है और जो अतिथिको विना भोजन कराये पारण किया तो पाप होता है। तब राजाने ब्राह्मणोंसे पूछा कि "क्या करना चाहिये ? ब्राह्मणको विना भोजन कराये भोजन करनेसे और द्वादशीमें पारण न करनेसे, दोनो तरह दोष है, ऐसा उपाय बताइये जिसमें बात भी न विगड़े और अधर्म भी न हो। वेदमें लिखा है कि जलका पीना भोजन भी है और भोजन नहीं भी है। इस लिये यदि आप आज्ञा दें तो मैं हरिके चरणोदकको पीकर पारण कर लूँ" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! यों कहकर ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार मनमें हरिका ध्यान करतेहुए राजाने जल पीकर पारण कर लिया और महामुनि दुर्वासाके आनेकी राह देखनेलगे ॥ ४१ ॥ उधर दुर्वासा ऋषि आवश्यक कर्मसे छुट्टी कर यमुनाके किनारेसे लौटे और राजाके पास आये। राजाने भोजन करनेकी प्रार्थना की। दुर्वासाने अपने तपोबलके कारण ध्यान करके जान लिया कि राजा अम्बरीष पारण कर चुके हैं ॥४२॥ एक तो दुर्वासाजी क्रोधी ही थे, दूसरे भूख लगीथी, तीसरे क्रोध और भी अधिक हो गया जिससे शरीर कापनेलगा व ओंठ फरकनेलगे। तब हाथ बाँधे और आगे खड़ेहुए राजाको यों कहनेलगे ॥ ४३ ॥ अहो ! इस लक्ष्मीके मदसे अन्धे अधम राजाकी ढिठाई और धर्मका निरादर करना तो देखो ! यह विष्णुका अभक्त है और अपनेको ईश (समर्थ) मानता है ॥ ४४ ॥ देखो न ! मैं इसके यहाँ अतिथि आया और इसने मुझे न्यौता भी दिया, किन्तु मुझे विना भोजन कराये आप भोजन कर लिया। देख, इसका फल मैं तुझे अभी दिखाता हूँ ॥४५॥ यों कहते कहते दुर्वासाने मारे क्रोधके अपने शिरसे एक जटा उखाड़ ली। वह जटा दुर्वासाके प्रभावसे कालाग्निके समान प्रचण्ड एक कृत्या (पिशाची वा चुड़ैल) बन गई। वह कृत्या तर्वार हाथमें लिये अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कम्पायमान करती हुई राजाकी ओर झपटी। पर राजा जैसेके तैसे खड़े रहे, न पीछे हटे और न डरे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ किन्तु पहलेसे ही जिसको सेवककी रक्षाके लिये हरिने भेज दिया था उस सुदर्शन चक्रने अपने महाप्रचण्ड तेजसे उस भयानक कृत्याको भस्म कर दिया; जैसे दावानल कुपित सर्पको भस्म कर देता है ॥ ४८ ॥ उस कृत्याको ही जलाकर सुदर्शन चक्र नहीं शान्त हुआ, बरन् दुर्वासाकी भी खबर ली। दुर्वासाने देखा कि अपना परिश्रम निष्फल हो गया और उलटे प्राणोंपर आ पड़ी, तब तो प्राण बचानेके लिये भागे ॥ ४९ ॥ उनके पीछे भगवान्का चक्र भी जैसे सर्पके पीछे

१ श्रुतिमें लिखा है—"अपोऽश्नाति नैवाशितं नैवानाशितमिति"।

प्रचण्ड दावानलकी लपट चले वैसे चला। मुनिजी इसप्रकार चक्रको अपना पीछा करते देखकर प्राण बचानेकी इच्छासे सुमेरुकी कन्दरामें गये, पर वहाँ भी पीछा नहीं छूटा ॥ ५० ॥ तब दशो दिशा, आकाश, पृथ्वीमण्डल, सातो पाताल, सातो समुद्र, तीनो लोक, एवं लोकपालोंके पास, सब स्थानोंमें मुनि भागे भागे फिरे, किन्तु जहाँ जाकर देखा वहाँ असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र पीछे आता देखपड़ा ॥ ५१ ॥ जब कोई भी बचानेवाला नहीं मिला तब रक्षा करनेवालेको ढूँढतेहुए भयभीत दुर्वासा ऋषि भगवान् ब्रह्माके पास गये और बोले कि हे भगवन्? इस हरिके चक्रसे मेरी रक्षा करो ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले—जब दो परार्ध (ब्रह्माकी अवस्थाके पहले पचास वर्षको पूर्वार्ध और पिछले पचास वर्षको परार्ध कहते हैं) बीत जाते हैं और भगवान्की सृष्टिरूप क्रीड़ा (खेल) का अन्त हो जाता है एवं कालरूप भगवान् अपने रचेहुए विश्वको नष्ट करना चाहते हैं तब उनके केवल भौंह टेढ़ी करनेपर यह मेरा लोक तीनो लोक और चौदह भुवनसहित नष्ट हो जाता है ॥ ५३ ॥ मैं, शिव, दक्ष और भृगु आदि प्रजापति, प्राणियोंके स्वामी व देवगणके स्वामी हम लोग लोकके हितके लिये जिनकी दी हुई आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं उन हरिके भक्तसे द्रोह करनेवालेकी कौन रक्षा करसकता है? ॥ ५४ ॥ इसप्रकार जब ब्रह्माने "नाहीं" कर दी तब विष्णुके चक्रद्वारा पीड़ित दुर्वासाजी कैलासपर्वतपर शिवजीकी शरणमें गये ॥५५॥ किन्तु शिवजीने भी कहा कि—हे तात! अनन्त जीवोंकी रचना और नाश जिनके द्वारा होता है वे हमऐसे हजारों शिव और ब्रह्मा, जिनमें विश्वका कार्य करते रहते हैं, ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड, समय पाकर जिससे उत्पन्न होते हैं, और जिसमें लीन होजाते हैं, उस परमेश्वरपर हमारी प्रभुता न चलेगी ॥५६॥ मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिल, अपांतरतम ऋषि, देवल, धर्म, आसुरि ॥५७॥ और मरीचि आदि सर्वज्ञ सिद्धेश्वर लोग मायामें मोहित रहकर जिसकी मायाको नहीं जानते ॥ ५८ ॥ उसी विश्वेश्वरका यह अस्त्र है, हम लोग भी इसके तेजको नहीं सह सकते । हाँ, तुम उन्ही हरिकी शरणमें जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥५९॥ दुर्वासाजी वहाँसे भी निराश होकर वैकुण्ठ धामको गये, जहाँ लक्ष्मीदेवीसहित श्रीविष्णु भगवान् रहते हैं ॥ ६० ॥ दुर्वासाजी हरिके चरणोंपर गिरकर कहनेलगे कि हे भगवन्! मैंने आपका परम प्रताप विना जाने आपके भक्तोंका अपराध किया है। हे ईश! उस अपराधसे मुझे छुड़ाओ। यद्यपि मैंने घोर अपराध किया है तथापि आपसे मुझको ऐसी ही आशा है; क्योंकि आपका नाम लेनेसे नरकके जीव भी घोर नरकके कष्टसे छूट जाते हैं ॥६१॥६२॥ श्रीविष्णु भगवान् बोले—हे ब्राह्मण! भक्तजन मुझे बहुत ही प्यारे हैं, मेरे हृदयपर उनका पूर्ण अधिकार है, मैं भक्तोंके अधीन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ, ॥६३॥ जिन्होंने मुझको ही अपनी परमगति मानकर सबको त्याग दिया है उन अपने

परम भक्त शुद्ध साधुओंके आगे मैं अपनेको और अपनी प्यारी लक्ष्मीको भी तुच्छ समझता हूँ ॥ ६४ ॥ जो लोग स्त्री, घर, पुत्र, कुटुम्ब, सबसे बढ़कर प्यारे प्राण और धनकी लालसा त्याग कर मेरी शरणमें आये हैं उनको भला मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? ॥६५॥ जिनका हृदय मुझमें लगा है वे समदर्शी साधुजन अपनी शुद्ध भक्तिसे मुझको वैसे अपने वशमें कर लेते हैं जैसे पतिव्रता स्त्री अपने सज्जन पतिको वश कर लेती है ॥ ६६ ॥ मेरी सेवा करनेपर उनको चार प्रकारकी मुक्ति[1] भी प्राप्त होती है पर वे मेरी सेवाको ही माँगते हैं, उसीमें उनकी इच्छा पूर्ण रहती है। वे काल पाकर नष्ट हो जानेवाले स्वर्गादिलोकोंकी कौन कहे, मुक्ति भी नहीं चाहते! ॥ ६७ ॥ साधु जन मेरा हृदय हैं और मैं साधु जनोंका हृदय हूँ, वे लोग मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते और मैं उनके सिवा न किसीको जानता हूँ ॥ ६८ ॥ हे ब्राह्मण! किन्तु मैं एक उपाय तुमको बताय देता हूँ, उसको सुनो—यह अपराध तुमने ही किया है। इसलिये उन्ही राजाके पास जाकर अपराध क्षमा कराओ ॥ ६९ ॥ साधु लोगोंपर जो अपने तेजका प्रयोग करते हैं उससे उन्हीकाहीं बुरा होता है, साधुओंका कुछ नहीं बिगड़ता। यद्यपि ब्राह्मणोंके पास तप और विद्या ये दो वस्तुएँ ऐसी हैं जिनसे उनका अमङ्गल नहीं हो सकता; किन्तु उग्र वा ढीठ ब्राह्मणके लिये इनका फल उलटा होता है॥७०॥

ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥

ब्रह्मन्! इसकारण तुम नाभागके पुत्र राजा अम्बरीषके पास जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। जाकर महाभाग अम्बरीषसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो, तब तुमको शान्ति मिलेगी ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय

दुर्वासाके प्राणोंकी रक्षा

श्रीशुक उवाच—एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥
अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! चक्रकी अग्निसे पीड़ित दुर्वासा ऋषि, भगवान्‌की यह आज्ञा पाकर सीधे अम्बरीष राजाके पास आये और दुःखित होकर उनके

---

१ सायुज्य (हरिमें लीन हो जाना), सारूप्य (हरिका ऐसा रूप मिलना), सामीप्य (हरिके पास रहना), सार्ष्टि (हरिकासा ऐश्वर्य मिलना) ये चार प्रकारकी मुक्तियाँ हैं।

पैरोंपर गिर पड़े ॥ १ ॥ ब्राह्मणने पैर छुए, इसकारण राजा अम्बरीष लज्जित हुए। दुर्वासका दुःख देखकर उनको बड़ी ही कृपा (तरस) आई। तब दुर्वासाका दुःख दूर करनेके लिये इसप्रकार विष्णुके चक्रकी स्तुति करनेलगे ॥ २ ॥ राजा बोले कि—भगवन् सुदर्शनचक्र! तुम अग्नी, सूर्य, नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्र, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, पञ्चतन्मात्रा, और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ हो ॥ ३ ॥ हे सुदर्शन! आपको प्रणाम है। सहस्र धारावाले! हे अच्युत भगवान्‌के प्रिय अस्त्र! सब अस्त्रोंका संहार करनेवाले! हे पृथ्वीके ईश्वर! ऐसा करो जिसमें इन ब्राह्मणदेवको शान्ति मिले ॥ ४ ॥ तुम साक्षात् धर्म हो, तुम हितकी वाणी और सत्य वचन हो, तुम सब यज्ञोंके ग्रहण करनेवाले यज्ञपुरुष हो, तुम सर्वव्यापक और लोकपाल हो, तुम परमेश्वरका परमतेज (सामर्थ्य) हो ॥ ५ ॥ हे सुनाभ! तुम संपूर्ण धर्मोंके रक्षक और अधर्मी असुरोंके लिये संहार करनेवाले धूम्रकेतु (अग्नि) हो, तुमको प्रणाम है। तुम तीनो लोकोंकी रक्षा करनेवाले, विशुद्ध तेजस्वरूप, मनके समान वेगवाले एवं अद्भुत कर्म करनेवाले हो—मैं तुम्हारी स्तुति और विनय करता हूँ ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन! तुम्हारे धर्ममय तेजके प्रकाशसे महात्मा लोगोंके हृदयका अँधेरा मिटता है और दृष्टि प्रकाशित होती है। हे सब प्राणि-योंके स्वामी! तुम्हारी महिमा अपार है। सत् और असत् एवं उत्तम और निकृष्ट, जो कुछ संसारमें है, वह आपकाही रूप है ॥ ७ ॥ हे अजित! जब तुमको भगवान् चलाते हैं औ तुम दैत्य और दानवोंकी सेनामें प्रवेश करते हो तब रणक्षेत्रमें उन लोगोंके बाहु, उदर, जानु, शिरको वारंवार काटतेहुए अधिक शोभायमान होते हो ॥ ८ ॥ हे जगत्की रक्षा करनेवाले! तुम सर्वसह हो; भगवान् गदाधरने दुष्ट लोगोंका दमन करनेके लिये तुमको नियुक्त किया है, अतएव हमारे कुलके सौभा-ग्यके लिये इन संकटमें पड़ेहुए ब्राह्मणकी रक्षा करो—जिससे हमपर यही आपकी बड़ी भारी कृपा होगी ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन! यदि हमने कुछ दान किया है, यदि यज्ञ आदि शुभ कर्म किये हैं, और भलीभाँति अपने धर्मका पालन किया है, एवं यदि ब्राह्मण हमारे कुलके इष्टदेव हैं तो इन ऋषिवरका संकट दूर हो ॥१०॥ यदि सब प्राणियोंके आत्मा और संपूर्ण गुणोंके आश्रयरूप भगवान् हमपर प्रसन्न हैं तो इन ब्राह्मणका कष्ट दूर हो ॥ ११ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—इसप्रकार राजाके प्रार्थना करनेपर सुदर्शन चक्रने अपना तेज शान्त कर लिया; जिससे दुर्वासाजी जले जाते थे ॥ १२ ॥ सुदर्शनके शान्त होनेपर दुर्वासाजीका चित्त स्वस्थ हुआ। तब अस्त्रके भयसे छूटकर राजा अम्बरीपको आशीर्वाद देतेहुए दुर्वासाजी यों बड़ाई करनेलगे ॥ १३ ॥ दुर्वासाजी बोले—अहो! मैंने आज भगवान्‌के भक्तोंका अद्भुत महत्त्व (बड़प्पन) देखा। मैंने आपका अपराध किया था, किन्तु आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की ॥ १४ ॥ सच है, जिन

महापुरुष साधुओंने भक्तवत्सल भगवान्को भक्तिभावसे अपने वशमें कर लिया है, उनके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे सहजमें न कर सकें अथवा सहजमें न त्याग सकें ॥ १५ ॥ जिन हरिका केवल नाम सुननेसे मनुष्य निर्मल हो जाता है उन पवित्रपाद भगवान्के दासोंको कौनसी बात नहीं प्राप्त है? ॥ १६ ॥ हे राजन्! तुम बड़े दयालु हो, तुमने मुझपर अनुग्रह किया, जो मेरे अपराधपर ध्यान न देकर मेरे प्राण बचा लिये ॥ १७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—अबतक राजाने भोजन नहीं किया था, दुर्वासाजीके आनेकी राह देख रहे थे। इससमय ऋषिके चरणोंपर गिरकर और उन्हे प्रसन्न करके भोजन कराया ॥ १८ ॥ सादर लाये गये और संपूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले आतिथ्य (भोजन आदि) को ऋषिने स्वीकार किया और भोजन करनेके बाद तृप्त होकर राजासे आदर-सहित कहा कि अब आप भी भोजन कीजिये ॥ १९ ॥ आपने मुझपर बहूतही अनुग्रह किया। आप भगवान्के भक्त हैं, आपके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप और आत्माको तुष्ट करनेवाले आतिथ्यसे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ २० ॥ आपके इस पवित्र कर्मको स्वर्गकी स्त्रियाँ अपने अपने घरोंमें वारंवार गावेंगी और आपकी परम पवित्र कीर्तिका कीर्तन पृथ्वीमण्डलभरमें होगा ॥ २१ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—इसप्रकार प्रसन्नचित्त दुर्वासाजी राजासे वार्तालाप करके और अनुमति लेकर आकाशमार्गसे ब्रह्मलोकको गये; जहाँ कुतार्किक लोग नहीं जाते, वेही लोग जाते हैं जिन्होने सब कर्म निष्काम होकर किये हैं ॥ २२ ॥ मुनिके भाग कर जाने और लौट कर आनेसें एक साल बीत गया, तबतक राजाने अन्नभोजन नहीं किया, केवल जल पीकर रहे और मुनिके आनेकी राह देखते रहे ॥ २३ ॥ दुर्वासाजी भोजन करके चले गये, तब अम्बरीषने ब्राह्मणोंके भोजनसे बचा हुआ अति पवित्र अन्न भोजन किया और ऋषिके प्राणोंपर संकट आना और फिर उस संकटसे छूटना एवं अपनेमें धैर्य आदि शक्तियोंका होना इत्यादि बातोंको उसी ईश्वरका प्रभाव माना ॥ २४ ॥ अनेक गुणोंसे युक्त राजा अम्बरीषजी इसप्रकार अनेक प्रकारके कर्मोंद्वारा (अर्थात् सब कर्म कृष्णार्पण करके) आत्मारूप परब्रह्म वासुदेवसें भक्तिको दृढ़ करनेलगे; इसकारण ब्रह्मलोकसे लेकर जितने सांसारिक सुखभोग हैं सब उन्हे नरकके समान दुःखदायी जान पड़नेलगे ॥ २५ ॥ कुछ दिनबाद धीर वीर राजा अम्बरीषने अपने ही समान सुशील पुत्रोंको राज्य सौंप दिया। और आप, सब मायाके गुणोंसे मनको हटाकर आत्मास्वरूप ब्रह्मसें लगाकर वनको चले गये ॥ २६ ॥

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥
संकीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७ ॥

यह राजा अम्बरीषकी कथा परम पवित्र है, जो कोई इसको मन लगाकर पढ़ता या सुनता है वह अवश्य भगवान्का भक्त होता है ॥ २७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

अम्बरीषके वंशका विवरण

श्रीशुक उवाच—विरूपः केतुमान् शम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः ॥
विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—राजन्! राजा अम्बरीषके विरूप, केतुमान् और शंभु नाम तीन पुत्र हुए। विरूपके पृषदश्व हुए और उनके रथीतर हुए ॥ १ ॥ रथीतरके कोई पुत्र न था। जब रथीतरने वंशके लिये अङ्गिरा ऋषिसे प्रार्थना की तब उन्होने रथीतरकी स्त्रीमें ब्रह्मतेजसे युक्त पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ ये पुत्र रथीतरके क्षेत्र (रानी) में उत्पन्न हुए इसलिये रथीतरगोत्रवाले और अङ्गिराके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण 'आङ्गिरस' कहलाये। ये लोग क्षेत्रज ब्राह्मण होनेके कारण अन्यान्य रथीतरके वंशवाले क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ माने गये ॥ ३ ॥ अब मनुके इक्ष्वाकु नाम पुत्रके वंशका वर्णन करते हैं। एकसमय मनुने छींका तो उनकी नासिकासे एक बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम इक्ष्वाकु हुआ। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए, उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डक ये तीन पुत्र बड़े हुए ॥ ४ ॥ इनमेंसे आर्यावर्त (विन्ध्याचल और हिमालयके बीचकी भूमि) के अग्रभागमें पच्चीस और पीछेके भागमें पच्चीस राजा हुए। और आर्यावर्तमें तीन बड़े लड़के एवं अन्य अन्य विभागोंमें और और लड़के राजा हुए ॥ ५ ॥ एक समय राजा इक्ष्वाकुके घर अष्टका[1] श्राद्ध था। राजाने अपने पुत्र विकुक्षिको बुलाकर कहा कि पुत्र! वनमें जाकर पवित्र मांस (पिण्ड देनेके लिये) ले आओ, देर न करना ॥ ६ ॥ "बहुत अच्छा" कहकर विकुक्षि नाम राजकुमार वनको गये और वहाँ यज्ञके योग्य पवित्र मृगोंको मारा। भूखे और थके वीर विकुक्षिको श्राद्धका स्मरण नहीं रहा, मारे भूखके एक खरगोश अग्निमें भूनकर खागये ॥ ७ ॥ बाकी मांस लाकर पिताको दिया। श्राद्धके समय जब उनके गुरु सर्वज्ञ वसिष्ठजी मांस पर मन्त्र पढ़कर शुद्ध करनेवाला जल छोड़नेलगे तब इक्ष्वाकुसे कहा कि यह मांस जूठा होनेके कारण श्राद्धके कामका नहीं है ॥८॥ गुरुके बतानेसे इक्ष्वाकुको मालूम हुआ कि उनके पुत्रने मांस जूठाकर डाला

---

१ अष्टका पितृदैवत्ये, [illegible] सि० कौ० [illegible]

है। तब इक्ष्वाकुने सदाचारका उल्लङ्घन करनेवाले पुत्रको क्रोधित होकर अपने देशसे निकाल दिया ॥ ९ ॥ उसी समयसे इक्ष्वाकुको वैराग्य होगया। तब वह वसिष्ठजीसे योगविद्या सीखकर उसी योगके अभ्याससे देहान्तके बाद परब्रह्ममें लीन होगये ॥ १० ॥ पिताका शरीर छुटनेपर विकुक्षि ही बड़े होनेके कारण राजा हुए। विकुक्षि फिर देशमें आकर पृथ्वीमण्डलका राज्य करनेलगे। शश-(खरगोश) के खा लेनेसे इनका नाम 'शशाद' पड़ गया, इन्होने अपने राज्यके समयमें भगवान्के प्रसन्न होनेके लिये अनेक यज्ञ किये ॥ ११ ॥ विकुक्षिके पुरंजय नाम पुत्र हुआ। पुरंजयके इन्द्रवाह और ककुत्स्थ ये दो नाम और भी हुए। जिन कर्मोंसे पुरंजयके दो नाम और पड़े, उनको भी सुनो ॥ १२ ॥ पूर्वसमयमें देवतों और दैत्योंकी एक बहुत ही घोर लड़ाई हुई, जिसके देखनेसे मालूम पड़ता था कि विश्वभरका संहार हो जायगा। दैत्योंसे देवतालोग हार गये तब उन्होने पुरं-जयसे सहायता माँगी ॥ १३ ॥ पुरंजयने कहा, जो इन्द्र मेरा वाहन (बैल) बनें तो उनपर चढ़कर मैं दैत्योंको मारूँगा। देवतोंके देवता सर्वव्यापक विष्णु भगवान्के कहनेसे इन्द्रने स्वीकार कर लिया और बड़ा भारी बैल बन गये ॥१४॥ तब कवच पहनकर, दिव्य धनुष और पैने बाणोंको लेकर युद्ध करनेके लिये पुरंजय तैयार हुए, देवतागण उनकी स्तुति करनेलगे। राजा पुरंजय देवतोंके राजा इन्द्रके ककुद् (बैलकी पीठपर जो मांस उठा होता है) पर बैठे ॥ १५ ॥ उनके शरी-रमें विष्णु भगवान्के तेजका अंश आगया। परमपुरुष परमात्माके तेजसे युक्त होनेके कारण राजा दुर्जय हो गये। बस, उसी समय देवगणसहित पुरंजयने पश्चिम दिशामें जाकर दैत्योंके पुरको घेर लिया ॥ १६ ॥ पुरंजयसे दैत्योंने बड़ा ही रोमहर्षण संग्राम किया, किन्तु जितने दैत्य पुरंजयके सामने आये उनको वीर राजाने अपने पैने बाणोंसे यमलोक भेज दिया ॥१७॥ प्रलयकालकी आगके समान संहार करनेवाले पुरंजयके बाणोंकी चोटको दैत्यलोग न सह सके। उसी समय युद्ध छोड़कर अपने लोक (पातल) को भाग गये ॥ १८ ॥ राजऋषि पुरंजयने दैत्योंका पुर, धन और दैत्योंकी सम्पदा जीतकर इन्द्रको सौंप दिया। दैत्योंका पुर जीत-नेसे 'पुरंजय' और इन्द्रको वाहन बनानेसे 'इन्द्रवाह' एवं इन्द्रके ककुदपर बैठनेसे 'ककुत्स्थ' ये तीन नाम हुए ॥ १९ ॥ पुरंजयके पुत्रका नाम अनेना हुआ। अनेनाके पुत्रका नाम पृथु हुआ। पृथुके पुत्रका नाम विश्वगन्धि हुआ और विश्वगन्धिके पुत्रका नाम युवनाश्व हुआ ॥ २० ॥ युवनाश्वके पुत्रका नाम श्रावस्त हुआ, जिन्होने श्रावस्ती पुरी बसाई। श्रावस्तके पुत्रका नाम बृहदश्व हुआ और बृहदश्वके पुत्रका नाम कुवलयाश्व हुआ ॥२१॥ बली कुवलयाश्वने उत्तङ्ककी प्रसन्नताके लिये इक्कीस हजार पुत्रोंसहित धुन्धु नाम असुरको मारा ॥ २२ ॥ इसलिये उनका नाम धुन्धुमार भी पड़ा। धुन्धु दैत्यके मुखकी अग्निसे कुवलयाश्वके सब पुत्र जल गये, केवल दृढाश्व,

कपिलाश्व और भद्राश्व ये तीन पुत्र बचे। हे भारत! दृढाश्वके हर्यश्व नाम पुत्र हुआ। हर्यश्वके पुत्रका नाम निकुम्भ हुआ, निकुम्भके पुत्रका नाम बहुलाश्व हुआ। बहुलाश्वके पुत्र कृशाश्व हुए। कृशाश्वके पुत्र सेनाजित् हुए। सेनजित्के पुत्र युवनाश्व हुए। युवनाश्वके सौ रानियाँ थीं, पर कोई कन्या या पुत्र न था। इसलिये बहुत दुःखित हो युवनाश्वजी रानियोंसहित वनको गये। वहाँ इन्होने पुत्रके लिये ऋषियोंसे प्रार्थना की। दयालु ऋषियोंने एकाग्र होकर राजासे इन्द्रका यज्ञ कराया ॥२३॥२४॥ ॥२५॥२६॥ एकदिन रातको राजा युवनाश्व बड़े प्यासे हुए युवनाश्वने यज्ञमण्डपमें जाकर देखा तो सब ब्राह्मण सो रहे थे। वहाँ एक कलशमें रानीके पीनेके लिये मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल धरा हुआ था—राजा आप ही उसे उठाकर पी गये ॥२७॥ राजन्! ब्राह्मणलोगोंने सबेरे उठकर देखा कि कलश खाली है; तब राजासे पूछा कि यह किसका काम है? इस कलशमें जो पुंसवनका जल था उसे किसने पीलिया? ॥ २८ ॥ जब राजाके कहनेसे ब्राह्मणोंने जाना कि स्वयं राजाने जल पीलिया है तो यह जानकर "ईश्वरकी इच्छा ही ऐसी थी" कि सब ब्राह्मणोंने ईश्वरको प्रणाम किया और कहा कि अहो! दैव बड़ा ही प्रबल है! ॥ २९ ॥ उसके बाद नौ महीने बीतनेपर युवनाश्वकी दाहिनी कोखको फाडकर एक चक्रवर्ती महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ बालकको रोते देखकर ब्राह्मणलोग बोले कि यह बालक बहुत रो रहा है, किसका दुग्ध पीकर जिये? वैसे ही इन्द्रने कहा कि कुछ चिन्ताकी बात नहीं है, मैं इसका पालन करूँगा। यह कहकर इन्द्रने अपने अँगूठेके पासवाली अङ्गुली बालकके मुखमें देदी और कहा पुत्र! मत रोओ ॥३१॥ राजा युवनाश्व भी ब्राह्मणोंकी और देवतोंकी कृपासे नहीं मरे। किन्तु अपने राज्यमें लौटकर नहीं आये, वनमें ही तपस्या करके सिद्ध हो गये ॥ ३२ ॥ उस राजकुमारका नाम मांधाता हुआ। मांधाता बड़े ही प्रतापी हुए। उनसे रावण आदि बड़े बड़े बली अनार्य दस्यु डरते और घबड़ाते थे। इसलिये इन्द्रने मांधाताका त्रसद्दस्यु नाम भी रक्खा ॥३३॥ युवनाश्वके पुत्र मांधाता चक्रवर्ती राजा हुए। इन्होने सातो द्वीप पृथ्वीको जीता और उसका शासन किया। यह भी हरि भगवान्का अंशावतार थे ॥३४॥ आत्मज्ञानी होकर भी महाराज मांधाताने बड़ी बड़ी दक्षिणा-वाले यज्ञोंसे सर्वव्यापक इन्द्रियोंसे परे देवदेव यज्ञपुरुषकी आराधना की ॥३५॥ द्रव्य (सामग्री), मन्त्र, विधि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज (यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण), धर्म, देश और काल; ये सब उसी यज्ञपुरुषके रूप हैं ॥३६॥ जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँपर अस्त होता है, उस सब पृथ्वीमें महाराज मांधाताका राज्य था ॥ ३७ ॥ मांधाताका विवाह शशबिन्दु राजाकी कन्या इन्दुमतीसे हुआ। इन्दु-मतीके गर्भसे महाराज मांधाताके तीन पुत्र हुए। १ पुरुकुत्स २ अम्बरीष[1] और

१ यह दूसरे अम्बरीष हैं। पहले जिन अम्बरीषका चरित्र कह आये हैं वह इनसे भिन्न हैं।

२ योगी मुचुकुन्द ॥ ३८ ॥ धर्मात्मा मांधाताके पचास कन्याएँ भी हुईं। मुचुकुन्द आदि राजकुमारोंकी उनपचास बहनोंने सौभरि नाम ऋषिको अपना पति बनाया ॥३९॥ सौभरि ऋषि यमुनाजलके भीतर गोता लगायेहुए बड़ा कठिन तप (ब्रह्मका ध्यान) कर रहे थे। जलके भीतर बड़े भारी मच्छको मछलियोंसे भोगविलास करते देख इनका भी चित्त कामके वशमें हो गया। इन्होने विवाहके विचारसे मांधाताके निकट जाकर एक राजकुमारी माँगी॥ ४० ॥ राजाने चतुरता करके कहा कि महामुनिजी! कन्याओंका स्वयंवर करदिया जायगा, जो कन्या आपके गलेमें जयमाल डाल दे उसे आप लेलीजिये। मुनिने मनमें विचारा कि "राजाने मुझको देखा यह बुड्ढा है, बाल पक गये हैं, झुर्रियाँ पड़ गई हैं, सिर हिलता है, कौन स्त्री इसे स्वीकार करेगी?। ऐसाही समझकर मुझसे स्वयंवरका बहाना कर दिया है ॥ ४१ ॥ खैर, मैं अपने योगबलसे ऐसा सुंदर नवयुवक बन जाऊँगा कि मनुष्य राजकुमारिओंकी कौन कहे, देवतोंकी भी स्त्रियाँ देखकर मोहित हो जायँगी। समर्थ ऋषीश्वरने ऐसा निश्चय किया और स्वयंवरके लिये परमसुन्दर रूप धरकर अन्तःपुरमें गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मुनिके रूपपर पचासो राजकुमारियाँ रीझ गईं। बहनापेका स्नेह भूलकर सब कन्याएँ मुनिके लिये परस्पर झगडा करनेलगीं कि "यह हमारे योग्य वर हैं, तुम इनके योग्य नहीं हो" ॥ ४४ ॥ सौभरि मुनिने पचासो राजकुमारियोंसे विवाह किया। उसी समय अपने तपोबलसे सुन्दर भवन बना दिये। उन घरोंमें सब सामान अनमोल था। अनेक उपवन लगेहुए थे। जिनमें निर्मल जलवाले सरोवर शोभायमान थे। फूलोंकी सुगन्धसे युक्त बाग मनको हरनेवाले थे ॥ ४५ ॥ बड़ी बड़ी बारहदरियाँ बनी थीं। उनमें बहुमूल्य पलँग, आसन, वस्त्र, गहने और स्नान करनेके लिये जल, उबटनेका मसाला, फूलोंके हार आदि भोगविलासकी सामग्रियाँ उपस्थित थीं। सुन्दर गहने पहने और वस्त्र धारण कियेहुए दास दासी सेवाके लिये उपस्थित थे। कहीं पक्षी बोल रहे थे, कहीं भँवर गुञ्जार कर रहे थे और कहीं बन्दीजन महामुनि सौभरिका यश गा रहे थे। ऐसे भवनोंमें बहुत दिनतक सौभरिजीने सांसारिक विषयोंका भोग किया ॥ ४६ ॥ महामुनि सौभरिकी गृहस्थीके विभवको देखकर सातो द्वीप पृथ्वीके पति महाराज मांधाताका भी अहङ्कार जाता रहा। सौभरिजीकी गृहस्थीका विभव चक्रवर्ती राजाके विभवसे बढ़कर था ॥ ४७ ॥ इसप्रकार गृहस्थाश्रममें आसक्त होकर सौभरि ऋषि अनेक प्रकारके सांसारिक सुखों (विषयभोग) का अनुभव करनेलगे। किन्तु घीके बूँद पड़नेसे जैसे आग नहीं बुझती, बरन् और भी बढ़ती है, वैसे ही विषभोगकी इच्छा न घटी, बरन् दिन दूना रात चौगुना चाव चढ़नेलगा ॥ ४८ ॥ एक समय बह्वृचाचार्य सौभरि ऋषि बैठेहुए थे। अकस्मात् इनके हृदयमें यह विचार उत्पन्न

हुआ कि मछली और मच्छके भोगविलासको देखकर मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, जिससे इतने दिनका कियाहुआ तप नष्ट होगया; सब श्रम विफल ही गया ॥ ४९ ॥ सौभरि मुनि यों पश्चात्ताप करनेलगे कि हाय! मैं तपस्वी, साधु और सदाचारी था; मेरे सर्वनाशको देखो। जलके भीतर मछलीके सङ्गसे मेरा बहुत दिनका तप नष्ट होगया ॥ ५० ॥ जिसे मोक्षकी इच्छा हो उस पुरुषको उचित है कि मैथुनमें तत्पर जीवोंका सङ्ग भूलकर भी न करे। सदा ऐसा यत्न करे जिसमें इन्द्रियाँ सांसारिक विषयोंकी ओर चलायमान न हों; निर्जन स्थानमें अकेले रहकर अनन्त ईश्वरमें मनको लगावे। यदि सङ्ग करना हो तो ईश्वरके सच्चे भक्त साधु महात्माओंका ही सङ्ग करे॥ ५१ ॥ मैं अकेले जलमें तप कर रहा था, वहाँ मछली मच्छके सङ्गसे मुझे विवाह करनेकी इच्छा हुई, पचास स्त्रियोंसे बिवाह किया, उनमें पचास हजार पुत्र और कन्या उत्पन्न हुए। तब भी इसलोक व परलोकसे संवन्ध रखनेवाले मनोरथोंका अन्त नहीं मिलता। मायाके गुणोंमें मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई, जिससे मुझको संसारके विषयोंका भोग करना ही जीवनका उद्देश्य मालूम पड़नेलगा ॥ ५२ ॥ हे राजन्! इसप्रकार गृहस्थ आश्रममें रहते रहते सौभरिजीको वैराग्य होगया। तब वह वानप्रस्थ होकर तप करनेकेलिये वनको गये। सौभरिजीकी पतिव्रता स्त्रियाँ भी उनके साथ वनको गईं ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानी सौभरि मुनिने, जिससे परमेश्वरका शुद्ध ज्ञान हो ऐसा तीव्र तप करके, शरीरस्थित तीनो अग्नियोंसहित आत्माको परमात्मामें लीन करदिया ॥ ५४ ॥

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ॥
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥

अपने पतिको इसप्रकार परब्रह्ममें लीन हुआ देखकर, जैसे अग्निके बुझ जानेपर उसकी लपटें भी उसीके साथ बुझ जाती हैं वैसे ही सब रानियाँ भी मुनिके प्रभावसे सती होगईं ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

राजा हरिश्चन्द्रका वृत्तान्त

श्रीशुक उवाच—मांधातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ॥
पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥
हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले। मांधाताके सबमें श्रेष्ठ और बड़े पुत्र अम्बरीषजी थे।

उनको उनके बाबा युवनाश्वने अपना पुत्र बनाया था। अम्बरीषके पुत्रका भी नाम युवनाश्व हुआ। युवनाश्वके पुत्रका नाम हारीत हुआ। अम्बरीष, युवनाश्व और हारीत; ये तीनो मांधाताके गोत्रके "प्रवर" हैं ॥ १ ॥ अब इसी वंशमें उत्पन्न राजा पुरुकुत्सके वंशका वर्णन करते हैं। रसातलमें रहनेवाले नागोंने पुरुकुत्ससे अपनी बहन नर्मदाका विवाह कर दिया। नागोंके कहनेसे नर्मदा पुरुकुत्सको रसातलमें लेगई ॥ २ ॥ विष्णुके अंश राजा पुरुकुत्सने नागोंपर अत्याचार करनेवाले दुष्ट गन्धर्वोंको मारा। नागोंने प्रसन्न होकर वर दिया कि—"जो कोई इस चरित्रको पढ़े या सुनेगा उसे नागोंसे भय न होगा" ॥ ३ ॥ पुरुकुत्सके त्रसद्दस्यु और त्रसद्दस्युके अनरण्य हुए। अनरण्यके हर्यश्व, हर्यश्वके अरुण और अरुणके त्रिबन्धन हुए ॥ ४ ॥ त्रिबन्धनके सत्यव्रत हुए। इनका नाम त्रिशङ्कु भी है। यह गुरुके शापसे चाण्डाल हो गये थे, किन्तु विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे इनको शरीरसहित स्वर्गको भेज दिया। स्वर्गसे देवतोंने त्रिशङ्कुको नीचे ढकेल दिया, त्रिशङ्कुने वहींसे विश्वामित्रको पुकारा, विश्वामित्रने अपने प्रभावसे गिरने नहीं दिया, आकाशमें ही रोक दिया। त्रिशङ्कुका मुख नीचे और पैर ऊपर हैं, और अब भी वह स्वर्गके पास देखपड़ते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ त्रिशङ्कुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए; जिनके लिये बहुत वर्षतक विश्वामित्र और वसिष्ठ ऋषि पक्षीका रूप धरकर लड़े हैं[1] ॥ ७ ॥ हरिश्चन्द्रके कोई पुत्र न था, इसकारण यह बहुत ही उदास रहते थे। देवऋषि नारदके उपदेशसे वरुणकी शरणमें जाकर राजाने यों प्रार्थना की कि "हे देव! हमारे एक पुत्र उत्पन्न हो, ऐसा वर दीजिये ॥८॥ हे प्रभो! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न होगा तो हम उसी पुत्रको यज्ञपशु बनाकर आपका यज्ञ करेंगे"। वरुणने कहा—"तथास्तु"। वरुणके वर देनेसे हरिश्चन्द्रके रोहित नाम पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ पुत्र उत्पन्न होनेपर वरुणने आकर कहा कि राजन्! अब आपको पुत्र हुआ है, प्रतिज्ञाके अनुसार मेरा यज्ञ करो। तब राजाने कहा कि अभी पशु अपवित्र है, जब दस दिनका होनेपर पवित्र होगा तब आपकी पूजा करूँगा ॥ १० ॥ दस दिनके बाद फिर वरुणने आकर कहा कि अब यज्ञ करो। राजाने फिर बहाना किया कि दाँत निकलनेपर पशु शुद्ध होगा ॥ ११ ॥ जब बालकके दाँत निकल आये तब फिर वरुणने आकर यज्ञ करनेके लिये कहा कि

---

१ इसकी कथा यों है कि—विश्वामित्रने राजसूय यज्ञकी दक्षिणाके बहाने हरिश्चन्द्रका सर्वस्व हर लिया और यहाँतक कि भङ्गीके हाथ वेंचा। सूर्यवंशी राजाओंके कुलगुरु वसिष्ठजीको अपने शिष्यकी दुर्दशा देखकर बहुत क्रोध आया, इसलिये उन्होने विश्वामित्रको शाप दिया कि तुम आड़ी (पक्षिविशेष) पक्षी होजाओ। विश्वामित्रने भी वसिष्ठको शाप दिया कि तुम बंगला हो जाओ। परस्पर शापसे दोनो मुनि पक्षी हो गये, और कई हजार वर्षतक दोनोमें युद्ध होता रहा।

अब पशुके दाँत निकल आये हैं, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। राजाने कहा कि प्रभो! कुछ दिन और क्षमा करो, एकबार दाँत गिर जानेपर पशु शुद्ध होगा ॥ १२ ॥ पशुके दाँत गिरनेपर फिर वरुणने आकर कहा कि अब तो दाँत भी गिर गये, अपना कहा पूरा करो। राजाने कहा कि देवदेव! अबकीबार दाँत निकलनेपर पशु शुद्ध होगा। फिर दाँत निकलनेपर वरुणने आकर कहा कि अब मेरा पूजन करो। फिर हरिश्चन्द्रने बहाना किया कि जब पशु कवच पहनकर संग्राम करसके तब पवित्र होगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ पुत्रके सुदृढ़ प्रेम और स्नेहके कारण राजा हरिश्चन्द्र इसप्रकार बहाना करके वरुणको टालने लगे। किन्तु राजा जिस जिस समयकी अवधि करनेलगे उस उस अवधिके पूरे होनेपर वरुणजी आकर प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये राजाको घेरनेलगे ॥ १५ ॥ इसी समयमें किसीभाँति रोहित कुमारको पिताका अभिप्राय मालूम होगया; तब वह प्राण बचानेके लिये धनुप बाण लेकर शिकारके बहान वनको भाग गये ॥ १६ ॥ इधर वरुणने हरिश्चन्द्रका छल जानकर क्रोध किया, जिससे हरिश्चन्द्रके जलन्धर रोग हो गया। रोहितने पिताके पेटमें जलन्धर रोग होनेका समाचार पाकर अपनी राजधानीमें आनेका विचार किया। किन्तु इन्द्र एक मनुष्यके रूपसे रोहितको मिले और "पृथ्वीमें घूमना पुण्य है, क्योंकि अनेक तीर्थ और पवित्र क्षेत्रोंमें रहनेसे मनुष्यका मङ्गल होता है" यह कहकर उन्हे वहींसे लौटा दिया। फिर कई वर्षतक राजकुमार रोहित वनमें रहे ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसीभाँति दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्षमें जब जब रोहितने पिताके पास जानेका विचार किया तब तब इन्द्रने बूढ़े ब्राह्मणके रूपसे राहमें मिलकर ऐसा ही उपदेश दिया, जिससे रोहित राहसे लौट गये ॥ १९ ॥ छठे वर्ष फिर वनोंमें विचरतेहुए रोहितने पिताके पास जानेकी इच्छासे यात्रा की। राहमें रोहितने अजीगर्त नाम ऋषिसे उनके मँझले पुत्र "शुनःशेफ" को मोल ले लिया ॥ २० ॥ और अपनी जगहपर दूसरे पशु शुनःशेफको लाकर पिताको दिया एवं पिताको प्रणाम किया। वरुणने कृपा की, राजाका जलन्धर रोग जाता रहा। तब महायशस्वी राजा हरिश्चन्द्रने वरुण आदि देवतोंकी प्रसन्नताके लिये अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार 'पुरुषमेध' (जिसमें पुरुषका बलिदान होता है) यज्ञ किया ॥ २१ ॥ इस यज्ञमें विश्वामित्रजी 'होता' और आत्मज्ञानी जमदग्नि मुनि 'अध्वर्यु' व महामुनि वसिष्ठजी 'ब्रह्मा' एवं अपास्य मुनि 'उद्गाता' हुए ॥ २२ ॥ इन्द्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको एक सोनेका बनाहुआ दिव्य रथ दिया। शुनःशेफके वृत्तान्तको अगे विस्तारसे कहेंगे ॥ २३ ॥ हे राजन्! विश्वामित्रने रानीसहित राजा हरिश्चन्द्रके सत्यकी परीक्षा ली, किन्तु उनके सत्य, सामर्थ्य और धैर्यको देखकर उन्हे विस्मित और प्रसन्न होना पड़ा। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको विशुद्ध ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया

॥ २४ ॥ राजाने मनको पृथ्वीमें, पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकारमें एवं अहंकारको महत्तत्त्वमें मिला दिया अर्थात् लीन कर दिया ॥ २५ ॥

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥
अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥ २६ ॥

विषयवासनाओंको त्यागकर आत्माका रूप (ज्ञान) विचारनेलगे। आत्माकेरूप (ज्ञान) से अज्ञानको नष्ट करदिया । यह अज्ञान ही आत्माका आवरण (माया) है । अन्तमें परमानन्दके अनुभवसे ज्ञानको भी त्यागकर सब प्रकारके बन्धनोंसे छूटकर उस ब्रह्मरूपको प्राप्त होगये जो अनिर्देश्य और अतर्क्य है ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय

राजा सगरके वंशका विवरण

श्रीशुक उवाच—हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता ॥
चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितके पुत्रका नाम हरित हुआ । हरितके पुत्रका नाम चम्प हुआ, जिससे चम्पा पुरी बसाई । चम्पके पुत्र सुदेव हुए, सुदेवके पुत्र विजय हुए, विजयके पुत्र भीरुक हुए । भीरुकके वृक और वृकके बाहुक हुए । बाहुक राजा अपने शत्रुओंसे युद्धमें हार गये । राज्य छिन जानेसे राजा बाहुक अपनी रानियोंसहित वनको चले गये ॥ १ ॥ २ ॥ वृद्ध राजा बाहुकका वनमें देहान्त होगया । बड़ी रानी राजाके साथ सती होनेको उद्यत हुईं, किन्तु महर्षि और्व (जिनके आश्रममें जाकर राजा बाहुक रहे थे) जानते थे कि रानी गर्भवती हैं, इसलिये उन्होने रानीको सती होनेसे रोकदिया ॥ ३ ॥ रानीकी और सौतोंने रानीको गर्भवती जानकर मारे डाहके भोजनके अन्नमें मिलाकर विष देदिया । महामुनि और्वके प्रतापसे गर्भ नष्ट नहीं हुआ, विषसहित एक प्रतापशाली बालक उत्पन्न हुआ । वही बालक महायशस्वी राजा सगर हुए ॥ ४ ॥ राजा सगर चक्रवर्ती सम्राट् हुए । राजा सगरके पुत्रोंने सागर खोदा है । राजा सगरने अपने गुरुके कहनेसे तालजङ्घ, यवन, शक, हैहय, बर्बर आदि जातिवाले शत्रुओंको प्राणसे नहीं मारा, किन्तु उनके वेषको बिगाड़ दिया ।

किसीका शिर मुड़वा दिया, किसीके गलमुच्छें और दाढ़ी रखादी, किसीके शिरके आधे बाल मुड़वादिये और किसीको आज्ञा दी कि सदा अपने बाल खोले रहें ॥५॥६॥ किसीको अकच्छ रहनेकी और किसीकों नग्न रहनेकी आज्ञा दी। राजा सगरने और्व ऋषिके बतायेहुए मार्गसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्ववेदमय और सर्वदेवमय, परमात्मा, परमेश्वर, भगवान् हरिकी आराधना की। दिग्विजय करनेके लिये सगरने अपना घोड़ा छोड़ा, अश्वमेध यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये उसे इन्द्र हर ले गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ पिताकी आज्ञासे रानी सुमतिके साठ हजार अभिमानी लड़के यज्ञका घोड़ा खोजनेके लिये चले पृथ्वीपर पता न लगनेके कारण वे राजकुमार चारो दिशाओंसे पृथ्वीको खोदनेलगे ॥ ९ ॥ पूर्व और उत्तरके कोनेमें खोदते खोदते कपिल मुनिके पास खड़ा हुआ घोड़ा देख पड़ा। कपिलजी आँखें मूँदेहुए समाधिमें बैठे थे। उन्हीको चोर जानकर सब राजकुमार कहनेलगे कि "देखो यह घोड़ेका चोर आँखें मूँदेहुए बैठा है, इस पापीको मारो मारो"। यह कहतेहुए शस्त्र उठाकर साठ हजार राजकुमार कपिल मुनिकी ओर दौड़े, तब तो कोलाहलके कारण मुनिकी आँखें खुल गईं ॥ १० ॥ ११ ॥ इन्द्रकी मायासे राजकुमार मोहित होगये, इसकारण उन्होने महात्मा कपिलदेवका अपमान किया। इसका फल भी वैसे ही मिल गया; क्योंकि जितने राजकुमार थे सब उसी समय अपने अपने शरीरकी अग्निसे जलकर राखका ढेर हो गये ॥ १२ ॥ कोई कोई कहते हैं कि "कपिल मुनिके कोपकी अग्निसे सगरके पुत्र जल गये"—किन्तु यह बात सत्य नहीं है। क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी विष्णुका अवतार साक्षात् शुद्ध सतोगुणमय शान्तमूर्ति हैं। तीनो लोकोंको पवित्र करनेवाले उनके मनमें तमोगुणकी प्रवृत्ति (क्रोधका उदय) कैसे संभव है? भला आकाशमें पृथ्वीकी रज होना कैसे संभव है ? ॥ १३ ॥ जिन कपिल मुनिने सांख्ययोगरूपी सुदृढ़ नाव चलाई है–जिस नावपर चढ़कर मोक्षकी इच्छावाले लोग अपार संसारसागरके पार पहुँच जाते हैं, उन परमात्माके स्वरूप सर्वज्ञ महामुनिके मनमें शत्रु मित्र आदिकी भेदबुद्धि कहाँ स्थान पा सकती है ? ॥ १४ ॥ सगर राजाके केशिनी नाम रानीसें एक असमंजस नाम पुत्र हुआ था। असमंजसके अंशुमान् नाम एक सुशील पुत्र था। वह अपने बाबा सगरका बड़ा ही शुभचिन्तक था ॥ १५ ॥ असमंजस लड़कपनमें बड़े ही ऊधमी थे। यह पहले जन्मके योगी थे, किन्तु सङ्गसे भ्रष्ट हो गये थे, इसीसे इनको पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त याद था ॥ १६ ॥ इसलिये यह अधिक ऊधम करते थे, जिससें पिता ऊब कर निकाल दें। असमंजस ऐसे ऐसे ऊधम करनेलगे जो प्रजाको और जातिवालोंको असह्य हो उठे। खेलतेहुए लड़कोंको पकड़कर सरयू नदीमें बोर देते थे। इस ऊधमसे सब लोग बहुत घबड़ा गये ॥ १७ ॥ पिताने कई बार

समझाया, पर असमंजसने इस कुचरित्रको न छोड़ा, तब राजा सगरने पुत्रका स्नेह त्याग कर असमंजसको देशसे निकाल दिया। जाते समय योगी असमंजसने उन बालकोंको, जिन्हे बोर दिया था, अपने योगबलसे जिलाकर दिखा दिया और देशसे निकलगये ॥ १८ ॥ अयोध्याके रहनेवाले लोग मरेहुए पुत्रोंको जीते जागते घर आते देख बहुत ही विस्मित हुए और यह हाल सुनकर राजा सगरको भी पुत्रके निकाल देनेका बड़ाही पछतावा हुआ ॥ १९ ॥ सगरने अपने पोते अंशुमान्‌को घोड़ेका पता लगानेके लिये भेजा। अंशुमान् भी अपने पिताके भाइयोंकी बनाईहुई राहसे कपिलजीके पास पहुँचे और मुनिके पासही यज्ञका घोड़ा भी देखा ॥ २० ॥ वहाँपर बैठेहुए महामुनि कपिल भगवान्‌को देख अंशुमान् शिर झुकाकर हाथ जोड़ एकाग्रमन हो स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ अंशुमान् बोले—हे ईश! हमऐसे अज्ञ पुरुषोंकी कौन कहे—साक्षात् देवदेव ब्रह्माजी भी समाधि और युक्तियोंसे आपको न देख सकते हैं और न जान सकते हैं। तब हम तो उन ब्रह्माजीके मन, शरीर और बुद्धिसे रची हुई अनेक प्रकारकी सृष्टियोंमें एक क्षुद्र जीव हैं। आप ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ परमेश्वर हैं ॥ २२ ॥ हे देव! जितने देहधारी जीव हैं उनके आत्मामें आप भलीभाँति स्थित हैं तथापि वे आपको नहीं जान पाते—केवल आपके गुणों(शक्तियों)को ही देख पाते हैं। अथवा आपके गुण भी उनको नहीं देख पड़ते, केवल 'तम'को ही देख पाते हैं; क्योंकि त्रिगुणात्मिका बुद्धि ही उनकी प्रधानशक्ति है और आपकी मायासे मोहित होनेके कारण वे आन्तरिक ज्ञानसे शून्य हैं, उनको केवल बाह्य विषयोंका ही ज्ञान है ॥ २३ ॥ हे प्रभो! आपकी मूर्ति शुद्ध सतोगुणमयी, शान्त है। इसीकारण जिन लोगोंके हृदयमें मायागुणजनित भेदभाव और मोह नहीं है वे सनकादिक मुनिगण ही आपका ध्यान और भावना कर सकते हैं। मैं मूढ़ हूँ, कैसे आपका विचार या भावना करसकता हूँ अथवा जान सकता हूँ? ॥ २४ ॥ हे शान्तरूप! मैं आपको केवल नमस्कार करता हूँ। आप पुराणपुरुष हैं, जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और नाश आदि मायाके गुण आपके कार्य हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता आपके रूप हैं। आपको न पाप है और न पुण्य है। आपको नाम या रूप नहीं है। संसारी जीवोंको ज्ञानका उपदेश देनेकेलिये आपने शरीर धारण किया है ॥ २५ ॥ काम, लोभ, ईर्ष्या, मोहमें जिनके चित्त भ्रान्त हो रहे हैं वे लोग आपकी ही मायासे बनेहुए लोकोंको परम आनन्द देनेवाली सार वस्तु मानकर गृह आदिमें आसक्त रहते हैं ॥ २६ ॥ किन्तु हे भगवन्! हे सर्वव्यापक! आपकी कृपासे, आपका मङ्गलमय दर्शन होनेसे आज हमारा कामना, कर्म और इन्द्रियोंका आश्रयरूप सुदृढ़ मोह-पाश कट गया ॥ २७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! इसप्रकार अंशुमान्‌ने कपिलजीकी स्तुति

की और प्रभावका वर्णन किया, तब अनुग्रह प्रकट करतेहुए कपिलदेवजी बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् कपिलदेवजीने कहा कि—"पुत्र ! यह तुम्हारे बाबाके यज्ञका घोड़ा खड़ा है, इसे लेजाओ। और ये तुम्हारे साठ हजार चाचा जले-हुए पड़े हैं। गङ्गाजलका स्पर्श हुएविना इनकी सद्गति नहीं होगी" ॥ २९ ॥ तदनन्तर अंशुमान्ने शिर झुकाकर मुनिको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। प्रतापी अंशुमान् इसप्रकार कपिलदेवको प्रसन्न करके घोड़ा लेकर यज्ञमण्डपमें आये। राजा सगरने वही यज्ञपशु पाकर यज्ञको पूरा किया ॥ ३० ॥

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः ॥
और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥

फिर समयानुसार राजा सगरको संसारसे वैराग्य होगया, तब वह सब राजकाज अंशुमान्को सौंपकर महामुनि और्वके उपदेशानुसार बन्धनमुक्त हो उत्तम गतिको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

राजा भगीरथका तप करके पृथ्वीपर गंगाको लाना

श्रीशुक उवाच—अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ॥
कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—अंशुमान्ने (अपने पुत्रको राज्य देकर) गङ्गाको पृथ्वीपर लानेकी कामनासे बहुत दिनोंतक तप किया, किन्तु कामना नहीं पूरी हुई, बीचमें ही शरीर छूट गया ॥१॥ उनके पुत्र दिलीप भी उन्हीकीभाँति गङ्गाको न लासके, बीचमें ही कालके गालमें लय हो गये। दिलीपके पुत्र भगीरथने गङ्गाको लानेकी इच्छासे बड़ा ही घोर तप किया ॥ २ ॥ तब गङ्गाजीने प्रकट होकर भगीरथसे कहा कि पुत्र ! मैं प्रसन्न होकर तुमको वर देने आई हूँ। राजन्! भगीरथने यह सुनके नम्रतापूर्वक अपनी अभिलाषा प्रकट की ॥ ३ ॥ तब गङ्गा देवीने कहा कि राजन् ! जब मैं आकाशसे पृथ्वीपर गिरूँगी तब मेरे वेगको कौन रोकेगा ? क्योंकि यदि कोई मेरे वेगको रोकनेवाला न होगा तो मैं पृथ्वीको भेदकर रसातल चली जाऊँगी ॥ ४ ॥ किन्तु मैं पृथ्वीपर न जाऊँगी, क्योंकि जितने पापी हैं वे अपने अपने पातकको मुझमें आकर धोवेंगे, उस पापियोंके अपार पाप-पङ्कको मैं कहाँ धोऊँगी ? इसका यत्न कोई सोचिये ॥ ५ ॥ भगीरथजी

बोले—माता ! त्रिभुवन–पावन संन्यासी, ब्रह्मज्ञानी शान्तरूप साधुजन तुममें आकर स्नान करेंगे, उनके अङ्गसङ्गसे तुम्हारी शुद्धि होगी। क्योंकि उनके हृदयमें पापनाशन भगवान् हरि वास करते हैं ॥ ६ ॥ आपके वेगको सब देहधारियोंके आत्मा साक्षात् रुद्र भगवान् धारण करेंगे। जैसे कपड़ा और डोरे परस्पर ओतप्रोत होते हैं, वैसेही यह विश्व उन्ही शङ्कर देवमें ओतप्रोत है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! गङ्गासे यों कहपर भगीरथजी फिर तप करनेलगे, थोड़े ही समयमें शिव भगवान् भी उनपर प्रसन्न हुए ॥८॥ और राजाकी प्रार्थनाको स्वीकार करके सब लोकोंके हितचिन्तक शिवभगवान्ने हरि-चरण-स्पर्शसे पवित्र जलवाली गङ्गाके वेगको सावधान होकर शिरपर धारण किया ॥९॥ राजऋषि भगीरथ जहाँ अपने पूर्वजोंके शरीर भस्म हुए पड़े थे वहाँ त्रिभुवनपावनी गङ्गाको ले चले ॥१०॥ वायुके तुल्य वेगवाले रथपर बैठकर भगीरथजी चले और उनके पीछे अनेक देशोंको पवित्र करती हुई गङ्गाजी चलीं। सगरराजाके पुत्रोंके शरीरोंके भस्मको गङ्गाजीने जाकर बहा दिया ॥११॥ हे राजन् ! राजा सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपमान करनेसे भस्म हुए थे, तथापि केवल देहके भस्मद्वारा गङ्गाजलका स्पर्श करनेसे स्वर्गको गये ! ॥ १२ ॥ जब सगरके पुत्र जलेहुए शरीरद्वारा गङ्गाजलका स्पर्श करके तर गये, तब जो लोग श्रद्धापूर्वक नियम धारण करके साक्षात् देवी भागीरथीमें स्नान करेंगे— उनके तरनेमें क्या संदेह है ? ॥ १३ ॥ यह गङ्गादेवीका माहात्म्य जो यहाँ कहा गया सो कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि जिन अनन्त भगवान्के चरणोंमें श्रद्धापूर्वक मन लगाकर विषयवासनारहित मुनिगण शीघ्र ही दुस्त्यज देह-संबन्धको त्यागकर मुक्त हो जाते हैं इन्हीसे आवागमन छुड़ानेवाली गङ्गाजी उत्पन्न हुई हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ भगीरथके श्रुत नाम पुत्र हुआ, श्रुतके नाभ और नाभके सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपके अयुतायु और अयुतायुके ऋतुपर्ण हुए । ऋतुपर्णसे राजा नलसे बड़ी मित्रता थी, ऋतुपर्णने नलसे अश्वविद्या सीखी और नलको पाँसा खेलनेकी विद्या बताई। ऋतुपर्णके सर्वकाम नाम पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ सर्वकामके पुत्र सुदास हुए। सुदासके पुत्र सौदास हुए, जिनकी स्त्रीका नाम मदयन्ती था। इनको कल्मापपाद और मित्रसह भी कहते हैं। वसिष्ठमुनिके शापसे इनको राक्षस होना पड़ा। अपने ही कर्मके फलसे यह अपने वीर्यद्वारा पुत्र नहीं उत्पन्न करसके ॥ १८ ॥ राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि— ब्रह्मन् ! वसिष्ठजीने गुरु होकर राजा सौदासको क्यों शाप दिया ? यह हमारी सुननेकी इच्छा है, यदि कोई गुप्त बात न हो तो कहिये ॥ १९ ॥ शुकदेवजी बोले—राजा सौदास एक समय शिकार खेल रहे थे, वनमें दो राक्षस मृगका रूप धर घूम रहे थे। राजाने एकको मारडाला। दूसरा भागकर बच गया और रसोंइयेके वेषसे राजभवनमें छिपकर रहनेलगा। वह राक्षस सदा अपने भाईका

बदला लेनेके लिये अवसर देखता था ॥ २० ॥ एकदिन राजाके घरमें वसिष्ठजी भोजन करने आये। उस पापी असुरने मनुष्यका मांस पकाकर राजाके गुरु वसिष्ठजीके आगे परोस दिया ॥ २१ ॥ वसिष्ठजीने अपने आगे अभक्ष्य मनुष्यमांस देखकर बड़ा ही क्रोध किया और राजाको शाप दिया कि "अरे! तूने यह राक्षसोंका भोजन मेरे आगे रक्खा, इसलिये तू नरमांसाहारी राक्षस होजा" ॥ २२ ॥ किन्तु जब वसिष्ठजीको मालूम हुआ कि यह कार्य दुष्ट राक्षसका है तब कहा कि राजन्! तुमको केवल बारह वर्षतक मेरा शाप भोगना होगा। जब वसिष्ठजीने शाप दिया तब अपनेको निर्दोष देखकर गुरुके अन्यायपर राजाको क्रोध आगया और उन्होने गुरुको शाप देनेके लिये जल हाथमें लिया ॥२३॥ किन्तु रानी मदयन्तीने हाथ पकड़कर राजाको शापदेनेसे रोका। राजाने सोचा कि दिशा, आकाश, पृथ्वी आदि सब स्थानोंमें जीव रहते हैं, जहाँ यह शापका तीक्ष्ण जल छोड़ूँगा वहीं जीव-हत्या होगी। यह सोचकर वह जल अपने ही पैरोंपर छोड़ लिया ॥ २४ ॥ जलके पड़ते ही दोनो पैर झुलसकर काले पड़ गये—इसीसे राजा सौदासका कल्मापपाद नाम पड़ा। गुरुके शापसे राजा सौदास राक्षस होकर वनोंमें विचरनेलगे। एक स्थानपर एक वनवासी पक्षियोंका जोड़ा विहार कर रहाथा ॥ २५ ॥ वे दोनो वास्तवमें पक्षी न थे, एक मुनि अपनी स्त्रीसहित पक्षीके रूपमें विहार कर रहे थे। राजा थे भूखे, इन्होने पक्षीरूपधारी ब्राह्मणको पकड़ लिया। ब्राह्मणकी स्त्रीका रतिसे जी नहीं भराथा। वह दीन स्वरसे विनय करती हुई राजाके बोली कि "हे राजन्! आप राक्षस नहीं हैं; आप इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न महापराक्रमी महारथी राजा हैं। हे वीर! आप रानी मदयन्तीके पति राजा सौदास हैं, आपको ऐसा अधर्म करना योग्य नहीं है। यह मेरा पति ब्राह्मण है, कृपा कर इसे न मारो, मेरे कहनेसे मुझे देदो। मेरी इच्छा अभी पूर्ण नहीं हुई है, क्योंकि मैं पुत्र चाहती हूँ ॥ २६ ॥ २७ ॥ राजन्! इस मनुष्यशरीरसे मनुष्यके सब पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। अतएव किसीको मारना उसकी सब कामनाओंको नष्ट करना है! ॥ २८ ॥ फिर यह ब्राह्मण तप, शील, गुण और विद्यासे युक्त हैं, एवं सब प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे स्थित होकर गुणोंके संबन्धसे छिपे हुए (अप्रकट) महापुरुष परब्रह्मकी आराधना करना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे धर्मज्ञ! आप राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हैं; आपके हाथोंसे किसीप्रकार इनका वध न होना चाहिये! कहीं पिताके हाथसे पुत्रकी भी हिंसा होती है? ॥ ३० ॥ राजन्! मन, वाणी और कर्मद्वारा सब प्राणियोंसे मित्रभाव रखनेको ही विद्या और विवेकसे युक्त बड़े लोग 'शील' कहते हैं। आपकी सब साधुजन बड़ाई करते हैं। गो-वधके तुल्य इस निर्दोष वेदपाठी श्रोत्रिय ब्राह्मणके वधको आप कैसे अच्छा समझते हैं? ॥ ३१ ॥ विना इस पतिके एक क्षणभर मैं नहीं जीवित रह सकती। यदि आप इस ब्राह्म-

णको नहीं छोड़ते तो पहिले मुझे भक्षण करो, क्योंकि विना इसके मैं मृतकतुल्य हो जाऊँगी ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणकी स्त्री अनाथकी तरह करुणाजनक स्वरसे इसप्रकार विलाप करती रही, किन्तु उसपर कुछ ध्यान न करके, व्याघ्र जैसे पशुको खा जाता है उसप्रकार शाप-मोहित राजा सौदास उस ब्राह्मणको खागये ॥ ३३ ॥ गर्भाधानद्वारा अभिलाषा पूर्ण करनेलिये उद्यत अपने स्वामीको राक्षसने भक्षण कर लिया—यह देखकर उस ब्राह्मणीको कोप आगया। तब उसने अपनी अवस्थापर शोक करतेहुए इसप्रकार राजाको शाप दिया ॥ ३४ ॥ रे पापरूप ! मेरे पतिको रति करते समय तूने भक्षण कर लिया, इसलिये रे विवेकहीन ! तू भी जब अपनी रानीके पास गर्भाधानके लिये रति करने जायगा तब तुरन्त मर जायगा ॥ ३५ ॥ पतिपरायणा वह ब्राह्मणी इसप्रकार राजा मित्रसहको शाप देकर, अग्नि प्रज्वलित कर, उसी अग्निमें पतिकी हड्डियोंके साथ जलकर पतिकी गतिको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ बारह वर्षके बाद जब शापका अन्त हुआ तब राजा सौदास अपने घर आये। एक दिन रानीके पास रति करनेगये। रानीको ब्राह्मणीके शापका वृत्तान्त विदित था, इस लिये उसने राजाको रोक दिया ॥ ३७ ॥ तबसे राजाने स्त्री-संभोगके सुखको त्याग दिया; इसी अपने कर्मके दोषसे राजा सन्तानरहित रहे। कुछ दिन बाद राजाकी आज्ञासे वसिष्ठजीने रानी मदयन्तीमें गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ रानी सात वर्षतक गर्भधारण किये रही—प्रसव न हुआ। जब वसिष्ठजीने अश्म (पत्थर) द्वारा गर्भमें प्रहार किया तब पुत्र उत्पन्न हुआ। इसीसे उसका नाम अश्मक हुआ ॥ ३९ ॥ अश्मकके मूलक नाम पुत्र हुआ! मूलककी रक्षा स्त्रियोंने की[1] इसलिये उनका 'नारीकवच' नाम पड़ा और क्षत्रियहीन पृथ्वीपर क्षत्रियोंका मूल होनेके कारण मूलक कहलाये ॥ ४० ॥ मूलकके दशरथ, दशरथके ऐडविडि ऐडविडिके राजा विश्वसह उत्पन्न हुए। विश्वसहके खट्वाङ्ग नाम चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥ महाराज खट्वाङ्गको युद्धमें जीतना बड़ा ही कठिन कार्य था। उन्होने देवगणके प्रार्थना करनेपर युद्धमें देवशत्रु दानवोंका संहार किया। इससे देवगणने प्रसन्न होकर उनको वर देना चाहा। तब राजाने कहा—पहले यह बताओ कि मेरी आयु कितनी बाकी है? जब देवगणके मुखसे उनको विदित हुआ कि केवल एक मुहूर्त (दो घड़ी) आयु बाकी है तब उन्होने देवगणके दिये विमानपर चढ़, अपने पुरमें आकर परमेश्वरमें मन लगाया। उस अन्तसमय उनका यह दृढ़ विचार था कि—"कुलदेवता जो पूज्य ब्राह्मणकुल है उसकी अपेक्षा मुझको मेरे प्राण, पुत्र, धन—सम्पत्ति,

---

१ परशुरामजीने इक्कीसबार पृथ्वीको क्षत्रियहीन करदिया, ढुंढ ढुंढ कर क्षत्रियोंको मारा। उस समय स्त्रियोंने इस बालकको अपने वस्त्रोंमें छिपाकर बचाया था, जिसमें क्षत्रियजाति निर्वंश न होजाय। उस समय पृथ्वीपर केवल मूलकने ही क्षत्रियकुलकी जड़ जमाई।

पृथ्वी, राज्य एवं स्त्री भी अधिक प्रिय नहीं है। मेरी मति अति अल्प अधर्मसे भी कभी दूषित न हो, मैं विश्वमें उत्तम कीर्तिवाले विष्णु ईश्वरके सिवा और कोई वस्तु न देखूँ अर्थात् सबमें, सब जगह उसी एक ईश्वरको व्याप्त देखूँ। यद्यपि त्रिभुवनके ईश्वर देवगण प्रसन्न होकर मुझे मनचाहे वर देते हैं, किन्तु मेरा मन विश्वनाथ ईश्वरमें लगा हुआ है, इस कारण मैं उनको नहीं चाहता। औरोंकी कौन कहे-इन्द्रियोंके वशीभूत जिनकी बुद्धि है वे देवगण भी अपने हृदयमें ही नित्य अवस्थित उस प्रिय आत्मारूप ईश्वरको नहीं देख पाते! बस, परमेश्वरकी मायाद्वारा निर्मित और गन्धर्वनगरके समान मिथ्या इस गुण-समूहमें स्वभावसिद्ध जो आत्मा(मन)की आसक्ति है उसको ईश्वरकी चिन्तासे निरस्त करके उसी अनादि ईश्वरके चरणोंका आश्रय लेना श्रेय है"। हे राजन्! खट्वाङ्ग राजाने ईश्वरमें लगीहुई बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके अज्ञान त्यागकर दिया एवं आत्मस्वरूपमें अवस्थित हुए ॥४२॥४३॥४४॥४५॥४६॥४७॥४८॥

यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ॥
भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥

महाराज! जो सूक्ष्म और अशून्य होनेपर भी शून्यवत् कल्पित परब्रह्म हैं-जिनको भक्तजन वासुदेव कहते हैं वही जीवात्माका यथार्थ स्वरूप हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय

श्रीरामचंद्रजीके चरित्रका वर्णन

श्रीशुक उवाच—खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥
अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! खट्वाङ्ग राजाके पुत्र दीर्घबाहु हुए। उनके महायशस्वी रघु उत्पन्न हुए। रघुके पुत्र अज हुए। अजके महाराज दशरथ हुए। साक्षात् भगवान् ब्रह्ममय हरिने देवगणकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न-इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त होकर राजा दशरथके यहाँ जन्म लिया। राजन्! तत्त्वदर्शी वाल्मीकि आदि महात्मा ऋषियोंने विस्तारसे रामचरित्रका वर्णन किया है और तुमने भी कई बार उसको सुना है, तथापि मैं संक्षेपसे कहता हूँ-श्रवण करो ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ जिन्होने पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिये राज्य त्याग कर, परम प्रिया सीताके कोमल करस्पर्शको भी जो न सह सकते थे उन महासुकुमार चरणोंसे [illegible] दुर्गम वनवीथियोंमें

विचरण किया–वानरेन्द्र हनुमान् एवं अनुज लक्ष्मण, पैर दबाकर जिनके मार्ग चलनेके श्रमको दूर करते थे–शूर्पणखाको विरूपकरनेसे रावणने जब सीताको हरा तब उस प्रिया-वियोगके कारण उत्पन्न हुए कोपसे कुटिल जिनकी भ्रुकुटी देखकर समुद्र भयभीत हुआ–और जो उस समुद्रमें सेतु बाँधकर दुष्टरूपी वनके जलानेको दावानलरूप हुए, वही कोशलेश श्रीरामचन्द्र हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रने विश्वामित्र मुनिके यज्ञमें लक्ष्मणके सामने ही मारीच आदि प्रधान प्रधान निशाचरोंका दमन और संहार किया ॥ ५ ॥ उन्होने सीतास्वयंवरके यज्ञमण्डपमें–जहाँ सब पृथ्वीभरके शूरवीर राजालोग बैठे थे,–बालक गजराजके समान लीलापूर्वक, तीन सौ वाहक जिसे वहाँतक लाये उस शिवके महान् धनुपको बाएँ हाथमें लेकर, उसपर प्रत्यंचा चढ़ाकर और खींचकर इक्षुदण्डकी भाँति बीचसे तोड़ डाला ॥ ६ ॥ पहले अपने वक्षःस्थलमें स्थान देकर जिनको सम्मान दिया एवं जिनका शील, गुण, अवस्था और अङ्गसौष्ठव अपने अनुरूप था उन्ही लक्ष्मीका अवतार सीतादेवीको धनुपभङ्गके पणमें प्राप्तकर श्रीरामचन्द्र अयोध्याको आ रहे थे; मार्गमें इसी अवसरपर जिन्होने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया वह परशुरामजी मिले। कोशलेश रामचन्द्रने उन भार्गवके चिरसञ्चित गर्वको क्षणमात्रमें चूर्ण कर दिया ॥७॥ राजन् ! कुछ दिनबाद श्रीरामचन्द्रका युवराजकी गद्दीपर अभिषेक होना निश्चित हुआ और उसका आयोजन होनेलगा। किसी समय राजा दशरथने प्रसन्न होकर छोटी रानी कैकेयीसे दो मनमाने वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी। अतएव दुष्टा मन्थरा दासीके बहँकानेसे रामचन्द्रके राज्याभिषेकके समय कैकेयीने वेही दोनो वर माँगे, अर्थात् भरत युवराज बनाये जायँ और रामचन्द्र चौदह वर्षके लिये वन भेजे जायँ। उस समय, पिता यद्यपि स्त्रीजित थे, तथापि उनको सत्यके पाशमें बँधा हुआ जानकर रामचन्द्रजीने वह आज्ञा शिर आँखोंपर ग्रहण की एवं योगी पुरुष जैसे दुस्त्यज प्राणोंको त्याग देतेहैं वैसे ही उन्होने राज्यलक्ष्मी, प्रणयी, सुहृद् और भवन त्याग कर स्त्रीसहित वनको गमन किया ॥ ८ ॥ दण्डकारण्यमें पापबुद्धिसे आई रावणकी बहन शूर्पणखा राक्षसीको, नाक कान काट कर विरूप करदिया और खर, दूषण, त्रिशिराकी अध्यक्षतामें युद्ध करनेको आयेहुए चौदह सहस्र राक्षसोंका संहार किया, एवं शत्रुलोगोंको असह्य धनुष लिये कष्ट सहतेहुए वनवास करनेलगे ॥ ९ ॥ महाराज ! शूर्पणखाके मुखसे सीताके रूपकी प्रशंसा सुनकर रावणके हृदयमें कामाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने सीताहरणके कुविचारसे मारीच राक्षसको रामचन्द्रके आश्रममें भेजा। मारीच, अद्भुत मृगका रूप धरकर रामके आश्रममें आया और रामचन्द्रको आश्रमसे दूर लेगया; उस समय रामचन्द्रने वैसे ही, जिसप्रकार रुद्रने दक्षका वध किया था, इसप्रकार बाणके

प्रहारसे दुष्ट मारीचको मार डाला ॥ १० ॥ इधर राक्षसाधम रावण, रामलक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें भेड़ियेके समान वैदेहीको हर ले गया और रामचन्द्रजी मनुष्योंकी भाँति "स्त्रीसङ्ग करनेवालोंको ऐसा दुःख होता है" यह जगत्को जतानेके लिये प्रियाके विरहसे विलाप करते हुए दीनोंकी भाँति भाईके साथ सीताकी खोजमें वन वन विचरने लगे ॥ ११ ॥ सीताकी खोजमें इधर उधर भ्रमण करते करते श्रीरामचन्द्रने देखा कि उनके लिये रावणसे संग्राम करके युद्धमें मरेहुए जटायुका शास्त्रोक्त अन्तिम सत्कार नहीं हुआ, अतएव उन्होने पिताका पुत्रकी भाँति अपने हाथों जटायुके शवको जलाया और फिर आगे बढ़कर कबन्धका वध किया। तदनन्तर बानरोंसे मित्रता करके बालीको मारा एवं उन्ही बानरोंके द्वारा सीताजीका पता पाया। तब रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके साथ बानरोंकी सेनासहित लङ्कापुरीपर चढ़ाई करके समुद्रके तटपर पहुँचे। ब्रह्मा और शिव जिनके चरणोंपर शिर झुकाते हैं वह विष्णु ही साक्षात् मनुष्यावतार श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ १२ ॥ समुद्रतटपर रामचन्द्र तीन दिनतक उपवास किये पड़े रहे, पर नदीशने राह न दी, तब उन्होने समुद्रपर कोप किया। श्रीरामचन्द्रके कोपकुटिलकटाक्षसे सागरका हृदय चञ्चल हो उठा, उसके भीतर रहनेवाले ग्राह मगर आदि जीवजन्तु क्षोभको प्राप्त हुए, समुद्रने भयसे अपना तरङ्गगर्जन बन्द कर दिया और मूर्तिमान् हो कर शिरपर पूजाकी सामग्री और भेंटके लिये रत्न लिये हुए यों कहा कि–हे जगदीश्वर! जड़मति होनेके कारण मैं आपको जान नहीं सका। आप महातेजस्वी, निर्विकार, आदिपुरुष हैं। जिनके वशवर्ती सत्त्वगुणसे देवगण और रजोगुणसे सम्पूर्ण प्रजापतिगण एवं तमोगुणसे सब भूतपति उत्पन्न हुए हैं, आप वही गुणेश्वर हैं। प्रभो! अपनी इच्छाके अनुसार उस पार जाइये। विश्रवाकी विष्टाके तुल्य (कुपुत्र) एवं त्रैलोक्यको क्लेश देनेवाले दुरात्मा रावणका वध और अपनी प्रियाका उद्धार करिये। हे वीर! यश फैलानेके लिये मेरे ऊपर सेतुकी रचना कराइये; दिग्विजयी राजालोग उस सेतुके निकट आकर आपके पवित्र यशका गान करेंगे ॥१३॥१४॥१५॥ हे राजन्! सागरके ये वचन सुनकर रामचन्द्रने अनेक वृक्ष और पर्वतोंके शिखरोंसे उसपर सेतु बँधवाया। उन शिखरोंको जब बानरलोग लानेलगे तब उनपर लगेहुए वृक्षोंकी शाखाएँ वेगसे चलनेके कारण हिलने लगीं। सेतुबन्धन होजानेपर विभीषणकी सलाहके अनुसार सुग्रीव, नील, हनुमान् आदि सेनापतियोंसहित श्रीरामचन्द्रने लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। सीताका पता लगानेके लिये जब हनुमान् आये थे तब उन्होने पहले ही उस लङ्कापुरीको भस्म कर दिया था ॥ १६ ॥ बानरसेनाने लङ्काको चारोंओरसे घेर लिया और उसके क्रीड़ाभवन, धान्यागार, कोष, द्वार, पुरद्वार, सभा, वलभी, कपोतपालिका

(कबूतरोंके रहनेका स्थान), वेदी, पताका, सुवर्णकलश, चतुष्पथ आदिको तोड़फोड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया; जिससे हाथीकी मँझाई उन्मथित नदीकी ऐसी लङ्काकी दुर्दशा होगई ॥ १७ ॥ राक्षसराज रावणने शत्रुदलका यह उत्पात देखकर निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय और अकम्पन आदि सम्पूर्ण अनुचरोंको एवं इन्द्रजित् और कुम्भकर्णको एक एक करके युद्ध करनेके लिये भेजा ॥ १८ ॥ असि, शूल, धनुष्य, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, बाण, तोमर, खड्ग आदि अनेक शस्त्र लिये हुए अत्यन्त दुर्धर्ष राक्षसोंकी सेनाके विरुद्ध श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, गन्धमादन, नील, अङ्गद, जाम्ववान्, पनस आदि सेनापतियों सहित युद्धयात्रा की ॥ १९ ॥ राजन् ! रघुपतिके सेनापतियोंने सीताहरण करनेसे जिसका मङ्गल विनष्ट होगया है उस मन्दभाग्य रावणकी हाथी, पैदल, घोड़े और रथोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना-पर आक्रमण करके वृक्ष, शिला, गदा और बाणोंके प्रहारसे उसे नष्ट करना आरम्भ किया ॥ २० ॥ राक्षसराज रावण अपनी सेनाका विनाश होते देख पुष्पकविमान पर चढ़कर रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया एवं इन्द्रके सारथी मातलिके लायेहुए प्रभायुक्त दिव्य रथपर आरूढ़ होकर शोभायमान श्रीरामचन्द्रपर अत्यन्त तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ तब रामचन्द्रने उससे कहा कि अरे राक्षसोंकी विष्ठा अर्थात् राक्षसोंमें महा अधम ! तू बड़ा ही असज्जन है; कुत्ता जैसे घरमें घुसकर घरवालेकी अनुपस्थितिमें कोई वस्तु चुरा ले जाता है वैसे ही हमारे वहाँ न रहनेपर आश्रमसे हमारी स्त्रीको हर लाया है। तू अत्यन्त निर्लज्ज है, कालके समान अलङ्घ्यवीर्य मैं इस समय तेरे निन्दित कर्मका फल तुझको देता हूँ ॥ २२ ॥ इसप्रकार उसकी भर्त्सना करके रामचन्द्रने धनुषपर चढ़ायेहुए बाणको रावणके ऊपर छोड़ा। उस वज्रतुल्य बाणने रावणके हृदयमें प्रवेश किया। दशमुख रावण दशो मुखोंसे रुधिर उगलता हुआ–जिसका पुण्य क्षीण होगया हो उस सुकृती मनुष्यके समान विमानपरसे प्राणहीन होकर गिर पड़ा। उस समय राक्षसोंके दलमें महा हाहाकार मचगया ॥ २३ ॥ तब हजारों राक्षसियाँ लङ्कासे निकालकर मन्दोदरी नाम रावणकी स्त्रीके साथ विलाप करती हुई युद्धभूमिमें आईं ॥ २४ ॥ एवं राम और लक्ष्मणके बाणोंसे जिनके प्राण निकल गये हैं उन अपने अपने बन्धुओंसे लिपट लिपट कर आप ही अपने हाथों छाती और शिर पीटती हुई ऊँचे और दीन स्वरसे विलाप करने लगीं ॥२५॥ सब राक्षसियाँ कहने लगीं कि हे नाथ ! हाय, तुम्हारे मरनेसे हम मार गईं। हे लोकोंको रुलानेवाले रावण ! तुम्हारे न रहनेसे लङ्कापुरी शत्रुओंके द्वारा पीड़ित हो रहीहै; अब यह किसकी शरणमें जाय ? ॥२६॥ हे महाभाग ! कामवश होकर सीताके तेज और प्रभावको तुम नहीं जान सके, इसीसे तुम्हारी आज

यह दशा हुई ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन! तुमने लङ्काको और हमको विधवा कर दिया, शरीरको गिद्धोंका भक्ष्य बना दिया और स्वयं अपने लिये नरकभोग कमाया ॥ २८ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—श्रीरामचन्द्रजीके अनुमोदनसे विभीषणने पितृयज्ञकी विधिके अनुसार जातिवालोंके सम्पूर्ण मृतकसंस्कार किये ॥ २९ ॥ तदनन्तर अशोकवाटिकामें अशोकवृक्षके नीचे अपने विरहसे व्यथित, क्षीण और दीन प्रिय भार्या सीताको देखकर रामचन्द्रको दया आई और स्वामीको देखकर सीताको असीम आनन्द हुआ एवं उसी आनन्दके उल्लाससे उनका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रने विभीषणको राक्षसगणका स्वामी बनाकर लङ्काका राज्य एवं एक कल्पकी आयु दी। फिर रामचन्द्रजी लक्ष्मण व सुग्रीवद्वारा सीताजीको पुष्पकविमानपर चढ़ाकर आप भी उसीपर सवार हुए। इसप्रकार चौदह वर्षके वनवासका व्रत समाप्त करके राक्षसराज विभीषणको भी साथ ले श्रीरामचन्द्रने अयोध्यापुरीको यात्रा की। ऊपरसे लोकपालोंने इतनी पुष्पवर्षा की कि उनसे रामचन्द्रका शरीर ढँक गया। उस समय ब्रह्मा आदि देवगण परम आनन्दसे उनके पवित्र चरित्र गातेहुए अपने अपने लोकको गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रने पुरीको आतेहुए राहमें सुना कि, भाई भरत अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें वास करते हैं और शिरपर जटा रखाये, वल्कल धारण किये केवल पृथ्वीपर शयन करते हैं, एवं केवल प्राणधारणके विचारसे गोमूत्रपक्व यवान्नमात्र केवल भोजन करते हैं। यह सुनकर महादयालु रामचन्द्रजीको बड़ा ही सन्ताप हुआ ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रके आनेका संदेश पाकर भरतजी उनको लिवाकर लानेके लिये उनकी पादुका शिरपर धरकर पुरवासी, अमात्य एवं पुरोहितगणसहित नन्दिग्रामसे चले। मार्गमें गाने बजानेकी ध्वनि होने-लगी, वेदपाठी ब्राह्मणगण ऊँचे स्वरसे वेदमन्त्र पढ़तेहुए चले। सोनेके अक्षरोंसे जिनमें मङ्गलमय वचन लिखे हैं ऐसी पाताका (झंडे), सुवर्ण जटित-विचित्र ध्वजाओंसे विभूषित-उत्तम घोड़ोंसे युक्त सुवर्णपरिच्छदसम्पन्न रथ, सुवर्णमय कवच धारण किये योद्धाओंकी पङ्क्तियाँ और बहुतसे पैदल भृत्यगण भरतजीके साथ चले। महात्मा भरत, राजाओंके योग्य छत्र, चँवर और बहुमूल्य अनेक प्रकारके रत्नआदि भेंट करनेके लिये लेकर चले, एवं श्रीरामचन्द्रसे भेंट होते ही उन सब राजचिन्होंको अर्पण करके बड़े भाईके पैरोंपर गिरकर प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ प्रेमके आँसुओंकी धारासे भरतजीके नेत्र भर आये, एवं हृदय उमड़ आया। उन्होने पहले अञ्जलि बाँधकर बड़े भाईके आगे उनकी दोनो पादुकाएँ धर दीं, फिर अश्रुपूर्ण नेत्रोंके जलसे भगवान्को भिगोते हुए बहुत देरतक दोनो बाहुओंसे उनको हृदयमें लगाये रहे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र लक्ष्मण व

सीताने पूजनीय ब्राह्मण और कुलके बड़े बूढ़ोंको प्रणाम किया। फिर प्रजागणने राम, सीता और लक्ष्मणको प्रणाम किया ॥ ४० ॥ उत्तर-कोसल-देशके वासी लोग बहुत दिनोंके पीछे अपने स्वामीको आयेहुए देखकर परम आनन्दित हुए, एवं अपने अपने उत्तरीय वस्त्रोंको हिलातेहुए नृत्य करके फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४१ ॥ भरतजीने रामचन्द्रकी चरणपादुकाएँ, विभीषण और सुग्रीवने उत्तम चामर, पवनतनय हनुमान्‌ने श्वेत छत्र, एवं सीताने तीर्थोंके जलसे पूर्ण कमण्डलु धारण किया ॥ ४२ ॥ हे नरवर! धनुष्य और तूणीरको शत्रुघ्न, खड्गको अङ्गद, सुवर्णकी ढालको ऋक्षराज जाम्बवान् लेकर श्रीरामचन्द्र महाराजके साथ पीछे पीछे चले ॥ ४३ ॥ नारीगण और बन्दीजन मिलकर रामचन्द्रकी प्रशंसा व स्तुति करनेलगे। उस समय पुष्पक विमानपर सवार रामचन्द्रजी ग्रहगणयुक्त पूर्ण चन्द्रके समान शोभायमान हुए ॥ ४४ ॥ तदनन्तर भाइयोंद्वारा अभिनन्दित श्रीरामचन्द्रने उत्सवपूर्ण राजपुरीमें प्रवेश किया। राजभवनमें प्रवेश करके अपनेसे छोटे और वयस्य लोगोंद्वारा पूजित व अभिनन्दित वन्दित रामचन्द्रने कुशलप्रश्न, आलिङ्गन आदिसे उनका यथोचित सत्कार करके माता, विमाता, गुरुजन व गुरुपत्नियोंका पूजन व प्रणाम किया, तथा उन्होने भी श्रीरामचन्द्रको शुभ आशीर्वाद दिये। ऐसे ही लक्ष्मणजी व वैदेहीने भी सबसे यथोचित व्यवहार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ प्राण पानेपर जैसे शरीर उठ खड़ा होता है वैसे ही अपने अपने पुत्रोंको आयेहुए देखकर उनकी माताएँ सहसा उठ खड़ी हुईं एवं अपने अपने पुत्रोंको गोदमें लेकर आनन्दके आँसुओंसे उनको स्नान कराती हुईं अपने हृदयका शोक सन्ताप मिटाने लगीं ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वसिष्ठ मुनिने रामचन्द्रकी जटा उतरवाकर कुलवृद्ध लोगोंके साथ मिलकर चारो सागर आदिके पवित्र जलोंसे इन्द्रके समान उनका राज्याभिषेक किया ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रने इसप्रकार शिरसे स्नान करके सुन्दर वस्त्र धारण किये फिर पुष्पमाला और उत्तम अलंकार पहनकर उत्तम उत्तम वस्त्र और आभूषणोंसे आभूषित भाई व जनकनन्दिनीसहित विराजमान हुए ॥ ४९ ॥ प्रथम भरतजीने श्रीरामचन्द्रको प्रणाम करके प्रसन्न किया और उन्होने राज्यासन ग्रहण किया। श्रीरामचन्द्र राजा होनेपर अपने धर्ममें निरत एवं वर्ण व आश्रमोंके गुणोंसे युक्त प्रजापुत्रका पिताके समान पालन करनेलगे। प्रजागण भी उनको पिताके समान मानकर उनपर हृदयसे भक्ति करनेलगे। सब प्राणियोंको सुख देनेवाले राजधर्ममें भलीभाँति निपुण श्रीरामचन्द्रके राजा होनेपर त्रेतायुगमें भी सत्ययुगके समान उत्तम समय हो गया। हे भरतश्रेष्ठ! नदी, नद, समुद्र, पर्वत, वन, द्वीप, और खण्ड—सभी प्रजाको चितचाही वस्तु देकर प्रसन्न करनेलगे। भगवान् रामचन्द्रके राज्यमें आधि, व्याधि, बुढ़ापा, शोक, दुःख,

भय, ग्लानि अथवा क्लान्ति किसी प्रकारका कष्ट नहीं रहा। यहाँतक कि विना इच्छा किये या अकालमें ही किसीकी मृत्यु भी नहीं हुई। श्रीरामचन्द्रजी—पवित्र और एकपत्नीव्रतधारी होकर, राजर्षि लोग जिसका आचरण करते थे उस गृहस्थधर्मका, सबको उपदेश देनेके लिये, आचरण करने लगे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः ॥ ५६ ॥

भावको जाननेवाली सीतादेवी, विनयावनत भाव, प्रणय, अनुसरण, सुशीलता, भय एवं लज्जाद्वारा अपने स्वामीको सदैव प्रसन्न रखती थीं ॥ ५६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय

श्रीरामचन्द्रका यज्ञादि करना

श्रीशुक उवाच—भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ।
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! तदनन्तर सर्वदेवमय परमदेव भगवान् रामचन्द्रने आचार्यकी बताई विधिसे याग यज्ञोंद्वारा अपना ही पूजन किया ॥ १ ॥ यज्ञके अन्तमें 'होता'को पूर्वदिशा, 'ब्रह्मा'को दक्षिण-दिशा, 'अध्वर्यु'को पश्चिमदिशा एवम् 'उद्गाता'को उत्तरदिशा दक्षिणामें दी ॥ २ ॥ इन दिशाओंके बीचमें जो पृथ्वी शेष रही उसे ब्राह्मणको ही देने योग्य समझकर निःस्पृह रामचन्द्रने आचार्यको देदिया ॥ ३ ॥ इसप्रकार सर्वस्व दान करनेसे श्रीरामचन्द्र और जानकीके पास केवल पहननेके वस्त्र और आभूषण रहगये। उससमय ब्रह्मण्यदेव श्रीरामचन्द्रका ऐसा वात्सल्यभाव और उदारता देखकर ब्राह्मणगण बहुत ही सन्तुष्ट हुए और दी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी फिर श्रीरामचन्द्रको लौटा कर यों कहने लगे कि "हे भगवन्! हे भुवनेश्वर! जब आपने हमारे हृदयमें प्रवेश करके अपने तेजसे हमारे हृदयके अज्ञान-तिमिरको हरलिया तब आपने हमको क्या नहीं दिया? हम सब कुछ पा गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे राम! आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपकी सर्वज्ञ बुद्धि किसी भी विषयमें कुण्ठित नहीं है, आपको प्रणाम है। आप यशस्वी महात्मा जनोंमें

अग्रगण्य हैं। मुनिगण भी अपने अपने चित्तमें आपके चरणोंका ध्यान करते हैं" ॥७॥ तदनन्तर किसी समय रामचन्द्रजीने 'मेरे प्रति पुरवासी लोगोंके क्या विचार हैं' यह जाननेके विचारसे रात्रिको छिपकर अलक्षितभावसे पुरीमें भ्रमण करते करते एक स्थानपर सुना कि, एक मनुष्य अपनी स्त्रीसे कह रहा है कि—मैं तेरा भरण पोषण न करूँगा, क्योंकि तू दुष्टा असती (व्यभिचारिणी) है। रात्रिको परपुरुषके घर रही थी। रामचन्द्र स्त्रीके लोभी हैं, इसीलिये उन्होंने सीताको ग्रहण कर लिया, मैं राम नहीं हूँ, मैं तुझे त्याग दूँगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ यह सुनते ही श्रीरामचन्द्रजीने, अबाध्य अज्ञानी ओछे नीच लोगोंके अपवादसे कीर्तिमें कलङ्क न आ जाय, इसलिये सीताजीको त्याग दिया। पतिपरित्यक्ता सीतादेवी उस समय गर्भवती होनेपर भी वाल्मीकि मुनिके आश्रममें छोड़ दीगईं और वहीं रहने लगीं। समयपर सीताजीके गर्भसे दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए और उनका नाम 'कुश' व 'लव' रक्खा गया। वाल्मीकिजीने स्वयं उनके जातकर्म आदि संस्कार किये ॥ १० ॥ ११ ॥ इधर अयोध्यामें लक्ष्मणजीके अङ्गद और चित्रकेतु नाम दो पुत्र हुए। ऐसे ही भरतके तक्ष और पुष्कल एवं शत्रुघ्नके सुबाहु और श्रुतसेन नाम दो दो पुत्र उत्पन्न हुए। भरतजीने दिग्विजयकी यात्रामें महाबली कोटि कोटि गन्धर्वोंको मारकर उनका सब धन लाकर महाराज रामचन्द्रकी सेवामें अर्पण कर दिया। शत्रुघ्नने भी मधुके पुत्र लवण नाम राक्षसको मारकर मधुवनमें मथुरापुरी बसाई ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ पतिद्वारा वनमें छोड़ दी गई सीताजीने जिन दो पुत्रोंको उत्पन्न किया उनको कुछ दिन बाद वाल्मीकिजीके हाथमें सौंपकर, आप पतिके सामने ही उनके चरणोंका स्मरण करते करते भूविवरमें प्रवेश कर गईं ॥ १५ ॥ इस घटनासे उत्पन्न शोकको अपनी बुद्धिके बलसे रोकनेके लिये रामचन्द्रने बहुत चेष्टा की, तथापि प्रियाके प्रशंसनीय गुणोंके स्मरणसे स्वयं ईश्वर होकर भी सम्पूर्णरूपसे शोक त्याग न कर सके ॥ १६ ॥ स्त्रीपुरुषकी आसक्ति (सम्बन्ध) सभी जगह ऐसी ही भयप्रद देख पड़ती है। जब कि ईश्वरोंके लिये भी स्त्रीबन्धन ऐसा भयावह है तब जिनका चित्त गृहमें ही लिप्त है उन विषयी पुरुषोंके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है ॥१७॥ उसके बाद प्रभु रामचन्द्रने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अखण्डित अग्निहोत्र किया तदनन्तर दण्डकारण्यके काँटे कङ्कड़ आदि जिनमें गड़े थे उन कल्याणकारी चरणोंको अपने भक्तोंके हृदयोंमें स्थापित कर आप परमधामको प्राप्त हुए। राजन्! यद्यपि समुद्रमें सेतुबन्धन और विचित्रशक्तिशाली अस्त्रशस्त्रोंसे राक्षसवध इत्यादि रामचन्द्रके कार्योंको कविगण अद्भुत कहकर वर्णन कर गये हैं तथापि वे बातें श्रीरामचन्द्रका यश या स्तुतिवाद नहीं हैं। क्योंकि जिनसे अधिक या जिनके बराबर प्रभावशाली और शक्तिशाली कोई भी नहीं है उनको शत्रुवध

करनेमें क्या कभी वानरोंकी सहायताकी आवश्यकता हो सकती है? भगवान्‌ने देवगणकी प्रार्थनासे उनका कार्य सिद्ध करनेके लिये यह मनुष्यावतार लिया था ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ जिनकी पापनाशिनी और दिग्गजोंसे आवरणवस्त्र की उपमाको प्राप्त दिगन्तव्यापिनी निर्मल कीर्तिका कीर्तन अब भी ऋषिगणके द्वारा बड़े बड़े राजोंकी सभाओंमें होता हैं, एवं देवगण और राजा लोग अपने किरीट मुकुटोंसे जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं उन्हीं रघुपतिके हम शरणागत हैं ॥२१॥ जिन कोसलदेशवासियोंने रामचन्द्रका स्पर्श अथवा दर्शन किया या उनके अनुगत हुए वे उस स्थानको गये जहाँ बड़े बड़े सिद्ध और योगी जाते हैं ॥२२॥ हे राजन्! जो पुरुष इस रामचन्द्रके चरित्रको सुनेगा वह क्रमशः शान्त होकर कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥ २३ ॥ राजा परीक्षित् बोले—भगवन्! भगवान् रामचन्द्रके स्वयं कैसे आचरण थे ? और अपने ही अंश तीनो भाइयोंसे उनका कैसा व्यवहार था ? एवं साक्षात् परमेश्वरस्वरूप श्रीरामचन्द्रके प्रति वे भाई, प्रजापुञ्ज और सब पुरवासी कैसा व्यवहार करते थे ? ॥ २४ ॥ शुकदेवजी बोले—त्रिभुवनके स्वामी रामचन्द्रने राज्यसिंहासनपर बैठनेके बाद भाइयोंको दिग्विजय करनेका आदेश दिया एवं जातिवालोंसे आत्मीयता प्रकट करतेहुए, सहचरगणसहित स्वयं नगरीका रक्षणावेक्षण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ रामचन्द्रके राज्याभिषेकके समयसे सदैव अयोध्यापुरीके मार्ग निरन्तर सुगन्धित जल और हाथियोंके मदजलसे सिंचे रहते थे; जान पड़ता था अपने यथार्थ स्वामीको प्राप्त होकर यह पृथ्वी समृद्धिपूर्णभावसे मत्त हो रही है—वहाँके निवासी ऐसे सम्पत्तिशाली थे ॥ २६ ॥ वहाँके प्रासाद, गोपुर, सभा, चैत्यभवन, देवायतन आदि स्थानोंमें धरेहुए जलपूर्ण सुवर्ण-कलश शोभायमान रहते थे, पताकाएँ फहराया करती थीं ॥ २७ ॥ स्थान स्थान-पर सुपारीके गुच्छे, केलेके गुच्छे, चित्रविचित्र वस्त्र, शीशा (दर्पण), फूलमाला आदिसे सजे हुए मङ्गलमय कृत्रिम तोरणों(बनावटी द्वारों)की रचना देख पड़ती थी ॥ २८ ॥ जहाँ जहाँ श्रीरामचन्द्रजी जाते थे वहाँ वहाँ पुरवासी लोग अनेक प्रकारकी भेटें लेकर उपस्थित होते और कहते थे कि "हे देव! पहले अपने ही वाराह अवतार लेकर इस पृथ्वीका उद्धार किया है; इसका पालन कीजिये" ॥ २९ ॥ राज्यमें रहनेवाले प्रजागण अपने स्वामीके आनेकी खबर पाते ही उनके देखनेके लिये स्त्री पुरुष सब महलोंपर चढ़कर एकटक कमललोचन रघुवरको निहारा करते थे, एवं उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते थे। रामचन्द्रके पूर्वपुरुष महाराजोंने प्रथम जिस राजभवनका भोग किया था उसमें श्रीरामचन्द्रने प्रवेश किया। वह अनन्त अखिल रत्नादिके कोषोंसे परिपूर्ण एवं बहुतसे बहुमूल्य सामानसे सजा हुआ था। उस भवनकी देहली विद्रुमकी, खम्भे वैदूर्यके, अत्यन्त स्वच्छ

फर्श मरकतमणिका एवं दीवारें बिल्लौरकी थीं। वह विचित्र भवन, विचित्रपुष्पमाला, उत्तम पट्टिका (पर्दे और खम्भे आदिसें लपेटनेकी पट्टियाँ), वस्त्र, रत्नोंके प्रकाश (चमक), यथास्थानपर शोभायमान प्रकाशपूर्ण मोतियोंके गुच्छे और कमनीय भोगसामग्री एवं धूप दीपके सुगन्धसे अलंकृत था। वहाँ पुष्पभूषिता, अलंकारोंको भी अपने रूपसे अलंकृत करनेवाली देवीतुल्य स्त्रियाँ और देवतुल्य पुरुष वास करते थे। आत्माराम (परमहंस) लोगोंमें अग्रगण्य भगवान् रामचन्द्र उसी भवनमें अपनी प्रणयिनी प्रियाके साथ क्रीड़ा करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ॥
वर्षपूगान्बहूनृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥

उन्होने अपने धर्मका पालन करते हुए कई हजार वर्षोंतक अभिलषित भोगोंका उपभोग किया। सब प्रजागण निरन्तर उनके चरणोंका ध्यान किया करते थे ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय

कुशके वंशका विवरण

श्रीशुक उवाच—कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ॥
पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं। महाराज! श्रीरामके पुत्र कुशके पुत्रका नाम अतिथि हुआ। अतिथिके पुत्र निषध हुए। निषधके नभ, नभके पुण्डरीक, उनके क्षेमधन्वा, उनके देवानीक, उनके अनीह, अनीहके पारियात्र, उनके बलस्थल उनके सूर्यका अंशावतार वज्रनाभ हुए ॥१॥२॥ वज्रनाभके पुत्र खगण, उनके विधृति, और उनके हिरण्यनाभ हुए; हिरण्यनाभ योगाचार्य जैमिनी मुनिके शिष्य थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन्ही महोदयके निकट उस अध्यात्मविद्याका अभ्यास किया था जिससे सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त होती है और हृदयकी ग्रन्थि अर्थात् अज्ञानजनित भ्रम दूर हो जाता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हिरण्यनाभके पुत्र पुष्य, पुष्यके पुत्र ध्रुवसन्धि, उनके सुदर्शन, उनके अग्निवर्ण, उनके शीघ्र और उनके मरु हुए। मरु, योगसिद्ध होकर कलापग्राममें इस समय अवस्थित हैं। वह कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशका लोप होते देख, पुत्र उत्पन्न करके उसे चलावेंगे। मरुके पुत्र प्रसुश्रुत,

उनके संधि, संधिके पुत्र अमर्षण, उनके महस्वान्, उनके विश्वबाहु, उनके प्रसेनजित्, उनके तक्षक और उनके बृहद्बल हुए। बृहद्बल, महाभारतके युद्धमें तुम्हारे पिता अभिमन्युके हाथों मारे गये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें इतने तो नरपति हो चुके हैं और अब जो आगे होंगे उनके नाम सुनो। बृहद्बलके पुत्रका नाम बृहद्रण है। बृहद्रणके बड़ेही कर्मनिष्ठ वत्सवृद्ध होंगे। वत्सवृद्धके प्रतिव्योम, उनके भानु और भानुके सेनापति दिवाक होंगे ॥ ९ ॥ १० ॥ दिवाकके पुत्र सहदेव, उनके बृहदश्व, उनके भानुमान्, उनके प्रतीकाश्व, उनके सुप्रतीक, उनके मरुदेव, उनके सुनक्षत्र, उनके पुष्कर, उनके अन्तरिक्ष, उनके सुतपा, उनके अमित्रजित्, उनके बृहद्राज और उनके बर्हि होंगे। बर्हिके कृतञ्जय, उनके रणञ्जय और उनके सञ्जय होंगे। सञ्जयके शाक्य, उनके शुद्धोद, उनके लांगल, उनके प्रसेनजित् उनके क्षुद्रक, उनके सुमित्र होंगे। यह बृहद्बलका भविष्यवंश है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ॥
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १६ ॥

कलियुगमें सुमित्रसे इक्ष्वाकुवंशका अन्त हो जायगा ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

इक्ष्वाकुपुत्र निमिके वंशका विवरण

श्रीशुक उवाच—निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं। इक्ष्वाकुके पुत्र निमि हुए। निमिने यज्ञका आरम्भ करके ऋत्विजका वरण वसिष्ठजीको दिया। मुनिने कहा राजन्! इन्द्रदेव पहले ही मुझे अपने यज्ञमें ऋत्विजका वरण दे चुके हैं; इसलिये बिना इन्द्रका यज्ञ समाप्त हुए मैं तुम्हारे यज्ञका वरण अंगीकार नहीं करसकता। जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त न हो तब तक प्रतीक्षा करिये। यह सुन कर राजा निमि चुप रह गये और वसिष्ठजीभी इन्द्रके यहाँ गये ॥ १ ॥ २ ॥ जितेन्द्रिय निमिने 'इस जीवनका कोई विश्वास नहीं है' यह समझकर गुरु वसिष्ठके आनेके पहले ही अन्य ऋत्विजके द्वारा यज्ञका आरम्भ कर दिया ॥ ३ ॥ उधर वसिष्ठजी इन्द्रके यज्ञको समाप्त करके आये और शिष्यके अन्याय आचरणको देखकर

यह शाप दिया कि पण्डिताभिमानी निमिका शरीर शीघ्रही छूट जाय ॥ ४ ॥ कुलगुरुका यह अधर्माचरण देखकर निमिने भी उनको शाप दिया कि आपने लोभके वश होकर धर्मकी ओर ध्यान नहीं किया; अतएव आपका भी शरीर छूट जाय ॥ ५ ॥ इतना कहते कहते अध्यात्मज्ञानी निमिका शरीर छूट गया और साथ ही वसिष्ठ ऋषिका भी शरीर छूट गया । वसिष्ठजीने मित्रावरुणके वीर्य-द्वारा उर्वशी अप्सराके गर्भसे फिर जन्म लिया ॥ ६ ॥ इधर निमिके ऋत्विज ऋषियोंने गंधवस्तुओंमें निमिका शरीर रखकर उस यज्ञको समाप्त किया । एवं उस यज्ञमें आयेहुए देवगणसे कहा कि 'आप लोग यदि सन्तुष्ट और समर्थ है तो यह निमिका शरीर सजीव हो उठे' । देवतोंने 'तथास्तु' कहा; किन्तु निमिके जीवात्माने कहा कि "अब मैं देहबन्धन नहीं चाहता ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनि लोग शरीरवियोगके भयसे कातर हो कर कदापि देहका सम्बन्ध नहीं चाहते, केवल मुक्तिके लिये हरिके चरणारविन्दोंका भजन करते रहते हैं ॥ ९ ॥ मनुष्यदेह, दुःख, शोक और भयका आधारस्थान है, मैं इसको फिर ग्रहण करना नहीं चाहता; क्योंकि इस शरीरको वैसेही सर्वत्र मृत्युका भय है जैसे जलमें रहनेसे मछलियोंको" ॥१०॥ यह सुनकर देवगणने कहा—"हे विदेह! अच्छा तो तुम अपनी इच्छाके अनुसार बिना देहके सब देहधारियोंके नेत्रोंमें वास करो" । पलकोंके खुलने और मुँदनेसे अध्यात्मसंस्थित निमि लक्षित होते हैं ॥ ११ ॥ परन्तु उसके बाद महर्षियोंने देखा कि बिना राजाके प्रजाको सर्वदा भयकी संभावना है । अतएव सबने राजवंश चलानेकी कामनासे निमिके शरीरको काष्ठ द्वारा मथा; तब निमिके मृत शरीरसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥१२॥ उसके इसप्रकार उत्पन्न होनेसे उसका नाम 'जनक' पड़ा । पिताकी विदेह अवस्थामें उत्पन्न होनेसे 'वैदेह' और मथनेसे उत्पन्न होनेके कारण 'मिथिल' भी उनको कहते हैं । उन्होंने मिथिलापुरीको बसाया ॥ १३ ॥ उन जनकके पुत्र उदावसु, उनके नन्दिवर्धन, उनके सुकेतु और उनके देवरात हुए ॥ १४ ॥ देवरातके पुत्र बृहद्रथ, उनके महावीर्य, उनके सुधृति, उनके धृष्टकेतु, उनके हर्यश्व, उनके मरु, उनके प्रतीप, उनके कृतरथ, उनके देवमीढ़, उनके विश्रुत, उनके महाधृति, उनके कृतिरात, उनके महारोमा, उनके स्वर्णरोमा, उनके ह्रस्वरोमा और उनके सीरध्वज हुए। सीरध्वज नाम जनक यज्ञके लिये सुवर्णके हलसे पृथ्वीको शुद्ध कर रहे थे, उस समय सीर अर्थात् हलके अग्रभागसे सीताका जन्म हुआ अर्थात् सीताजी प्रकट हुईं । इसप्रकार 'सीर' उनकी कीर्तिका सूचक हुआ—इसीसे उनका नाम सीरध्वज पड़ा ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ सीरध्वजके पुत्र कुश-ध्वज, उनके धर्मध्वज और उनके कृतध्वज एवं मितध्वज नाम दो पुत्र हुए॥ १९ ॥ कृतध्वजके केसिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुए । केशिध्वज आत्मविद्यामें

निपुण थे ॥ २० ॥ कर्मकाण्डका तत्त्व जाननेवाले खाण्डिक्य केशिध्वजके भयसे भाग गये । केशिध्वजके पुत्र भानुमान्, उनके शतद्युम्न, उनके शुचि और शुचिके सनद्वाज हुए । सनद्वाजके पुत्र ऊर्जकेतु, उनके पुरजित्, उनके अरिष्टनेमि, उनके शतायु, उनके सुपार्श्व, उनके चित्ररथ, उनके क्षेमाधि, उनके समरथ, उनके सत्यरथ, उनके अग्निका अवतार उपगुप्त हुए ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ उपगुप्तके पुत्र वस्वनन्त, उनके युयुधान, उनके सुभाषण, उनके श्रुत, उनके जय, उनके विजय, उनके ऋत, उनके शुनक, उनके वीतहव्य, उनके धृति, उनके बहुलाश्व, उनके कृति हुए । कृति महात्मा और जितेन्द्रिय थे ॥ २५ ॥ २६ ॥

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥

हे राजन् ! ये सब मिथिलाके राजालोग आत्मविद्यामें भलीभाँति निपुण और योगेश्वर लोगोंके प्रसादसे घरमें रहकर भी सुख दुःख आदि द्वन्द्वधर्मोंसे मुक्त हुए ॥ २७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय

सोमवंशका विवरण

श्रीशुक उवाच—अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः ॥
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! अब परमपावन सोमवंशका वर्णन सुनिये; जिसमें पवित्र कीर्तिवाले ऐल आदि राजोंके चरित्रका वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ हे नरवर ! सहस्र शिरवाले परम पुरुष नारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । ब्रह्माके पुत्र अत्रि हुए । अत्रिजी गुणोंमें पिताके समान थे ॥ २ ॥ अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय सोम(चन्द्रमा)का जन्म हुआ । भगवान् ब्रह्माने सोमको सब ब्राह्मण, औषध और तारागणका राजा बनाया ॥ ३ ॥ सोमने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय नाम महायज्ञ किया । बलगर्वित चन्द्रने उस यज्ञमें आईहुई त्रिभुवनसुन्दरी गुरुपत्नी ताराको बलपूर्वक घरमें रख लिया ॥ ४ ॥ देवगुरु बृहस्पतिने अनेक बार अपनी स्त्री लौटा देनेके लिये चन्द्रमाको प्रार्थनापूर्वक समझाया, किन्तु मदमत्त चन्द्रने एक भी न मानी और गुरुको उनकी स्त्री लौटा कर न दी, इसलिये देवता और दानवोंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ ॥ ५ ॥ बृहस्पति और

शुक्राचार्यमें परस्पर शत्रुता चली आती है, इसीलिये शुक्रने अपने शिष्य दैत्यों-सहित चन्द्रमाका पक्ष लिया। इधर भूतगणसहित भगवान् शंकरने अपने गुरुके पुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया ॥ ६ ॥ देवगणसहित इन्द्र भी अपने गुरुकी ओरसे युद्धमें सम्मिलित हुए। उस ताराके लिये हुए युद्धमें अनेकानेक देवता और दैत्योंका विनाश हुआ ॥ ७ ॥ कुछ दिन युद्ध होनेके बाद ब्रह्मपुत्र अङ्गिरा (बृहस्पतिके पिता) ने ब्रह्माजीसे जा कर यह सब वृत्तान्त कहा। ब्रह्माजीने आकर चन्द्रमाको बहुत डाँटा; तब सोमने ताराको देदिया। बृहस्पतिने अपनी स्त्रीको गर्भवती जानकर उससे कहा कि "अरी दुष्टबुद्धिवाली तारा! तूने मेरे क्षेत्रमें अन्य पुरुषका बीज धारण किया है! शीघ्र उसे त्याग कर—त्याग कर। हे असती! तू स्त्रीजाति है और मैं भी सन्तानार्थी हूँ; इसीसे तुझको शाप देकर भस्म नहीं करूँगा" ॥ ८ ॥ ९ ॥ उसी समय ताराने लज्जित होकर उस गर्भसे एक सुवर्णके समान कान्तिवाला बालक उत्पन्न किया। उस परमसुन्दर कुमारपर बृहस्पति और सोम दोनोका मन चलायमान हुआ—दोनोने ही उसको लेना चाहा ॥ १० ॥ "हमारा यह बालक है; तुम्हारा नहीं है"—यों कह कर दोनो जने उस बालकके लिये विवाद करनेलगे। तब सब ऋषि और देवतोंने तारासे पूछा कि यह बालक किसका है? किन्तु ताराने लज्जाके कारण कुछ उत्तर न दिया ॥ ११ ॥ तब लोकलज्जासे कुपित उस कुमारने स्वयं मातासे कहा—हे असत् आचरण करनेवाली! वृथा लज्जा करनेसे क्या लाभ है? उत्तर क्यों नहीं देती? शीघ्र मुझसे अपना दोष बतला। तदनन्तर ब्रह्माजीने एकान्तमें ले जाकर सान्त्वनाके साथ तारासे पूछा, तब ताराने धीरेसे कहा कि यह पुत्र चन्द्रमाका है। उसी समय उस कुमारको चन्द्रमा ले गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ राजन्! लोकपति विधाताने उस बालककी बहुत ही गम्भीर बुद्धि देखकर उसका नाम 'बुध' रक्खा। नक्षत्रपति चन्द्रमा उस कुमारको पाकर बहुत आनन्दित हुए। हम पहले ही कह आये हैं कि बुधके वीर्यसे इलाके गर्भमें सुप्रसिद्ध पुरूरवाका जन्म हुआ। इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदके मुखसे पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, सुशीलता, धन और पराक्रमका वृत्तान्त सुनकर विख्यात अप्सरा उर्वशी मोहित होगई और काम-बाणसे पीड़ित होकर पुरूरवाके पास स्वयं आई। मित्रावरुणके शापसे उर्वशी मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुई थी; सो जब पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामके समान कमनीय सुनकर अधीर-भावसे उनके पास स्वयं आकर उपस्थित हुई तब उसे देखकर पुरूरवाके नेत्रकमल भी आनन्दके उल्लाससे प्रफुल्लित हो उठे। पुलकित-शरीर राजाने सुमधुर-स्वरसे कहा कि हे सुन्दरी! आनेमें कोई क्लेश तो नहीं हुआ? बैठो; कहो, मैं क्या तुम्हारा सन्मान करूं? मेरे साथ चिरकालतक सुखसे विहार करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ उर्वशीने कहा—हे नरवर!

तुमपर किस सुन्दरीका मन न मोहित हो जायगा ? नेत्र न लग जायँगे ? तुम्हारे मनोरम वक्षःस्थलको पाकर विहारकी इच्छा इतनी प्रबल होती है कि किसीका मन उससे हट नहीं सकता ॥ २० ॥ हे मानद ! ये दोनो मेष (भेंड़े) तुम्हारे पास मेरी धरोहरकी भाँति रहेंगे और मैं तुम्हारे साथ विहार करूँगी; क्योंकि जो पुरुष सुरूप और प्रशंसनीय होता है उसीपर स्त्रियोंकी स्वाभाविक रति होती है ॥ २१ ॥ किन्तु हे वीर ! मैं केवल नवीन घृतका ही आहार करूँगी और रतिकालके सिवा कभी तुमको नग्न न देखूँगी । महामना पुरूरवा उसके रूपपर मोहित होगये थे, इसलिये जो जो उर्वशीने कहा, सो सब उन्होने स्वीकार कर लिया ॥२२॥ और कहनेलगे कि सुन्दरी ! तुह्मारे अद्भुत रूप व हावभावको देखकर मनुष्यमात्र मोहित होते होंगे । तुम स्वर्गवासिनी देवी स्वयं आकर उपस्थित हुई हो; जो भला कौन पुरुष तुम्हारी सेवा न करेगा ? ॥ २३ ॥ पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवा, उर्वशीके साथ, देवगण जहाँ क्रीडा करते हैं उन चैत्ररथ आदि देववनोंमें विहार करनेलगे और उर्वशी भी भलीभाँति उनके मनको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करनेलगी ॥ २४ ॥ उर्वशीके अङ्गोंमें पद्मपरागकी ऐसी उत्तम सुगन्ध निकला करती थी । राजा पुरूरवाने उसके साथ विहार करतेहुए उसके मुखके सुवाससे आनन्द पाकर बहुत दिन आमोद-प्रमोदमें विताये ॥ २५ ॥ इधर देवराज इन्द्रने उर्वशीको न देख पाकर 'मेरी सभा विना उर्वशीके शोभा नहीं पाती' यह कहकर उर्वशीके लानेके लिये गन्धर्वोंको आज्ञा दी ॥ २६ ॥ आधीरातको गाढ़ अन्धकार जगत्में फैला हुआ था; उस समय गन्धर्वलोग मनुष्यलोकमें आये और पुरूरवाके पास जो दो भेंडें उर्वशीकी धरोहर रक्खी थीं उन्हे अलक्षितभावसे हर ले गये ॥२७॥ उन दोनो भेंड़ोंको उर्वशी पुत्रके समान प्यार करती थी । जब गन्धर्वगण ले चले तब उन्होने आर्तनाद किया । वह आर्तनाद सुनकर विलाप करतेहुए उर्वशीने कहा कि हाय ! मैं इस निन्दित स्वामीके हाथमें पड़कर मारी गई । यह नपुंसक अपनेको वीर कहकर अभिमान करता है । इसपर विश्वास करके मैं तो नष्ट हो गई, मेरे पुत्रोंको चोर चुरा ले गये ! अहो, यह राजा दिनको तो पुरुष है पर रातको भयके मारे स्त्रियोंके समान चुपके पड़ाहुआ सो रहा है ॥ २८ ॥ २९ ॥ ये उर्वशीके वचन वीर पुरूरवाके हृदयमें बाणके समान बिंध गये और वह हाथी जैसे अङ्कुशके प्रहारसे उत्तेजित हो उठता है वैसे विना वस्त्रके नंगे ही क्रोधाकुल होकर खड्ग हाथमें लिये रातको भेंड़ लेजानेवाले गन्धर्वोंके पीछे दौड़े ॥ ३० ॥ यह देखकर गन्धर्वोंने भेंड़ोंको वहीं छोड़ कर मायासे वारंवार विजलीका प्रकाश किया । राजा भेंड़ लेकर लौटे, उस अवसरमें विजलीकी चमकसे राजाको नग्न देखकर, प्रतिज्ञाभङ्ग होनेके कारण, उर्वशी अपने लोकको चली गई ॥ ३१ ॥ राजा पुरूरवा भी लौटनेपर शय्यामें अपनी प्रियाको न देखकर

बहुत ही उदास हुए । उनका चित्त उर्वशीमें ही धरा हुआ था। इसलिये उसके वियोगसे कातर और शोकाकुल राजा पुरूरवा उन्मत्तोंकी भाँति उसकी खोज करतेहुए पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करनेलगे ॥ ३२ ॥ कुछ दिन बाद सरस्वतीके तटकर कुरुक्षेत्रमें राजाने अपनी पाँच सखियों सहित स्नान कर रही उस उर्वशीको देखा। तब प्रसन्न हो कर उन्होने कहा कि अहो प्रिये! ठहरो ठहरो; ओ निठुर हृदयवाली सुन्दरी! मुझे विना सुखी किये योंही छोड़कर चले जाना तुमको उचित नहीं है। आओ, एकत्र बैठकर कुछ बातें तो करलें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे देवी! तुम्हारे मिलनेकी आशा मेरे इस सुन्दर शरीरको यहाँतक खींच लाई है। यदि तुम इसे अङ्गीकार नहीं करतीं तो यह शरीर यहीं गिरकर गिद्ध और भेंड़ियोंका भोजन बन जायगा ॥ ३५ ॥ उर्वशीने कहा—राजन्! मरो नहीं। तुम पुरुष हो, धैर्य धारण करो; ये सब भेंड़िये आदि हिंस्र जन्तु मृततुल्य तुम्हारे अचेत शरीरको कहीं खा न जायँ। राजन्! स्त्रियोंकी मित्रता कभी स्थिर नहीं रहती; उनका हृदय भेंड़ियोंके समान स्वार्थ और छलसे पूर्ण रहता है ॥ ३६ ॥ स्त्रियाँ स्वभावतः कठोर होती हैं, उनमें क्षान्तिका लेश नहीं होता; वे क्रूर होती हैं। स्त्रियाँ अपना प्रिय सिद्ध करनेके लिये अधर्ममें भी साहस कर उठाती हैं, एवं थोड़ी सी बातके लिये भी विश्वस्त पति या भाईकी हत्या कर डालती हैं ॥ ३७ ॥ जो कि हमारे समान पुंश्चली (स्वतन्त्र कुलटा) हैं, मनमाना आचरण करती हैं, उनमें तो स्नेहका लेश भी नहीं होता; वे सदा नये नये पुरुषोंकी खोज किया करती हैं ॥ ३८ ॥ स्वामी! तुम वर्षभरके बाद एक रात्रिभर मेरे साथ सुख-भोग और विहार करोगे एवं मेरे गर्भसे तुम्हारे अन्यान्य पुत्र भी उत्पन्न होंगे ॥३९॥ हे राजन्! इस वचनसे उसको गर्भवती जानकर राजा पुरूरवा अपने पुरको चले गये। एक वर्ष पूर्ण होनेपर पुरूरवा फिर वहीं आकर उपस्थित हुए और उर्वशीको वीर पुत्रकी माता (इस अवसरमें उर्वशीके पुत्र उत्पन्न हो चुका था) देखकर बहुत प्रसन्न हुए एवं रातभर वहाँ उर्वशीके साथ विहार करते रहे ॥ ४० ॥ जातेसमय राजाको विरहातुर और दीन देखकर उर्वशीने कहा कि आप गन्धर्वोंसे प्रार्थना करिये; सेवाके संतुष्ट गन्धर्वगण आपको अवश्य मुझे दे डालेंगे ॥ ४१ ॥ हे राजन्! उर्वशीके बतानेके अनुसार राजा पुरूरवा गन्धर्वोंकी सेवा और स्तुति करनेलगे। गन्धर्वोंने सन्तुष्ट होकर राजाको एक अग्निस्थाली दी। कामान्ध राजा उस अग्निस्थालीको ही उर्वशी जानकर उसे लिये वनमें भ्रमण करनेलगे ॥ ४२ ॥ बादको राजाने जाना कि यह उर्वशी नहीं है। तब उस अग्निस्थालीको वनमें रख-कर पुरूरवा अपने पुरमें आये और रात्रिको नित्य यही चिन्ता करनेलगे कि किस प्रकार वह उर्वशी मिलेगी?। तब त्रेतायुगके आरम्भकालमें स्वर्गलोककी प्राप्ति जिन कर्मोंसे होती है उनका बोध करानेवाली वेदत्रयीका प्रादुर्भाव पुरूरवाके

हृदयमें हुआ ॥ ४३ ॥ राजा पुरूरवा जहाँ अग्निस्थाली रख आये थे उस स्थानमें फिर गये; वहाँ जाकर कि जिसके मूलमें अग्निस्थाली रख आये थे उस शमीवृक्षके गर्भमें एक अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष उत्पन्न हुआ है। इसमें अग्नि है—यह जानकर उर्वशीलोक (स्वर्ग) पानेकी कामनासे पुरूरवाने उस अश्वत्थकी दो अरणी (वे लकड़ियाँ, जिनको परस्पर घिसकर यज्ञके लिये अग्नि निकाला जाता है) बनाईं ॥ ४४ ॥ और मन्त्रानुसार नीचेकी अरणिको उर्वशीका रूप तथा ऊपरकी अरणिको अपना रूप एवं दोनो अरणियोंके मध्यमें स्थित काष्ठखण्डको पुत्ररूप मानकर अरणि-मन्थन करनेलगे[1] ॥ ४५ ॥ उस अरणिमन्थनसे जातवेदा अग्नि उत्पन्न हुए। वह अग्नि, त्रयीविद्याविहित आधान संस्कारसे 'आहवनीय' आदि तीन रूपोंको प्राप्त हुए। तब राजाने उस त्रिवृत् अग्निको पुत्र कल्पित करके उसीके द्वारा उर्वशीलोककी कामनासे सर्ववेदमय सर्ववेदस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान्‌का यजन किया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे राजन्! पहले सत्ययुगमें सब प्रकारके शब्दोंका बीज प्रणव (ओं) ही एकमात्र वेद था; नारायण ही एकमात्र देवता थे; अग्नि (लौकिक अग्नि) भी एक ही थे एवं मानव-वर्ण (हंसनामक) भी एक ही था ॥ ४८ ॥

पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥
अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥

महाराज! त्रेतायुगके आदिमें पुरूरवासे ही तीन वेद प्रगट हुए। यह राजा अग्निरूप प्रजाद्वारा गन्धर्वलोकको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय

परशुरामके हाथों कार्तवीर्य अर्जुनका वध

श्रीशुक उवाच—ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाके आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय नाम छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ श्रुतायुके पुत्र वसुमान् हुए। सत्यायुके पुत्र श्रुतञ्जय हुए। रयके एक नाम हुए। जयके पुत्र अमित और विजयके पुत्र भीम हुए। भीमके पुत्र काञ्चन और उनके

---

१ तथा च मन्त्रः उर्वश्यामुरसि पुरूरवा इति । २ दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय ।

होत्रक हुए। होत्रकके पुत्र जन्हु हुए, जिन्होने गङ्गाको एक गण्डूष (चुल्लू) में रखकर पी लिया ॥ २ ॥ ३ ॥ जन्हुराजर्षिके पुत्र पूरु, उनके बलाक, उनके अज, उनके कुश, उनके कुशाम्बु, मूर्तज, वसु एवं कुशनाभ नाम चार पुत्र हुए। कुशाम्बुके वीर्यसे राजर्षि गाधिका जन्म हुआ ॥ ४ ॥ गाधिके एक सत्यवती नाम सुन्दरी कन्या हुई। द्विजवर ऋचीकने गाधिके निकट जाकर उनकी कन्यासे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। गाधिने वृद्ध ऋषिको कन्याके योग्य पात्र वर न समझकर कहा कि हे मुनिवर! जिनका रङ्ग चन्द्रमाके तुल्य और एक कान श्याम हो, ऐसे एक हजार घोड़े कन्याका शुल्क (मूल्य) दीजिये; क्योंकि हम कुशिकवंशमें उत्पन्न हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस बातको सुनकर ऋचीकजी राजाका अभिप्राय समझ गये और उसी समय वरुणजीके पाससे वैसे ही एक हजार घोड़े लाकर राजाको देदिये एवं सत्यवतीसे विवाह किया! कुछ दिन बाद स्त्री और सास दोनोने ऋचीकजीसे पुत्र होनेके लिये प्रार्थना की। ऋचीकजीने अपनी स्त्रीके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित चरु (खीर) पकाया एवं आप तबतक स्नान करनेके लिये गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ अपने चरुसे कन्याके चरुको श्रेष्ठ समझकर ऋचीककी सासने अपनी कन्यासे उसका चरु माँग लिया। सत्यवतीने भी माताको अपना चरु देदिया और आप माताका चरु खागई ॥ ९ ॥ मुनि जब लौटकर आये और यह वृत्तान्त जाना, तब अपनी स्त्रीसे कहा कि तुमने बहुत ही बुरा किया; चरु बदल जानेके कारण तुम्हारा पुत्र घोर क्षत्रियप्रकृतिका उग्र और भाई श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होगा ॥ १० ॥ यह सुन सत्यवतीने डरकर पतिको विनयपूर्वक प्रसन्न किया और कहा 'स्वामिन्! ऐसा न हो'। भार्गव ऋचीकने कहा—'अच्छा तुम्हारा पुत्र तो ऐसा न होगा, किन्तु पौत्र होगा'। तदनन्तर सत्यवतीके जमदग्नि ऋषि हुए ॥ ११ ॥ और सत्यवती शरीर छूटनेपर लोकपावनी महापवित्र कौशिकी नाम नदी हो गई। जमदग्निका विवाह रेणुकी कन्या रेणुकाके साथ हुआ ॥ १२ ॥ जमदग्निके रेणुकाके गर्भसे वसुमान् आदि पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुरामजी हुए। उन्होने हैहय वंशका विनाश किया एवं उनको पण्डितजन विष्णुभगवान्‌का अंशावतार कहते हैं। उन्होने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियजातिसे शून्य कर दिया ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ पहले क्षत्रिय राजा लोग बड़े ही अभिमानी, वेदविरुद्ध स्वेच्छाचार करनेवाले, रजोगुण और तमोगुणसे दूषित स्वभाववाले होकर अब्रह्मण्य हो गये थे, अतएव थोड़ा ही अपराध करनेपर परशुरामजीने उनको ऐसा घोर प्राणदण्ड दिया ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! अजितेन्द्रिय क्षत्रियोंने परशुरामजीका ऐसा कौन अपराध किया था कि जिससे परशुरामजीके हाथों क्षत्रियजातिका वारंवार संहार हुआ ॥ १६ ॥ शुकदेवजीने कहा—

हैहयवंशीय क्षत्रियोंके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ कार्तवीर्य अर्जुन राजाने सेवा करके नारायणके अंशावतार भगवान् दत्तात्रेयको प्रसन्न किया; उनकी कृपासे उनको हजार भुजाएँ प्राप्त हुईं और वह शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष हो गये। अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य, सम्पत्ति, प्रभाव, वीर्य, बल और योगेश्वरपद भी उनको प्राप्त हुआ एवं जिसमें अणिमा आदि गुण (सिद्धियाँ) विराजमान हैं वह ऐश्वर्य भी मिला। वह सर्वत्र विचरण करते थे; पवनके समान उनकी गति कहीं नहीं रुकी ॥१७॥१८॥१९॥ एक समय वैजयन्ती माला धारण किये हुए मदमत्त सहस्रबाहु अर्जुनने बहुत सी श्रेष्ठ रूपवाली स्त्रियोंसहित नर्मदा नदीके जलमें जलकेलि करते करते अपनी हजार बाहुओंसे नदीके प्रवाहको रोक दिया ॥ २० ॥ उधर दिग्विजयके लिये निकले हुए रावणने माहिष्मती पुरीके पास नर्मदा नदीके किनारे डेरा डाला था और वहाँ वह शिवपूजन कर रहा था। जलप्रवाह रुकनेके कारण पीछेको लौटा और उससे रावणका डेरा व पूजाकी सामग्री बह गई। वीरमानी रावण अर्जुनके इस आचरणको न सह सका और उसने तुरन्त अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ २१ ॥ अर्जुनने स्त्रियोंके आगे ही अपराधी रावणको लीलापूर्वक वानरके समान पकड़कर बहुत दिनतक अपनी पुरीमें बन्दी बना कर रक्खा और फिर आप ही दया करके छोड़ दिया ॥ २२ ॥ वही सहस्रबाहु अर्जुन एक समय आखेट (शिकार) करनेके लिये वनमें घूमते घूमते जमदग्नि ऋषिके आश्रममें आये ॥२३॥ तपोधन जमदग्निजीने राजा अर्जुनको आदरपूर्वक ठहराया और अपनी कामधेनुद्वारा सम्पादित विविध सामग्रियोंसे अमात्य, सेना और अश्वादिवाहनसहित अर्जुनका पूजन व अतिथिसत्कार किया ॥ २४ ॥ अपने राज्यैश्वर्यसे बढ़कर उस कामधेनुसम्पादित सामग्रीको देखकर अर्जुनके मनमें यह अभिलाषा हुई कि 'मैं इस धेनुको अपने पुर ले जाऊँ; अतएव उनको मुनिके कियेहुए सत्कारसे सन्तोष न हुआ ॥ २५ ॥ जब माँगनेसे न मिली, तब अर्जुनने अहंकारपूर्वक अपने अनुचरोंको आज्ञा दी कि 'तुमलोग इस गऊको बलपूर्वक ले चलो'। अनुचरगण स्वामीकी आज्ञापाकर सहित बछड़ेके विलाप कर रही कामधेनुको बलपूर्वक माहिष्मती पुरीको लेचले ॥ २६ ॥ अर्जुनके चले जानेपर जमदग्नितनय परशुरामजी आश्रममें आये। अर्जुनके इस दौरात्म्यको सुनकर वह चोट खायेहुए सर्पके समान घोर कोप करके सिंह जैसे यूथपति गजराजका पीछा करता है उस प्रकार परशु, धनुष्य, अक्षय तूणीर और अभेद्य कवच धारण करके दौड़े ॥२७॥२८॥ पुरीमें प्रवेश कर रहे कार्तवीर्य अर्जुनने देखा कि कृष्णाजिनधारी भार्गवश्रेष्ठ परशुरामजी परशु, बाण आदि आयुधोंसहित धनुष हाथमें लिये महा वेगसे आरहे हैं एवं इधर उधर बिखरी हुई उनकी जटाएँ सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान हैं ॥२९॥ परशुरामजीसे युद्ध करनेके लिये गदा, असि, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्रयुक्त सत्रह

अक्षौहिणी चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त) सेना सहस्रबाहुने भेजी; किन्तु भगवान् परशुरामने अकेले ही उसका संहार कर डाला ॥ ३० ॥ मन और वायुके समान वेगके शत्रुसेनाका नाश करनेवाले परशुरामजी जहाँ जहाँ परशुका प्रहार करनेलगे वहाँ वहाँ राशि राशि शत्रुसैनिक बाहु ऊरू और मस्तक आदि अङ्गोंसे विहीन, प्राणहीन हो कर गिरने लगे, एवं उनके अश्व व सारथी भी निहत होने लगे ॥ ३१ ॥ हैहयपति अर्जुनने देखा कि रणभूमिमें रुधिरकी कीचड़ होगई और परशुरामके परशु व बाणोंके प्रहारसे अपने सैनिकोंके कवच, ध्वजा, धनुष, बाण एवं शरीर छिन्नभिन्न होगये, एवं प्रायः सभी सेना युद्धमें नष्ट होगई तब वह कुपित होकर स्वयं युद्ध करनेके लिये आये ॥ ३२ ॥ अर्जुनने परशुरामको लक्ष्य करके अपनी सहस्र भुजाओंमें एकसाथ पाँच सौ धनुष्य ले, उनपर पाँच सौ सुतीक्ष्ण बाण चढ़ाये, किन्तु अस्त्रधारियोंमें अग्रगण्य परशुरामने केवल एक धनुष्य-पर अनेक बाण चढ़ाकर उनसे एकसाथ अर्जुनके पाँच सौ धनुष्य काट डाले ॥ ३३ ॥ तदनन्तर महीपति अर्जुन, अपनी भुजाओंमें अनेक पर्वतशिखर और वृक्ष लेकर महावेगसे युद्धभूमिमें परशुरामजीकी ओर चले; किन्तु परशुरामजीने कठोर धारावाले कुठारसे सर्पफणसदृश उठे हुए सहस्रबाहुके सहस्र बाहुओंको काट कर गिरिशिखरसदृश उसके शिरको भी काट डाला। राजन्! पिताके मरनेपर अर्जुनके दश हजार पुत्र भयके मारे प्राण लेकर भाग गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ शत्रु-वीरनाशन परशुरामजी, हवनसामग्री देनेवाली अपनी कामधेनुको उसके वत्स-सहित लेकर आश्रममें आये एवं हैहयार्जुनके कारण क्लेशको प्राप्त वह गऊ पिताके आगे लाकर खड़ी कर दी ॥ ३६ ॥ परशुरामजीने पिता और भाइयोंके आगे सहस्रबाहुवधरूप अपने कर्मका वर्णन किया। उसे सुनकर जमदग्नि ऋषिने कहा राम! राम! हे महाबाहो! तुमने यह घोर पाप किया जो सर्वदेवमय राजाका वध किया। हे तात! हम ब्राह्मणगण एक क्षमागुणके कारण ही जगत्के पूज्य हो रहे हैं। इस क्षमागुणसे ही ब्रह्माजी जगद्गुरु होकर परमेष्ठीपदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वत्स! क्षमासे ही सूर्यकी प्रभाके तुल्य ब्रह्मतेज शोभाको प्राप्त है एवं क्षमाशील पुरुषोंपर ही भगवान् ईश्वर हरि शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं॥४०॥

राज्ञो मूर्धावसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥

पुत्र! राज्यासनपर जिसका शिरसे अभिषेक हुआ है उस क्षत्रिय राजाका वध ब्रह्महत्यासे भी गुरुतर है! अतएव तुम भगवान्में मन लगाकर तीर्थयात्रा करके इस पापका प्रायश्चित्त करो ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय

विश्वामित्रके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच–पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ॥
संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे कुरुकुलनन्दन! पिताके उपदेशसे परशुरामजी 'जो आज्ञा' कहकर तीर्थयात्राके लिये गये और एक वर्ष तीर्थपर्यटन करके अपने आश्रमको लौट आये ॥ १ ॥ एक समय जमदग्नि मुनिकी पत्नी रेणुका गङ्गातटपर गईं, वहाँ देखा कि पद्ममालाधारी चित्ररथ नाम गन्धर्वराज अप्सरा-ओंके साथ जलकेलि कर रहा है ॥ २ ॥ रेणुका वहाँ मुनिके पूजनके लिये गङ्गाजल लेने गई थीं, गन्धर्वराजपर कुछ आसक्त हो कर वहीं खड़ी रहीं। 'मुनिके हवनकी वेला बीती जाती है'-इसका उनको कुछ ध्यान न रहा ॥ ३ ॥ जब रेणुकाको ज्ञात हुआ कि विलम्ब होगया और मुनिके अग्निहोत्रका समय बीत गया तब शापके भयसे काँपती हुई आश्रमको आईं और जलपूर्ण कलश पतिके आगे रख, हाथ जोड़ कर खड़ी हुईं ॥ ४ ॥ समाधिद्वारा पत्नीके मानसिक व्यभिचारका वृत्तान्त जानकर क्रोधसे काँपरहे मुनिवरने पुत्रोंसे कहा कि 'पुत्रो! इस दुष्टा पापिनीको मार डालो'। किन्तु माताको मारनेका साहस किसी पुत्रको न हुआ ॥ ५ ॥ तब पिताकी आज्ञा पाकर परशुरामजीने भाइयोंके सहित माताका शिर काट डाला; क्योंकि वह पिताकी समाधि और तपस्याका प्रभाव भली भाँति जानते थे ॥ ६ ॥ प्रसन्न होकर जमदग्निने परशुरामको वर देना चाहा। परशुरामने कहा-"यदि आप सन्तुष्ट हैं तो यही वर दीजिये कि मेरे मरे हुएभाई और माता फिर जी उठें और उनको यह स्मरण न रहे कि हमको परशुरामने मारा था" ॥ ७ ॥ राजन्! वर देते ही जैसे कोई सो कर उठे वैसे ही परशुरामकी माता और भाई कुशलपूर्वक सजीव होकर उठ खड़े हुए। पिताके तपोबलको भलीभाँति जाननेसे ही परशुरामने सुहृद्गणका वध किया था ॥ ८ ॥ राजन्! अर्जुन राजाके दश हजार पुत्र (जो कि भाग गये थे) अपने पिताका बदला लेनेकी इच्छासे एक घड़ी भी सुख न पाते थे। परशुरामसे न जीत सकनेके कारण प्रकट रूपसे बदला लेनेमें तो असमर्थ थे, अतएव छिपकर अवसर देखने-लगे ॥ ९ ॥ एक समय परशुरामजी भाइयोंसहित वनको गये, यह अवसर पाकर वे अर्जुनके पुत्र बदला चुकानेको मुनिके आश्रममें आये ॥ १० ॥ अग्निहोत्रशालामें बैठेहुए हरिके ध्यानमें लीन परशुरामके पिताको देखकर उसी क्षण उन पापियोंने उनका शिर काट लिया ॥ ११ ॥ परशुरामकी माताने दीनता-सहित बहुत कुछ प्रार्थना की, पर उन निठुर क्षत्रियाधमोंने उसपर कुछ ध्यान नहीं

दिया और बलपूर्वक जमदग्निका शिर काटकर चले गये ॥ १२ ॥ रेणुका दुःख और शोकसे आकुल होकर छाती पीटती हुई ऊँचे स्वरसे "हे राम! हे राम! पुत्र!! हे पुत्र!!!" कह कर पुकारनेलगीं ॥ १३ ॥ माताका आर्तनाद सुनते ही सब भाइयोंसहित परशुरामजी शीघ्र आश्रममें आये और आकर देखा कि पिता मरे पड़े हुए हैं ॥ १४ ॥ परशुरामजी दुःख, क्रोध, अधैर्य एवं पीड़ाके आवेगसे विमोहित हो पड़े। "हा तात! हा साधो! हा धर्मिष्ठ! हमको यहाँ छोड़कर आप स्वर्ग चले गये!"—इसप्रकार अनेकभाँति विलाप करके परशुरामजीने पिताके मृत देहको भाइयोंकी देखरेखमें छोड़ दिया एवं सुतीक्ष्ण परशु लेकर क्षत्रिय वंशका विनाश करनेके विचारसे चले ॥ १५ ॥ १६ ॥ महाराज! परशुरामजी उन ब्रह्महत्या करनेवाले अधम क्षत्रियोंकी श्रीहत माहिष्मती पुरीको गये, एवं वहाँ अर्जुनके पुत्रोंके कटेहुए शिरोंके ढेरसे एक पर्वतसा बना दिया ॥ १७ ॥ परशुरामजीने उनके रुधिरसे एक बड़ी भारी भयानक नदी बहादी। वह नदी ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले लोगोंके हृदयमें देखते ही भय उत्पन्न करनेवाली है। क्षत्रियकुलके अन्यायी होनेपर 'पितृ-वध'को कारण करके परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीमण्डलको क्षत्रियविहीन कर दिया। परशुरामने इसी प्रकार मारेहुए क्षत्रियोंके रुधिरसे स्यमन्तपञ्चक स्थानमें नव रुधिरकुण्ड बनादिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ परशुरामने मरेहुए पिताके देहमें उनका कटा हुआ शिर जोड़, उनको कुशासनपर बिठाकर, अनेक यज्ञोंसे सर्वदेवमय परमात्माका पूजन किया ॥ २० ॥ अन्तमें होताको पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा, उद्गाताको उत्तर दिशा, अन्यान्य ऋत्विक्गणको अवान्तर (उप) दिशा, कश्यप ऋपिको बीचकी पृथ्वी एवं उपद्रष्टाको आर्यावर्तदेश दक्षिणामें देकर उसके उपरान्त अपरापर सदस्योंको भी यथायोग्य भूमि और धन दक्षिणामें दिया ॥२१॥२२॥ तदनन्तर महानदी सरस्वतीमें यज्ञान्तका अवभृथ स्नान कर सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त परशुरामजी मेघमुक्त सूर्यके समान विराजमान हुए ॥ २३ ॥ परशुरामद्वारा पूजित जमदग्न्यजी चेतनामय अपने शरीरको पाकर सप्तर्षिमण्डलमें सातवें ऋषि हुए ॥ २४ ॥ महाराज! कमलनयन भगवान् जमदग्नितनय परशुराम भी आनेवाले मन्वन्तरमें वेदके प्रवर्तक अर्थात् सप्तर्षियोंमें एक ऋषि होंगे ॥ २५ ॥ वह इससमय न्यस्तदण्ड और प्रशान्तचित्त होकर महेन्द्राचलपर तप कर रहे हैं। सिद्ध, चारण और गन्धर्वगण निरन्तर उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं ॥ २६ ॥ इसप्रकार भगवान् विश्वके आत्मा ईश्वर हरिने भृगुवंशमें अवतार लेकर बहुत बार दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करके पृथ्वीका भारी भार उतारा ॥ २७ ॥ राजन्! राजा गाधिके प्रज्वलित अग्निके तुल्य तेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए; जिन्होने तपके प्रभावसे क्षत्रियत्व छोड़कर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया ॥ २८ ॥ विश्वामित्रके एक सौ पुत्र हुए। उनमें यद्यपि केवल मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छन्दस

था, तथापि वे सबही मधुच्छन्दस नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २९ ॥ महातपस्वी विश्वामित्रने भृगुवंशीय अजीगर्त ऋषिके पुत्र शुनःशेफको देवरात नाम देकर अपना पुत्र बनाया एवं अन्यान्य पुत्रोंसे कहा कि 'तुम सब इनको अपना बड़ा भाई मानो' ॥ ३० ॥ हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितके हाथ यज्ञमें बलि देनेके लिये बेंचेगये पुरुष-पशु शुनःशेफने विश्वामित्रके बताये दो मन्त्रोंसे हरिश्चन्द्रके यज्ञमें प्रजापति आदि देवतोंकी स्तुति की उससे उनके प्राण बच गये। अतएव वह भृगुवंशमें उत्पन्न होनेपर भी देवयजनमें देवगणके द्वारा रात अर्थात् प्रदत्त होनेके कारण देवरात नामको प्राप्त होकर गाधिवंशमेंही सम्मिलित हुए ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जो मधुच्छन्दस नाम विश्वामित्रके पचास ज्येष्ठ पुत्र थे उन्होने शुनःशेफको ज्येष्ठ बनाना अच्छा न समझ पिताकी आज्ञा अङ्गीकार नहीं की, अतएव विश्वामित्रने कुपित होकर उनको यह शाप दिया कि–"तुम अत्यन्त दुर्जन हो, तुम आजके दिनसे ब्राह्मणत्वसे पतित होकर म्लेच्छ हो जाओ" ॥ ३३ ॥ तदनन्तर मँझले पुत्र मधुच्छन्दसने अपने पचास छोटे भाइयोंसहित पिताके पास जाकर कहा कि 'आप हमारे पिता हैं; इसको कनिष्ठ या ज्येष्ठ, जो कुछ बनाइये वह हमको स्वीकृत है' ॥ ३४ ॥ यों कहकर उन सबने मन्त्रज्ञ शुनःशेफको अपना बड़ा भाई बनाकर कहा कि 'हम सब तुम्हारे छोटे भाई हैं'। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर इन सब पुत्रोंसे कहा कि हे पुत्रो! तुम लोगोंने मेरा मान रखकर मुझे यथार्थ पुत्रवाला बनाया, इसलिये तुम भी ऐसे ही सुशील पुत्रोंके पिता होओगे। हे कुशिकगण! यह देवरात तुम्हारे (कौशिक) गोत्रमें ही गिने जायँगे, क्योंकि इनको मैंने अपना पुत्र बनाया है; अतएव तुम इनके अनुगत रहो। इन सौ पुत्रोंके सिवा विश्वामित्रके और भी अष्टक, हारीत, जय, क्रतुमान् आदिके पुत्र हुए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ॥
प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं विकल्पितम् ॥ ३७ ॥

इसप्रकार विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक गोत्रके कई भेद होगये। देवरातसे कौशिकगोत्र दूसरे प्रवरको प्राप्त होगया, जिसका विकल्प-विवरण सुना चुके ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

१ राधातु स्वतार्थक है।

सप्तदश अध्याय

क्षत्रवृद्ध आदि राजोंके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच–यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ॥
नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! पुरूरवाके पुत्र आयुके नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, पराक्रमी रम्भा और अनेना नाम पाँच पुत्र हुए। उनमें प्रथम क्षत्रवृद्धका वंश सुनो–क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्र हुए। सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद नाम तीन पुत्र हुए। गृत्समदके पुत्र शुनक हुए, और शुनकके बह्वृचगणमें श्रेष्ठ शौनकजी उत्पन्न हुए ॥१॥२॥३॥ काश्यपके पुत्र काशि, काशिके राष्ट्र, राष्ट्रके दीर्घतमा और उनके धन्वन्तरिजी हुए। धन्वन्तरिजी हरिका अंशावतार हैं; उन्होने आयुर्वेदका आविष्कार किया, एवं उनका स्मरण करतेही सब रोग दूर हो जाते हैं। धन्वन्तरिजीको यज्ञमें भाग मिलता है ॥ ४ ॥ धन्वन्तरिके पुत्र केतुमान्, उनके भीमरथ, उनके दिवोदास, उनके द्युमान्, उनके प्रतर्दन हुए ॥ ५ ॥ प्रतर्दनके ही शत्रुजित्, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व इत्यादि नामान्तर हैं। प्रतर्दनके अलर्क आदि अनेक सन्तान हुए। प्रतापी अलर्कने छाँछठ हजार (६६०००) वर्षतक युवा रहकर राज्यभोग किया। महाराज! सिवा अलर्कके किसी युवक राजाने इतने दिनोंतक राज्य नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ अलर्कके पुत्र सन्तति, उनके सुनीत, उनके निकेतन, उनके धर्मकेतु, उनके सत्यकेतु, उनके धृष्टकेतु, उनके राजा सुकुमार, उनके वीतिहोत्र, उनके भर्ग और भर्गके भार्गभूमि हुए ॥८॥९॥ महाराज! ये सब राजा काशिवंशीय हैं; इनका जन्म क्षत्रवृद्धके वंशमें हुआ। रम्भके पुत्र रभस, उनके गम्भीर, उनके अक्रिय, उनके ब्रह्मवित् हुए। अब अनेनाका वंश सुनो–अनेनाके पुत्र शुद्ध, उनके शुचि, उनके धर्मप्रवर्तक त्रिककुप्, उनके शान्त रजि हुए। आत्मज्ञानी होनेके कारण शान्त रजि कृतकृत्य थे। रजिके महाबलशाली पाँच सौ पुत्र थे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ एक समय राजा रजिने देवगणकी प्रार्थनासे दानवोंको मारकर इन्द्रको स्वर्गपुरीका राज्य फेर दिया। महेन्द्रने प्रह्लाद आदि शत्रुओंके भयसे रजिके चरणोंपर गिरकर स्वर्गपुरीसहित आत्मसमर्पण कर दिया। परन्तु रजिकी मृत्यु होनेपर देवराज इन्द्रने जब रजिके पुत्रोंसे स्वर्ग माँगा तब उन्होने स्वर्ग लौटा देना स्वीकार नहीं किया और स्वयं स्वर्गके स्वामी बनकर यज्ञभाग तक लेनेलगे। अतएव देवगुरु बृहस्पतिने रजिके पुत्रोंकी बुद्धि भ्रष्ट करनेके लिये अभिचारकी विधिसे हवन किया। उससे शीघ्र ही वे नीतिमार्गसे हटकर कुमार्गपर चलनेलगे, एवं इन्द्रने सहजमें उनका विनाश कर दिया; उनमेंसे एक भी नहीं बचा। क्षत्रवृद्धके पौत्र कुशके पुत्र प्रति हुए। प्रतिके पुत्र संजय, उनके

जय, उनके कृत, उनके हर्यंवन, उनके सहदेव, उनके हीन उनके जयसेन ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

संस्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः ॥
क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८ ॥

उनके संकृति, उनके क्षत्रियधर्मनिष्ठ महारथी जय हुए। ये सब राजालोग क्षत्रवृद्धके वंशमें हुए; अब नहुषके वंशका वृत्तान्त सुनो ॥ १८ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय

ययातिके वंशका विवरण

श्रीशुक उवाच—**यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ॥**
षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! शरीरधारीयोंकी छः इन्द्रियोंके समान नहुष राजाके यति, ययाति, शर्याति, आयति, वियति, और कृति नाम छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ सबसे बड़े पुत्र यति राज्यका परिणाम भलीभाँति जानते थे, इस लिये पिता यद्यपि उनको राज्य देते रहे तथापि उन्हो उसको स्वीकार नहीं किया। यतिको निश्चय था कि राज्य पानेपर पुरुष अपनेको भूल जाता है ॥ २ ॥ जब नहुषने इन्द्राणीके निकट धृष्टता प्रकट की और अगस्त्य आदि ब्राह्मणोंके शापसे अजगर होकर स्वर्गसे भ्रष्ट होगये तब ययाति ही राजा हुए ॥ ३ ॥ ययातिने चारो छोटे भाइयोंको चारो दिशाओंका राज्य दिया और आप शुक्राचार्य व वृषपर्वाकी कन्याओंके साथ विवाह करके समग्र पृथ्वीमण्डलका शासन करनेलगे ॥४॥ **राजा परीक्षित्‌ने पूछा**—ब्रह्मन्! भगवान् शुक्राचार्य ब्रह्मर्षि हैं और नहुषके पुत्र ययाति क्षत्रिय थे; तब ब्राह्मणी और क्षत्रियका दूषित प्रतिलोम विवाह कैसे सर्वसम्मत हुआ? ॥ ५ ॥ **शुकदेवजीने कहा**—एक समय दानवराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा गुरु शुक्राचार्यकी कन्या देवयानीके साथ पुरवाटिकामें विचर रही थी। उस बागमें अनेक वृक्ष फूल, फल, पल्लव आदिसे भरेपुरे थे। जहाँ कमलके वृक्षोंपर भौंरे गुञ्जन कर रहे थे उन पद्मपरागपूरित सरसियों (नहरों) के किनारे शर्मिष्ठा बागकी शोभा निहारती हुई घूम रही थी। फिर सब कमलनयनी स्त्रियाँ अपने अपने वस्त्र किनारे उतारकर नग्न हो वहाँ जलकेलि करती हुई आनन्दसे एक एक पर परस्पर जल फेंकनेलगीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ इसी समय अकस्मात् देवी पार्वतीसहित नन्दीपर सवार देवदेव शंकर उधरसे निकले,

उनको देखते ही सब कन्याएँ अत्यन्त लज्जित होकर जल्दीसे वस्त्र पहननेके लिये व्यग्र हो किनारे निकल आईं। व्यग्रताके कारण विना जाने धोखेसे अपने समझकर शर्मिष्ठाने गुरुपुत्रीके कपड़े पहन लिये। यह देख देवयानीने कुपित होकर कहा कि अहो! इस दासीका अन्याय कार्य तो देखो! जैसे कुतिया यज्ञकी आहुतिके घृतमें मुख डाल दे वैसे ही इस दासीने हमारे पहने वस्त्र आप पहन लिये। जिन्होने तपोबलसे जगत्की सृष्टि की है, जो परम पुरुषके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण सबमें श्रेष्ठ हैं, जो ब्रह्मरूप वेदके जाननेवाले हैं, जिन्होने मङ्गलमय वैदिकमार्ग दिखलाया है एवं सब लोकपाल, देवपतिगण और स्वयं भगवान् विश्वात्मा विश्वपावन श्रीनिवास विष्णु जिनकी वन्दना और उपासना करते हैं वे ब्राह्मणमात्र पूज्य है, तिसपर हम परमपूज्य भृगुवंशमें उत्पन्न हैं। इसका पिता असुर हमारा शिष्य है, इस दुष्टाकी स्पर्धा तो देखो, शूद्रजाति जैसे वेद धारण करे उसप्रकार इसने हमारे पहननेके वस्त्र पहन लिये ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ गुरुपुत्री देवयानीने इसप्रकार तिरस्कार कहनेपर शर्मिष्ठाको भी कोप आ गया और वह चोट खाई हुई नागिनीकीभाँति वारंवार साँस लेतीहुई कोपके आवेगसे आप ही आप दाँतोंसे ओंठ चबाकर बोली कि अरी भिक्षुकी! अपने आचरणपर ध्यान न रखकर तू बड़ीही स्पर्धा करनेलगी है! क्या जूठन खानेवाले काकके समान अन्नके लिये हमारे द्वारपर तू नहीं पड़ी रहती है?॥ १५ ॥ १६ ॥ इसप्रकार क्रोधके मारे बहुतसे कठोर वाक्य कहकर शर्मिष्ठाने गुरुकन्याको नग्न अवस्थामें ही कूपके भीतर ढकेल दिया ॥ १७ ॥ शर्मिष्ठा अपने घर चलीगई; उधर ययातिराजा आखेट (शिकार) करतेहुए दैवयोगसे प्यासे होकर उसी कूपके निकट आये, जिसमें देवयानी पड़ी हुई थी। देवयानीको कूपमें देखकर दयालु राजाने अपना दुपट्टा पहननेके लिये दिया और हाथ पकड़कर उसको ऊपर निकाल लिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ देवयानीने उस कूप (गढ़े) से बाहर निकलकर वीर ययातिसे ये प्रेमपूर्ण वचन कहे कि—हे परपुरंजय महाराज! आपने मेरा हाथ पकड़ा, इसलिये मैं आपकी पाणिग्रहण की हुई भार्या होचुकी; मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि जिस हाथको आपने पकड़ा उसे दूसरा कोई न पकड़े। हे वीर! मैं कूपमें पड़ी हुई थी, अचानक आप यहाँ आपड़े, इससे यह हमारा आपका सम्बन्ध ईश्वरकी प्रेरणासे हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सम्बन्ध मनुष्यकृत नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ हे महाबाहो! पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्रको (मैं उसको पति बनाना चाहती थी, पर उसने गुरुपुत्री समझकर स्वीकार नहीं किया इस लिये) शाप दिया (कि तूने जो मृतसंजीविनी विद्या मेरे पितासे पढ़ी है वह सब तुझको भूलजाय) तब उसने भी शाप दिया कि तुम्हारा विवाह भी ब्राह्मणके साथ न होगा। अतएव मेरा पति ब्राह्मण नहीं हो

सकता ॥ २२ ॥ राजा ययाति यद्यपि शास्त्रविहित न होनेके कारण इस विवाहमें असम्मत थे, तथापि इसे दैवघटनासे उपस्थित समझकर एवं देवयानीकी अपने-ऊपर आसक्ति देखकर उनको स्वीकार ही करना पड़ा ॥ २३ ॥ स्वीकार करके राजा ययाति अपने पुरको चलेगये, तब देवयानी वहाँसे रोतीहुई पिताके पास आई और जो कुछ शर्मिष्ठाने कहा व किया था वह सब आद्योपान्त कह सुनाया ॥ २४ ॥ सुनकर भगवान् शुक्राचार्य बहुत ही दुःखित हुए, एवं पुरोहिती वृत्तिकी निन्दा और उंच्छ वृत्तिकी प्रशंसा करतेहुए कन्यासहित वृषपर्वाके पुरसे चल दिये ॥ २५ ॥ यह वृत्तान्त जब वृषपर्वाको विदित हुआ तो उसने विचारा कि 'शुक्राचार्यजी कदाचित् असुरोंका पक्ष छोड़कर देवतोंकी ओर मिल जायँगे एवं दैत्यलोगोंकी देवतोंसे पराजय होगी' यह जान कर वृषपर्वा राहमें ही जाकर शुक्राचार्यके पैरोंपर गिर पड़ा, और अनेक विनीत वाक्योंसे प्रसन्न करने लगा ॥ २६ ॥ भगवान् शुक्रका क्रोध अधिकसे अधिक घड़ी दो घड़ी ठहरता है; उनका क्रोध शान्त होगया और उन्होने कहा—"मुझे नहीं, मेरी कन्याको प्रसन्न करो; यह जो कहे उसे पूर्ण करो—मैं लौटा चलता हूँ, किन्तु इसको किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता" ॥ २७ ॥ जब वृषपर्वाने स्वीकार कर लिया तब देवयानीने कहा कि विवाहके उपरान्त मैं जहाँ जाऊँ वहाँ तुम्हारी कन्या शर्मिष्ठा भी सखीगणसहित मेरे साथ जाअ और मेरे पास मेरी दासी होकर रहे ॥ २८ ॥ वृषपर्वाने 'आचार्यके चलेजानेसे हमारी जातिपर संकट आ जायगा एवं उनके यहाँ रहनेसे बड़े बड़े काम सिद्ध होंगे' यह समझकर देवयानीको सखीगणसहित अपनी कन्या दे डाली। पिताद्वारा दी गई शर्मिष्ठा अपनी सहस्र सखियोंसहित देवयानीकी दासी होकर सेवा करनेलगी ॥ २९ ॥ शुक्राचार्यने शर्मिष्ठासहित देवयानीका दान करते समय ययातिसे कहा कि राजन्! शर्मिष्ठासे कभी स्त्रीका ऐसा व्यवहार न करना अर्थात् वह तुम्हारी शय्यापर शयन न करे—दासी होकर रहे ॥३०॥ महाराज! देवयानीने स्वामीके सहवाससे कई परमसुन्दर पुत्र उत्पन्न किये, तब शर्मिष्ठाने भी ऋतुकालमें एकान्तमें सखीपति ययातिके निकट जाकर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ 'राजकुमारी शर्मिष्ठा पुत्र उत्पन्न करनेके लिये ऋतुकालमें प्रार्थना करती है और उसको अस्वीकार करना अन्याय व अधर्म भी है'—यह विचार कर धर्मज्ञ राजाने, यद्यपि शुक्राचार्यका निषेध उनको भूला न था, तथापि दैवसंयोगवश, शर्मिष्ठासे समागम स्वीकार कर लिया ॥ ३२ ॥ ययातिसे देवयानीके यदु और तुर्वसु नाम दो पुत्र और शर्मिष्ठाके द्रुह्यु, अनु और पूरु नाम तीन पुत्र हुए ॥ ३३ ॥ महाराज! देवयानी अपने पतिके वीर्यसे असुरतनयाके गर्भ रहनेका वृत्तान्त जानकर मान करके कोपसे अपने पिता शुक्राचार्यके घर चली गई ॥ ३४ ॥ ययातिराजा विषयकामी थे, अतएव

प्रियाको कुपित देख, अनुनय विनय करतेहुए पीछे लगे प्रसन्न करनेकी इच्छासे शुक्राचार्यके भवनतक गये, किन्तु पैरोंपर गिरकर भी प्रियाको प्रसन्न न कर सके ॥ ३५ ॥ सब वृत्तान्त सुनकर शुक्रजीने क्रोध करके राजासे कहा कि—'अरे स्त्रीकामुक! तू झूठा पुरुष है। रे मन्द! मनुष्यको कुरूप बनानेवाली वृद्धावस्थाके आक्रमणसे तू अभी वृद्ध होजा' ॥ ३६ ॥ ययातिने कहा, ब्रह्मन्! आपकी कन्याके साथ विहार करके मैं अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ। तब शुक्राचार्यने शान्त होकर पीछेसे कहा कि, यदि कोई स्वीकार करे तो तुम उसकी जवानीके साथ, जितने समयके लिये चाहो, अपनी वृद्धावस्था बदल सकते हो ॥३७॥ इसप्रकार अवस्था बदलनेकी व्यवस्था पाकर ययातिने अपने बड़े पुत्र यदुसे कहा कि हे तात यदु! तुम अपनी जवानी कुछ कालके लिये मुझको देडालो और मेरा बुढ़ापा लेलो। हे वत्स! तुम्हारे नानाके शापसे मैं अकालमें ही वृद्ध होगया हूँ, किन्तु विषयभोगसे मुझे अभी तृप्ति नहीं हुई है, इसीलिये तुम्हारी जवानी लेकर कुछ दिन विषयभोग करना चाहता हूँ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यदुने कहा कि पिता! आप मध्यसमय (अर्धवयस) होनेपर वृद्ध हुए हैं, मैं आपकी वृद्धावस्थाको धारण न कर सकूँगा; क्योंकि मनुष्य बिना सांसारिक सुखभोग किये उनसे विरक्त नहीं हो सकता। हे महाराज! इसीप्रकार अनित्य जवानीको नित्य माननेवाले एवं अपने पुत्रधर्मसे अनजान अन्यान्य तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु आदि पुत्रोंने भी अस्वीकारसूचक उत्तर दे दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तब अवस्थासें छोटे किन्तु गुणोंमें बड़े पूरु नाम पुत्रसे ययाति राजाने कहा कि पुत्र! बड़े भाइयोंके समान मेरी प्रार्थनाको अस्वीकार करना तुम्हे उचित नहीं है ॥ ४२ ॥ पूरुने कहा, हे नरनाथ! जिसकी कृपासे परमपदका लाभ हो सकता है और जिसके शरीरसे जन्म हुआ है, इस लोकमें कौन पुरुष उस पिताके उपकारका बदला चुका सकता है? जो कोई पुत्र पिताके विचार (इच्छा) को, विना कहे, आपसे ही पूर्ण करता है वह उत्तम है, और आज्ञा देनेपर काम करनेवाला पुत्र मध्यम है, तथा अश्रद्धासे पिताकी आज्ञा पालनेवाला पुत्र अधम है। किन्तु जो आज्ञा पाकर भी उसे पूर्ण नहीं करता वह पुत्र कहलाने योग्य ही नहीं है; उसे पिताकी विष्ठा कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ यों कहकर पूरुने प्रसन्न चित्तसे पिताकी वृद्धावस्था लेली और ययाति भी पुत्रकी जवानीसे यथोचित विषयभोग करनेलगे ॥ ४५ ॥ महाराज! सातो द्वीप पृथ्वीके एक अधिपति राजा ययाति भलीभाँति पुत्रके समान प्रजापालन करतेहुए मनमाने विषयोंके भोगमें प्रवृत्त हुए। पुत्रकी जवानी प्राप्त करनेसे उनकी सब इन्द्रियाँ प्रबल और अव्याहत होगईं ॥ ४६ ॥ देवयानी भी मन, वाणी, काया और अनेक उपभोगकी सामग्रियोंसे एकान्तसमागममें अपने प्रिय पतिको सर्वदा प्रसन्न रखती थीं। ययाति राजाने बहुत बहुत दक्षिणा देकर अनेकानेक

यज्ञोंसे सर्वदेवमय, सर्ववेदस्वरूप, यज्ञपुरुष भगवान् हरिका पूजन किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ आकाशमें मेघमालाके समान, जिनमें यह जगत् विरचित होकर स्वप्न माया अथवा कल्पनाकी भाँति कभी प्रकट और कभी लीन हो जाता है उन अन्तर्यामी परमसूक्ष्म भगवान्को हृदयमें बसा कर, उन्हीके उद्देश्यसे, किसी प्रकारके मङ्गलकी कामना न रखकर वह यज्ञ करनेलगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ॥
विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥

सार्वभौम सम्राट् राजा ययाति इसप्रकार मन आदि छः इन्द्रियोंकेद्वारा निरन्तर विषयभोग करके भी तृप्तिलाभ नहीं कर सके ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय

ययातिका विरक्त होकर मुक्त होना

श्रीशुक उवाच—स इत्थमाचरन्कामान्स्त्रैणोपह्नवमात्मनः ॥
बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—इसप्रकार स्त्रीके वश होकर विषयभोग करते करते ययातिको अपने सर्वनाशका ज्ञान हुआ, तब उन्होने निर्वेदयुक्त होकर प्रियासे अपनेही चरित्रका रूपक रचकर यह इतिहास कहा ॥ १ ॥ राजाययातिने कहा—हे भृगुकी पुत्री! मैं एक इतिहास तुमसे कहता हूँ, उसको सुनो। इस इतिहासमें मेरे ही समान कामी पुरुषके आचरणका वर्णन है; । वनवासी धीर मुनिगण ऐसे आचरणवाले यज्ञ विषयी जनोंके लिये शोक करते हैं ॥ २ ॥ वनमें अपनी अभीष्ट वस्तुको खोजतेहुए एक बकरेने निजदोषसे कूपमें पड़ी हुई एक बकरीको देखा। वह बकरा बड़ा ही कामी था—उसने बकरीको बाहर निकाल-नेकी इच्छा करके सींगोंसे मिट्टी खोदकर गढ़ेसे बाहर निकलनेका मार्ग बना दिया। उस सुन्दरी बकरीने बाहर आकर उसी बकरेपर अपनी अभिलाषा प्रकट की। बकरीने जब उस बकरेको अपना पति बनाया तब अन्यान्य अनेकानेक बकरियाँ भी उसे श्मश्रुकेशयुक्त एवं स्थूल शरीरवाला देख, मैथुनाभिज्ञ और बहुल वीर्यवाला समझकर उसपर आसक्त होगई। वह अकेला बकरा अपनी ओर अनेक बकरियोंकी आसक्ति बढ़ाता हुआ कामग्रह-ग्रस्त होकर उनके साथ विहार करनेलगा। उसको "मैं कौन और क्या हूँ?" यह भी बोध न रहा

॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ किन्तु कूपसे निकाली हुई बकरीने जब बकरेको अन्य बकरियोंके साथ विहार और प्रीति करते देखा तो उसे यह असह्य हो गया। वह उस मित्रवेषधारी—वास्तवमें शत्रु और क्षणभरके तुच्छ विषयसुखकी कामनावाले एवं इन्द्रियसुखका सेवन करनेवाले बकरेको छोड़कर दुःखित हो अपने पालनेवाले स्वामीके निकट गई ॥ ७ ॥ ८ ॥ स्त्रीजित वह बकरा भी दुःखित होकर इड़विड़ शब्द (अपनी बोली) से अनुनय विनय करता हुआ उसके पीछे गया, तथापि राहमें प्रसन्न कर लौटा नहीं सका ॥ ९ ॥ उस बकरीके मालिक ब्राह्मणने क्रोध करके बकरेके लम्बायमान दोनो वृषणोंको काट डाला; किन्तु फिर शान्त होकर उपाय जाननेवाले उसी ब्राह्मणने प्रयोजनसिद्धिके लिये उन कटेहुए वृषणोंको फिर योजित कर दिया ॥ १० ॥ हे भद्रे ! इस उपायसे फिर रतिशक्तियुक्त होकर बकरेने उस कूपमें मिली हुई बकरीके साथ विषयभोगमें बहुत काल बिताया; किन्तु विषयभोगसे अब भी उसको तृप्ति नहीं होती ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु ! उस बकरेकी भाँति मैं भी तुम्हारे प्रणयमें आबद्ध होकर दीन अवस्थाको प्राप्त हूँ—तुम्हारी मायामें मोहित होजानेके कारण मुझे आत्मज्ञान नहीं रहा। पृथ्वीमें जितने अन्न, भोजनके पदार्थ, सुवर्ण, पशु, एवं स्त्री हैं उन सबसे भी कामासक्त पुरुषके चित्तको सन्तोष या तृप्ति नहीं हो सकती। विषयोंकी कामना उनके भोग करनेसे कभी शान्त नहीं होती, बरन् घी छोड़नेसे अग्नि जैसे प्रज्वलित हो उठता है वैसे ही उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ जब पुरुष, राग द्वेष आदि विषम भाव छोड़कर सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखता है तब उसे चारो ओर सुख ही देख पड़ता है ॥ १५ ॥ जिसको त्याग करना दुर्बुद्धि लोगोंके लिये दुःसाध्य है एवं शरीर जीर्ण होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होती, यदि सुखी रहनेकी इच्छा है तो, पहले उस दुःखमयी तृष्णाका त्याग ही करदेना चाहिये ॥ १६ ॥ अपनी माता, कन्या या बहनके साथ भी एकान्तमें एक आसनपर न रहना चाहिये; क्योंकि ये इन्द्रियाँ बड़ी ही प्रबल हैं—बड़े बड़े विद्वानोंके चित्तको चलायमान कर देती है। मुझे नित्यप्रति निरन्तर विषयभोग करते एक हजार वर्ष पूरे होगये तथापि मनकी तृष्णा नहीं बुझी—और बढ़ती ही जाती है ॥ १७ ॥ १८ ॥ अतएव इस अनिष्टकारिणी तृष्णाको त्यागकर अब परब्रह्ममें मन लगाऊँगा एवं सुख दुःख आदि द्वन्द्वधर्मोंसे रहित और निरभिमान होकर मृगगणके साथ वनमें विचरूँगा ॥ १९ ॥ प्रिये ! जो पुरुष देखे या सुने पदार्थों (विषयों) को संसारबन्धन व आत्मनाशका कारण जानकर न उनका चिन्तन करता है और न उनका भोग करता है और उनको असत् समझता है वही विद्वान् आत्मदर्शी है ॥ २० ॥ महाराज ! राजा ययातिने अपनी पत्नीसे यों कहकर अपने छोटे पुत्र पूरुको उसकी जवानी देदी और विषयभोगकी

स्पृहासे शून्य होकर अपना बुढ़ापा उससे फेर लिया ॥ २१ ॥ उन्होंने पूर्वदिशाका द्रुह्युको, दक्षिणदिशाका यदुको, पश्चिमदिशाका तुर्वसुको और उत्तर दिशाका अनुको अधीश्वर बनाया, एवं सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके शासनका भार क्षत्रियोत्तम अपने प्रियतम छोटे पुत्र पूरुको दिया। राजा ययाति इसप्रकार बड़े पुत्रोंको छोटे पुत्र पूरुके अधीन राजा बनाकर आप तप करनेके लिये वनको चलेगये ॥ २२ ॥ २३ ॥ राजन्! ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषयोंको श्रवण आदि इन्द्रियोंके द्वारा सुखपूर्वक भोग किया; किन्तु इसप्रकार वैराग्य उत्पन्न होते ही—दोनो पंख निकलनेपर पक्षीका बच्चा जैसे मोह त्यागकर अपना झोंझ छोड़कर उड़ जाता है उसीप्रकार क्षणभरमें इन्द्रियसुखकी लालसा छोड़कर वनको चलेगये ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण सङ्ग त्याग करनेसे आत्मानुभवके द्वारा उनकी त्रिगुणात्मक उपाधि दूर होगई। इसप्रकार प्रसिद्ध राजा ययातिने भागवती गति अर्थात् निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें सायुज्य मुक्ति पाई। स्त्री—पुरुषके स्नेहमें निर्वेद होनेके कारण परिहासछलसे जो रूपकमय इतिहास राजा ययातिने कहा उसे सुनकर देवयानीको ज्ञान हुआ कि राजाने स्वयं विरक्त होकर उनको भी विरक्त बन मुक्तिमार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये उत्साहित किया है ॥२५॥२६॥ शुक्रकी कन्या देवयानीने जाना कि प्रपा (जलशाला) में दम भर ठहरनेवाले मनुष्योंके संयोगके समान इन ईश्वराधीन सुहृद्गणोंका सहवास भी अस्थायी और ईश्वरकी अद्भुत मायाकी रचना है। देवयानीने सब दृश्योंको स्वप्नके सदृश मिथ्या जान सबका सङ्ग छोड़कर कृष्णमें मन लगाया और इस उपाधिरूप शरीरको त्याग कर दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥ २९ ॥

शुकदेवजी भक्तिसे पुलकित होकर ईश्वरको प्रणाम करते हैं कि हे भगवन्! आप विधाता हैं, वासुदेव हैं, सबप्राणियोंकी निवासभूमि (आधार) हैं, परमशान्त हैं, अति बृहत् हैं; आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय

पूरुके वंशका विवरण

श्रीशुक उवाच—**पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥**
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंशाश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—राजन्! अब पूरुके वंशका वर्णन करता हूँ, सुनिये।

इस वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है। अनेक राजर्षि और ब्रह्मर्षि पूरुके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पूरुके पुत्र जनमेजय, उनके प्रचिन्वान्, उनके प्रवीर, उनके मनस्यु, उनके चारुपद, उनके सुद्यु, उनके बहुगव, उनके संयाति, उनके अहंयाति, उनके रौद्राश्व और रौद्राश्वके घृताची अप्सराके गर्भसे ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु, और सबसे छोटे वनेयु नाम दश पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज! जैसे दशो इन्द्रियाँ जगत्के आत्मा प्राणके वशमें रहती हैं वैसेही ये दशो पुत्र रौद्राश्वके वशवर्ती थे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऋतेयुके पुत्र रन्तिभार हुए। रन्तिभारके सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ नाम तीन पुत्र हुए। अप्रतिरथके पुत्र कण्व और कण्वके मेधातिथि हुए। मेधातिथिसे प्रस्कण्व आदि ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई। रन्तिभारके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुमति था; उनके पुत्र रैभ्य हुए। रैभ्यके पुत्र दुष्यन्त हुए। यह राजा दुष्यन्त एक समय मृगया (शिकार) करनेके लिये वनमें प्रवेशकर महर्षि कण्वके आश्रममें पहुँच गये। वहाँपर अपने शरीरकी अलौकिक प्रभासे लक्ष्मीके समान आश्रमको प्रकाशित कर रही एक सुन्दरी रमणी बैठी थी। देवमायाके तुल्य उस युवतीको देखते ही राजा मोहित हो गये, उनका सब मार्गश्रम दूर हो गया और आनन्दकी सीमा न रही। फिर कुछ एक प्रधान योद्धालोगोंके साथ उस सुन्दरीके निकट जाकर राजाने वार्तालाप किया। कामपीड़ित राजाने हँसते हँसते मधुर वचनोंमें पूछा कि हे कमलनयनी! तुम कौन हो? हे हृदयहारिणी! तुम किसकी कन्या हो? तुम निर्जन वनमें अकेली बैठी हुई क्या कर रही हो? हे सुमध्यमे! निश्चय तुम किसी क्षत्रिय राजाकी कन्या हो। पूरुवंशमें उत्पन्न राजोंका मन कभी अकर्मकी ओर नहीं झुकता। और मेरा अन्तःकरण तुममें अनुरक्त हो गया है, अतएव तुम ब्राह्मणकन्या नहीं हो ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ शकुन्तला (अर्थात् उसी कन्या) ने कहा—महाराज! मैं विश्वामित्र ऋषिकी कन्या हूँ। मेरी माता मेनका अप्सरा है। उत्पन्न होतेही मेनका मुझे इसी वनमें छोड़कर स्वर्गको चली गई। इस विषयका अधिक वृत्तान्त महर्षि कण्वजी जानते हैं। हे वीर! हम आपका क्या सत्कार करें? हे कमललोचन! यह आसन लीजिये और हमारी दी हुई सादर पूजाको अङ्गीकार कीजिये। यहाँ हम मुनियोंके आश्रममें नीवारतण्डुल उपस्थित हैं, भोजन कीजिये और इच्छा हो तो कुछ देर ठहरिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ दुष्यन्तने कहा—हे सुभ्रु! तुम कुशिक वंशमें उत्पन्न हुई हो–तुम्हारा यह आचरण योग्यही है; क्योंकि राजकन्याएँ अपने योग्य वरको पाकर स्वयं वरण करलेती हैं। यह शकुन्तलाने स्वीकार करनेपर देश, काल और विधिके जाननेवाले राजाने जिसके गान्धर्व-विधिसे विवाह कर लिया। अमोघवीर्य राजा दुष्यन्तने शकुन्तलाके साथ गर्भाधान करके दूसरे दिन अपने पुरको लौटगए। यथासमय शकुन्तलाके भी

उस गर्भसे एक महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। महर्षि कण्वने वनमें ही उसके सब जातकर्म आदि संस्कार किये। राजन्! वह बालक सिंहोंको सहजमें पकड़कर उनके साथ खेलता था ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ प्रमोदमदमाती शकुन्तला भगवान् हरिके अंशकी कलासे उत्पन्न उस अत्यन्त पराक्रमी पुत्रको लेकर वनसे पतिके निकट आई, किन्तु दुर्वासा ऋषिके शापवश राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको नहीं पहचाना; अतएव उनको अङ्गीकार नहीं किया। तब एक आकाशवाणी हुई कि "हे दुष्यन्त! माता तो धौंकनीके समान आधारमात्र है, पुत्र तो पिताका ही होता है, क्योंकि वेदमें ऐसा लिखा है अपना ही आत्मा पुत्ररूपसे पुनर्जन्म लेता है। इसकारण अपने पुत्रको अङ्गीकार करके पालन करो, शकुन्तलाका भी अपमान न करना। हे नरदेव! जो कोई वीर्याधान करता है उसीका वह पुत्र उद्धार करता है। तुमने ही वीर्याधान किया है—यह शकुन्तलाका कहना है;" इस देववाणीको सभी लोगोंने सुना ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको स्वीकार किया। दुष्यन्तका अन्त होनेपर उनके वीर कुमार महायशस्वी भरतजी सम्राट् हुए। महाराज भरत, हरि भगवान्का अंशावतार थे; उनकी महिमा महीमण्डलमें सर्वत्र सुन पड़ती है। उनके दाहिने हाथमें चक्र और दोनो पैरोंमें पद्मकोशके चमत्कारमय चिन्ह थे। अधिराज विभु भरतने महाअभिषेक होजानेके बाद गङ्गातटपर क्रमशः पचमन अश्वमेध यज्ञ किये और ममतासुत भरद्वाजको अपना पुरोधा बनाकर अठहत्तर अश्वमेध यज्ञके घोड़े बाँध दिये, और उन यज्ञोंके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणामें मनमाना धन दिया। महाराज! उत्तम श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त देशमें भरतके यज्ञीय अग्निका स्थापन हुआ था। उस काष्ठचयन कर्ममें लाखों ब्राह्मणोंको इतनी गायें भरतने दीं कि प्रत्येक ब्राह्मणके भागमें तेरह हजार चौरासी आईं। भरतने इसीप्रकार लगातर तीन हजार तीन सौ अश्वमेध यज्ञ किये जिससे अन्य राजोंके विस्मयकी सीमा नहीं रही। राजा भरत देवतोंके वैभवका भी अतिक्रमण कर गये, क्योंकि वह परमेश्वर हरिको प्राप्त होगये। उन्होने यज्ञसम्बन्धी मष्णार नाम कर्ममें सुवर्णाभरणभूषित श्वेत दाँतवाले मृगजातिके (भद्र, मंद्र, मृग आदि देश देश के हाथियोंकी जातियाँ हैं) चौदह नियुत (दसलाखका एक नियुत होता हैं) गजराज दिये। जैसे हाथ फैलाकर कोई स्वर्गको नहीं पा सकता वैसे ही राजा भरतके सुदुष्कर कर्मोंका करना, जो राजा हो गये हैं, जो हैं और जो होंगे, उन सबके लिये कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। उन्होने अश्वमेध यज्ञोंके उपलक्ष्यमें दिग्विजय करतेसमय किरात, हूण, यवन, पौण्ड्र, कङ्क, खश, शक एवं अन्यान्य जातियोंके म्लेच्छप्राय अब्रह्मण्य अनार्य राजोंका विनाश किया। पहले जो प्रबल दानव, देवतोंको जीतकर विजित देवाङ्गनाओंको छीनकर रसातलमें जाकर रहने-

लगे थे उनको भी मारकर महात्मा भरतने देवतोंको उनकी स्त्रियाँ देदीं ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राजन्! महाराज भरतके शासनकालमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजागणको चितचाही वस्तुएँ प्राप्त होती थीं। भरतजीकी आज्ञा पृथ्वीमण्डलभरका शासन करती थी; उन्होने सत्ताईस हजार वर्षतक ऐसा ही साम्राज्यशासन किया। कुछ दिन राज्यभोग करनेके उपरान्त सम्राट् भरतजी लोकपालोंसे अधिक ऐश्वर्य, अधिराज–सम्पत्ति, दुर्धर्ष सेना और अपने परम प्रिय प्राण तकको अस्थायी जानकर विषयोंसे विरक्त होगये। उनके विदर्भराजकुमारी तीन अनूप और अनुरूप पत्नियाँ थीं। उनमें एक रानीको एक पुत्र हुआ, उसको देखकर भरतने कहा कि 'यह कुमार मेरे अनुरूप नहीं है'। उस समयसे उनके जितने कुमार हुए सबकों उन रानियोंने "राजा इसे देखकर कदाचित् कहदें कि 'यह भी हमारे अनुरूप नहीं है' और व्यभिचारिणी समझकर हमको त्याग करदें"—इस आशंकासे मार मार डाला। इसप्रकार वंशका विनाश होते देखकर अपने अनुरूप पुत्र होनेके लिये महाराज भरतने मरुत्स्तोम नाम महायज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें मरुत् नामक देवगणने प्रसन्न होकर भरद्वाज नाम पुत्र उनको दिया। एक समय देवगुरु बृहस्पतिजी कामातुर होकर अपने भाईकी गर्भवती पत्नीसे मैथुन करनेमें प्रवृत्त हुए, गर्भस्थित बालकने निवारण किया तब बृहस्पतिने उसको शाप देकर वीर्य-त्याग कर दिया। 'पीछेसे स्वामी व्यभिचारिणी कहकर त्याग न करदे,—इस भयसे बृहस्पतिकी भ्रातृपत्नी ममताने जब उस बृहस्पतिके वीर्यसे उत्पन्न कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की तब उस नवजात कुमारके नामका निरूपण करतेहुए देवगणने यह श्लोक कहा कि "—हे मूढ़े! इस दूसरे (एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे उत्पन्न) पुत्रका पालन कर, और 'हे बृहस्पति! तुम इस 'द्वाज' पुत्रका भरण करो'—ऐसा कहकर माता (ममता) और पिता (बृहस्पति) दोनो चले गये, अतएव इस बालकका नाम 'भरद्वाज' है"। महाराज! देवतोंके ऐसा कहनेपर भी बृहस्पतिके भाई उतथ्यने उस व्यभिचारजनित बालकको वितथ अर्थात् व्यर्थ (क्योंकि व्यभिचारसे उत्पन्न पुत्रका पिण्डदान उस पुरुषको नहीं मिलता जिसके क्षेत्रमें वह उत्पन्न हुआहो) जानकर वहीं छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥
व्यसृजन्मरुतोबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३९ ॥

मरुद्गणने उस कुमारका पालन किया और जिस समय भरत राजाका वंश वितथ (व्यर्थ या विनष्ट) हो रहा था तब उनको देदिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय

रन्तिदेव और अजमीढ़ आदि राजोंकी कीर्तिका वर्णन

श्रीशुक उवाच–वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥
महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—राजन्! (भरतवंशके वितथ अर्थात् निष्फल होनेका उपक्रम होते देखकर मरुद्गणने भरद्वाजको दिया, इस लिये उनका नाम 'वितथ' होगया। ब्राह्मण होनेपर भी भरद्वाजजी भरतके दत्तक पुत्र हुए) वितथके पुत्र मन्यु हुए। मन्युके बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर एवं गर्ग नाम पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। नरके पुत्र संकृति हुए और संकृतिके गुरु और रन्तिदेव नाम दो पुत्र हुए। महाराज! रन्तिदेवकी महिमा स्वर्ग और पृथ्वी—दोनो लोकोंमें गाई जाती है। वह अपने धनको सर्वदा बाँटाकरते थे। वह स्वयं भूखे रहने-पर भी पायेहुए अन्न या धनको उसी समय आर्थियोंको देडालते थे। राजा रन्ति-देव सम्पूर्ण सम्पत्तिका दान करडालनेसे निर्धन होकर परिवारसहित भूखोंके मारे अवसन्न (शिथिल) होपड़े। अड़तालीस दिनतक भोजनकी बात कौन कहे? जल भी पीनेको नहीं मिला। सब परिवार अन्नके अभावसे कष्ट पानेलगा और भूख व प्यासके वेगसे निर्बल राजाका शरीर काँपनेलगा। उन्चासवें दिन प्रातः-काल घी पड़ी खीर, हलवा और जल राजाको मिला। राजा भोजन करना ही चाहते थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आगया। सर्वत्र हरिको देखनेवाले राजाने आदरसे श्रद्धापूर्वक वह मिला हुआ अन्न ब्राह्मणको बाँट दिया और भोजन करके ब्राह्मण चला गया। उसके बाद बचा हुआ अन्न परिवारको बाँटकर राजा खाने जाते थे कि एक शूद्र आकर उनका अतिथि हुआ। रन्तिदेवने भगवान् हरिका स्मरण करतेहुए बचा हुआ अन्न उसको भी बाँट दिया ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ भोजन करके वह शूद्र अतिथि चला गया तब बहुतसे कुत्ते साथ में लिये एक और व्यक्ति अतिथि होकर उपस्थित हुआ और उसने कहा—राजन् मेरे ये कुत्ते और मैं भूखा हूँ—भोजन दीजिये ॥ ८ ॥ राजाने उसका भी सम्मान किया और समादरपूर्वक बचाहुआ अन्न कुत्तोंसहित उस अतिथिको देकर प्रणाम किया ॥ ९ ॥ एक मनुष्यकी प्यास जिससे बुझ सके–इतना जल केवल बच रहा था; उसीको राजा पीना चाहते थे कि अकस्मात् एक चाण्डाल वहाँ आया और उसने दीन स्वरसे प्रार्थना की कि महाराज! मैं बहुत ही श्रमित हूँ, मुझ अपवित्र नीचको पीनेके लिये थोड़ासा जल दीजिये ॥ १० ॥ उस व्यक्तिके

ऐसे कृपण वाक्य सुनकर और उसको थकाहुआ जानकर रन्तिदेवको बड़ी ही दया आई और उन्होने ये अमृतमय वचन कहे कि मैं परमेश्वरको निकट अणिमा आदि आठ सिद्धियोंसे युक्त गति अथवा मुक्तिकी कामना नहीं करता; मेरी यही प्रार्थना है कि मैं ही सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर दुःख भोग करूँ, जिससे उन सबका दुःख दूर हो जाय। इस व्यक्तिके प्राण जल-विना निकल रहे हैं; यह जीवनकी रक्षाके लिये दीन होकर मुझसे जल माँग रहा है। इसको यह जल देनेसे मेरी भूख, प्यास, भ्रान्ति, चक्कर आना, दीनता, क्लान्ति, शोक, विषाद और मोह आदि सब ही निवृत्त हो जायँगे। यह कहकर स्वाभाविक दयालु राजा रन्तिदेवने स्वयं प्यासके मारे मृतप्राय रहकर भी उस चाण्डालको वह जल देदिया। फलकी कामना करनेवालोंको फलदाता त्रिभुवननाथ ब्रह्मा विष्णु और महेश ही महाराज रन्तिदेवके धैर्यकी परीक्षा लेनेको मायाके द्वारा क्रमशः ब्राह्मणादिरूप धरकर आये थे। तदनन्तर राजाका धैर्य देखकर तीनोदेव परमसन्तुष्ट हुए और उन्होने अपना अपना यथार्थ रूप धारणकर लिया॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ महाराज रन्तिदेवने उन देवोंको देखकर प्रणाम किया और कोई भी वर नहीं माँगा। क्योंकि उन्होने सङ्ग और स्पृहा त्यागकर मनको केवल भगवान् वासुदेवमें लगा रक्खा था। रन्तिदेव नरपतिने अन्य किसी (ब्रह्मा आदि) से कुछ न माँगकर चित्तको ईश्वरमें लगा दिया, इसकारण तन्मय अवस्था पाजानेसे यह गुणमयी माया उनके निकट स्वप्नके समान अन्तर्हित होगई। रन्तिदेवके परिवारके सब जन उनके सङ्गके प्रभावसे नारायण-परायण होकर योगियोंकी गतिको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ गर्गके पुत्र शिनि हुए। शिनिके पुत्र गार्ग्य हुए। गार्ग्यजी क्षत्रियकुलमें जन्म पाकर भी कर्म करके ब्राह्मण हो गये। महावीर्य गार्ग्यके पुत्र दुरितक्षय, उनके त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि नाम तीन पुत्र हुए। ये तीनो कर्म करके ब्राह्मण होगये। बृहत्क्षत्रके पुत्र हस्ती हुए, जिन्होने हस्तिनापुर बसाया। हस्तीके अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नाम तीन पुत्र हुए। अजमीढके वंशमें प्रियमेधा आदि ब्राह्मणोंका जन्म हुआ। अजमीढके बृहदिषु नाम एक क्षत्रिय पुत्र भी हुआ। बृहदिषुके पुत्र बृहद्धनु, उनके बृहत्काय, उनके जयद्रथ, उनके विषद, उनके श्येनजित् हुए। श्येनजित्के रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स नाम चार पुत्र हुए। रुचिराश्वके पुत्र पार और पारके पुत्र पृथुसेन हुए। पारको नीप नाम एक पुत्र और भी था। नीपके एक सौ पुत्र हुए। महात्मा नीपके वीर्यद्वारा मेरी (शुकदेवकी) कन्या कृत्वीके गर्भमें महायोगी ब्रह्मदत्तका जन्म हुआ। ब्रह्मदत्त योगीश्वरने अपनी

भार्या सरस्वती देवीके गर्भसे विष्वक्सेनको उत्पन्न किया। विष्वक्सेनने योगी जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्रका प्रणयन किया। विष्वक्सेनके पुत्र उदक्सेन और उनके भल्लाट हुए। इतने राजा बृहदिषुवंशीय हुए ॥१९॥२०॥२१॥२२॥ द्विमीढके पुत्र यवीनर, उनके कृतिमान्, उनके सत्यधृति, उनके दृढनेमि, उनके सुपार्श्व, उनके सुमति, उनके सन्नतिमान्, उनके कृती हुए। कृतीने हिरण्यनाभके निकट योगशिक्षा पाकर प्राच्यसामकी छः संहिताओंको विभाजित करके अपने शिष्योंको उनका अध्ययन कराया। कृतीके उग्रायुध, उनके क्षेम्य, उनके सुवीर, उनके रिपुंजय, उनके बहुरथ हुए। पुरुमीढ़के कोई सन्तान नहीं हुआ। अजमीढ़की एक नलिनी नाम भार्या थी, उसके गर्भमें नील नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नीलके शान्ति, उनके सुशान्ति, उनके पुरुज, उनके अर्क उनके भर्म्याश्व हुए। भर्म्याश्वने एक समय कहा कि—"ये मेरे पाँचो पुत्र पाँचो विषयोंकी रक्षा करनेको भली भाँति समर्थ हैं"। इसी कारण तदुपरान्त उनकी पञ्चाल संज्ञा होगई। मुद्गलसे मौद्गल्यगोत्रीय ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई। भर्म्याश्वतनय मुद्गलके और भी दो यमज सन्तान हुए। पुत्रका नाम दिवोदास और कन्याका नाम अहल्या हुआ। अहल्याके गर्भसे गौतम ऋषिके वीर्यद्वारा महात्मा शतानन्दका जन्म हुआ। शतानन्दके पुत्र सत्यधृति हुए; वह धनुर्वेदके बड़े भारी पण्डित थे। सत्यधृतिके पुत्र शरद्वान् हुए। उर्वशी अप्सराको देखकर कामातुर राजा शरद्वान्का वीर्य शरस्तम्ब (पतावरके झुँड) में गिर पड़ा; उससे यमज सन्तान हुए। राजा शन्तनु मृगया (शिकार) करतेहुए अचानक उधरसे आ निकले और वहाँसे उन दोनो बालकोंको कृपापूर्वक लेआये ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥

बालकका नाम कृप (कृपाचार्य) और कन्याका नाम कृपी हुआ। कृपीका विवाह महारथी द्रोणाचार्य के साथ हुआ ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय

जरासंध, युधिष्ठिर और दुर्योधन आदिका विवरण

श्रीशुक उवाच—**मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तु ततो नृप ॥**
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! दिवोदासके पुत्र मित्रायु, उनके च्यवन, उनके सुदास, उनके सहदेव, उनके सोमक हुए ॥१॥ सोमकके सौ पुत्र हुए; उनमें बड़ेका नाम जन्तु और सबसे छोटेका नाम पृषत् हुआ। पृषत्के सर्वसम्पत्तिसम्पन्न राजा द्रुपद उत्पन्न हुए। द्रुपदके द्रौपदी नाम कन्या और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र उत्पन्न हुए। धृष्टद्युम्नके पुत्र धृष्टकेतु हुए। इतने ये भर्म्याश्ववंशके पाञ्चालसंज्ञक राजा हुए। अजमीढको ऋक्ष नाम एक पुत्र और था। ऋक्षके पुत्र सम्बरण हुए। सम्बरणका विवाह सूर्यकी कन्या तपतीके साथ हुआ, और उसके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति महाराज कुरु उत्पन्न हुए। कुरुके परीक्षित्, सुधनु, जन्हु और निषध नाम चार पुत्र हुए। सुधनुके पुत्र सुहोत्र, उनके कृती हुए। कृतीके पुत्र उपरिचर वसु हुए। वसुके बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र एवं चेदिप आदि पुत्र हुए। वे सब चेदिदेशके राजा हुए॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ बृहद्रथके पुत्र कुशाग्र, उनके पुत्र ऋषभ, उनके पुत्र सत्यहित, और उनके पुत्र जन्हु हुए ॥ ७ ॥ महाराज! बृहद्रथकी दूसरी रानीके एक मरा पुत्र हुआ—उसके शरीरके बीचसे अलग २ दो खण्ड थे। रानीने मृत पुत्रको बाहर महलके फिकवा दिया। उधरसे आरही जरा राक्षसीने लीलापूर्वक उन दोनो खण्डोंको जोड़ दिया और कहा कि "जीवित हो, जीवित हो"। वह बालक जी उठा और उसका नाम जरासन्ध हुआ। जरासन्धके पुत्र सहदेव हुए। सहदेवके पुत्र सोमापि, उनके श्रुतश्रवा हुए। कुरुके पुत्र परीक्षित्के कोई पुत्र नहीं हुआ और जन्हुके पुत्र सुरथ हुए। सुरथके पुत्र विदूरथ, उनके सार्वभौम, उनके जयसेन, उनके राधिक, उनके अयुतायु, उनके अक्रोधन, उनके देवातिथि, उनके ऋष्य, उनके दिलीप और उनके प्रतीप हुए। प्रतीपके देवापि, शन्तनु और वाल्हीक नाम तीन पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ देवापि पिताका राज्य छोड़कर वनको चले गये; मँझले पुत्र शन्तनुजी राजा हुए। पूर्वजन्ममें शन्तनुका नाम महाभिष था। शन्तनुजी जिस वृद्धके शरीरमें हाथ लगा देते वह जवान होजाता और उसे परम शान्ति प्राप्त होती, इसी कर्मसे उनका नाम शन्तनु पड़ा। एक समय शन्तनुके राज्यमें बारह वर्षतक वर्षा नहीं हुई। तब राजाने घबड़ाकर ब्राह्मणोंसे अनावृष्टिका कारण पूछा। ब्राह्मणोंने कहा—महाराज!

बड़े भाईके रहते राज्यभोग करनेके कारण आप 'परिवेत्ता' हो गये हैं। पुरराष्ट्रकी भलाईके लिये आप शीघ्र बड़े भाईको लाकर उनके हाथमें राज्यशासन देदीजिये ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥ ब्राह्मणोंके यों कहनेपर शन्तनुने बड़े भाईसे राजा होनेके लिये अनुरोध किया। किन्तु इससे पहले ही शन्तनुके मन्त्रीने कुछ ब्राह्मणोंको उनके बड़े भाई देवापिके पास भेज दिया था। उन ब्राह्मणोंके स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये कहे गये पाखण्डमतपोषक वाक्योंसे मोहित एवं वेदमार्गसे भ्रष्ट देवापि वेदकी निन्दा करनेलगे। वेदकी निन्दा करनेके कारण पतित होजानेसे देवापि राज्यपद पानेके अधिकारी नहीं रहे। अतएव उनके बाद शन्तनुका राज्य करनेमें कोई दोष नहीं रहा और समयपर वर्षा होने लगी। तबसे योगी देवापि योगावलम्बन किये कलापग्राममें अवस्थित हैं। कलियुगमें जब चन्द्रवंशका विनाश होनेलगेगा तब सत्ययुगके प्रारम्भकालमें वह विवाह करके चन्द्रवंशका नाश न होने देंगे। बाल्हीकके पुत्र सोमदत्त हुए और उनके भूरि, भूरिश्रवा एवं शल नाम तीन पुत्र हुए। शन्तनुको गङ्गादेवीके गर्भसे आत्मज्ञानी भीष्मपितामहका, जन्म हुआ। महात्मा भीष्मजी सब प्रकारके धर्मोंके ज्ञाता, श्रेष्ठ, महाभागवत, विद्वान् एवं वीरजनोंमें अग्रणी थे—उन्होने संग्राम करके परशुरामजीको भी प्रसन्न कर दिया था। शन्तनुके दासकन्या सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नाम दो पुत्र और भी हुए। चित्राङ्गदको चित्राङ्गद नाम गन्धर्वने युद्धमें मारडाला। उपरिचर वसुके वीर्यद्वारा मत्स्यगर्भसे उत्पन्न एवं मल्लाहोंके यहाँ पाली हुई सत्यवतीके गर्भसे (कुमारी दशामें ही) पराशर ऋषिके वीर्यसे भगवान् हरिका अंशावतार महर्षि वेदव्यासजी उत्पन्न हुए, जिन्होने वेदके विभाग किये। मैं उनका पुत्र हूँ एवं मैंने उनसे यह भागवत शास्त्र पढ़ा है। मुझमें पिताके समान सभी गुण थे, अतएव भगवान् व्यासजीने अपने शिष्य पैल आदिको न देकर परमगुप्त यह भागवतशास्त्र मुझकोही पढ़ाया। उपर्युक्त विचित्रवीर्यने काशिराजकी अम्बा और अम्बालिका नाम दो कन्याओंसे विवाह किया। इन दोनो कन्याओंको भीष्मजी स्वयंवरसे बलपूर्वक हरलाये थे। दोनो स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण कुछ ही कालमें विचित्रवीर्यको दुस्साध्य यक्ष्मा रोग हो गया, जिससे वह अकालमें ही कालके गालमें चले गये। विचित्रवीर्यके सहोदर भाई भगवान् वेदव्यासने माताके नियोग (आज्ञा) से विचित्रवीर्यके क्षेत्र (रानियों) में धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नाम तीन पुत्र उत्पन्न कर दिये। राजन्! धृतराष्ट्रके वीर्यद्वारा गान्धारीके गर्भसे दुर्योधन आदि एक सौ पुत्र और दुःशला नाम कन्या उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ पाण्डु शापके कारण मैथुनव्यापारसे वञ्चित रहे। उनकी पत्नी कुन्तीके गर्भसे इन्द्र और वायुके

अंशसे युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम नाम तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए, एवं पाण्डुकी दूसरी रानी माद्रीके अश्विनीकुमारके अंशसे नकुल और सहदेव नाम दो परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। इन्ही पाँचो पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदीजी हुईं। युधिष्ठिरादि पाँचो पाण्डवोंको द्रौपदीके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। वे तुम्हारे पूर्वज पितर हैं। उनके नाम ये हैं—युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीय एवं सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ। महाराज! पाण्डवोंको द्रौपदीके सिवा और भी स्त्रियाँ थीं और उनमें कुछ पुत्र भी उत्पन्न हुए। युधिष्ठिरको पौरवीके गर्भसे देवक हुए, भीमसेनको हिडिम्बा राक्षसीके गर्भसे घटोत्कच और कालीके गर्भसे सर्वगत उत्पन्न हुए, सहदेवको पर्वतकन्या विजयाके गर्भसे सुहोत्र हुए, नकुलको करेणुमतीके गर्भसे नरमित्र उत्पन्न हुए, एवं अर्जुनको उलूपीके गर्भसे इरावान् और मणिपुरके राजाकी कन्याके गर्भसे बभ्रुवाहन एवं सुभद्राके गर्भसे परम प्रतापी तुम्हारे पिता अभिमन्यु उत्पन्न हुए। बभ्रुवाहनके नानाने इस प्रतिज्ञापर अपनी कन्या अर्जुनको दी थी कि उसका पुत्र हम लेलेंगे, इस लिये बभ्रुवाहन अपने नानाके ही वंशमें रहे। अभिमन्यु, सब कर्णादि अतिरथ वीरोंको नीचा दिखानेवाले महावीर योद्धा थे। अभिमन्युको उत्तराके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ। राजन्! अश्वत्थामाद्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंशका विनाशही हो चुका था—गर्भमेंही तुम्हारे प्राणोंका अन्त हो चुका था। उस समय कृष्णचन्द्रके प्रभावसे ही जीवनसहित तुम यमके मुखसे मुक्त हुए ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे तात! तुम्हारे इस समय जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन एवं पराक्रमी उग्रसेन नाम चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ तक्षकके विषसे तुम्हारे शरीरपातका वृत्तान्त जानकर जनमेजय कोपके आवेशसे सर्पयज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञकुण्डमें अनेक सर्पोंका हवन करदेंगे ॥ ३६ ॥ फिर जनमेजय दिग्विजय करके अश्वमेध यज्ञ एवं कलषके पुत्र तुर नाम ऋषिको आचार्य बनाकर अन्यान्य अनेक महायज्ञ करेंगे ॥ ३७ ॥ जनमेजयके पुत्र शतानीक होंगे। वह याज्ञवल्क्य योगेश्वरके निकट वेदपाठ करके क्रियाज्ञान और शौनक ऋषिके आत्मज्ञान एवं कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेंगे ॥ ३८ ॥ शतानीकके पुत्र सहस्रानीक उनके अश्वमेधज, उनके असीमकृष्ण, उनके नेमिचक्र होंगे ॥ ३९ ॥ हस्तिनापुर जब यमुनामें डूब जायगा तब वह कौशाम्बी नगरीमें सुखसे वास करेंगे। नेमिचक्रके पुत्र उप्त, उनके चित्ररथ, उनके शुचरथ, उनके वृष्टिमान्, उनके सुषेण, उनके महीपति, उनके सुनीथ, उनके नृचक्षु, उनके सुखीनल, उनके पारिप्लव, उनके सुनय, उनके मेधावी, उनके नृपञ्जय, उनके दूर्व, उनके तिमि, उनके बृहद्रथ, उनके सुदास, उनके शतानीक, उनके दुर्दमन,

उनके महीनर, उनके दण्डपाणि, उनके निमि, और निमिके क्षेमक उत्पन्न होंगे । ब्राह्मण और क्षत्रियोंको उत्पन्न करनेवाला और देवर्षियों द्वारा आदरको प्राप्त यह वंश कलियुगमें क्षेमक राजा तक चलेगा । हे महाराज ! मगधवंशमें जो राजा आगे होंगे उनका विवरण सुनिये । जरासन्धतनय सहदेवके पुत्र मार्जारि उनके श्रुतश्रवा, उनके अयुतायु, उनके निरमित्र, उनके सुनक्षत्र, उनके बृहत्सेन, उनके कर्मजित्, उनके श्रुतञ्जय, उनके विप्र, उनके शुचि, उनके क्षेम, उनके सुव्रत, उनके धर्मसूत्र, उनके सम, उनके द्युमत्सेन, उनके सुमति, उनके सुबल ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः ॥
बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥ ४९ ॥

उनके सुनीथ, उनके सत्यजित्, उनके विश्वजित् और उनके रिपुंजय होंगे । बृहद्रथवंशीय राजागण कलियुगमें सहस्रवर्ष पर्यन्त रहेंगे—फिर इस वंशका लोप हो जायगा ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय

अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु व यदुके वंशोंका विवरण

श्रीशुक उवाच—अनोः सभानरश्चक्षुः परेक्षुश्च त्रयः सुताः ॥
सभानरात्कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—राजन्! अनुके सभानर, चक्षु और परेक्षु नाम तीन पुत्र हुए । सभानरके कालनर, उनके सृंजय, उनके जनमेजय, उनके महाशील, उनके महामना और उनके उशीनर तथा तितिक्षु नाम दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ २ ॥ उशीनरके शिवि, वन, शमि, और दक्ष नाम चार पुत्र हुए । शिविके वृषदर्भ, सुवीर, मद्र और केकय नाम चार पुत्र हुए । तितिक्षुके पुत्र उशद्रथ हुए, वृषद्रथके हेम, उनके सुतपा, उनके बलि उत्पन्न हुए । बलिके क्षेत्र (रानी) में दीर्घतमा ऋषिके वीर्यसे अंग, वंग, कलिंग, शुम्भ, पुंड्र, उंड्र संज्ञक नरपतिगण उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन्होने पूर्वभारतमें अपने २ नामसे छः राज्य स्थापित किये । अंगके पुत्र खलपान, उनके दिविरथ, उनके धर्मरथ और उनके चित्ररथ हुए । चित्ररथके कोई सन्तान नहीं हुआ । चित्ररथका दूसरा नाम रोमपाद था । रोमपादसे और [illegible] दशरथसे सखा भाव

था। दशरथने सखाको अपुत्र देख अपनी शान्ता नाम कन्या उनको दे डाली। हरिणीतनय ऋष्यश्रृङ्ग मुनिने शान्तासे विवाह किया। ऋष्यश्रृङ्गमुनि संसारसे बिल्कुल अपरिचित थे; एक समय रोमपाद राजाके देशमें कुछ काल तक इन्द्रने जल नहीं बरसाया, तब रजाकी आज्ञासे वेश्याएँ तपोवनमें जाकर गीत, वाद्य, नाट्य इत्यादि कौतुकोंसे एवं अपने विभ्रमविलास, आलिङ्गन और वार्त्तालाप आदिसे ऋष्यश्रृङ्गको मोहितकर अपने साथ रोमपादके राज्यमें ले आईं। ऋष्यश्रृङ्गके आतेही जलकी वर्षा हुई। तदनन्तर ऋष्यश्रृङ्गजीने निःसन्तान राजा रोमपादको इन्द्रयाग कराकर पुत्र प्रदान किया एवं महाराजा दशरथने भी इन्हीकी सहायतासे यज्ञ करके राम, लक्ष्मण आदि चार पुत्र पाये। रोमपादका पुत्र चतुरंग, उनके पृथुलाक्ष, और उनके बृहद्रथ, बृहत्कर्मा एवं बृहद्भानुनाम तीन पुत्र उत्पन्न हुए। बृहद्रथके पुत्र बृहन्मना, उनके जयद्रथ, उनके विजय हुए। विजयके सम्भूति नाम भार्यामें धृति उत्पन्न हुए। धृतिके पुत्र धृतव्रत, उनके सत्कर्मा, उनके अधिरथ हुए। अधिरथने ही गङ्गामें सन्दूकके भीतर बंद-बहे जा रहे कर्णको पाया और स्वयं अपुत्र होनेके कारण कर्णको अपना (ईश्वरप्रदत्त) पुत्र मान लिया। कर्ण वास्तवमें कुन्तीके पुत्र हैं; (कुन्तीने कन्या-अवस्थामें ही दुर्वासाके मन्त्रकी परीक्षाके लिये सूर्यका आवाहन किया। अमोघवीर्य सूर्यके अंशद्वारा कुन्तीके कानसे कर्णका जन्म हुआ, किन्तु कुन्तीने कलङ्कके डरसे कर्णको सन्दूकमें बंदकर गङ्गामें बहादिया) कर्णके पुत्र वृषकेतु हुए। द्रुह्युके पुत्र बभ्रु, उनके सेतु उनके आरब्ध, उनके गान्धार, उनके धर्म, उनके धृत, उनके दुर्मद, और उनके प्रचेता हुए। प्रचेताके सौ पुत्र हुए। वे सब उत्तर दिशामें म्लेच्छोंके अधिपति हुए। तुर्वसुके पुत्र वह्नि, उनके भर्ग, उनके भानुमान्, उनके त्रिभानु उनके उदारस्वभाववाले करन्धम, और उनके मरुत्त हुए। मरुत्तके कोई पुत्र नहीं हुआ, इसलिये उन्होने पूरुवंशीय दुष्यन्तको गोद ले लिया, किन्तु राज्यकी अभिलाषासे दुष्यन्त फिर पूरुवंशमें मिलगये। हे नरवर, अब इसके बाद ययातिके बड़े पुत्र यदुका परम पवित्र एवं मानवमण्डलीके सब प्रकारके कलुष मिटानेवाला वंश कहताहूँ। इस यादववंशमें भगवान् परमात्मा मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए हैं इसका विवरण सुननेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, अनल एवं रिपु नाम चार पुत्र हुए। सहस्रजित्के पुत्र शतजित् और उनके महाहय, रेणुहय एवं हैहय नाम तीन पुत्र हुए। हैहयके पुत्र धर्म, उनके नेत्र, उनके कुन्ति, उनके सोहञ्जि, उनके महिष्मान्, और उनके भद्रसेन हुए॥ ६ ॥७॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक नाम दो पुत्र हुए। धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा नाम चार पुत्र हुए। कृतवीर्यके पुत्र सप्तद्वीपपति सहस्रबाहु अर्जुन हुए। इन अर्जुनने भगवान्के अंशावतार परमहंस दत्तात्रेयजीसे योगविद्या पाई थी। अन्य कोई राजा—

यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन, शौर्य, वीर्य और दया आदिमें महात्मा अर्जुनकी समता नहीं कर सकता। इन अव्याहतपराक्रमयुक्त अर्जुनने पचासी हजार वर्षपर्यन्त निरन्तर छहों इन्द्रियोंके विषयसुखका उपभोग किया; तथापि भण्डार और कोष अक्षय ही बना रहा। अर्जुनके एक सहस्र पुत्र थे, उनमें परशुरामसे संग्राम करके सब मरगये; केवल जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु एवं ऊर्जित ये पाँच बचे। जयध्वजके पुत्र तालजङ्घ हुए और तालजङ्घके सौ पुत्र हुए। ये सब तालजङ्घनामक क्षत्रिय महाराजा सगरके हाथों मारे गये। तालजङ्घके सौ पुत्रोंमें बड़ेका नाम वीतिहोत्र था। मधुके पुत्रका नाम वृष्णि था। मधुके पुत्र एक सौ थे, उनमें वृष्णि सबसे बड़े थे। राजन्! यदु, मधु एवं वृष्णिके नामसे इस वंशमें यादव, माधव और वार्ष्णेय नाम कई अवान्तरभेद होगये। यदुके पुत्र क्रोष्टाके पुत्र वृजिनवान् हुए, उनके स्वहित उनके विशद्गु, उनके चित्ररथ, उनके महायोगी महाभाग शशबिन्दु हुए। महाराज शशबिन्दु श्रेष्ठ चतुर्दश रत्नोंके[1] स्वामी एवं अपराजित राजचक्रवर्ती थे॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥३१॥ शशबिन्दुके दस हजार रानियाँ थीं—प्रत्येक पत्नीमें एक एक लक्ष सन्तान उत्पन्न होनेसे उनके सब सौ करोड़ सन्तान हुए। उन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा इत्यादि छः प्रधान पुत्र थे। पृथुश्रवाके पुत्र धर्म, उनके उशना हुए। उशनाने सौ अश्वमेध किये। उशनाके पुत्र रुचक और उनके पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु एवं ज्यामेव नाम पाँच पुत्र हुए। ज्यामेघके कोई पुत्र न था, तथापि उन्होने अपनी भार्या शैब्याके भयसे दूसरा विवाह नहीं किया। वह एक समय शत्रुके भवनसे भोज्या नाम एक कन्या हरलाये। उस कन्याको स्वामीके रथपर देखकर शैब्याने कुपित होकर पतिसे कहा कि "यह कौन है? किसको रथपर बिठाके लाये हो?"। ज्यामेघने भयके मारे स्त्रीसे कहा कि "यह तुम्हारे पुत्रकी स्त्री होगी" शैब्याने विस्मित होकर कहा—"मैं तो वन्ध्या (बाँझ) हूँ, मेरे कोई सौत भी नहीं है; तब यह मेरे पुत्रकी वधू कैसे होगी?"। ज्यामेघने कहा—"रानी! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी उसकी यह स्त्री होगी" ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अन्वमोदन्त तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ॥
शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥३९॥

---

१ मार्कण्डेयपुराणमें महाराजोंके ये १४ रत्न कहेहैं—१ गजरत्न, २ वाजिरत्न, ३ रथरत्न ४ स्त्रीरत्न, ५ निधिरत्न, ६ माल्यरत्न, ७ वस्त्ररत्न, ८ द्रुमरत्न, ९ शक्तिरत्न, १० पाशरत्न, ११ मणिरत्न, १२ छत्ररत्न, १३ चामररत्न और १४ विमानरत्न।

महाराज! विश्वेदेवा और पितृगण राजाके इस वाक्यपर आनन्दित हुए। तदनन्तर शैब्याके गर्भ रहा एवं यथोचित समयपर उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस कुमारका नाम विदर्भ हुआ और विदर्भके साथ उसी भोज्याका विवाह हुआ ॥३९॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय

विदर्भके पुत्रोंके वंशका वर्णन

श्रीशुक उवाच–तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—महाराज! विदर्भके उसी पत्नीके गर्भसे कुश, क्रथ तथा विदर्भकुलनन्दन रोमपाद उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ रोमपादके पुत्र बभ्रु, उनके कृति, उनके उशिक, उनके चेदि और उनसे चैद्य आदि राजा उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ क्रथके पुत्र कुन्ति, उनके वृष्णि, उनके निर्वृति, उनके दशार्ह, और उनके व्योम हुए ॥ ३ ॥ व्योमके जीमूत, उनके विकृति, उनके भीमरथ, उनके नवरथ, उनके दशरथ ॥ ४ ॥ उनके शकुनि, उनके करम्भि, उनके देवरात, उनके देवक्षत्र, उनके मधु, उनके कुरुवश ॥ ५ ॥ उनके अनु, उनके पुरुहोत्र, उनके आयु और उनके सात्वत हुए। हे आर्य! सात्वतके भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक एवं महाभोज नाम सात पुत्र हुए। भजमानके एक स्त्रीमें निम्लोचि, किंकण एवं धृष्टि और दूसरी स्त्रीमें शतजित्, सहस्रजित् और अयुतजित् ये छः पुत्र हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ देवावृधके पुत्र बभ्रु हुए। इन पिता और पुत्रके प्रसंगमें कविगणने ये दो श्लोक कहे हैं। यथा—"हम जैसा इनको दूरसे सुनते हैं वैसा ही निकट जाकर देखपाते हैं। बभ्रुजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवतोंके समान हैं। उन्नासी (७९) हजार मनुष्य बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मुक्त होगये"। सात्वतके पुत्र महाभोज अत्यन्त धर्मात्मा थे। उनके वंशमें भोजवंशीय यादव हुए। हे परन्तप! सात्वततनय वृष्णिके दो पुत्र थे—सुमित्र और युधाजित्। युधाजित्के शिनि और अनमित्र हुए। अनमित्रके पुत्र निघ्न हुए। और निघ्नके सत्राजित् और प्रसेन हुए। हे राजन्! अनमित्रके शिनी नाम एक और पुत्र थे, उनके पुत्र सत्यक हुए। सत्यकके पुत्र युयुधान (सात्यकि) हुए; उनके जय, उनके कुणि, उनके युगंधर हुए। अनमित्रके वृष्णि नाम और एक पुत्र थे; उनके पुत्र श्वफल्क हुए। उनके गान्दिनीके गर्भसे अक्रूरजी और आसङ्ग, सारमेय, मृदुर,

मृदुरि, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमाद एवं प्रतिबाहु नाम बारह पुत्र हुए। इनके सुचारा नाम एक बहन भी थी। अक्रूरके देववान् और उपदेव नाम दो पुत्र हुए। चित्ररथके पृथु, विदूरथ आदि बहुतसे पुत्र हुए। ये सब वृष्णिवंशीय है। अन्धकके कुकुर, भजमान, शुचि, कम्बल और बर्हिष ये चार पुत्र हुए। कुकुरके पुत्र वह्नि, उनके विलोमा, उनके कपोतरोमा, और उनके अणु हुए। अणुसे और तुम्बुरु गन्धर्वसे मित्रता थी। अणुके पुत्र अन्धक, उनके दुन्दुभि, उनके अविद्य, उनके पुनर्वसु, उनके आहुक नाम पुत्र और आहुकी नाम कन्या हुई। आहुकके देवक और उग्रसेन नाम दो पुत्र हुए। देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव एवं देववर्धन हुए। राजन्, इनके धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी नाम सात बहनें थी। इन सातोंका विवाह वसुदेवसे हुआ। उग्रसेनके कंस, सुनाम, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, धृष्टि एवं तुष्टिमान् नाम नौ पुत्र और कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू, राष्ट्रपालिका नाम पाँच कन्याएँ हुईं। इनका विवाह वसुदेवके भाई देवभाग आदिके साथ हुआ ॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥ ॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥ चित्ररथके पुत्र विदूरथके पुत्र शूर हुए। शूरके पुत्र भजमान, उनके शिनि, उनके भोज, उनके हृदीक और उनके देवबाहु, शतधनु और कृतवर्मा नाम तीन पुत्र हुए। देवमीढ़के पुत्र शूर हुए। शूरके मारिषा नाम पत्नीमें वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक नाम दश पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। वसुदेवके जन्मके समय स्वर्गमें देवतोंने प्रसन्न होकर दुन्दुभी और ढोल बजाये, इसीकारण हरिके प्रादुर्भावका आधार जो वसुदेवजी हैं उनका नाम आनकदुन्दुभी पड़ा। वसुदेव आदिके पृथा श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा, और राजाधिदेवी नाम पाँच बहनें भी थीं। शूरने अपने सखा कुन्ति राजाको पुत्रहीन देखकर अपनी कन्या पृथा उनको दे डाली, अतएव पृथाका दूसरा नाम कुन्ती है। कुन्तीने दुर्वासाऋषिको प्रसन्न करके उनसे 'देवहूति' नाम विद्या (जिस विद्यासे मनुष्य हरएक देवताको अपने निकट बुला सकता है) प्राप्त की। तदनन्तर कुन्तीने उस विद्याकी परीक्षाके लिये पवित्रतापूर्वक सूर्यदेवका आवाहन किया। परन्तु सूर्यदेवको उसी समय आकर उपस्थित हुआ देख कुन्तीको बहुत ही विस्मय हुआ। उन्होने विनयपूर्वक निवेदन किया कि हे देव! मैंने केवल परीक्षाके लिये ही इस विद्याका प्रयोग किया था, इससमय आप गमन कीजिये और मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। सूर्यदेवने कहा—देवतोंका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता—मैं तुममें गर्भाधान करूँगा, किन्तु तुम्हारी योनि दूषित न होगी अर्थात् तुम कन्या ही बनी रहोगी। यों कहके गर्भाधान कर सूर्यदेव चले गये। उसी क्षण दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी बालक कुन्तीके कानसे उत्पन्न

हुआ। कुन्तीने लोकापवादके भयसे उस पुत्रको नदीकी धारामें छुड़वा दिया। महाराज! तुम्हारे प्रपितामह सत्यविक्रम महाराज पाण्डुसे कुन्तीजीका विवाह हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ श्रुतदेवाका विवाह करूपवंशीय वृद्धशर्मासे हुआ। उनके सनकादिके शापसे दानवयोनिको प्राप्त विजय नाम विष्णुपार्षदने दन्तवक्र नामसे जन्म लिया। केकयवंशीय धृष्टकेतु राजाके साथ श्रुतकीर्तिका विवाह हुआ; उनके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। जयसेनके साथ राजाधिदेवीका बिवाह हुआ; उनके विन्द और अनुविन्द नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए। चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवासे बिवाह किया; उनके पुत्रका नाम शिशुपाल हुआ। शिशुपालकी उत्पत्ति कह चुके हैं। वसुदेवके भाइयोंका वंश सुनिये—देवभागके कंसाके गर्भसे चित्रकेतु और बृहद्बल, देवश्रवाके कंसवतीके गर्भसे सुवीर और इषुमान्, कङ्कके कङ्काके गर्भसे बक सत्यजित् और पुरजित्, सृंजयके राष्ट्रपालीके गर्भसे वृष एवं दुर्मर्षण आदिक, श्यामकके शूरभूमिके गर्भसे हरिकेश और हिरण्याक्ष, वत्सकके मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे वृक आदिक, वृकके दूर्वाक्षीके गर्भसे तक्ष और पुष्करमाल आदिक, शमीकके सुदामिनीके गर्भसे सुमित्र अर्जुनपाल आदिक एवं आनकके कर्णिकाके गर्भसे ऋतधामा और जय उत्पन्न हुए। वसुदेवके पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, देवकी आदि अनेक स्त्रियाँ थीं। उनमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत आदि पुत्र—पौरवीके गर्भसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूत आदिक बारह पुत्र-मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक एवं शूर आदि पुत्र-भद्राके गर्भसे केशी नाम एक प्रतापी पुत्र-रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमाङ्गद आदिक-इलाके गर्भसे उरुवल्क आदि यादवश्रेष्ठ पुत्र-धृतदेवाके गर्भसे विपृष्ठ-शान्तिदेवाके गर्भसे श्रुत प्रतिश्रुत आदिक-उपदेवाके गर्भसे राजन्य, कल्प, वर्ष आदिक दश पुत्र-श्रीदेवाके गर्भसे वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र एवं देवरक्षिताके गर्भसे गद आदि नौ पुत्र उत्पन्न हुए। जैसे साक्षात् धर्मने आठो वसुओंको उत्पन्न किया वैसे ही वसुदेवने सहदेवाके गर्भसे प्रवर, श्रुतमुख्य आदि आठ श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न किये। देवकीके भी गर्भसे वसुदेवके ये आठ पुत्र हुए-कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सन्तर्दन, भद्र, शेषावतार सङ्कर्षण एवं हे राजन्, आठवें साक्षात् स्वयं हरि। देवकीको सुभद्रा नाम एक कन्या भी हुई, जो तुम्हारी पितामही थीं। महाराज! जब जब धर्मका क्षय और अधर्मकी वृद्धि होती है इसीसमय भगवान् हरिका कोई न कोई अवतार होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ॥ ३९॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥४६॥४७॥४८॥४९॥ ५०॥५१ ॥ ५२॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ महाराज! नहीं तो जो मायाके नियन्ता, सङ्गविहीन,

सबके साक्षी एवं सर्वत्र हैं उन परमेश्वरके जन्म अथवा कर्मका कारण सिवा मायाविनोदके और क्या हो सकता है ? उनकी मायामयी लीलायें जीवके लिये अनुग्रहस्वरूप हैं, क्योंकि वे लीलायें ही जगत्की सृष्टि, पालन और संहारका निदान कारण हैं-उनके द्वारा सृष्टिआदिकी निवृत्ति होनेसे वे जीवके लिये मोक्षका कारण हो जाती हैं। राजन्! अनेकानेक अक्षौहिणी सेनाके स्वामी, नृपतिचिह्नधारी असुरगणके आक्रमणद्वारा भारी बोझेसे पीड़ित पृथ्वीका भारी भार दूर करनेके लिये भगवान्का यह अवतार हुआ है। जिन कर्मोंकी कल्पना देवगण मनमें भी नहीं कर सकते उन दुष्कर और अचिन्त्य कर्मोंको भगवान् कृष्णचन्द्रने सङ्कर्षणजीके साथ लीलापूर्वक किया है। महाराज! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, वह संकल्पमात्रसे ही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये समर्थ थे, तथापि भगवान्ने कलियुगमें जो भक्तजन होंगे उनपर अनुग्रह प्रकाशित करतेहुए अवतार लेकर दुःख, शोक, तमोगुण आदिको मिटानेवाला अपना पवित्र यश पृथ्वीमण्डलमें विस्तृत किया। यह हरिका यश साधु पुरुषोंके लिये श्रवणामृत एवं श्रेष्ठतीर्थस्वरूप है; एक बार केवल श्रोत्ररूप अञ्जलिद्वारा यह यशसुधा पीनेसे मनुष्य कर्मवासनाओंके त्याग करनेमें सर्वथा समर्थ होजाता है। अतएव भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशके सभी मनुष्य भगवान्के चरित्रोंकी प्रशंसा करते आये हैं। भगवान् कृष्णचन्द्रने अपने स्नेहपूर्ण मुसकानसे युक्त कृपाकटाक्ष, उदार वचन, विक्रम-लीला और सर्वाङ्गसुन्दर मूर्तिके द्वारा मनुष्य-लोकमात्रको आनन्दित किया। मकराकृत कुण्डलोंसे दोनो कान और अमोल कपोलोंकी कैसी मनोहर छवि थी! विलासपूर्ण हास्य उस श्रीमुखमें सदैव विराजमान रहता था और उससे वदनारविन्द सदैव उत्सवपूर्ण रहता था। उस मुख-कमलको नेत्रोंसे देखकर स्त्री और पुरुषोंको तृप्ति ही न होती थी। भगवान्के भुवनमोहन रूपको देखकर सब नर नारी अत्यन्त प्रसन्न होते थे, एवं उस समय पलक लगना भी उनको असह्य होजाता था! वे पलक लगनेका दोष देकर राजा निमि (क्योंकि वह मनुष्योंकी पलकोंमें रहते हैं) को कोसते थे। राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र पहले अपने चतुर्भुज रूपसे प्रकट हुए, तदनन्तर मनुष्यरूप होकर पिताके बन्दीगृहसे व्रजको गये। वहाँ शत्रु दानवोंका संहार करके व्रजवासियोंका प्रयोजन सिद्ध किया और उसके बाद बहुतसे विवाह करके एक एक स्त्रीमें दस दस पुत्र उत्पन्न किये एवं लोकसमाजमें वेदमार्गका प्रचार व विस्तार करतेहुए अनेकानेक यज्ञोंसे अपना ही पूजन किया ॥५७॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥ ॥६३॥६४॥६५॥६६॥

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणा-
मन्तःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ।।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ।। ६७ ।।

कौरवोंमें उठेहुए गृहविवादको कारण बनाकर, अपनी दृष्टिसे, युद्धभूमिमें युद्ध करने आयेहुए राजोंकी आयु और सेनाका क्षय करतेहुए पृथ्वीके महाभारको उतारकर एवं अर्जुनकी विजयघोषणा कराकर और उद्धवको तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर श्रीकृष्णरूप श्रीनारायण अपने परम धामको चले गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

समाप्तोऽयं नवमस्कन्धः ।
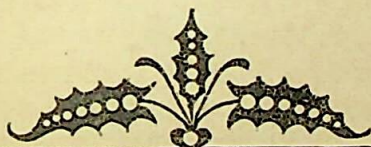
शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

दशमस्कन्ध–पूर्वार्धः

कृष्णजन्म, बाललीला ।

श्रीः
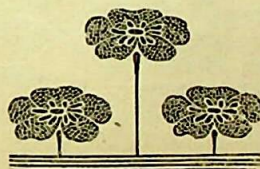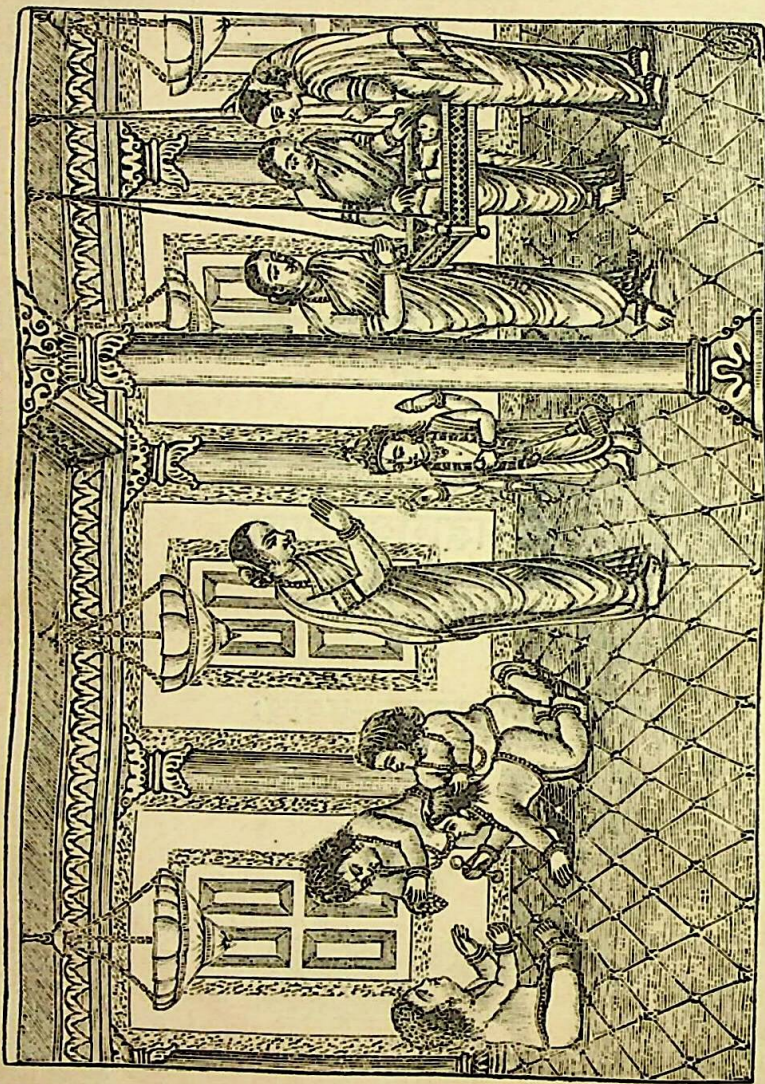
शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

दशमस्कन्ध–पूर्वार्धः

प्रथम अध्याय

कंसके हाथों देवकीके छः बालकोंका वध

राजोवाच–कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने विस्तारपूर्वक चन्द्रवंश और सूर्यवंशका वर्णन किया; दोनो वंशोंमें उत्पन्न राजोंके परम पवित्र विचित्र चरित्र भी सुनाये ॥ १ ॥ धर्मात्मा यदुका वंश भी कहा, अब उसी यदुवंशमें अंशसे उत्पन्न विष्णु भगवान्‌के चरित्र हमको सुनाइये ॥ २ ॥ प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान्‌ने यदुवंशमें अवतार लेकर जो जो अद्भुत कर्म किये हैं उन सबको विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ जीवन्मुक्त लोग भी उन पवित्र यशवाले हरिके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं। मोक्षकी कामनावाले व्यक्तियोंके लिये हरिगुण-गानही मुक्तिपानेका एक मात्र उपाय है, क्योंकि वह भवरूप व्याधिका औषध है और कान व मनका रमणीय विषय है। जड़ अथवा अज्ञानीके सिवा और

कौन पुरुष उसके सुननेमें विरक्त (उदासीन) होगा ? ॥ ४ ॥ अहा ? वह कृष्णचन्द्र हमारे कुलपर बड़ीही कृपा करते थे। देखिये, कौरवोंकी सेना सागरके समान अगम्य और अपार थी; क्योंकि समरमें अमरगणको भी जीतनेवाले भीष्मपितामह आदि बड़े बड़े महारथी योद्धा उसमें तिमिङ्गिल (एक बड़ी भारी भयानक मछली, जो महासागरमें रहती है) के समान थे, जिनसे बचना बहुत ही कठिन था। किन्तु हमारे पितामह पाँचो पाण्डव कृष्णचरणरूप नौकाके आश्रयसे गायके खुरके गढ़ेके समान सहजमें उसके पार पहुँच गये ॥ ५ ॥ और देखिये, भारतके बाद कौरव और पाण्डवोंके वंशका अङ्कुर एक मैं ही बच रहा था, किन्तु जब मैं माताके गर्भमें ही था उस समय मेरे मारनेके लिये अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र चलाया। उस अस्त्रसे मेरा शरीर नष्ट ही होचुकाथा, किन्तु वैसे ही मेरी माताको शरणमें आयी देख कृपालु कृष्णचन्द्रने गर्भमें प्रवेश करके सुदर्शन चक्रद्वारा मेरी रक्षा की ॥ ६ ॥ वह कृष्णचन्द्र सब देहधारियोंके भीतर आत्मारूपसे और बाहर कालरूपसे अवस्थित हैं; वह विषयी जनोंको कालरूपसे मृत्यु (जन्ममरणका बन्धन) और आत्मज्ञानियोंको आत्मारूपसे अमृत अर्थात् मुक्ति देते हैं। ब्रह्मन् ! उन मायामनुष्यरूप हरिकी लीलाएँ मुझको सुनाइये ॥७॥ भगवन् ! आपने पहले सङ्कर्षणजीको, जिनका एक नाम राम भी है, रोहिणीका पुत्र बताकर फिर देवकीके आठ पुत्रोंमें भी गिनाया है। विना दूसरा शरीर धारण किये रोहिणीके पुत्र सङ्कर्षणजी देवकीके गर्भमें कैसे आसकते हैं ? ॥ ८ ॥ इसके सिवा यह भी बताइये कि भगवान् कृष्णचन्द्र पिताके घरसे व्रजको क्यों गये ? यदि कहो कंसके भयसे— तो उनको भय कैसा ? और भक्तवत्सल भगवान् जातिभाइयोंसहित कहाँपर रहे ? ॥९॥ व्रजमें रहकर कृष्णचन्द्रने क्या २ चरित्र किये और मथुरामें क्या २ किया ? अपने मामा कंसको क्यों मारा ? क्योंकि माताके भाईकी हत्या महा अनुचित है ॥१०॥ मनुष्यदेह धारणकर यादवोंसहित यदुपुरीमें कितने दिन रहे और उनके रानियाँ कितनी थीं ? ॥११॥ हे मुनिवर ! ये सब बातें व और सब कृष्णके चरित्र विस्तारपूर्वक कहिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। मुझे कृष्णकी लीलाओंपर बड़ी ही श्रद्धा है ॥१२॥ आप मेरे भूखे प्यासे होनेकी चिन्ता तनिक भी न कीजिये। यद्यपि भूख और प्यासको सहना बहुत ही कठिन काम है, तथापि मुझको कुछ भी भूख और प्यासकी पीड़ा नहीं है। मैंने जलतक त्याग कर दिया है, किन्तु आपके मुखकमलसे निकलेहुए हरिकथारूप अमृतके पान करनेसे मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हैं ॥ १३ ॥ सूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहते हैं कि—हे शौनक ! राजाके ये अति उत्तम प्रश्न सुनकर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ भगवान् शुकदेवने पहले परीक्षित्की बड़ाई की और फिर कलियुगके दोषोंको दूर करनेवाला कृष्णचरित्र यों कहनेलगे ॥ १४ ॥ शुकदेवजी बोले—हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ परीक्षित् ! तुमने अच्छा समय अपनी

बुद्धिसे बहुत ही अच्छा विचार किया जो कृष्णचन्द्रकी कथा (चर्चा) में दृढ़-ताके साथ चित्त लगाया ॥ १५॥ भगवान्‌के चरित्रोंका जिससे सम्बन्ध हो वह प्रश्न—पूछनेवाले, उत्तर देनेवाले और सुननेवाले पुरुषोंको गङ्गाजलके समान पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥ अब अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनिये । असंख्य दैत्यगण राजोंके यहाँ उत्पन्न-हुए एवं राजा बनकर अभिमानके साथ मनमाना अधर्म और अत्याचार करने-लगे । उन लाखों असुरोंके अन्यायके भारसे पृथ्वी जब बहुत ही पीड़ित हुई तब गायके रूपसे, दुःख और कष्टके कारण आँखोंमें आँसू भरेहुए एवं खेदके कारण दीनस्वरसे विलाप करती हुई ब्रह्माजीकी शरणमें गई । ब्रह्माजीके पास जाकर पृथ्वीने सब अपने कष्टका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने पृथ्वीके मुखसे सब वृत्तान्त सुना और उसी समय उसको साथ लेकर शिव आदि देवगणसहित क्षीरसागरके किनारे गये ॥ १९ ॥ वहाँ जाकर पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे जगत्‌के स्वामी, देवतोंके देवता, मङ्गलरूप परमपुरुषकी एकाग्रमन हो स्तुति करनेलगे ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने समाधि लगाई अर्थात् ईश्वरका ध्यान करनेलगे, तब उनको अपने ही हृदयाकाशमें एक अलौकिकवाणी सुन पड़ी । उससमय ब्रह्माजीने देवतोंसे कहा कि हे देवगण ! मैंने जो हृदयमें ईश्वरकी आज्ञा सुनी है उसे सुनो और उसीके अनुसार शीघ्रही सब कार्य करो;—कुछ भी विलम्ब न हो ॥ २१ ॥ परमेश्वरको पहलेसे ही पृथ्वीके भारका वृत्तान्त विदित है । जबतक परमात्मा परमेश्वर अपनी कालरूप शक्तिसे पृथ्वीका भार उतारतेहुए भूलोकमें विहार करें तबतक तुम लोग यदुवंशमें जन्म लेकर पृथ्वीमें रहो ॥ २२ ॥ वसुदेवके भवनमें परमपुरुष साक्षात् विष्णु भगवान् जन्म लेंगे; उनका प्रिय करनेके लिये सब देवतोंकी स्त्रियाँ भी पृथ्वीमें जन्म लें ॥ २३ ॥ वासुदेवकी कला, सहस्रमुख और स्वप्रकाशपूर्ण शेषजी भी हरिका प्रिय करनेके लिये पहले ही अवतार लेंगे ॥२४॥ सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाली भगवती विष्णुमाया भी प्रभुकी आज्ञाके अनुसार देवकार्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वीपर अपने अंशावतारसे प्रकट होंगी ॥ २५ ॥ शुकदे-वजी कहते हैं—प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजी देवगणको यों आज्ञा देकर और पृथ्वीको धीरज बँधाकर परमधाम (सत्यलोक) को गये ॥ २६ ॥ अब इधर पृथ्वीपरका हाल सुनिये । यादवपति राजा शूरसेनने मथुरा पुरीमें रहकर शूरसेन देश और मथुरा प्रदेशका शासन किया ॥ २७ ॥ इसीकारण तबसे मथुरा-पुरी ही यदुवंशी राजोंकी राजधानी होगई । मथुरा पुरीमें नित्य हरि भगवान् विद्यमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक समय मथुरा पुरीमें शूरवंशी वसुदेवजी बिवाह करके अपने घर जानेकेलिये नवविवाहिता देवकीसहित रथपर सवार हुए ॥ २९ ॥ बहुतसे सुवर्णमण्डित रथोंसहित उग्रसेनका पुत्र कंस कुछ दूर पहुँचा-नेके लिये वसुदेवके साथ होगया । उसने अपनी बहन देवकीकी प्रसन्नताके-

लिये उनके रथको स्वयं सारथी बनकर हाँकनेकी इच्छासे घोड़ोंकी लगाम थामली ॥ ३० ॥ कन्यावत्सल महाराज देवकने विदाके समय अपनी कन्या देवकीको यौतक (दहेज) में सोनेकी मालाओंसे सुशोभित चार सौ हाथी, सजेहुए पन्द्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ एवं विविध भूषणोंसे विभूपित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दीं । वर और वधूके विदा होतेसमय दुन्दुभि, शङ्ख, तूर्य और मृदङ्ग आदि मङ्गलकारी बाजे बजनेलगे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ रथको कंस हाँक रहा था, इसी समय मार्गमें कंसके प्रति आकाशवाणी हुई कि—"अरे मूर्ख ! जिसका तू रथ हाँक रहा है उसी देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक तुझको मारेगा" ॥ ३४ ॥ भोजकुलका कलङ्क, पापरूप दुष्ट कंस, यह आकाशवाणी सुनते ही बहनके स्नेहको भूल गया और उसने मारनेके लिये देवकीके केश पकड़कर खड्ग निकाल लिया ॥ ३५ ॥ वसुदेवने जब देखा कि निर्लज्ज कंस कसाइयोंऐसा निन्दित निठुर कर्म करनेपर उतारू है तब वह मीठे वचन कहकर उसे यों समझाने लगे ॥ ३६ ॥ वसुदेवजी बोले—कंस ! तुम्हारे गुणोंकी और वीरताकी बड़े बड़े वीर लोग बड़ाई करते हैं; तुमने भोजवंशका यश बढ़ाया है। तुमऐसे शूरशिरोमणि होकर अपनी बहनका वध करना चाहते हो ! तुमको ऐसा नीच निन्दित कर्म नहीं सोहता। देखो तो सही, एक तो स्त्रीजाति, दूसरे बहन, तिसपर विवाहका उत्सव ! ॥ ३७ ॥ हे वीर ! जो कहो 'इसके आठवें बालकसे मेरी मृत्यु होगी, इससे इसे ही मारकर झगड़ा मिटाये देता हूँ' तो याद रक्खो, मृत्युको कोई औषध नहीं है ! जिसने जन्म लिया है उसे स्मरण रखना चाहिये कि देहके साथ ही मृत्यु भी पैदा होती है, आज हो अथवा सौवर्षके बाद हो, प्राणियोंकी मृत्यु अवश्य होगी ॥ ३८ ॥ यदि इस देहके छूटनेपर दूसरा देह न मिले तो भी इसकी रक्षाके लिये ऐसा घोर कर्म करना ठीक है, किंतु ऐसा नहीं है। एक शरीरके छूटनेपर इस जीवको कर्मका फल भोगनेके लिये विवश होकर दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है। यह जीव जब मनके द्वारा दूसरे शरीरको ग्रहण करलेता है तब पहला शरीर छूटता है ॥ ३९ ॥ जैसे तृणजलूका (एक प्रकारका कीड़ा) जब किसी तृण आदिको पकड़ लेता है तब पहलेके तृणको छोड़ता है या मनुष्य जब एक पैर आगे जमालेता है तब पिछला पैर कठाता है वैसे ही जीवकी भी कर्मानुसार गति है ॥४०॥ जाग्रत् अवस्थामें देखने या सुननेका संस्कार मनमें उत्पन्न होनेसे निविष्टचित्त होकर उस देखे या सुने विपयका ध्यान करते करते पुरुप जैसे स्वप्नमें जाग्रत् अवस्थाके उस देखे सुने विषयके अनुग्रह देखने सुननेके विपयोंको देखता है—वैसे ही जीव भी कर्मवश स्मृतिरहित दूसरे शरीरको पाकर पूर्वशरीरको छोड़ता है ॥ ४१ ॥ देहकी पञ्चत्वप्राप्तिके समय विविधविकारमय मन, फलोंकी ओर कर्मोंके द्वारा

प्रेरित होकर, मायाके द्वारा अनेक शरीरोंके रूपमें रचित पञ्चभूतोंमें जिस जिस रूपको प्राप्त होता है उस उस रूपमें यह देही (जीव) जन्म लेता है ॥ ४२ ॥ चन्द्रादि ज्योतिर्मय पदार्थ जैसे तैल-घृत-जल आदि पार्थिव पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होनेपर वायुके द्वारा काँपतेहुए प्रतीत होते हैं, वैसे ही जीव भी अविद्यारचित गुणोंके अनुगत होकर उन्हींमें आसक्तिके कारण विमुग्ध होजाता है ॥ ४३ ॥ इसलिये ऐसे गुणोंसे युक्त पुरुषको यदि अपने मङ्गलकी इच्छा हो तो किसीसे भी द्रोह न करे, क्योंकि जो कोई दूसरेसे द्रोह करते हैं उनको भी औरोंसे भय होता है, एवं परलोकमें यमयातनाका भी भय है ॥ ४४ ॥ देखो यह तुम्हारी छोटी बहन बालिका है, दीन है, कातर है-भयसे काठकी पुतलीकी भाँति अचेत हो रही है । तुम दीनवत्सल हो, इस कल्याणरूपिणीको मारना तुम्हारे योग्य काम नहीं है ॥ ४५ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—हे राजन् ! कंस बड़ा ही निठुर राक्षस स्वभावका मनुष्य था, अतएव वसुदेवके मित्रता दिखलानेसे और साम व भेदके वाक्योंसे उसका विचार नहीं बदला ॥ ४६ ॥ वसुदेवजी उसके इस हठको जानकर चिन्ता करनेलगे कि कैसे देवकीके प्राणोंकी रक्षा की जाय ?। वसुदेवजीने चिन्ता करके यह कर्तव्य स्थिर किया ॥ ४७ ॥ "बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अपनी बुद्धि और बलके अनुसार यथाशक्ति मृत्युको टाले और यदि ऐसा करनेसे भी मृत्यु न टले तो उसमें मनुष्यका कोई अपराध नहीं है ॥ ४८ ॥ मैं इस मृत्युस्वरूप कंसको अपने होनहार पुत्र देदेनेकी प्रतिज्ञा करके इस दीन अबलाके प्राण बचाऊँ; बस इस समय मेरा यही कर्तव्य है । फिर जब मेरे पुत्र होंगे उस समय जो होना होगा सो होगा—इस समय तो देवकीके प्राण बच जायँगे । हो सकता है कि मेरे पुत्र उत्पन्न होनेके पहले ही कंसकी मृत्यु होजाय । अथवा यदि कंस न भी मरे तो मेरे पुत्र भी तो (देववाणीके अनुसार) इसके विनाशका कारण हो सकते हैं । क्या नहीं होसकता ?—विधाताकी गतिको कौन जान सकता है ? पुत्र देनेकी प्रतिज्ञासे इस समय तो आई हुई मृत्यु लौट जायगी । यदि फिर देवकीकी मृत्यु आवेगी तो मेरा कौन दोष है ? ॥४९॥५०॥ अग्नि और काष्ठके संयोग और वियोगके सिवा अदृष्ट (दैव) के जैसे और कोई कारण नहीं देखा जाता, वैसे ही प्राणी और शरीरके संयोग और वियोगका कारण भी वही अदृष्ट है; अतएव यह विषय हमलोगोंके लिये अचिन्त्य है" ॥५१॥ अपने ज्ञानके अनुसार यों निश्चय करके वसुदेवजीने पहले खूब सम्मान दिखातेहुए कंसकी प्रशंसा की ॥ ५२ ॥ फिर यद्यपि हृदय धड़क रहा था तथापि विश्वास दिलानेके लिये प्रसन्नमुख होकर हँसते हँसते निर्लज्ज नृशंस कंससे यों कहा ॥ ५३ ॥ **वसुदेवजीने कहा कि**—हे सौम्य ! आकाशवाणीके कथनानुसार देवकीसे तुमको कोई भय नहीं है; भय केवल इसके पुत्रोंसे है, इसलिये मैं इसके सब पुत्र तुमको

देदूँगा ॥ ५४ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—वसुदेवके इस कथनको युक्तियुक्त समझकर कंसने मान लिया और बहनके वधसे निवृत्त हुआ। वसुदेव भी प्रसन्न होकर हँसते हँसते अपने घरको गये ॥ ५५ ॥ समय पाकर सर्वदेवमयी देवकीके प्रत्येक वर्षमें एक एक करके आठ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुईं ॥ ५६ ॥ वसुदेवने झूठसे डरकर कष्ट सहकर भी कीर्तिमान् नाम पहला पुत्रको लेजाकर कंसके हाथमें देदिया। सच है, सत्य प्रतिज्ञावाले साधुगण सत्यकी रक्षाके लिये कौन कष्ट नहीं सह सकते ? विद्वान् लोग किस वस्तुकी अपेक्षा करते हैं ? निन्दित नीच जन, कौन ऐसा अकार्य है जिसे नहीं कर सकते ? और धीर हरिभक्तजन किस वस्तुका त्याग नहीं कर सकते ? ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ राजन् ! वसुदेवका ऐसा साधुत्व और सत्यमें निष्ठा देखकर कंसने संतुष्ट हो हँसतेहुए कहा कि आप इस पुत्रको लेजाइये; इससे मुझे कोई भय नहीं है, आठवें पुत्रसे ही मेरी मृत्यु विहित है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ वसुदेव "बहुत अच्छा" कहकर पुत्रको ले घरको चले गये; किन्तु कंसके इस वाक्यपर उनको विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि उनको विदित था कि कंस असत् है और उसका मन उसके वशमें नहीं है ॥६१॥ इधर नारदने आकर कंससे कहा कि व्रजवासी नन्द आदिक गोप, उनकी स्त्री गोपियाँ, वसुदेव आदि सब वृष्णिवंशी यादव और उनकी देवकी आदि स्त्रियाँ एवं वसुदेव व नन्दके कुलके सब जाति, बन्धु और सुहृद्गण तथा तुम्हारे अनुगत या-देवादि अनुचरगण सब देवतुल्य तुम्हारे शत्रु हैं। नारदजीने यह भी बताया कि पृथ्वीके भारस्वरूप असुरोंका संहार करनेके लिये देवतोंके द्वारा यह उद्योग हो रहा है ॥६२॥६३॥६४॥ यह कहकर नारदके चले जानेपर "यादवगण देवता हैं एवं विष्णु मुझे मारनेके लिये देवकीके गर्भसे उत्पन्न होंगे" यह जानकर कंसने उसी समय लोहेकी जंजीर व बेड़ियोंसे वसुदेव व देवकीके हाथा पैर जड़कर उनको अपने घरमें बन्दी कर रक्खा। देवकीके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसे विष्णु जानकर कंसने उसी समय मार डाला ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ पृथ्वीपर देखा जाता है कि प्रायः सब लोभी और शरीरके सुखको ही सर्वस्व माननेवाले क्रूर राजालोग अपनी भोगवासना चरितार्थ करनेके लिये माता, पिता, भ्राता और बन्धुओंका भी वध कर डालते हैं ॥ ६७ ॥ पूर्वजन्ममें कंस, कालनेमि नाम असुर था—उसको विष्णुने मारा था, यह इस जन्ममें भी कंसको याद था, इसी लिये वह यादवोंसे विरोध करनेलगा ॥ ६८ ॥

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥

यदु भोज और अंधक आदि यादवोंके अधिपति अपने पिता महाराज उग्रसेन-को बन्दी करके महाबली कंस शूरसेन देशका मनमाना निष्कण्टक राज्य भोग करनेलगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय

देवकीके गर्भसे भगवान्‌का जन्म

श्रीशुक उवाच–**प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥**
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! बलदर्पित कंस, जरासन्धकी सहायता पाकर प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, भौमासुर एवं अन्यान्य राजवेषधारी असुरोंसहित यादवोंका नाश करनेलगा। उसके दारुण अत्याचारसे पीड़ित यादवगण–कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह एवं कोसल आदि राज्योंमें भाग गये ॥१॥२॥३॥ केवल कुछ अक्रूर आदि ज्ञातिगण उसके चित्तकी अनुवृत्ति करते हुए मथुरापुरीमें रहकर उसकी सेवा करते रहे ॥ ४ ॥ क्रमशः कंसने जब देवकीके छः बालक मारडाले तब हर्ष और शोक, दोनोको देनेवाला सातवाँ गर्भ देवकीके रहा। इस गर्भमें विष्णुका अंश अनन्त(शेष)जी आये, दुष्ट कंसके ऐसे घोर अत्याचार करनेपर विश्वात्मा भगवान्‌ने जाना कि, मैं ही जिनका नाथ (रक्षक) हूँ उन यदुवंशियोंको कंससे बड़ा ही भय उपस्थित है। तब विष्णु भगवान्‌ने योगमायाको आज्ञा दी कि हे देवि ! हे भद्रे ! गोप और गोकुलसे शोभित व्रजको जाओ। वहाँ नन्दके गोकुलमें वसुदेवकी स्त्री रोहिणी रहती हैं। वसुदेवकी और और स्त्रियाँ भी कंसके भयसे इधर उधर अलक्षितभावसे रहती हैं। अनन्त नाम मेरा अंश इस समय देवकीके गर्भमें है, तुम उस गर्भको खींचकर रोहिणीके उदरमें स्थापित करो। हे शुभे! तद-नन्तर मैं पूर्णरूपसे देवकीके गर्भद्वारा जन्म लूँगा, एवं तुम भी उसी समय नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे जन्म लेओगी। मनुष्यगण, सब कामना व वरोंकी अधी-श्वरा एवं इष्ट देनेवाली जानकर अनेक प्रकारके उपहार तथा बलिसे तुम्हारी पूजा करेंगे। पृथ्वीमें तुम्हारे दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका इत्यादि अनेकों नाम होंगे। गर्भके सङ्कर्षणसे उस गर्भसे उत्पन्न बालकका नाम 'सङ्कर्षण' होगा। इसके सिवा सब लोगोंका मनोरञ्जन करनेके कारण 'राम' एवं महाबली

होनेके कारण 'बलभद्र' नाम भी होंगे ॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥ भगवान्‌की यह आज्ञा पाकर भगवतीने कहा कि "बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगी" और भगवान्‌को प्रदक्षिणा करके पृथ्वीपर आकर उन्होने वैसा ही किया ॥ १४ ॥ योगमायाजी जब देवकीके उदरके गर्भको लेजाकर रोहिणीके उदरसें स्थापित कर आईं तब पुरवासी लोग 'हाय! देवकीका गर्भ नष्ट होगया' यों कहकर विलाप करनेलगे; किन्तु वे उसका विशेष वृत्तान्त कुछ भी न जानसके॥१५॥ ईश्वर भक्तोंका भय हरनेवाले विश्वात्मा भगवान्‌ने पूर्णरूपसे वसुदेवके अन्तःकरणसें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ वसुदेवजी अन्तःकरणसें ईश्वरका तेज धारण करनेपर सूर्यके समान प्रकाशमान हुए एवं सब प्राणियोंके लिये दुरासद व दुर्धर्ष हो उठे ॥ १७ ॥ तदनन्तर, पूर्वदिशा जैसे पूर्ण चन्द्रको धारण करे वैसे ही शुद्ध मनवाली दीप्तिशालिनी देवकीने सर्वव्यापी एवं अपनेसें पहलेसे ही स्थित अच्युतके अंशको गर्भसें वसुदेवके वीर्यरूपसे धारण किया ॥ १८ ॥ जिनसें सब जगत् वास करता है उन विष्णुका आवास होनेपर देवी देवकी स्वयमेव आनन्दित हुईं, किन्तु सब जगत्‌को नहीं आनन्दित करसकीं, क्योंकि जैसे घटादिके भीतर दीपशिखा या ज्ञानवञ्चक मनुष्यके अन्तरसें हितकारिणी विद्या निरुद्ध हो वैसे ही वह कंसके भवनसें निरुद्ध थीं ॥ १९ ॥ एक दिन कंसने अजित हरिको गर्भसें धारण किये उन्ही सुन्दर मुसकानवाली देवकीको अपने तेजसे भवनभरका अन्धकार हरते देखकर कहा—"निश्चय जान पड़ता है कि मेरे प्राणोंका शत्रु हरि इसके गर्भसें आया है, क्योंकि मैंने पहले कभी अपने घरसें देवकीका ऐसा दुर्धर्ष तेज नहीं देखा। इससमय इस हरिका नाश करनेके लिये मुझे कौनसा उपाय शीघ्र ही करना चाहिये? पुरुष लोग स्वार्थपर होकर भी कभी स्त्रीवधसे अपने विक्रमको दूषित नहीं करते। देवकीको मारनेसे स्त्रीवध, भगिनीवध और गर्भिणीके वधका पातक लगेगा; जिससे क्रमशः यश, श्री और आयुका क्षय होता है ॥ २० ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति केवल हिंसाव्रतसे जीवन धारण करता है वह जीते ही मरेके तुल्य है। वह पापी जितने दिन जीता रहता है तबतक जगत्‌में उसकी निन्दा होती है और मरनेपर निश्चय ही नरकको जाता है" ॥ २२ ॥ प्रभावशाली कंस, इसी घोर चिन्ताके कारण, चाहता तो देवकीको मार डालता तथापि इस कुकर्मसे निवृत्त हुआ एवं हरिसे वैर बाँधकर उनके जन्मकी राह देखनेलगा ॥ २३ ॥ दिन रात घड़ीभरके लिये उसको शान्ति न थी, बैठते, उठते, खाते, पीते, घूमते और सोतेसें, सब समय हृषीकेश विष्णुके ही ध्यानसें मग्न रहता था; यहाँतक कि वह जगत्‌को विष्णुमय देखनेलगा ॥ २४ ॥ हे राजन्! उसी समय नारदादि मुनि एवं अनुचर देवगणसहित ब्रह्मा और शिवजी, देवकीके निकट आये और रम्य वचनोंसे सब कामना पूर्ण करनेवाले हरीकी यों स्तुति करनेलगे ॥ २५ ॥

"भगवन्! आप सत्य-व्रत हैं; सत्य ही आपका संकल्प है, सत्य ही आपके मिलनेका प्रधान साधन है। आप तीनो कालमें सत्य हैं, सत्यके कारण और सत्यमें अवस्थित हैं, एवं आप सत्यके भी सत्य अर्थात् पारमार्थिक पदके भी अन्तमें अवशिष्ट रहते हैं। आप ऋत और सत्यके नेता अर्थात् प्रवर्तक हैं या ऋत और सत्य आपके नेत्र हैं। अतएव आप सत्यमय हैं। हम आपके शरणागत हैं ॥ २६ ॥ यह देहआदिका प्रपञ्च वृक्षरूप है। एक प्रकृति ही इसका आश्रय है; सुख और दुःख दो फल हैं; सत्व-रज-तम ये तीनो गुण मूल हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार रस हैं; पाँचो ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान (जानने)के पाँच प्रकार हैं; शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और प्यास ये छः स्वभाव हैं; रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र ये सात त्वचा (आवरण) हैं; पाँच इन्द्रिय व मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ विटप (शाखा) हैं कान आदि नव द्वार नव छिद्र हैं, एवं दश प्राण पत्र (पत्ते) हैं। जीवात्मा और परमात्मा ये दो पक्षी इसमें वास करते हैं ॥ २७ ॥ एक आप ही इस कार्यरूप वृक्षकी उत्पत्ति और लयका स्थान तथा पालनकर्ता हैं। जिनका ज्ञान आपकी मायासे ढँका हुआ हैं वे आपको अनेक वस्तुओंमें अनेक रूपसे देखते हैं, किन्तु विद्वान् लोग आपको एकरूप ही देखते हैं ॥ २८ ॥ हे भगवन्! ज्ञानस्वरूप आप सब चराचर जगत्के कल्याणके लिये वारंवार सत्त्वगुणमय विविध रूप धारण करते हैं। उन आपके अवतारोंसे धर्मात्मालोगोंको सुख मिलता है और खलदलका दलन होता है ॥ २९ ॥ हे कमललोचन! आप निर्मल सत्त्वगुणका धाम हैं। निर्मल सत्त्वनिष्ठ विवेकीजन समाधियोगसे आपमें लगायेहुए चित्तके द्वारा महत्सेवित और बहुमत जो नौकारूप आपके चरण हैं उनका आश्रय लेकर इस अपार संसारसागरको गो–पदके गढ़ेके जलके तुल्य तुच्छ जानते हैं ॥ ३० ॥ हे प्रकाशस्वरूप! भक्तगणपर आप कृपा करते हैं। सब प्राणियोंपर प्रेम रखनेवाले भक्तजन स्वयं तो इस, भक्तिहीन लोगोंके लिये भयानक, दुस्तर भवसागरके पार चले ही गये, किन्तु और लोग भी जिससे सहजमें ही भवसागरके पार जासकें–इसलिये आपके नौकारूप चरणकमलोंको यहीं छोड़ गये हैं अर्थात् भक्तिमार्ग चलाय गये हैं ॥३१॥ आपके भक्तोंसे भिन्न अन्यान्य लोग, जो अपनेको मुक्त मानकर अभिमान करते हैं, वे अनेक कष्ट उठाकर जिस श्रेष्ठ पदको पाते हैं उससे अन्ततः उनको पतित होना पड़ता है, क्योंकि आपमें भक्ति न होनेके कारण उनकी बुद्धि भलीभाँति शुद्ध नहीं होती; अतएव आपके श्रीचरणोंकी अवहेला करनेके कारण उनको पूर्णतया मुक्ति नहीं मिलती, और बीचमें ही अनेक विघ्नोंके होनेसे भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे केशव! किन्तु जो लोग आपके भक्त हैं वे आपमें ही अनन्य-भावसे प्रेम करते हैं—उनकी ऐसी गति नहीं होती। आप उनके रक्षक बनते हैं, अतएव

वे सम्पूर्ण विघ्नोंके शिरपर पैर धरतेहुए निर्भय भावसे विचरते हैं ॥३३॥ प्रभो! आप लोकपालनके लिये कर्मफलदायिनी सत्त्वमयी अपनी मूर्ति लोकमें प्रकट करते रहते हैं। लोग उसी मूर्तिमें वेद, क्रिया, योग, तप और समाधिके द्वारा आपका पूजन करनेको समर्थ होते हैं। यदि आप अपनी मूर्ति न प्रकट करते तो पूजाके अभावसे कर्मफलकी सिद्धि न होती ॥ ३४ ॥ हे विधाता! यदि सत्त्व आपका शरीर न होता तो अज्ञान व भेदका नाश करनेवाले विज्ञानकी उत्पत्ति न होती; क्योंकि सब गुणोंमें जो प्रकाश लक्षित होता है उसके द्वारा आपका केवल अनुमान ही किया जासकता है—साक्षात्कार नहीं होता। 'आप गुणोंके साक्षी हैं, बुद्धिमें आरूढ़ एवं प्रमाता होनेके कारण आपके प्रकाशसे बाह्यगुण (बुद्धि आदि) का प्रकाश होता है'—इसप्रकार आपका अनुमान ही किया जासकता है, किन्तु इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण आपका साक्षात् असंभव है ॥ ३५ ॥ देव! आप गुण–कर्मादिके साक्षी हैं एवं मन और वाक्यके द्वारा केवल आपकी गतिका अनुमानमात्र होसकता है। अतएव नाम, रूप, गुण, कर्म या जन्मके द्वारा आपका निरूपण नहीं किया जासकता, क्योंकि आप(सगुण रूप)के नाम–रूपादि अनन्त व अतर्क्य हैं, मन और वाणीसे उनकी इयत्ता नहीं की जा सकती। तथापि भक्त लोग उपासना आदि क्रियाओंमें हृदयके भीतर आपको देखपाते हैं ॥ ३६ ॥ जो लोग आपके मङ्गलमय नाम व रूपोंका कीर्तन या श्रवण करते हैं, औरोंको सुनाते हैं और स्वयं ध्यान करते हैं एवं आपके दोनो चरणकमलोंकी सेवामें मनको लगा रखते हैं वे फिर संसारमें नहीं आते ॥ ३७ ॥ अहो, कैसी आनन्दकी बात है! हे सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर! आपके जन्मसे ही, आपका चरण जो पृथ्वी है उसका भार दूर होगया। अहो, कैसे मङ्गलकी बात है कि, आप कृपा करके अपने श्रीचरणोंके ध्वजा, वज्र, अङ्कुश आदि पवित्र चिन्होंसे पृथ्वीको सुशोभित व पवित्र एवं स्वर्ग लोक (देवगण) को अनुगृहीत करेंगे और हम आपकी लीला देखेंगे ॥ ३८ ॥ हे ईश! आप जन्ममरणसे रहित हैं, अतएव आपके जन्मका कारण सिवा क्रीड़ाकौतुकके और कुछ भी नहीं जान पड़ता। हे नित्यमुक्त! आपके जन्मका अन्य कोई कारण नहीं है–इसके लिये क्या कहना है, क्योंकि आपका अंशमात्र जो जीवात्मा है उसके भी वास्तवमें जन्म आदि कुछ नहीं हैं; प्राणीगण केवल अविद्याके कारण जीवके जन्म व मरणको मानते हैं ॥ ३९ ॥ हे यदुश्रेष्ठ! आपने पहले समय समय पर जैसे मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वाराह, नृसिंह, हंस, क्षत्रिय और ब्राह्मणोंमें अवतार ले ले कर त्रिभुवनकी और हमारी रक्षा की है वैसे ही इस समय भी पृथ्वीका भारी भार हरिये। हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४० ॥ हे देवी देवकीजी! भाग्यवश परमपुरुष श्रीहरि हमलोगोंके मङ्गलके लिये तुम्हारे गर्भमें आये हैं। अब

तुम कंसका भय न करो, वह शीघ्र ही मारनेवाला है; तुम्हारे यह पुत्ररूप हरि यादवोंकी रक्षा करेंगे" ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच—इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—जिनका रूप (तत्त्व) सबसे परे है उन परम पुरुषकी बुद्धिके अनुसार यथार्थरूपसे इसप्रकार स्तुति करके देवतालोग ब्रह्मा और शिवको आगे कर स्वर्गलोकको लौट गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म

श्रीशुक उवाच—अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मके उपयुक्त सब गुणोंसे युक्त अत्यन्त रमणीय समय आकर उपस्थित हुआ। भगवान्‌के जन्मनक्षत्र अर्थात् रोहिणी नक्षत्रका उदय हुआ और अश्विनी आदि सब नक्षत्र एवं ग्रहगण उत्तम स्थानोंमें शान्तरूपसे परममङ्गलकी सूचना देतेहुए स्थित हुए ॥ १ ॥ उस समय सब दिशाएँ निर्मल होगईं और आकाशमें तारागण स्वच्छ कान्तिसे युक्त होकर प्रकाशित हुए। पृथ्वीमण्डलके बीच पुर, ग्राम, व्रज और आकर आदि स्थानोंमें अनेक मङ्गलमय सगुन देख पड़नेलगे ॥ २ ॥ नदियोंके जल निर्मल होगये, फूले हुए कमलोंसे सरोवरोंकी शोभा बढ़गई। बागोंके बीच वृक्षोंमें कलियोंके गुच्छे खिलगये और उनकी शाखाओंपर बैठे पक्षीगण आनन्दपूर्वक मधुर स्वरसे गानेलगे ॥ ३ ॥ सुखदायक, शीतल, मन्द सुगन्ध वायु डोलनेलगा। ब्राह्मणों के यहाँ अग्निहोत्रके अग्नि जो शान्त होगये थे सो प्रज्वलित हो उठे ॥ ४ ॥ असुरद्रोही साधुजनोंके मन आप ही आप प्रसन्न हो उठे। विष्णु भगवान्‌के जन्मसमयको अत्यन्त निकट देखकर स्वर्गमें देवगण दुन्दुभी बजानेलगे ॥ ५ ॥ किन्नर और गन्धर्व गान करनेलगे, सिद्ध और चारणगण परमात्माकी स्तुति करनेलगे एवं विद्याधरी और अप्सराएँ आनन्दके मारे नृत्य करनेलगीं ॥ ६ ॥ मुनिगण और देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करनेलगे। उसी घोर अन्धकारमय (भादौंके कृष्ण

पक्षकी अष्टमीकी रात्रिको) अर्धरात्रिके समय हरिने जन्म लिया। उससमय साग-रके साथ ही मेघ भी मन्द मन्द गर्जनेलगे। पूर्वदिशामें पूर्ण चन्द्रमाका जैसे उदय हो वैसे ही देवी देवकीके गर्भसे सबके अन्तर्यामी हरि प्रकट हुए ॥७॥८॥ वसु-देवने देखा कि वह बालक बहुत ही अद्भुत है। नेत्र कमलके पत्तेके समान विशाल हैं, चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध शोभित हैं, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिन्ह विराजमान है, गलेमें कौस्तुभमणिकी अपूर्व कान्ति है, पानीभरे बादलके समान श्यामशरीरमें पीताम्बर शोभायमान है ॥ ९ ॥ अनन्त अलकोंकी आवलीपर महामूल्यके वैडूर्यमणिजटित किरीट मुकुट व कुण्डलोंकी प्रभा पड़नेसे उसकी अद्भुत शोभा है। अति उत्तम मेखला, अङ्गद और कङ्कण आदि अलङ्कारोंसे शरीर अत्यन्त मनोहर हो रहा है ॥ १० ॥ विस्मययुक्त वसुदेवके नेत्र-कमल प्रफुल्लित हो उठे। हरिको पुत्ररूपसे अपने यहाँ प्रकट हुए देखकर वसुदे-वके आनन्दकी सीमा नहीं रही, और उन्होने कृष्णावतारके आनन्दसे संभ्रमयुक्त-होकर मनसे ब्राह्मणोंको दस हजार गऊ देनेका संकल्प किया; क्योंकि वह उस समय बन्दी थे, अतएव प्रत्यक्षरूपसे गोदान असंभव था ॥ ११ ॥ भगवान्के अङ्गोंकी प्रभासे उस सूतिकाभवनका अन्धकार दूर होगया। वसुदेवने जाना कि साक्षात् हरिने जन्म लिया है, तब उनके मनसे कंसका भय जाता रहा, क्योंकि वह हरिके प्रभावको भलीभाँति जानते थे। तदनन्तर महात्मा वसुदेवजी शिर झुकाकर, हाथ जोड़कर शुद्ध बुद्धिसे परमपुरुषकी स्तुति करनेलगे ॥ १२ ॥ वसुदेवने कहा—"अहो! मैंने आपको जाना। आप प्रकृतिसे परे साक्षात् परमपुरुष हैं। अहो मेरा कैसा सौभाग्य है जो आज मैं आपको साक्षात् देख रहा हूँ। भगवन्! केवल अर्थात् अखण्ड अनुभव और आनन्द ही आपका स्वरूप है। आप सबकी बुद्धियोंके साक्षी अर्थात् अन्तर्यामी हैं ॥१३॥ आपने अपनी मायाके द्वारा इस त्रिगुणमय विश्वकी सृष्टि की है; यद्यपि वास्तवमें आप इस विश्वमें अनुप्रविष्ट नहीं हैं तथापि प्रविष्ट ऐसे लक्षित होते हैं ॥ १४ ॥ जैसे, महत्तत्त्व आदि सब तत्त्व इन्द्रियआदि सोलह विकारोंके साथ मिलकर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं; वे पृथक् पृथक् रहकर किसी विशिष्ट कार्यका सम्पादन नहीं करसकते। ब्रह्माण्डरचनाके बाद वे तत्त्व उसके भीतर प्रविष्टसे जान पड़ते हैं, किन्तु वास्तवमें देखिये तो उनका उसमें पश्चात् प्रविष्ट होना संभव नहीं है; क्योंकि वे सब तत्त्व पहलेसे ही कारणरूपसे उसमें विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ वैसे, रूपादिज्ञानके द्वारा जिनके स्वरूपका अनुमान करना होता है उन सब विषयोंमें आपके वर्तमान रहनेपरभी, उनके द्वारा आपका साक्षात्कार नहीं होता। आप सर्वस्वरूप सर्वात्मा सर्वव्यापक और परमार्थ वस्तु हैं, अतएव अपरिच्छिन्न हैं, सुतरां कोई आवरण न होनेके कारण आपमें भीतर बाहरका भेद ही नहीं है, आप सर्वत्र समान भावसे स्थित हैं; तब

प्रवेश आदि कैसा ? हे भगवन् ! अन्तर्यामी होनेके कारण जब ब्रह्माण्डमें प्रवेश ही मुख्य नहीं है तब देवकीके गर्भमें प्रवेश कैसे संभव हो सकता है? अतएव आप केवल अनुभवानन्दरूप हैं । मेरे अहोभाग्य है जो मुझे आपके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हुआ ॥१७॥ जो व्यक्ति आत्माके दृश्यगुण देहादिको आत्मासे अलग पृथक् रूपसे वर्तमान वस्तु जानता है वह मूर्ख है, क्योंकि उसमें भेदज्ञान है । विचारपूर्वक देखनेसे देहादिक, सिवा वाक्यारम्भके अन्य कुछ भी नहीं प्रतीत होते; अतएव वास्तविक कहकर जिसका स्वीकार कभी नहीं हो सकता उसको वास्तविक (सत्) माननेके कारण वह व्यक्ति मूढ़ है ॥ १८ ॥ प्रभो ! तत्त्वज्ञानी लोग कहते हैं कि, आपसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन व संहार (लय) होता है तथापि आप निर्गुण और निर्विकार हैं; अतएव अनीह (चेष्टाशून्य) हैं । यदि कहो कि चेष्टा-शून्य होनेपर उत्पत्ति आदि कर्मोंका कर्तृत्व कैसे सिद्ध हो सकता है? तो आप ईश्वर एवं ब्रह्म हैं, अतएव आपमें इन दोनो लोकविरुद्ध बातोंके होनेपर भी वास्तवमें कुछ भी विरोध नहीं है, केवल विरोधाभासमात्र है । आप तीनो गुणोंका आश्रयस्थल हैं अतएव गुणकृत सृष्टि आदि कर्मोंका आपमें आरोप होता है ॥ १९ ॥ आप अपनी मायाद्वारा त्रिभुवनके पालनके लिये सात्त्विक शुक्ल वर्ण और सृष्टिके लिये रजोगुण संवर्धित रक्त वर्ण एवं ध्वंसके लिये तामस कृष्ण वर्णको स्वीकार करते रहते हैं ॥ २० ॥ हे जगदीश्वर ! हे विभो ! इस समय आपने त्रिभुवनकी रक्षाकेलिये कृष्ण वर्णसे हमारे भवनमें अवतार लिया है । नाममात्रके राजा जो कोटि कोटि असुरसेनापति हैं उनके नायकत्वमें परिचालित असंख्य असुरसे-नाका संहार ही आपके इस अवतारका प्रधान उद्देश्य है । साधुओंकी रक्षाकेलिये आप ऐसी असुरसेनाओंका शीघ्र ही संहार करेंगे ॥ २१ ॥ हे सुरेश्वर ! इस असभ्य दुष्ट असुर कंसने हमारे घरमें आपके उत्पन्न होनेकी खबर सुनकर आपके अग्रज भाइयोंको निठुराईके साथ मार डाला है । पहरेदार लोगोंसे आपके जन्मका समाचार पाते ही वह अभी शस्त्र लेकर आता ही होगा" ॥ २२ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—तदनन्तर सुन्दरी देवकी, बालकमें महापुरुष हरिके सब लक्षण देख कर बहुत ही विस्मित हुई और फिर कंसके भयसे बालरूप हरिकी यों स्तुति करनेलगीं ॥ २३ ॥ देवकीने कहा—"वेदमें जिस रूप (वस्तु) को सब विश्वका आदिकारण अथ च अनादि बताया है एवं जो अव्यक्त, बृहत्, चेतन, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, विरोधविहीन और निरीह कहा गया है, आप वही आत्म-तत्त्वके अथवा बुद्धिआदि आत्मासे संबन्ध रखनेवाली इन्द्रियोंके प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं ॥ २४ ॥ जब ब्रह्माकी आयुके दोनो परार्ध बीत जाते हैं और महा-प्रलयमें सब जगत् नष्ट हो जाता है अर्थात् सब चराचर जगत् पृथ्वी आदि महाभूतोंमें और महाभूत महत्तत्त्वमें एवं महत्तत्त्व भी कालके वेगसे प्रकृति

(माया) में लीन हो जाता है तब एक आप ही अवशिष्ट रह जाते हैं। उस समय अशेषात्मक प्रधान (प्रकृति) में आपकी प्रज्ञा होती है, आप चिन्तन करते रहते हैं कि 'यह प्रधान तत्त्व मुझमें लीन है, फिर इसको यों प्रकट करना होगा' ॥२५॥ हे प्रकृतिके प्रवर्तक! निमेषसे लेकर वर्षतक जो यह द्विपरार्धरूप महान् काल है, इसमें अनेक प्रकारसे विश्वका परिवर्तन होता है; यही विश्वपरिवर्तन आपकी चेष्टा (लीला) है। आप क्षेम एवं अभयका स्थान हैं, मैं आपके शरणमें आई हूँ ॥२६॥ मृत्युरूप विषधर सर्पके भयसे भीत होकर भागता हुआ मनुष्य किसी निर्भय लोकको नहीं पाता; आज किसी अनिर्वचनीय भाग्यके उदय होनेसे अकस्मात् आपके अभयमय चरणोंको पाकर सुखकी नींद सोवेगा, क्योंकि अब मृत्यु स्वयं इससे भागेगी ॥ २७ ॥ अब आप इस घोर उग्रसेनसुत कंससे डरेहुए जो हम लोग हैं उनकी रक्षा करो, क्योंकि आप अपने जनोंका भय मिटानेवाले भक्तवत्सल हैं। एक प्रार्थना और भी है कि आप इस अपने ध्यानगम्य दिव्यरूपको चर्मचक्षुवाले लोगोंके आगे न प्रकट कीजिये; क्योंकि इस दिव्यरूपके दर्शन दिव्य दृष्टिसे ही हो सकते हैं ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन! यह पापरूप कंस जिसमें यह न जान सके कि मेरे गर्भसे आपका जन्म हुआ है—ऐसा कोई उपाय कीजिये। यद्यपि आप अभयमय हैं, कंसके द्वारा आपका कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता, तौ भी आपके लिये मुझे कंससे भय हो रहा है; क्योंकि मैं स्त्री हूँ, मेरा चित्त स्वाभाविक अधीर है ॥ २९ ॥ हे विश्वरूप! अब आप शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी शोभासे युक्त इस अपने अलौकिक चतुर्भुज रूपको छोड़कर लौकिक रूप धारण कर लीजिये ॥ ३० ॥ प्रलयके अन्तमें जब आप अपने विशाल विराट् शरीरमें ब्रह्माण्डको लीन कर लेते हैं तब सब विश्व उसीमें समा जाता है। किसी वस्तुके लिये अवकाशकी कमी नहीं रहती। वही आप मेरे गर्भमें उत्पन्न हुए—इसपर अज्ञानी मनुष्योंको विश्वास न होगा; बरन् उनके आगे यह विडम्बना(उपहास)का विषय होगा। अतएव आप अब इस अद्भुत रूपको छिपा लीजिये" ॥ ३१ ॥ भगवान्ने कहा—हे सती देवकी! पूर्वजन्ममें स्वायंभुव मन्वन्तरके बीच तुम्हारा नाम पृश्नि था और यह निष्पाप वसुदेवजी सुतपा नाम प्रजापति थे। ब्रह्माजीने तुम दोनोको प्रजा-सृष्टि करनेकी आज्ञा दी, उसीके अनुसार इन्द्रियोंको वशमें करके तुम दोनोने घोर तप किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, घाम, जाड़ा, गर्मी आदि सब कालके गुणोंको सहतेहुए प्राणायामके द्वारा मनकी मलिनता मिटाकर तुम तपमें निरत थे। केवल वायु या सूखे पत्तोंका आहार करते थे। मुझसे चितचाहा फल पानेकी इच्छा करके इसप्रकार शान्त चित्तसे तुम दोनो पति–पत्नीने मेरी आराधना की। इसप्रकार मुझमें ही तन्मय होकर परम दुष्कर तीव्र तप करते तुमको दिव्य बारह हजार वर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हे पापरहिते ! तप, श्रद्धा और भक्तिसहित नित्य ध्यान करनेसे वरदानियोंका राजा मैं प्रसन्न होकर इसी रूपसे तुम्हारी कामना पूरी करनेके लिये तुम्हारे आगे प्रकट हुआ । मैंने कहा–वर माँगो, तब तुमने मेरे ही समान गुण–शीलयुक्त पुत्र माँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम दोनो स्त्री-पुरुषोंने विषयभोग किया न था और पुत्र हीन भी थे, अतएव मेरी मायासे मोहित होकर मुझसे मुक्ति न माँग सके ॥३९॥ वर देकर मेरे चले जानेपर, मेरे सदृश पुत्र पानेका वर पानेसे सफल-मनोरथ होकर तुम दोनो विषयभोग करनेलगे ॥ ४० ॥ शील, उदारता और अन्यान्य गुणोंमें अपने समान किसीको किसी लोकमें न देखकर मैं आप ही पृश्निगर्भ नामसे तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥ फिर दूसरे जन्ममें तुम अदिति और कश्यप हुए और मैं भी उपेन्द्रनामसे तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ । वामन होनेके कारण 'वामन' नाम पड़ा ॥ ४२ ॥ तुम्हारा यह तृतीय जन्म है, इसमें भी वही मैं उसी रूपसे तुम्हारे भवनमें पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ । हे सती ! यह वृत्तान्त सब मैंने तुमसे सत्य ही कहा है । पहले भी मैं तुम्हारे यहाँ इसी रूपसे उत्पन्न हुआ था, यह याद दिलानेके लिये मैंने पहले तुमको चतुर्भुजरूप दिखाया है । यदि यह अलौकिक रूप न दिखाकर साधारण मनुष्यरूपसे मैं जन्म लेता तो तुम मुझको कभी न पहचान सकते ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ पुत्रभावसे या ब्रह्मभावसे सदा मेरा ध्यान और मुझपर स्नेह करनेके कारण तुमको उत्तम गति प्राप्त होगी ॥ ४५ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—इतना कहकर भगवान् चुप हो रहे एवं अपनी मायाके बलसे उसी समय माता व पिताके आगे ही साधारण बालक बन गये ॥ ४६ ॥ तब वसुदेवजी भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार बालरूप हरिको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेका उद्योग करनेलगे । उधर उसी समय जन्मरहित योगमायाजी नन्दरानीके गर्भसे गोकुलमें उत्पन्न हुईं ॥४७॥ उन्ही योगमायाके प्रभावसे द्वारपाल और पुरवासीगणकी सब इन्द्रियाँ अचेत होगईं और वे सब घोरनिद्राके वश होगये । यद्यपि बन्दीगृहके द्वार और किंवाड़ोंमें लोहेकी जंजीरें पड़ीं थीं और ताले लगे थे—जिससे बाहर निकलना कठिन था, तथापि वसुदेवजी कृष्णचन्द्रको गोदमें लेकर बाहर जानेके लिये जैसे ही वहाँ पहुँचे वैसे ही सूर्यके उदयमें जैसे अन्धकार मिट जाता है उसप्रकार सब द्वार आप ही आप खुलगये । उस समय मेघवृन्द मन्द मन्द ध्वनिके साथ जलकी फुहारें बरसा रहे थे, अतएव शेषजी जल रोकनेके लिये वसुदेवजी पीछे पीछे कृष्णचन्द्रपर अपने हजारों फनोंकी छाया करके चले; किन्तु वसुदेवजी न जानसके ॥४८॥४९॥ निरन्तर जलकी वर्षा होनेके कारण उस समय यमुना बड़े ही वेगसे बहरही थीं, अथाह जलमें असंख्य तरङ्गें उठरही थीं-जिनसे जलमें फेना छा रहा था एवं अनेक भयानक भँवर पड़ रहे थे । किन्तु सागरने जैसे श्रीरामचन्द्रको उस पार जानेके लिये मार्ग देदिया था वैसे ही यमुनाने भी थाह

होकर वसुदेवजीको उस पार जानेके लिये राह देदी ॥ ५० ॥ वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर नन्दके व्रजमें पहुँचे । जाकर देखा कि सब गोप और गोपियाँ निद्रामें अचेत हुए पड़े सो रहे हैं । वसुदेवने कृष्णचन्द्रको यशोदाके पलँगपर सुलादिया और यशोदाकी कन्याको लेकर घरको लौटे ॥ ५१ ॥ बन्दीगृहमें आकर वसुदेवने उस कन्याको देवकीकी सेजपर लिटा दिया और अपने पैरोंमें फिर पहलेकी भाँति बेड़ियाँ डाललीं । फिर आप ही आप सब द्वार पहलेकी भाँति बन्द होगये ॥ ५२ ॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

उधर नन्दरानी यशोदाको यह तो जान पड़ा कि मेरे कुछ सन्तान हुआ, किन्तु यह न जान सकीं कि पुत्र हुआ या कन्या; क्योंकि श्रम और निद्राके कारण उनको इतना चेत न था ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

असुरोंका दुष्टपरामर्श

श्रीशुक उवाच—बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! वसुदेवके लौट आनेपर बाहरके और भीतरके द्वार और पुरके फाटक फिर पहलेके समान बन्द होगये । तदनन्तर बालकके रोनेका शब्द सुनकर द्वारपालगण जागे और देवकीके पुत्र उत्पन्न हुआ जानकर जल्दीसे दौड़ते हुए कंसके पास गये । उनके मुखसे देवकीके आठवाँ पुत्र होनेका समाचार पाते ही कंस घबड़ाकर उठ बैठा । कंस यही राह देख रहा था कि कब देवकीके आठवाँ पुत्र होगा ? यही उसको बड़ी भारी चिन्ता और घबराहट थी । कंस खबर पाते ही नंगे सिर, बाल खुले, पैर कहीं धरे और पड़े कहीं—इस प्रकार विह्वल भावसे दौड़ता हुआ चला और सूतिकागृहमें एकदम घुस पड़ा ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ इस दशासे निठुर भाईको आते देख, देवकीने दुखी होकर दीन भावसे कहा कि "हे कल्याण! यह कन्या तुम्हारी भान्जी है इसका वध करना तुमको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ भाई! दैवकी दी हुई दुर्मतिसे तुमने अग्निके तुल्य तेजस्वी मेरे कई पुत्र मारडाले हैं, अब यह एक कन्या मुझे माँगेसे देडालो ॥ ५ ॥ हे समर्थ! मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ, पुत्रोंके मारेजानेसे दीन दुखी होरही हूँ,

यह कन्या मेरी अन्तिम प्रजा है; मुझ अभागिनीको यह कन्या देना तुम्हेंयोग कर्तव्य है" ॥ ६ ॥ कन्याको गोदमें छिपाकर अत्यन्त दीन भावसे रोती हुसे देवकीने बहुत कुछ प्रार्थना की, किन्तु दुष्ट कंसने एकभी नहीं सुनी और डाँटकर देवकीके हाथसे कन्याको छीन लिया ॥ ७ ॥ स्वार्थवश होकर स्नेहको भूलेहुए कंसने तत्कालकी उपजी हुई कन्याको दोनो पैर पकडकर एक शिलाके ऊपर पटका ॥ ८ ॥ किन्तु वह कन्या उसके हाथसे छूटकर शीघ्रताके साथ आकाशको चली गई। वह विष्णुकी अनुजा देवी योगमाया आकाशमें जाकर दिव्यायुध-धारिणी अष्टभुजा मूर्तिसे विराजमान हुईं ॥ ९ ॥ कंसने देखा कि वह देवी दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और आभूषण धारण किये हैं एवं हाथोंमें धनुष, शूल, बाण, ढाल, खड्ग, शङ्ख, चक्र व गदा लिये हैं ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग इत्यादि अनेक प्रकारकी पूजनसामग्रियाँ हाथमें लिये उनकी स्तुति कर रहे हैं। देवीने कंससे कहा कि-"हे मन्द! मेरे मारनेसे तुझे क्या लाभ होगा? क्योंकि तेरा पूर्वशत्रु (विष्णु) और मारनेवाला कहीं और ही उत्पन्न हो चुका है! अतएव वृथाके लिये अन्यान्य निर्दोष बालकोंका वध न कर" ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ भगवती योगमाया कंससे यों कहकर अन्तर्हित हो गईं और वाराणसी आदि अनेक स्थानोंमें अनेक नामोंसे प्रसिद्ध होकर अवस्थित हुईं ॥ १३ ॥ देवीके वचन सुनकर कंसको बड़ा विस्मय हुआ। उसी समय कंसने देवकी और वसुदेवको बन्दीगृहसे बाहरकर विनयपूर्वक यों कहा कि "हे भगिनी! और हे भगिनीपति! तुम हमारे आत्मीय हो; किन्तु राक्षसोंके समान मुझ पापीने तुम्हारे बहुत पुत्र मारडाले ॥ १४ ॥ १५ ॥ हाय! मैंने करुणा और जातिवाले व सुहृदोंका स्नेह छोड़ दिया। मैं दुष्ट मरनेपर किन लोकोंमें पापका फल भोगनेके लिये जाऊँगा! मैं ब्रह्मघातीके समान जीतेही मरेके तूल्य हूँ ॥१६॥ आज मैंने जाना कि केवल मनुष्य ही नहीं वरन् देवता भी झूठ बोलते हैं! जिनके कहनेपर विश्वास करके मुझ पापीने अपनी बहनके पुत्रोंकी हत्या की ॥ १७ ॥ हे महाभागो! तुम दोनो पुत्रोंके लिये शोक न करो। उन्होने जैसे कर्म किये थे वैसा ही फल उनको भोगना पड़ा। सब प्राणी दैवके वशवर्ती हैं, अतएव वे सर्वदा एकत्र नहीं रह सकते ॥ १८ ॥ जैसे मिट्टीसे घट आदि उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, पर मिट्टी वैसी ही बनी रहती है, उसीप्रकार देहादिकी उत्पत्ति और नाश होता है; परन्तु आत्मा अविकृत ही रहता है ॥ १९ ॥ जो लोग यथार्थ रूपसे इस तत्त्वको नहीं जानते उन्हीको देहादि असत् पदार्थोंमें आत्मबुद्धि होती है और इसी भ्रांतबुद्धिसे भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है। भेद-ज्ञानसे ही पुत्रादि शरीरके साथ संयोग व वियोग समझ पड़ता है; अतएव ज्ञानका उदय हुए बिना संसारचक्रकी निवृत्ति नहीं होती ॥ २० ॥ अतएव हे भद्रे! यद्यपि मैंने तुम्हारे

होत्रोंका वध किया है तथापि तुम उनके लिये दुःख न करो। कोई भी प्राणी स्वाधीन नहीं है, सभीको अपना अपना कर्मभोग करना होता है ॥ २१ ॥ 'मैं मारनेवाला हूँ' या 'मैं मारा गया'—इसप्रकारका बोध आत्माके प्रति जितने दिन देहाभिमानी अज्ञ व्यक्तिको रहता है तबतक वह देहका नाश होनेसे आत्मनाश समझ कर स्वयं दूसरेका वैरी बनता है और दूसरेको अपना वैरी बनाता है ॥ २२ ॥ तुम दोनो साधुशील एवं बन्धुवत्सल हो, मेरी दुष्टताको क्षमा करो"। यों कहकर कंस नेत्रोंसे आँसू बहाते बहाते वसुदेव और देवकीके पैरोंपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ कन्यारूपिणी योगमायाके वचनोंपर विश्वास कर प्रिय वचनोंसे अपना सुहृद्भाव प्रकट करते हुए कंसने देवकी और वसुदेवको बन्धनमुक्त कर दिया ॥ २४ ॥ भाईको इसप्रकार अपने कियेपर पछताते देखकर देवकीने अपने हृदयसे कोपको दूर कर दिया और वसुदेवजी हँसकर कंससे कहनेलगे कि "महाभाग ! देहधारियोंके विषयमें जो कुछ तत्त्वज्ञान तुमने कहा सो सब यथार्थ है। अविद्यासे ही अहंबुद्धि उत्पन्न होती है। उसी अहंबुद्धिसे 'यह अपना है और यह पराया है' इस प्रकारका भेदभाव होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसीप्रकारके भेदभावयुक्त लोग देहाभिमानके कारण शोक, हर्ष, भय द्वेष, लोभ, मोह एवं मदसे परिपूर्ण होकर परस्पर एकएकके शरीरको नष्ट करते हैं, किन्तु सबका अन्तर्यामी जगदीश्वर जो उनके सब कर्मोंको देखता है उसको एक बार भी नहीं विचारते; बरन् 'मैंने मारा और मैं मारागया' ऐसा मानते हैं ॥ २७ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—प्रसन्न होकर शुद्ध भावसे देवकी व वसुदेवके यों कहनेपर उनकी आज्ञा लेकर कंस अपने भवनको गया ॥ २८ ॥ वह रात्रि बीतनेपर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और जो कुछ योगमायाने कहा था सो उनसे कहा ॥ २९ ॥ स्वामी कंसके वाक्य सुनकर मूर्ख एवं स्वाभाविक देवद्रोही दानवगण देवतोंपर कुपित होकर कहनेलगे कि "हे भोजराज ! यदि ऐसा है तो हम अभी संपूर्ण पुर, ग्राम और व्रज आदिमें जाकर दश दिनके और इससे कम अवस्थाके बालकोंका विनाश करते हैं ॥३०॥३१॥ अनेक उद्योग करके भी देवगण आपका क्या करसकते हैं ? वे तो समरसे डरनेवाले कायर हैं ! नित्य आपके धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द सुनते ही घबड़ा उठते हैं ॥३२॥ युद्धमें जब आप बाणवर्षासे उनको घायल करते हैं तब आपके द्वारा मारे जानेपर वे अपने अपने प्राण लेकर युद्धभूमिसे इधर उधर भागने लगाते हैं ॥ ३३ ॥ और कोई कोई शस्त्र फेंक देते हैं तथा कच्छ व शिखा खोलकर दीनभावसे हाथ जोड़े 'हम भयभीत हैं' यों कहकर आपसे दयाकी प्रार्थना करते हैं ॥३४॥ आप भी उनको शस्त्र अस्त्र भूले हुए, रथहीन, भयसे नम्रता दिखा रहे, अन्यमनस्क, युद्धसे विमुख, भग्नशरासन एवं युद्धभूमिसे भागते देखकर नहीं मारते ॥ ३५ ॥ जहाँ किसी प्रकारका

भय नहीं होता वहीं देवता लोग अपनी वीरताकी डींग मारा कहते हैं, वे लोग युद्धभूमिके सिवा सर्वत्र अपने मुखसे अपनी प्रशंसा किया करते हैं। उनसे हमको कोई भय ही नहीं है। विष्णु सदा निर्जन स्थानमें वास करते हैं और शिव वनवासी तपस्वी हैं, अतएव ये कुछ नहीं करसकते ॥ ३६ ॥ इन्द्रका पराक्रम अत्यन्त सामान्य है और ब्रह्मा वृद्ध तपस्वी हैं, इनसे तो कुछ भी खटका नहीं है। किन्तु यद्यपि प्राणपणसे चेष्टा करके भी देवता लोग हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते—यह बात सत्य है, तथापि वे हमारे शत्रु हैं; अतएव हमारी समझमें उनकी उपेक्षा करना अनुचित और भूल है। अतएव उनका समूल संहार करनेके लिये हम अनुगत सेवकोंको आज्ञा दीजिये। देहमें उत्पन्न हुए रोगकी पहले उपेक्षा करनेपर जब उसकी जड़ दृढ जम जाती है तब जैसे वह मनुष्योंके लिये असाध्य हो जाता है, एवं जैसे इन्द्रियोंकी उपेक्षा करनेसे फिर उनका दमन असाध्य हो उठता है, वैसे ही उपेक्षा करनेके कारण बद्धमूल महान् शत्रुका नाश करना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥३७॥३८॥ स्वामी! देवतोंकी जड़ विष्णु है और विष्णुका वहीं वास है जहाँ कि सनातन धर्म है एवं वेद, ब्राह्मण, गो, तप, और दक्षिणायुक्त यज्ञ ही सनातन धर्मके मूल हैं। अतएव हे राजन्! जैसे बनेगा वैसे हम लोग वेदपाठी, तपस्वी, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों और हव्य देनेवाली गायोंका वध करेंगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गो, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और विविध यज्ञ ही विष्णुके रूप हैं ॥ ४१ ॥ विष्णु ही सब देवतोंके अध्यक्ष हैं। दानवद्रोही और अन्तर्यामी विष्णु ही ब्रह्मा, शिव आदि सब देवतोंका आदिकारण या मूल हैं। अतएव ऋषियोंकी हिंसा ही विष्णुके वधका उपाय है ॥ ४२ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—शिरपर काल सवार होनेके कारण दुर्बुद्धि कंसने दुष्ट मन्त्रियोंकी सलाहसे ब्रह्मवधको ही अपना हित (कल्याण) समझा, ॥ ४३ ॥ हत्याप्रिय एवं इच्छानुसार मायामयरूप धारण करनेवाले दैत्योंको साधुजनोंकी हिंसा करनेके लिये चारो ओर भेजकर कंस अपने भवनमें गया ॥४४॥ दुर्दान्त दानवोंकी प्रकृति रजोगुणपूर्ण थी एवं उनके चित्त तमोगुणसे आच्छन्न थे अतएव शीघ्र ही मरनेवाले वे दानवलोग साधुलोगोंसे द्वेष करनेलगे ॥ ४५ ॥

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥

महाराज! बड़े जनोंका अनादर करनेवालोंकी आयु, श्री, यश, धर्म, स्वर्गादिलोक, मङ्गल और सब प्रकारके श्रेय शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय

मथुरामें नंद व वसुदेवकी भेंट

श्रीशुक उवाच–नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥
आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! अपने यहाँ पुत्रका जन्म जानकर उदारचित्त नन्दने आनन्दित होकर वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुलाया और स्वयं स्नान करके पवित्र होकर नवीन वस्त्र व आभूषण पहने ॥ १ ॥ एवं ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्त्ययनपाठ, पुत्रका यथाविधि जातकर्मसंस्कार तथा पितर व देवतोंका पूजन कराया ॥ २ ॥ नन्दने ब्राह्मणोंको दो नियुत (२० लाख) भलीभाँति अलंकृत धेनुएँ व अनेक रत्न तथा सुवर्णमण्डित वस्त्रोंसे ढँकेहुए सात तिल-पर्वत[1] दिये ॥ ३ ॥ काल(समय)से भूमिआदि, स्नानसे देहादि, शौचसे अपवित्र हुई वस्तु, संस्कारसे गर्भादि, तपसे इन्द्रियादि, पूजापाठसे ब्राह्मणादि, दानसे द्रव्यादि, संतोषसे मन और आत्मज्ञान या विद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥ उस आनन्दके दिन नन्दके ब्रजमें मङ्गलमय वाणियोंसे ब्राह्मण, सूत[2], मागध[3], बन्दीजन[4] स्वस्तिवाचन करते हुए आशीर्वाद देनेलगे। गायक लोग गानेलगे और चारो ओर भेरी व दुन्दुभी आदि माङ्गलिक बाजे बजनेलगे ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण ब्रजमण्डल विचित्रध्वजा, पताका, माला और रङ्गविरङ्गे वस्त्रोंसे सजेहुए बनावटी द्वारोंसे सुशोभित हुआ ॥६॥ गऊ, बैल व बछड़े सब तेल व हल्दीसे रञ्जित एवं चित्र विचित्र गेरू आदि धातु, मयूरोंके पर, माला, वस्त्र तथा सोनेकी जंजीरोंसे विभूपित कियेगए ॥७॥ बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, जामा और पगड़ियाँ पहनकर अनेक भेंटकी वस्तुएँ हाथमें लिये गोपलोग नन्दके भवनमें आनेलगे ॥ ८ ॥ यशोदाको पुत्र हुआ, यह सुनकर सब गोपियाँ परम आनन्दित हुईं और वस्त्र, अलंकार तथा अञ्जन आदिसे अपनेको विभूपित करनेलगीं ॥ ९ ॥ विशाल नितम्बवाली गोपियोंके मुखकमल नवकुङ्कुमरूप परागसे सुशोभित हुए, वे अनेक प्रकारकी भेंटकी सामग्रियाँ लेकर शीघ्रतापूर्वक झपटती हुईं नन्दके भवनको चलीं। चलतेमें उनके पीन पयोधर हिलते थे ॥ १० ॥ गोपियाँ चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये

---

१ इतना वड़ा तिलोंका ढेर तिलपर्वत कहलाता है जिसके दोनो ओर दो मनुष्य खड़े हो कर एक एकको न देखपावे।

२ वे लोग जो पौराणिक होते हैं। ३ वे लोग जो वंशका बखान करते हैं। ४ वे लोग जो समयानुकूल उक्तियोंसे प्रशंसा करते हैं, जिनको भाट कहते हैं। यथा–“सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः॥”

थीं, कानोंमें मणि कुण्डल हिल रहे थे, कण्ठमें पदक (हमेल) पड़े हुए थे। सुवर्णके विविध रत्नजटित आभूषण पहने सब गोपियाँ नन्दभवनको जाती थीं, राहमें उनके केशपाशोंसे सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षासी होती जाती थी, हाथोंमें कङ्कण सुशोभित हो रहे थे, एवं चलनेमें हिलरहे कुण्डल, कुचमण्डल और हार एक अपूर्व ही शोभा दिखा रहे थे ॥ ११ ॥ नन्दभवनमें पहुँचकर वे गोपियाँ "चिरंजीव" कहकर कृष्णचन्द्रको शुभ आशीर्वाद देती थीं, एवं परस्पर हल्दी-तेल मिला हुआ जल छिड़ककर आनन्द प्रकट करती थीं ॥ १२ ॥ जगत्के स्वामी अनन्त श्रीकृष्णजी जब नन्दके व्रजमें आये तो उस महान् उत्सवके समय वहाँ भाँति भाँति के मङ्गलमय बाजे बजनेलगे ॥ १३ ॥ प्रसन्नचित्त गोपगण परस्पर एक एकपर दही, दूध, घी, जल आदि बर्साते हुए नवनीत (माखन) लेपने और फेंकनेलगे ॥ १४ ॥ महा उदार नन्दने उनको प्रसादस्वरूप अनेक प्रकारके वस्त्र, अलंकार और गायें दीं। सूत, मागध, बन्दीजन आदि जो जो गुणीजन वहाँ आये उनको मुहमाँगी वस्तुएँ नन्दसे मिलीं; नन्दजीने उन सबको भलीभाँति सन्तुष्ट करके उनका सत्कार किया। उदारचित्त नन्दने विष्णुकी प्रसन्नता और अपने पुत्रके कल्याणकी कामनासे आयेहुए सब लोगोंको अनेक प्रकारके सत्कारोंसे सन्तुष्ट किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ नन्दगोपके द्वारा अभिनन्दित महाभागा रोहिणीने भी दिव्य वस्त्र, आभूषण, माला और कण्ठके आभूषणोंसे विभूषित हो, सबका सत्कार किया ॥ १७ ॥ उसी दिनसे रमापति हरिके रहनेके कारण नन्दका व्रज सब प्रकारकी समृद्धियोंसे सम्पन्न होकर लक्ष्मीजीके विहारका स्थान बन गया; वहाँ लक्ष्मीजीके सब गुण प्रत्यक्ष देख पड़नेलगे ॥ १८ ॥ हे कुरु-श्रेष्ठ ! तदनन्तर कुछ गोपोंको गोकुलकी रक्षा और देखरेखका भार देकर कंसको वार्षिक कर (सालाना मालगुजारी) देनेके लिये नन्दजी मथुरापुरीको गये ॥ १९ ॥ वसुदेवने जब जाना कि भाईके समान हितकारी मित्र नन्दजी आये हैं और राजा कंसको वार्षिक कर देचुके हैं तब उनके डेरेपर मिलनेके लिये गये ॥ २० ॥ नन्दजी अपने परम मित्रको देखकर जैसे प्राण पाकर शरीर उठ-खड़ा होता वैसे सहसा आसनसे उठ खड़े हुए और प्रियतम वसुदेवको हाथ फैला-कर प्रसन्नतापूर्वक प्रेमसे विह्वल हो गलेसे लगा लिया ॥ २१ ॥ नन्दने आदर-पूर्वक वसुदेवका पूजन किया। हे महाराज ! जब वसुदेवजी सुखपूर्वक बैठे तब कुशलप्रश्नके बाद अपने पुत्रोंमें मन लगारहनेके कारण यों कहनेलगे ॥ २२ ॥ वसुदेवजीने कहा—भाई ! तुम वृद्ध हो गये थे, अबतक तुम्हारे कोई पुत्र या कन्या नहीं थी, और सन्तान होनेकी आशा भी जाती रही थी। इससमय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है ! ॥ २३ ॥ यह भी बड़े भाग्यकी बात है कि इस संसारचक्रमें हम तुम दोनो मित्र फिर मिले; क्योंकि प्रिय मित्रका दर्शन बहुत ही दुर्लभ है। मानो हमारा

तुम्हारा फिरसे जन्म हुआ ॥ २४ ॥ जैसे जलके प्रवाहमें बहरहे तृणोंका एकत्र रहना असम्भव है वैसे ही भिन्न भिन्न कर्म करनेवाले प्रिय आत्मीय सुहृद जनोंका सदा एकत्र रहना भी कठिन ही नहीं वरन् असंभव है ॥ २५ ॥ तुम बन्धु-बान्धवोंसहित जिस विशाल बनमें वास करते हो उसमें किसी प्रकारकी बाधा तो नहीं है? वहाँ निर्वाहयोग्य जल, तृण और वृक्ष लता आदि विद्यमान हैं ? ॥ २६ ॥ हमारा एक पुत्र अपनी मातासहित आपके व्रजमें रहता है, भाई ! वह आपको ही अपना पिता जानता है, क्योंकि यशोदा और आपने ही उसका लालन पालन किया है। वह तो सुखसे है ? ॥ २७ ॥ जिस त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) से आत्मीय जनोंको सुख मिले वही त्रिवर्ग पुरुषके लिये शास्त्र-विहित है। किन्तु यदि उससे अपनेको ही सुख मिला और परिवारको क्लेश हुआ वह त्रिवर्ग शास्त्रोक्त प्रयोजनको नहीं सिद्ध कर सकता ॥ २८ ॥ नन्दजीने कहा—अहो ! देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र दुष्ट कंसने मार डाले। सबसे छोटी एक कन्या बची थी वह भी स्वर्गको चली गई ! ॥ २९ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब जनोंके लिये पुत्र आदिका सुख मिलना भाग्यपर निर्भर है, एवं भाग्य ही सब लोगोंका सर्वस्व है। जो लोग भाग्यको ही सुख और दुःखका कारण जानते हैं उनको दुःख आ पड़नेपर या सुख मिलनेमें मोह नहीं होता ॥ ३० ॥ वसुदेवजीने कहा—मित्र ! तुम राजा कंसको वार्षिक कर दे चुके एवं हमसे भी भेंट कर चुके; अब तुम्हारा यहाँ बहुत दिन ठहरना अच्छा नहीं है, क्योंकि गोकुलमें अनेक उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच—इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥

वसुदेवके यों कहनेपर उसी समय छकड़े जुतवाकर नन्द आदि गोप उनपर सवार हुए और वसुदेवसे विदा होकर गोकुलकी ओर चले ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

पूतना-वध

श्रीशुक उवाच—नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ॥
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! महात्मा वसुदेवके वचन मिथ्या नहीं होते-यह विचारते हुए नन्दजी मार्गमें उत्पात होनेकी आशङ्कासे भयभीत

होकर हृदयसे हरिके शरणागत हुए ॥ १ ॥ वास्तवमें कंसकी भेजी हुई कामचारिणी बालघातीनी घोर स्वभाववाली पूतना राक्षसी उस समय पुर, ग्राम, व्रज आदिमें जाकर बालकोंको मार रही थी ॥ २ ॥ किन्तु हे राजन्! जहाँके रहनेवाले लोग अपने नित्यके कर्मोंमें भक्तपति भगवान्‌का कीर्तन और उनके गुणोंका श्रवण नहीं करते वहीं ऐसी राक्षसियोंका प्रवेश हो सकता है ॥ ३ ॥ वह आकाशगामिनी राक्षसी पूतना घूमतीहुई नन्दके गोकुलमें भी पहुँची और इच्छानुसार जहाँ जिस रूपसे चाहे चली जाय—इस शक्तिके होनेके कारण मायाबलसे सुन्दर युवतीका रूप धरकर गोकुलके भीतर घुसी ॥ ४ ॥ उसने परम सुन्दर रूप धारण किया। उसकी वेणीमें मल्लिकाके फूल गुँथे हुए थे, विशाल नितम्ब थे, पीन पयोधरोंमें क्षीण कटि देख ही न पड़ती थी, सुन्दर वस्त्र पहनी थी, हिलरहे कानोंके कुण्डलोंकी झलकसे शोभायमान अलकोंसे उसके मुखकी अपूर्व शोभा थी ॥ ५ ॥ मनोहर मुसकान और कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे वह व्रजवासियोंके चित्तको चुराए लेती थी। गोपियोंने हाथमें कमलका फूल लिये उसे देखकर समझा कि यह साक्षात् लक्ष्मीजी अपने स्वामी विष्णु (कृष्ण) की देखनेके लिये आई हैं ॥ ६ ॥ राजन्! स्त्रीरूपधारिणी पूतना बालकोंके लिये ग्रहस्वरूप भयदायिनी थी। वह मारनेके लिये बालकोंको खोजती हुई इच्छापूर्वक नन्दके घरमें घुसकर इधर उधर घूमने लगी। घूमते घूमते उसने शय्यापर बालवेष कृष्णचन्द्रको देखा। राक्षसी यह न जानसकी कि यह बालक दुष्टोंके लिये कालरूप है एवं भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान अपने असीम तेजको छिपाये हुए हैं, अतएव कृष्णको देखकर भयभीत नहीं हुई ॥ ७ ॥ चराचर जगत्‌के अन्तर्यामी कृष्णचन्द्र समझ गये कि यह साधारण स्त्री नहीं है, बरन् मायासे स्त्रीरूप धरेहुए बालघातिनी बालग्रह पूतना है; अतएव उसे मारनेकी इच्छासे उन्होने दोनो आँखे बन्द कर लीं (क्योंकि भगवान्‌के आगे कोई माया नहीं ठहरसतीक और पूतनाकी माया मिटजाने एवं राक्षसी देह प्रकट होनेसे काम विगड़जाता)। जैसे कोई व्यक्ति भ्रमसे रस्सी समझकर सो रहे कालरूप काले साँपको उठाले वैसे ही उस पूतनाने अपने अन्तक अनन्त कृष्णचन्द्रको साधारण बालक जानकर गोदमें उठा लिया ॥ ८ ॥ जैसे सुतीक्ष्ण तर्वार मखमली म्यानमें छिपी होनेसे भली जान पड़े वैसे ही भीतर घोरभाव होनेपर भी प्रकटमें अत्यन्त स्नेहपूर्ण माताका ऐसा पूतनाका व्यवहार देखकर यशोदा और रोहिणीने भी उसे न रोका। देखनेमें सुन्दर युवतीरूपधारिणी पूतना कोई भद्रमहिला जान पड़ती थी, उसकी प्रभा भी वैसी ही थी। अतएव यशोदा व रोहिणी चुपचाप खड़ी देखती रहीं, कुछ भी नै कहसकीं ॥ ९ ॥ उस घोरा पूतनाने कृष्णको गोदमें लेकर दुर्जर विषलिप्त, जीवननाशक स्तन उनके मुखमें दिया। भगवान् हरिने

कुपित होकर उस स्तनको भलीभाँति दोनो हाथोंसे पकड़ लिया और दूधके साथ उसके सब प्राण भी खींचनेलगे ॥ १० ॥ सब मर्मस्थलोंमें घोर वेदना होनेसे

वह राक्षसी "बस, बस, छोड़दे, छोड़दे" यों वारंवार आर्त स्वरसे कहनेलगी। किन्तु कृष्णचन्द्र क्यों छोड़नेवाले थे? उसके सब अङ्गोंसे पसीना निकलनेलगा और आँखें बाहर निकल पड़ीं। अन्तको अचेत होकर पृथ्वीपर गिरपड़ी एवं अत्यन्त यातना होनेके कारण बार बार हाथ पैर पटकने व रोनेलगी ॥११॥ उसके अत्यन्त वेगशाली घोर गम्भीर चीत्कार–शब्दसे पर्वतगणसहित पृथ्वी और ग्रहगणसहित आकाश कम्पायमान हो उठा; रसातल और दिशाओंसे प्रतिध्वनि होनेलगी एवं वज्रपातकी आशङ्कासे अनेक लोग पृथ्वीपर गिर गये ॥१२॥ मर्मस्थलमें यों तीव्र वेदना होनेसे उस राक्षसीके प्राण निकल गये और वह अन्तसमय अपना राक्षसीरूप प्रकट करके केश, दोनो पैर और भुजा फैलाकर, इन्द्रका वज्र लगनेसे निहत वृत्रासुरके समान, गोष्ठमें गिर पड़ी ॥ १३ ॥ महाराज! मरकर गिरते समय भी उसके लम्बे चौड़े शरीरने छः कोसतकके वृक्ष आदिको चूर्ण कर डाला। लोगोंके लिये यह एक बड़े ही विस्मयकी बात हुई ॥ १४ ॥ उसकी तीक्ष्ण दंष्ट्राएँ हलके समान लम्बी चौड़ी थीं, नासिकाके छिद्र पर्वतकी कन्दरा जानपड़ते थे, कुच विशाल शिला या छोटे पर्वतके समान थे, रूप बड़ा ही रौद्र था और अरुण वर्णवाले बाल इधर उधर विखरेहुए थे ॥१५॥ नेत्र अन्धकूपके तुल्य गम्भीर थे, दोनों जङ्घाएँ ऊँचे नदीतटके समान होनेके कारण अत्यन्त भयानक थीं, भुजा, ऊरू और

चरण बँधेहुए सेतु (पुल) के तुल्य देख पड़ते थे एवं उदर सूखेहुए सरोवरके समान गहरा था॥१६॥उसके चीत्कारशब्दसे गिरपड़नेके कारण पहले जिनके हृदय, कान और मस्तक फट चुके थे वे गोप-गोपीगण पूतनाके ऐसे भयानक रूपको देखकर बहुत ही भयभीत हुए ॥ १७ ॥ बालकको उस राक्षसीके वक्षःस्थलपर निर्भयतापूर्वक खेलतेहुए ऐसे देखकर गोपियाँ जल्दीसे घबड़ाहटके साथ वहाँ आईं और उसको उठा लिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर यशोदा, रोहिणी आदि सब गोपियाँ गोपुच्छ घुमाकर एवं अन्यान्य ढंगोंसे भलीभाँति बालकके सब अङ्गोंकी रक्षा करनेलगीं ॥ १९ ॥ पहले गोमूत्रसे स्नान कराया, फिर सब अङ्गोंमें गोरज लगाई और ललाट आदि बारहो अङ्गोंकी केशवादि द्वादश नामोंसे रक्षा की ॥२०॥ गोपियोंने हाथ पैर धोकर आचमन किया और अपने शरीरमें "अज" आदि एकादश बीजमन्त्रोंसे अङ्गन्यास व करन्यास करके बालकके भी शरीरमें इसप्रकार बीजन्यास किया ॥ २१ ॥ "तुम्हारे दोनो चरणोंकी अज, जानुओंकी मणिमान्, ऊरुओंकी यज्ञदेव, कटितटकी अच्युत, उदरकी हयग्रीव, हृदयकी केशव, वक्षस्थलकी ईश, कण्ठकी सूर्यनारायण, बाहुओंकी विष्णु, मुखकी उरुक्रम भगवान् और मस्तक की ईश्वर रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी मुरारि तुम्हारे आगे, गदाधारी हरि पीछे, धनुपधारी मधुसूदन व असिधारी अज दाहिने बाएँ, शङ्खधारी विष्णु चारो कोनोंमें, उपेन्द्रजी ऊपर, तार्क्ष्यजी नीचे एवं हलधर पुरुप चारो ओर अवस्थित होकर तुम्हारी रक्षा करें॥२३॥ [यों बाहरी अङ्गोंकी रक्षा कर भीतरी अर्थात् अन्तःकरणकी रक्षा करनेलगीं] तुम्हारी सब इन्द्रियोंकी हृषीकेशजी, दशविध प्राणोंकी नारायणजी, चित्तकी श्वेतद्वीपपति देव, मनकी योगेश्वर भगवान्, बुद्धिकी पृश्निगर्भजी एवं आत्माकी परमात्मा भगवान् रक्षा करें। खेलनेमें गोविन्द, सोनेमें माधव, जानेमें वैकुण्ठदेव, बैठनेमें श्रीपति एवं भोजन करते समय सब ग्रहोंको भय देनेवाले यज्ञपुरुप देव तुम्हारी रक्षा करें। डाकिनी राक्षसी और कूष्माण्ड आदि सब बालग्रह, भूतगण, प्रेतगण, पिशाचगण, यक्ष, राक्षस, विनायकगण, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, और पूतना आदि मातृकागण, देह व प्राणका नाश करनेवाले अपस्मार, उन्माद आदि भयानक रोग और दुःस्वप्नजनित सम्पूर्ण महाउत्पात एवं वृद्धग्रह व बालग्रह इत्यादि सब विष्णुनामके कीर्तनसे भीत हों और नष्ट हो जायँ" ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजन्! स्नेहसे जिनका मन कृष्णमें आसक्त है उन गोपियोंने यों मङ्गलरक्षा की और तदनन्तर यशोदाने पुत्रको गोदमें लेकर दूध पिलाया एवं दूध पिला कर शय्यापर सुला दिया ॥३०॥ इसीसमय नन्द आदि गोपगण मथुरासे व्रजको लौटे आरहे थे; वे मार्गमें पूतनाके घोर शरीरको देख कर बहुत ही अचंभेमें आये और कहनेलगे—"वसुदेवजी निश्चय ही किसी ऋषि या योगेश्वरका अवतार हैं, क्योंकि जो उन्होने उत्पातकी

बात बताई थी उसीके लक्षण यहाँ देख पड़ते हैं" ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इधर व्रजमें स्थित गोपोंने कुल्हाड़ियोंसे पूतनाके कलेवरके अनेक टुकड़े कर डाले और गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियोंपर धर कर उनको जला दिया ॥ ३३ ॥ जलतेसमय उस शरीरसे जो धूम निकला उसमें अगुरुकीसी सुगन्धि थी, क्योंकि कृष्णभगवान्ने स्तनपान किया, इसलिये पापिनी पूतनाके पाप सब नष्ट हो गये और शरीर पवित्र हो गया ॥ ३४ ॥ जब नरशिशुघातिनी, मांस खानेवाली राक्षसी पूतना मारनेकी इच्छासे भी दूध पिलाकर उत्तम गतिको प्राप्त हुई, तब जिन कृष्णकी माताओंने (यहाँपर बहुत माताकी उक्ति इसलिये है कि जब ब्रह्माजी ग्वालबाल और बछड़े ले गये तब भगवान्ही ग्वालबाल और बछड़े होगये, उस समय सभी गोपियोंने दुग्धपान कराया) श्रद्धा और भक्तिसे परमात्मा कृष्णचन्द्रको स्नेहपूर्वक चितचाही वस्तुएँ दीं उनकी सद्गतिके लिये क्या कहना है ! ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो भक्तोंके हृदयमें निरन्तर विराजमान रहते हैं, लोकवन्दित देवगण जिनकी वन्दना करते हैं उन्ही चरण-कमलोंको जिसके हृदयपर धरकर श्रीकृष्णचन्द्रने दुग्धपान किया वह पूतना राक्षसी होकर भी जब माताकी गति अर्थात् स्वर्गको प्राप्त हुई तब मुक्तिदाता देवकीनन्दन कृष्णने जिन गऊ और मातृतुल्य गोपियोंके पुत्रस्नेहकी अधिकतासे आप ही आप निकल रहे दूधको पिया, उनके उत्तम गति पानेमें क्या सन्देह है ? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ महाराज ! वे सब गोपियाँ सदा कृष्णचन्द्रको पुत्रकी दृष्टिसे देखती रहीं, अतएव अज्ञानकृत संसारपाशमें उनका बँधना किसी प्रकार संभव नहीं है ॥ ४० ॥ जो सब व्रजवासी गोप नन्दके साथ मथुरामें गये थे वे चिताधूमके गन्धको सूँघकर "यह क्या है ? कहाँसे ऐसी सुवास आती है ?" यों कहतेहुए व्रजके भीतर आये एवं वहाँ अन्य गोपोंके मुखसे "पूतना आई और मर गई एवं उसके हाथों बालकका कुछ अमङ्गल नहीं हुआ"–यह सब वृत्तान्त सुनकर बहुत ही विस्मित हुए ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उदार मनवाले नन्दजीने प्रवाससे आकर पुत्रको गोदमें लेलिया और प्रेमपूर्वक उसका माथा सूँघ कर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ४३ ॥

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य 'पूतना–मोक्ष'नामक यह कृष्णचन्द्रकी प्रथम बाललीला श्रद्धापूर्वक सुनता है उसकी कृष्णभगवान्में अटल भक्ति होती है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

शकट-भंजन और तृणावर्तवध

राजोवाच—येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—ब्रह्मन्! हे प्रभो! भगवान् ईश्वर हरि जिस जिस अवतारको लेकर जो जो कर्म करते हैं वे सब चरित्र हमारे कानोंको सुख देनेवाले और मनको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ १ ॥ उन सब चरित्रोंको सुननेसे पुरुषके मनका मैल और अनेक प्रकारकी तृष्णा (कामना) दूर हो जाती है एवं बहुत ही शीघ्र अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, हरिमें भक्ति होती है तथा हरिभक्त जनोंके साथ मित्रता होती है। यदि उचित समझिये तो अनुग्रह करके उन्ही मनोहर हरिचरित्रोंका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ कृष्णचन्द्रने मनुष्य लोकमें आकर मनुष्योंकी भाँति बाल्यावस्थामें और भी जो कुछ अद्भुत लीलाएँ की हैं उनको भी अनुग्रह करके सुनाइये ॥ ३ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! कुछ एक दिन बालकके अङ्गपरिवर्तन तथा जन्मदिनके उपलक्ष्यमें नन्दके यहाँ महोत्सवमय अभिषेककृत्य हुआ। उस महोत्सवमें व्रजकी सब गोपियाँ आईं, उनके साथ मिलकर नन्दरानी यशोदाने बालकका अभिषेक कराया, गाना बजाना हुआ, ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन मन्त्र पढ़े। पुत्रका स्नान आदि जब हो चुका एवं भाँति भाँति के भोजन कर वस्त्र माला व मनमानी गऊ आदि दक्षिणामें पाकर सन्तुष्ट व पूजित ब्राह्मणगण स्वस्त्ययनपाठ कर चुके तब श्रीकृष्णचन्द्रको निद्रित देख यशोदाने पालनेमें लिटा दिया ॥ ४ ॥ ५ ॥ उदार हृदयवाली यशोदाका मन 'औत्थानिक' उत्सवमें उत्सुक था, वह आयेहुए व्रजवासी जनोंके आदर सत्कारमें व्यग्र थीं, इसीकारण उन्होने कृष्णचन्द्रका रोना न सुन पाया। इधर दूधके लिये रोते रोते कृष्णचन्द्रने दोनो पैर ऊपरको उछाले ॥ ६ ॥ पालनेमें कृष्णजी लेटे थे और ऊपर शकट (छकड़ा) धरा था। कृष्णके नवपल्लवसम कोमल छोटे छोटे पैरोंके प्रहारसे वह छकड़ा उलट पड़ा और उसमें धरेहुए दही, दूध आदि अनेक रसोंसे भरेहुए काँसे आदिके विविध बर्तन गिर कर चूर चूर हो गये, एवं छकड़ेके भी चक्र, अक्ष और कूबर आदि अङ्ग टूट फूट गये ॥ ७ ॥ उत्सवमें आई हुई गोपियोंसहित यशोदा, नन्द और अन्यान्य गोपगण इस अद्भुत व्यापारको देख विस्मयसे व्याकुल होकर कहने लगे कि—"यह क्या है! छकड़ा आप ही आप कैसे उलट पड़ा?" ॥ ८ ॥ गोप और गोपियाँ छकड़ा उलटनेका कोई कारण न निश्चित कर सके। तब वहीं खेल रहे बालकोंने कहा कि "इसी

(कृष्ण) ने रोते रोते पैर उछालकर छकड़ा गिरा दिया है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है" ॥ ९ ॥ किन्तु गोप गोपियोंने 'लड़कोंकी बात' कहकर उसपर विश्वास नही किया, क्योंकि उनको बालकके अप्रमेय बलका ज्ञान न था ॥ १० ॥ यशोदाने इस घटनाको ग्रहजनित उत्पात सझमकर रोतेहुए बालको गोदमें उठालिया और ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययनमन्त्रपाठपूर्वक शान्ति कराकर कृष्णचन्द्रको पयपान कराया ॥ ११ ॥ गोपोंने नवीन कपड़े पहनाकर कृष्णको वेदीमें बिठलाया और ब्राह्मणोंने भी फिर बलिदानसहित हवन करके दधि अक्षतसे टीका करके कुशजलसे कृष्णका मार्जन किया ॥ १२ ॥ महाराज ! "असूया (गुणोंमें दोष निकालना), झूठ, ईर्षा, दम्भ, हिंसा और अभिमान जिनके हृदयमें छू भी नहीं गया उन सत्यशील ब्राह्मणोंके दिये आशीर्वाद कभी नहीं विफल होते" ॥ १३ ॥ यह समझकर नन्दगोपने अपनी गोदमें बालकको लेकर ब्राह्मणोंके द्वारा साम, ऋक् और यजुःके मन्त्रोंसे संस्कृत एवं पवित्र औषधियुक्त जलसे उसका अभिषेक कराया। फिर स्वस्त्ययनपाठ और हवन हो जानेपर पुत्रके अभ्युदयकी कामनासे ब्राह्मणोंको सुस्वादु उत्तम अन्न और सर्वगुणसम्पन्न धेनुएँ, वस्त्र, माला व रत्नोंके हार दिये। ब्राह्मणलोगोंने भी सफल सत्य आशीर्वाद दिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह बात स्पष्ट है कि वेदके जाननेवाले ज्ञानी ब्राह्मणलोग जो असीस देते हैं उसका निष्फल होना त्रिकालमें असम्भव है ॥१७॥ हे महाराज! एक दिन साध्वी यशोदा पुत्रको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं, इतनेमें उनको कृष्णजी एक पर्वत–शिखरके समान भारी जान पड़े, जिससे वह पुत्रको गोदमें लिये न रहसकीं ॥ १८ ॥ अन्तको भारसे पीड़ित होकर यशोदाने पुत्रको गोदसे उतारकर पृथ्वीपर बैठा दिया। यशोदाको इस नई बातकर बड़ा ही विस्मय हुआ। तदनन्तर परमेश्वरका ध्यान करती हुई यशोदाजी घरके अन्य कामोंमें लगगई ॥ १९ ॥ इसी अवसरमें कंसका भेजा हुआ सेवक तृणावर्त नाम असुर आँधी ववंडरके रूपसे व्रजमण्डलमें आया और पृथ्वीपर बैठे कृष्णको उठा लेगया ॥ २० ॥ दशो दिशाओंसे उस आँधीरूप असुरके घोर शब्दकी प्रतिध्वनि होनेलगी, धूलसे व्रजमण्डल छा गया और लोगोंके नेत्र बन्द हो गये ॥ २१ ॥ दो घड़ीतक सारा व्रज धूल और अन्धकारसे आवृत रहा। उस समय खोज करनेपर यशोदाजीने पुत्रको, जहाँ बैठा गई थीं वहाँपर, नहीं पाया ॥ २२ ॥ उस समय आँधीरूप तृणावर्तकी चलाईहुई कंकड़ियोंके छर्रोंसे सब लोग उद्विग्न हो गये। अन्धकारके मारे सब मोहित हो गये, कोई अपने या परायेको नहीं देख सकता था ॥ २३ ॥ प्रचण्ड ववण्डरके कारण यों धूलकी वर्षा होनेपर अबला माता यशोदा पुत्रको इधर उधर खोजनेलगीं, किन्तु कहीं भी उसका पता न पाकर, जिस गऊका बछड़ा मर गया हो उसके समान पश्चात्तापपूर्वक सोच करती हुई पृथ्वीपर गिरकर अत्यन्त

दीन स्वरसे विलाप करनेलगीं ॥ २४ ॥ तदनन्तर धूल उड़ना बन्द हुआ। अन्य गोपियाँ यशोदाके रोनेका शब्द सुनकर वहाँ आईं और कृष्णके खोजानेका वृत्तान्त जानकर बहुत ही दुःखित हुईं, उनकी आँखोंमें आँसू भर आये एवं वे भी नन्द-कुमारको न पाकर विलाप करनेलगीं ॥ २५ ॥ वायुरूप तृणावर्त कृष्णजीको लेकर ऊपर आकाशको चला गया, अतएव पृथ्वीपर उसका वेग शान्त हो गया। किन्तु कृष्णने अपने शरीरको इतना भारी कर दिया कि वह उनको लेकर आगे न चल सका ॥ २६ ॥ कृष्णजी ऐसे भारी हो गये कि, असुरको एक बड़ा भारी पर्वत जान पड़नेलगे। कृष्णजीने दोनो हाथोंसे उसका गला पकड़ लिया था। उस दैत्यने कण्ठपाश छुड़ानेकी बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु कृष्ण तो अद्भुत बालक थे, उनके हाथोंसे वह अपनेको न मुक्त कर सका ॥ २७ ॥ गला दबनेके कारण दैत्य निश्चेष्ट (वेदम) हो गया, उसकी आँखें बाहर निकलपड़ीं और मरतेसमय अस्पष्ट शब्द करता हुआ प्राणहीन होकर कृष्णके सहित आकाशसे व्रजमें गिरा ॥ २८ ॥ सब स्त्रियाँ कृष्णके न मिलनेसे व्याकुल हो विलाप कर रही थीं, उन्होने देखा कि वह भयानक राक्षस, रुद्रके बाणसे भग्न होकर पृथ्वीपर गिरेहुए त्रिपुरके समान आकाशसे एक शिलाके ऊपर गिरा और उसके सब अङ्ग चूर चूर होगये ॥ २९ ॥ कृष्णजी उसकी छातीपर थे। गोपियोंने दौड़कर कृष्णको उठा लिया और वहाँसे लाकर यशोदाजीको दे दिया। दुष्ट राक्षस बालकको आकाश-पर ले गया, किन्तु वहाँसे गिरकर आपही मर गया, बालकके चोट भी न आई। इसप्रकार मृत्युके मुखसे बालकका बचना देखकर सबको विस्मय हुआ ॥ ३० ॥ बालकको ऐसी सुरक्षित अवस्थामें पाकर गोपियाँ और नन्द आदि गोपगण बहुत ही हर्षित होकर कहनेलगे, "अहो आश्चर्य है! कैसी अद्भुत बात है! इस असुरने बालकको मारना चाहा था, किन्तु बालकका बाल भी न बाँका हुआ, वह फिर कुशल क्षेमसे हमको मिला और यह दुष्ट हिंसाशील अपने पापोंसे आप ही मरगया। सच है-साधुलोग सबको समान मानते हैं, अतएव आईहुई भयानक विपत्तियोंसे सदा बचे रहते हैं, अर्थात् ईश्वर उनकी रक्षा करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हमने कौन तप या विष्णुकी पूजा की थी अथवा पूर्त [सरोवर आदि खुदवाना] इष्ट [अग्निहोत्र, पंचमहायज्ञ] आदिक अच्छे कर्म किये थे या दान किया था या जीवोंसे मैत्री (परोपकार) की थी? जिसके कारण इस बालकने मृत्यु-मुखमें पड़कर भी भाग्यवश फिर निकट आकर हम स्वजनोंको आनन्दित किया" ॥ ३३ ॥ बृहद्वन अर्थात् गोकुलमें वारंवार ऐसी अद्भुत घटना होते देखकर नन्दजीको बड़ाही आश्चर्य हुआ एवं वसुदेवके वचनोंको यथार्थ देख कर वह वारंवार विचारनेलगे कि "वसुदेवने बहुत ही ठीक कहा था" ॥ ३४ ॥ एक दिन नन्दरानी

यशोदा स्नेहपूर्वक बालकको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं । भलीभाँति पयपान कर चुकनेपर दुलराते हुए यशोदाने पुत्रके मनोहर मुसकानयुक्त मुखका चुम्बन किया । इसीसमय कृष्णने जम्हाई ली । जम्हातेहुए कृष्णके मुखमें यशोदाने देखा—आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दशदिशा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, सातो महासागर, सातो द्वीप, सब पर्वत, नदियाँ, वनवृन्द एवं सम्पूर्ण चराचर प्राणी विराजमान हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥
संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥

महाराज! पुत्रके मुखमें अकस्मात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखकर यशोदाका हृदय आश्चर्यकी अधिकतासे धड़कनेलगा । मृगनयनी नन्दरानीने अपने दोनो नेत्र बन्द कर लिये और ईश्वरका स्मरण करनेलगीं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय

महर्षि गर्गका आगमन और उनके द्वारा कृष्ण-बलदेवका नामकरण

श्रीशुक उवाच—गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—राजन्! यादवोंके कुलपूज्य पुरोहित महातपस्वी गर्गाचार्यजी वसुदेवके भेजनेसे नन्दके व्रजको गये ॥ १ ॥ उनको देखकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होने उठकर हाथ जोड़ विष्णुबुद्धिसे प्रणाम करके मुनिका पूजन किया । इसप्रकार अतिथिसत्कार करनेके बाद सुखपूर्वक बैठेहुए मुनिको अपनी मनोहर मधुर वाणीसे प्रसन्न करतेहुए नन्दजीने कहाकि—हे ब्रह्मन्! आप पूर्ण हैं अर्थात् आपको कोई कामना नहीं है, तथापि हम आपकी क्या सेवा करें ? ॥ २ ॥ ३ ॥ आपऐसे महात्मा जनोंका विचरना स्वार्थके लिये नहीं है, बरन् जो लोग गृहस्थ हैं, जिनका चित्त गृहस्थाश्रममें आसक्त होनेके कारण दीन हो रहा है उनके कल्याणके लिये है ॥ ४ ॥ इन्द्रियोंसे अतीत ज्ञान, जिसे ज्योतिःशास्त्र कहते हैं और जिसके अभ्याससे अन्य लोग भी पूर्वजन्म व वर्तमान जन्मका शुभाशुभ फल जानते हैं उसकी रचना आपने की है ॥ ५ ॥ भगवन्! आप ज्योतिषियों व ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतएव इन मेरे बालकोंके नामकरण आदि संस्कार आप ही करिये । यदि कहिये कि हम तो तुम्हारे गुरु नहीं हैं तो ब्रह्मन्! जन्मसे ही ब्राह्मण

सबका गुरु है ॥ ६ ॥ गर्गजीने कहा—नन्दजी ! पृथ्वीमें सर्वत्र यह प्रसिद्ध है कि मैं यादवोंका आचार्य हूँ । यदि मैं तुम्हारे पुत्रोंको संस्कार करूँगा तो संभव है कि कंस तुम्हारे पुत्रको देवकीका पुत्र मानले । इसके और भी कारण हैं—एक तो कंस आप ही पापबुद्धिवाला है, दूसरे उसे यह भी मालूम है कि तुम्हारी और वसुदेवकी गहरी मित्रता है, तीसरे उसे यह भी निश्चय है कि देवकीका आठवाँ गर्भ स्त्री नहीं होसकता । इन कारणोंसे और देवकी-की कन्याके कथनसे एवं मेरे संस्कार करनेसे यदि शङ्का करके कंस तुम्हारे पुत्रोंका वध कर डालेगा तो यह बड़ा ही अन्याय होगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ नन्दजीने कहा—भगवन् ! इसी एकान्तस्थान गोव्रजमें अलक्षित-भावसे स्वस्ति-वाचनमात्र करके मेरे पुत्रोंके आवश्यक द्विजाति–संस्कार कर दीजिये । दूसरोंकी कौन कहे, मेरे जातिभाई भी इस वृत्तान्तको न जान सकेंगे ॥ १० ॥ शुक-देवजी कहते हैं—गर्गजी तो इसलिये ही आये थे, अतएव नन्दके यों प्रार्थना करनेपर छिपकर एकान्त स्थानमें उन्होने इसप्रकार दोनो बालकोंका नामकरण किया ॥ ११ ॥ गर्गजीने कहा—यह रोहिणीका पुत्र, अपने गुणोंसे सुहृद् जनोंको रमावेगा–इसकारण इसका नाम 'राम' होगा । और बलकी अधिकतासे लोग इसे बलभद्र भी कहेंगे एवं यादवोंमें अभिन्नभाव होनेके कारण इसका संकर्षण नाम भी होगा॥१२॥और इस दूसरे बालकके गत तीन युगोंमें शुक्ल, रक्त और पीत ये तीन वर्णके तीन अवतार होचुके हैं, इस युगमें यह कृष्णवर्ण अवतार हुआ है, अतएव इसका नाम कृष्ण होगा । तुम्हारा यह पुत्र पहले कभी वसुदेवके यहाँ उत्पन्न हो चुका है, इसकारण विद्वान् लोग इस श्रीमान् बालकको वासुदेव भी कहेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे इस पुत्रके गुण कर्मके अनुरूप बहुतसे रूप और नाम हैं । उनको मैं ही जानता हूँ अन्य साधारण लोग नहीं जानते ॥ १५ ॥ यह बालक तुम्हारा कल्याण करेगा । इसके द्वारा गोप और गोगणको आनन्द होगा । तुम लोग इसकी सहायतासे सहजमें ही अनेक संक-टोंके पार लगजाओगे ॥ १६ ॥ हे व्रजराज ! पहले इसने अराजकसमयमें दस्यु-जनोंद्वारा पीड़ित साधुओंकी रक्षा की है, और इसकी सहायतासे वृद्धिको प्राप्त साधुओंने दस्युजनोंका दमन किया है ॥ १७ ॥ जो महाभाग्यशाली पुरुष इस बालकमें प्रेम करेंगे उनके शत्रु उनको कभी न सता सकेंगे, जैसे देवतोंको दैत्य-लोग ॥ १८ ॥ हे नन्द ! यह तुम्हारा पुत्र गुण, लक्ष्मी, कीर्ति और प्रभावमें नारायणके तुल्य है । इससे सावधान रहकर तुम इसकी रक्षा करो ॥ १९ ॥ इसप्रकार आज्ञा देकर गर्गजी अपने घरको चले गये । नन्दजी भी अपनेको पूर्णकाम मानकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ २० ॥ थोड़ा ही समय बीतनेपर कृष्ण और बलभद्र दोनो भाई गोकुलमें घुटनोंके बल इधर उधर घूमकर

खेलनेलगे ॥ २१ ॥ दोनो भाई पैरोंको घिसलाकर गोवरकी कीचसे परिपूर्ण गोव्रजमें वारंवार चलते थे। चलनेमें कमर और पैरके वजनेवाले आभूषण वजते थे; उनके रुचिर शब्दको सुनकर दोनो भाई बहुत ही प्रसन्न होते थे। दोनो भाई उधर उधर आते जातेहुए लोगोंके पीछे पीछे दो चार पग जाकर भोले-पन और भयभीत भावको प्रकट करते हुए माताओंके पास भाग आते थे ॥ २२ ॥ दोनो माताओंके स्तनोंसे स्नेहकी अधिकताके कारण आप ही आप दुग्ध निकलनेलगता था और वे कीचड़ व अङ्गरागसे जिनका शरीर भला मालूम पड़ता है उन पुत्रोंको गोदमें उठाकर गलेसे लगा लेतीथीं एवं उनको दुग्ध पिलाती थीं। दुग्ध पीतेसमय भोली मुसकान और छोटी छोटी दँतियोंसे शोभित बाल-कोंके मुखारविन्दोंको देखकर माताओंको अपार आनन्द होता था ॥ २३ ॥ जब दोनो बालक बड़े हुए और वे व्रजके भीतर क्रीड़ा करनेलगे, तब उनकी बाललीलाओंको गोपियाँ उत्सुकताके साथ देखनेलगीं। कृष्ण और बलराम बछड़ोंकी पूँछ पकड़ लेते थे, बछड़े उनको खींचतेहुए इधर उधर चलते थे, यह देखकर सब गोपियाँ बहुत ही प्रसन्न होकर हँसती थीं। इन लीलाओंको देख-नेके लिये गोपियाँ अपने अपने घर और घरके काम काज छोड़कर नन्दरानीके यहाँ बैठी रहती थीं ॥ २४ ॥ खेलमें तत्पर अत्यन्त चञ्चल अपने बालकोंको बल, अग्नि, काटनेवाले जीव, तवाँर, पक्षी, कण्टक आदिसे बचानेके लिये यशोदा और रोहिणी घरके कामकाज भी न कर सकतीं थीं और पुत्रोंकी क्रीड़ा देखकर गृह-स्थीके परम सुखका अनुभव करती थीं ॥ २५ ॥ हे महाराज ! थोड़े ही समयमें कृष्ण और बलदेव दोनो भाई गोकुलमें खड़े होकर चलनेलगे ॥ २६ ॥ तब भगवान् कृष्णचन्द्रजी अपने वयस्य ग्वालबालोंके साथ सहित बलदेवके व्रज-नारियोंको आनन्दित करतेहुए क्रीड़ा करनेलगे ॥ २७ ॥ गोपियाँ कृष्णकी बालसुलभ सुहावनी चपलता देखकर नन्दके घर आईं और यशोदाजीको सुनाकर यों कहनेलगीं ॥ २८ ॥ "यह कान्हा बड़ी ढिठाई करता है। कभी हमारे घरोंमें घुसकर असमयमें ही बछड़ोंको खोल देता है, यदि बको झको तो हँसनेलगता है। फिर चोरीकी चातुरीके ढंगोंसे चुराकर मीठे दही और दूधको खाता है, आप ही नहीं खाता बरन् बन्दरोंको भी खिलाता है, यदि भाँड़ेमें बहुतसा दही दूध नहीं मिलता तो उसे फोड़ डालता है। यदि कुछ भी न मिला तो खीझकर पलँगपर सोरहे छोटे छोटे बालकोंको चुटकी काटके रुलाकर चला-जाता है ॥ २९ ॥ इसकी चोरीकी चातुरी भी निराले ढङ्गकी है। जिन छींकों-पर धरे बर्तनोंतक हाथ नहीं पहुँचता वहाँ यह उपाय करता है कि पीढ़े और ओखली रखता है, और उनपर खड़े होनेसे भी जब नहीं हाथ पहुँचता तो नीचेसे बर्तनोंमें छेद कर देता है। छेद करनेका ढङ्ग भी इसको खूब मालूम है। देखते

ही जान जाता है कि इस छींकेपरके बर्तनमें दही दूध धरा है । जब गोपियाँ घरके कामकाजमें व्यग्र होती हैं तब अवसर पाकर भीतर घुस जाता है और ऐसे ही उत्पात करता है । यदि कोठरीके भीतर अँधेरेमें छिपाकर दही दूध धरा तो भी वह नहीं बचता, क्योंकि इसके शरीरके आभूषणोंमें मणि आदि रत्न जड़े हैं, जिनके प्रकाशमें सहज ही दही दूधके छिपाकर धरे माठोंको देख लेता है ॥ ३० ॥ इस-प्रकार ढिठाई करता है और कुछ कहनेसे उल्टे हमको ही डाँटता है एवं लीपे पोते हुए घरोंमें मल मूत्र कर जाता है । हे यशोदाजी! इसप्रकार हमारे यहाँ चोरी और दङ्गा करता है, किन्तु इस समय तुम्हारे पास बड़ा ही सीधा साधु बना हुआ बैठा है" । भययुक्त नयनोंसे सुशोभित कृष्णचन्द्रके श्रीमुखको देखती हुई गोपि-योंने जब यों कहा तो सुनकर यशोदाजी भी हँस पड़ीं और कृष्णचन्द्रको डाँटनेके लिये उनकी इच्छा नहीं हुई ॥ ३१ ॥ एक समय बलभद्र आदि ग्वालवालोंने खेलते खेलते माता यशोदाके पास जाकर कहा कि आज कृष्णने मट्टी खाई है ॥ ३२ ॥ यशोदाने कृष्णका हाथ पकड़ लिया और पुत्रके हितके लिये डाँटकर यों कहनेलगीं । उस समय भयसे पूर्ण कृष्णजीके चंचल चितवनयुक्त नयन बहुतही मनोहर देख पड़ते थे ॥ ३३ ॥ यशोदाने कहा—क्योंरे ढीठ! तूने निरा-लेमें मट्टी क्यों खाई? देख तेरे साथी लड़के और तेरा बड़ा भाई साक्षी दे रहे हैं ॥ ३४ ॥ कृष्णने कहा—मैया! मैंने मट्टी नहीं खाई, ये सब मुझे झूठ लगाते हैं । और यदि इनके कहनेको तू सच मानती है तो अपने आगे ही मेरा मुख देखले ॥ ३५ ॥ यशोदाने कहा—यदि तू सच कहता है तो मुख फैला । यह कहनेपर क्रीड़ा करनेके लिये मनुष्यबालकका रूप धारण कियेहुए अख-ण्डित ऐश्वर्यशाली ईश्वरने अपना मुख फैला दिया ॥ ३६ ॥ चलनेवाले और न चलनेवाले सब जीव, आकाश, दशो दिशा, पर्वत-द्वीप-समुद्रयुक्त भूगोल, वायु, अग्नि, चन्द्र, तारागण, ज्योतिश्चक्र, जल-तेज-वायु-आकाश आदि पञ्चतत्त्व, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता, इन्द्रियाँ, मन, शब्दादि विषय, तीनो मायाके गुण और जीव, काल, स्वभाव, कर्म, आशय आदि चराचर शरीरोंके विचित्र भेद एवं सहित अपने सम्पूर्ण व्रजको अपने पुत्रके विस्तृत मुखमें देखकर यशोदाजीको बड़ी भारी शङ्का हुई ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यशोदाजी आप ही आप मनमें शङ्का करनेलगीं कि "यह क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? या यह हरि देवकी माया है? या मेरी ही बुद्धिको मोह (भ्रम) हो गया है? अथवा इस मेरे पुत्रका ही कोई अचिन्त्य निजका ऐश्वर्य (प्रताप) है? ॥ ४० ॥ जो चित्त, मन, कर्म और वाणीसे परे है, जो तर्कद्वारा नहीं पाया जासकता, यह जगत् जिसके आश्रयमें है, जिस इन्द्रियाधिष्ठाता और बुद्धिस्फुरण करनेवालेके द्वारा इस जगत्की प्रतीति होती है उस अत्यन्त अचिन्तनीय पद (ईश्वर) को मैं

प्रणाम करती हूँ ॥ ४१ ॥ "मैं हूँ, मेरे यह पति हैं, मेरा यह पुत्र है, मेरे गोपी, गोप तथा गोधन हैं, मैं व्रजराजके सर्वस्वकी स्वामिनी हूँ" इस प्रकारकी कुमति जिसकी मायासे मुझको घेरी हुई है उसी ईश्वरको मैं शरणागत हूँ ॥ ४२ ॥ इसप्रकार यशोदाको तत्त्वज्ञान हुआ देख समर्थ ईश्वर कृष्णचन्द्रने फिर अपनी पुत्रस्नेहरूप प्रबल माया फैला दी ॥ ४३ ॥ तब तुरन्त ही यशोदाको वह ज्ञान भूल गया, पुत्रस्नेह हृदयमें उमड़ आया, उन्होने पुत्रको गोदमें उठा लिया और पहलेकी भाँति कृष्णचन्द्रको दुलरानेलगीं ॥ ४४ ॥ अहो, ईश्वरकी माया कैसी प्रबल है ! त्रयी, उपनिषद्, सांख्य, योग आदि शास्त्र और भक्तगण इन्द्रादि देवरूप, ब्रह्म, पुरुष, परमात्मा तथा भगवान् कहकर जिनके माहात्म्यको गाते हैं उनको यशोदाने अपना पुत्र माना ॥ ४५ ॥ राजा परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीसे कहा—भगवन् ! नन्दगोपने कौन ऐसा सुकृत किया था ? और महाभागा यशोदाने ही कौन ऐसा महाफलदायी पुण्य कर्म किया था जिससे हरिभगवान्‌ने उनका दूध पिया ? ॥ ४६ ॥ जिनपर प्रसन्न होकर हरिने अवतार लिया वे पिता माता वसुदेव देवकी भी हरिकी अद्भुत बाललीलाको देखकर न नेत्र सफल कर सके । हरिकी लीला त्रैलोक्यके पाप मिटानेवाली है, उसको कविलोग अबतक श्रद्धाभक्तिपूर्वक गाते हैं । तब जिन्होने उस लीलाको साक्षात् देखा उनके भाग्यका क्या कहना है ? ॥ ४७ ॥ शुकदेवजीने कहा—ब्रह्माकी आज्ञासे द्रोण नाम वसु देवताने धरा नाम अपनी स्त्रीसहित पृथ्वीपर अवतार लिया । उस समय द्रोणने ब्रह्मासे कहा कि—भगवन् ! हम पृथ्वीमें जन्म लेंगे, किन्तु कृपा करके यह वर दीजिये कि देवदेव विश्वनायक हरिमें हमारी अचल भक्ति हो, जिससे लोग सहजमें ही दुर्गतिसे छूट जाते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्माने कहा– ऐसाही होगा । वही महायशस्वी द्रोण वसु पृथ्वीपर नन्दगोप हुए और उनकी स्त्री धरा यशोदा हुईं ॥ ५० ॥ इसीकारण दोनो स्त्री-पुरुषोंकी पुत्ररूपसे उत्पन्न हरिमें अत्यन्त भक्ति (प्रेम) हुई । अन्यान्य गोपी और गोप भी हरिसे प्रेम करते थे ॥ ५१ ॥

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥
सहरामो वसँश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

अन्तर्यामी कृष्ण भगवान् ब्रह्माके वाक्यको सत्य करनेके लिये बलदेवजी सहित व्रजमें रह कर अपनी लीलाओंसे व्रजवासियोंको प्रसन्न करनेलगे ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

कृष्णका उलूखलबन्धन

श्रीशुक उवाच-एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ॥
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—एक दिन घरकी दासियाँ और और कामोंमें लगी हुई थीं इससे नन्दरानी यशोदा आप ही दही मथनेलगीं ॥ १ ॥ जो जो कृष्णकी बाललीलाएँ कही जाचुकी हैं उनको याद कर कर के दही मथतेसमय यशोदाजी गानेलगीं ॥ २ ॥ यशोदाजी कटिबन्धनयुक्त रेशमीवस्त्र कमरमें पहनी हुई थीं। मथतेमें उनके दोनो स्तन हिलते जाते थे और उनमें पुत्रस्नेहके कारण दूध भर आयाथा। रस्सीके बार बार खींचनेसे थकेहुए दोनो बाहुओंमें कङ्कण और कानोंमें कुण्डल हिलते जाते थे, मुखमें पसीना निकल आया था और चोटीसे गुँथी हुई मालतीकी माला खुल खुल कर गिर रही थीं ॥ ३ ॥ यशोदाजी इस दशासे दही मथ रही थीं, उस समय स्तन्यपानकी इच्छा करके कृष्णचन्द्र आये और माताको प्रसन्न करतेहुए मथानी पकड़कर उन्होने दही मथनेसे रोका ॥ ४ ॥ यशोदाने पुत्रको गोदमें लेलिया और स्नेहपूर्ण मुसकानसे युक्त मनोहर (पुत्रका) मुख देखती हुई, स्नेहके कारण जिससे आप ही आप दूध निकल रहा है वह स्तन उनके मुखमें देकर दूध पिलानेलगीं। इतनेमें चूल्हेपर चढ़ाहुआ दूध उफनानेलगा, अतएव यशोदाने कृष्णको वैसे ही छोड़ दिया और आप दूध उतारनेके लिये जल्दीसे गईं,[१] कृष्णचन्द्र उस समय तृप्त नहीं हुए थे, इसीसे उनको क्रोध आगया। कुपित कृष्णने फरक रहे अरुण ओंठ दाँतोंसे दबाकर पास ही पड़ेहुए लोढ़ेसे दहीका माठ फोड़डाला और झूठमूठ रोतेहुए वहाँसे चलदिये एवं भीतर जाकर एकान्तमें धरा हुआ मक्खन खानेलगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ यशोदाजी तपेहुए दूधके कढ़ावको उतारकर पूर्वस्थानमें आईं तो देखा दहीका भाँड़ा फूटा पड़ा है और कृष्णजी वहाँपर नहीं हैं; अतएव 'यह काम कृष्णने ही किया है'-यह जानकर हँसनेलगीं ॥७॥ यशोदाने घूमकर घरमें देखा तो कृष्णजी उलूखल (ओखली) उलटा कर उसपर चढ़ेहुए छींकेपरका माखन मनमाना आप खाते हैं और बानरोंको लुटा रहे हैं एवं चोरी करनेके कारण चारो ओर चकित दृष्टिसे देखते जाते हैं। यह देखकर यशोदाजी दबे पैरों पीछेसे पुत्रके पास पहुँच गईं, फिर कर कृष्णने देखा-छड़ी लिईं पकड़नेके लिये माता आ पहुँची है। तब जैसे कोई भयभीत हो

१ दूधका आगमें गिरना पुत्रके लिये अनिष्ट मानागया है, इसीसे यशोदाने कृष्णको छोडदिया और दौडकर पहले दूधको उतारा।

वैसे उलूखलसे उतरकर नन्दनन्दन भागे । योगियोंका मन, तपके द्वारा तदाकारमें परिणत होकर भी जिनको नहीं पाता उन्ही कृष्णके पीछे पकड़नेकी इच्छासे यशोदाजी दौड़ीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ विचलित विशाल नितम्बोंके भारसे यशोदाजी बहुत दूर न दौड़ सकीं । वेगसे दौड़नेमें हिल रहे शिथिल केश-बन्ध (जूड़े) से खिसककर अगणित फूछे गिरनेलगे और वह कृष्णके पीछे दौड़नेलगीं । थोड़ी ही दूर जाकर यशोदाने कृष्णको पकड़ लिया ॥ १० ॥ यशोदाने देखा, स्वयं अपराध करनेके कारण भीत होकर कृष्णजी रोरहे हैं, हाथोंसे दोनो आँखें मलते जाते हैं-जिससे मुखभरमें अञ्जनकी स्याही फैलगई है । दोनो नेत्र भयसे विह्वल हो रहे हैं । यशोदाने कृष्णके दोनो हाथ पकड़ लिये और छड़ी दिखाकर धमकाती डराती हुई डाँटनेलगीं ॥ ११ ॥ पुत्रको अधिक डरा हुआ देख पुत्रवत्सला यशोदाने हाथसे छड़ी फेंक दी और उन्हें बाँधनेके लिये उद्यत हुईं, क्योंकि वह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको नहीं जानती थीं । जिनका भीतर या बाहर अथवा पूर्व या पर नहीं है, और जो स्वयं जगत्का पूर्व और पर हैं, एवं जगत्के भीतर तथा बाहर विद्यमान और जगन्मय हैं उन् बालवेष अव्यक्त अधोक्षज भगवान्‌को अपना पुत्र मानकर, यशोदाजी, साधारण नरशिशुके समान रस्सीसे उलूखलमें बाँधनेलगीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ यशोदाजी अपने अपराधी बालकको जिस रस्सीसे बाँध रही थीं वह गाँठ देनेमें दो अङ्गुल छोटी पड़गई तब और रस्सी लाईं ॥ १५ ॥ वह रस्सी भी जब दो अङ्गुल छोटी पड़ी तब यशोदाने और एक रस्सी लाकर उसमें जोड़ी। वह भी दो अङ्गुल छोटी पड़ी, उससे भी कृष्ण न बँधसके । इसीप्रकार अपने घरकी और अन्यान्य गोपियोंके यहाँकी भी सब रस्सियाँ ला ला कर यशोदाने जोड़ीं, पर किसीभाँति कृष्णको न बाँध सकीं। यह देखकर स्वयं यशोदाको विस्मय और लज्जा हुई एवं और और गोपियाँ भी बहुत ही विस्मित हुईं ॥१६॥१७॥ बाँधनेके लिये अधिक प्रयास करनेके कारण यशो-दाका शरीर पसीनेसे तर होगया, वेणीके सब फूल खिसक खिसक कर गिर गये और केश बिखर गये । माताको थका देख कृष्णचन्द्रको दया आई और वह आप ही बँध गये ॥ १८ ॥ महाराज ! हरि भगवान् सदैव आत्मवश अर्थात् स्वतन्त्र ही हैं और ब्रह्मादि ईश्वरोंको लेकर सब सांसारिक चराचर पदार्थ उन्हीके अधीन हैं; तथापि इस घटनासे "मैं भक्तोंके वशमें हुँ" यह कृष्णचन्द्रने दिखा दिया ॥ १९ ॥ मुक्तिदाता कृष्णके इसप्रसादको कभी ब्रह्मा शिव या हृदयवासिनी लक्ष्मीने भी नहीं पाया, पर यशोदाजीने प्राप्त कर लिया ॥ २० ॥ गोपिकानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको भक्तगण जैसे सहजमें पा जाते हैं वैसी सुगमतासे आत्मज्ञानी ज्ञानीजन नहीं पा-सकते ॥ २१ ॥ कृष्णको ओखलीमें बाँधकर यशोदाजी घरके कामकाज करनेमें लग गईं । इधर कृष्णकी दृष्टि नन्दभवनके द्वारपर अवस्थित अतिप्राचीन यमलार्जुन वृक्षोंपर पड़ी । ये दोनो वृक्ष पूर्व जन्ममें यक्षपति कुवेरके पुत्र थे ॥ २२ ॥

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥

मदमत्त होनेके कारण नारदके दिये हुए शापसे ये अत्यन्तसुन्दर मणिकूबर; नलग्रीव नाम कुबेरतनय वृक्ष हो गये थे ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दमश अध्याय

यमलार्जुन वृक्षोंका भञ्जन

राजोवाच–कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥
यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! दोनो कुबेरके पुत्रोंने किसकारण शाप पाया? और भगवद्भक्त, शान्तस्वभाव देवऋषि नारदको ही कैसे निन्दनीय क्रोध हुआ? ॥ १ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! कुबेरके दोनो पुत्र रुद्रके अनुचर थे, इसकारण उनको बड़ा ही गर्व था। वे मदपानकर मतवाले हो कैलास पर्वतके रमणीय उपवन और मन्दाकिनी (स्वर्गकी गङ्गा) के तटपर घूमा करते थे ॥ २ ॥ वारुणी मदिराके मदसे सदैव उनके नेत्र लाल रहते थे। एकसमय ऐसीही दशामें झूमतेहुए दोनो कुबेरके पुत्र फूलेहुए उद्यानमें विचर रहे थे, उनके साथ स्त्रियाँ भी थीं, जो मनोहर स्वरसे गाती जाती थीं ॥ ३ ॥ दोनो कुबेरतनय यों विचरतेहुए जलकेलि करनेकी इच्छासे कमलावलीमण्डित गङ्गाजलमें घुसपड़े और जैसे गजराज हथनियोंके साथ क्रीड़ा करे वैसे ही उन सुरसुन्दरियोंके साथ जलविहार करनेलगे ॥ ४ ॥ उधर अकस्मात् घूमतेहुए देवऋषि नारदजी वहाँ पहुँचे। उनकी दशा देखकर नारदजी जान गये कि ये दोनो मतवाले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि नारदजीको देख शापके भयसे स्त्रियोंने तो बाहर आकर जल्दीसे लज्जित हो अपने अपने वस्त्र पहन लिये, परन्तु वे दोनो वैसे ही नंगे खड़े रहे ॥ ६ ॥ नारदजीने देखा; यक्षराज कुबेरके पुत्र मदिरा पीकर मत्त हो रहे हैं और श्रीमदसे भी अन्धे हो रहे हैं। तब उनपर (वास्तवमें) अनुग्रह करके शाप देते हुए नारदजी बोले ॥ ७ ॥ नारदजीने कहा—अहो! ऐश्वर्यके मदमें स्त्रीसङ्ग, द्यूतक्रीड़ा (जुएँका खेल) और मदिरापानकी ही अधिकता होती है; इसीलिये ऐश्वर्यमदसे विषयासक्त पुरुषकी बुद्धि बिल्कुल ही भ्रष्ट होती है। सत्कुलमद, विद्यामद आदि अनेक मदोंमें या राजस

कार्य हास्य आदिमें इतना मोह नहीं होना ॥ ८ ॥ ऐश्वर्यमद होनेपर ही अजितात्मा, अविचारशील निठुर जन, इस कौनसे भी एकदिन अवश्य नष्ट होनेवाले शरीरको जरामरणहीनसा मानकर पशुहत्या करते हैं ॥ ९ ॥ यह नाशशील शरीर नरदेव या भूदेव कहलाकर भी अन्तको कृमिरूप, विष्टारूप या भस्मरूप हो जाता है। तब जो कोई इस शरीरके लिये प्राणियोंसे द्रोह करता है वह शायद सच्चे स्वार्थ (अपने कर्तव्य) को नहीं जानता ॥ १० ॥ इसशरीरपर—अन्नदाता, पिता, माता, मातामह, बलवान्, मोलसे लेनेवाले, कुत्ता या अग्नि—इनमेंसे किसका स्वत्व है—सो नहीं जानाजाता ॥ ११ ॥ यह शरीर अव्यक्त वस्तुसे उत्पन्न होकर अन्तको उसीमें लीन हो जायगा। जब यह शरीर ऐसी साधारण वस्तु है तब असत् पुरुषके सिवा कौन विद्वान् इसे आत्मा मानकर इसके लिये प्राणियोंकी हिंसा करेगा ? ॥ १२ ॥ जो असत् पुरुष लक्ष्मीके मदसे अन्धा हो रहा है उसको दिव्य दृष्टि देनेवाली दरिद्रता ही परम अंजन है। क्योंकि जब वह दरिद्र होता है तो अपने साथ तुलना करके सभीको अपनेसे श्रेष्ठ मानता हैं ॥ १३ ॥ जिसके अङ्गमें कभी काँटा लगा है और उसकी व्यथाका अनुभव हो चुका है वह दूसरेकी व्यथाको मुखमलिनता आदि चिन्होंसे अपनी ही व्यथाके समान मानता है और नहीं चाहता कि किसीको ऐसी व्यथा हो; पर जिसके कभी काँटा नहीं लगा वह दूसरेकी व्यथाका अनुभव नहीं कर सकता, अतएव दूसरेका दुःख दूर होनेमें सहायता भी नहीं करता ॥१४॥ दरिद्र पुरुषके मनमें "मैं हूँ" "मेरा है" इसप्रकारका अहंभाव नहीं रहता, वह सब प्रकारके मदोंसे विमुक्त रहता है। उसे अनायास जो कष्ट मिलता है वही उसका परम तप है ॥ १५ ॥ अन्नहीन दरिद्र पुरुषका शरीर क्षुधा सहनेसे निर्बल और क्षीण हो जाता है, इन्द्रियोंकी भी प्रबलता जाती रहती है; जिससे हिंसाकी प्रवृत्ति भी निवृत्त हो जाती है ॥ १६ ॥ समदर्शी साधुगण दरिद्रोंसे ही मिलते हैं। उन साधुओंके सङ्गसे सब प्रकारकी तृष्णा त्यागकर दरिद्र पुरुष शीघ्र ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ १७ ॥ समदर्शी एवं मुकुन्द भगवान्के चरणोंकी चाह रखनेवाले साधुजन, धनगर्वित एवं असत्का आश्रय लेनेवाले असाधुओंसे क्यों मिलें ? वे तो साधुजनोंकी दृष्टिमें उपेक्षणीय हैं ॥१८॥ अतएव मैं इन मदमत्त, ऐश्वर्यके गर्वसे अन्धे, स्त्रीजित, अजितात्मा यक्षोंके अज्ञानकृत अहंकारको नष्ट कर दूँगा ॥ १९ ॥ ये लोकपाल कुवेरके पुत्र हैं, किन्तु अज्ञानमें इतना निमग्न हो रहे हैं एवं दुष्ट मदसे ऐसे अन्धे हो रहे हैं कि इनको अपने नग्न होनेका भी ध्यान नहीं है ॥ २० ॥ इसलिये इनको स्थावर (जड़) योनि मिलनी चाहिये, जिसमें फिर कभी ऐसे मदान्ध न हों। किन्तु मेरे अनुग्रह और प्रसादसे जड़ योनिमें भी इनकी स्मरणशक्ति न नष्ट होगी अर्थात् इस जन्मकी याद बनी रहेगी ॥ २१ ॥ एकसौ दिव्य वर्ष बीतनेपर हरि भगवान्के

दर्शनको पावेंगे और हरिभक्ति प्राप्त करके फिर इसी स्वर्गलोकमें आजायँगे ॥२२॥ शुकदेवजी कहते हैं—इतना कहकर देवर्षि नारदजी नारायण भगवान्के आश्रमको चले गये, एवं नारदके शापसे नलकूबर और मणिग्रीव नाम दोनो कुवेरपुत्र यमलार्जुन वृक्ष हो गये ॥ २३ ॥ भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीके वचनोंको सत्य करनेके लिये भगवान् कृष्णचन्द्रजी, जहाँ यमलार्जुनवृक्ष थे वहाँ-पर धीरे धीरे पहुँचे ॥२४॥ "देवर्षि नारद मेरे प्रियतम भक्त हैं, ये यमलार्जुन वृक्ष भी कुबेरके पुत्र हैं; अतएव महात्मा नारदने जो कुछ भविष्यवाणी कही है उसे मैं पूर्ण करूँगा ॥ २५ ॥ यह विचार कर भगवान् कृष्णचन्द्र उन दोनो वृक्षोंके बीचसे होकर दूसरी ओर निकले, उलूखल बेंड़ा होकर अड़गया। तब बालरूप दामोदरने उलूखलसहित रस्सीको बलपूर्वक अपनी ओर खींचा । हरिके वि-क्रमसे दोनो महाप्राचीन वृक्ष जड़से उखड़कर महाप्रचण्ड शब्द करतेहुए पृथ्वी-पर गिर पड़े और उनके पत्ते, शाखा, प्रशाखा आदि सब अङ्ग वेगसे हिलगये ॥ २६ ॥ २७ ॥ महाराज! दोनो वृक्षोंके गिर पड़नेपर उनसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्धपुरुष निकले, उनकी विमल कान्तिसे सब दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। उन निर्मल कुवेरके पुत्रोंने सम्पूर्ण जगत्के स्वामी कृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर यों कहा ॥ २८ ॥ "हे कृष्ण हे कृष्ण ! आप महा-योगी हैं। आप बालक नहीं हैं, बरन् आदिम पुरुष परब्रह्म हैं। ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणलोग, इस विश्वको आपका व्यक्त व अव्यक्त (स्थूल व सूक्ष्म) रूप जानते हैं ॥ २९ ॥ एक आप ही सब प्राणियोंके देह, प्राण, आत्मा और इन्द्रियोंके ईश्वर हैं। आप ही अव्यय, ईश्वर, भगवान्, विष्णु हैं। काल आपकी लीलामात्र है। आप ही महत्तत्त्व (कार्यस्वरूप) हैं। आप ही त्रिगुणमयी सूक्ष्म प्रकृति (शक्ति-स्वरूप) हैं, आपही पुरुष (जीवात्मा) हैं, क्योंकि वह आपका ही अंश है। आप ही सब क्षेत्रज्ञ जीवोंके अध्यक्ष--अन्तर्यामी ब्रह्मस्वरूप हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे विभो! आप द्रष्टा हैं, इसीलिये दृश्यभावको प्राप्त एवं प्रकृतिके रूपान्तर इन्द्रियादि आपतक नहीं पहुँच सकते। सब जीवोंकी उत्पत्तिके पहलेसे ही आपकी सत्ता वर्त-मान है; अतएव देहादिसे युक्त कौन जीव आपको जान सकता है ॥ ३२ ॥ आप भगवान् वासुदेव, विधाता और ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आपसे ही प्रकाशित गुणसमूह आपके तत्त्वको आच्छन्न किये हुए है, आपको प्रणाम है॥ ३३ ॥ आप यद्यपि शरीररहित हैं तथापि अवतार लेते हैं और अलौकिक तथा अत्यन्त आतिशय्ययुक्त अनुपम वीर्य देखकर देहधारियोंमें आपका अवतार जाना जाता है ॥ ३४ ॥ सो इस समय संसारको उन्नत और निर्भय करनेके लिये सबके स्वामी और सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले आपका यह पूर्णावतार हुआ है ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप ! हे परममङ्गलमय ! आपको प्रणाम है। आप शान्तस्वरूप,

वासुदेव और यदुपति हैं—आपको वारंवार प्रणाम है ॥ ३६ ॥ हे भूमन्! हम आपके दासानुदास हैं। ऋषिके अनुग्रहसे हमको आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ हैं ॥३७॥ भगवन्! हमारी वाणी आपके गुणानुवाद गानेमें लगी रहे, हमारे कान आपकी कथा सुना करें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और चित्त आपके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें तथा शिर आपकी निवासभूमि जो सम्पूर्ण जगत् है उसको प्रणाम करनेमें एवं दृष्टि आपकी मूर्ति जो साधुजन हैं उनके दर्शनमें लगी रहे ॥ ३८ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! रस्सीसे ओखलीमें बँधेहुए गोकुलेश्वर कृष्णभगवान्, इसप्रकार स्तुति करनेवाले दोनो यक्षोंसे हँसकर कहनेलगे कि "मुझे पहले हीसे विदित था कि तुम दोनो ऐश्वर्यके मदसे अन्धे हो रहे थे, तब देवर्षि नारदने अनुग्रह करतेहुए शाप दिया, जिससे तुम्हें वृक्ष होना पड़ा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जैसे सूर्यका दर्शन करनेपर आँखें खुल जाती हैं—वैसे ही अपने धर्मपर चलनेवाले आत्मज्ञानी और मुझमें दृढ़तापूर्वक मन लगानेवाले सज्जनोंका साक्षात् होनेपर कोई बन्धन नहीं रहता और ज्ञानके नेत्र खुल जाते हैं ॥ ४१ ॥ इसलिये अब हे नलकूवर! और मणिग्रीव! तुम दोनो अपने घरको जाओ। तुम्हारा मन मुझमें मग्न रहेगा, तुम्हारी भक्ति मुझमें हुई, अवश्य ही सब लोग जिसकी कामना करते हैं वह मोक्षरूप परमपदार्थ तुम पागये ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच—इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—इसप्रकार भगवान्के कहनेपर दोनो यक्षोंने उलूखलमें बँधेहुए कृष्णकी परिक्रमा की और वारंवार प्रणाम किया तथा उनसे विदा होकर उत्तर दिशाको चलेगये ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय

वत्सासुर और बकासुरका वध

श्रीशुक उवाच—गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—हे कुरुकुलतिलक! दोनो वृक्षोंके गिरनेसे ऐसा घोर शब्द हुआ कि नन्दादिक गोप सब "क्या वज्र गिरा!"—यह आशङ्का करके वहाँपर आ पहुँचे ॥ १ ॥ उन्होने आकर देखा कि दोनो महावृक्ष जड़से उखड़े

पृथ्वीपर पड़ेहुए हैं। यद्यपि ओखली अड़ाकर वृक्षको गिरानेवाले कृष्णचन्द्र रस्सीसे ओखलीमें बँधेहुए सामने ही खड़े थे, तथापि वे लोग-"यह न निश्चय करसके कि किसने वृक्षोंको गिरा दिया। सब लोग—"यह किसका काम है? कैसे ये पुराने वृक्ष उखड़ गिरे? कैसे अचरजकी बात है?" इत्यादि कहतेहुए उत्पातके खटकेसे घबड़ाकर इधर उधर दौड़कर उसका कारण खोजनेलगे। वहाँ जो लड़के खेल रहे थे उन्होने कहा कि "इसी कान्हाने वृक्षोंके बीचमें ओखली डालकर जोर लगाया सो ये वृक्ष गिरपड़े। इन वृक्षोंके नीचेसे दो दिव्य पुरुष भी निकले थे" ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ किन्तु गोपोंने लड़कोंके कहनेपर विश्वास नहीं किया और कहा कि इतना छोटा बालक इन वृक्षोंको नहीं गिरा सकता; कुछ लोगोंको संदेह भी हुआ कि कदाचित् ऐसा ही हो ॥ ५ ॥ नन्दने अपने पुत्रको देखा कि रस्सीसे बँधा हुआ उलूखलको घसीटता हुआ आरहा हैं। यह देखकर नन्दजी हँसे और कृष्णको ओखलीके बन्धनसे छुड़ा दिया ॥ ६ ॥ इसीप्रकार श्रीकृष्णजी बाललीलाएँ करनेलगे। कभी गोपियाँ ताली वजाकर नाचनेके लिये प्रोत्साहित करतीं तो भगवान् साधारण बालकोंके समान नाचने लगतेथे और कभी भोले भावसे गोपियोंके वश होकर ऊँचे स्वरसे गातेथे। यों ही कठपुतलीकी भाँति कृष्णचन्द्रजी गोपियोंका कहा करतेथे ॥ ७ ॥ कभी गोपियोंके कहनेसे—जैसे उठालानेकी सामर्थ्य नहीं है-ऐसा भाव प्रकट करतेहुए पीठ (पीढ़ा) या खड़ाऊँ उठाते अथवा अपने आत्मीयोंको प्रसन्न करतेहुए दोनो हाथ फैलाकर नृत्य करते ॥ ८ ॥ अपनी यथार्थ महिमा जाननेवाले लोगोंको "मैं अपने भक्तोंके वशमें हूँ"—यह दिखातेहुए श्रीकृष्णचन्द्रजी इसीप्रकार अपनी बाललीलाओंसे व्रजवासियोंको प्रसन्न करनेलगे ॥ ९ ॥ महाराज! एक दिन एक फल बेंचनेवाली नन्दके द्वारपर आकर कहने लगी की—"फल लेओ फल"। यह सुनकर सब फल देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् हाथोंमें अन्न लेकर फल लेनेके लिये उसके पास गये। राहमें हरिके हाथोंसे अन्न गिरता गया। उस फल बेंचनेवालीने भगवानूके दोनो हाथ फलोंसे पूर्ण कर दिये और वैसे ही उसकी टोकरी भी रत्नोंसे पूर्ण होगई ॥ १० ॥ ११ ॥ यमलार्जुन उखाड़नेके बाद एक दिन कृष्णचन्द्र यमुनाके किनारे खेल रहे थे। उसी समय रोहिणीजी उनको घर आनेके लिये पुकारनेलगीं। किन्तु खेलनेमें तत्पर दोनो पुत्र जब उनका पुकारना सुनकर भी न आये, तब पुत्रवत्सला रोहिणीने यशोदाको पुत्रोंको बुलानेके लिये भेजा। उसदिन कृष्ण भगवान् बलदाऊसहित बहुत दिन चढ़ेतक खेलते रहे-यह देख यशोदाजी स्वयं उन्हे बुलानेके लिये चलीं। पुत्रस्नेहसे उनके स्तनोंमें दूध भर आया। यशोदाजी ऊँचे स्वरसे यों कहकर कृष्णको बुलानेलगीं कि "हे कृष्ण! हे कमलनयन पुत्र! आओ, दूध पियो, बहुत खेल चुके, अब भूख लगी होगी, खेलते खेलते

थक गये हो। हे बलदाऊ! अपने छोटे भाई कृष्णको साथ लेकर शीघ्र आओ। तुम दोनोने बहुत सबेरे कलेवा किया था, अब तुम्हारे भोजन करनेका समय बीतचला है, आओ आओ, भोजन करो। व्रजपति नन्दजी चौकपर बैठे तुम्हारे आनेकी राह देख रहे हैं। आओ हमको प्रसन्न करो और ये तुम्हारे साथी बालक अपने अपने घर जावें। वत्स कृष्ण! तुम्हारे अङ्गोंमें धूल भर गई है, आओ स्नान करो। आज तुम्हारे जन्मनक्षत्रका दिन है, स्नान आदिसे पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो। अपने साथियोंको देखो। उनकी माताओंने स्नान कराकर उनको उत्तम उत्तम कपड़े और गहने पहनाये हैं। तुम भी स्नान करके अच्छे अच्छे वस्त्र व आभूषणोंसे भूषित होकर भोजन करनेके उपरान्त फिर आकर खेलना"। इसभाँति स्नेहमयी माता यशोदाजी, ब्रह्मादिवन्दित कृष्णचन्द्रको पुत्रभावसे हाथ पकड़कर बलदाऊके सहित घर ले गईं और सब माङ्गलिक कृत्य, देवपूजन आदि करके तथा पुत्रोंको भोजन कराकर अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ महाराज! व्रजमें नित्य नवीन उत्पात होते देख नन्द आदि बूढ़े बूढ़े सब गोप एकत्रित हुए और विचार करनेलगे कि "गोकुलमें किसी प्रकारका अमङ्गल न हो—इस लिये हम लोगोंको क्या करना चाहिये?" ॥ २१ ॥ उस सभामें उपनन्द नाम एक ज्ञान और अवस्थामें वृद्ध गोप थे, वह देश, काल और कार्यका तत्त्व भलीभाँति समझते थे, और बलदेव तथा कृष्णके परम हितकारी थे ॥ २२ ॥ उपनन्दने कहा की "यदि गोकुलका हित चाहते हैं तो हम लोगोंको यहाँसे उठजाना चाहिये, क्योंकि यहाँ नित्य नवीन उत्पात होते हैं; जिनसे बालकोंको बड़ा ही भय है ॥२३॥ देखो, बालक कृष्ण किसी तरह बालघ्नी राक्षसी(पूतना) के हाथोंसे बचगया, और निश्चय ही यह हरिकी कृपा थी जो इसके ऊपर छकड़ा नहीं गिरा। फिर चक्रवात(बवंडर)रूपधारी राक्षस आकाशमें ले गया, किन्तु उस विपत्तिसे भी बचगया, देवतोंने बड़ी रक्षा की, क्योंकि वह दैत्य सहित इस बालकके एक भारी शिलाके ऊपर गिरा था ॥ २४ ॥ २५ ॥ दोनो वृक्षोंके बीचमें दबकर जो बालक कृष्ण नहीं मरा—इसमें भी अच्युत भगवान्‌ने ही रक्षा की—ऐसा समझना चाहिये ॥ २६ ॥ अतएव जबतक और कोई ऐसा ही उत्पातरूपी अरिष्ट व्रजपर न आवे तबतक पहलेही बालकोंको लेकर सब गोपोंसहित हम व्रजको छोड़ देंगे और अन्यत्र जाकर निवास करेंगे ॥ २७ ॥ यहाँसे थोड़ी ही दूरपर वृन्दावननाम एक पवित्र वन है, वहाँ पर्वत है, घास और तृण बहुत हैं, अनेक लताएँ भी हैं। वहाँ नवीन नवीन हरे भरे छोटे छोटे वन हैं, उनमें पशुगण सुखपूर्वक चरेंगे; गऊ; गोपी और गोपगण भी सुखसे रहेंगे ॥२८॥ सो यदि आपलोगोंको रुचे तो चलो हम सब अभी चलें। विलम्बकी आवश्यकता नहीं है, गऊ बछड़ोंको आगे करो और

अपने अपने छकड़े जोत लो" ॥ २९ ॥ यह सुनकर सब गोपलोग एकमत होकर उपनन्दकी प्रशंसा करनेलगे और उसी समय अपने अपने छकड़े जोतकर उनपर अपनी अपनी सामग्री रखकर वृन्दावनकी ओर चलदिये । राजन् ! गोपोंने अपना अपना सामान छकड़ोंपर लादा और बूढ़े बालक व स्त्रियोंको भी उनपर बिठलाया, एवं आप धनुष बाण आदि अस्त्र शस्त्र ले गऊ बछड़ोंको आगे कर सींग और तूर्य (तुरुही) बजाते कुरुपुरोहितोंसहित चल दिये ॥३०॥३१॥३२॥ गोपियाँ सब रथोंपर चढ़कर प्रसन्नतापूर्वक कृष्णकी बाललीलाओंको गातीहुई उनके साथ चलीं। उनके कमनीय कुचमण्डल कुङ्कुमरागसे रञ्जित थे, कानोंमें कनककुण्डल डोलते जाते थे और अङ्गोंमें चित्र विचित्र वस्त्र सुशोभित थे एवं गलेमें कण्ठा, पँचलड़ी, हमेल आदि आभूषणोंकी शोभा देखने ही योग्य थी ॥ ३३ ॥ यशोदा और रोहिणी भी एक छकड़ेपर कृष्ण और बलदाऊसहित विराजमान थीं और बड़े चावसे पुत्रोंकी बाललीलाएँ सुनती जाती थीं ॥ ३४ ॥ महाराज ! सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाले वृन्दावनमें पहुँचकर गोपोंने अपने अपने छकड़े अर्धचन्द्राकारसे खड़े कर दिये और वहीं गोप गोपियोंके बसनेका स्थान बनाया । राजन् ! बलदाऊ और कृष्ण दोनो भाई वृन्दावन और यमुना नदीके रमणीय किनारे देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ राजन् ! बलदाऊ और कृष्णचन्द्र इसीप्रकार अपनी बाललीलाओं और मधुर वाक्योंसे व्रजवासियोंको आनन्द देतेहुए कुछ कालमें वत्सपाल हो गये अर्थात् बछड़ोंको चराने ले जानेलगे ॥ ३७ ॥ कृष्ण और बलदाऊ अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषणोंसे विभूषित होकर व्रजभूमिके निकट ही ग्वालबालोंके साथ बछड़े चरातेहुए भाँति भाँति के खेल खेलनेलगे ॥३८॥ कभी बाँसुरी बजाते और कभी क्षेपण यन्त्र (गोफ) में रखकर आँवले आदिके फल फेंकते, और कभी पैरोंमें घुँघरू बाँधे उनको बजाते थे । कभी कम्बल उढ़ाकर ग्वाल बालोंको बैल बनाते और आप भी बैल बनते तथा बैलोंके समान नाद करके परस्पर युद्ध करतेथे । कभी साधारण बालकोंके समान पक्षियों व पशुओंकी बोलीकी नकल करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ एक दिन कृष्ण और बलदाऊ वयस्य बालकोंसहित यमुना के किनारे अपने अपने बछड़ोंको चरा रहे थे । इसीसमय उनको मारनेके विचारसे एक दैत्य आया ॥४१॥ हरिने देखा कि वह दुष्ट दैत्य बछड़ेके रूपसे बछड़ोंके झुंडमें आकर मिल गया । भगवान्ने बलदेवको इशारेसे दिखा दिया और जैसे कुछ जानते ही नहीं इसभाँति धीरे धीरे उसके पास पहुँच गये । पीछेसे जाकर भगवान्ने पूँछके सहित उसके पिछले दोनो पैर पकड़ लिये और कई बार शून्यमें घुमाकर एक कैथेके वृक्षपर दे मारा, जिससे कि उसके प्राण निकल गये । उसके भारी शरीरके आघातसे कई कैथेके वृक्ष भी टूटकर गिर पड़े और वह भी गिर पड़ा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह देख सब ग्वालबाल विस्मित हो 'वाह वाह' कहकर कृष्णकी प्रशंसा करनेलगे

और देवतालोग प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ४४ ॥ सब लोगोंका पालन करनेवाले कृष्ण और बलदाऊ वत्सपाल होकर नित्य प्रातःकाल कलेवा लेकर वनमें जाने और वहाँ बछड़ोंको चरानेलगे ॥ ४५ ॥ एक दिन सब ग्वालबाल जलाशयके निकट जा कर अपने अपने बछड़ोंको जल पिलानेलगे । उन्होने बछड़ोंको जल पिलाकर आप भी जलपान किया ॥ ४६ ॥ उसी समय उन्होने देखा की वहाँपर एक बड़ा भारी जीव बैठा हुआ है, जैसे वज्रके प्रहारसे फटकर किसी पर्वतका शिखर गिर पड़ा हो । उसे देखकर सब ग्वालबाल बहुत ही भयभीत हुए ॥ ४७ ॥ वह जीव बकासुर नाम महादैत्य था, जो बगलेका रूप धरकर आया था । उस तीक्ष्ण चोंचवाले महाबली असुरने सहसा आकर कृष्णचन्द्रको निगल लिया ॥४८॥ बकासुरके द्वारा कृष्णको निगला गया देख, बलदाऊ आदि ग्वालबाल, प्राणके विना इन्द्रियोंके समान, अचेत हो गये ॥४९॥ बकासुरके कण्ठमें जाकर कृष्णचन्द्रजी अग्निके समान उसके तालूको जलानेलगे, तब ग्वालबालरूप जगत्के गुरु और पिता कृष्णको उसी समय उसने उगल दिया और कृष्णको अक्षतशरीर देख कुपित हो फिर चोंच उठाकर मारने दौड़ा ॥ ५० ॥ इसप्रकार आतेहुए कंसके सखा बकासुरकी चोंचको सज्जनोंके स्वामी कृष्णने दोनो हाथोंसे पकड़ लिया और देवगणको प्रसन्न करतेहुए सब बालकोंके सामने ही लीलापूर्वक तृणके समान बीचसे फाड़ डाला ॥ ५१ ॥ उस समय बकासुरको मारनेवाले कृष्णपर देवतालोग नन्दनवनके मल्लिकादिक पुष्पोंकी वर्षा करनेलगे और नगाड़े शङ्ख आदि बजातेहुए स्तुति करनेलगे । यह देखकर सब ग्वालबालोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ५२ ॥ कृष्णजी जब बकासुरके मुखसे छूटकर पास आये तब प्राणोंके आनेपर इन्द्रियाँ जैसे सचेत हो जाती हैं वैसे सब बलदाऊ आदि बालक प्रसन्न होकर उनसे गले मिले । फिर सब लोग अपने अपने बछड़े ले ब्रजमें आये और वहाँ आकर सब चरित्र कह सुनाया ॥ ५३ ॥ बकासुरवधका वृत्तान्त सुनकर गोप व गोपियोंको बड़ा ही विस्मय हुआ और वे अत्यन्त प्रेम व आदरसे, जैसे कोई मरकर जिये और उसके इष्टमित्र उसको बड़ी चाह और आग्रहके साथ देखें वैसे उत्सुकतापूर्वक एकटक कृष्णचन्द्रको देखनेलगे ॥ ५४ ॥ सब नन्दादि गोप कहनेलगे कि "अहो, इस बालककी बहुत सी मौतें आ आ कर टल गईं ! किन्तु उन्ही मारनेकी इच्छासे आये लोगोंका अनिष्ट हुआ; क्यों कि उन्होने औरका बुरा चेता था ॥ ५५ ॥ अहो, बड़े बड़े घोर दुष्ट दानवादि इसे मारनेकी इच्छासे आकर स्वयं ही आगमें पतंगके समान नष्ट हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ अहो, ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके वचन कभी असत्य नहीं होते, महर्षि गर्ग जैसा कह गयेथे वैसा ही सब होते देख पड़ता है" ॥ ५७ ॥ इसीप्रकार नन्दआदि गोपगण आनन्दपूर्वक कृष्ण बलदाऊके चरित्रोंकी चर्चा करके संसारकी वेदनासे विमुक्त रहकर सुखसे जीवन व्यतीत करनेलगे ॥ ५८ ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५९ ॥

इसीभाँति व्रजमें 'निलायन' 'सेतुबन्ध' और 'मर्कटोत्प्लवन' आदि लड़कोंके खेल खेलते खलते कृष्ण और बलदेवजीकी कुमारअवस्था बीतगई ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय

अघासुर-वध

श्रीशुक उवाच–क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजा-
त्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥
प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—एक दिन कृष्णने विचार किया कि आज वनमें ही चलकर कलेवा करेंगे। उस दिन कृष्णजी सवेरे ही उठे और अपने सुन्दर सींगके शब्दसे साथी ग्वालबालोंको जगा कर बछड़े आगे करके वनको चले ॥ १ ॥ उनके साथ ही हजारों सनेही बालक हाथोंमें छींके, बेंत, सींग और वंशी आदि ले लेकर अपने सहस्राधिक बछड़ोंको आगे करके प्रसन्नतापूर्वक वनको चले ॥ २ ॥ उन्होने कृष्णचन्द्रके असंख्य बछड़ोंमें अपने बछड़े मिलाकर उनको चरनेके लिये छोड दिया और जहाँ तहाँ अनेक प्रकारके खेल खेलनेलगे ॥ ३ ॥ यद्यपि वे सब बालक काँच, मुक्ता, मणि और सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे तथापि अनेक फल, नव पल्लव, गुच्छे, फूल, मयूरपुच्छ, घुँवची एवं गेरू आदि विविध धातुओंसे उन्होने अपने शरीरोंको अलंकृत किया ॥४॥ एक दूसरेका छींका पीछेसे उतार लेताथा, यदि वह जान जाता था कि अमुकने छींका ले लिया है तब दूसरा बालक और दूरपर दूसरे बालकके पास छींका पहुँचा देताथा, वहाँके बालक और भी दूरतक उस छींकेको पहुँचा देतेथे एवं पीछेसे हँसतेहुए उसी बालकको उसका छींका लौटा देतेथे ॥५॥ वनकी शोभा देखते देखते जब कृष्णकी दूर निकल जाते तो सब बालक "मैं पहले छू लूँगा–मैं पहले छू लूँगा" यों कहकर कृष्णको छूनेके लिये दौड़ते और इसीप्रकार आनन्द मनाते थे ॥६॥ कोई वंशी, और कोई सींग बजाता था, कोई बालक भ्रमरके साथ आप भी उसीके समान गुनगुनाता था, कोई बालक कोकिला-ओंके साथ उन्हीका ऐसा शब्द करके प्रसन्न होता था ॥७॥ कोई बालक ऊपर उड़

रहे पक्षीकी छायाके साथ दौड़ता और कोई हंसोंके साथ उनकी गतिका अनुकरण करता चलता, कोई बगलोंके पास उन्हींके समान बैठता, कोई कोई मयूरोंके साथ उन्हींके समान नाचता ॥ ८ ॥ कोई वानरोंके बच्चोंकी पूँछ पकड़कर खींचता और कोई उनके साथ वृक्षोंपर चढ़ता एवं कोई वानरोंके ही समान मुख बनाकर उनको घुड़कता तथा कोई उनके साथ एक शाखासे दूसरी शाखापर चला जाता ॥ ९ ॥ कोई झरनोंमें स्नान करता, कोई मेंढ़कके समान उछल उछल कर चलता, कोई अपनेही प्रतिबिम्बको हँसता और कोई अपने ही शब्दकी प्रतिध्वनिपर आक्रोश करता था ॥ १० ॥ हे राजन्! जो भगवान् हरि विद्वान् लोगोंकी दृष्टिमें स्वयंप्रकाशमान परमसुखस्वरूप, भक्तजनोंकी दृष्टिमें आत्मप्रसाद परम देवतारूप एवं मायामूढ़ व्यक्तियोंकी दृष्टिमें मनुष्यबालरूप प्रतीयमान हैं उनके साथ ग्वालबाल लोग इसभाँति विहार करनेलगे; अवश्य ही उन्होने पूर्वजन्ममें अमित पुण्य किये होंगे ॥ ११ ॥ जितेन्द्रिय योगीजन बहुत जन्मोंतक अनेक प्रकारके कष्ट सहकर जिनके चरणोंकी धूलि भी नहीं पाते, वह परमात्मा जिनकी आँखोंके आगे रहे और साथ खेले उन व्रजवासी ग्वालबालोंके सौभाग्यका क्या कहना है ? ॥ १२ ॥ महाराज ! एक समय सब ग्वालबाल यों ही सुखपूर्वक वनमें विहार कर रहे थे, इसी अवसर पर 'अघ'नाम एक भयंकर असुर वहाँ आकर उपस्थित हुआ, मानो वह उनके आनन्दयुक्त खेलको न देखसका। अघासुर बड़ा ही दुर्दान्त था। देवगण अमृत पीकर यद्यपि अमर होगये हैं तथापि अघासुरकी ओरसे अपने प्राणोंका खटका उनको बना ही रहता था और वे अघासुरके विनाशकी प्रतीक्षा किया ही करते थे ! ॥ १३ ॥ कंसने अघासुरको व्रजमें भेजा था और वह पूतना तथा बकासुरका छोटा भाई था । उसने कृष्ण आदि बालकोंको देखकर यों निश्चय किया कि, यही मेरे सहोदर भाई और बहनको मारनेवाला वैरी है। मैं आज इसे दलबलके सहित मारूँगा ॥ १४ ॥ इन सबको मारकर जब मैं अपने परलोकगत सुहृदोंको तिलाञ्जलि दूँगा तब व्रजवासियोंको मरा हुआ ही जानना होगा । सभी प्राणियोंके प्राण उनके पुत्र और कन्या होते हैं, अतएव ये ही उनके प्राण हैं । तब प्राण न रहनेसे शरीरको नष्ट ही समझना चाहिये—उसके लिये कोई चिन्ता नहीं है ॥ १५ ॥ ऐसा विचार कर वह दुष्ट दानव बालकोंको निगल लेनेकी इच्छासे अद्भुत अजगरके रूपसे राहमें लेट गया। उसका शरीर भोजनभर चौड़ा था और मुख पर्वतकी कन्दराके समान फैला हुआ था ॥ १६ ॥ उसका अधर पृथ्वीसे और ओष्ठ अन्तरिक्षसे मिला हुआ था। दोनो चौहें कन्दराऐसी थीं, दाढें शैलशृङ्गसदृश ऊँची थीं। मुखके भीतर अन्धकार ही अन्धकार था, जिह्वा एक लाल सड़क जान पड़ती थी, श्वासा दावानलकी झपटके समान कठोर और नेत्र जलतेहुए दावानलके तुल्य थे

॥ १७ ॥ उसको देखकर बालकोंको भ्रम हुआ कि यह भी कोई वृन्दावनकी शोभा है और वे हँसी करतेहुए उस यथार्थ अजगरके मुखकी अजगरके मुखके साथ तुलना करके यों कहनेलगे ॥ १८ ॥ "अहो मित्रो ! कहो हमारे आगे यह एक प्राणी ऐसा जान पड़ता है या नहीं ? यह हमें निगलनेके लिये मुख फैलाये साँपका मुखसा जान पड़ता है या नहीं ? ॥ १९ ॥ देखो सूर्यकी किरणें पड़नेसे लाल लाल मेघजाल इसके ऊपरका ओंठ और उनकी परछाहीं पड़नेसे लाल होगई भूमि नीचेका ओंठ जान पड़ता है ॥ २० ॥ बाईं और दाहिनी ओर दो गिरि-गुहाएँ उसकी चौहें जान पड़ती हैं और पर्वतोंके शिखर दाढ़ोंके समान दिखाई पड़ते हैं ॥ २१ ॥ यह विशाल मार्ग जान पड़ता है कि इसकी जीभ है और इन शैलशिखरोंके बीचका अन्धकार मुखका भीतरी शून्यभाग जान पड़ता है ॥ २२ ॥ दावानलसे मिला हुआ आ रहा प्रचण्ड पवन इसकी श्वासा जान पड़ता है और दावानलमें जलेहुए जीवोंकी दुर्गन्ध जान पड़ती है कि इस सर्पदेहके अन्तर्गत आमिषकी गन्ध है ॥ २३ ॥ यह क्या वास्तवमें सर्प है और हमको निगल लेगा ? यदि हम इसके भीतर जायँगे और यह हमें निगल भी लेगा तो हमारा कुछ भी अनिष्ट न होगा और यह भी बकासुरके समान कन्हैयाके हाथो मारा जायगा"–यों कहतेहुए सब बालकोंने फिर कर पीछे आ रहे कृष्णचन्द्रके सुन्दर मुखकी ओर देखा और कृष्णके देखते ही देखते ताली बजाते हँसतेहुए अघासुरके मुखके भीतर घुस गये ॥२४॥ बालकोंने यथार्थ बात बिना जाने इसप्रकार आपसमें कहा, उनके कथनको भगवान् कृष्णने सुना और सोचा कि यथार्थ ही सर्परूपधारी असुरकी ये मूढ़ बालक सर्पके साथ तुलना करते हैं; किन्तु नहीं जानते कि यह सचमुचही सर्प है । यों सोचकर सब प्राणियोंके हृदयोंमें स्थित कृष्णचन्द्रने चाहा कि उनको सर्पके मुखमें जानेसे रोकें ॥ २५ ॥ परन्तु तबतक वे बछड़ोंके सहित उसके मुखमें चले ही गये । तौ भी अघासुरने मुख बन्द करके उनको नहीं निगला, क्योंकि वह अपने भाई और बहनका वध करनेवाले वैरी कृष्णके आनेकी राह देख रहा था ॥ २६ ॥ सबको अभयदान करनेवाले कृष्णने देखा कि वे दीन बालक, जिनके सिवा अपने और कोई स्वामी (रक्षक) नहीं है, अपने हाथसे निकलकर मृत्युरूप सर्पके उदराग्निका चारा बन चुके हैं, अतएव उनपर प्रभुको बड़ी ही दया आई और साथ ही भाग्यकी विचित्र लीलापर विस्मय भी हुआ ॥ २७ ॥ भगवान् सोचनेलगे कि अब इस अवसरपर क्या करना चाहिये ? इस दुष्ट असुरके प्राण न बचें और ये सज्जन बालक बचजायँ–ये दोनो बातें कैसे सिद्ध होगी ? तदनन्तर कर्तव्य ठीक करके सर्वज्ञ कृष्णचन्द्र आप भी उस सर्पके मुखमें घुसे ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटसे देख रहे देवगण भयसे हाहाकार करनेलगे और इधर उधर मायारूपधारी राक्षसगण जो कि

अघासुर और कंसके बान्धव थे—यह देखकर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ २९ ॥ अव्यय कृष्णचन्द्रसहित बालक और बछड़ोंको निगलकर अघासुरने चाहा कि चूर्ण कर डालूँ, उसीसमय देवगणका हाहाकार सुनकर भगवान् हरिने एकदम उस असुरके गलेमें अपने शरीरको बढ़ा दिया ॥ ३० ॥ तब असुरका कण्ठ रुँध गया, श्वासाका आना जाना बन्द हो गया, नेत्र बाहर निकल पड़े और वह व्याकुल होकर छटपटानेलगा। शीघ्र ही शरीरके भीतर रुका हुआ प्राणवायु उसके ब्रह्माण्डको फोड़कर बाहर निकल गया॥ ३१ ॥ इसप्रकार उस दुष्टके मरनेपर कृष्णचन्द्रने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे, मरेहुए बछड़े और बालकोंको फिर जीवित कर दिया और सहित उनके अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ उस महासर्पके मुखसे निकली हुई अद्भुत महाज्योति अपनी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशित करतीहुई आकाशमें स्थित रही और कृष्णचन्द्र जब सर्पशरीरके बाहर निकले तब सब देवतोंके सामने ही उन्हीमें लीन होगई ॥ ३३ ॥ देवगणने स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा की, अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्वगण गाने और विद्याधर लोग बाजे बजानेलगे, एवं ब्राह्मण(ऋषि)गण स्तुति करनेलगे, तथा भक्तगण जयध्वनि करतेहुए अपने कार्यसाधक हरिकी पूजा करनेलगे ॥ ३४ ॥ उससमय अनेक प्रकारके उत्सवोंसहित अद्भुत स्तुति, सुन्दर बाजे, गीत और जयजयकारकी माङ्गलिक ध्वनिको सुनकर भगवान् ब्रह्माजी अपने लोकसे वहाँपर आये और ईश्वरकी महिमा देखकर बहुत ही विस्मित हुए॥ ३५ ॥ महाराज! वह अजगररूप अघासुरके शरीरका चमड़ा वृन्दावनमें वैसेही सूख गया। बहुत समयतक ग्वालवालोंने उस बिलरूपी शरीरमें घुसकर कभी कभी क्रीड़ाएँ कीं ॥ ३६ ॥ हरिने पाँच वर्षकी अवस्थामें यह अद्भुत कर्म किया था, अर्थात् अघासुररूपी मृत्युके मुखसे बछड़ोंसहित ग्वालबालोंकी रक्षा की थी और उस दुष्ट दानवको मुक्ति दी थी; किन्तु विस्मित ग्वालबालोंने छठे वर्ष अर्थात् एक साल बाद सब वृत्तान्त व्रजमें कहा कि "आज ही यह सब चरित्र हुआ है" ॥ ३७ ॥ किन्तु मायामनुष्यरूप हरिके लिये यह कुछ विस्मयकी बात नहीं है। श्रीकृष्णचन्द्रजी चराचर जगत्में श्रेष्ठ और उसके कर्ता हर्ता विधाता हैं। देखो, अघासुर भी हरिके स्पर्शसे सारूप्य मुक्ति पागया । अघासुरऐसे दुष्टोंको ऐसी मुक्ति बहुत ही दुर्लभ है॥ ३८ ॥ जिनकी श्रीमूर्तिकी केवल मनोमयी प्रतिकृतिको अन्तःकरणमें बलात् स्थापित करके प्रह्लाद आदि परमभक्तगण भागवती गतिको प्राप्त हुए उन्ही नित्य आत्मसुखानुभवके द्वारा मायाको निरस्त करनेवाले भगवान्ने स्वयं उस असुरके अन्तरमें प्रवेश किया, तब वह कैसे न मुक्त हो? ॥ ३९ ॥ सूतजी कहते हैं—हे द्विजगण! यदुवंशियोंके कुलदेवद्वारा प्रदत्त (रक्षित) राजा परीक्षित्जीने अपने जीवनदाता हरिके इस विचित्र चरित्रको सुनकर शुक-

देवजीसे फिर इसी पवित्र चरित्रके विषयमें प्रश्न किया। क्योंकि हरिचरित सुननेमें उनका मन भलीभाँति लगाहुआ था ॥ ४० ॥ राजा परीक्षितने पूछा—ब्रह्मन्! भला जो काम सालभर पहले होगया है, उसे, उसी समयका कैसे कोई कह सकता या मान सकताहै? हरिने जो काम पाँच वर्षकी अवस्थामें किया उसे उनके साथी ग्वालबालोंने छः वर्षकी अवस्थामें उसी दिनका किया हुआ कैसे बताया? हे महायोगी! हमारे इस परमकौतूहल भासता है इस शंकाको निवृत्त करो। निश्चय ही यह उन्ही हरिकी माया होगी, अन्यथा ऐसा होना संभव नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ गुरुवर! हम अधम क्षत्रिय होकर भी परम धन्य हैं, जो वारंवार आपके मुखारविन्दसे निकलेहुए पवित्र हरिकथारूप अमृतको पीते हैं ॥ ४३ ॥

सूत उवाच—इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-
स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ॥
कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमः ॥ ४४ ॥

सूतजी कहते हैं—हे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ शौनकजी! राजा परीक्षित्ने हरिविषयक प्रश्न करके अनन्त हरिका स्मरण करादिया। अनन्त हरिके स्मरणसे शुकदेवजीकी इन्द्रियाँ हरिमें तन्मय होगईं। उन्होने अति कष्टसे इन्द्रियोंको धीरे धीरे उधरसे हटाया और महाश्रेष्ठ भगवद्भक्त राजाके प्रश्नका यों उत्तर देनेलगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

ब्रह्माको मोह और उसका नाश

श्रीशुक उवाच—साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—हे महाभाग! हे भागवतश्रेष्ठ! तुमने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न किया! तुम हरिकथारूप अमृतको बार बार पीकर तृप्त नहीं होते, किन्तु नवीन नवीन प्रश्नोंसे उसे नवीन बनाते हो ॥१॥ सार ग्रहण करनेवाले साधुओंका स्वभाव ही यह होता है कि वे अपने वाक्य, कान, और अन्तःकरणको हरिचर्चामें ही लगा देते हैं। जैसे स्त्रैण(विषयी)लोगोंमें सदा स्त्रियोंकी ही कथाएँ हुआ

करती हैं वैसे ही उनकी मण्डलीमें नवीन नवीन हरिकी कथाएँ होती हैं ॥ २ ॥ हे राजन्! सावधान होकर सुनो, गुप्त विषय भी मैं तुमसे कहता हूँ। क्योंकि गुरुजन अपने स्नेही शिष्यसे परम गुप्त बात भी नहीं छिपाते ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त प्रकारसे मृत्युरूपी अघासुरके मुखसे बछड़े और बालकोंकी रक्षा करनेके उपरान्त हरि उनको नदीके किनारेपर लाये और वहाँ उनसे कहा कि—"साथियो! यह यमुनातट बहुतही रमणीय है, यहाँ हमारे खेलनेकी सभी सामग्रियाँ हैं, यहाँकी बालू भी बहुत ही कोमल और स्वच्छ है। अत्यन्त कोमल और प्रफुल्लित कमलोंकी सुबाससे खिंचेहुए भौंरे और अनेक पक्षी यहाँ आते हैं और जलपर मधुर शब्द करते हैं; जिसकी प्रतिध्वनि किनारेके वृक्षोंमें व्याप्त हो रही है ॥ ४ ॥ ५ ॥ आओ, हम सब यहीं बैठकर भोजन करें, क्योंकि दिन बहुत चढ़ गया है, भूख भी लगी है। बछड़ोंको छोड़ दो, वे पास ही पानी पीकर धीरे धीरे घास चरें ॥६॥ 'ऐसाही सही' कह कर ग्वालवालोंने बछड़ोंको घासमें छोड़दिया और आप अपने अपने छींके खोलकर आनन्दपूर्वक भगवान्के साथ भोजन करनेलगे ॥ ७ ॥ प्रफुल्लनयन सब ग्वालवाल वनमें कृष्णको चारो ओरसे घेरकर उन्हीकी ओर मुख कर मण्डली बनाकर बैठे, उस समय कृष्ण तो कमलकुसुमकी कर्णिका और वे सब पत्तोंके समान शोभायमान हुए ॥८॥ कोई फूलोंपर, कोई पत्तोंपर, कोई पल्लवोंपर, कोई अंकुरोंपर, कोई फलोंपर, कोई छींकोंपर, कोई छालोंपर और कोई शिलाओंपर धरकर भोजन करनेलगे ॥ ९ ॥ सभी बालक परस्पर अपनी अपनी भिन्न भिन्न भोजनरुचि दिखातेहुए हँसते हँसाते भगवान्के साथ भोजन करनेलगे एवं कृष्णभगवान् यज्ञभागके लेनेवाले होकर भी लड़कोंकी भाँति बालकेलि करने लगे ॥ १० ॥ कमरमें बँधेहुए पटमें वेणु खोंसे, बाईं बगलमें सींग दबाये, दाहिनी बगलमें बेंत दबाये, बाएँ हाथमें माखन भातका कौर लिये, एवं अँगुलियोंकी संधियोंमें खेलनेकी गोली दबाये श्रीकृष्णचन्द्रजी बालकोंके बीचमें कर्णिकाकी भाँति अवस्थित होकर स्वयं हँसीके वचनोंसे हँसते और साथियोंको हँसाते भोजन कर रहे थे, एवं इस लीलाको सब स्वर्गवासी जन विस्मयपूर्वक देख रहे थे ॥ ११ ॥ महाराज! वत्सपाल ग्वालबालगण इसभाँति अच्युतके साथ तन्मय होकर भोजन कर रहे थे, इसी अवसरमें सब बछड़े हरे हरे तृणके लोभसे दूरतक चले गये और वनके भीतर धीरे धीरे घुस पड़े ॥ १२ ॥ बछड़ोंको आगे बढ़ गया देख बालकोंको भय हुआ, तब विश्वके भयको भी भय देनेवाले कृष्णजीने कहा कि मित्रो, तुम भोजन करना न बन्द करो, मैं अभी बछड़ोंको लौटाए लाता हूँ ॥ १३ ॥ यों कहकर हाथमें वैसे ही भोजनका कौर लिये कृष्णचन्द्र अपने और अपने मित्रोंके बछड़ोंकी खोजमें पर्वत, कन्दरा, कुञ्ज और अन्यान्य अगम्य स्थानोंमें भ्रमण करनेलगे ॥ १४ ॥ पद्मयोनि ब्रह्मा पहलेसे ही आकाशमें खड़े

खड़े अघासुरमोक्षसे लेकर अबतक सब लीला देख बहुतही विस्मित हुए थे। इससमय मोहवश मायाबालकरूप हरिकी महिमा देखनेकी इच्छासे ब्रह्माजी पहले तो बछड़ोंको हर ले गये और फिर हरिके चले जानेपर ग्वालबालोंको भी उठा ले गये, और उनको अपने लोकमें अचेत अवस्थामें रख आये ॥ १५ ॥ इधर कृष्णचन्द्रने बछड़ोंका पता न लगनेपर उसी पुलिनपर लौटके आकर देखा कि ग्वालबाल भी नहीं हैं। कृष्ण भगवान् फिर दोनोको ही ढूँढ़नेलगे, किन्तु वनमें कहींपर बछड़े और बालकोंको न पाकर सर्वज्ञ हरि तुरन्त समझ गये कि यह सब ब्रह्माका काम है ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब उन ग्वालबाल व बछड़ोंकी माताओंको सन्तुष्ट रखने एवं ब्रह्माको छकानेके लिये विश्वकी रचना करनेवाले ईश्वर आप ही (उतने) बछड़े और ग्वालबाल बनगये। भगवान्ने इस अभिप्रायसे ऐसा किया कि—यदि मैं बछड़ोंको ब्रह्मलोकसे लाये देता हूँ तो ब्रह्माको मोह न होगा, और जो स्वयं बछड़ों व ग्वालबालोंका रूप नहीं धारण करता हूँ तो उनकी माताएँ शोकाकुल हो जायँगी। इसी लिये हरिने स्वयं उतने ही रूप धारण किये ॥ १८ ॥ जिस बछड़े और बालकका जैसा शरीर, जैसे हाथ—पैर, जैसे लकड़ी, जैसा सींग, बाँसुरी और छींका था, जैसे वस्त्र और आभूषण थे, जैसा शील, गुण, नाम, आकृति और अवस्था आदि था एवं जिसका जैसा आहार विहार आदि था वैसे ही प्रकट होकर सर्वस्वरूप हरिने "सब जगत् विष्णुमय है" इस वाक्यको सार्थक कर दिखाया ॥ १९ ॥ भगवान्ने इस-भाँति आप ही सर्वरूप होकर व्रजमें प्रवेश किया। कृष्णचन्द्र आप ही वत्सपालरू-पसे वत्सरूप अपनेको घेरकर आप अपने ही साथ विहार करते व्रजमें आये ॥ २० ॥ जिस जिस घरके जो बछड़े थे उन्हे उन्ही ग्वालबालोंके रूपसे साथ लिये भगवान्ने अलग अलग घरोंमें प्रवेश किया और उन बछड़ोंको उनके स्थानोंपर बाँध दिया ॥ २१ ॥ उस दिन उन ग्वालबालों और बछड़ोंकी माताएँ बाँसुरीका शब्द सुनते ही जल्दीसे उठीं और अपने अपने पुत्रोंको प्रेमसे गोदमें लेकर परब्रह्म-भावनासे स्नेहके कारण आप ही आप बह रहे सुधामधुर दुग्धको पिलाया ॥२२॥ राजन्! जिससमय जो क्रीड़ा करनेका नियम था, उसीके अनुसार, इसभाँति कृष्णचन्द्रजी संध्यासमय वनसे आकर अपनी मनोहर लीलाओंसे माताओंको नित्य आनन्दित करनेलगे एवं वे भी अङ्ग दबाकर, नहलाकर, उबटना लगाकर, उत्तम वस्त्र व आभूषण पहनाकर, तिलक लगाकर, भोजन कराकर, एवं भाँति भाँति से रक्षा कर नित्य पुत्ररूप हरिका लालन पालन करनेलगीं ॥ २३ ॥ इधर गायें भी जब वत्सरूप हरिको गोष्ठ (बँधनेके स्थान) में देखतीं तो हुंकार शब्दसे (अपने अपने बछड़ोंको) बुलाकर बार बार उन्हे चाटती हुई स्तनोंसे बह रहे दूधको पिला-कर प्रसन्न होती थीं ॥ २४ ॥ पहले भी श्रीकृष्णपर गऊ और गोपियोंको माताका

ऐसा स्नेह था, किन्तु इससमय वह अत्यन्त अधिक होगया। ऐसे ही हरिका भी उनपर पहले पुत्रकासा भाव था, किन्तु अब और भी अधिक हो गया; अर्थात् अब मायाममता होगई ॥ २५ ॥ पहले भी व्रजवासियोंको कृष्णपर परम स्नेह था, किन्तु अब वह अपूर्वभावसे अपने अपने पुत्रोंपर नित्यप्रति धीरे धीरे एक वर्षमें असीमरूपसे बढ़ गया ॥ २६ ॥ इसप्रकार वत्सपाल श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं वत्स और वत्सपालरूप होकर आप ही अपना पालन करतेहुए वनमें और गोष्ठमें क्रीड़ा करनेलगे ॥ २७ ॥ राजन्! एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच या छः दिन शेष थे, इसी अवसरमें एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदाऊसहित बछड़े चरानेके लिये वनको गये। उस समय बहुत दूरपर गोवर्धन पर्वतके शिखरमें सब गायें चर रही थीं। उन गायोंने वहाँसे देखा कि व्रजके निकट ही उनके बछड़े चर रहे है। बछड़ोंको देखते ही स्नेहसे वे गायें आपेसे बाहर होगईं और हुँकारी भरती हुईं दौड़ पड़ी। चरानेवाले गोपोंने लाख लाख रोकनेकी चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुआ। दुर्गम मार्गसे कूदती फाँदती पैर जोड़-कर गर्दन, कान, पूँछ और मुख उठाये गायें आईं। इतने वेगसे चलीं कि जान पड़ता था उनके दो ही पैर हैं। उनके स्तनोंसे दूध वह रहा था ॥२८॥२९॥ ॥ ३० ॥ यद्यपि उनके और छोटे बच्चे भी थे तौ भी दौड़कर अपने बड़े बछड़ोंके पास आईं और मानो उनको लील जायँगी, इसभाँति स्नेहसे अङ्ग चाटती हुईं गोवर्धनके नीचे आकर दूध पिलानेलगीं ॥ ३१ ॥ चरानेवाले गोपोंने उनको रोकनेकी बहुत कुछ चेष्टा की, पर न रोकसके, इसकारण वे कुपित और लज्जित हुए। पर्वतके ऊपरसे दुर्गम मार्ग होकर आनेसे वे अत्यन्त थक गये। परन्तु वे बछड़ोंके पास अपने अपने पुत्रोंको देखकर स्नेहसे गद्गद होगये, सारा क्रोध जाता रहा। प्रेमरससे हृदय परिपूर्ण हो जानेके कारण उन्होने अपने अपने बालकोंको गोदमें उठा लिया और उनके मस्तक सूँघकर वे बहुतही प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वे बड़े बूढ़े गोप, पुत्रोंको गलेसे लगाकर बड़े कष्टसे स्नेहकी उमंग को रोक सके। उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू निकलनेलगे ॥ ३४ ॥ बलदेवने देखा कि जिन्होने दूध पीना छोड़ दिया है उन सन्तानोंपर गऊ और गोपोंकी प्रतिक्षण इतनी अधिक उत्कण्ठा और अनुराग है। यह देखकर, उसका कारण नहीं जानते थे, इसलिये विचारनेलगे—कि "यह कैसा आश्चर्य व्यापार है! पहले कृष्णचन्द्रपर व्रजवासियोंका जैसा अपूर्व स्नेह बढ़ता जाता था वैस-ही अब अपने अपने पुत्रोंपर क्यों बढ़ रहा है? मेरे मनमें भी क्यों उनपर इतना अधिक स्नेह उत्पन्न हो रहा है? यह क्या माया है? माया है तो किसकी है? यह क्या किसी देवता, मनुष्य या राक्षसकी माया है? निश्चय जान पड़ता है कि यह मेरे प्रभुकी ही माया है, क्योंकि इस मायासे मुझको भी मोह हो

रहा है" ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यदुनन्दन बलदेवने यों विचार अपने ज्ञाननेत्र खोल कर देखा तो सभी बछड़े और उनकी रक्षा करनेवाले बालक कृष्णरूप हैं ॥ ३८ ॥ तब बलदेवने कृष्णचन्द्रसे कहा कि भाई कृष्ण! मैं पहले जानता था कि ये सब बछड़े और वत्सपाल ग्वालबाल ऋषियोंके और देवतोंके अंश हैं, किन्तु इस समय तो वे कोई भी नहीं देख पड़ते, सब तुम ही हो। यद्यपि सब सामग्री भिन्न भिन्न है, तथापि अन्तरसें तुम ही एक हो! कृपा कर बताओ कि तुमने इतने भिन्न भिन्न रूप क्यों धारण किये?। इसप्रकार पूछनेपर भगवान्ने बलदेवको संक्षेपसे ब्रह्माजीका सब वृत्तान्त बता दिया और वह भी जानगये॥३९॥ राजन्! इसीप्रकार उन मायारचित वत्स और वत्सपालोंके साथ कृष्णचन्द्रको क्रीड़ा करते करते एक वर्ष बीत गया, किन्तु वह समय ब्रह्माकी आयुकी एक त्रुटि (बहुत ही थोड़ा समय) मात्र था! ब्रह्माने एक त्रुटि बीतनेपर फिर आकर देखा कि कृष्णभगवान् पहलेकी भाँति अपने साथी ग्वालबालोंके साथ क्रीड़ा करते-हुए बछड़े चरा रहे हैं ॥ ४० ॥ यह देखकर ब्रह्मा बहुत चकराये और अपने मनसें तर्क-वितर्क करनेलगे कि जितने गोकुलके बालक और बछड़े हैं उन सबको मैं मायाकी निद्रामें अचेतकर आया हूँ और वे अभीतक नहीं उठसके हैं। तब मेरी मायासें मोहित बालक व बछड़ोंके सिवा और बालक व बछड़े ये कहाँके हैं, जो विष्णुके साथ एक वर्षसे क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बार बार इसभाँति तर्क-वितर्क करके भी ब्रह्माजी ठीक ठीक न जान सके कि वास्तवमें कौन बालक बछड़े मिथ्या हैं और कौन यथार्थ हैं? ॥ ४३ ॥ इसभाँति विश्वंभरको मोहित करनेवाले मोहशून्य विष्णुको मोहित करनेके लिये आयेहुए ब्रह्माजी अपनी मायासें आप ही मोहित हो पड़े ॥ ४४ ॥ जैसे कुहिरेका अन्धकार अँधेरी रातमें उससे अलग आवरण नहीं कर सकता, किन्तु आपही उसमें लीन हो जाता है, एवं जैसे जुगनू दिनमें आप अलग प्रकाश नहीं कर सकता, किन्तु अपना प्रकाश भी गँवा देता है, वैसे ही जो कोई महत् लोगोंपर मायाका प्रयोग करता है तो उसकी तुच्छ माया उलटे उसीके सामर्थ्यको नष्ट कर देती है ॥ ४५ ॥ इधर इतने हीमें ब्रह्मा चकरायेहुए थे कि उनको एक और भी अद्भुत घटना देख पड़ी। ब्रह्माने देखा कि उनके देखते देखते सब बछड़े और उनके रक्षक ग्वालबाल कृष्णरूप हो गये। सबका वर्ण पानीभरे मेघके तुल्य श्याम हो गया। सभी पीताम्बर पहने, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा व कमल भुजाओंमें लिये, किरीट-कुण्डल-हार-वन-माला आदि आभूषणोंसे सुशोभित हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सबके अंगोंमें श्रीवत्स, अङ्गद, नवरत्न, कङ्कण, नूपुर, कटक, कर्धनी, अँगूठी आदि गहने शोभायमान हैं। बहुत पुण्य करनेवाले भक्तजनोंकी चढ़ाई हुई कोमल तुलसीदलकी मालाओंसे शिरसे पैर तक सभीके शरीर शोभित हैं ॥ ४९ ॥ चाँदनीकी भाँति उज्वल हास्य

एवं अरुणवर्ण कटाक्ष-दृष्टिके द्वारा सभी जैसे सतोगुण व रजोगुणके द्वारा भक्तोंके मनोरथोंके स्रष्टा और पालक होकर प्रकाश पा रहे हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे लेकर तृणतक सब चराचर जगत्के जीव मूर्तिमान् होकर नृत्य गीत आदि अनेक पूजनकी सामग्रियोंसे सबकी अलग अलग सेवा उपासना कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ सभी अणिमा आदि आठो सिद्धियों, अजा (माया) आदि विभूतियों और महत्तत्त्व आदि चौबीस तत्त्वोंसे व्याप्त हैं ॥ ५२ ॥ भगवान्की महिमासे जिनकी महिमा (स्वतन्त्रता) ध्वस्त हो गई है वे अणिमा आदि सिद्धियोंके सहकारी, काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म और गुण आदि मूर्तिमान् होकर उन सबकी उपासनामें लगेहुए हैं ॥ ५३ ॥ सभी सत्यज्ञानरूप, अनन्तमूर्ति, विजातीय-भेदशून्य एवं सर्वदा एकरूप हैं, अतएव आत्मज्ञान ही जिनके नेत्र वे योगीजन भी उन ज्ञान-नेत्रोंसे इन सब मूर्तियोंके महामाहात्म्यको नहीं देख सकते ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! ब्रह्माजीको एकसाथ वे सब बछड़े और वत्सपाल बालक उसी ब्रह्मका स्वरूप देख पड़े, जिस परब्रह्मकी ज्योतिसे यह सब चराचर विश्व प्रकाशित हो रहा है ॥ ५५ ॥ यह देखकर उत्पन्न हुए विस्मयमें मग्न होनेके कारण ब्रह्माजीको शरीरकी सुधि न रही और वह हंसकी पीठकर लुढ़क गये । उन सब ब्रह्ममूर्तियोंके तेजसे ब्रह्माकी ग्यारहो इन्द्रियाँ निस्तब्ध (निश्चेष्ट) होगईं और वह विस्मयसे अवाक् हो गये । जान पड़ा मानो व्रजकी अधिष्ठात्री देवताके निकट एक चतुर्मुखी सोनेकी प्रतिमा धरी हुई है ॥ ५६ ॥ जो वाणीके अधीश्वर, तर्कके अगोचर, असाधारणमहिमा-शाली, स्वप्रकाश, सुखस्वरूप, जन्मरहित और प्रकृतिके परे हैं एवं "वह नहीं है, वह नहीं है"—इस प्रकारसे असत् का निरास करती हुई श्रुतियोंके द्वारा जो स्वयं प्रकाशमान् हैं वही ब्रह्माजी "यह क्या है !"—इन आश्चर्यसूचक वचनोंको कहते-हुए ज्ञानशून्य हो पड़े और फिर उन ब्रह्ममूर्तियोंकी ओर दृष्टि न डाल सके । यह जानकर परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रने शीघ्र ही अपनी अद्भुतमायाका पर्दा ब्रह्माकी दृष्टिके आगेसे हटा लिया ॥ ५७ ॥ तब ब्रह्माको बाह्यज्ञान हुआ, और मृतव्यक्तिके समान वह कुछ सचेत होकर उठे एवं अत्यन्त कष्टसे दोनो नयन उघाडकर उन्होने अपने सहित इस जगत्को देख पाया ॥ ५८ ॥ आँखें खोलकर चारो ओर दृष्टि डालनेपर ब्रह्माजीने सामने देखा कि खाने पीनेकी सब सामग्री (सुन्दर जल, फल) और तृण आदिसे सुशोभित एवं मनोहर और रम्य वस्तुओंसे परिपूर्ण वृन्दावन सुशोभित है ॥ ५९ ॥ जिन पशु-पक्षियोंमें स्वाभाविक अनिवार्य वैर देखा जाता है वे भी वहाँ वैर छोड़कर मित्रभावसे एकत्र वास करते हैं । वह अच्युतकी विहारभूमि होनेके कारण काम, क्रोध, लोभ आदि संसारके तापोंसे रहित है ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने देखा कि उसी श्रीवृन्दावनमें अद्वितीय, परमपुरुष, अनन्त, अगाधबोध, एक ब्रह्म गोपबालकरूपी नाट्य-वेषसे हाथमें भोजनका

कौर लिये पहलेकी ही भाँति वनमें इधर उधर खोयेहुए बछड़े और बालकोंको खोज रहे हैं ॥ ६१ ॥ यह देखकर तुरन्त ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे उतर पड़े और पृथ्वीपर कनकदण्डके समान गिरकर चारो मुकुटोंके अग्रभागसे ईश्वरके चरणोंको सुशोभित करते हुए प्रणाम करके आनन्दके आँसुओंसे प्रभुका पाद-प्रक्षालन करनेलगे ॥ ६२ ॥ पहले देखी हुई हरिकी अतर्क्य महिमाका बार बार स्मरण करतेहुए ब्रह्माजीने बार बार उठकर हरिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ६३ ॥

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकंधरः ॥
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

फिर धीरे धीरे खड़े हुए और दोनो नेत्रोंके आँसू हाथोंसे पोंछे। उसके बाद भक्तिपूर्वक कृष्णचन्द्रकी ओर निहारकर शिर झुकाये, हाथ जोड़े विनीत भावसे सावधानतासहित इसप्रकार गद्गद वाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ६४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय

ब्रह्मस्तुति

ब्रह्मोवाच—नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने कहा—हे स्तुति करने योग्य ईश! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये प्रणाम करके स्तुति करता हूँ। आपके नीलनीरदतुल्य श्याम शरीरमें पीतपट बिजलीके समान शोभा पारहा है। घुँघचीके बने कानोंके आभूषण एवं मयूर-पुच्छके मुकुटसे आपका मुखमण्डल दर्शनीय हो रहा है। गलेमें वनमालाकी बहार बड़ी ही मनोहर है। भोजनसामग्रीके कौर, बेंत, सींग और वंशी आदि चिन्ह आपके शोभन शरीरमें अपूर्व शोभा पारहे हैं। हे गोपनन्दन! आपके चरण बड़े ही सुकुमार हैं ॥ १ ॥ हे देव! आपने यह शरीर भक्तोंकी अभिलाषा और भावनाके अनुसार ग्रहण किया है; इस शरीरसे हमपर भी अनुग्रह प्रकट होता है। यद्यपि अपने सुलभ होनेके लिये आपने यह शरीर प्रकट किया है, किन्तु यह पञ्चतत्त्वमय नहीं, वरन् अचिन्त्य शुद्ध सत्वमय है; अतएव वश कियेहुए मनके द्वारा भी कोई इसके माहात्म्यको नहीं जानसकता। प्रभो! जब इस सगुणरूपकी महिमा मन और बुद्धिसे परे है, तब आपके साक्षात् आत्मसुखानुभव (निर्गुण) स्वरूपकी महिमा कौन जान सकता है? ॥ २ ॥ हे हरि! आपकी महिमा ऐसी दुर्बोध होनेपर भी, संसारसे मुक्ति पानेकी संभावनाका अभाव नहीं देख पड़ता, क्योंकि जो लोग ज्ञानोपार्जनके लिये श्रम न करके अपने ही स्थानमें बैठकर साधुजनोंके मुखसे निकली हुई आपकी पवित्र कथा कानोंसे सुनते तथा देह, मन और वाणीसे उसीका आदर करतेहुए जीवन बिताते हैं, वे भक्तजन, हे अजित, त्रिलोकीमें सहज ही आपको जीतलेते हैं ॥३॥ हे विभो! जो लोग कल्याणकारिणी आपकी भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञानके लिये क्लेश सहते हैं उनके हाथ वह क्लेश ही लगता है और कुछ भी नहीं। जैसे मोटे (फप्फस) धान कूटनेवालोंको भूसी और थकावटके सिवा और कुछ भी नहीं मिलता ॥४॥ हे सर्वव्यापक! हे अच्युत! पहले यहाँ बहुतसे तपस्वी योगी होकर भी जब ज्ञानलाभ न करसके तब सब लौकिक एवं पारलौकिक चेष्टाएँ आपके ही अर्पण कर आपकी ही कथाओंको दिन-रात सुननेलगे, जिससे उनके अन्तःकरणमें आपकी भक्ति उत्पन्न हुई, उसी भक्तियोगसे वे आत्माको जानसके एवं अन्तको आपकी उत्तम गतिको प्राप्त हुए। इसकारण भक्तिके ही द्वारा ज्ञानलाभ होता है—विना भक्ति आत्मज्ञान कभी नहीं होसकता ॥ ५ ॥ हे व्यापक! क्या सगुण और क्या निर्गुण—दोनो ही रूपसे आपको जानना बहुत कठिन है; तौ भी जिन्होने इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर अन्तःकरणमें एकाग्र कर रक्खा है, वे किसी विशेष आकारसे रहित, विषयोंसे परे, स्वप्रकाश होनेके कारण स्फूर्तिशाली एवं आत्माके आकारको प्राप्त जो आपका नारायण-नाम निर्गुण रूप है उसकी महिमाको स्वानुभव अर्थात् अन्तः-करणके भीतर साक्षात्कारसे कुछ कुछ जान सकते हैं ॥ ६ ॥ किन्तु जो सुनिपुण लोग अनेक जन्मजन्मान्तरोंमें पृथ्वीके परमाणु, आकाशके हिमकण (बूँद) और गगन-

मण्डलमें स्थित नक्षत्र आदिकी किरणोंके परमाणुओंको गिनसकते हों वे भी इस विश्वके मङ्गलके लिये प्रकट जो सगुणरूप आप हैं उनके गुणगणकी गणना किसी प्रकार नहीं करसकते ॥ ७ ॥ इसीसे जो कोई आपके अनुग्रहकी प्रतीक्षा करता हुआ अपने किये कर्मोंके फलोंका भोग करते अन्तःकरण, वाणी, और देहसे आपको नित्य नमस्कार करता है और यों ही अपना जीवन विताता है उसीको मुक्तिपदका अधिकार मिलता है; अर्थात् जैसे विना जीवित रहे पैतृक सम्पत्तिमें अधिकार नहीं रहता वैसे ही भक्तजीवनके सिवा मुक्ति पानेका भी और उपाय नहीं है ॥ ८ ॥ महाराज! यों स्तुति करके क्षमा पानेके लिये अपने अपराधका उल्लेख करतेहुए ब्रह्माने कहा—हे ईश्वर! मेरी दुष्टता तो देखिये, आप अनन्त, आदिपुरुष, परमात्मा एवं बड़े बड़े मायावियोंको भी मोहित करनेवाले हैं, किन्तु मैं ऐसा ही मूढ़ हूँ कि आपपर भी अपनी माया फैला कर अपना ऐश्वर्य दिखानेको उद्यत हुआ! अहो! अग्निसे निकली हुई चिनगारी जैसे अग्निके निकट कुछ भी नहीं है वैसे ही मैं भी आपके ही अंशका अंश होनेके कारण आपके निकट कुछ भी नहीं हूँ ॥ ९ ॥ भगवन्! क्षमा कीजिये। मैं रजोगुणसे उत्पन्न हूँ, अतएव अज्ञ हूँ। मैं आपसे अलग अपनेको जगत्का ईश्वर मान बैठा था, क्योंकि इसी मिथ्या गर्वसे मेरे नेत्र अन्धे हो रहेथे। हे ईश्वर! अब मुझको अपना किंकर जानकर क्षमा और अनुग्रह कीजिये ॥ १० ॥ मेरे निजके परिमाणसे सात वित्तेका यह प्रकृति-अहँकार-आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वीसे रचित ब्रह्माण्ड यद्यपि मेरा शरीर है, तथापि आपके रोमच्छिद्र, ऐसे ही असंख्य ब्रह्माण्डरूप परमाणुओंके आने जानेके झरोखे हैं। अतएव, मैं आपकी महिमा जान सकूँ—यह क्या कभी किसी प्रकार संभव हो सकता है? ॥ ११ ॥ गर्भमें पड़ा हुआ बालक जो पैर उछालता है तो उसको माता बालकका अपराध नहीं मानती। हे अनन्त, वैसे ही मैं भी आपके उदरमें स्थित हूँ। क्योंकि स्थूल व सूक्ष्म और कार्य व कारणके नामसे कहे गये इन सब पदार्थोंमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपके उदरसे बाहर हो ॥ १२ ॥ प्रलयके समय परस्पर मिलेहुए समुद्रोंके जलमें शयन कियेहुए नारायणकी नाभिसे उत्पन्न कमलके द्वारा ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई— यह वेदवाक्य मिथ्या नहीं है ॥ १३ ॥ आप सब देहधारियोंके आत्मा एवं सब लोकोंके साक्षी हैं—तब भी क्या आपके नारायण होनेमें कोई संदेह है? हे अधीश! नरसे उत्पन्न चौवीस तत्व एवं जल जिनका अयन स्थान है, इसी लिये जो नारायण नामसे प्रसिद्ध हैं, वह भी आपकी ही मूर्ति हैं। हे देव! हे अचिन्त्य ऐश्वर्यवाले प्रभो! 'आपका जगदाश्रय शरीर जलमें अवस्थित था'—यह बात यदि सत्य है तो उसी समय कमलनालके मार्गसे जलमें प्रवेश करके मैंने दिव्य सौ वर्षतक खोजते रहनेपर भी आपको क्यों नहीं देखपाया एवं अन्तःकरणमें भी

आप मुझे क्यों नहीं देख पड़े ? और फिर उसी समय तप करनेके बाद ही मेरे दृष्टिगोचर क्यों हुए ? ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे मायानाशन ! यह सब विश्वप्रपंच बाहर स्पष्टरूपसे प्रकाशमान है, तौ भी अपने उदरमें माताको यह विश्व दिखाकर इसी मायामय लीलाके लिये लियेहुए अवतारमें आपने अपनी अद्भुत माया दिखा दी, अर्थात् यह दिखा दिया कि सब विश्व मेरी ही मायाकी रचना है ॥ १६ ॥ जब आपके सहित, यह विश्व, आपके उदरमें जैसा प्रकाशित होता है वैसा ही बाहर भी प्रकाशित है तब मायाके सिवा और क्या है ? ॥ १७ ॥ इसी समय आपने मुझे दिखा दिया कि आपने सिवा सब विश्व माया है । आप पहले एक थे, फिर सब बछड़े और व्रजबालकरूप बनगये । फिर मैंने देखा कि सभी मूर्तियाँ चतुर्भुज रूपसे अवस्थित हैं एवं मैं सब तत्त्वोंसहित उन सबकी उपासना कर रहा हूँ । फिर वे रूप एक एक ब्रह्माण्डके रूपसे देख पड़े । किन्तु अब अन्तको आप वही अपरिमित, अद्वितीय केवल ब्रह्मरूपसे विराजमान हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्मन् ! आप ही अपनी प्रकृतिमें स्थित विकाररहित आत्मा हैं । जो लोग आपके स्वरूपको नहीं जानते उनके लिये आप ही अपनी माया फैलाकर प्रकाश पाते हैं; जैसे— सृष्टिके आदिमें मैं और पालनमें आप (विष्णु) एवं अन्तमें त्रिलोचन शिव ॥१९॥ हे प्रभो ! आप विधाता और ईश्वर हैं । आप जन्मरहित हैं; तथापि देवता मनुष्य पशु पक्षी एवं जलचर आदि जीवोंमें जो आपके अवतार होते हैं, सो केवल असाधु दुष्ट दुर्मद लोगोंके दमन और साधुओंपर अनुग्रह करनेके लिये ॥ २० ॥ हे भूमन् ! आप ऐश्वर्यशाली, परमात्मा और योगेश्वर हैं । इस त्रिलोकीमें कौन व्यक्ति, कहाँ, किस समय, किस प्रकार आपकी लीलाओंको जान सकता है ? आप योगमाया फैलाकर उसीमें अद्भुत क्रीड़ा करते हैं ॥ २१ ॥ अतएव यह असत्-स्वरूप, स्वप्नसदृश, निरस्तज्ञान, अनेक घोर दुःखोंका आगार विश्व, नित्य सुखरूप एवं बोधरूप जो आप हैं उनमें आपकी ही मायाके द्वारा उत्पन्न होकर लीन हो जाता है एवं सत् ऐसा जान पड़ता है ॥२२॥ एक आप ही सत्य हैं, क्योंकि आत्मा पुरुष एवं सृष्टिआदि कार्योंके पूर्व वर्तमान रहनेके कारण आदिपुरुष हैं । आप नित्य हैं, अनन्त और अद्वितीय होनेके कारण परिपूर्ण हैं । आपका सुख सदा एकसा है, आपका क्षय नहीं है—विनाश नहीं है । आप स्वयंज्योतिःस्वरूप, निर्मल एवं उपाधिसे मुक्त हैं ॥२३॥ जो लोग आपको इस प्रकारका और सब आत्मोंका आत्मा अर्थात् परमात्मा देखते और जानते हैं वे सूर्यरूपी गुरुसे पायेहुए ज्ञाननेत्रसे संसाररूप मिथ्या-सागरके पार हो जाते हैं ॥२४॥ जैसे अज्ञान रहनेपर कोई व्यक्ति रस्सीको साँप समझता है, परन्तु ज्ञान हो जानेपर उसका वह भ्रम जाता रहता है, वैसे ही जो लोग आत्माको ही आत्मा (परमात्मा) नहीं जानते उन्हीकी दृष्टिमें उसी अज्ञानसे यह भ्रमरूप मिथ्या विश्वप्रपञ्च प्रकट होता है, किन्तु ज्ञान होनेपर

वह लीन हो जाता है ॥ २५ ॥ संसारके द्वारा 'बन्धन' और 'मोक्ष' इन दोनो नामोंका मूल अज्ञान है, क्योंकि सत्य एवं प्राज्ञभावसे इन दोनोमें कुछ विशेष नहीं है। विचार करके देखो—सूर्यमें जैसे दिन या रात्रि नहीं है वैसे ही शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें बन्धन या मोक्ष नहीं है ॥ २६ ॥ अहो, अज्ञजनोंकी अज्ञता देखो! आप आत्मा हैं, सो आपको आत्मासे भिन्न (देहादि) एवं देहादिको आत्मा जानकर परमात्मा जो आप हैं उनको आत्मा (अन्तःकरण) से बाहर खोजते हैं! ॥२७॥ हे अनन्त! साधुजन जड़ पदार्थोंको त्याग करतेहुए अपने देह (अन्तःकरणमय लिङ्गशरीर) में ही आत्मा (परमात्मा) की खोज करते हैं। यदि कहो, सत्के ज्ञानसे ही प्रयोजन है, असत्के अस्वीकारकी क्या आवश्यकता है? तो विना अस्वीकारके स्वीकार नहीं हो सकता। जैसे निकट सर्प नहीं है, तथापि सर्पका अस्वीकार विना किये क्या कोई उस रस्सीको रस्सी जान सकता है, जिसमें कि सर्पका भ्रम होता रहा हो? ॥ २८ ॥ भगवन्! ज्ञानके द्वारा मुक्ति मिल सकती है, तथापि हे देव! जो लोग आपके चरणकमलोंके प्रसादका लेश पाकर भी अनुगृहीत हुए हैं वे भक्त ही आपकी महिमाके तत्त्वको जान सकते हैं; उनके सिवा और कोई भी असत्का त्याग और सत्का ग्रहण करतेहुए चिरकालतक विचार करके भी नहीं जाननेको समर्थ हो सकता ॥२९॥ इस लिये हे नाथ! इसी जन्ममें अथवा पशुपक्षी आदिके बीच किसी और ही जन्ममें आपके भक्तोंका किंकर होकर आपके चरणोंकी सेवा कर सकूँ-यही आपसे मेरी प्रार्थना है। मैं इसमें ही अपने अहोभाग्य समझूँगा ॥ ३० ॥ अहो व्रजकी गौवें और स्त्रियाँ परम धन्य हैं। क्योंकि हे विभो! आपने वत्स और बालकके रूपसे उनका दुग्धरूप अमृत पिया है। आप वही हैं, जिनको अवतक सम्पूर्ण यज्ञ भी नहीं तृप्त करसके! ॥ ३१ ॥ अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं-धन्य भाग्य हैं! क्योंकि परमानन्दस्वरूप, पूर्ण, सनातन ब्रह्म आप उनके आत्मीय (सगे स्वजन) हैं! ॥ ३२ ॥ हे अच्युत! अहंकारके अधिष्ठाता शिवजी और ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठाता इन्द्र आदि एवं मैं, हम सब इन व्रजवासियोंके इन्द्रियरूप पान-पात्रोंद्वारा, जन्महीन जो आप हैं उनके चरणारविन्दमकरन्दके आसवको निरन्तर पीते हैं; इसीसे हम जानते हैं कि हमारे परम सौभाग्यका उदय हुआ है! ॥ ३३ ॥ इस पृथ्वीपर, उसमें भी वृन्दावन, उसमें भी गोकुलमें जन्म होना ही परम सौभाग्य है; क्योंकि गोकुलमें जन्म होनेसे किसी न किसी गोकुलवासीके चरणोंकी रज शिरमें पड़ ही जायगी। प्रभो! गोकुलवासी क्यों इतने धन्य हैं? इसका कारण यही है कि सम्पूर्ण वेद आजतक जिनके चरणरजकी खोजमें हैं वही आप इन व्रजवासियोंके जीवनसर्वस्व हैं ॥३४॥ देव! आपके भक्तोंके वेषका अनुकरणमात्र करके जब पूतना और बकासुर, अघासुर आदि दुष्ट दमकगण आत्मीयजनों

सहित आपको प्राप्त हुए, तब आप इन अनन्यप्रेमी व्रजवासियोंको सर्वफलस्वरूप अपनेसे बढ़कर और कौनसा फल देंगे ? हमारा चित्त वारंवार विचार करके भी इसका कुछ निश्चय नहीं करपाता और मोहको प्राप्त होता है। क्योंकि व्रजवासियोंके भवन, धन, बन्धु, प्रियजन, पुत्र, प्राण और अभिलाषाओंका एकमात्र उद्देश्य आप ही हैं। तब यदि आप इनको भी वही फल देंगे जो असुरोंको दिया है तो इनकी श्रेष्ठता क्या रहेगी ? ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण ! लोग जबतक पूर्णतया आपके जन नहीं होते तभीतक उनको राग आदि चारोंका खटका रहता है, उनके लिये घर कारागार होता है, मोह बेड़ीसा बना रहता है ॥ ३६ ॥ हे विभो ! आप प्रपंचहीन होकर भी पृथ्वीतलमें विपन्न जनोंको आनन्द देनेके लिये प्रपंचका अनुसरण करते हैं, अर्थात् अवतार लेते हैं ॥ ३७ ॥ प्रभो ! जो लोग जानते हैं वे ही आपके विभवको जानें। आपका विभव मेरे काया, मन और वाणीका विषय नहीं है, और बहुत मैं क्या कहूँ ? ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! मुझको आज्ञा दीजिये, और मेरे अपराधको अनुग्रहपूर्वक क्षमा कीजिये। आप सब देखते हैं, इस लिये सब कुछ जानते हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, अतएव ममताका घर जो यह जगत् व शरीर है सो मैं आपको अर्पण करता हूँ ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! आप वृष्णिकुलकमलको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य हैं। आप पृथ्वी, देवता, द्विज और पशुरूप सागरकी वृद्धि करनेवाले चन्द्रमा हैं। आप पाखण्डधर्मरूप रात्रिके अन्धकारको मिटानेवाले हैं। आप पृथ्वीनिवासी राक्षसोंका संहार करनेवाले और सूर्य आदि पूज्य देवतोंके भी परम पूज्य हैं, अथवा सूर्यरूपसे सबके पूज्य हैं। जबतक यह कल्प रहेगा तबतकके लिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! इसप्रकार सब जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी महापुरुषकी स्तुति और तीन बार प्रदक्षिणा व प्रणाम करके अपने लोकको चलेगये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रजी आत्मयोनि ब्रह्मासे अनुमति लेकर ब्रह्माके द्वारा पहलेसे ही पहुँचा दियेगये वत्सोंको यमुनातटपर लाये। भगवान्के साथी बालक भी पहलेसे ही वहाँ ब्रह्माके द्वारा पहुँचा दिये गये थे-उनसे आकर भगवान् मिले ॥ ४२ ॥ यद्यपि प्राणेश्वर कृष्णके वियोगमें एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन बालकोंको कृष्णकी मायामें मोहित रहनेके कारण उतना समय आधे क्षणके समान जान पड़ा ॥ ४३ ॥ जिनकी मायामें मोहित होकर यह सब जगत् आत्मातकको भूला हुआ है, उन्हींकी मायासे इस संसारमें जिनका चित्त मोहित हो रहा है वे क्या नहीं भूलसकते ? ॥ ४४ ॥ बालकगण कृष्णको आते देखकर उत्सुक होकर कहनेलगे कि-"मित्र ! तुम तो बहुत ही शीघ्र आये ! हमने अभीतक तुम्हारे विना एक भी कौर नहीं खाया। आओजी अब भोजन करो" ॥ ४५ ॥ कृष्णभगवान्ने हँसतेहुए जाकर भोजन किया और फिर

वहाँसे वह अजगर (अघासुर) के शरीरका ढाँचा बालकोंको दिखातेहुए व्रजको लौटे ॥ ४६ ॥ मयूरपिच्छ, पुष्प और नवीन धातुओंसे चित्रित अङ्गवाले श्रीकृष्ण-चन्द्रने ऊँचे स्वरसे सींग और बाँसुरी बजाकर आनन्दपूर्वक आदरसे बछड़ोंको एकत्र किया और अपने व्रजको गये। वास्तवमें उस मोहिनी मूर्तिको देखनेके लिये व्रजबालाओंके नेत्र उत्सुक रहते थे; नन्दनन्दनका दर्शन उनकेलिये परम उत्सव था ॥ ४७ ॥ बालकोंने व्रजमें आकर कहा—"आज इन नन्द और यशोदाके पुत्र कृष्णने एक महासर्पको मारकर हमारे प्राणोंकी रक्षा की" ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! पराये कृष्णपर व्रजवासियोंको अपने भी पुत्रोंसे बढ़कर इतना अधिक प्रेम क्यों था? मैं यह सुनना चाहता हूँ, कहिये ॥ ४९ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्! सभी प्राणियोंको अपना आत्मा (जीव) सबसे बढ़कर प्रिय होता है। उस आत्माके ही प्रिय होनेके कारण और और पुत्र, धन, भवन आदि वस्तुएँ प्रिय होती हैं ॥५०॥ इसीकारण हे राजेन्द्र! अपने अपने आत्मापर शरीरधारियोंको जैसा स्नेह होता है, वैसा ममतावलम्बी धन, पुत्र और गृह आदिपर नहीं होता ॥ ५१ ॥ हे क्षत्रियश्रेष्ठ! जो लोग देहको ही आत्मा मानते हैं उनको भी देह जैसा प्रिय होता है वैसे देहका अनुसरण करने-वाले पुत्र आदि नहीं प्यारे होते ॥ ५२ ॥ इसके सिवा यह देह ममताका घर अवश्य है, किन्तु आत्माके समान प्यारा नहीं है। क्योंकि देखो, जब देह जरासे जर्जर हो जाता है तब भी जीवनकी आशा प्रबल ही रहती है, वह नहीं कम होती ॥ ५३ ॥ अतएव सब देहियोंको अपना आत्मा ही प्रियतम है, यह सब चराचर जगत् आत्माके ही लिये प्रिय है ॥ ५४ ॥ सो हे राजन्! आप श्रीकृष्णचन्द्रको सब आत्मों(जीवों)का आत्मा (परमात्मा) समझिये। वह जगत्‌के हितके लिये अवतार लेकर मायाकेद्वारा साधारण देहधारी ऐसे प्रतीत होते थे ॥ ५५ ॥ जो लोग श्रीकृष्णचन्द्रको सब जगत्‌का कारण जानते हैं उनकी दृष्टिमें यह सब चराचर जगत् कृष्णमय है, उनसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ ५६ ॥ सब वस्तुओंके परमार्थ कारणमें अवस्थित कृष्णचन्द्र उस परमार्थ कारणके भी कारण हैं; तब कौन वस्तु उनसे भिन्न हो सकती है? ॥ ५७ ॥ सब श्रेष्ठ महात्माजन कृष्णके नौकारूप चरणकमलोंका पूजन करते हैं; जो लोग उस चरणकमल-नौकाका आश्रय लिये हुए हैं उनके लिये यह अपार संसारसागर गऊके पैरके गढ़ेके समान है। वे परमपद वैकुण्ठको उन्ही चरणोंके सहारे जा सकते हैं; विपत्तिके भण्डार इस संसाररूप कारागारमें फिर उनको नहीं आना पड़ता ॥ ५८ ॥ राजन्! आपने जो हमसे पूछा था कि "हरिने पाँच वर्षकी अवस्थामें जो काम किया उसको छठे वर्षमें बालकोंने व्रजमें जाकर आजका ही कर्म कैसे कहा?"—सो उसका सब वृत्तान्त हमने तुमसे कह सुनाया ॥ ५९ ॥ जो कोई, हरिका बन्धुओंके साथ वनविहार,

अघासुरको मारना, वासपर बैठकर भोजन करना, शुद्ध सत्त्वमय अनेकों वत्स और वत्सपालोंके रूप धारण करना एवं ब्रह्माकी कीहुई स्तुति इत्यादिको पढ़ता या सुनता है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ६० ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

हे महीपाल ! इसीप्रकार व्रजमें बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रने सेतु बाँधना–लुकीलुकव्वल–बालकोंके साथ कूदना फाँदना आदि खेल खेलतेहुए कुमारअवस्था बिता दी ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय

धेनुकासुरवध

श्रीशुक उवाच–ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ॥
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
र्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रजी पाँच वर्षके पूरे होकर छठे वर्षके आरम्भमें व्रजके बीच पशुपाल बननेके योग्य हुए । सखा ग्वालबालोंसहित गौवें चरातेहुए कृष्ण और बलदाऊजी अपने श्रीचरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पवित्र एवं सुशोभित करनेलगे ॥ १ ॥ एक दिन विहार करनेकी इच्छासे वंशी बजाते बजाते अपना यश गा रहे ग्वालबाल और बछड़ोंको आगे करके बलरामसहित श्रीकृष्णचन्द्रने पशुओंको जिसमें सब भाँतिका सुवास है उस पुष्पपरिपूर्ण वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ वह वन मधुर वाणीवाले भ्रमर और अन्यान्य पक्षी तथा मृगगणसे सुशोभित एवं महात्मा सज्जनोंके अन्तःकरणके समान स्वच्छ जलवाले सरोवरोंसे शोभायमान था, और कमल-सुगन्धयुक्त वायु वहाँ डोल रही थी । यह देखकर भगवान्‌ने वहीं क्रीड़ा करनेका विचार किया ॥ ३ ॥ वनमें फल व फूलोंके भारी भारसे झुके हुए वृक्षोंको तरुण पल्लवोंकी अरुण कान्तिसे सुशोभित शाखाओंकी दिशाओंसे अपने चरणारविन्दोंको छूतेहुए देखकर श्रीकृष्णचन्द्रजी हँसते हुए आनन्दपूर्वक अपने बड़े भाई बल-

भद्रजीसे कहने लगे ॥ ४ ॥ "हे देवश्रेष्ठ! अहो, देखिये, ये सब वृक्ष अपने पूर्व-जन्मके पाप, जिनके फलसे अबकी वृक्षकी योनि मिली है, उनको विनष्ट करनेकी कामना हृदयमें रखकर फूल और फलोंकी भेंट आगे किये अपने शाखा-शिखारूप शिरोंसे आपके देववृन्दवन्दित चरणोंमे प्रणाम कर रहे हैं ॥५॥ हे आदिपुरुष! ये सब भ्रमर आपका त्रिलोकपावन मनोहर सुयश गातेहुए साथ ही साथ जा रहे हैं। हे अनन्त! निश्चय ही ये आपके भक्त सेवक ऋषिगण हैं। आप वनमें गूढ़ भावसे (अपने तेजको छिपायेहुए) विचर रहे हैं तौ भी ये आपको नहीं छोड़ते; सो ठीक ही है-क्योंकि आप इनके आत्मदेव हैं ॥ ६ ॥ हे पूज्य! ये सब वनवासी जीव धन्य हैं। देखिये ये सब मयूर आपको घरमें आये देखकर आनन्दके मारे नृत्य कर रहे हैं और ये हरिणियाँ अपने प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे गोपियोंके समान आप-कों प्रसन्न कररही हैं एवं कोकिलाएँ अपनी मधुर वाणीसे आदर सत्कार कर-रही हैं। सत्य है, साधुओंका स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ ७ ॥ आज यहाँके पृथ्वी, तृण और लतागुल्म सब आपके चरणोंका स्पर्श करके और वृक्ष व लताएँ करकमलोंके सुकोमल नखोंद्वारा छिन्न भिन्न होकर एवं नदी, पर्वत, पक्षी और मृगगण करुणाकटाक्ष लाभ कर तथा सब गोपियाँ—जिसके पानेकी लक्ष्मीजी लालसा रखती हैं उस वक्षःस्थलको पाकर धन्य हैं! ॥ ८ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! श्रीमान् श्रीपति यों वड़े भाईसे हास्य करतेहुए और ग्वालबालोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक वृन्दावनमें गोवर्धन व यमुनाके किनारे पशुओंको चरातेहुए रमण करनेलगे ॥ ९ ॥ कभी श्रीकृष्णजी मदान्ध भौंरोंके साथ आप भी गानेलगते और संकर्षणके साथ फूलमालाएँ पहनेहुए अपनी लीलाएँ गारहे सखोंका मधुर मनोहर गान सुनते ॥ १० ॥ कभी ग्वालबालोंको हँसाते व आप भी हँसतेहुए हंसोंके साथ उन्हीका ऐसा शब्द करते और कभी मोरोंके साथ नाचते ॥ ११ ॥ कभी गऊ और गोपोंके मन हरनेवाली मेघकी ऐसी गम्भीर वाणीसे दूरपर चर रहे पशुओंको उनका नाम ले ले कर प्रीतिपूर्वक पास बुलाते ॥ १२ ॥ कभी चकोर, बक, चक्रवाक, भारद्वाज और मोर आदि पक्षियोंकी ऐसी बोली बोलते और कभी जैसे पशुगण, व्याघ्र और सिंहसे डर-कर भागते हैं वैसे ही व्याघ्र आदिकी कृत्रिम कल्पना करके भीतभाव दिखाकर भागतेथे ॥ १३ ॥ जब यों खेलते खेलते थक जाते तो बड़े भाई बलदाऊको किसी सखाकी गोदमें सुलाकर आपही पैर दबाकर उनकी थकन दूर करते-हुए सेवा करतेथे ॥ १४ ॥ कभी दोनो भाई हाथसे हाथ मिलाकर खड़े हो जाते और नाचते, गाते, ताल ठोकते व कुश्ती लड़ रहे अपने साथी ग्वालबालोंकी बहुत कुछ प्रशंसा करतेथे ॥ १५ ॥ कभी थक जानेपर किसी सघन वृक्षके नीचे नवपल्लवोंके कोमल पलँगपर किसी सखाकी गोदमें शिर धरकर शयन करतेथे

अघासुरको मारना, वासपर बैठकर भोजन करना, शुद्ध सत्त्वमय अनेकों वत्स और वत्सपालोंके रूप धारण करना एवं ब्रह्माकी कीहुई स्तुति इत्यादिको पढ़ता या सुनता है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ६० ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

हे महीपाल ! इसीप्रकार व्रजमें बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रने सेतु बाँधना-लुकीलुकब्बल-बालकोंके साथ कूदना फाँदना आदि खेल खेलतेहुए कुमारअवस्था बिता दी ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय

धेनुकासुरवध

श्रीशुक उवाच—ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ॥
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
र्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रजी पाँच वर्षके पूरे होकर छठे वर्षके आरम्भमें व्रजके बीच पशुपाल बननेके योग्य हुए। सखा ग्वालबालोंसहित गौवें चरातेहुए कृष्ण और बलदाऊजी अपने श्रीचरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पवित्र एवं सुशोभित करनेलगे ॥ १ ॥ एक दिन विहार करनेकी इच्छासे वंशी बजाते बजाते अपना यश गा रहे ग्वालबाल और बछड़ोंको आगे करके बलरामसहित श्रीकृष्णचन्द्रने पशुओंको जिसमें सब भाँतिका सुवास है उस पुष्पपरिपूर्ण वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ वह वन मधुर वाणीवाले भ्रमर और अन्यान्य पक्षी तथा मृगगणसे सुशोभित एवं महात्मा सज्जनोंके अन्तःकरणके समान स्वच्छ जलवाले सरोवरोंसे शोभायमान था, और कमल-सुगन्धयुक्त वायु वहाँ डोल रही थी। यह देखकर भगवान्ने वहीं क्रीड़ा करनेका विचार किया ॥ ३ ॥ वनमें फल व फूलोंके भारी भारसे झुके हुए वृक्षोंको तरुण पल्लवोंकी अरुण कान्तिसे सुशोभित शाखाओंकी दिशाओंसे अपने चरणारविन्दोंको छूतेहुए देखकर श्रीकृष्णचन्द्रजी हँसते हुए आनन्दपूर्वक अपने बड़े भाई बल-

भद्रजीसे कहने लगे ॥ ४ ॥ "हे देवश्रेष्ठ ! अहो, देखिये, ये सब वृक्ष अपने पूर्व-जन्मके पाप, जिनके फलसे अबकी वृक्षकी योनि मिली है, उनको विनष्ट करनेकी कामना हृदयमें रखकर फूल और फलोंकी भेंट आगे किये अपने शाखा-शिखारूप शिरोंसे आपके देववृन्दवन्दित चरणोंमे प्रणाम कर रहे हैं ॥५॥ हे आदिपुरुष ! ये सब भ्रमर आपका त्रिलोकपावन मनोहर सुयश गातेहुए साथ ही साथ जा रहे हैं। हे अनन्त ! निश्चय ही ये आपके भक्त सेवक ऋषिगण हैं। आप वनमें गूढ़ भावसे (अपने तेजको छिपायेहुए) विचर रहे हैं तौ भी ये आपको नहीं छोड़ते; सो ठीक ही है–क्योंकि आप इनके आत्मदेव हैं ॥ ६ ॥ हे पूज्य ! ये सब वनवासी जीव धन्य हैं। देखिये ये सब मयूर आपको घरमें आये देखकर आनन्दके मारे नृत्य कर रहे हैं और ये हरिणियाँ अपने प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे गोपियोंके समान आप-कों प्रसन्न कररही हैं एवं कोकिलाएँ अपनी मधुर वाणीसे आदर सत्कार कर-रही हैं। सत्य है, साधुओंका स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ ७ ॥ आज यहाँके पृथ्वी, तृण और लतागुल्म सब आपके चरणोंका स्पर्श करके और वृक्ष व लताएँ करकमलोंके सुकोमल नखोंद्वारा छिन्न भिन्न होकर एवं नदी, पर्वत, पक्षी और मृगगण करुणाकटाक्ष लाभ कर तथा सब गोपियाँ—जिसके पानेकी लक्ष्मीजी लालसा रखती हैं उस वक्षःस्थलको पाकर धन्य हैं ! ॥ ८ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! श्रीमान् श्रीपति यों बड़े भाईसे हास्य करतेहुए और ग्वालबालोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक वृन्दावनमें गोवर्धन व यमुनाके किनारे पशुओंको चरातेहुए रमण करनेलगे ॥ ९ ॥ कभी श्रीकृष्णजी मदान्ध भौंरोंके साथ आप भी गानेलगते और संकर्षणके साथ फूलमालाएँ पहनेहुए अपनी लीलाएँ गारहे सखोंका मधुर मनोहर गान सुनते ॥ १० ॥ कभी ग्वालबालोंको हँसाते व आप भी हँसतेहुए हंसोंके साथ उन्हीका ऐसा शब्द करते और कभी मोरोंके साथ नाचते ॥ ११ ॥ कभी गऊ और गोपोंके मन हरनेवाली मेघकी ऐसी गम्भीर वाणीसे दूरपर चर रहे पशुओंको उनका नाम ले ले कर प्रीतिपूर्वक पास बुलाते ॥ १२ ॥ कभी चकोर, बक, चक्रवाक, भारद्वाज और गोर आदि पक्षियोंकी ऐसी बोली बोलते और कभी जैसे पशुगण, व्याघ्र और सिंहसे डर-कर भागते हैं वैसे ही व्याघ्र आदिकी कृत्रिम कल्पना करके भीतभाव दिखाकर भागतेथे ॥ १३ ॥ जब यों खेलते खेलते थक जाते तो बड़े भाई बलदाऊको किसी सखाकी गोदमें सुलाकर आपही पैर दबाकर उनकी थकन दूर करते-हुए सेवा करतेथे ॥ १४ ॥ कभी दोनो भाई हाथसे हाथ मिलाकर खड़े हो जाते और नाचते, गाते, ताल ठोकते व कुश्ती लड़ रहे अपने साथी ग्वालबालोंकी बहुत कुछ प्रशंसा करतेथे ॥ १५ ॥ कभी थक जानेपर किसी सघन वृक्षके नीचे नवपल्लवोंके कोमल पलँगपर किसी सखाकी गोदमें शिर धरकर शयन करतेथे

॥ १६ ॥ कोई पापहीन पुण्यात्मा बालक महात्मा कृष्णके चरण दवाते और कोई बयार करतेथे ॥ १७ ॥ कोई कोई स्नेहके मारे आनन्दसे परिपूर्ण होकर मन्द मृदु स्वरसे कृष्णके मनको भानेवाले गीत गाने लगतेथे ॥ १८ ॥ साक्षात् लक्ष्मीजी जिनके चरणोंकी सेवा करती हैं वही ईश्वर अपने रूप(तत्त्व)-को छिपाकर निजमायाकल्पित साधारण बालकके रूपसे उसी रूपके स्वभा-वका अनुसरण करतेहुए गोपबालकोंके साथ इसी प्रकार नित्य नई नई बाललीलाएँ करने लगे। भगवानूका ईश्वरत्व तब भी अलौकिक लीला-ओंमें झलकता ही रहताथा॥ १९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—एक दिन यों ही भगवान् विहार कर रहेथे, इतनेमें कृष्ण-बलदाऊके सखा गोपाल श्रीदामा और सुबल स्तोककृष्ण आदि अन्यान्य बालकगण भगवानूके निकट आकर प्रेमपूर्वक यों कहनेलगे कि हे महाबाहो बलभद्रजी! और हे दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रजी! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बड़ा भारी तालवन है। मित्र! वहाँ बहुत ही स्वादिष्ट अनेकों तालफल गिरते हैं एवं बहुतसे आप टूटकर गिरे पड़े हैं, किन्तु दुष्ट धेनु-कासुरके भयके कारण उनको कोई नहीं पा सकता ॥२०॥२१॥२२॥ हे राम! हे कृष्ण! वह गर्दभरूपी असुर स्वयं बड़ा पराक्रमी है और उसीके समान बलवाले अनेकों गर्दभरूप असुर उसके साथ हैं ॥ २३ ॥ उसने वहाँ गयेहुए अनेकों मनुष्योंको खा डाला है, इसकारण हे शत्रुदमन! वहाँ कोई पशु या पक्षी भी नहीं जाता ॥ २४ ॥ हमने इन सुगन्धित फलोंको आजतक कभी नहीं खाया, ये देखो चारो ओर उन्हीं फलोंकी महक फैली हुई है॥ २५ ॥ हे कृष्ण! उस महकने हमारे मनको लुभा लिया है। हमें उन फलोंके पानेकी उत्कट उत्कण्ठा है। यदि आपको रुचे तो हे बलदाऊजी! आप वहाँ चलिये और वे फल हमको भोजनके लिये दीजिये ॥ २६ ॥ मित्रोंकी यह प्रार्थना सुनकर उनका प्रिय करनेके लिये हँसतेहुए प्रभु कृष्णचन्द्र और बलदाऊजी ग्वालबालोंसहित उस तालवनकी ओर चले ॥ २७ ॥ बलदेवजीने वनमें घुसकर हाथीके समान बड़े ही वेगसे तालके वृक्षोंको हिलाया, जिससे असंख्य पकेहुए फल पृथ्वीपर टपक पड़े ॥ २८ ॥ तब गिरतेहुए फलोंका शब्द सुनकर वह गर्दभासुर पर्वतोंसहित पृथ्वीको हिलाता हुआ प्रभुकी ओर जोरसे दौड़ा ॥२९॥ वह बली असुर झपटकर बलदाऊके पास आया। उस दुष्टने पिछले दोनो पैर बलदाऊकी छातीपर मारे और ऊँचे स्वरसे गर्दभनाद करके हट गया ॥ ३० ॥ फिर उस गधेने कुपित हो, सामने आकर बलदाऊपर पिछली दुलत्ती चलाई ॥ ३१ ॥ अबकी बलभद्रने एक हाथसे उसके दोनो पैरोंके मोजे पकड़ लिये और कईबार शून्यमें घुमाकर एक बड़े भारी तालतरुकी जड़पर दे मारा। घुमातेमें ही उसके प्राण निकल गये ॥३२॥ धेनुकासुरके शरीरके आघा-तसे वह बड़ी बड़ी डालोंवाला महाताल हिल गया और टूटकर दूसरे वृक्षपर

उसे भी तोड़ता और हिलाता हुआ गिरपड़ा। इसीप्रकार एककी टक्करसे दूसरा वृक्ष, दूसरेकी टक्करसे तीसरा वृक्ष टूट गया ॥ ३३ ॥ क्रीड़ापूर्वक बलदेवजीके हाथोंसे पटकेगये गर्दभके शरीरद्वारा हताहत सब तालतरु, जैसे बड़ी भारी आँधी आवे, वैसे कम्पायमान हुए ॥ ३४ ॥ किन्तु हे अङ्ग ! जगदीश्वर अनन्त भगवान्के लिये यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है। उन्ही भगवान्में यह विश्व सूतमें कपड़ेके समान ओतप्रोत है ॥ ३५ ॥ वहाँ और जो उस असुरके बन्धुबान्धव गर्दभरूप असुर रहते थे वे भी अपने बान्धवके मर जानेसे अत्यन्त क्रोध कर बदला लेनेके लिये दोनो भाइयोंकी ओर झपटे ॥ ३६ ॥ हे नृप ! झपटकर आयेहुए उन राक्षसोंकी दोनो पिछली टाँगें पकड़कर जैसे लड़के खेल करते हैं वैसे ही दोनो भाई उन्ही तालवृक्षोंपर पटकनेलगे ॥ ३७ ॥ वह वनभूमी असंख्य असुरोंके मृत शरीर और टूटेहुए तालवृक्षोंसे व्याप्त होनेके कारण मेघमालाओंसे आवृत गगनमण्डलके समान देख पड़नेलगी ॥ ३८ ॥ कृष्ण बलरामके इस अद्भुत कर्मको देखकर सब देवगण बाजे बजाने, फूल बर-साने और स्तुति सुनानेलगे ॥ ३९ ॥ तबसे वह तालवन निर्भय स्थान हो गया, लोग बेखटके वहाँ जाकर तालके फल खानेलगे, पशुगण तृण चरनेलगे; क्योंकि कण्टक धेनुकासुर मारा गया ॥ ४० ॥ जिनका श्रवण व कीर्तन पवित्र व पुण्यरूप है, वह कमलनयन श्रीकृष्णजी साँझके समय साथी ग्वालबालोंके मुखसे अपनी बड़ाई सुनतेहुए बड़े भाईसहित व्रजको आये ॥ ४१ ॥ दर्शनकी लाल-सासे उत्सुक गोपियोंने दिनभरके बाद व्रजमें आरहे नन्दनन्दनको देखा कि घुँघरारी अलकोंपर गोरज पड़ी हुई है, केशपाशमें वनके विचित्र फूल और मोरके पङ्ख खुँसेहुए अपूर्व शोभा पारहे हैं, कमनीय कटाक्षयुक्त दृष्टि और मनोहर हँसीसे मुखमण्डलकी अपार शोभा हो रही है। वह स्वयं वंशी बजा रहे हैं और साथी ग्वालबाल पीछे पीछे साथ ही साथ उनकी कीर्तनीय कीर्तिका कीर्तन करते आ रहे हैं ॥ ४२ ॥ गोपियोंने दिनमें कृष्णके बिछोहसे उपजेहुए तापको नेत्ररूप पात्रसे मुकुन्दमुखसुधा पीकर दूर कर दिया। कृष्णचन्द्रने भी उनके लजीले, हँसी और विनयसे पूर्ण कटाक्षोंके द्वारा की हुई पूजा (सादरसत्कार) ग्रहण करते व्रजके भीतर प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ घर पहुँचनेपर पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणीने अपने पुत्रोंको यथासमय इच्छानुसार गोदमें लेकर प्रसन्न किया और परम आशीर्वाद दिये ॥ ४४ ॥ बलदाऊ और श्रीकृष्णने उबटना लगाकर, स्नान करके राहकी थकावटको दूर किया, सुन्दर वस्त्र पहने, दिव्यमाला और सुगन्धियोंसे सुशोभित हुए। फिर माताके परोसे स्वादिष्ट अन्नको आदरसहित खाकर उत्तम सेजपर सुखपूर्वक सो गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ राजन् ! इसीप्रकार वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचन्द्र एक दिन बिना

बलदाऊके अकेले ही ग्वालबालोंसहित गौवें चरानेको कालिन्दीके तटपर चले गये ॥ ४७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! वहाँ घामकी तपनसे गौवें और गोप बहुत ही प्यासे हुए। निकट शुद्ध जल न पाकर उन्होने नागके विषसे दूषित कालीदहके जलको पी लिया। उस विषैले जलका स्पर्श करते ही होनहारसे मोहित गौवोंसहित वे गोप मरकर किनारेपर ही गिरपड़े ॥४८॥४९॥ योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णने अपने सेवकोंको मरा हुआ देखकर अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उनको उसी समय सजीव कर दिया ॥ ५० ॥ स्मरणशक्तिके फिर आजानेपर, वे सब किनारेपर उठ खड़ेहुए और मारे विस्मयके एक एकका मुख निहारनेलगे ॥ ५१ ॥

अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ॥
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥

अन्तमें उन्होने निश्चय किया कि हम लोग विष पीकर मरगये थे, हमारे फिर जी उठनेका कारण करुणानिधान कृष्णकी कृपादृष्टि ही है ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय

कालियदमन

श्रीशुक उवाच—विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—राजन्! सर्वशक्तिमान् भगवान्ने काले सर्पके विषसे यमुनाके जलको दूषित हुआ देखकर उसको शुद्धकर देनेका विचार किया और नागको वहाँसे निकाल दिया॥१॥राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! उस अगाध जलके भीतर भगवान्ने कैसे सर्पके दर्पका दमन किया? और वह सर्प ही जलचर जीव न होनेपर भी अनेक युगोंतक जलके भीतर कैसे रहा? ॥ २ ॥ ब्रह्मन्! सर्वव्यापी और अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र स्वच्छन्दरूपसे अवस्थित भगवान् कृष्णने गोपरूपसे जो जो उदार लीलाएँ की हैं वे सब सुधाके समान मधुर हैं, उनको वारंवार सुनकर भी कोई नहीं तृप्त हो सकता ॥ ३ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्! कालिन्दीके भीतर एक भारी कुण्ड था—उसीमें कालियानाग रहा करता था। विषकी प्रचण्ड झारसे उस कुण्डका जल खौल खौल कर ऊपर उछलता रहता था, जिससे उसके ऊपरसे आकाशमें चलनेवाले पक्षी भी मरकर गिर पड़ते थे ॥ ४ ॥ विषजलकण मिलेहुए वायुके स्पर्शसे ही किनारेपरके चर और अचर

जीव मर जाते थे ॥ ५ ॥ दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही जिनका अवतार हुआ है उन कृष्णचन्द्रने देखा कि प्रचण्ड विषका बड़ा ही वेग है, और उसके कारण नदीका जल दूषित हो गया है। बस, उसी समय कृष्णचन्द्रजी एक बड़े ऊँचे किनारेपर लगेहुए कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये और वस्त्रसहित कर्धनीको कमरमें कसकर ताल ठोंककर उस विषैले जलमें फाँद पड़े ॥ ६ ॥ पुरुषश्रेष्ठके फाँदनेके वेगसे उस कुण्डके जलमें अद्भुत हलचल मचगई। सर्पपरिवार क्षोभको प्राप्त हुआ, उसके अमित विष उगलनेसे जल ऊपरको उछलनेलगा। विषकलुषित भयंकर तरङ्गोंकी थपेड़ोंसे कुण्डका जल चारो ओर चार सौ हाथ पृथ्वीपर फैल गया। किन्तु यह सब अनन्तबलशाली कृष्णचन्द्रके लिये कोई बड़ी बात नहीं है ॥७॥ महाराज! महागजके समान विक्रमशाली कृष्णचन्द्र उसी कुण्डके जलमें क्रीड़ा करनेलगे, उनके भुजदण्डोंसे टकराकर जल चक्कर खानेलगा और उसमें बड़ा शब्द होनेलगा। वह शब्द सुनकर कालिया नागने जाना कि मेरे भवनपर किसी शत्रुने चढ़ाई की है। यह बात उस चक्षुःश्रवा (आंखोंसे सुननेवाले [सर्पोंको कान नहीं होते] सर्प) से न सही गई। कालिया तुरन्त बाहर निकल कर कृष्णके निकट आया ॥ ८ ॥ उसने देखा कि दर्शनीय, अति सुकुमार, घनश्याम, श्रीवत्स व पीताम्बर पहने, मुसकानसे मनोहर मुखमण्डलसे चित्तको चुरा रहे, कमलकोशके तुल्य लाल लाल चरणवाले श्रीकृष्णचन्द्र निर्भय होकर जलक्रीड़ा कर रहे हैं। क्रोधान्ध सर्पने कृष्णके शरीरको अपने शरीरके बन्धनसे जकड़ लिया और मर्मस्थलोंमें काटनेलगा ॥ ९ ॥ गोपगणको तो सबसे बढ़कर कृष्णही अत्यन्त प्यारे थे। उन्होने अपना शरीर, अपने सगे, सब प्रयोजन, स्त्री और अभिलाषाएँ—सब कृष्णार्पण कर दिया था। वे प्यारे कृष्णको सर्पके शरीरमें लिपटे होनेसे निश्चेष्ट देखकर अत्यन्त कातर हो पड़े एवं दुःख पश्चात्ताप तथा भयसे संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी-तलपर गिरपड़े ॥ १० ॥ गऊ, बछिया, बछड़े और बैल सब अत्यन्त दुःखित होकर दीन शब्दसे शोक प्रकट करते और भीतभावसे कृष्णकी ओर एकटक निहारतेहुए जैसेके तैसे खड़े रहगये। उनके नेत्रोंसे जल बहनेलगा, जान पड़ा जैसे मारे दुःखके वे रोरहे हैं ॥ ११ ॥ इधर व्रजके भीतर पृथ्वी, आकाश और शरीरमें त्रिविध उत्पात होनेलगे, जो कि व्रजवासियोंको किसी बहुत शीघ्र आनेवाले भयकी सूचना देनेलगे ॥ १२ ॥ उन उत्पातोंको देखकर नन्द आदि गोपगण भयके मारे बहुतही घबड़ागये। उनको मालूम हुआ कि आज कृष्णचन्द्र बिना बलदेवके अकेले ही वनमें गऊ चरानेगये हैं। वे कृष्णके प्रभावको नहीं जानते थे, इसकारण उन्होने उन अशकुनोंको देखकर समझा कि कृष्ण अब इस संसारमें नहीं हैं। कृष्णमें ही उनके प्राण धरे रहते थे और मन लगा रहता था—इसलिये दुःख, शोक और भयसे आतुर एवं दीन सब बालक बूढ़े, जवान

व्रजवासी नर नारी कृष्णको देखनेकी लालसासे उनको खोजतेहुए गोकुलसे निकले ॥१३॥१४॥१५॥ मधुवंशमें उत्पन्न भगवान् बलभद्रजी उनको यों आतुर होते देख हँसकर चुप हो रहे और कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि वह तो छोटे भाई कृष्णके प्रभावको भलीभाँति जानते थे ॥ १६ ॥ महाराज ! प्यारे कृष्णको खोज रहे गोप गोपीगण ध्वजा वज्र अङ्कुश आदि कृष्णके चरणोंके चिन्होंसे उनके जानेका मार्ग जानकर यमुनातटपर पहुँचे ॥ १७ ॥ महाराज ! जैसे योगीजन वेदमार्गमें विशेष विशेष उपाधियोंको त्यागकर परम तत्त्वकी खोज करते हैं, वैसेही गोप गोपीगण, गौवें जिस राहमें गई थीं उस राहमें, अन्यान्य लोगोंके पैरोंकी पाँतिमें, और और चरणचिन्होंको छोड़कर, केवल पद्म, यव, अङ्कुश, वज्र और ध्वजा आदि चिन्होंसे युक्त भगवान्‌के चरणचिन्होंको देखते शीघ्रताके साथ चले ॥ १८ ॥ दूरसे ही दहके भीतर कृष्णको सर्पके शरीरसे जकड़ेहुए और गोपालोंको जलाशयके किनारे अचेत अवस्थामें पड़ेहुए एवं चारोओर पशुओंको चिल्लातेहुए देखकर सभी दारुण दुःखके कारण मूर्च्छित हो गिरपड़े ॥ १९ ॥ गोपियाँ, जिनके मनमें हरिका अत्यन्त अनुराग था, अपने प्यारे कृष्णको सर्पके शरीरसे लिपटेहुए देखकर, उनके सुहृद्भाव, हास्य, मनोहर दृष्टि और मधुर वाक्योंको स्मरण करके घोर दुःखसे सन्तप्त हुईं; उनको प्रिय कृष्णके विना त्रिलोकी शून्य देख पड़नेलगी ॥२०॥ कृष्णकी माता यशोदा पुत्रकी यह दशा देखकर अत्यन्त कातर हो दीनस्वरसे विलाप करनेलगीं और पुत्रके पास जानेको कुण्डकेभीतर घुसनेलगीं। किन्तु सब गोपियोंने,जिनको यशोदाके समान ही व्यथा थी रोतीहुई यशोदाको रोकलिया। वे उनको सँभालकर, सब व्रजवासियोंको परम प्यारी कृष्णकी लीलाएँ कहकर आँसू बहाती हुई, मृतकके समान, कृष्णकीही ओर टकटकी बाँधे निहारनेलगीं॥२१॥ कृष्ण ही जिनके प्राण हैं वे नन्द आदि सब गोप शोकसे विह्वल होकर कुण्डमें घुसनेके लिये जब उद्यत हुए तब कृष्णका प्रभाव जाननेवाले बलभद्रजीने उनको रोका ॥ २२ ॥ कृष्णभगवान् केवल मनुष्यस्वभावका अनुकरणमात्रकर रहे थे; किन्तु उन्होने जब देखा कि मुझे इस दशामें देखकर, मेरेलिये, जिनकी मेरेसिवा और कोई गति नहीं है वे स्त्री और बालकोंसमेत सब व्रजवासी अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं, तब क्षणभर सर्पके बन्धनमें रहकर तत्क्षण अलग होगये ॥ २३ ॥ भगवान्‌का शरीर बहुत स्थूल होजानेके कारण सर्पका शरीर और फण व्यथित होनेलगे वह कृष्णको अपने बन्धनमें न रख सका । तब उसने कृष्णको छोड़ दिया और अत्यन्त क्रोधसे अपने सब भयंकर फण उठाकर फुफकारें छोड़ता हुआ चोट करनेका अवसर पानेकी इच्छासे हरिकी ओर निहारनेलगा उससमय साँसके साथ उसकी नासिकाके छिद्रोंसे विष निकल रहाथा । उसके नेत्र भट्टीके समान जल रहे थे, एवं मुखोंसे आगकी लपटें निकलती जाती थीं ॥२४॥ वह सर्प

अपनी दो शिखावाली जिह्वाओंसे चौहें चाटता हुआ कराल विषाग्निकी चिनगारियोंकी वृष्टिसे कृष्णके ऊपर पूर्ण दृष्टि डालनेलगा। इधर कृष्ण भी गरुड़के समान निर्भय भावसे उसके चारो ओर चक्कर लगानेलगे, उधर सर्प भी चोट करनेका अवसर देखता हुआ साथ ही साथ घूमनेलगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार चक्कर लगानेमें ही उस सर्पकी शक्ति क्षीण होगई और शिथिल हो जानेके कारण कन्धे ऊँचे हो गये, तब सब कलाओंके आदिगुरु कृष्णचन्द्र उसका फणमण्डल नवाकर उचककर ऊपर चढ़ गये और नृत्य करनेलगे। उस समय नागके शिरोंकी आभासे भगवान्के चरणारविन्दोंकी कान्ति और भी अरुण होगई ॥ २६ ॥ भगवान्को नृत्य करनेके

लिये उद्यत देखकर गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण और अप्सराओंके झुण्ड प्रसन्नतापूर्वक मृदङ्ग, पणव, आनक आदि बाजे बजाकर गानेलगे, एवं फूलोंकी वर्षा करतेहुए प्रणामपूर्वक सहसा हरिके निकट आकर उपस्थित हुए ॥ २७ ॥ महाराज! कालियनागके एक सौ शिर थे। वह जिस शिरको उठाता था उसीको दुष्टदमनकारी कृष्णचन्द्र अपने चरणोंकी चोटसे नीचा कर देते थे। उस नागकी शक्ति और आयु क्षीण हो गई, चक्कर आनेलगा, मुखों और नासिकाओंसे घोर विषके साथ रुधिर बहनेलगा और वह एकदम अचेत (वेदम) होगया ॥२८॥ वह सर्प क्रोधसे जोर जोर साँसें लेरहा और नेत्रोंसे विष उगल रहा था। वह जो शिर उठाता उसीको नृत्य कर रहे कृष्णचन्द्र चरणोंकी ठोकरोंसे शिथिल कर देते थे। देवगण फूलोंकी वर्षा करते जाते थे ॥ २९ ॥ राजन्! कृष्णके विचित्र ताण्डवनृत्यसे सर्पके सब फण व्यथित होगये, अङ्ग चूर चूर होगये और मुखोंसे बहुत सा रुधिर बहने-

लगा। तब वह नाग मनमें चराचरके गुरु, पुराणपुरुष, नारायणका स्मरण करता हुआ उनके शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें स्थित है उन नन्दनन्दनके भारी भारसे सर्प शिथिल होगया एवं उनकी एँड़ियोंकी ठोकरसे उसके छत्रऐसे फण चूर चूर हो गये। यह देखकर उसकी स्त्री नागिनियाँ, जिनके घबड़ाहट और भयके कारण केश खुलगये है, अङ्गोंसे वस्त्र हटगये हैं, परन्तु उनकी उनको कुछ भी खबर नहीं है, अत्यन्त दुःखित होकर आदिपुरुषके निकट आईं ॥ ३१ ॥ अतिविह्वल चित्तवाली उन साध्वी नागिनियोंने अपने बालकोंको आगे करके चरणोंमें गिरकर जगदीश्वरको प्रणाम किया एवं अपराधी पतिको छुड़ानेके लिये आश्रयदाता हरिका आश्रय लिया ॥३२॥ नागकी स्त्रियाँ कहने लगीं कि—"भगवन्, आपने इस अपराधीको दण्ड दिया सो बहुत ही उत्तम और उचित किया, क्योंकि दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आपने अवतार लिया है। तथापि आप समदर्शी हैं; सन्तान और शत्रु, दोनो ही आपकी दृष्टिमें समान हैं। आपका दण्ड देना, अपराधीके लिये हितकारी होता है, क्योंकि आप उसकी भलाईके लिये ही उसको दण्ड देते हैं ॥ ३३ ॥ हमारी समझमें आपने दण्ड नहीं दिया, बरन् अनुग्रह ही किया, क्योंकि आपके दण्ड देनेसे दुष्टोंके पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। इस नागका भी पातक स्पष्ट देख पड़ता है, नहीं तो इसे सर्पकी अधम योनि क्यों मिलती? अतएव आपका क्रोध भी इसकेलिये मङ्गलकारी अनुग्रह है ॥ ३४ ॥ भगवन्! किन्तु इसने पूर्वजन्ममें स्वयं अभिमानहीन हो दूसरेका संमान करते हुए कौन ऐसा भारी तप किया है, अथवा सब प्राणियोंपर दया करना, जो कि मुख्य धर्म है, उसे किया है? जिससे सब जीवोंके जीवात्मा आप इसपर प्रसन्न हुए! ॥३५॥ आपके जिस चरणरजके पानेकी अभिलाषासे स्त्री होकर भी लक्ष्मीने सब कामनाओंको छोड़ कठोरव्रतधारणपूर्वक बहुत समयतक तप किया। उसी लक्ष्मीवांछित आपके चरणरेणुको इस अधम सर्पने आज किस महापुण्यके बलसे शिरपर धारण किया? सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ३६ ॥ देव ! जो जीव आपके चरणोंकी रज पा जाते हैं वे फिर स्वर्ग, चक्रवर्ती राज्य, पृथ्वीके आधिपत्य, ब्रह्मपद, योगकी सिद्धि या मुक्तिकी भी कामना नहीं करते ॥ ३७ ॥ संसारचक्रमें भ्रमण कर रहा जीव, जिस चरणरेणुके लाभकी अभिलाषा करनेसे ही सब विभवोंका पात्र बनता है एवं प्रेमके सिवा और उपायोंसे जिसका मिलना एकप्रकार असम्भव है, अहो हे नाथ! यह नागेन्द्र तमोगुणी और क्रोधी दुष्ट जीव होनेपर भी उसी चरणरजको प्राप्त हुआ! इस लिये इसको धन्य कहना चाहिये ॥ ३८ ॥ आप भगवान् अन्तर्यामी रूपसे सबके शरीरोंमें विराजमान हैं, तथापि उनसे आच्छन्न नहीं हैं, क्योंकि आदिकारण हैं। सुतराम् इस विश्वके पहले भी आप थे, अतएव आप आकाश आदि पञ्चतत्त्वोंके आश्रयरूप हैं।

आप कारणातीत हैं, आपको प्रणाम है ॥३९॥ आप ज्ञान और विज्ञानकी खानि हैं, क्योंकी प्रकृतिके प्रवर्तक हैं, विकारहीन हैं, निर्गुण हैं और अनन्तशक्तिशाली ब्रह्म हैं ॥ ४० ॥ आप काल हैं, कालशक्तिका आश्रय और कालके सब अङ्गोंके साक्षी हैं, अतएव विश्वरूप हैं विश्वके साक्षी, कर्ता और कारण हैं ॥४१॥ पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त–ये सब आपके रूप हैं। त्रिगुणमय अभिमानके द्वारा आप अपने अंशरूप आत्माके अनुभवको छिपायेहुए हैं ॥ ४२ ॥ आप अनन्त होनेके कारण सूक्ष्म हैं। आप कूटस्थ (मायाकी ओटमें स्थित) और सर्वज्ञ हैं। अनेक मतमतान्तरोंके वाद विवाद आपहीमें टकराकर रह जाते हैं। शब्द और अर्थ आपकी शक्तियाँ हैं। आपको प्रणाम है ॥४३॥ आप सब प्रमाणोंका मूलकारण हैं, अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंके भी नेत्ररूप हैं, अतएव कवि, हैं, अर्थात् स्वयं उनके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखते। इसीसे शास्त्र (वेद) प्रकट करनेवाले हैं। आप प्रवृत्त और निवृत्त एवं अन्तिम तत्त्व हैं । आपको वारंवार प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हे हरि! आप शुद्ध सत्त्वके तत्त्वसे प्रकाशमान श्रीकृष्ण, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। आपको प्रणाम है ॥ ४५ ॥ आप गुणमय अन्तःकरणोंके प्रकाशक हैं। आप गुणोंसे अपनेको आवृत करके अनेक रूपोंसे प्रकाशित होरहे हैं। अन्तःकरणोंकी वृत्तियोंसे आपका अनुमान होता है। आप सब अन्तःकरणोंके साक्षी, अतएव स्वगोचर हैं ॥ ४६ ॥ आपकी महिमा अतर्क्य है और आप अनुमानके द्वारा सब कारणोंके अथवा सब कार्योंकी उत्पत्तिके प्रकाशका कारण सिद्ध हैं। आप सब इन्द्रियोंके परिचालक किन्तु आत्माराम है। आत्मामें रमण करना ही आपका स्वभाव है, आपको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ आप वर (सूक्ष्म) और अवर (स्थूल) गतियोंके ज्ञाता हैं। आप सबके अध्यक्ष हैं। यह विश्व आपमें नहीं है, अर्थात् आप ही इसके निषेधकी अवधि हैं, तथापि विश्वरूप हैं। विश्वके साक्षी और विश्वका कारण हैं ॥ ४८ ॥ विभो ! आप चेष्टारहित होकर भी कालशक्तिको धारण कर अपने ही गुणगण-द्वारा इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आप संस्काररूपसे वर्तमान सब विशेष विशेष स्वभावोंको बुद्धिशक्तिसे जगातेहुए क्रीड़ा करते है, आपकी लीलाएँ अमोघ हैं ॥ ४९ ॥ त्रिलोकमें जितने शान्त, अशान्त, या विज्ञ और मूढ़ योनियोंमें उत्पन्न जीवसमूह हैं वे सब आपकी ही क्रीड़ाकी सामग्री हैं। तथापि हमको जान पड़ता है कि इस समय आपको शान्त जन ही प्रिय हैं, क्योंकि आप साधुओंके धर्मकी रक्षाके लिये ही चेष्टा कर रहे हैं। सुतराम् शान्तजनोंकी रक्षा करनेके लिये ही आपका यह अवतार हुआ है॥ ५० ॥ आप जगत्के स्वामी हैं, अपने भृत्यका यह पहला अपराध आप क्षमा करदें। हे शान्तरूप! यह नाग मूढ़ है, आपके रूपको नहीं जानता। इसको क्षमा करना ही योग्य है ॥५१॥ भगवन्!

प्रसन्न होइये। सर्पके प्राण निकलने चाहते हैं। हम इसकी स्त्रियाँ हैं, इसके मरनेसे हमारी अत्यन्त दुर्दशा होगी। हमारे स्वामीको प्राणदान करिये ॥ ५२ ॥ भगवन्! हम आपकी दासी हैं, हमको आज्ञा दीजिये–हम क्या सेवा करें? क्योंकि श्रद्धापूर्वक आपकी आज्ञा (वेदकी आज्ञा) पूर्ण करनेसे सब प्रकारके भय जाते रहते हैं" ॥५३॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! नागनारियों-की यह भावभरी स्तुति सुनकर भगवान्ने सर्पको छोड़ दिया। उसके फण टूट फूट गयेथे और वह पैरकी ठोकरोंसे अचेत हो रहाथा ॥ ५४ ॥ तब कालिया नागको कुछ कुछ चेत हुआ और इन्द्रियोंकी जड़ता जाती रही। प्राणलाभके बाद अतिकष्टसे लंबी साँसें लेता हुआ नाग अञ्जली बाँधकर हरिसे यों कातर वचन कहने लगा–"नाथ! जन्मसे ही हमारा स्वभाव दुष्ट होता है, क्योंकि हम तमोगुणी होनेके कारण बड़े ही क्रोधी होते हैं। कोई अपने स्वभावको कदापि सहजमें नहीं छोड़ सकता, अतएव स्वभाव असत्ग्रहके समान अनिवार्य है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे विधाता! अपने इस विश्वकी सृष्टि की है। अनेक गुणोंसे इस विश्वकी सृष्टि हुई है। अतएव इसमें स्वभाव, वीर्य, वल, योनि, बीज, चित्त और आकार भी विचित्र हैं ॥ ५७ ॥ भगवन्! उस विश्वमें हम सर्पजातिके प्राणी हैं; हम आपकी दुस्त्यज मायाको कैसे त्याग सकते हैं? हे सर्वज्ञ जगदीश्वर! आप ही चाहें तो अपनी मायासे मुक्त कर सकते हैं। अनुग्रह अथवा दण्ड, इनमें जो हमारे लिये भला समझिये सो करिये" ॥५८॥५९॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—राजन्! भगवान् यह सुनकर कहने लगे–"सर्प! तू यहाँ नहीं रखने पावेगा; अपने परिवार, पुत्र और स्त्रियोंको साथ लेकर सागरको चला जा। अब विलम्ब न कर ॥६०॥ गऊ या ब्राह्मण, इस नदीका जल पियें; तेरे यहाँ रहनेसे वे नहीं आसकते। इस मेरी "नागदमनलीला"को सवेरे और संध्याको जो स्मरण या कीर्तन करता है उसको तुम्हारी जातिसे भय नहीं होता। जो लोग मेरी विहारभूमिके अन्तर्गत इस सरोवरके जलमें देवतोंका तर्पण करते हैं तथा व्रत और ध्यान करके मेरा पूजन करते हैं वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। तू इस ह्रदको छोड़कर रमणक द्वीपको चला जा। मेरा वाहन गरुड़ अब तेरा कुछ अनिष्ट न कर सकेगा। अब तेरे माथेपर मेरे चरणोंके चिन्ह बनगये हैं, इसलिये गरुड़से तुझको भय नहीं है। **शुकदेवजी कहते हैं**—राजन्! अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने यों कहकर छोड़ दिया, तब नाग और नागिनियोंने प्रसन्नतापूर्वक दिव्य वस्त्र, मणि, महामूल्यके अलंकार, दिव्यगन्ध और अनुलेपन एवं श्रेष्ठ कमलमालाओंसे उनका पूजन किया। कालियाने गरुड़ध्वज जगन्नाथको पूजापूर्वक प्रसन्न किया एवं अन्तमें आज्ञा लेकर आनन्दसे प्रदक्षिणा और प्रणाम किया। तदनन्तर वह स्त्री, पुत्र और बन्धुवर्गको लेकर समुद्रके मध्यमें बने हुए रमणकद्वीपको चला गया ॥६१॥ ॥६२॥६३॥६४॥६५॥६६॥

तदैव साम्रृतजला यमुना निर्विषाभवत् ॥
अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

क्रीड़ामानवरूपी कृष्णचन्द्रके अनुग्रहसे, तबसे कालिन्दीका जल विषविहीन होकर अमृतके तुल्य स्वादिष्ट होगया ॥ ६७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय

दावानलसे बचाना

राजोवाच–नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥
कृतं किंवा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्‌ने पूछा कि—भगवन्! कालिया नागने नागोंके रहनेके स्थान रमणक द्वीपको क्यों छोड़ दिया? और फिर अकेले कालियाने ही गरुड़का क्या अपराध किया था? ॥ १ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! पहले सर्पोंने गरुड़के हाथोंसे अपना संहार होता देखकर यह निश्चय किया कि वारी वारी से प्रति प्रति महीने एक एक घरसे एक एक सर्प गरुड़के लिये किसी वृक्षके पास निर्दिष्ट स्थानपर धर दिया जाय ॥२॥ उसीके अनुसार अपने अपने परिवारकी रक्षाके लिये सब नाग पर्व पर्व पर गरुड़को एक एक अपने हिस्सेका नाग देनेलगे ॥ ३ ॥ किन्तु विषवीर्यके घमण्डसे चूर कालियानागने गरुड़को अपनेसे हीन समझकर अपना हिस्सा नहीं दिया। इतना ही नहीं, बरन् औरोंकी दी हुई बलिको भी आप ही खागया ॥ ४ ॥ यह सुनकर भगवान्‌के प्रिय पार्षद महात्मा गरुड़को महाक्रोध हुआ और वह कालियाको मारनेके लिये उद्यत हुए ॥ ५ ॥ गरुड़को अपनी ओर महावेगसे आतेहुए देखकर, दाँत और विष ही जिसके शस्त्र हैं, वह कराल जिह्वावाला नाग, उग्र लोचनोंसे विष उगलता हुआ अपने फण उठाकर युद्ध करनेके लिये उनके सामने आया एवं जिह्वा व दाँतोंसे उनको काटनेलगा ॥ ६ ॥ मधुसूदनके वाहन, प्रचण्ड वेगवाले, भीमविक्रमशाली गरुड़ने स्वर्णसदृश प्रभा-वाले वाम पक्षसे सर्पको आहत किया ॥ ७ ॥ गरुड़के पङ्खकी चोटसे कालिया अत्यन्त विह्वल होकर कालिन्दीके (इसी) दहमें भाग कर चला आया। गम्भीर होनेके कारण हरएक वहाँ नहीं जा सकता और गरुड़ भी वहाँ नहीं जा सकताथा ॥८॥ इसका कारण यह था कि एक–समय गरुड़जीने वहाँ जाकर सौभरि ऋषिके रोकने पर भी भूखके मारे एक भारी मच्छको बलात्कारसे खा लिया ॥ ९ ॥ उस मच्छके मरनेसे

मछलियोंको दुःखित और व्याकुल देखकर मुनिको दया आई। तब उन्होने वहाँके जीवोंके कल्याणके लिये उस स्थानको निर्भय बनातेहुए क्रोधसे कहा कि "आजसे यहाँ प्रवेश करके यदि गरुड़ किसी मछली या जीवको खा जायगा तो उसी समय उसके प्राण निकल जायँगे, यह मैं सत्य कहता हूँ" ॥ १० ॥ ११ ॥ इस बातको कालियानागके सिवा और कोई नाग न जानता था । इसीलिये गरुड़के भयसे वह वहाँ जाकर रहा और इससमय कृष्णचन्द्रने उसको वहाँसे निकाल दिया ॥ १२ ॥ राजन्! इधर श्रीकृष्णचन्द्रजी दिव्य माला, गन्ध, दिव्य वस्त्र, महामणि एवं सुवर्णके आभूषणोंसे विभूपित होकर उस कुण्डसे बाहर निकले ॥१३॥ उनको पाकर, चेतन (प्राण) पानेपर इन्द्रियोंकी तरह, सब गोप सचेत हो हो कर उठ खड़े हुए एवं आनन्दपूर्ण मनसे प्रसन्नतापूर्वक लपक लपक कर सबने उनको गलेसे लगाया ॥ १४ ॥ हे कौरव! यशोदा, रोहिणी, नन्द, अन्यान्य गोप और गोपियाँ—कृष्णसे मिलकर सचेत और प्रसन्न हुए। यहाँतक कि पर्वतके सूखे वृक्ष, पशु, गौवें, बैल, बछड़े आदि भी परम प्रसन्न हो उठे। कृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलदेवजी उनको गले लगाकर हँसनेलगे। सबके मनकी कामना पूर्ण हुई ॥१५॥ ॥१६॥ सपत्नीक गोपगुरु ब्राह्मणोंने नन्दजीके पास आकर कहा कि "नन्दरायजी, आप बड़े भाग्यशाली हैं! इसीसे कालिया नागके सामने जाकर भी आपका पुत्र कुशलक्षेमसे आगया । इसके लिये आप ब्राह्मणोंको धन दीजिये" । तब प्रसन्नचित्त होकर नन्दने गौवें और सुवर्ण दिया ॥ १७ ॥ १८ ॥ महाभाग्यवती यशोदाजीने नष्ट होकर फिर मिलेहुए पुत्रको छातीसे लगाकर गोदमें बैठाया और वारंवार स्नेहके आँसू बरसानेलगीं ॥ १९ ॥ सब व्रजवासीगण भूख प्यास और थकावटसे शिथिल हो रहे थे, इसलिये उस रातको वहीं कालिन्दीके किनारे गौवों-सहित बस रहे ॥ २० ॥ आधी रातको रेंड़के वनसे आप ही आप दावानल प्रकट हुआ। चारो ओरसे व्रजवासियोंको घेरेहुए वह अग्नि क्रमशः बढ़नेलगा। व्रजवासी घबड़ाकर उठ खड़े हुए। सबने देखा कि अब इससे बचना कठिनतर है, तब वे माया-मनुष्यरूप कृष्णचन्द्रके शरणागत हुए ॥२१॥२२॥ सबने हाथ जोड़कर कहा कि—हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगीश्वर! हे महाभाग अमित-विक्रमशाली बलदेवजी! देखो यह घोर अग्नि, हम आपके जनोंको भस्म करना चाहता है॥२३॥ हे प्रभो! हम आपके सुहृद्जन हैं। कृपा करके इस सुदुस्तर कालानलसे हमारी रक्षा करो। हम मरनेसे नहीं डरते, किन्तु आपके अकुतोभय चरणोंका वियोग हमको असह्य है ॥२४॥

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥

अपने जनोंको इसप्रकार व्याकुल होते देखकर जगदीश्वर अनन्तशक्तिशाली कृष्णचन्द्र उस तीव्र अग्निको पी गये ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय

प्रलम्बासुरवध

श्रीशुक उवाच-अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥
अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्णजीने आत्मीय और स्वजनोंसहित हर्षित गोपों और गोपियोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनतेहुए गौवोंसे शोभित व्रजमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ गोपालन जिस मायाका छलमात्र है-उसी मायाके द्वारा बलदेव और श्रीकृष्णजी व्रजमें नित्य नई लीलाएँ करते-हुए विहार करनेलगे । इसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आगई । यद्यपि ग्रीष्मऋतु प्राणियोंको बहुत प्रिय नहीं होती तौ भी साक्षात् भगवान् जिसमें बलदेवसहित वास और विहार करते हैं उस वृन्दावनके गुणोंसे वहाँपर वसन्त ऐसा जान पड़ता था ॥२॥३॥ उस ग्रीष्मऋतुमें भी वृन्दावन झरनोंके शब्द और झिल्लीयोंकी झनकारसे पूर्ण था, और झरनोंसे उड़ेहुए जलके कणोंसे हरे भरे वृक्षवृन्द निरन्तर सजीव देख पड़ते थे, अर्थात् ग्रीष्मके तापसे मुरझाते न थे ॥ ४ ॥ जिस स्थानमें तृण या घास नहीं थी वहाँ भी ग्रीष्मके सूर्य और अग्निका ताप व्रजवासियोंको नहीं सताता था, क्योंकि नदी, सरोवर और झरनोंके सुशीतल जलकण एवं पद्म और उत्पल आदि कमलोंके सुगन्धित परागसे परिपूर्ण सुन्दर मन्द पवन उनको शीतल करता रहता था ॥ ५ ॥ अथाह जल जिनमें भरा हुआ है उन नदियोंकी तरङ्गे किनारोंसे टकराकर वहाँकी कीचको वहा ले जाती थीं । सूर्यकी किरणें, विपके तुल्य तीव्र होकर भी वहाँकी पृथ्वीके रस(तरी)को नहीं हर सकीं और न हरियालीको ही सुखा सकीं ॥६॥ रमणीय वृन्दावनके सब वृक्ष चित्र विचित्र फूलोंसे मनोहर हो रहेथे, उनके पास और उनपर विचित्र मृग और पक्षी शब्द करते और मोर तथा भौंरे गाते एवं कोकिला और सारसोंके सरस स्वर सुन पड़ते थे ॥ ७ ॥ वहाँ विहार करनेकी इच्छा करके, भगवान् कृष्णने बलदेवसहित गोपगणके साथ गोवृन्दको आगेकर बाँसुरी बजातेहुए उस वनमें प्रवेश किया ॥८॥ प्रवाल, भौरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे और माला एवं भाँति भाँति की धातुओंसे अपनेको विभूषित करके, बलदेव और श्रीकृष्णचन्द्र, गोपबालकोंके साथ नाचने,

कुश्ती लड़ने एवं अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करनेलगे ॥ ९ ॥ कृष्णके नाचते समय कोई बालक गाने, कोई ताली और कोई सींग बजानेलगा और कोई प्रशंसा करनेलगा ॥१०॥ महाराज! नट जैसे नटकी उपासना करें वैसे ही गोपरूपसें छिपे हुए देवगण कृष्ण और बलदेवकी पूजा व प्रशंसा करते थे ॥११॥ महाराज! छोटेछोटे काकपक्ष (पट्टे) रखायेहुए कृष्ण और बलदेव, समय समय पर घूमते, फाँदते, उचकते, ताल ठोंकते, रेलमरेला करते आपसमें मल्लयुद्ध(कुश्ती)का अभ्यास करतेहुए विहार करते थे। कभी और गोपोंके नाचनेपर, आप दोनो भाई बाजे बजाते और "वाह वाह" कहकर उनकी बड़ाई करते थे ॥ १२ ॥ १३ ॥ कभी बेल, आमला और कुम्भ वृक्षके फलोंको उछालकर खींच खींच के मारकर खेलते। कभी फलबुझौवल, कभी लुकीलुकौवल, कभी आँखमूँदी–धप आदि खेल खेलते एवं कभी पशुओं और पक्षियोंकी चेष्टाओंका अनुकरण करके प्रसन्न होते थे ॥१४॥ कभी मेंढकके समान कूद कूद कर चलतेथे, कभी हँसते हुए परस्पर बालकोंके बाहुओंकी डोली बनाकर उसपर झूलते, कभी परस्पर हँसी करते, कभी राजाकी नकल करते थे ॥ १५ ॥ इसप्रकारके अनेक लौकिक प्राचीन खेल खेलते हुए श्रीकृष्णचन्द्र साथियोंसहित वनके बीच नदी, पर्वत, कन्दरा, कुञ्ज, सरोवर और बागोंमें विचर रहे थे ॥ १६ ॥ इधर तो बलदेव और श्रीकृष्णजी गोपोंके साथ गौवोंको चरातेहुए प्रीतिपूर्वक खेलमें लगेहुए थे, उधर प्रलम्ब नाम असुर, कृष्ण–बलरामको हर ले जानेके लिये गोपरूपसे वनमें आया ॥ १७ ॥ सबके अन्तर्यामी हरि सब जानगये, उन्होने उसको मारनेके विचारसे अपने दलमें प्रसन्नतापूर्वक मिलजाने दिया ॥ १८ ॥ तब खेलनेमें निपुण कृष्णने सबको पास बुलाकर कहा–"मित्रो! आओ, हम सब अवस्था और बलके अनुसार दो दल बनाकर परस्पर क्रीड़ा करें" ॥१९॥ कृष्णका कहना मानकर उन गोपोंमेंसे कुछने श्रीकृष्णको और कुछने बलरामको अपना नायक बनाथा और खेलनेलगे ॥ २० ॥ इसमें एक दलवाले दूसरे दलवालोंको पीठपर चढ़ाकर किसी निर्दिष्ट स्थानतक ले जाते थे; उसमें जीतनेवाले चढ़ते थे और हारनेवाले उनको लादते थे ॥२१॥ इसप्रकार खेलतेहुए गोपगण गौवें चराते कृष्णको आगे किये भाण्डीरक नाम वटके निकट गये ॥ २२ ॥ जब बलदाऊके दलवाले श्रीदामा आदि गोपगण खेलमें जीत गये, तब श्रीकृष्णके पक्षवाले गोप, उनको अपनी पीठपर लादकर निर्दिष्ट स्थानपर ले चले ॥ २३ ॥ हारे हुए श्रीकृष्णने श्रीदामाको, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्ब असुरने बलदेवजीको लादा ॥ २४ ॥ कृष्णको अपनेसे अधिक एवं अपनेको बहुत देरतक बलदेवका बोझा सँभालनेमें असमर्थ जानकर वह दैत्य कृष्णकी दृष्टि बचाकर वेगसे बलदेवको ले चला और निर्दिष्ट स्थानसे आगे निकल गया ॥ २५ ॥ उस दैत्यका शरीर पानी-भरे मेघके समान काला था और

उसके सब अङ्गोंमें सुवर्णके आभूषण चमक रहेथे । पर्वतराजके समान जिनका भार है उन बलरामको ले जातेसमय वह दानवदामिनीमण्डलीमण्डित चन्द्रमा-धारी गतिशील श्यामवर्ण मेघके तुल्य जान पड़ता था ॥ २६ ॥ उसका शरीर आकाशमार्गमें बड़े वेगसे जा रहा था, उसके दोनो नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही थीं, उसकी भयानक भ्रुकुटीयुक्त कुटिल दृष्टि बहुतही रौद्र थी । उसके केश जलतेहुए अग्निकी शिखाके समान ताम्रवर्ण थे, मुखमण्डल किरीट और कुण्डलोंकी झलकसे प्रकाशित था । उस दैत्यने बनावटी मनुष्यरूप छोड़कर जब अपना असली शरीर प्रकट किया, तब उसके इस अद्भुत रूपको देखकर पहले तो बलदेवजी कुछ विस्मित और भीत होगये ॥२७॥ किन्तु तत्क्षण ही अपनी महिमाको स्मरण करके निर्भय बलभद्रने दृढ़ मुष्टिसे, जैसे इन्द्रदेव किसी पर्वतपर वेगसे वज्र मारें वैसे ही गोपदलसे अलग करके अपनेको ले जारहे उस दैत्यके शिरपर कुपित होकर प्रहार किया ॥ २८ ॥ महाराज! मुष्टि लगते ही उसका शिर फटगया, मुखसे रुधिर गिरनेलगा, स्मृतिशक्ति नष्ट होगई । वह मरतेसमय इन्द्रके वज्रद्वारा आहत पर्वतकी भाँति एक बार भैरव रव करके गिरपड़ा ॥२९॥ बलशाली बलदेवजीने प्रलम्बासुरका वध किया, यह देखकर गोपोंको बड़ा विस्मय हुआ और वे वारंवार उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३० ॥ कोई कोई महा-बली और प्रशंसाके योग्य पात्र बलदेवको आशीर्वाद देनेलगे । जैसे कोई मरकर मिला हो वैसी ही उत्सुकताके साथ वे लोग बलदेवजीसे गले मिलनेलगे ॥ ३१ ॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥
अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ॥ ३२ ॥

पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवगणको परम आनन्द हुआ और वे बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा करतेहुए "वाह वाह" कहकर वारंवार उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय

पशु और गोपोंकी दावानलसे रक्षा

श्रीशुक उवाच–क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—एक दिन सब गोप क्रीड़ामें आसक्त हो रहेथे। इसी अवसरमें उनके पशु, किसी रोकनेवालेके न होनेसे इच्छानुसार विचरते

हुए तृणके लोभसे दूर निकल कर अगम्य तृणपूर्ण स्थानको चले गये ॥ १ ॥ बकरी, गऊ और भैंसें एक वनसे दूसरे वनमें जाकर तृण चरनेलगीं। अकस्मात् वहाँ निकट ही दावानल लग गया । उस दावानलके तापसे तपेहुए प्यासे पशुगण चीत्कार करतेहुए भागे और अन्तको मूँजके वनमें घुसगये ॥ २ ॥ इधर कृष्ण बलदेव आदि गोपगण, पशुओंको न देखकर पछतातेहुए उनकी खोज करनेलगे, किन्तु उन्होने उनको न देख पाया ॥ ३ ॥ पशुही गोपोंकी जीविका थे । उस जीविकाको नष्ट होते देख गोपगण अचेतसे होगये, एवं पशुओंके खुर और दाँतोंसे कटेहुए तृणों और पृथ्वीपर बनेहुए खुरोंके चिन्होंसे उनके जानेकी राह पहचानतेहुए आगे चले ॥ ४ ॥ अन्तको मूँजके वनमें राह भटके हुए चिल्ला रहे अपने गोधनको देखपाया। प्यासे और थकेहुए गोपगण अपने गोधनको पाकर वहाँसे लौटे ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मेघसदृश गम्भीर वाणीसे नाम ले ले कर बुलाया, तब अपने अपने नामको सुनकर गौवें प्रसन्न हुईं और उन्होने उत्तरसूचक प्रतिध्वनि भी की ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें वनवासियोंको नष्ट करनेवाला भयानक दावानल प्रकट हुआ और प्रचण्ड वायुकी सहायतासे घड़ी घड़ी भर पर घोर रूप धारण कर रही लपटोंसे आसपासके स्थावर (वृक्षआदि) और जङ्गम (पशुपक्षी–मनुष्यआदि) जीवोंको भस्म करता हुआ इच्छानुसार फैलनेलगा ॥ ७ ॥ उस दावानलको अपने निकट ही आगया देखकर गौवें और गोपगण भयके मारे व्याकुल हो गये और सब प्राणी जैसे मृत्युके भयसे आर्त होकर शरणागत होते हैं वैसे ही वे कातर गोपगण बलदेव और कृष्णके पास आकर कहनेलगे कि ॥ ८ ॥ "हे कृष्ण ! हे बलभद्र ! आपका वीर्य महान् और विक्रम अमित है । हम लोग इससमय दावानलसे भयभीत हो रहे हैं । कृपाकर इससे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! यह बात निश्चित है कि आप जिनके बान्धव हैं या आपके जो बान्धव (जन) हैं उनको किसी प्रकारका क्लेश नहीं होना चाहिये । हे सर्वधर्मज्ञ ! हम तो आपको ही अपना नाथ समझे हैं और आप ही हमारी परम गति हैं" ॥ १० ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—राजन् ! भगवान् हरिने बन्धुओंके कातर वचन सुनकर कहा–"डरना नहीं, आँखें बन्द कर लो" ॥ ११ ॥ आज्ञाके अनुसार उन्होने जब नेत्र बन्द कर लिये तब योगेश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने उस अग्निको पी लिया । इसप्रकार अग्निको शान्तकर हरिने अपने जनोंकी रक्षा की ॥ १२ ॥ तदनन्तर गोपोंने आँख खोलकर देखा तो अपनेको भाण्डीर वटके निकट पाया। इसप्रकार अपनेको गौवेंसहित दावानलसे विमुक्त देखकर वे बहुत ही विस्मित हुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णके उस अनिर्वचनीय योगवीर्य और योगमायाके अद्भुत प्रभाव एवं अपनेको दावानलसे छुड़ानेके माङ्गलिक कार्यपर विचार कर गोपोंने जाना कि कृष्ण कोई देवता है ॥ १४ ॥

सायंकालको बलदेवसहित श्रीकृष्णजी, गौवें लौटाकर बलदेवजीके साथ बंशी बजातेहुए और पीछे पीछे आ रहे गोपोंके मुखसे अपनी बड़ाई सुनतेहुए व्रजको लौटे ॥ १५ ॥

गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने ॥
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥ १६ ॥

गोविन्दको देखकर गोपियाँ परम आनन्दको प्राप्त हुईं । गोपियोंको कृष्ण-वियोगके अवसरपर एक क्षण सौ युगके समान जान पड़ता था ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय

वर्षा और शरदृतुका वर्णन

श्रीशुक उवाच–**तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥**
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—गोपोंने व्रजमें आकर कृष्णके हाथों दावानलसे अपनी रक्षा और बलभद्रके हाथों प्रलम्बासुरका मारा जाना, ये दोनो अद्भुत कर्म गोपियोंसे कहे ॥ १ ॥ गोपियाँ और वृद्ध गोपगण यह वृत्तान्त सुनकर बहुत ही विस्मित हुए । उन्होने समझा कि ये कृष्ण और बलदेव कोई श्रेष्ठ देवता हैं, जो व्रजमें प्रकट हुए हैं ॥२॥ महाराज ! कुछ दिनबाद, प्रायः सब प्राणियोंकी उत्पत्ति जिसमें होती है उस वर्षाऋतुका आविर्भाव हुआ । घनघटाओंसे आकाशको भी क्षोभ हुआ और इन्द्रधनुके घेरोंसे उसकी अपूर्व शोभा हुई ॥ ३ ॥ वर्षाके आरम्भमें अत्यन्त नील मेघोंसे ढँका हुआ और बिजलीके शब्दोंसे परिपूर्ण आकाश, जिसकी ज्योति स्पष्ट नहीं है उस सगुण ब्रह्मके समान देख पड़नेलगा ॥ ४ ॥ जैसे राजा, सदैव अपनी प्रजासे 'कर' लेकर समय पड़नेपर उसी प्रजाके लिये उस धनको खर्च करता है वैसे ही आठ महीनेतक सूर्यदेवने पृथ्वीसे जो जलरूप धन खींचा था वही वर्षाऋतु आनेपर अपनी किरणोंसे छोड़ने(बरसाने)लगे ॥५॥ जैसे दयाशील लोग सन्तप्त जनको देखकर दयाके मारे उसकी तृप्ति (शान्ति)के लिये अपना जीवनतक दे देते हैं वैसे ही प्रचण्ड वायुद्वारा संचालित एवं दामिनी-दाममण्डित महामेघमण्डल, ग्रीष्मकी गर्मीसे तपेहुए विश्वकी तृप्तिकेलिये जीवन-रूप जलकी वर्षा करनेलगा ॥ ६ ॥ जैसे किसी कामनाके लिये तप करनेसे किसी तपस्वीका शरीर, दुर्बल होकर–फिर वह कामना पूरी होनेपर हृष्ट पुष्ट हो जाय

वैसे ही ग्रीष्मऋतुमें कृश होगई पृथ्वी, वर्षाका जल पाकर हरीभरी होगई ॥ ७ ॥ सायंकालमें घोर अन्धकारके कारण केवल जुगनुओंकी ज्योति देख पड़नेलगी और चन्द्रआदि ग्रहोंका प्रकाश छिप गया, जैसे कलियुगमें पापके प्रतापसे पाखण्डपथ इधर उधर प्रकाशित होंगे और वेदमार्ग लुप्तप्राय हो जाय गा ॥ ८ ॥ जैसे नित्य-कर्म समाप्त होनेपर अपने आचार्यके शब्दको सुनकर, शिष्य लोग भी पीछे पीछे स्वाध्याय पाठ करनेलगते हैं वैसे ही मेघनादको सुनकर मेंडक भी अपना शब्द करनेलगे ॥९॥ जो पहले जलके विना सूख रही थीं वे छोटी छोटी नदियाँ, इन्द्रियोंके वशवर्ती पुरुषके देह, धन और सम्पत्तिके समान कुमार्गमें जानेलगीं ॥ १० ॥ यह पृथ्वी, कहीं हरी घासके कारण हरी हो कर, कहीं बीरबहूटियोंसे लाल होकर और कहीं छत्ररूप छत्राक(धरतीका फूल)की छाया धारण करके राजोंकी सेना-सम्पत्तिके समान शोभित हुई ॥ ११ ॥ सब खेत अपनी नवसस्य-संपत्तिसे किसा-नोंको आनन्द एवं "सुकाल और अकाल दैवके अधीन है"–इस बातको न जाननेवाले धनी महाजनों(अन्नके व्यापारियों)को सन्ताप देनेलगे ॥ १२ ॥ लोग हरिकी सेवा करके जैसे सौंदर्य पाते हैं, वैसे ही सब जल और स्थलके रहनेवाले जीवोंने नवीन जलके सेवनसे मनोहर रूपको पाया ॥ १३ ॥ वायुके सङ्गसे चञ्चल हुई तरङ्गोंसे पूर्ण समुद्र, नदियोंसे मिलकर, कच्चे योगीके विषय-वासना पूर्ण और भोगसङ्गत चित्तके समान क्षोभको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ जिनका चित्त भगवान्‌में लगा हुआ है वे अनेक संकटोंके आ पड़नेपर जैसे व्यथित नहीं होते, वैसे ही पर्वतसमूह, वर्षाके बड़े बड़े बूँदोंकी चोटें खाकर भी विचलित नहीं हुए ॥ १५ ॥ बढ़ीहुई घासके ढँकेहुए सब संस्कारविहीन मार्ग संदिग्ध हो गये, जैसे बहुत समयसे ब्राह्मणोंके द्वारा जिनका अभ्यास (पठन पाठन) नहीं हुआ, वे मन्त्र नष्टप्राय और संदिग्ध हो जाते हैं ॥ १६ ॥ गुणी पुरुषोंपर भी जैसे कुलटा-ओंका प्रेम स्थिर नहीं रहता, वैसे ही चञ्चल बिजलियाँ भी लोकोंका उपकार करने-वाले मेघोंके निकट स्थिर होकर रहती नहीं देख पड़तीं ॥ १७ ॥ गुणसमष्टिमय इस प्रपञ्चमें जैसे निर्गुण पुरुष विराजमान है वैसे ही घनगर्जनसे पूर्ण आकाशमें गुण-(प्रत्यञ्चा) हीन इन्द्रका धनुष सुशोभित हुआ ॥ १८ ॥ जैसे जीवात्मा अपने ही चैतन्यसे प्रकाशित जो अहंकार है उससे आच्छन्न होनेके कारण भलीभाँति प्रका-शित नहीं होता, वैसे ही चन्द्रमा भी अपनी ही कान्तिसे प्रकाशित मेघोंसे आच्छन्न होनेके कारण भलीभाँति प्रकाशित नहीं होता था ॥ १९ ॥ गृहमें रहते रहते जिनका अन्तःकरण सांसारिक तापोंसे तप गया है वे विरक्त पुरुष जैसे अपने घरमें हरिभक्तके आगमनसे सन्तुष्ट होते हैं, वैसे ही मयूरवृन्द मेघोंके आगमनसे प्रसन्न होकर नृत्य आदिके द्वारा हृदयकी प्रसन्नता प्रकट करनेलगे ॥ २० ॥ घोर तपके श्रमसे कर्शित ऋषिलोग जैसे अनुष्ठानके पीछे तपकेद्वारा प्राप्त भोगोंका

उपभोग करके नाम भाँतिके नवीन शरीर धारण करते रहते हैं, वैसे ही ग्रीष्मके घोर घाममें तपे मुरझाये और सूखेहुए सब वृक्ष भी जड़से जल पान करके भाँति भाँति के रूपोंसे सुशोभित हुए ॥ २१ ॥ यद्यपि गृहस्थाश्रममें भयानक कर्मोंका अभाव नहीं है तौ भी जैसे अधिकतर दुराशय नीच व्यक्ति उसीमें रहना अच्छा समझते हैं, वैसे ही यद्यपि वर्षामें सरोवरोंके किनारे कीचड़, कङ्कड़ और काँटोंकी अधिकता होती है तौ भी चक्रवाक (चकई चकवा) पक्षी वहीं रहनेलगे ॥२२॥ जैसे कलियुगमें पाखण्डियोंके नष्ट तर्कोंसे वेदमार्ग नष्टभ्रष्ट हो जायँगे वैसे ही इन्द्रके वरसनेपर जलके वेगसे सेतु (पुल) टूट गये ॥ २३ ॥ जैसे नरपतिगण, पूजनीय पुरोहित ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे समय समय पर प्रजाकी अनेक कामनाएँ पूरी करते हैं, वैसे ही मेघगण, वायुसंचालित होकर प्राणियोंके लिये अमृत (जल) की वर्षा करनेलगे ॥ २४ ॥ वर्षाऋतुमें सब वन, उपवन और निकुञ्ज नवसम्पत्तिसे सुशोभित हो उठे और जहाँ तहाँ खजूर व जामुनके वृक्ष पकेहुए फलोंसे लद गये। तब श्रीकृष्णजी, बलभद्रसहित गऊ और गोपालोंको साथ लेकर क्रीड़ा करनेके लिये वहीं (वृन्दावनमें) गये ॥ २५ ॥ दूध भरे थनोंके भारसे मन्द मन्द चलनेवाली गौवें, भगवान् जब उनको नाम ले लेकर पुकारते तब परम प्रीतिसे जल्दी जल्दी पैर धरतीहुई प्रभुके पास जाती थीं। चलतेसमय उनके थनोंसे दूध निकलता जाता था ॥ २६ ॥ भगवान्‌ने देखा कि सब वनवासी आनन्दित देख पड़ते हैं, फूलेहुए वृक्षोंसे मधुमय पराग (रज) की वर्षा हो रही है, घटाएँ घिरी हुई हैं, पर्वतपर जलकी धाराएँ गिर रही हैं, उनके सोहावने शब्दसे पर्वतकी कन्दराएँ गूँज रही हैं ॥२७॥ श्रीकृष्णजी जल वरसते समय कभी किसी सघन वृक्षके तले, कभी किसी कन्दराके भीतर बैठकर बलभद्र और सखागण साथ कन्द-मूलफलभोजन और अनेक क्रीड़ाएँ करते थे, एवं कभी जलके किनारे शिलापर बैठकर घरसे आयेहुए दही और भातको खाकर बहुत ही प्रसन्न होते थे॥२८॥२९॥ वनमें अपने दूध भरे स्तनोंके भारसे चलनेमें थकी हुई गौवें, बैल और बछड़े सब भलीभाँति तृप्त होकर नई घासपर बैठेहुए आँखे मूँदे सुखसे पागुर कर रहे हैं ॥ ३० ॥ इसप्रकार अपने पशुओंको सुखी और मस्त देखकर एवं वर्षाकालके सब जीवोंको सुखी बनानेवाली अपूर्व वनकी शोभा निहारकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होने अपनी शक्तिके द्वारा समृद्धिसम्पन्न वर्षाके सुहावनेपनको हृदयसे सराहा ॥ ३१ ॥ इस क्रीड़ाकौतुकमें आसक्त श्रीकृष्ण बलदेवने ब्रजमें विहार करतेहुए वर्षाऋतुको विता दिया। वर्षा बीतनेपर शरद् ऋतुका आविर्भाव हुआ। तब आकाशमें मेघोंका नाम भी नहीं रहा, जल विमल और वायुका वेग भी शान्त होगया ॥ ३२ ॥ फिर जैसे योगाभ्यास करनेसे भ्रष्ट योगियोंके चित्त शुद्ध हो जाते हैं वैसेही कमल उपजानेवाली शरद्के फिर आनेसे

सरोवरोंके जल निर्मल और स्थित होगये ॥ ३३ ॥ जैसे श्रीकृष्णकी भक्ति हरएक आश्रममें स्थित व्यक्तिके अमङ्गलको हरलेती है वैसेही शरद्ने आकाशके मेघोंको, वर्षा अधिक होनेके कारण प्राणियोंके एक स्थानपर रहनेको, पृथ्वीकी कीचड़को और जलके मलको हर लिया ॥ ३४ ॥ जैसे पापोंसे मुक्त मुनिजन सब वासनाएँ छोड़कर शान्त रूपसे शोभा पाते हैं वैसेही मेघवृन्द अपना सर्वस्व (जल) देकर शुद्ध (श्वेत) रूपसे सुशोभित हुए ॥ ३५ ॥ जैसे ज्ञानीलोग समयानुसार ज्ञानरूप अमृत (उपदेशके द्वारा) देते हैं और नहीं भी देते, वैसेही पर्वतसमूह (झरनोंद्वारा) कहीं निर्मल जल देते हैं और कहीं नहीं भी देते ॥ ३६ ॥ जैसे मूढ़ परिवारी मनुष्य, अपनी आयुका नित्य क्षीण होना नहीं जानते, वैसे ही थोड़े जलमें रहनेवाले जलजीव जलके नित्य घटनेको नहीं जानते ॥ ३७ ॥ दीन, दरिद्र, इन्द्रियपरवश कुटुम्बी पुरुषके समान थोड़े जलमें रहनेवाले जीवोंको शरद् कालके सूर्यतापकी तपन व्यथित करनेलगी ॥ ३८ ॥ जैसे धीरजन, आत्मासे भिन्न जो देह आदि हैं उनमें अहंभावरूप ममताको धीरे धीरे छोड़ देते हैं, वैसे ही भूमि अपनी कीचड़को और लताएँ अपनी कचाईको धीरे धीरे छोड़नेलगीं ॥ ३९ ॥ जैसे संपूर्णरूपसे कर्मनिवृत्ति होनेपर मुनिलोग वेदपाठ छोड़ समाधिस्थ और शान्त हो जाते हैं वैसेही शरद् ऋतुके आनेपर समुद्रका जल निश्चल और शब्दहीन हो गया ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंके द्वारा नष्ट होरहे प्राण (शक्ति) को जैसे योगीलोग इन्द्रियमार्गोंको रोककर सुरक्षित रखते हैं वैसे ही किसान लोगोंने इधर उधर बहे जारहे जलको मेड़ बाँधकर खेतोंमें ही रोक लिया ॥ ४१ ॥ जैसे विद्या (ज्ञान) से देहाभिमान और गोपालके दर्शनसे गोपियोंका विरहताप मिट जाता है वैसे ही चन्द्रमाकी शीतल किरणोंके स्पर्शसे, शरद् ऋतुके सूर्यकी प्रचण्ड तपनसे तपेहुए लोगोंका ताप शान्त हो जाता था ॥ ४२ ॥ जैसे सत्त्वगुणावलम्बी चित्त, सब वेदके मार्गोंको या वेदके अर्थोंको दिखलाकर शोभा पाता है वैसे ही शरद् ऋतुमें मेघविहीन आकाश रात्रिके समय तारागणको प्रकाशित कर शोभायमान हुआ ॥ ४३ ॥ जैसे पृथ्वीमण्डलमें वृष्णिमण्डलके बीच यदुपति कृष्णचन्द्रकी शोभा हो वैसे ही तारामण्डलमण्डित होनेसे आकाशमें अखण्डमण्डल चन्द्रमा शोभायमान हुआ ॥ ४४ ॥ कृष्णमें ही जिनके प्राण रहते हैं वे गोपियाँ जैसे चित्तके द्वारा प्राणप्यारे कृष्णसे मिलकर विरहसन्तापको दूर करती हैं, वैसेही कुसुमित वनोंसे आरहे समशीतोष्ण पवनका सेवन करनेसे सबके हृदय शीतल होनेलगे। अथवा उस वायुके सेवनसे सबसे हृदय तापहीन होते थे, किन्तु गोपियोंके हृदयमें, श्रीकृष्णके विरहानलकी तपन घटनेके बदले और भी बढ़ती थी ॥ ४५ ॥ जो कर्म केवल ईश्वरकी आराधनाके लिये निष्कामभावसे किये जाते हैं उनके फल बलपूर्वक उनका अनुसरण करते हैं,

जिससे वे कर्म आपही भोग-गर्भ (सब भोगोंके उपजानेवाले) हो जाते हैं। वैसेही शरद् ऋतुमें स्वामियोंके बलपूर्वक अनुगमनसे गऊ, चिड़ियाँ, हरिणियाँ और स्त्रियाँ अपनी इच्छा न रहनेपर भी गर्भिणी होगईं ॥४६॥ राजन्! जैसे राजाको देखकर सब लोग निर्भय होकर प्रसन्न होते हैं किन्तु चोर लोग संकुचित और अप्रसन्न रहते हैं, वैसे सूर्यके उदयमें कुमुद (कोकावेली) के सिवा सब कमल फूल उठे ॥ ४७ ॥ गाँवों और नगरोंमें नवान्नभोजनके उपलक्ष्यमें किए गए अनेक वैदिक उत्सवों और इन्द्रियोंकी तुष्टिके लिए अनेक लौकिक महा उत्सवोंसे एवं हरिकी दोनो कलाओं (कृष्ण और बलदेव) से, पकेहुए अन्नसे परिपूर्ण पृथ्वीकी बड़ीही शोभा हुई ॥ ४८ ॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ॥
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

जैसे मन्त्र आदिके प्रभावसे योगसिद्ध सिद्धलोग जबतक आयु पूर्ण नहीं होती तबतक उसी शरीरमें रहकर समय आनेपर योगसिद्धियोंके द्वारा मिलनेवाले अपने अपने देव, गन्धर्व आदि शरीरोंको पाते हैं वैसे ही चौमासेके कारण किसी एकही स्थानमें चार महीने रुकेहुए वणिक्जन (बनिज करनेवाले) से, राजा, तपस्वी और यात्रीजन यात्रा करके अपने अपने काममें लगगए ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय

गोपिकागीत

श्रीशुक उवाच–इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥
न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! शरद् ऋतुके आनेसे वनके जलाशयोंका जल स्वच्छ होगया एवं वायु भी कमलमण्डित सरोवरोंके संसर्गसे सुगन्धित होकर डोलने लगा। भगवान्‌ने ऐसे समय गोप और गौवोंको साथ लेकर विहार करनेके लिए वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ फूलेहुए वृक्षोंकी पाँतियोंपर मतवारे भौंरे और पक्षीगण बैठेहुए मधुर कलरवकर रहे हैं और उनके उस शब्दसे वनके सरोवर नदियाँ और सब पर्वत प्रतिध्वनित हो रहेहैं। मधुसूदन, उस वनमें प्रवेश करके गोपगण और बलभद्रके साथ गौवें चरातेहुए मधुर स्वरसे वंशी बजानेलगे ॥ २ ॥ कृष्णकी बाँसुरीका शब्द सुनकर गोपियोंके मनमें

उत्पन्न हुए कामदेवने अपना अधिकार कर लिया। उनमें कोई कोई गोपी कृष्णके पीछे सखियोंसे उनके गुणोंका वर्णन करनेलगीं ॥ ३ ॥ किन्तु वर्णन करतेसमय उनके चरित्रोंका स्मरण हो आया, तब कामदेवके प्रबलवेगसे चित्त चञ्चल होनेके कारण कुछ देरतक वे कुछ भी न कहसकीं ॥ ४ ॥ वे सोचनेलगीं कि "मोर-पंखोंका मुकुट पहने, कानोंमें कनैरके फूल धारण किये, सुवर्णके समान सुवर्ण पीत-पट और वैजयन्ती मालासे सुशोभित कृष्णचन्द्रने बाँसुरीमें अधरसुधा पूर्ण करते-हुए उसके छिद्रोंमें अँगुली धरकर स्वर निकालतेहुए अपने चरणोंके विहारकी भूमि वृन्दावनमें गोपगणके साथ उनके मुखोंसे गाईगई अपनी कीर्ति सुनतेहुए नटवर वेषसे प्रवेश किया होगा" ॥ ५ ॥ हे राजन्! सब प्राणियोंके लिये मनोहर मुरलीके स्वरको सुनकर सब व्रजबालाएँ परस्पर इसप्रकार प्यारे कृष्णका वर्णन कर अपने मनको बहलानेलगीं ॥ ६ ॥ गोपियाँ कहनेलगीं—"हे सखियो! इस समय व्रजके स्वामी दोनो भाई कृष्ण और बलदेवने साथी गोपगणके साथ वनमें प्रवेश किया है। बाँसुरी बजाते समय अनुरागपूर्ण कटाक्षोंसे मनोहर उनका मुखारविन्द जिन्होने देखा होगा उनको नेत्रोंका परम या चरम फल मिल गया! क्योंकि हमारी समझमें इससे बढ़कर नेत्र होनेका कोई फल नहीं हो सकता" ॥७॥ यह सुनकर दूसरी गोपीने कहा कि—"अहो! इन गोपोंनें कौन बड़ा भारी सुकृत किया है! जो कृष्ण और बलदेव समय समय पर इनकी सभाओंमें नील और पीतवस्त्र पहनकर विचित्र वेषसे इनकी शोभा बढ़ाते हैं, एवं उनके नीलवसन और पीतपट-पर आमकी मञ्जरी, मयूरोंके पङ्ख, कमलके फूल और पद्मकी मालाएँ एक अनिर्वच-नीय छवि दिखलाती हैं। जैसे रङ्गभूमिमें दो श्रेष्ठ नट गा रहे हों वैसे ही गोपोंकी सभामें दोनो भाई बाँसुरी बजाते और गाते देख पड़ते हैं" ॥ ८ ॥ किसी अन्य गोपीने कहा कि—"गोपियो! इस वंशीने कौन ऐसा पुण्य किया है? देखो, दामोदरके अधरोंकी सुधा, जिसके पीनेका अधिकार केवल हम गोपियोंको है, उसको रसमात्र अवशिष्ट रखकर स्वयं स्वतन्त्रताके साथ अकेले ही पिए जाती है। जिनके जलसे इस वंशीका शरीर पुष्ट हुआ है वे नदियाँ इसका यह अपूर्व सौभाग्य देखकर प्रसन्न हो रही हैं और उन नदियोंके बीच फूलेहुए कमलोंकी श्रेणी देखकर जान पड़ता है कि हर्षके मारे उनके शरीरमें रोमांच हो आया है। वंशमें हरिसेवक सन्तानरत्न उत्पन्न होनेपर उसे देखकर कुलके बूढ़े लोग जैसे आनन्दके आँसू बहातेहैं वैसे ही वंशीके ऐसे अपूर्व सौभाग्यको देखकर उसके वंशके सब पुराने वृक्ष मधुधारारूप आँसू बरसा रहे हैं" ॥ ९ ॥ किसी गोपीने कहा—"सखी! देखो देखो, श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके संसर्गसे यह श्रीवृन्दावन कैसी शोभा पाता है! गोविन्दकी वंशीके स्वरसे मस्त मोर नाच रहेहैं और उस आनन्दमय नृत्यको अन्य सब प्राणी पर्वतके शिखरों और वृक्षोंपर, सब चेष्टाएँ

छोड़े एकाग्र मनसे देख रहे हैं । सच बात तो यह है कि यह वृन्दावन पृथ्वीकी अनुपम कीर्तिको फैलानेवाला है (अर्थात् स्वर्गसे भी बढ़कर हो रहा है)" ॥१०॥ अन्य गोपीने कहा—"सखियो ! हरिणियाँ यद्यपि पशुयोनिमें उत्पन्न हुई हैं तौ भी धन्य हैं ! क्योंकि वंशीरव सुनती हुई अपने अपने स्वामियोंके साथ विचित्रवेषधारी प्यारे नन्दनन्दनको सादर प्रेमकटाक्षपूर्ण दृष्टिवृष्टिकी भेंट समर्पित करती हैं" ॥११॥ अन्य गोपीने कहा—"गोपियो ! जिनके रूपको देखकर और शीलस्वभावको सुनकर सबही स्त्रियोंको आनन्द होता है, उन कृष्णचन्द्रको देखकर और उनकी बजाई बाँसुरीसे निकले विचित्र गीतोंको सुनकर विमानोंपर अपने पतियोंके साथ बैठीहुई सुरसुन्दरियाँ कामदेवके वेगसे अधीर हो मोहको प्राप्त हुईं, उनकी वेणीयोंके बन्धन शिथिल होगये, उनसे फूल गिरनेलगे एवं अङ्गोंसे वस्त्र हटगये, पर उनको इसकी कुछ भी सुधि नही हुई" ॥ १२ ॥ किसीने कहा कि—"कान उठाकर श्रीकृष्णके मुखसे निकलेहुए गीतरूप अमृतको पीरही गौवें, नेत्रोंके द्वारा उनकी मनोहर मूर्तिको हृदयमें स्थापित कर आँखोंमें आनन्दके आँसू भरेहुए चुपचाप खड़ी रहती हैं । उनके बछड़े, जिनसे आपही आप दूध बह रहा है उन स्तनों और घासके कौरोंको मुहमें दबायेहुए चित्रके लिखेसे हरिकी ओर टकटकी लगाये उनके मधुर गानको सुनते रहते हैं ॥ १३ ॥ सखियो ! इस वनके सब पक्षीगण मुनियोंके तुल्य हैं, क्योंकि ये नवपल्लवमण्डित वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठकर चुपचाप एकाग्रभावसे कृष्णको निहारते और उनकी बाँसुरीके मधुर गीतको सुनते हैं ॥१४॥ सचेतनोंकी कौन कहे, मुकुन्दका गान सुनकर अचेतन नदियाँ भी भँवर पड़नेके मिससे कामके उच्छ्वासको प्रकट करती हैं । कामकी अधिकतासे उनका वेग रुक गया है अर्थात् शिथिल होगया है और वे आलिङ्गनके लिये उठीहुई तरङ्गरूप बाहुओंसे कमल कुसुमरूप भेंट लेकर हरिके चरणकमलोंको छूती हैं ॥ १५ ॥ घोर घामके समय वनमें बलदेव और अन्यान्य गोपोंके साथ अपने सखा श्रीकृष्णको गौवें चराते देखकर यह घनश्याम प्रेमपूर्वक शिर-पर आकर छाया करता है और कुसुमके समान सूक्ष्म फुहारोंकी वर्षा करता है ॥ १६ ॥ ये भीलोंकी स्त्रियाँ भी धन्य हैं, इनका जन्म सफल हो गया; क्यों कि जिस कुङ्कुमको गोपियाँ अपने स्तनोंमें लगाती हैं वह श्रीकृष्णके चरणकमलोंके रागमें मिलकर वनकी घासमें लग जाता है, और उस कुङ्कुमरागको श्रीकृष्णके दर्शनसे उत्पन्न कामकी पीड़ा मिटानेकेलिये भीलोंकी ललनाएँ अपने आननों और कुचोंमेंलगा-कर कामकी बाधा मिटाती हुई हृदयको शीतल करती हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ सखियो ! हर्षकी बात है कि—यह गोवर्धन पर्वत हरिके दासोंमें श्रेष्ठ है, क्यों कि कृष्ण, बलभद्रके दर्शन पानेसे आनन्दित होकर, यह, जल, सुन्दर हरी हरी घास, कन्दरा, कन्दमूल और फलोंसे गऊ और गोपगणसहित दोनो भाइयोंका सादर सत्कार

रूपको जानता हूँ, तुमने मुझको ही प्रसन्न करनेके लिये यह व्रत किया है । मैं भी तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन करता हूँ, इसलिये तुम्हारी कामना अवश्य ही पूर्ण होगी । देखो, जिनका मन मुझमें लगा है उनकी कामनाएँ अन्य कामनाओंके समान संसारका कारण नहीं होतीं । भुनेहुए या पकेहुए अन्नके बीजोंमें फिर अङ्कुर नहीं निकलते ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ सुन्दरियो ! तुम्हारा व्रत सिद्ध (सफल) होगया, अब तुम व्रजको जाओ । तुम मेरे साथ आनेवाली शरद् ऋतुकी रमणीय रात्रियोंमें रमण करोगी; क्योंकि हे सतियो ! तुमने इसी कामनासे आर्यादेवीका व्रत और पूजन किया है" ॥ २७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भगवान्के कहनेसे उन कुमारियोंने अपनेको कृतार्थ माना, क्योंकि उनकी इच्छा पूर्ण होगई । वे कृष्णके चरणोंका ध्यान करती हुई बड़े कष्टसे लौटकर व्रजको गईं ॥ २८ ॥ तदनन्तर देवकीनन्दन कृष्णचन्द्रजी बड़े भाईके साथ गोपगणसहित गौवोंको चरातेहुए वृन्दावनसे दूर निकल गये ॥ २९ ॥ राहमें हेमन्तके घोर घामको स्वयं सहकर अपने शिरपर छत्रके समान छाया कियेहुए वृक्षोंको देखकर भगवान्ने अपने साथी गोपोंसे कहा—"हे स्तोक, कृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी; देवप्रस्थ और वरूथप आदि मित्रो ! इन सब महाभाग्यशाली वृक्षोंको देखो । इनका जीवन केवल दूसरोंके उपकारके लिये ही है । स्वयं वायु, वर्षा, घाम और पाला सहकर उनसे हमारी रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अहो ! इन्हीका जन्म धन्य है, जिससे और और प्राणियोंका काम निकलता है । जैसे दयालु मनुष्यके पास जाकर याचक लोग विमुख नहीं लौटते वैसे ही इनके निकटसे कोई भी प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गन्ध, गोंद, राख, कोयला, अङ्कुर और नवपल्लव आदिसे सब प्राणियोंके काम आते हैं ॥ ३४ ॥ देहधारियोंमें उन्हीका जन्म सफल है जो प्राण (शरीर), सम्पत्ति, बुद्धि और वाणीसे सदैव सब प्राणियोंकी भलाई करते हैं" ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्—नवपल्लवोंके गुच्छे, फल, फूल और पत्तोंके भारसे जिनकी डालियाँ झुक रही हैं उन परोपकारी वृक्षोंकी बड़ाई करतेहुए उन्हीके नीचे नीचे चलकर यमुनाके किनारे पहुँचे ॥ ३६ ॥ महाराज ! वहाँ पहुँचकर गोपोंने यमुनाका मधुर निर्मल शीतल जल गौवोंको पिलाया और आप भी जी भरकर पिया ॥ ३७ ॥

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप ॥
कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥

यमुनाके आसपास वनमें गौवें चराते चराते गोपोंको भूख लगी, तब वे कृष्ण और बलदेवजीके पास आकर यों कहनेलगे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय

कृष्णकी आज्ञासे गोपोंका ब्राह्मणोंके यज्ञमें जाकर खानेके लिये अन्न माँगना

गोपा ऊचुः—राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिवर्हण ॥
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथ ॥ १ ॥

गोपगणने कहा—हे महाशक्तिशाली बलभद्र! हे दुष्टदमन कृष्णचन्द्र! हमको बड़ी भूख लगी है। कृपाकरके यह भूखकी ज्वाला शान्त करिये, हमको बड़ा कष्ट मिल रहा है॥ १॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! गोपोंने जब यों आकर प्रार्थना की तब देवकीतनय कृष्णचन्द्रने अपनी परमभक्त जो ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ हैं उनपर अनुग्रह करतेहुए यह कहा कि ॥ २ ॥ "यहाँ वेदपाठी ब्राह्मण लोग स्वर्गकामनासे आङ्गिरस–नाम यज्ञ कर रहे हैं। तुम यज्ञ-मण्डपमें जाकर भगवान् आर्य (बड़े भाई बलभद्र) का और मेरा नाम लेकर अन्न माँगो" ॥ ३ ॥ ४ ॥ भगवान्‌की आज्ञा पाकर उन गोपोंने यज्ञमण्डपमें जाकर वैसे ही अन्न माँगा। उन्होने दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा कि "ब्राह्मण महाशयो! आपका कल्याण हो, सुनिये, आपके निकट कृष्णचन्द्र और बलदेवकी आज्ञासे हम सब गोप आये हैं। वे दोनो भाई यहाँसे थोड़ी ही दूर पर गौवें चराते चराते आये हैं। यहाँ आकर भूखे हुए हैं, इसलिये आपसे भोजन माँगते हैं; क्यों कि आप धर्मज्ञ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं। यदि आप लोगोंको श्रद्धा हो तो हम अर्थियोंको भोजनके लिये अन्न दो ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदि कहो कि यज्ञका अन्न देनेसे उच्छिष्ट हो जायगा तो हे सज्जनो! यज्ञमें दीक्षाके अनन्तर अग्नीषोमीय बलिदानके पहलेतक किसीको देने या खिलानेसे अन्न दूषित हो जाता है, किन्तु उसके पीछे तथा सौत्रामण्यदीक्षा एवं अन्यान्य दीक्षाओंमें (भी) खिलाने या देनेसे अन्न उच्छिष्ट नहीं होता" ॥ ८ ॥ महाराज! गोपोंके इसप्रकार कहनेपर भी उन ब्राह्मणोंने भगवान्‌की आज्ञा सुनकर भी जैसे नहीं सुनी। कैसे सुनते? वे तो तुच्छ स्वर्गसुखकी कामनासे बड़े बड़े कर्मों (यज्ञादि) में लिप्त रहकर अपनेको वृद्ध और बुद्धिमान् मान बैठे थे; परन्तु वास्तवमें अज्ञ थे ॥ ९ ॥ मन्दमति ब्राह्मणोंका चित्त संसारमें फँसा हुआ था, इसीसे उन्होने साक्षात् परब्रह्म भगवान् अधोक्षज (इन्द्रियोंके संचालक स्वामी) को एक साधारण मनुष्य समझा! देश, काल, भाँति भाँति की सामग्रियाँ, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विक्, सम्पूर्ण अग्नि, पूजनीय अधिष्ठाता देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म इत्यादि सब उन्ही कृष्णरूप विष्णुके रूप हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे शत्रुदमन! जब ब्राह्मणोंने 'हाँ' या 'ना' कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब निराश होकर सब गोप लौट आये और उन्होने आकर सब वृत्तान्त कृष्ण और बलभद्रसे कहा ॥ १२ ॥ सुनकर जगत्‌के स्वामी भगवान्

कृष्णचन्द्रने गोपोंको संसारकी गति दिखातेहुए कहा कि ॥ १३ ॥ "तुम याचना विफल होनेसे निराश न होकर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे जाकर कहो कि मैं अपने भाईसहित यहाँ निकट ही आया हूँ। मुझे आया हुआ जानकर वे तुमको अवश्य अन्न देंगी, उनको मुझपर भक्ति है, उनका मन मुझमें ही रहता है" ॥ १४ ॥ भगवान्के कहनेसे गोपलोग फिर (यज्ञमण्डपमें जाकर) पत्नीशालामें पहुँचे और उन्होने सुन्दर शृङ्गार किये अलंकार पहने बैठी हुई ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे प्रणामके पश्चात् विनयपूर्वक यों कहा ॥ १५ ॥ "हे ब्राह्मणवधुओ ! तुमको हम प्रणाम करते हैं। हम तुमसे कुछ कहने आये हैं, सो कृपापूर्वक सुन लो। यहाँसे थोड़ीही दूरपर कृष्ण और बलभद्र गौवें चरा रहे हैं। उन्होने ही हमको तुम्हारेपास भेजा है। उनको और हम लोगोंको भूख लगी है, सो भोजन करनेके लिये तुम अन्न दो" ॥ १६ ॥ १७ ॥ नित्य कृष्णको सुननेसे ब्राह्मणियोंके हृदयमें उनके दर्शनकी बड़ी लालसा थी। आज उनको पासही आया हुआ सुनकर सबको दर्शनोंकी चटापटी पड़ी ॥ १८ ॥ पति, पिता, भाई और बन्धुओंके रोकनेपर भी वे सब स्त्रियाँ नहीं रुकीं और नदियाँ सागरकी ओर जैसे वेगसे जाती हैं वैसेही चार प्रकार (भक्ष्य, भोज्य चोष्य, लेह्य) के भोजन वर्तनोंमें लेकर परम प्रिय कृष्णसे मिलनेके लिये चलीं; क्यों कि उनका चित्त हरिके चरित्र सुनकर उनपर मोहित होगया था। यमुनाके किनारे जाकर उन्होने देखा कि अशोक-वृक्षोंके नवपल्लवोंसे सुशोभित यमुनाके उपवन (निकुञ्ज) में गोपगण और बड़े भाई बलभद्रके साथ श्रीकृष्णचन्द्र विचर रहे हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ उनका वर्ण श्याम है, श्याम शरीरपर सुवर्णवर्ण पीतपट ऐसा जान पड़ता है मानो श्याम घनघटामें इन्द्रके धनुषका मण्डल शोभायमान है। गलेमें वनमाला पड़ी है। मोरके पङ्ख, धातुओंके रङ्ग और नवपल्लवोंसे सुसज्जित विचित्र नटवरवेष देखने ही योग्य है। एक सखाके कन्धेपर दाहिना हाथ धरेहुए बाएँ हाथसे कमलका फूल घुमा रहे हैं। कानोंमें कमलके फूल, कपोलोंपर काली काली अलकें और प्रफुल्ल मुखकमलमें हँसीकी अपूर्व शोभा है ॥ २२ ॥ नित्य वारंवार सुनेहुए जिन प्यारे कृष्णके गुण कानोंमें गूँज रहे थे और मन तन्मय हो रहा था उनको सामने पाकर ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने नेत्रोंके द्वारसे हृदयोंमें बिठा लिया। सुषुप्तिके साक्षी प्राज्ञ (पुरुष) में मिलकर अर्थात् लीन होकर जैसे अहंवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं वैसेही उनके हृदय शान्त होगये और सब ताप मिट गया ॥ २३ ॥ "वे स्त्रियाँ एकदम सब आशाएँ छोड़कर दर्शनके लिये आई हैं"-यह भगवान्से छिपा नहीं था, क्योंकि वही सब बुद्धियोंके सत्य साक्षी हैं। तथापि उनकी परीक्षा लेतेहुए कृष्णने मुसकाकर कहा कि—॥ २४ ॥ "आओ, महाभागाओ ! भले आईं; कहो हम तुम्हारा क्या सत्कार करें ? यदि तुम केवल मुझे ही देखने आई

हो तो तुमने बहुत ही अच्छा और उचित किया ॥ २५ ॥ विवेकीलोग विवेकद्वारा सच्चे स्वार्थको भलीभाँति जानते हैं, इसीसे वे मुझ प्रीतिपात्र आत्मापर निष्काम सुदृढ़ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २६ ॥ जीवात्मासे बढ़कर कोई भी नहीं प्यारा होता। प्राण, बुद्धि, मन, जातिवाले, शरीर, स्त्री, पुत्र और सम्पत्ति, सभी उस जीवकेलिये प्रिय होते हैं ॥ २७ ॥ तुम मेरे दर्शन पाकर कृतार्थ होगई, अब यज्ञशालाको लौट जाओ। यद्यपि अब तुमको यज्ञादिकी आवश्यकता नहीं है, तथापि तुम्हारे स्वामी सब गृहस्थ ब्राह्मण तुम्हारे साथ मिलकर अपना यज्ञ पूरा करेंगे" ॥२८॥ द्विजपत्नियोंने कहा—"हे विभो। आपको ऐसे निठुर वचन कहना उचित नहीं है। आप वेदके कथनको सत्य कीजिये। हम सब अपने बन्धुओंको छोड़कर आपकी अवज्ञापूर्वक भी दी हुई तुलसीकी मालाको केशोंमें सादर धारण करने अर्थात् दासी होनेके लिये चरणकमलोंकी शरणमें आई हैं ॥ २९ ॥ औरोंकी जाने दीजिये, हमारे पति, पिता, माता, भाई, पुत्र, बन्धु और सुहृत्गण भी हमें अगीकार न करेंगे! हे शत्रुदमन! हमारी आपके सिवा और कोई गति नहीं है इसीसे हम आपके चरणोंकी शरणमें आई हैं-हमें स्वीकार कीजिये" ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्ने कहा—तुम घरको जाओ, तुम्हारे पति, भाई, पुत्र आदि कोई भी तुमपर दोपारोप न करेंगे, बरन् बड़े प्रेमसे तुम्हारा आदर करेंगे। क्यों कि जो लोग मुझसे मिलचुके हैं उनका आदर देवता भी करते हैं ॥३१॥ यदि कहो कि हम को तो आपके अङ्गसङ्गकी इच्छा है, उसके बिना हम कैसे लौट जाँय? सो अङ्गसङ्गसे ही मनुष्योंमें प्रीति या अनुराग नहीं होता। इसलिये अपने ही रहकर मुझमें मन लगाओ; शीघ्र ही मुझको पाओगी। मेरे नाम सुनने, गुणकीर्तन और ध्यान करनेसे जैसा मुझमें दृढ़ प्रेम होगा वैसा पास रहनेसे कभी नहीं हो सकता-इसलिये तुम घरको लौट जाओ" ॥ ३२ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—भगवान्के यों कहनेपर वे ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ लौटकर फिर यज्ञशालाको गईं। ब्राह्मणोंने भी उनसे कुछ नहीं कहा, बरन् सादर स्वीकार करके उनके साथ यज्ञको पूर्ण किया। सच है, जिसपर हरि कृपा करते हैं उसपर सभी अनुकूल हो जाते हैं! ॥ ३३ ॥ एक स्त्रीको उसके पतिने पकड़ रक्खा था, इसलिये वह कृष्णचन्द्रके दर्शन करने न जा सकी। तब उसने जैसा हरिका रूप सुना था वैसेही ध्यान करती हुई कर्मोंके अनुगामी शरीरको छोड़ दिया और सबसे पहले हरिसे जा मिली ॥३४॥ इधर प्रभु भगवान् गोविन्दने वह स्त्रियोंका लाया हुआ चार प्रकारका स्वादिष्ट अन्न गोपोंको खिलाया और आप भी भोजन किया ॥ ३५ ॥ लीला करनेके लिये मायामानवरूप भगवान्, इसप्रकार मनुष्योंका अनुकरण करके अपने रूप वचन और लीलाओंसे गऊ गोप और गोपियोंको रमातेहुए स्वयं रमण करते थे ॥ ३६ ॥ उधर उन ब्राह्मणोंको ज्ञान हुआ, तब वे "हमने मनुष्यतनुधारी दोनो

जगदीश्वरोंकी प्रार्थना न सुनकर बड़ा ही अपराध किया!"-यों सोचकर पछतानेलगे ॥३७॥ वे ब्राह्मण, भगवान् श्रीकृष्णमें स्त्रियोंकी ऐसी अपूर्व भक्ति देखकर और अपनेको उस भक्तिसे रहित पाकर पश्चात्तापपूर्वक आप ही आप अपना तिरस्कार करतेहुए करनेलगे कि-"हमारे तीन जन्मों (एक गर्भसे जन्म, दूसरा गायत्रीसंस्कारका जन्म, तीसरा यज्ञदीक्षाका जन्म) को, ब्रह्मचर्य व्रतको, बहुत जाननेको, उत्तम कुलको यज्ञादि कर्मोंमें निपुण होनेको बार बार लाख बार धिक्कार है! क्यों कि हम हरिसे विमुख हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान्की माया बड़े बड़े योगियोंको भी मोहित कर देती है। अहह! हम लोगोंके गुरु ब्राह्मण कहलाते हैं! सो अपने ही प्रयोजन (हरिकी भक्ति) में चूक गये! ॥ ४० ॥ अहो! स्त्रियोंको देखो, उनको जगद्गुरु कृष्णमें कैसी सुदृढ भक्ति है! जिससे उन्होने गृहस्थीकी ममता, जो कठिन मृत्युपाश है, उसे तोड़ डाला! ॥४१॥ देखो, हमारीभाँति इनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ। न गुरुकुलमें इन्होंने शिक्षा पाई, न तप किया, न आत्मतत्त्वकी खोज की। न ये शौच करती हैं और न संध्यावन्दन आदि शुभ कर्म ही करती हैं ॥४२॥ तौ भी योगेश्वरोंके ईश्वर पवित्र यशवाले श्रीकृष्णमें इनकी दृढ़ भक्ति है और हमारे सब संस्कार हुए, तथा ऊपर कहीहुई सब बातें भी हममें हैं, किन्तु हाय हाय, ईश्वरकी भक्ति नहीं है! शोक! ॥४३॥ अवश्य ही हम मिथ्या स्वार्थमें भूलकर गृहस्थीके सुखमें लिप्त हो रहे थे, यह जानकर सज्जनोंके इष्टदेव हरिने गोपोंके वाक्योंसे हमको सचेत कर दिया ॥ ४४ ॥ नहीं तो पूर्णकाम एवं मोक्ष आदि दुर्लभ 'वर' देनेवाले ईश्वरको हमसे अन्न माँगनेकी क्या आवश्यकता थी। अवश्य ही अन्न माँगनेका केवल मिस (बहाना) था ॥ ४५ ॥ लक्ष्मी, अपनी चञ्चलता त्याग कर, चरणकमलोंके स्पर्शकी अभिलाषासे, औरोंको छोड़, जिनको वारंवार भजती है उन लक्ष्मीपतिका किसीसे कुछ माँगना अवश्यही लोगोंको मोहित किये विना नहीं रहसकता ॥ ४६ ॥ देश, काल, भिन्न भिन्न सामग्रियाँ, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विक्, तीनो (यज्ञसम्बन्धी) अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म जिनके रूप हैं उन्ही साक्षात् योगीश्वरोंके ईश्वर भगवान् विष्णुने यदुवंशमें जन्म लिया है, यह सुनकर भी हम मूढ़ उनको न पहचान सके! ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अहो! तथापि हम अपनेको परम धन्य मानते हैं; क्योंकि हमारे घरोंमें ऐसी अनन्यभक्त स्त्रियाँ हैं, जिनका मन निश्चल होकर हरिमें बस रहा है ॥ ४९ ॥ जिनकी बुद्धि कदापि कुण्ठित नहीं होती और जिनकी मायामें बुद्धिके मोहित होनेसे हम कर्ममार्गमें भ्रम रहे हैं उन भगवान् कृष्णको हमारा प्रणाम है ॥ ५० ॥ वह आदि पुरुष हैं, उनकी मायामें आत्माके मोहित होनेसे हम उनके प्रभावको नहीं जान सके। इसीकारण यह अपराध हमसे बन पड़ा है। उन जगदीश्वरको हम सेवकोंका यह अपराध क्षमा कर देना उचित है ॥ ५१ ॥

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥
दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥

हे राजन्! कृष्ण-तिरस्काररूप अपने अपराधको स्मरण करके उन ब्राह्मणोंने इस प्रकार बहुत पश्चात्ताप किया। यद्यपि कृष्णके दर्शन करनेकी उनको बड़ी लालसा थी तथापि वे कंसके भयसे न जासके ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय

इन्द्रयज्ञभङ्ग

श्रीशुक उवाच—भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥
अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! वे ब्राह्मण कंसके भयसे अपने २ आश्रमोंमें ही रहकर भगवान्की आराधना करने लगे। इधर भगवान्ने बलभद्रसहित व्रजमें रहतेहुए एक समय देखा कि गोपलोग इन्द्र-यज्ञ करनेका उद्योग कर रहे हैं ॥ १ ॥ भगवान् तो सबके आत्मा अन्तर्यामी हैं, वह सबके मनकी जाननेवाले सर्वज्ञ हैं, अतएव उनसे कुछ छिपा नहीं है, वह सब जानतेथे; तथापि विनयपूर्वक नम्र होकर उन्होने नन्दआदि बूढ़े गोपोंसे पूछा कि—॥ २ ॥ पिता! बताओ तो सही, आपलोग काहेकी सामग्री एकत्र कर रहे हैं। यह यज्ञ कौन करेगा? किस देवताके लिये यह यज्ञ किया जायगा और इसका फल क्या होगा? ॥ ३ ॥ यह सब मुझसे कहिये, मैं सुननेके लिये उत्सुक होरहाहूँ। सबको अपने समान देखनेके कारण जिनको अपने पराएका ज्ञान नहीं है एवं भेदभाव न होनेके कारण जिनका कोई शत्रु या उदासीन (अर्थात् न शत्रु और न मित्र) नहीं है, सब मित्रही मित्र है, उनके लिये कोई भी ऐसी बात नहीं है जो किसीसे छिपाने योग्य हो। इसके सिवा यदि भेदभाव भी हो, तौ भी उदासीनको ही शत्रुके समान छोड़ना आवश्यक है। सुहृद्गण तो आत्मीय होते हैं, उन हितचिन्तक सुहृदोंसे हरएक काममें अवश्य सम्मति लेनी चाहिये ॥४॥५॥ सब मनुष्य दो प्रकारके कर्म करते हैं, ज्ञात और अज्ञात। जिनका फलाफल और तत्त्व पहले जान लिया जाता है वे कर्म ज्ञात हैं और जो विना विचारे किये जाते हैं वे अज्ञात हैं ज्ञात कर्म भलीभाँति सिद्ध होते हैं और अज्ञातकर्म वैसे सुसिद्ध नहीं होते ॥ ६ ॥ आपका यह यज्ञ शास्त्रोक्त है, या आपलोग लौकिक रीतिके अनुसार इसे करते हैं? सो मुझसे समझाकर कहो" ॥७॥ नन्दने कहा—"पुत्र, भगवान् इन्द्र वर्षा करने

वाले हैं। मेघ उनकी प्रिय मूर्ति हैं। वे मेघ प्राणियोंको प्रसन्न करनेवाला जलरूप जीवन देते (बरसते) हैं ॥ ८ ॥ उन मेघोंके स्वामी इन्द्र जो वर्षा करते हैं उस वर्षाके जलसे उत्पन्न पदार्थों (अन्नादि) के द्वारा हमलोग यह यज्ञ करके उन (इन्द्र) का पूजन करते हैं ॥ ९ ॥ यज्ञ करनेके पीछे जो अन्न बच रहता है उससे धर्म अर्थ और कामकी सिद्धि करतेहुए मनुष्य अपने जीवनकी रक्षा करते हैं। लोगोंकी वृत्तियों और व्यवसायोंकी आशा वर्षा ही पर निर्भर है, क्योंकि बिना वर्षाके खेती होना असम्भव है; जोकि सबका मूलकारण है ॥ १० ॥ यह हमारी रीति बहुत कालसे चलीआती है। जो कोई काम, द्वेष, भय या लोभके वश होकर इस धर्मको छोड़देता है उसका मंगल कभी नहीं होता" ॥ ११ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! नन्दआदि गोपोंके कथनको सुनकर कृष्णने इन्द्रपर व्रज-वासियोंके हृदयमें कोप उपजातेहुए पितासे कहा कि—"पिता! सब प्राणी अपने २ कर्मके अनुसार जन्मते और मरते हैं एवं कर्मानुसार ही सुख, दुःख, भय और मङ्गल पाते रहते हैं ॥१२॥१३॥ इसके सिवा यदि कोई ईश्वर है भी, जो स्वयं कर्मोंमें न लिप्त रहकर औरोंको उनके कर्मोंका फल देनेवाला है, तो वह कर्मकरनेवाले-काही ईश्वर है, उसीको कर्मानुसार फल देगा। किन्तु जो कोई कर्म ही नहीं करता उसके लिये क्या करसकता है ? ॥ १४ ॥ इसलिये जीवोंको जब अपने कर्मोंका ही अनुसरण करना पड़ता है तब उनको इन्द्रसे क्या प्रयोजन है ? पूर्वसंस्कारके अनु-सार मनुष्योंके भाग्यमें जो है उसको वह इन्द्र कभी अन्यथा नहीं कर सकते ॥ १५ ॥ सब मनुष्य स्वभावके ही वशवर्ती हैं, स्वभावका ही अनुगमन करते हैं। ये सब देवता, असुर और मनुष्य स्वभावके वशमें हैं, स्वभा-वहीके अनुसार चलते हैं ॥ १६ ॥ यह जीव, कर्मोंहीके आधीन होकर उत्तम और अधम शरीरोंको पाता और अपने कर्मोंका फल भोगता है तथा यथासमय उन शरीरोंको छोड़ देता है। कर्मोंहीके अधीन रहकर ये जीव परस्पर एकके साथ एक शत्रुता, मित्रता या उदासीनताका व्यवहार करते हैं। इसलिये कर्म ही सबका गुरु और ईश्वर है ॥ १७ ॥ जब स्वभाव-सिद्ध कर्म ही सब फलोंका कारण है तब कर्म ही केवल पूजनीय है। इसलिये प्राणियोंको चाहिये कि स्वभावके अनुसार अपने कर्मका पालन करें और उसीका पूजन करें। जिसके द्वारा सुखपूर्वक जीविका-निर्वाह हो वही प्राणियोंका इष्टदेव है ॥ १८ ॥ जैसे परपुरुषगामिनी कुलकी स्त्री, उपपति (परपुरुष) से सुख नहीं पा सकती वैसे ही जो लोग जिसकी कृपासे जीविकानिर्वाह करते हैं उसे छोड़कर दूसरेको भजते हैं उनका उससे अपने मंगलकी आशा करना भूल है ॥ १९ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको चाहिये कि वे क्रमशः 'वेदाध्ययन', 'पृथ्वीपालन', 'वार्ता' और द्विजोंकी सेवासे अपनी २ जीवका चलावें ॥२०॥ वैश्योंकी 'वार्ता'वृत्तिके चार भेद हैं—१ खेती,

२ बनिज, ३ गऊ पालना और ४ ब्याज चलाना। उनमें हम लोग गऊ पालनेवाले हैं, यही हमारी जीविका है ॥२१॥ सतोगुण रजोगुण और तमोगुण—इन्हीं तीनो गुणोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति, रक्षा और संहार होता है। यह चराचर जगत् ब्रह्माण्ड, रजोगुणकी प्रेरणासे परस्पर उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ ये मेघ भी रजोगुणकी प्रेरणासे सर्वत्र जलकी वर्षा करते हैं। जलसे अन्न उपजता है और उसी अन्नसे सबका पालन होता है। इसमें महेन्द्र क्या कर सकते हैं? इसके सिवा हमारे पुर, जनपद, गाँव या घर कुछ भी नहीं है, केवल हम वनवासी हैं। इसलिये इस यज्ञमें गऊ, ब्राह्मण और गोवर्धन गिरिका ही पूजन करना योग्य है। आप लोगोंने इन्द्रयज्ञके लिये जो सामग्री एकत्र की है उससे गिरिराजका पूजन करिये ॥२३॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ इससे पायस, पुआ, पूरी, हलवा, भाँतिभाँति के पकवान और मिठाई बनाओ, सब गौवोंका दूध दुहकर एकत्र करो ॥ २६ ॥ भलीभाँति वेद-पाठी ब्राह्मणोंके द्वारा होम कराकर अग्नियोंको तृप्त करो और ब्राह्मणोंको भाँति २ के अन्न खिलाकर, गोदान करके, दक्षिणाएँ देकर प्रसन्न करो ॥ २७ ॥ श्वपच और चाण्डाल और पतित पातकियोंको भी यथायोग्य अन्न देकर तृप्त और सन्तुष्ट करो। गौवोंको हरी हरी घास और उत्तम अन्न खिलाओ, फिर गिरिराजको भोग लगाओ ॥ २८ ॥ तदनन्तर भोजन करके उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण कर सुगन्धित चन्दन लगाओ और गऊ, ब्राह्मण, अग्नि व पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥२९॥ पिताजी, मेरी सम्मति तो यही है, रुचे तो इसीके अनुसार सब काम करिये। यह यज्ञ, गौवोंको, ब्राह्मणोंको, गिरिराजको और मुझको प्रिय है" ॥ ३० ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—कालरूप भगवान्‌ने इन्द्रका मद मिटानेकी इच्छासे जो कहा उसको सुनकर नन्दआदि गोपोंने भी बहुत बड़ाई करतेहुए प्रसन्नतापूर्वक मान लिया ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के कथनानुसार उन्होने यज्ञका आरंभ किया। पहले स्वस्त्ययनपाठ कराकर सादर सब सामग्री ब्राह्मणोंको दी, फिर गौवोंको हरी हरी घास और और अच्छार चारा दिया। तदनन्तर गोधनको आगेकर सब लोग गिरिराजकी प्रदक्षिणा करनेलगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भलीभाँति शृंगार कियेहुए गोपियाँ भी बैलोंके छकडोंपर चढ़कर श्रीकृष्णकी लीलाओंको गातीहुई गिरिराजकी प्रदक्षिणा करनेलगीं। ब्राह्मणगण भी प्रसन्न होकर शुभ और अमोघ आशीर्वाद देनेलगी ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी भी गोपोंको विश्वास दिला-नेकेलिये गिरिराजके ऊपर दूसरे विशालरूपसे प्रकट हुए और "मैंही गिरिराज हूँ" कहकर सब सामग्री दोनो हाथोंसे खानेलगे ॥ ३५ ॥ उससमय कृष्णचन्द्रने व्रजवासियोंके साथ स्वयं अपने दूसरे शरीरको प्रणाम किया और गोपोंसे कहने-लगे कि "अहो, देखो गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर दया दिखाई है। यह जब चाहे जैसा रूप धर सकते हैं। वनमें रहनेवाले जो प्राणी इनका निरादर

करते हैं, इनके कोपसे उनका विनाश हो जाता है। हम सब आओ अपने और सम्पूर्ण व्रजके कल्याणके लिये इनको प्रणाम करें" ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥
तथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्णकी प्रेरणाके अनुसार इसप्रकार यथाविधि गऊ, ब्राह्मण और पर्वतका पूजन करके सब गोप कृष्णचन्द्रके साथ व्रजको लौट गये ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंश अध्याय

गोवर्धन–धारण

श्रीशुक उवाच–इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! इन्द्रने अपने यज्ञका न होना और उसी सामग्रीसे गिरिराजकी पूजा होना जानकर कृष्णके वशवर्ती नन्द आदि गोपोंपर कोप किया ॥ १ ॥ उसी समय अपनेको ईश्वर माननेवाले कुपित इन्द्रने प्रलय करनेवाले संवर्तकनाम मेघोंके मण्डलको व्रजपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा। इन्द्रने उनसे कहा–"अहो! वनमें रहनेवाले गोपोंके धन्य–ऐश्वर्यसे उत्पन्न गर्वका माहात्म्य तो देखो! उन्होने एक साधारण मनुष्य कृष्णके बलपर भूलकर देवहेलन कर डाला! जैसे कोई कोई मन्दमति जन आत्मज्ञानविद्याको छोड़कर अन्य नाममात्रकी नावके समान पार लगानेको असमर्थ जो कर्ममय यज्ञ हैं उनके द्वारा अपार संसार सागरके पार जाना चाहे वैसे ही गोपोंने आज वाचाल, बालक, अविनीत, पण्डिताभिमानी, अज्ञ मनुष्य कृष्णके सहारेसे मेरे विरुद्ध होकर मेरा अप्रिय किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ये गोप लक्ष्मीके मदसे मत्त होरहे हैं उसपर कृष्णने और भी इनको बढ़ावा दे रक्खा है। हे मेघो! शीघ्र व्रजको जाओ और इनके ऐश्वर्यमदको दूर करो, एवं पशुओंका संहार कर डालो ॥ ६ ॥ मैं भी अभी नन्दव्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी उन्चास मरुद्गणसहित ऐरावत गजराजपर चढ़कर वहाँ आता हूँ" ॥ ७ ॥ जिनके बन्धन छूट गये हैं वे मेघ इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाकर बड़े वेगसे व्रजमें जाकर घोर वर्षा करनेलगे, जिससे नन्दका गोकुलभर पीड़ित और व्याकुल हो उठा ॥ ८ ॥ वारंवार बिजलियाँ चमकनेलगीं और भयानक बिजलियोंकी

कड़क हृदयोंको दहलाने लगी। तीव्र वायुके झकोरोंसे इतस्ततः संचालित मेघ-समूह शिलाओं (ओलों) की वर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ वे मेघ, निरन्तर हाथीकी सूँड़के समान स्थूल जलधाराएँ बरसाने लगे। देखतेही देखते पृथ्वी जलराशिसे परिपूर्ण हो गई। उस समय कहीं भी ऊँचा नीचा नहीं जान पड़ताथा, क्योंकि पृथ्वी जलमय हो रही थी ॥ १० ॥ महा प्रचण्ड आँधी और वर्षाके मारे पशुगण काँपने लगे। तब शीतसे पीड़ित गोप और गोपियाँ श्रीकृष्णकी शरणमें आई ॥ ११ ॥ बालकोंको छातियोंमें छिपाए अपने शिरोंको शिलाओंकी बौछारसे बचाते और काँपतेहुए वर्षासे पीड़ित गोपगोपीगण, श्रीकृष्णके चरणोंकी शरणमें आकर कहने लगे कि—"हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभाग! हे प्रभो, आप ही इस गोकुलके नाथ हैं। हे भक्तवत्सल! अब कुपित इन्द्रसे हमारी रक्षा करो" ॥ १२ ॥ १३ ॥ सारे गोकुलको शिलाओंकी अत्यन्त वर्षासे पीड़ित तथा अचेत देख कर भगवान्ने समझ लिया कि यह सब कुपित इन्द्रकीही करतूत है ॥१४॥ भगवान्ने कहा कि "हमने इन्द्रका यज्ञ नहीं किया इसी लिये वह रुष्ट होकर आज प्रचण्ड आँधीके झोंके, शिलाओंकी बौछार और विना ऋतुकी घोर वर्षासे व्रजको नष्ट करदेनेपर उद्यत हैं ॥ १५ ॥ अस्तु, मैं अभी योगबलसे इसका प्रतीकार करता हूँ। ये इन्द्रादि देवगण, मोहवश अपने स्वतन्त्र ईश्वर होनेका घमंड रखते हैं। मैं अभी इनके ऐश्वर्यगर्वरूप मोहको मिटाये देताहूँ ॥ १६ ॥ जो कि सद्भावसे युक्त देवता हैं उनको "हम ईश्वर हैं"—यह अभिमान कभी नहीं होसकता। मेरे द्वारा मानभंग होना असत्जनोंके लिये हितकारी होता है, क्योंकि फिर वे शान्त होजाते हैं और उनका श्रम मिट जाता है ॥ १७ ॥ इस व्रजका मैंही स्वामी हूँ, ये सब व्रजवासी मेरी शरणमें आये हैं, मैं इनको अपना परिवार समझता हूँ। इसलिये मैंने निश्चय करलिया है कि अपने योगबलसे इन सबकी रक्षा करूँगा" ॥ १८ ॥ यों कहकर कृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको ऊपर उठा लिया; जैसे कोई बालक खेलते २ धरतीके फूलको धरतीसे उखाड़ ले ॥१९॥ यों गोवर्द्धनको उठाकर भगवान्ने गोपोंसे कहा कि "हे पिता! हे माता! हे व्रजवासियो! इस गिरिराजके गढ़ेमें आपलोग अपने गोधनसहित सुखसे आकर बैठो ॥ २० ॥ आप लोग डरना नहीं कि मेरे हाथसे गिरिराज गिरपड़ेगा। अब इस घोर वर्षा और प्रचण्ड आँधीसे भी तुमको रत्ती भर भय नहीं है, क्योंकि उस विपत्तिसे बचानेहीके लिये मैंने यह यत्न किया है" ॥२१॥ इस प्रकार कृष्णके मधुर वचनोंसे आश्वासित सब व्रजवासी लोग गोधन, भृत्य, पुरोहित आदिके साथ सुखसे उस गिरिगर्त्तमें आगये। सबने अपनी २ सामग्री (सामान—असबाब) भी छकड़ोंमें भरकर वहीं रख ली। किसीके लिये स्थानका सङ्कोच नहीं हुआ ॥२२॥ श्रीकृष्णको न तो भूख थी, न प्यास थी, न किसीप्रकारकी व्यथा थी, न सुखकी इच्छा थी, न विश्राम

की अपेक्षा थी। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र सात दिन तक बराबर गोवर्द्धन पर्वतको उसी
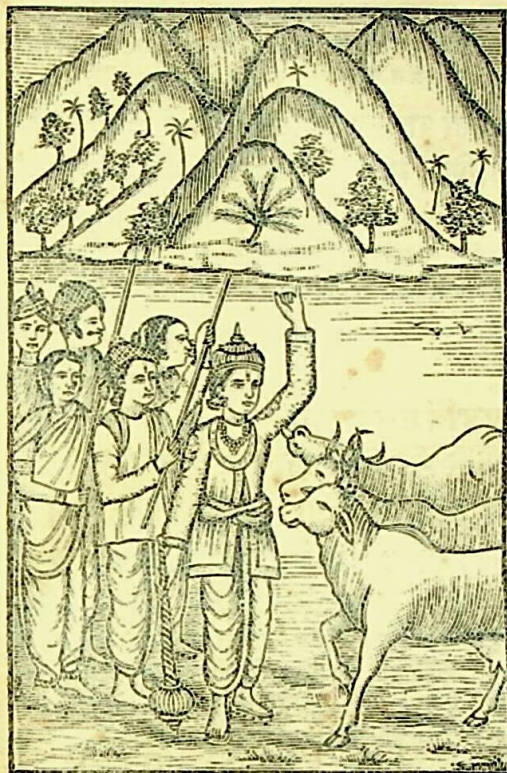
हाथपर उठाये रहे, एक पग भी इधर उधर नहीं हटे। सब गोपियाँ और गोपलोग अचरजभरी दृष्टिसे कृष्णकी ही ओर एकटक निहारते रहे ॥ २३ ॥ कृष्णके इस अद्भुत योगबलको देख कर इन्द्र भी अत्यन्त विस्मित हुए। इन्द्रका संकल्प भ्रष्टहो गया, तब उन्होने अभिमानहीन होकर अपने मेघोंको वर्षा करनेसे निवृत्त किया ॥२४॥ उसी समय आकाशमें एक भी मेघ नहीं रहा, प्रचण्ड आँधी और वर्षा रुकगई एवं सूर्य निकल आये। यह देखकर गिरिवरधारीने कहा कि "हे गोपगण! अब कुछ भय नहीं है, आँधी और वर्षा-का चिन्ह भी नहीं रहा, सब चढ़ी हुई नदियोंका जल उतर गया। तुम अपनी २ धन-सम्पत्ति, स्त्री और बालक लेकर बाहर निकलो" ॥२५॥ ॥२६॥ तब स्त्री, बालक और बूढ़ों सहित सब गोप लोग, अपने २ गोधनके आगे किये छकड़ोंपर सामग्री लादकर धीरे २ गिरिगर्तसे बाहर निकले ॥ २७ ॥ प्रभु भगवान्ने भी सबके सामने ही गिरिराजको पहलेकी भाँति लीलापूर्वक उसी स्थानपर स्थापित करदिया ॥ २८ ॥ प्रेमसे पूर्ण सब व्रजवासी कृष्णके निकट आये और जिसको जिस प्रकार उचित था उसने आलिंगन (गलेलगाना) आदिसे उसी प्रकार उनका सत्कार किया। गोपियोंने भी आनन्दसे स्नेहपूर्वक दही, अक्षत और जलके छीटोंसे कृष्णका पूजन किया और मांगलिक आशीर्वाद दिये। स्नेहसे विह्वल नन्द, यशोदा, रोहिणी और महाबलशाली बलभद्रने कृष्णको गलेसे लगालिया

और शुभ आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ स्वर्गमें देवता, साध्य, सिद्ध, गन्धर्व, और चारणलोग स्तुति करतेहुए भगवान्‌पर फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३१ ॥ स्वर्गमें देवगण, शङ्ख और दुंदुभी आदि बाजे बजानेलगे और हे महाराज ! तुम्बुरु आदि श्रेष्ठ गन्धर्वगण हरिगुणगान करनेलगे ॥ ३२ ॥

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स गोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः॥३३॥

महाराज ! तदनन्तर अपने भक्त अनुरक्त गोपगणसे घिरेहुए बलभद्रसहित श्रीकृष्णजी व्रजमें गये । इसीप्रकार समय समय पर कियेगये मनोहर कृष्णके चरित्रोंको आनन्दपूर्वक गातीहुई गोपियाँ भी उनके साथही साथ गईं ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय

नन्दसे गोपोंकी बातचीत

श्रीशुक उवाच—**एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥**
अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! गोपलोग कृष्णके पराक्रमको जानते नहीं थे, अतएव इसप्रकार कृष्णके अनेक अद्भुत चरित्र देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ और वे एकत्र होकर करनेलगे ॥१॥ गोपोंने कहा—"इस बालक कृष्णके सभी कर्म बड़े अद्भुत हैं ! हम ग्रामीण गोपोंके यहाँ इसका जन्म कैसे हो-सकता है ? कर्म देखनेसे इसका गोपजातिमें जन्म लेना इसके अयोग्य प्रतीत होता है ॥ २ ॥ जैसे गजराज किसी कमलको खेलते खेलते उखाड़कर ऊपर उठाले वैसे ही यह सात वर्षका बालक लीलापूर्वक गिरिराजको एक हाथसे उठाकर सात दिनतक कैसे लिये खड़ा रहा ? ॥३॥ काल, जैसे जीवकी आयुको हरलेता है वैसेही इसने बाल्यावस्थामेंही आँख मूँदकर महाबलशालिनी पूतनाके प्राण दूधके साथही कैसे खींच लिये ? ॥४॥ फिर जब यह तीन महीनेका था उससमय छकड़ेके नीचे सोरहाथा। इसने रोते रोते दोनो पैर ऊपरको उछाले, तब इसके कोमल पैरोंकी ठोकरसे उतना भारी छकड़ा कैसे उलट कर चूर चूर हो गया ? ॥५॥ फिर यहएक वर्षकी अवस्था होनेपर एक दिन बैठा हुआथा—उसी समय तृणावर्त दैत्य इसे उठाकर आकाशको लेचला, किन्तु मार्गहीमें इसने उसका गला दोनो हाथोंसे पकड़कर दबाया, जिसकी व्यथासे व्याकुल होकर वह मरगया—यह भी इसने अद्भुत

कर्म किया ! ॥ ६ ॥ एक दिन माखनचोरीमें इसको माताने उलूखलसे बाँधदिया। इसने द्वारपर जाकर यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें उलूखल डालकर बाहुओंके झिटकेसे उन प्राचीन वृक्षोंको कैसे गिरा दिया ? ॥७॥ इसने वनमें बलभद्र और अन्यान्य बालकोंके साथ बछड़े चराते चराते बकासुरको अपने मारनेके लिये उद्यत देखा और चट चोंचसे फाड़कर उस शत्रुको यमपुर भेजदिया ! क्या यह साधारण बालकका काम है ? ॥ ८ ॥ एक दिन वत्सासुर मारनेकी इच्छासे आया और वत्सरूप धरकर बछड़ोंके झुंडमें मिलगया। इसने लीलापूर्वक उसको पकड़कर कैथेके वृक्षोंपर पटक दिया और कैथेके अनेक फल पृथ्वीमें गिरा दिये ! ॥ ९ ॥ इसने बलदेवके साथ एक दिन गर्दभासुरको और उसके सजातीय असुरोंको मारकर पके हुए फलोंसे पूर्ण तालवनको निर्भय स्थान बनादिया ! ॥ १० ॥ बलशाली बलभद्रके हाथों उग्र प्रलम्बासुरका बध कराकर इसने व्रजके पशु और गोपोंको वनमें लगेहुए भयानक दावानलसे बचा लिया ! ॥ ११ ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण विषवाले सर्पको दर्पहीन और अपने अधीन कर इसने बलपूर्वक उस कुण्डसे निकाल दिया और यमुनाजलको विषशून्य बनाकर पीने योग्य कर दिया ! ॥ १२ ॥ नन्दजी ! इसके सिवा आपके बालकपर हम सब व्रजवासियोंका ऐसा अटल अनुराग क्यों है ? और इसको भी हमलोगोंपर स्वाभाविक स्नेह क्यों है ? ॥ १३ ॥ हे व्रजराज ! कहाँ सात वर्षका बालक और कहाँ महापर्वतको उठाना और लिये खड़े रहना ! ! यही देखकर हमको 'कदाचित् यह बालक तुम्हारा पुत्र नहीं' है-ऐसा सन्देह हो रहा है" ॥१४॥ नन्दने कहा—"गोपगण ! इस बालकके लिये जो कुछ गर्गाचार्यजी मुझसे कह गये हैं सो मैं तुमसे कहताहूँ-सुनो; तुम्हारे सब संदेह दूर हो जायँगे ॥१५॥ यह बालक हरएक युगमें शरीर धारण करता है। इसके शुक्ल रक्त और पीत ये तीन वर्ण क्रमशः होचुके हैं। इससमय कृष्ण वर्णसे इसका अवतार हुआ है ॥ १६ ॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहाँ जन्म लिया है-इसीकारण इसको विद्वान् लोग 'श्रीमान् वासुदेव' कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुसार बहुतसे नाम और रूप हैं। उनको मैं जानता हूँ-और लोग नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह गोधन और गोकुलवासियोंको आनन्द और इससे सब प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा। इसकी सहायतासे तुम्हारा सब विपत्तियोंसे छुटकारा होगा ॥ १९ ॥ हे व्रजराज ! पहले जिस समय दस्युजन साधुओंको सताते थे, कोई राजा या रक्षा करनेवाला न था, उस समय इसने सबकी रक्षा की हैं—इसीके अनुग्रहसे प्रजाने समृद्ध होकर दस्युगणका दमन किया ॥२०॥ जो भाग्यशाली लोग इसमें प्रेम करते हैं वे शत्रुओंसे परास्त नहीं होते, जैसे विष्णु जिनके पक्षमें हैं वे देवगण, दैत्योंसे परास्त नहीं होते ॥ २१ ॥ हे नन्द ! इसकारण यह तुम्हारा बालक, गुणोंमें, श्रीमें, कीर्तिमें और प्रभावमें नारायणके

समान है। इसके अद्भुत चरित्र देखकर विस्मय न करना ॥ २२ ॥ यों मुझसे कहकर गर्गजी अपने आश्रमको चलेगये। तबसे मैं क्लेशसे छुड़ानेवाले कृष्णको नारायणका अंश मानता हूँ" ॥ २३ ॥ नन्दके मुखसे गर्गजीके वाक्योंको सुनकर सब व्रजवासी प्रसन्न हुए, उनका सब सन्देह व विस्मय जाता रहा और वे कृष्ण-चन्द्र व नन्दकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २४ ॥

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वाऽनुकम्प्युत्स्मयन् ॥
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥

यज्ञभङ्ग होनेसे कुपित इन्द्र जब व्रजपर घोर वर्षा करनेलगे और वज्रपात, शिलाओंकी बौछार व प्रचण्ड आँधीसे सब व्रजवासी नारी-नर सहित बालक, वृद्ध तथा गऊ आदि पशुओंके अवसन्न हो पड़े, तब बालक जैसे खेलते खेलते धरतीके फूलको उखाड़ लेता है वैसेही जिन्होने करुणावश होकर लीलापूर्वक हँसते हँसते गोवर्द्धन पर्वतको एक हाथसे उठालिया एवं आप ही जिसके एक रक्षक हैं उस व्रजको बचालिया वही इन्द्रका घमण्ड घटानेवाले घनश्याम गोविन्द हमपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते पूर्वार्धे दशमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय

कृष्णका अभिषेक

श्रीशुक उवाच-गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥
गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णजीने गोवर्धन पहाड़ उठाकर व्रजको बचालिया, तब गोलोकसे आई हुई सुरभी (गऊ) को लेकर इन्द्रदेव एकान्तमें कृष्णके पास आये। इन्द्रने कृष्णकी अवहेला की थी, इसी अपराधसे वह लज्जित हो रहे थे। अतुलिततेजधारी कृष्णका अपूर्व प्रभाव देख सुनकर इन्द्रको विस्मित होना पड़ा और उनके मनसे यह घमण्ड जाता रहा कि "मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ"। इन्द्रने आते ही सूर्यके समान प्रकाशमान अपना किरीट मुकुट कृष्णके चरणोंपर धर दिया और हाथ जोड़कर कहा कि-॥१॥२॥३॥ "भगवन्! आपका स्वरूप विशुद्ध-सत्त्वमय, शान्त, सर्वदा एकरूप, अतएव पूर्णज्ञानसे युक्त अर्थात्

सर्वज्ञ है–उससें रजोगुण या तमोगुणका लेश भी नहीं है। मायाका प्रपञ्च यह संसार आपमें नहीं है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति अज्ञानसे है और आप ज्ञानमय हैं–अज्ञानसे परे हैं ॥ ४ ॥ अतएव हे ईश्वर! जो लोभ आदि भाव अज्ञान और शरीरके सम्बन्धसे उत्पन्न हैं तथा अन्य शरीर मिलनेके कारण हैं एवं अज्ञानके चिन्ह हैं वे आपमें कैसे रह सकते हैं? तथापि आप समय समय पर धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये दण्ड देते रहते हैं ॥५॥ आप जगत्के पिता, गुरु, अधीश्वर एवं दुर्निवार्य काल हैं। आप लोगोंके हितके लिये अपनी ही इच्छासे अनेक शरीर धारण कर, जो मेरे समान मूढ़जन अपनेहीको जगत्का ईश्वर मानते हैं उनके मिथ्या घमण्डको दण्डद्वारा मिटातेहुए क्रीड़ा करते हैं ॥६॥ जो मेरेऐसे अज्ञ लोग अपनेको जगदीश मानकर अभिमानसे परिपूर्ण होते हैं वे भयके समयभी आपको निर्भय देखकर तुरन्त ही मदहीन हो जाते हैं और आर्यमार्गको गहते हैं अर्थात् आपको भजते हैं। अतएव आपकी चेष्टाही दुष्टोंके लिये दण्डरूप है ॥ ७ ॥ मैं ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो रहाथा—आपके प्रभावको भलीभाँति नहीं जानताथा, इसीकारण यह अपराध मुझसे हुआ। हे नाथ! मुझ मूढ़मतिके अपराधको क्षमा करिये। ईश्वर! मेरी फिर ऐसी कुमति कभी न हो ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज! हे देव! जो स्वयं पृथ्वीके लिये भार है और अनेक भूभारोंकी उत्पत्तिके साधनोंका कारण हो रहे हैं उन्ही असुरसेनापतियोंके संसारके लिये और जो लोग आपके चरण-सेवक हैं उनके मङ्गलके लिये आपका यह मनुष्यावतार हुआ है ॥ ९ ॥ आप अन्तर्यामी हैं और सर्वत्र बसनेके कारण अखण्ड हैं। हे यादवोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र! आपको प्रणाम है ॥ १० ॥ आप विशुद्ध ज्ञान-मूर्ति हैं, अपनी इच्छासे देहधारण करते हैं। ये सब चराचर जीव आपके रूप हैं, इनका कारण आपही हैं–इसी लिये सर्वभूतमय हैं। आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥ मुझको अभिमान था, इसीलिये मेरा क्रोध भी अति प्रचण्ड था। अतएव अपने यज्ञका विनाश देखकर मैंने जलकी वर्षा और उग्र वायुसे व्रज विनष्ट करनेकी चेष्टा की थी ॥ १२ ॥ ईश्वर! आपने मेरा मद दूर करदिया सो बड़ाही अनुग्रह किया। उद्यम व्यर्थ होनेसे मुझे अपनी शक्तिकी अपूर्णता विदित होगई। अब मैं, ईश्वर, गुरु और आत्मा जो आप हैं उनकी शरणमें आयाहूँ" ॥ १३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं–महाराज! इस प्रकार जब इन्द्र स्तुति कर चुके तब मेघके समान गम्भीर वाणीसे भगवान्ने हँसतेहुए कहा ॥ १४ ॥ भगवान्ने कहा–"इन्द्र! तुम ऐश्वर्यके मदसे अत्यन्त मत्त हो गये थे। तुम मेरा स्मरण करो, इसी लिये मैंने अनुग्रह करतेहुए तुम्हारे यज्ञको रोक दिया ॥ १५ ॥ ऐश्वर्य और श्रीके मदसे जो अंधा हो रहा है वह मुझ दण्डपाणि ईश्वरको नहीं देख पाता। ऐसे मदान्धोंमेंसे जिसपर मैं अनुग्रह करना चाहताहूँ उसकी सम्पत्ति हर

लेता हूँ, तब उसके ज्ञाननेत्र खुलजाते हैं ॥ १६ ॥ इन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने लोकको जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करतेहुए अभिमानहीन होकर अपना कार्य करो" ॥ १७ ॥ इसके बाद उदार चित्तवाली सुरभीने अपने सन्तानों सहित आकर गोपरूपी कृष्ण ईश्वरको प्रणाम किया ॥ १८ ॥ सुरभीने कहा—"हे कृष्ण ! हे कृष्ण! हे महायोगी! हे विश्वरूप और विश्वको उत्पन्न करनेवाले लोकनाथ अच्युत ! आपने इन्द्रके क्रोधसे हो रहे संहारसे हमारी रक्षा करके हमको सनाथ किया ॥ १९ ॥ आपही हमारे परमदेव हैं, अतएव हे जगन्नाथ ! गऊ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनोंके मङ्गलके लिये आपही हमारे इन्द्र होइये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीकी आज्ञासे हम अपना इन्द्र बनाकर आपका अभिषेक करेंगी। हे विश्वरूप! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये आपका यह अवतार हुआ है" ॥ २१ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! यों कहकर सुरभीने अपने दुग्धसे पहले कृष्णचन्द्रका अभिषेक किया। तदनन्तर देवमाता अदिति आदिकी आज्ञासे इन्द्रने भी देवगणके साथ ऐरावतके लाये हुए आकाशगङ्गाके पवित्र जलसे दाशार्ह कृष्णका अभिषेक किया और "गोविन्द" नाम रक्खा ॥ २२ ॥ २३ ॥ तुम्बुरु, नारद आदि गन्धर्व और विद्याधर, सिद्ध, चारण आदि वहाँ आकर त्रिलोकपापहारी हरिका यश गाने लगे और अप्सराएँ प्रसन्न हो कर नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ प्रधान २ देवगण स्तुति करतेहुए हरिके ऊपर स्वर्गीय अद्भुत फूलोंकी वर्षा करने लगे। तीनो लोकोंको परम आनन्द हुआ। गौवोंके स्तनोंसे उमंगके कारण आपही आप बह रहे दूधसे पृथ्वी भीगगई ॥२५॥ नदियोंमें जलके स्थान पर भाँति २ के रस (दुग्ध आदि) बहने लगे। वृक्षोंके कोटरोंसे मधु बहने लगा। बिना जोते बोये सब औषधियाँ जिनमें होती हैं उन पर्वतोंने गर्भगत मणियोंको प्रकटरूपसे धारण किया ॥ २६ ॥ हे कुरुनन्दन ! कृष्णाभिषेक होनेपर, जिनमें स्वाभाविक परस्पर वैर होता है वे क्रूर जीव भी वैरविहीन हो गये ॥२७॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ॥
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

इस प्रकार गोगण और गोकुलके स्वामी गोविन्दका अभिषेक करके उनकी आज्ञा पाकर देवर्षियोंके साथ पुरन्दर इन्द्र अपने स्वर्गलोकको गये ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय

वरुणालयसे नन्दको छुड़ालाना

श्रीशुक उवाच–एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥१॥

शुकदेवजीने कहा—महाराज ! गोपराज नंदने एकादशीके दिन उपवास किया और जनार्दनकी पूजा की एवं द्वादशीके दिन बहुत ही थोड़ी द्वादशी होनेके कारण (द्वादशीमें ही पारणा करना चाहिये–इस लिये) अरुणोदयके पहले ही आसुरी वेलाका ख्याल न करके स्नान करनेके लिये यमुनाजलमें प्रवेश किया । इसी लिये एक वरुणका किंकर जलचारी असुर नंदको वरुणके निकट लेगया ॥१॥२॥ इधर साथ आयेहुए गोपगण नंदको जलके बाहर निकलते न देख कर "हे कृष्ण !! हे बलभद्र !!" कह कर ऊँचे स्वरसे चीत्कार करने लगे । पिताको वरुण लेगये; यह सुनकर कृष्णचन्द्रने डरे हुए गोपोंको "डरो नहीं–मैं उनको अभी लाता हूँ" कह कर धैर्य दिया । उसी समय कृष्णचन्द्र वरुणके पास गये । हृषीकेश हरिको आये देख कर लोकपल वरुणने परमप्रसन्नतापूर्वक महा समारोहसे उनका पूजन किया ॥३॥४॥ वरुणजीने कहा—"प्रभो ! आज मेरा जन्म लेना सफल हुआ, आज वास्तवमें मुझको महासम्पत्ति (अथवा मनोरथ) मिलगई । भगवन् ! आपके चरणोंकी सेवा करनेवाले उन मोक्षपदको पाते हैं । अतएव आज मुझको भी संसार से मुक्ति मिलगई ॥ ५ ॥ ईश ! आपका ऐश्वर्य निरतिशय अर्थात् सर्वोत्कृष्ट है । आप पूर्णरूप, परमात्मा हैं । भ्रम उपजानेके लिये लोकसृष्टिकी कल्पना करनेवाली माया आपमें नहीं सुन पड़ती, अर्थात् आपके निकट अविद्यमान सी रहती है । आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ कार्याकार्यसे अनभिज्ञ महामूढ़ मेरा भृत्य, विना जाने इन आपके पिताको यहाँ ले आया है–अतएव हे प्रभो ! उसके अपराधको क्षमा करिये ॥ ७ ॥ हे पितृवत्सल गोविंद ! आपके पिता यह हैं, इनको ले जाइये । हे सर्वज्ञ कृष्ण ! मैं भी आपका दास हूँ, मुझपर भी अनुग्रह करिये ॥८॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । इस प्रकार नम्रताके व्यवहारसे वरुणने ईश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रको प्रसन्न किया । तदनन्तर कृष्णचन्द्र भी अपने बंधुओंको आनन्दित करतेहुए पिताको साथ लेकर वरुणलोकसे व्रजमें आये ॥ ९ ॥ गोपराज नन्द, वरुणके अदृष्टपूर्व ऐश्वर्यको और वरुणके कियेहुए कृष्णके प्रति सत्कार, पूजन तथा व्यवहारको देख कर बहुतही विस्मित हुए । नंदने व्रजमें आकर गोपोंसे सब वृत्तान्त कहा ॥ १० ॥ गोपोंने जाना कि कृष्णचन्द्र ईश्वर हैं । यह जान कर वे लोग मनहीमन इस लिये उत्सुक हुए कि "भगवान् कभी हमको भी अपनी सूक्ष्मगति तक पहुँचावेंगे ?" सर्वज्ञ भगवान् आत्मीय गोपोंका यह संकल्प जान गये । तब कृपापूर्वक

उनका उक्त संकल्प सिद्ध करनेके लिये भगवान्‌ने विचारा कि–"इस लोकमें अविद्या कामना और कर्मोंके द्वारा यह जीव, उत्तम और अधम गतियोंमें घूमते रहनेके कारण अपनी गति(तत्त्व)को नहीं जान सकता" ॥११॥१२॥१३॥ यों विचारकर करुणावरुणालय हरि, गोपोंको मायासे परे जो अपना वैकुण्ठलोक है, वहाँ लेगये ॥ १४ ॥ फिर, कोई बाधक न होनेसे जो सत्य है, ज्ञानरूप है, अनन्त है, स्वयं प्रकाशमान है, नित्य है, और जिसको गुणसम्बन्ध त्यागनेपर एकाग्रचित्त मुनि-जन देख पाते हैं, वही पहले अपना निर्गुण ब्रह्मरूप दिखाया ॥ १५ ॥ ब्रह्महृदमें जाकर वे लोग उसीमें मग्न होगये, तब कृष्णचन्द्रने उनको उससे बाहर किया अर्थात् जैसे समाधिसे जगाया । फिर सगुण ब्रह्म (विष्णु) का लोक उन गोपोंने देखा, जिसको यमुनाके भीतर अक्रूरने भी देखा था ॥ १६ ॥

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ॥
कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥

गोपोंने देखा, वहाँ कृष्णचन्द्र विराजमान हैं और वेद उनकी स्तुति कर रहे हैं। गोपोंको यह देखकर परमानन्द प्राप्त हुआ और वे बहुतही विस्मित हुए ॥ १७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश अध्याय

रासविहारका आरम्भ

श्रीशुक उवाच–भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—महाराज! भगवान्‌ने गोपकुमारियोंसे यमुनातटपर कहा था कि "आनेवाली शरद् ऋतुकी रातोंमें मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा"। वे शरद् ऋतुकी सुशोभित रमणीय रात्रियाँ आगईं और फूलीहुई मल्लिकाके कुसुम अपनी सुवाससे मनको मोहनेलगे। यह देखकर भगवान्‌ने भी योगमायाको अङ्गीकार करके विहार करनेकी इच्छा की ॥१॥ नायक जैसे बहुत दिनपर बाहरसे घर आकर कुङ्कुमराग अपनी प्रियाके मुखमें लगाता और उसके तापको हरता है वैसे ही पूर्ण चन्द्रमा अपनी सुखशान्तिमय किरणोंके द्वारा लालिमासे पूर्वदिशाका मुखरञ्जन करतेहुए आकाशमें समुदित हुआ । लोगोंके हृदयकमल सूर्यके तापसे मुरझा गयेथे सो अब चन्द्रमाके शीतल प्रकाशसे प्रफुल्लित हो उठे ॥ २ ॥ लक्ष्मी देवीके मुखमण्डलके तुल्य शोभाधाम एवं नवीन कुङ्कुमरागके सदृश अरुण-वर्ण चन्द्रमा पूर्णमण्डलसे आकाशमें प्रकाशमान है और उसकी कोमल किरणोंसे

वृन्दावन रंजित होरहा है-यह देखकर श्रीकृष्णचन्द्रजी, बाँसुरी बजाकर व्रजबालाओंके मनोंको हरनेवाले मधुर गीत गानेलगे ॥ ३ ॥ कृष्णने जिनके मनोंको हर लिया है वे व्रजनारियाँ वह कामोद्दीपक गान सुनते ही जहाँ कान्त हैं वहाँ झटपट झटपती हुई चल दीं। वेगसे चलनेके कारण उनके हिलतेहुए कुण्डल मुखमण्डलकी छवि बढ़ाते जातेथे। सब स्त्रियाँ अपनी अपनी ओर चलदीं-मारे उतावलीके किसीने किसीको नहीं बुलाया ॥ ४ ॥ कोई गोपी दूध दुह रही थी; कृष्णकी तान कानमें पड़तेही वह उत्सुकताके कारण दुहना छोड़कर चलपड़ी। कोई चूल्हेपर चढ़ाहुआ दूध विना उतारे, कोई गेहूँका संयाव (लप्सी या हलवा) चूल्हे हीपर छोड़कर चल दी ॥ ५ ॥ कोई कोई रसोईमें परिवारके लोगोंको भोजन करा रहीथीं, कोई बालकोंको दूध पिला रही थीं, कोई पतियोंकी सेवा कर रहीथीं, कोई भोजन कर रही थीं-वे सब अपना अपना काम छोड़कर कृष्णके पास चलीं ॥ ६ ॥ कोई उबटना लगा रही थीं, कोई चन्दन और अङ्गराग लगा रही थीं, कोई अञ्जनसे नयनरंजन कर रही थीं-सब अपना अपना शृङ्गार अपूर्ण ही छोड़कर जैसे तैसे उलटे सीधे वस्त्र और आभूषण पहनकर तुरंत कृष्णके पास चलीं ॥ ७ ॥ उनको उनके पिता, पति, भाई और बन्धुओंने लाख लाख रोका, परन्तु उनके मनोंको तो गोविन्दने हर लिया था-इसकारण कोई भी न लौटानेसे लौटीं ॥८॥ कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर ही रह गईं, बाहर न निकल सकीं, तब उन्होने, आँख मूँदकर जिनका ध्यान नित्य हरघड़ी किया करती थीं उन्ही कृष्णमें मनको लगादिया ॥ ९ ॥ प्यारे कृष्णके दुःसह विरहके तीव्र तापसें उनके सब अशुभ भस्म हो गये और ध्यानमें प्राप्त कृष्णकी भेंटके परमानन्दसे सब शुभ भी क्षीण हो गये, सुतराम् यद्यपि उन्होने 'जार'बुद्धिसे कृष्णमें मन लगाया, तथापि उक्त रीतिसे सुख दुःख भोगकर वे कर्मबन्धनसे मुक्त हो गुणमय शरीर छोड़कर परमात्मा कृष्णमें लीन हो गईं ॥१०॥ ११ ॥ राजा परीक्षित्ने पूछा—ब्रह्मन्! गोपियाँ तो कृष्णको अपना कान्त मानती थीं, उनको कृष्णमें ब्रह्मभाव नहीं था; तब उनको कैसे संसार (जन्म मरण) से मुक्ति मिल गई? क्योंकि उनकी बुद्धि तो मायाके गुणोंमें आसक्त थी ॥ १२ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्! मैं आपसे पहलेही कह चुका हूँ कि "हरिसे शत्रुता करके भी शिशुपाल मुक्त होगया," तब हृषीकेश कृष्णकी प्रिया गोपियोंके मुक्त होनेमें क्या विचित्रता है? ॥ १३ ॥ राजन्! भगवान् कृष्णचन्द्र यद्यपि अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियन्ता हैं, तथापि अपने अनुचरोंके मङ्गलके लिये समय समय पर सगुणरूपसे प्रकट होते रहते हैं ॥ १४ ॥ कामसे, क्रोधसे, भयसे, स्नेहसे, किसी सम्बन्धसे या भक्तिसे-किसी भी प्रकार जिनका चित्त अच्युतमें लवलीन है वे अवश्य तन्मय हो जाते हैं ॥ १५ ॥ राजन्! योगेश्वरोंके ईश्वर, अजन्मा, भगवान् कृष्णके विषयमें तुमको ऐसा सन्देह न करना
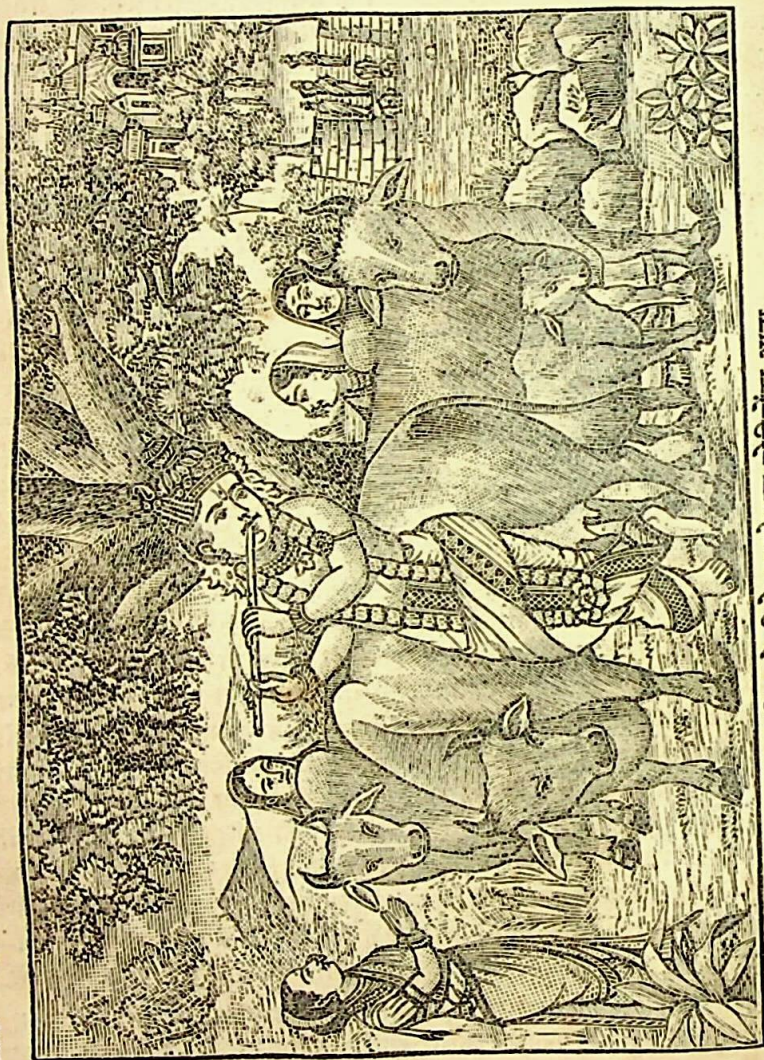
रासविहारके लिये कृष्णकेपास गोपियोंका आना.

चाहिये। कृष्णकी कृपासे जड़ जीव भी तर जाते हैं ॥ १६ ॥ महाराज, भगवान्‌ने देखा कि व्रजनारियाँ अपने पास आकर खड़ी हुई हैं। तब उनको वाक्चातुरीसे मोहित करतेहुए बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ हरिने कहा ॥ १७ ॥ कि-"महाभागाओ ! भले आईं। कहो-हम तुम्हारा क्या प्रिय करें? व्रजमें तो सब कुशल है? इससमय तुम्हारे आनेका कारण क्या है? सो हमसे कहो ॥ १८ ॥ देखो, यह रात्रि बड़ीही घोर है, इसमें भयंकर जीव वनमें विचर रहे हैं। इसलिये हे सुन्दरियो! मेरी सम्मति है कि तुम व्रजको लौट जाओ। तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है ॥१९॥ तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भाई और पति, तुमको न देखकर इधर उधर खोज रहे होंगे। बन्धुओंको वृथा घबड़ाहटमें न डालो ॥ २० ॥ यदि तुम वनकी शोभा देखने आई हो तो तुमने चन्द्रमाकी किरणोंसे उज्वल एवं फूलोंसे परिपूर्ण वृन्दावन देखलिया और यमुनाजलके संयोगसे शीतल पवनकी मन्दगतिसे हिलरहे वृक्षोंके नवपल्लवोंकी शोभा भी भलीभाँति निहार ली। बस, हे सतियो! देर न करो, शीघ्र व्रज जाकर अपने अपने पतियोंकी सेवा करो ? तुम्हारे बालक और बछड़े चिल्ला चिल्ला कर रो रहे होंगे, उनको जाकर दूध पिलाओ और गौवोंको दुहो ॥ २१ ॥ २२ ॥ अथवा तुम मुझमें मन लगा रहनेके कारण मुझको देखने आई हो तो यह उचित ही है, इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि मुझसे सभी प्राणियोंको प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ २३ ॥ गोपियो! निष्कपट होकर अपने स्वामी और स्वामीके बन्धुओंकी सेवा करना एवं सन्तानोंका पालन करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है ॥२४॥ जिन स्त्रियोंको उत्तम गति पानेकी इच्छा हो, उनको चाहिये कि स्वामी बुरे स्वभाववाला, अभागा, वृद्ध, जड़ (बौरा) या दरिद्र हो—किन्तु उसे न छोड़ें। हाँ, यदि उसको हत्या लगी हो-तब उससे अलग रहना उचित है ॥ २५ ॥ जारसेवा कुलकामिनियोंके लिये निन्दाका कारण है। यह निन्दित कर्म करनेसे स्त्रियाँ स्वर्गलोक नहीं पातीं, उनकी निन्दा और अकीर्ति होती है। इसमें बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं और सदैव भय बना रहता है। कहाँतक कहें-यह बड़ा ही तुच्छ कार्य है ॥२६॥ इसके सिवा मेरे चरित्र कहने और सुननेसे, और मेरे दर्शन और ध्यानसे जैसी मुझमें प्रीति होती है वैसी पास रहनेसे नहीं होसकती, इसलिये तुम सब अपने घरोंको लौट जाओ" ॥ २७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! इसप्रकार गोविन्दके अप्रिय वचन सुनकर गोपियोंको बड़ा ही विषाद हुआ, सब उमंग और अभिलाषाएँ जाती रहीं और अपार चिन्ताने उनके चित्तोंको चञ्चल कर दिया ॥ २८ ॥ शोकके कारण बार बार लम्बी और गरम साँसें ले रही गोपियोंके अधरबिम्ब सूख गये। दुःखके भारी भारसे दबी हुई गोपियाँ मुख नीचा किये पैरके अँगूठोंसे पृथ्वी खोदती हुई चुपचाप जैसी की तैसी खड़ी रह गईं। काजल मिलजानेके कारण काले हो गये आँसुओंके बूँद उनके कुचोंपर गिरनेलगे, जिनसे कुचोंपर लगाहुआ कुङ्कुमकलित

अङ्गराग छूट छूट कर बहनेलगा ॥ २९ ॥ वे प्यारे कृष्णहीके लिये सब काम छोड़कर दौड़ी आई थीं, किन्तु उनको प्रियतमके मुखसे इसप्रकार अप्रिय वचन सुननेको मिले—इससे गोपियोंको बड़ाही क्षोभ हुआ । उससमय रोनेके कारण फूलगये नेत्रकमलोंके आँसुओंको हथोरियोंसे पोंछकर किंचित् प्रणय-कोपके आवेशसे गद्गद होगई वाणीसे अनुरक्त व्रजबालाएँ यों कहनेलगीं ॥ ३० ॥ गोपियोंने कहा—"विभो ! आपको ऐसे निठुर वचन कहना नहीं उचित है । हम सब छोड़कर सेवा करनेकी अभिलाषासे आपके चरणकमलोंकी शरणमें आई हैं । हे स्वतन्त्र ! तुम हमको न त्यागो । जैसे आदिपुरुष नारायण देव मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा रखनेवाले) लोगोंको भजते हैं वैसेही तुम हम भक्तोंको भजो ॥ ३१ ॥ प्रियतम ! आप धर्मज्ञ हैं । आपने जो कहा कि 'पति, पुत्र और बन्धुओंकी सेवा करनाही स्त्रियोंका परम धर्म है'—सो हम यह मानती है । इसी उपदेशके अनुसार उपदेश देनेवाले ईश्वर जो आप हैं उनकी सेवाहीसे पतिपुत्रादिकी सेवा सिद्ध हो जायगी, क्योंकि आपही शरीरधारियोंके परमप्रिय, बन्धु, आत्मा हैं (अर्थात् विना आपके पति, पुत्रादि किसी कामके नहीं होते-उनपर उस मृत दशामें प्रेम नहीं रहता) ॥ ३२ ॥ प्यारे ! शास्त्रज्ञ चतुर लोग आपहीपर प्रेम करते हैं, क्योंकि आपही नित्य प्रिय आत्मा हैं । नाथ ! पति, सुत आदि क्या सुख दे सकते हैं ? वे तो दुःख देनेवाले हैं । अतएव हे परमेश्वर ! हमपर प्रसन्न होगये । हे कमलनयन ! अनेक दिनोंसे जो हमारी आशा लगी हुई है उसको नष्ट न करिये ॥ ३३ ॥ हे सुखदायक नायक ! जो हमारा चित्त इतने दिनोंसे घरमें लगा था उसको आपने हर लिया है, इसलिये अब घरमें चित्त नहीं लगाता । हाथ भी घरके काममें नहीं चलते और पैर भी आपके चरणोंके पाससे एक पग नहीं हटते । प्रियवर ! हम व्रजको कैसे लौटकर जायँ और वहाँ जाकर क्या करें ? ॥ ३४ ॥ हे कृष्ण ! मन्द मुसकानयुक्त चितवन और मधुर मनोहर गीतसे हमारे हृदयमें मदनानलकी ज्वालाएँ उठ रही हैं, उनके तापको अपने अधरसुधाकी धारासे सींचकर शीतल करिये । नहीं तो हे मित्र ! हमारा शरीर विरहकी अग्निसे भस्म हो जायगा और हम ध्यानके द्वारा आपकी पदपदवीको पहुँचेंगी ॥ ३५ ॥ हे कमललोचन ! तुम्हारे चरणकमल कमलाको आनन्द देनेवाले हैं । हे वनवासियोंके प्रिय ! जबसे हमने उन चरणोंका स्पर्श पाया है तबसे हमारा चित्त आपहीमें रम रहा है । अब हमसे किसी औरके निकट नहीं ठहरा जाता ॥ ३६ ॥ जिसके कृपाकटाक्षके लिये अन्यान्य देवगण अभिलाषा रखते और अनेक यत्न करते हैं वह लक्ष्मी आपके हृदयमें स्थान पाकर भी तुलसीके साथ आपके भक्तसेवित चरणरजके पानेकी लालसा रखती हैं । नाथ ! हम भी लक्ष्मीके समान उसी रजके पानेकी इच्छासे चरणोंकी शरणमें आई हैं ॥ ३७ ॥ हे संकटहरण ! पापनाशन ! हम सब

छोड़कर आपकी उपासना करनेकी आशासे चरणोंके निकट आई हैं—हमपर प्रसन्न होइये। हे पुरुषभूषण! आपकी सुन्दर मुसकान और मनोहर दृष्टिसे हमारे हृदयमें कामकी आग जग उठी है एवं उसके तापसे हमारा आत्मा तप रहा है, कृपापूर्वक हमको अपनी दासी बनाइये ॥ ३८ ॥ प्रियतम! कुण्डलकान्तिसे मनोहर कपोल, अधर-सुधा एवं अलकावलीसे सुशोभित आपका मुखकमल और सबको अभय देनेवाले दोनो बाहुदण्ड एवं लक्ष्मी जिसमें रुचिपूर्वक रमण करती है वह वक्षःस्थल निहारकर हम आपकी दासी हो चुकी हैं ॥ ३९ ॥ प्यारे कृष्ण! त्रिलोकीमें कौन ऐसी स्त्री है जो तुम्हारे सुधामय पदोंसे युक्त बाँसुरीके गानको सुनकर एवं त्रिलोकसुन्दर इस रूपको देखकर मोहित न होगी और उसका मन अपने धर्म (पतिव्रत) से डिग न जायगा? तुम्हारे इस त्रिलोकमोहन रूपको देखकर और बाँसुरीकी धुनि सुनकर पक्षी, पशु, मृग, गऊ और वृक्षोंके भी आनन्दसे रोम खड़े हो जाते हैं! ॥ ४० ॥ जैसे आदिपुरुष नारायण देवगणकी रक्षा करते हैं, वैसे ही आप व्रजवासियोंकी आर्ति (पीड़ा) हरनेके लिये व्रजमें प्रकट हुए हैं, यह निश्चित बात है। हे दीनबन्धो! इसलिये आप हम दासियोंके तपेहुए स्तनों और शिरोंपर अपना करकमल धरिये" ॥ ४१ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! इसप्रकार उनकी अनख-भरी कातर उक्ति सुनकर योगेश्वरोंके ईश्वर एवं आत्मामें ही रमनेवाले श्रीकृष्णजी दयापूर्वक हँसे और उनकी इच्छाके अनुसार विहार करनेलगे ॥ ४२ ॥ उदार चरित्रवाले कृष्णचन्द्रके दशनोंकी पाँति हँसते समय कुन्दकलीकी आवलीकी भाँति जान पड़ती थी। प्रियकी प्रेमभरी चितवनसे जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हो उठे हैं उन गोपियोंके बीच, तारागणके बीच पूर्ण चन्द्रमाके समान, श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा हुई ॥ ४३ ॥ वैजयन्ती माला पहनेहुए श्रीकृष्णचन्द्र उन असंख्य वनिताओंके झुंडमें कभी आप गाते और कभी उनका गाना सुनतेहुए इधर उधर घूमकर वनको सुशोभित करनेलगे ॥४४॥ उस समय यमुनाके तटपर पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी फैली हुईथी—चाँदनीके प्रकाशसे शीतल और स्वच्छ बालू चमक रही थी। कुमुदके फूलोंकी सुवाससे परिपूर्ण शीतल और मन्द वायु डोल रही थी। उसी मनोहर यमुनातटमें जाकर बाहु फैलाना, लिपटाना, गले लगाना, कर-अलक-जङ्घा-नीवी और स्तनोंको छूना, हँसी मसखरी, नखच्छद देना, क्रीड़ा, कटाक्ष, और मन्द मुसकान इत्यादिसे कामोदीपन करतेहुए श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके साथ रमण करनेलगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनका चित्त कहीं भी आसक्त नहीं है उन भगवान् माहात्मा कृष्णचन्द्रसे इसप्रकार मान पाकर गोपियोंके मनमें 'मान'का उदय हुआ—उन्होने समझा कि सुघराई रूप, गुण और भाग्यमें हमसे बढ़कर कोई भी स्त्री संसारमें नहीं है ॥ ४७ ॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

उनके सौभाग्यके मद और अभिमानको देखकर उसे मिटाने और उनपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् कृष्णचन्द्र वहीं अन्तर्हित (गायब) हो गये ॥४८॥

इति श्रीभागवते दशमस्कधे पूर्वार्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय

गोपियोंका श्रीकृष्णकी खोजमें इधर उधर घूमना

श्रीशुक उवाच—अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ॥
अतप्यँस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! झुण्डके स्वामी गजराजको न देखकर हथनियाँ जैसे व्याकुल होती हैं वैसेही अकस्मात् कृष्णचन्द्रके छिपजानेपर उनको न देखकर गोपियोंकी दशा हुई ॥ १ ॥ भगवान्‌की गति, अनुराग, हँसी, विभ्रमयुक्त चञ्चल दृष्टि, मनरमानेवाली बातचीत, विलास और विभ्रममें गोपियोंके चित्त बस रहेथे—अतएव वे तन्मय होरही थीं । उस समय सब गोपियाँ मिलकर कृष्णचन्द्रकी गतिआदि क्रीड़ाओंका अनुकरण करनेलगीं ॥ २ ॥ प्रियकी गति मुसकान, चितवन और बोलचाल आदिमें जिनकी सुरति लगी हुई है एवं तन्मय होनेके कारण कृष्णहीके तुल्य जिनके लीलाविलास हैं वे गोपियाँ "मैंही कृष्ण हूँ" इसप्रकार परस्पर कहनेलगीं ॥ ३ ॥ तदनन्तर सब गोपियाँ मिलकर ऊँचे स्वरसे प्रियके गुणोंको गातीहुई उनकी खोजमें उन्मत्तों (पागलों) की भाँति वन वन में घूमने लगीं एवं जो आकाशकी भाँति प्राणियोंके भीतर और बाहर अवस्थित है उन्ही परमपुरुषका पता वनस्पतियोंसे इसप्रकार पूछनेलगीं ॥ ४ ॥ "हे पीपल ! हे पकरिया ! हे गूलर ! प्रेम और हँसीसे पूर्ण कटाक्षोंके द्वारा हमारा चित्त हरकर नन्दनन्दन चले गये हैं—तुमने क्या उनको देखा है ? ॥ ५ ॥ हे कुरवक–अशोक–नाग–पुन्नाग–चम्पक आदि वृक्षवृन्द ! जिनकी मन्द मुसकान मानिनी महिलाओंके मानका मर्दन करनेवाली है वही बलभद्रके भाई कृष्णचन्द्र क्या इधरसे गये हैं ? ॥ ६ ॥ हे कल्याणी तुलसी ! हे गोविन्दके चरणोंको प्यार करनेवाली ! अलिकुलमण्डित तुम्हारी माला पहनेहुए तुम्हारे प्यारे कृष्णचन्द्र इधरसे तो नहीं गये ? क्या तुमने उनको इधर जाते देखा है ? ॥ ७ ॥ हे मालती ! हे मल्लिका ! हे जाहीजूही ! अपने हाथोंके स्पर्शसे तुमको

प्रसन्न करतेहुए क्या माधव इस राहसे गये हैं? ॥ ८ ॥ हे रसाल! हे प्रियाल! हे पनस! हे असन! हे कोविदार! हे जामुन! हे मन्दार! हे विल्व! हे वकुल! हे आम्र! हे कदम्ब! हे नीप! हे पराये उपकारके लिये उत्पन्न यमुनातीरवासी अन्यान्य सब वृक्षो! क्या तुमने कृष्णको जाते देखा है? कृपाकर कृष्णका पता हमको बताओ, क्योंकि उनके विना हमारा चित्त शून्य होरहा है! ॥ ९ ॥ अहा पृथ्वी! तूने क्या तप किया है? केशवके चरण-स्पर्शसे तू आनन्दित हुई है, इसीसे जान पड़ता है वृक्षोंकी आवलियोंद्वारा शरीरका रोमांच प्रकट कर रही है। तुझको यह आनन्द कृष्णके चरणस्पर्शसे हुआ है या त्रिविक्रम (वामनावतार) के चरणलाभसे? अथवा उससे भी पहले वाराह अवतारके शरीरस्पर्शसे ॥ १० ॥ हे हरिणपत्नियो! हमारे अच्युत अङ्ग-प्रत्यङ्गके द्वारा तुम्हारे नयनोंको तृप्त करतेहुए प्रियासहित क्या इस स्थानमें आये हैं? क्योंकि हे सखियो! इस स्थानपर कुलपति कृष्णके गलेमें पड़ी कुन्दकुसुममालाकी गन्ध, किसी प्रियाको गले लगानेके कारण, उसके कुचकुङ्कुमकी सुवाससे मिलीहुई आ रही है ॥ ११ ॥ हे तरुवृन्द! तुलसीकी गन्धसे अन्ध (मोहित) भौंरोंकी भीरसे घिरेहुए कमलनयन श्रीकृष्ण-चन्द्र, एक हाथमें कमल लिये और दूसरा हाथ किसी प्रियाके कन्धेपर धरे, प्रणय-पूर्ण दृष्टिसे तुम्हारे प्रणामका अभिनन्दन करतेहुए क्या घूमते घूमते इधर आये हैं? ॥ १२ ॥ सखियो! इन वनस्पतियोंकी भुजाओंसे लिपटी हुई लताओंसे तो प्यारेका पता पूछो, जान पड़ता है अवश्य ही कृष्णके नखोंका स्पर्श इनको मिला है, क्योंकि इनके अङ्ग पुलकित हो रहे हैं" ॥ १३ ॥ राजन्! श्रीकृष्णकी खोजमें अत्यन्त व्याकुल एवं श्रीकृष्णमय हो रही गोपियाँ, इसप्रकार उन्मत्तोंके ऐसे वाक्य बकते बकते अन्तमें प्रियतमकी कीहुई विविध क्रीड़ाओंका अनुकरण करनेलगीं ॥ १४ ॥ एक गोपी कृष्ण बनी और एक गोपी पूतना बनकर उसको दूध पिलाने-लगी। एक गोपी छकड़ा बनी और एक गोपीने कृष्ण बनकर पैरकी ठोकरसे उसको गिरा दिया ॥१५॥ एक गोपी बालक कृष्ण बनी और दूसरी तृणावर्त असुर बनकर उसको उड़ा ले गई। कोई गोपी कृष्णके समान रेंग रेंग कर चलनेलगी और वैसेही बज रहे पैरके घुँघरुओंके शब्दको घूम घूम कर सुननेलगी ॥ १६ ॥ दो गोपियाँ कृष्ण और वलदेव बनीं और कुछ गोपियाँ गोपबालक बनकर उनके साथ क्रीड़ा करनेलगीं। एकने अघासुर बनी हुईको और एकने बकासुरका अनुकरण करनेवालीको (झूठमूठ) मार डाला ॥ १७ ॥ एक गोपी कृष्ण बन गऊ बनी हुई गोपियोंको कृष्णके समान वंशी बजाकर बुलानेलगी, और कुछ गोपियाँ 'वाहवाह' कहकर उसकी बड़ाई करनेलगीं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णमें जिसका मन लगा हुआ है ऐसी एक गोपी किसी दूसरी गोपीके कन्धेपर हाथ धरके चलती हुई, अन्य गोपियोंसे कहनेलगी कि "मैं कृष्ण हूँ–देखो मेरी कैसी मनोहर

चाल है !" ॥ १९ ॥ "मैं तुम्हारी रक्षा करता हूँ। वायु और वर्षासे मत डरो–मैं रक्षाका उपाय करता हूँ" यों कहकर किसी गोपीने एक हाथसे अपने वस्त्रोंका बना हुआ गोवर्धन पर्वत उठा लिया ॥२०॥ एक गोपी दूसरी गोपीके शिरपर पैर धरकर कहनेलगी–"अरे दुष्ट सर्प ! तू यहाँसे चलाजा, दुष्टोंको दण्ड देनेहीके-लिये मेरा अवतार हुआ है" ॥ २१ ॥ एक गोपी कहनेलगी कि "हे गोपगण! देखो यह भयानक दावानल वनको भस्म करता चला आरहा है–तुम अपनी अपनी आँखें बन्द कर लो, मैं अनायासही इस संकटसे तुमको बचालूँगा" ॥ २२ ॥ एक मृगनयनी क्षीण अङ्गवाली गोपी दूसरी गोपीके द्वारा मालारचित उलूखलमें बाँधी गई, तब वह भयभीत व्यक्तिकीभाँति मुख छिपाकर भयका अभिनय करनेलगी ॥ २३ ॥ इसप्रकारसे फिर वृन्दावनके वृक्ष और लताओंसे कृष्णका पता पूछतीहुई गोपियोंने वनभूमिमें परमपुरुष कृष्णके चरणचिन्ह देख पाये ॥ २४ ॥ चरणचिन्होंको देखकर गोपियाँ कहनेलगीं कि–"ध्वजा, पद्म, वज्र, अङ्कुश आदिकी रेखाओंसे अवश्य जान पड़ता है कि ये चरणचिन्ह माहात्मा नन्द-नन्दनके हैं" ॥ २५ ॥ महाराज ! गोपियाँ उक्त चरणचिन्होंसे कृष्णका पता लगाती-हुई कुछ दूर आगे गईं। वहाँ उनको कृष्ण भगवान्‌के चरणचिन्होंके पास पास किसी और स्त्रीके भी चरणचिन्ह मिले । उन चरणचिन्होंको देख गोंपियाँ बहुत व्याकुल हुईं और कहनेलगीं कि–"ये किस कामिनीके चरणचिन्ह हैं ? अवश्य ही जैसे गजवधू गजराजके साथ चलती है वैसे ही वह गजगामिनी कृष्णके कन्धेपर भुजा धरकर उनके साथ ही साथ गई है ॥ २६ ॥ २७ ॥ निश्चय इसने भगवान् ईश्वर हरिको आराधना करके भलीभाँति सन्तुष्ट किया है । कृष्णकी प्रसन्नता इसीसे जान पड़ती है कि हम सबको वनमें छोड़कर उसको अपने साथ एकान्तमें ले गये हैं ॥ २८ ॥ सखियो ! ये कृष्णके चरणोंकी रेणुएँ परम पवित्र और धन्य हैं। देखो, ब्रह्मा, महेश और लक्ष्मी देवी पाप-नाशके लिये इनको शिर-पर स्थान देते हैं। आओ, हम सब भी इनको शिरपर धरें–ऐसा करनेसे अवश्य ही हमको कृष्णचन्द्र मिल जायँगे॥ २९ ॥ इस कामिनीके चरणचिन्होंसे हमको बड़ाही क्षोभ होता है, क्योंकि यह हम सबसे अलग ले जाकर अकेले ही प्रियकी अधरसुधा-का पान कर रही होगी" ॥ ३० ॥ कुछ दूर आगे जानेपर जब वे चरणचिन्ह न देख पड़े, तब गोपियाँ कहनेलगीं कि–"सखियो ! देखो, यहाँ उस कामिनीके चरणचिन्ह नहीं देख पड़ते। जान पड़ता है–वनभूमिके कठोर कङ्कड़, काँटे आदिसे प्रियाके चरण दुखते देखकर उसको कृष्णने कन्धेपर चढ़ा लिया है ! ॥ ३१ ॥ गोपियो ! देखो–देखो, यहाँपर जान पड़ता है कि, कामी श्रीकृष्ण प्रियाके भारसे थकगये हैं–इसीसे उनके चरण पृथ्वीमें अधिक गड़ गये हैं ! यहाँपर प्रियतमने प्रियाको उतारकर उसका शृङ्गार करनेकेलिये फूल बीने हैं। देखो, यहाँ दोनोंके चरणोंका

अगला हिस्सा ही पृथ्वीपर बना हुआ है। अवश्य यहाँ बैठकर कामी कृष्णके उस कामिनीके केश सँवारे हैं और इसप्रकार उकरूँ बैठकर फूलोंसे उसकी वेणी गूँदी है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! श्रीकृष्ण भगवान् पूर्णकाम और आत्माराम अर्थात् आत्मामें ही रमनेवाले हैं, उनको स्त्रियोंके विभ्रम–विलास वशीभूत नहीं करसकते। तथापि कामी पुरुषोंकी दीनताका चित्र और स्त्रियोंका दौरात्म्य दिखानेके लिये उस प्रियाको एकान्तमें ले जाकर उन्होने रमण किया ॥ ३४ ॥ अस्तु, वे सब गोपियाँ इसीप्रकार परस्पर चरण आदिके चिन्ह दिखलाती हुई बेसुध होकर वनमें इधरउधर घूमनेलगीं। इधर श्रीकृष्णजी सब स्त्रियोंको छोड़कर जिस गोपीको अपने साथ एकान्तमें ले गये थे उसने सोचा कि—"गोपियाँ इन प्रियतमपर परम अनुराग करती हैं, तब भी उनको छोड़कर इन्होने मेरा मान किया है"। यह विचारकर उसने समझा कि मैं सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हूँ। तब उस प्रेमगर्विताने वनमें कृष्णसे कहा कि—"मैं तो अब आगे चल नहीं सकती–जहाँ चलो वहाँ मुझको कन्धेपर बिठाकर लेचलो" ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यह सुनकर कृष्णने प्रियासे कहा कि–"अच्छा मेरे कन्धेपर चढ़ो"। जैसे वह स्त्री चढ़नेके लिये उद्यत हुई वैसेही भगवान् वहाँसे भी अन्तर्हित (गायब) होगये। तब वह कामिनी पछताकर विलाप करनेलगी कि–"हाय नाथ! हा प्रियतम! हा रमण! हा महाबाहो! कहाँ गये? हे मित्र! मैं आपकी दीन दासी हूँ, मेरेपास आओ" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ महाराज! इधर सब गोपियोंने कृष्णको खोजते खोजते एक स्थानपर देखा कि प्यारेके वियोगदुःखसे व्याकुल उनकी वह सखी खड़ी रो रही है ॥ ४० ॥ उसके मुखसे माधवसे मान पानेका एवं अपनी ही भूलके कारण अपमानित होनेका वृत्तान्त सुनकर गोपियोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जबतक चाँदनी वनमें फैली रही तबतक गोपियोंने घूम घूम कर कृष्णका पता लगाया; जब अन्धकार होगया तब सब लौट पड़ीं ॥ ४२ ॥ घूमकर कोई गोपी घरको नहीं गई। जातीं क्या, वे तो श्रीकृष्णहीकी बातचीत और लीलाओंका अनुकरण करते करते तन्मय होगई थीं–किसीको घरका ध्यान भी न था। सब मिलकर एक स्थानपर बैठ गई और हरिगुण गानेलगीं ॥ ४३ ॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ॥
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ ४४ ॥

कृष्णकी भावना करती हुई गोपियाँ कृष्णके आनेकी चाहसे यमुना–तटपर इसप्रकार गाती हुई प्रार्थना करनेलगीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय

गोपिकागीत

गोप्य ऊचुः—जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ॥
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

गोपियोंने कहा—"हे कान्त! आपके जन्मसे हमारे व्रजमण्डलको विचित्र वैभव और चमत्कार प्राप्त हुआ है और लक्ष्मी भी निरन्तर वास करके इसको सुशोभित कर रही हैं। किन्तु हे प्रियतम! देखो जिनके जीवन-प्राण आपही हैं वे आपकी अभागिनी दासियाँ आपके विरहमें निपट कातर होकर इस स्थानमें चारो ओर आपकोही खोज रही हैं। हमारे प्राण आपहीमें धरे हुए हैं। अतएव आप दर्शन दीजिये ॥ १ ॥ हे रमण! हे अभीष्टप्रद! तुम्हारे नेत्रोंने शरद् ऋतुके सुन्दर कमलोंके भीतरी भागकी शोभा हर ली है। हम आपकी विना मोलकी दासी हैं। आप आँखोंसे ओट होकर मनोहर आँखोंकी चोटसे हमको मारगये हो—क्या यह स्त्रीवध नहीं है—क्या यह कर्म आपके योग्य है? अतएव दर्शन देकर हमको जीवनदान करिये ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ! आपने वारंवार विषजल-जनित मृत्युसे, अघासुरसे, वर्षाके उत्पातसे-आँधी और वज्रपातसे, वत्सासुरसे, मया-सुरके पुत्र व्योमासुरसे—एवं अन्यान्य सब भयानक संकटोंसे हमारी रक्षा की है—तव इससमय भी क्यों नहीं इस कष्टसे मुक्त करते? ॥ ३ ॥ आप केवल यशो-दाको अथवा गोपियोंको ही आनन्द देनेवाले नहीं हैं, किन्तु सभीके प्रिय अन्त-र्यामी परमात्मा हैं। मित्र, विश्वकी रक्षाके लिये जब ब्रह्माने प्रार्थना की, तब आप यदुवंशमें प्रकट हुए हैं। हम तुम्हारी अनुरक्त दासियाँ हैं, अतएव हमारी कामना पूरी करिये ॥ ४ ॥ हे यदुकुलतिलक, जो लोग संसारके भयसे तुम्हारे चरणोंकी शरण लेते हैं, तुम्हारे करकमल अभयदान करके उनकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं। प्रियतम! जिनसे लक्ष्मीका हाथ पकड़ा है वेही करकमल हमारे शिर-पर धरो ॥५॥ हे व्रजवासियोंकी व्यथा हरनेवाले! हे वीर! आपकी मनोहर मन्द मुसकान भक्तोंके गर्वको दूर करनेवाली है। हे मित्र! हम आपकी दासियाँ हैं, कृपा करके हमें अङ्गीकार करो। अपना सुन्दर मुखारविन्द हमको दिखाओ ॥६॥ पशुओंके पीछे वनमें विचरनेवाले आपके चरणारविन्द प्रणत प्राणियोंके पापोंका नाश करते हैं। हे प्रियवर! वेही लक्ष्मीसेवित और शेषनागके शिरोंपर शोभायमान चरणकमल हमारे कुचोंपर स्थापित करके कामकी अग्नि बुझाइये ॥ ७ ॥ हे कमललोचन!

हम तुम्हारी दासियाँ तुम्हारे मधुर पदमय एवं पण्डितोंके हृदयोंको हरनेवाले वचनोंपर मोहित होरही हैं—अपने अधरोंकी सुधा पिलाकर हमको जीवनदान करो ॥ ८ ॥ नाथ! जो लोग, तप्त जनोंको जीवन देनेवाली, कवियोंके द्वारा प्रशंसित, पापनाशिनी, सुननेसेही मङ्गल करनेवाली, कामना और कर्मोंको निर्मूल करनेवाली, शान्तिमय, आपकी अमृतमयी कथा विस्तारपूर्वक कहते हैं उन्होने पूर्वजन्ममें बहुतसे दान पुण्य किये हैं ॥ ९ ॥ हे कपटी प्रिय! तुम्हारा वह ध्यान करतेही मङ्गल करनेवाला प्रेमपूर्ण देखना और विहार करना एवं एकान्तकी हृदय हरनेवाली बातें तथा क्रीड़ाएँ इस समय हमारे चित्तको चञ्चल (व्याकुल) कर रही हैं ॥ १० ॥ हे कान्त! हे नाथ! जब आप व्रजसे पशुओंको चरातेहुए वनको जाते हैं तब "आपके कमलसम कोमल और सुन्दर चरण, कंकड़ घास और काँटे इत्यादि कठिन वस्तुओंसे व्यथित होते होंगे"–इस चिन्तासे हमारा मन व्याकुल हो उठता है ॥ ११ ॥ हे वीर! दिनके अन्तमें आप जब गौवोंको साथ लेकर व्रजको लौटते हैं तब रजोरञ्जित अलकोंसे घिरा हुआ अपना मनोहर मुखारविन्द दिखाकर हमारे हृदयोंमें कामको जगाते जाते हैं ॥ १२ ॥ हे रमण! हे आर्तिभञ्जन! तुम्हारे चरणारविन्द प्रणत जनोंकी कामनाएँ पूरी करते हैं, उनकी लक्ष्मीजी सदा सेवा करती हैं, वे पृथ्वीके आभूषण हो रहे हैं, आपत्तिमें उनका ध्यान करनेसे कल्याण होता है। प्रियतम! वेही मङ्गलमय सुशीतल चरण हमारे स्तनोंपर स्थापित करो ॥ १३ ॥ हे वीर! सुरतको बढ़ानेवाला, शोकनाशन एवं बज रही बाँसुरीद्वारा भलीभाँति चुम्बित अपना अधरामृत हमको पिलाओ। वह अधरामृत मिलनेसे सार्वभौम सुखकी इच्छा भी तुच्छ जँचती है ॥ १४ ॥ दिनको जब आप वृन्दावनमें विचरते रहते हैं, तब आपको विना देखे आधा क्षण भी हमारेलिये एक युगके समान अपार हो जाता है। जब आप वनसे लौटते हैं तब कुटिलकुन्तलशोभित आपका श्रीमुख निहारकर हमको जो सुख होता है सो कहा नहीं जासकता। हम उस समय पलक बनानेवाले ब्रह्माको जड़ इत्यादि कठोर वाक्योंसे तिरस्कार करनेलगती हैं। पलक जितनी देरमें झपकती है उतना अन्तर भी हमको असह्य है ॥१५॥ हे गीतगतिज्ञ! हम ऊँचे स्वरमें गायेगये तुम्हारे मधुर गानकी तान कानमें पड़ते ही पति, पुत्र, बन्धु, बान्धव और भाइयोंके कहेपर ध्यान न देकर तुम्हारे निकट इस वनमें आईं–किन्तु हे कपटी! तुम्हारे सिवा ऐसा निठुर कौन होगा कि इसप्रकार अपनेही लिये घरबार छोड़कर आईहुई स्त्रियोंको रात्रिके समय वनमें छोड़कर चला जाय? ॥ १६ ॥ तुम्हारी कामोद्दीपन करनेवाली एकान्तकी सङ्केत-क्रीड़ाएँ, मन्द मुसकानसे मनोहर मुखमण्डल, प्रेमपूर्ण कटाक्ष एवं लक्ष्मीके रहनेका स्थान वक्षःस्थल देखकर मिलनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा वारंवार हमारे मनको मोहित कर रही है ॥ १७ ॥ हे मित्र! व्रज–वन-

वासी लोगोंके दुःख दूर करनेके लिये तुम्हारा त्रिलोक-हितकारी अवतार हुआ है। तुमसे मिलनेके लिये हमारा चित्त व्याकुल हो रहा है। प्यारे! जिससे तुम्हारे जनोंका हृदयताप शान्त हो वही औषध कृपणता छोड़कर हमको दीजिये ॥ १८ ॥

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वि-
त्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

हे प्रिय! तुम्ही हमारे जीवनसर्वस्व हो। कहीं चोट न लग जाय—इस भयसे हम जिन चरणकमलोंको अपने कठोर स्तनोंपर धीरेसे धरती हैं उन्ही सुकोमल चरणोंसे आप वनमें घूम रहे हैं—छोटे छोटे कङ्कड़ पत्थर उनमें गड़कर व्यथा पहुँचाते होंगे—यह चिन्ता हमारे चित्तको व्याकुल कर रही है" ॥ १९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंश अध्याय

श्रीकृष्णका प्रकट होकर गोपियोंको समझाना

श्रीशुक उवाच—इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ॥
रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! गोपियाँ, श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे इसप्रकार गातीहुई ऊँचे स्वरसे विचित्र प्रलाप कर रही थीं ॥ १ ॥ इसी अवसरमें साक्षात् मन्मथके भी मनको मथनेवाले नन्दनन्दन उनके आगेही प्रकट हुए। भगवान्के श्याम शरीरपर पीताम्बर और मालाकी अपूर्व शोभा थी—उनका मुखकमल मन्द मुसकानसे महा मनोहर देख पड़ता था ॥ २ ॥ कृष्ण प्यारेको सामने देखकर गोपियोंके नेत्रकमल आनन्दके कारण प्रफुल्लित हो उठे। जैसे प्राण आ जानेपर मृतक शरीर उठ खड़े हों वैसेही सब गोपियाँ उठ खड़ी हुईं ॥ ३ ॥ किसी गोपीने आनन्दसे कृष्णका कमलकोमल हाथ अपने हाथमें लेलिया। किसीने चन्दनचर्चित भगवान्की भुजा अपने कन्धेपर रख ली ॥ ४ ॥ किसी गोपीने कृष्णका जूठा पान (खानेके लिये) अञ्जलीमें लेलिया। किसी विरहाग्निसे तपी हुई गोपीने हृदय शीतल करनेकी कामनासे कृष्णका चरणकमल अपनी छातीपर रख लिया ॥ ५ ॥ प्रलयकोपसे विह्वल एक कामिनी ओंठ चबाती हुई धनुषसी भौंहें तानकर प्रियवरपर बाण ऐसे कुटिल

कटाक्ष छोड़नेलगी ॥ ६ ॥ कोई कामिनी चौगुने चावसे टकटकी लगाकर कृष्णका मुखकमल निहारने लगी—किन्तु कृष्णचरणोंके दर्शनसे साधुओंको जैसे कभी तृप्ति नहीं होती वैसेही वारंवार निहारनेसे भी उसका जी नहीं भरा ॥ ७ ॥ किसी गोपीने नयनोंकी राहसे कृष्णको हृदयमें लेजाकर दोनो नेत्र बन्द कर लिये, उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वह योगियोंकी भाँति कृष्णका ध्यान करती हुई परमानन्दमें मग्न हो गई ॥ ८ ॥ जैसे मुमुक्षु लोग ईश्वरको पाकर संसारके तापोंसे छूट जाते हैं वैसेही केशवदर्शनके परमानन्दको पाकर गोपियाँ विरहके तापसे मुक्त होगईं' ॥ ९ ॥ राजन्! शोकशून्य गोपियोंके बीचमें भगवान् अच्युतकी ऐसी शोभा हुई, जैसे परमपुरुष परमात्मा अपनी सत्त्वादि शक्तियोंमें शोभायमान होता है ॥ १० ॥ मदनमोहन भगवान् उन सब गोपियोंके साथ सुखदायक यमुनातटपर जाकर विहार करनेलगे । वहाँ खिलरही कुन्द और मन्दारकी कलियोंके संसर्गसे सुगन्धित वायु चल रही थी और उस वायुके साथही साथ मधुमत्त मधुप इधर उधर डोल रहे थे ॥ ११ ॥ शरद् ऋतुके स्वच्छ चन्द्रमाकी शान्त किरणोंसे वहाँ रात्रिका अन्धकार न था, जिससे वहाँ जाकर ठहरनेसे सुख मिलता था । यमुनाकी चञ्चल तरङ्गोंने वहाँ कोमल बालू फैला रक्खी थी ॥ १२ ॥ हरिदर्शनके परमानन्दसे जिनके हृदयकी तपन मिट गई है वे गोपियाँ मनोरथके अन्तको पहुँच गईं, अर्थात् तब उनको कोई कामना ही नहीं रही। जैसे श्रुतियाँ कर्मकाण्डमें परमेश्वरको न देख पाकर कर्मोंका अनुगमन करती हुई पहले अपूर्णकामासी रहती हैं और फिर ज्ञानकाण्डमें परमेश्वरको पाकर परमानन्दसे पूर्णकामा होकर कामनासे अनुबन्धको छोड़ देती हैं, वैसेही श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंको भी कोई कामना नहीं रही। उन्होने अपने बन्धु अथवा अन्तर्यामी कृष्णके बैठनेके लिये अपने अपने दुपट्टोंसे एक सुन्दर आसन बनाया ॥ १३ ॥ योगीश्वरोंके हृदयोंमें जिनका आसन रहाता है वही भगवान् श्रीकृष्ण आज गोपियोंकी सभामें उनके रुचिसे रचेहुए आसनपर विराजमान हुए। मानों त्रैलोक्यमें जितनी शोभा है वह सब कृष्णके श्याम शरीरमें अवस्थित होकर अपनेको शोभायमान कररही थीं ॥ १४ ॥ मन्द मुसकानके मिलनेसे मनोहर लीलाविलासमय कटाक्षोंसे परिपूर्ण बँक भौंहसे कुछ कुछ कोप जतातीहुई और गोदमें धरेहुए कामोद्दीपक प्रियतमके हाथ और पैरोंको धीरे धीरे दबाकर सम्मान-सूचना देतीहुई गोपियोंने भगवान् कृष्णसे कहा कि—"श्रीकृष्णचन्द्र! एक लोग ऐसे होते हैं जो भजनेवालोंको भजते हैं और एक लोग ऐसे होते हैं जो भजनेवालोंको भी भजते हैं । इनके सिवा एक ऐसे होते हैं जो भजनेवाले और न भजनेवाले दोनोंको नहीं भजते। इसका कारण क्या है—सो कृपा कर हमसे कहिये" ॥ १५ ॥ १६ ॥ भगवान्ने कहा—सखियो ! यह तुम्हारा कहना ठीक है।

देखो—जो अपना अपना प्रयोजन सिद्ध करनाही अपना अभीष्ट रखते हैं वेही भजनेकी अपेक्षा करते हैं अर्थात् भजनेवालेको भजते हैं, किन्तु यह मित्रता सच्ची नहीं है। क्योंकि इसमें धर्म नहीं किन्तु स्वार्थ है; विना स्वार्थके ऐसी मित्रता नहीं होती ॥१७॥ हे सुन्दरियो ! किन्तु जो लोग न भजनेवालोंको भी भजते हैं वे पिता माताके समान हो भाँतिके हैं । एक दयावान् और दूसरे स्नेहशील । इसमें दयावानोंको शुद्धधर्म और स्नेहशीलोंको सौहृदसुख प्राप्त होता है ॥१८॥ जो लोग भजनेवालोंको ही नहीं भजते तब न भजनेवालोंकी कौन कहे—उनके चार भेद हैं। एक 'आत्माराम होते हैं। जिनको परमहंस कहते हैं । दूसरे 'आप्तकाम'–होते हैं अर्थात् पूर्णकाम होनेके कारण उनको विषय देखकर भी भोग करनेकी इच्छा नहीं होती । तीसरे 'कृतघ्न' (एहसानफरामोश) होते हैं और चौथे 'गुरुद्रोही' कहलाते हैं ॥ १९ ॥ किंतु हे सखियो ! मैं यद्यपि भजनेवालोंको भी नहीं भजता, तथापि इन चारोमें नहीं हूँ, बरन् महादयालु और परम सुहृत् हूँ । मैं उनको नहीं भजता इसलिये वे निरन्तर सब समय मेरा ही ध्यान किया करते हैं। देखो जैसे कोई निर्धन पुरुष धन पाकर फिरसे गँवा दे तो उसका मन सब समय उसी धनमें लगा रहता है, हे गोपियो ! वैसेही तुमने भी मेरेलिये धर्मका न ध्यान करके सब बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर मेरा भजन किया । तुम्हारा ध्यान मेरी ओर अटल हो जाय, केवल इसीलिये मैं छिप गया था । सच पूछो तो छिपेहुए तुमको भज रहा था । तुम्हारी कोई दशा मुझसे छिपी नहीं है, मैं तो तुम्हारे पास ही था । इसलिये प्रियतमाओ ! तुम अपने प्रियपर कोप न करो ॥ २० ॥ २१ ॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ॥
या माऽभजन्दुर्जरगेहशृङ्खला संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥

तुमने दृढ़तर गृहशृङ्खला तोड़ डाली और मुझमें आकर मिलीं; यह तुम्हारा मिलना अनिन्दित है । मैं देवतोंकी इतनी आयुमें भी तुम्हारे इस साधुकृत्यका बदला नहीं चुका सकता । प्रत्युपकार करके मैं उद्धार नहीं पासकता । आशा करता हूँ कि तुम अपनी सुशीलता और उदारतासे ही मुझे ऋणसे मुक्त करोगी ॥ २२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंश अध्याय

रासनृत्य

श्रीशुक उवाच–इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! भगवान्‌के मधुर मनोहर वाक्योंसे कोमल

चित्तवाली गोपियोंका प्रणयकोप शान्त हो गया । हरिके अङ्गसंगसे गोपियोंकी अभिलाषा पूरी होगई और विरहताप मिट गया ॥ १ ॥ तब गोविंदने रासक्रीड़ाका आरम्भ किया । प्रियतमकी आज्ञाको माननेवाली श्रेष्ठ स्त्री गोपियाँ—प्रसन्नतापूर्वक परस्पर हाथसे हाथ मिलाये मण्डल बाँधकर खड़ीहुईं । उस गोपीमण्डलमें योगेश्वर कृष्णकी बड़ीही शोभा हुई, क्योंकि दो दो गोपियोंके बीच एक एक कृष्णकी मूर्ति थी । इसप्रकार गलबाहीं डालकर कृष्णचन्द्रने रास–उत्सवका आरम्भ किया । हरिकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे हरएक गोपी यही जानती थी कि मेरे ही पास प्यारे कृष्ण हैं । इतनेहीमें रासक्रीड़ा देखनेके लिये जिनके मन अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं वे देवगण अपनी अपनी स्त्रियोंसहित आकाशमें आपहुँचे । थोड़ी ही देरसें आकाशमण्डलमें विमान ही विमान देख पड़नेलगे । उससमय आकाशमें देवतालोग नगाड़े बजाकर फूलोंकी वर्षा करनेलगे और गन्धर्वगण अपनी स्त्रियोंसहित भगवान्‌का निर्मल यश गानेलगे । रासमण्डलमें अपने प्रियके साथ नृत्यमें निरत नारियोंके वलय, नूपुर और किंकिणियोंका महाशब्द होनेलगा । जैसे स्वर्णवर्ण मणियोंके बीचमें नीलमणिकी शोभा हो, वैसेही भगवान् देवकीनन्दन उन गोपियोंके बीचमें अत्यन्त शोभायमान हुए । नाचते समय गोपियोंके विचित्र चरणविन्यास दर्शनीय थे । वे भाँति भाँति हाथ मटकाकर भाव बताती थीं, उनकी सुकुमार कमर नाचतेमें लोचसे लचक लचक जाती थी । जब वे मुसकातीहुई भौंह नचाकर नचाती थीं तब बहुतही भली जान पड़ती थीं । उनके वस्त्र (दुपट्टे) उड़ उड़ जाते थे, जिससे हिलरहे कमनीय कुच खुल पड़ते थे । हिलरहे कुण्डलोंकी झलक कपोलोंपर पड़नेसे बहुत सुहावनी लगती थी । नाचकी थकावटसे उनके मुखमण्डलोंपर पसीनेके बूँद निकल आये और वेणी व नीवीकी गाँठें शिथिल हो गईं । इसप्रकार घनश्यामके साथ नाचती और गाती हुई व्रजबालाएँ, मेघमण्डलमें बिजलियोंके समान शोभायमान हुईं । कृष्णके अङ्गसङ्गसे परमानन्दको प्राप्त गोपियाँ ऊँचे स्वरसे भाँति भाँति के राग आलापतीहुई गानेलगीं । उनके गानेकी तानसे सम्पूर्ण विश्व गूँज उठा । कोई गोपी मुकुन्दके साथ गारही थी, उसने श्रीकृष्ण जिस स्वरमें गारहे थे उससे भी ऊँचे स्वरमें आलापना आरम्भ किया । इससे प्रसन्न होकर कृष्णचन्द्रने उसकी प्रशंसा की कि "वाह वाह" । दूसरी गोपी उसीको ध्रुवतालमें और भी ऊँचे स्वरसे गानेलगी—उस गोपीकी कृष्णने पहलीसे भी अधिक प्रशंसा की । किसी रासनृत्यमें थकी हुई गोपीके कङ्कण और वेणीमें गुँथेहुए मल्लिकाकुसुम शिथिल होकर गिरनेलगे, वह पासही खड़ेहुए कृष्णके कन्धेपर हाथ धरकर विश्राम करनेलगी ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ एक गोपी अपने कन्धेपर धरेहुए चन्दनचर्चित एवं कमलकी ऐसी सुगन्धवाले कृष्णके बाहुको प्रेमपूर्वक सूँघकर चूमनेलगी—

आनन्दके कारण उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया ॥ ११ ॥ एक गोपीने नाचतेमें हिलरहे कुण्डलकी झलकसे सुशोभित अपने कोमल कपोलको कृष्णके कपोलसे मिलाया। कृष्णने उसके मुखमें अपनी जूठी बीड़ी (पानकी गिलौरी) दे दी ॥१२॥ एक गोपी नाचरही थी, और उसके पैरोंके नूपुर व कमरकी मेखलासे मधुर ध्वनि होरही थी, नाचते नाचते जब वह थकगई तो उसने पासही खड़ेहुए कृष्णके मङ्गलमय करकमलको अपने हृदयपर धर लिया ॥ १३ ॥ एकान्तमें लक्ष्मीके एकान्तवल्लभ अच्युत कान्तको पाकर गोपियाँ गलबाहीं डालकर गाती हुई सुखपूर्वक इसी प्रकार विविध विहार करनेलगीं ॥ १४ ॥ सुवाससे मत्त हो रहे भौंरेही जिसमें गवैये हैं उस रासमभामें कृष्णसहित सब गोपियाँ वलय, नूपुर, किङ्किणी और अन्यान्य बाजोंके शब्दके साथ नृत्य करती थीं। उससमय कानोंमें स्थित कमल-कुसुम, अलकावलीसे अलंकृत कपोल और पसीनेके बूँदोंसे उनके मुखमण्डलोंकी अपूर्व शोभा हुई एवं उनके बिखर रहे चञ्चल केशोंमें गुँथी हुई फूलोंकी मालाएँ खिसक खिसक कर पृथ्वीपर गिरनेलगीं ॥ १५ ॥ महाराज! जैसे कोई बालक अपनेही प्रतिबिम्बके साथ खेले वैसेही भगवान् लक्ष्मीपति स्नेहपूर्ण कटाक्ष, उदार विलास एवं मन्द मुसकानसे मन हरतेहुए हाथसे हाथ मिलाकर व लिपटाकर व्रजबालाओंके साथ रमण करनेलगे ॥ १६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! हरिके अङ्गसङ्गसे गोपियोंको परमानन्द प्राप्त हुआ, वे परमानन्दमें मग्न होगईं। उनके अङ्गोंसे फूलोंकी मालाएँ और आभूषण गिरते जाते थे, पर सँभाले कौन?

उनको तो अपने शरीरकी भी सुधिबुधि न थी। बाल अलग बिखर रहे थे, वस्त्र अलग उड़े जाते थे, कञ्चुकी अलग खुली पड़ती थी—किन्तु उनको पहलेकीभाँति

सँभालनेका सामर्थ्यही गोपियोंमें न था ॥ १७ ॥ कृष्णकी क्रीड़ा देखकर आकाशमें स्थित देवतोंकी स्त्रियाँ भी कामसे पीड़ित होकर मोहको प्राप्त हुईं, एवं तारागणसहित चन्द्रमा भी विस्मित होकर जहाँके तहाँ सब लीला देखतेरहे। इससे रात बड़ी भारी (छः महीनोंकी) हो गई, और उसमें गोपियोंने सुखपूर्वक विहार किया ॥ १८ ॥ यद्यपि भगवान् कृष्ण आत्मामें रमनेवाले निःस्पृह हैं, तथापि लीलापूर्वक जितनी गोपियाँ थीं उतनेही रूप धरकर वह उनके साथ रमनेलगे ॥१९॥ राजन्! अत्यन्त विहार करनेसे थक गईं गोपियोंके मुखकमलोंमें जब पसीना आगया तब उसको करुणानिधान कृष्णने प्रेमपूर्वक अपने कल्याणमय करकमलसे पोंछ दिया ॥२०॥ प्रियतमके नखस्पर्शसे प्रमुदित गोपियाँ—प्रभावशाली सुवर्णके कुण्डल और उन कुण्डलोंकी कान्तिसे अलंकृत कपोलोंकी शोभासे अत्यन्त मनोहर मन्द मुसकान और चाह-भरी चितवनसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णको रिझाती व सम्मानित करती हुई उन्हीके पवित्र चरित्र गानेलगीं ॥ २१ ॥ फिर जैसे थका हुआ गजराज थकन मिटानेके लिये सेतु तोड़ता हुआ जलमें घुसकर हथनियोंके साथ क्रीड़ा करे, वैसेही लोक और वेदकी मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले कृष्णचन्द्रने भी थकावट दूर करनेके लिये गजगामिनी गोपियोंके साथ जलकेलि करनेकी इच्छासे यमुनाके भीतर प्रवेश किया। अङ्गसङ्गमें मलीगई एवं गोपिकाओंके कुचकुङ्कुमसे रञ्जित वन-मालापर कुञ्ज छोड़कर गूँजरहे भ्रमरपुञ्ज गन्धर्वोंके समान गान करतेहुए भगवान्‌के पीछे पीछे चले ॥ २२ ॥ राजन्! जलके भीतर सब गोपियाँ, मन्दमुसकानके साथ प्रेमपूर्वक निहारती हुई कृष्णके ऊपर चारो ओरसे जलकी बौछार करनेलगीं, एवं दिव्य विमानोंपर बैठेहुए देवगण फूलोंकी वर्षासे भगवान्‌का सत्कार करनेलगे। कृष्णचन्द्रने स्वयं आत्माराम होकर भी गजराजके समान लीलापूर्वक इसप्रकार जलविहार किया ॥२३॥ तदनन्तर भौरोंकी भीरसे घिरेहुए गोपीमण्डलमण्डित कृष्णचन्द्र जलसे निकलकर, जहाँ जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले फूलोंकी सुवासको लियेहुए शीतल पवन डोल रहा है उस यमुना-किनारेके निकुञ्जमें, हथनियोंके झुण्डको साथलिये मदमाते गजराजके समान विचरनेलगे ॥ २४ ॥ महाराज! इसप्रकार सत्यसंकल्प कृष्णने प्रणयिनी गोपियोंके साथ, चन्द्रमाकी किरणोंसे सुशोभित एवं काव्योंमें जो सब शरद्‌ऋतुसम्बन्धी रसकी बातें कही गईं हैं उनसे परिपूर्ण रात्रियोंमें भलीभाँति रमण किया। इतना होनेपर भी भगवान्‌ने वीर्यपात नहीं होने दिया—क्योंकि वह जितेन्द्रिय योगी थे, साधारण विषयी पुरुषोंकी भाँति कामके वशीभूत न थे ॥ २५ ॥ **राजा परीक्षित्‌ने कहा**—ब्रह्मन्! धर्मकी स्थापना और अधर्मके मिटानेहीके लिये पृथ्वीपर जगदीश्वरका यह अंशावतार हुआ है ॥ २६ ॥ धर्मकी मर्यादाओंको बनानेवाले, रक्षक और उपदेशक होकर उन्होने यह परनारी-

गमनरूप विरुद्ध आचरण (अधर्म) क्यों किया ? आप्तकाम अर्थात् भोगभावना-रहित, पूर्णकाम यदुपतिने यह निन्दित कर्म किस अभिप्रायसे किया ? हे सुव्रत ! हमको यह बड़ा भारी संशय है। कृपा करके इस संदेहको दूर करिये। **शुकदेवजीने कहा**—महाराज ! ईश्वर (समर्थ) लोगोंका किसी किसी स्थलपर धर्मके व्यतिक्रममें भी साहस देखा जाता है। इसका कारण यही है कि तेजस्वी लोग अकार्य करनेसे भी दूषित नहीं होते। देखो अग्निमें जो शुद्ध या अशुद्ध पड़ता है उसको वह भस्म कर देता है, तथापि उसके कारण दूषित नहीं होता। किन्तु जो अनीश्वर है वह ईश्वरोंके ऐसे विपरीत आचरणके अनुकरणका कभी मनमें संकल्प भी न करे। यदि वह मूर्खतासे करता है तो उसका विनाश हो जाता है। शिवने कालकूट विष पी लिया परन्तु उनका कुछ नहीं बिगड़ा; किन्तु यदि कोई असमर्थ व्यक्ति उनका अनुकरण करके विष पान करे तो अवश्य ही मरजायगा। ईश्वरोंके वचन सत्य हैं, अर्थात् उनके अनुसार चलना चाहिये। ईश्वरोंके कोई कोई आचरण भी अनुकरण करनेयोग्य हैं—किन्तु सब नहीं। इसलिये ईश्वरोंके वचनोंको मानना एवं उचित आचरणोंका अनुकरण करनाही बुद्धिमानोंका कर्तव्य है। हे प्रभो ! जो लोग देहाभिमानसे शून्य हैं एवं जिनको पुण्यकर्मसे मङ्गलकी कामना या पापकर्मसे अमङ्गलकी आशा नहीं है, अर्थात् पूर्व-सञ्चित कर्मोंको फलभोगद्वारा क्षीण करना ही जिनके देहधारणका अभीष्ट है उन आत्माराम योगियोंके लिये जब कार्याकार्यका कोई विधि-निषेध नहीं है तब जो तिर्यक् (पशुपक्षी-कीट आदि), मनुष्य और देवता आदि जीवोंके ईश्वर एवं सब ऐश्वर्योंके अधिपति सर्वशक्तिमान् साक्षात् परमेश्वर हैं उनको सुकृत और दुष्कृतकी संभावना कहाँ और कैसे हो सकती है ? ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जिनके पदपद्मपरागके सेवनसे तृप्त भक्तजन और योगके प्रभावसे कर्मबन्धनमुक्त ज्ञानी मुनिजन स्वच्छन्द होकर विचरते हैं—अर्थात् आवागमनसे मुक्त हो जाते हैं उन अपनीही इच्छासे शरीर धारण करनेवाले ईश्वरको पाप या पुण्यका बन्धन कैसे हो सकता है ? ॥३४॥ जो पर-मात्मा गोपियोंके, गोपियोंके पतियोंके एवं सब देहधारियोंके अन्तःकरणमें विराज-मान हैं वही बुद्धि आदिके साक्षी कृष्णचन्द्र लीला करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण कर पृथ्वीमें अवतरे हैं। भगवान्‌ने प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण किया है, क्योंकि नररूप हरिकी लीलाएँ सुनकर प्राणियोंको दृढ़ ईश्वरभक्ति होती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ महाराज ! भगवान्‌की मायामें मोहित रहनेके कारण व्रजवासियोंने जाना कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही पास हैं। इसकारण उनके मनमें कृष्णकी ओरसे किसी प्रकारका मैल नहीं आया ॥ ३७ ॥ इसप्रकार जब वह रात्रि बीतगई और ब्राह्ममुहूर्त आ पहुँचा, अर्थात् दो घड़ी रात्रि रह गई, तब इच्छा न होनेपर भी कृष्णकी आज्ञासे कृष्णकी प्यारी गोपियाँ अपने अपने घरोंको गईं॥३८॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ३९ ॥

जो कोई व्रजबालाओंके साथ की हुई इस रासलीलाको श्रद्धापूर्वक पढ़ते या सुनते हैं वे धीरजन शीघ्र ही भगवान्‌की श्रेष्ठ भक्ति पाते हैं एवं कामरूप मानसिक रोगसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंश अध्याय

सुदर्शनमोचन और शंखचूडयक्षवध

श्रीशुक उवाच–एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! एक समय देवयात्राके अवसरपर सब गोपलोग बड़ेही चावसे, बैल जिनमें नहे हुए हैं उन छकड़ोंपर चढ़कर अम्बिकावनको गये ॥ १ ॥ वहाँ सरस्वती नदीमें स्नान करके उन लोगोंने अनेक सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक देवदेव महादेव और भगवती अम्बिका देवीका पूजन किया ॥ २ ॥ 'परमेश्वर हमपर प्रसन्न हों'—इस कामनासे उन लोगोंने ब्राह्मणोंको गऊ, वस्त्र, सुवर्ण और अनेक मधुर अन्न दिये ॥ ३ ॥ फिर व्रतके कारण केवल जलपान करके महाभाग नन्द सुनन्द आदि गोपगण उस रातको वहीं सरस्वतीके किनारे रह गये ॥ ४ ॥ रातके समय वनमें एक बहुत भूखा बड़ा भारी अजगर घूमता हुआ वहाँ आया और उसने सो रहे नन्दका पैर लील लिया ॥ ५ ॥ जब अजगरने पकड़ लिया तब भयभीत नन्दने चिल्लाकर कहा कि—"हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे पुत्र! यह महासर्प मुझको लीले लेता है। मुझको इस संकटसे बचाओ" ॥ ६ ॥ नन्दकी चिल्लाहट सुनकर सब गोप सहसा उठ बैठे और उन्होने देखा कि नन्दको सर्पने ग्रस लिया है। तब घबड़ायेहुए गोपगण जलती हुई लकड़ियोंसे सर्पको दागनेलगे, जिससें वह नन्दको छोड़ दे ॥ ७ ॥ जलती हुई लकड़ियोंसे दागनेपर भी सर्पने नन्दको नहीं छोड़ा, तब यदुनाथ कृष्णने आकर पैरसे उस सर्प को छूदिया ॥ ८ ॥ श्रीमान् भगवान्‌के चरणस्पर्शसे उसके सब अशुभ नष्ट हो गये और वह तुरन्तही

सर्पयोनिसे छूटकर परमसुन्दर विद्याधर हो गया ॥ ९ ॥ उसके शरीरमें सुवर्णकी ऐसी कान्ति थी, कण्ठमें सोनेकी माला पड़ी हुई थी। उसने चरणोंमें गिरकर श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर नम्रताके साथ खड़ा हो गया। तब भगवान्‌ने उससे पूछा कि "तुम कौन हो, तुम्हारा रूप परम अद्भुत है और तुम्हारे शरीरकी शोभाका अद्भुत चमत्कार देख पड़ता है। किस कर्मसे विवश हो कर तुमको यह सर्पका निन्दित शरीर प्राप्त हुआ था—सो उचित समझो तो कहो" ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्पने कहा—"नाथ! मैं एक विद्याधर हूँ, मेरा नाम सुदर्शन है। मेरी शोभा, स्वरूप और संपत्ति अमित थी। मैं विमानपर बैठा हुआ इच्छानुसार चारो ओर भ्रमण किया करता था। मुझको अपने रूपका बड़ा घमण्ड था, इसीसे एक दिन राहमें अङ्गिराके वंशके कुरूप मुनियोंको देखकर मैं हँस दिया। इसीसे कुपित होकर उन्होने शाप दिया। भगवन्! यह मेरा दोषही इस निन्दित योनिके मिलनेका कारण है ॥ १२ ॥ १३ ॥ किन्तु मैं समझता हूँ कि उन दयालु ऋषियोंने शाप नहीं दिया, वरन् अनुग्रहही किया। उन्हीकी कृपासे आज मुझको आप जो तीनो लोकोंके गुरु हैं उनके दुर्लभ चरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ और तुरन्तही मेरे सब पाप नष्ट हो गये ॥ १४ ॥ हे दुःखनाशन! हे प्रपन्नभयभञ्जन! आपके चरणोंका स्पर्श पातेही मैं शापसे छूट गया। अब आज्ञा दीजिये—मैं अपने लोकको जाऊँ ॥ १५ ॥ आप महायोगी, महापुरुष और सज्जनोंके स्वामी हैं। हे जगदीश्वरोंके भी ईश्वर! हे देव! अब कृपा करके मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ आपकी महिमा अपरम्पार है, अहो आपके दर्शन पाते ही मैं अमोघ ब्रह्मदण्डसे मुक्त हो गया। किन्तु इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। केवल आपके नामका ऐसा प्रभाव है कि नामकीर्तन करनेवाला सुननेवालोंसहित उसी समय पवित्र हो जाता है। तब मुझे तो साक्षात् आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ है मेरी मुक्ति होना क्या आश्चर्य है" ॥ १७ ॥ इसप्रकार कृष्णकी परिक्रमा और प्रणाम करके एवं जानेकी आज्ञा लेकर विद्याधर सुदर्शन अपने लोक (स्वर्ग) को गया और कृष्णकी कृपासे नन्दजी भी कष्टसे छूट गये ॥ १८ ॥ कृष्णके ऐसे अपूर्व प्रभावको देखकर व्रजवासियोंको बड़ाही विस्मय हुआ। गोपगण प्रातःकाल अपना नियम समाप्त करके हरिके उक्त चरित्रको आदरपूर्वक कहतेहुए लौटकर व्रजको आये ॥ १९ ॥ एक दिन अद्भुत पराक्रमवाले बलभद्र और श्रीकृष्णजी वनमें रात्रिके समय व्रजबालाओंके साथ विहार करनेलगे। दोनो भाई सुन्दर आभूषण, वस्त्र, अङ्गराग और मालाओंसे सुशोभित हुए, और जिनका प्रेम अटल अचल है वे गोपियाँ मधुर स्वरसे उन्हीके गुण गानेलगीं ॥ २० ॥ २१ ॥ उस समय रात्रिका पहला ही पहर था, तारागणसहित पूर्ण चन्द्रमा आकाश में प्रकाशमान था एवं मल्लिकाकी सुवासमें मतवाले मधुपगण इधरउधर कुमुदकुसमोंके

सुगन्धित संसर्गसे पवनके साथ डोल रहे थे। दोनो भाइयोंने रास रचकर उस मनोहर रात्रिको सम्मानित किया ॥ २२ ॥ कृष्ण-बलदेव दोनो भाई उस समय एकसाथही स्वरमण्डलमूर्च्छनायुक्त मधुर राग आलापने लगे। वह गान सुननेवालोंके कान और मनको तृप्त करनेवाला था ॥ २३ ॥ वह महामनोहर गीत सुनकर गोपियोंको अपने शरीरकी भी सुधि बुधि नहीं रही। उनके वस्त्र गिर पड़नेसे अङ्ग खुलगये, केश बिखर गये और केशोंमें गुँधे हुए फूलोंकी मालाएँ शिथिल होकर खिसक पड़ीं ॥ २४ ॥ जैसे कोई मतवाला हो उस भाँति अपनी इच्छाके अनुसार कृष्ण और बलदेव क्रीड़ा करतेहुए गारहे थे—इसी अवसरपर उधरसे कुबेरजीका किंकर शङ्खचूड़ नाम यक्ष वहाँ आया ॥ २५ ॥ वह निडर यक्ष, कृष्ण-बलदेव जिनके रक्षक हैं उन चिल्लाती हुई गोपियोंको लेकर कृष्ण-बलदेवके सामने ही उत्तर दिशाको चला ! जैसे गौवें बाघको पास देखकर चिल्लाती हैं वैसेही "हे कृष्ण ! हे बलभद्र!!" कह कर गोपियाँ चिल्लानेलगीं। अपनी प्रियाओंकी यह दशा देखकर दोनो भाई उस दुष्ट यक्षके पीछे झपटे ॥ २६ ॥ २७ ॥ दोनो भाई "डरो नहीं–डरो नहीं"—कहकर निर्भय करतेहुए शालके वृक्ष उखाड़कर वेगसे यक्षको पकड़नेके लिये दौड़े और शीघ्र ही भाग रहे दुष्ट यक्षके निकट पहुँचगये ॥ २८ ॥ उसने जब देखा कि काल और मृत्युके समान दोनो भाई पास पहुँच गये तब वह मूढ़ बहुत घबड़ाया और स्त्रियोंको वहीं छोड़ अपने प्राण लेकर भागा ॥ २९ ॥ भगवान् कृष्णने तब भी उसका पीछा नहीं छोड़ा, क्योंकि वह उसके शिरमें छिपेहुए चूड़ामणिको लेना चाहते थे। बलदेवजी तो वहीं खड़े होकर स्त्रियोंकी रक्षा करनेलगे और कृष्णजी जहाँ जहाँ वह दुष्ट भाग कर गया वहाँ वहाँ उसके पीछे पहुँचे ॥ ३० ॥ थोड़ीही दूरपर जाकर कृष्णने उस दुरात्माको पकड़ लिया। घूँसेके प्रहारसे उसका शिर फट गया और प्राण निकल गये। भगवान्ने उसके शिरसे चूड़ामणि निकाल लिया ॥ ३१ ॥

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥
अग्रजायाददत्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥

इसप्रकार शङ्खचूड़को मारकर और प्रभावशाली मणि लेकर कृष्णचन्द्र लौटे और आकर प्रसन्नतापूर्वक गोपियोंके आगे ही वह चूड़ामणि बड़े भाई बलभद्रको देदिया ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंश अध्याय

कृष्णके वियोगमें व्याकुल गोपियोंका कृष्णचन्द्रकी चर्चामें मन बहलाना

श्रीशुक उवाच–गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! गोपियोंकी रात्रि तो कृष्णके साथ विहार करनेमें सुखसे बीतती थी परन्तु दिनको जब प्यारे कृष्ण गौवें चरानेके लिये वनको जाते तब उन्हीमें गोपियोंका मन लगा रहता और वे इसप्रकार कृष्णकी लीलाएँ गाकर कष्टसे उतना समय व्यतीत करती थीं ॥ १ ॥ गोपियाँ परस्पर कहतीं कि—"सखियो ! वाम बाहुपर वाम कपोल धरेहुए कृष्ण जब अधरपर धरी हुई वंशीको सातो स्वरोंके सात छेदोंपर कोमल अँगुलियाँ धरते और हटातेहुए भौंह नचाकर बजाते हैं तब उस वंशीकी मनोहर ध्वनिको सुनकर अपने पतियोंके साथ विमानोंपर बैठीहुई सिद्धोंकी स्त्रियाँ परम विस्मयको प्राप्त होती हैं एवं हृदयमें कामके बाण लगनेसे लज्जापूर्वक मोहित हो जाती हैं । उनको इतना भी देहाध्यास नहीं रहता कि कमरसे खिसककर गिरनेवाले वस्त्रको सम्हालें ॥ २ ॥ ३ ॥ सुन्दरियो ! एक और विचित्र बात सुनो । जिनके वक्षःस्थलमें मनोहर मुसकानकी झलक हारके समान शोभायमान होती है एवं चञ्चला लक्ष्मी स्थिर दामिनीके समान विराजमान है वह आर्तबन्धु कृष्णचन्द्र जब वंशी बजाते हैं तब उस विचित्र वंशीकी ध्वनिने जिनके हृदय हर लिये हैं वे झुण्डके झुण्ड व्रज–वनवासी गऊ, मृग, बैल आदि पशु, चारो ओर घासके कौरको वैसेही मुखमें दबाए, कान उठाए—जैसे सोरहेहों इसप्रकार आँखें बन्द किये, चित्रलिखितसे खड़े रह जाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ सखियो ! मयूरोंके पङ्ख, गेरू आदि चित्र विचित्र धातु एवं नवपल्लवोंसे नटवर वेष बनाये कृष्ण-चन्द्र जब बलभद्र एवं अन्यान्य गोपोंके साथ वनमें खड़े होकर गौवोंको अपने निकट बुलाते हैं तब वायुद्वारा लाये गये उनके चरणरजके लाभकी लाल-सासे नदियोंकी भी गति रुकजाती है । अवश्य ही उन नदियोंने भी हमारे ही समान थोड़ा पुण्य किया है, क्योंकि प्रेमवश उनकी तरङ्गरूप भुजाएँ केवल एक दो बार डोलती हैं और फिर जल निश्चल हो जाती हैं अर्थात् उनकी इच्छा सफल नहीं होती ॥ ६ ॥ ७ ॥ सखियों ! अनुचर गोपगण (या देवगण) जिनके विचित्र वीर्यका वर्णन करते हैं वह आदिपुरुष नारायणके समान अचल लक्ष्मीसम्पन्न विपिनविहारी व्रजचन्द्र जब पर्वतके शिखरोंपर चररही गौवोंको वंशी बजाकर बुलाते हैं तब फूल और फलोंके भारसे जिनकी शाखाएँ झुकरही हैं वे वनके वृक्ष–लता आदि वनस्पतिसमूह प्रेमसे पुलकितशरीर होकर मधुधाराओंकी वर्षासे

मानो अपनेमें आत्मारूप विष्णुकी व्यापकता सूचित करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ देखने-योग्य सुन्दर तिलक लगाये कृष्णचन्द्र जिस समय वनमालाके मध्यमें स्थित दिव्य गन्धवाली तुलसीके मधुर मधुमें मत्त मधुपमण्डलीके गुञ्जनका आदर करतेहुए वंशीको अधरपर धरकर बजाते हैं उस समय, मनोहर गीतने जिनके चित्त चुरा लिये हैं वे सरोवरवासी सारस, हंस आदि अनेक पक्षी निकट आकर एकाग्रचित्तसे नेत्र मूँदकर चुपचाप योगियोंके समान ध्यान लगाकर हरिकी उपासना करते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे गोपियो ! फूलोंकी मालाओंसे रचे गये कर्णभूषणोंसे जिनके मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही है वह कृष्णचन्द्र जिस समय प्रसन्नता-पूर्वक जगत्को प्रसन्न करतेहुए बलभद्रके साथ पर्वतके शिखरोंपर खड़े होकर वंशी बजाते हैं उस समय महान् जो कृष्ण हैं उनके अतिक्रमणसे जिसका चित्त शङ्कित हो रहा है वह मेघ वंशी-ध्वनिके पीछे मन्द मन्द गर्जता है (अर्थात् कृष्ण-चन्द्र कुपित न हों इसलिये वंशीध्वनिसे अधिक शब्द नहीं करता) और अपने सुहृद् कृष्णचन्द्र मेघसदृश श्याम शरीर हैं और मेघके समान विश्वके तापको हरने-वाले भी हैं इसीलिये उनको मेघका सुहृद् कहा है) व्रजराजपर फूलोंकी वर्षा करता हुआ छत्रके समान छाया करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदाजी! गोपोंकी विविध क्रीड़ाओंमें निपुण तुम्हारे पुत्र कृष्णचन्द्र जिस समय स्वयं सीखीहुई निषाद, ऋषभ आदि अनेक स्वरजातियोंको अधरबिम्बपर धरी बाँसुरी बजाकर आलापते हैं उससमय हे सती नन्दरानी! इन्द्र, महादेव, ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगण ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ भेदोंके उतार चढ़ावसें आलापे हुए गीतको शिर झुकाकर कान लगाकर एकाग्र चित्तसे सुनते हैं एवं सर्वज्ञ होकर भी उस गीतके तत्त्वको निश्चितरूपसे न जान सकनेके कारण मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ सखियो! श्रीकृष्णचन्द्र जब ध्वजा, वज्र,कमल अङ्कुश आदि विचित्र चिन्होंसे युक्त अपने श्रीचरणोंकेद्वारा व्रजभूमिकी गोखुरप्रहारजनित व्यथा मिटातेहुए गजराजकी ऐसी चालसे बाँसुरी बजाते चलते हैं उस समय उनकी लीलाविलासपूर्ण चितवन हमारे हृदयमें कामको जगा देती हैं, हम कामदेवके वेगसे वृक्षोंके समान जड़ दशाको प्राप्त हो जाती हैं और मोहके कारण खुलेहुए वस्त्र या वेणी बाँधना भी भूल जाती हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ गौवें गिननेके लिये मणियोंकी माला एवं प्रियगन्ध-वाली तुलसीकी माला पहनेहुए कृष्णचन्द्र जब अपने प्रणयी सखाके कन्धेपर भुजा धरकर वनसे लौटतेसमय गौवोंकी गिनती करतेहुए वंशी बजाते हैं उस समय बज रही वंशीके शब्दसे जिनके चित्त छले गये हैं वे मृगोंकी स्त्रियाँ दौड़ती हुई गुणसागर नटनागर कृष्णके निकट आती हैं और हम गोपियोंके समान घरद्वार छोड़कर उन्हीके पास खड़ी रहती हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदाजी! हे शुद्धच-रित्रवाली व्रजरानी! कुन्दमाला पहने और कौतुक उपजानेवाला वेष बनाये तुम्हारे

पुत्र नन्दनन्दन कृष्ण, जिससमय गोप और गौवोंको साथ लेकर उनके बीचमें यमुनातटपर प्रणयी जनोंको आनन्द देतेहुए विहार करते हैं, उस समय मलय पर्वतमें उत्पन्न चन्दनके समान जिसका स्पर्श शीतल है वह सुन्धित पवन उनका सम्मान करता हुआ अनुकूल होकर मन्द मन्द डोलता है एवं बन्दीजनोंकी भाँति स्तुतिपाठ करतेहुए गन्धर्व आदि उपदेवगण बाजे बजाते, गाते, और फूलोंकी वर्षा करते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ सखियो! कृष्ण प्यारे हम व्रजवासियोंके और गौवों-के परम हितकारी हैं; उन्होने गौवोंकी और हमारी रक्षाके लिये गोवर्धन पर्वत उठा लिया और उसे सात दिनतक वैसेही लिये खड़े रहे। अब दिन बीत गया, जान पड़ता है कि सब गोधन एकत्र करके हम सुहृद् जनोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये प्यारे कृष्ण आ रहे हैं, वह सुनो—गोपगण पीछे पीछे उनकी अपूर्व कीर्तिका कीर्तन करते आ रहे हैं और वंशीकी मधुर ध्वनि भी सुन पड़ती है। अवश्यही ब्रह्माआदि देवगण मार्गमें चरणवन्दना करते जाते हैं, इसीसे अबतक हमको प्यारेका दर्शन नहीं मिला। सखियो! वह देखो, गौवोंके खुरोंसे उड़ीहुई धूलिसे धूसरित मालाको पहने देवकीके पुत्र गोकुलचन्द्र आगये! अहो यद्यपि यह इससमय वनविहारसे थके हुए आ रहे हैं तौभी इस समयकी मनोहर छविसे नेत्रोंको अत्यन्त आनन्द दे रहे हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ वनमालीकी आँखें इससमय मदके कारण कुछ चढ़ी हुई हैं, दोनो कपोल कनककुण्डलोंकी कान्तिसे सुशोभित हो रहे हैं, अतएव पकेहुए बेरके फलके समान मुखमण्डल पीतवर्ण हो रहा है। प्यारे कृष्ण अपने सुहृद्जनोंको कृपादृष्टिसे सम्मानित करतेहुए गजराजकी ऐसी चालसे आ रहे हैं। देखो देखो, व्रजवासी और गौवोंके दुरन्त दिनतापको दूर करतेहुए प्रसन्नवदन यदुपति सायंकालमें चन्द्रमाके समान हमारे समीपही आ रहे हैं" ॥ २४ ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच–एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीलानुगायतीः ॥
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! इसप्रकार कृष्णही जिनके जीवनसर्वस्व हैं और उन्हीमें जिनके मन आसक्त हो रहे हैं वे महाभाग्यशालिनी गोपियाँ उन्ही प्रियतमके चरित्र गाती और चर्चा करती हुई दिनको बिताती थीं ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंश अध्याय

अरिष्टासुरका वध और कंसका अक्रूरको व्रज जानेके लिये आज्ञा देना

श्रीशुक उवाच—अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥
महीं महाककुत्कायः कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! इसी अवसरमें अरिष्टनाम असुर बैलके रूपसे, खुरप्रहारसे पृथ्वीको खोदता और कम्पित करता हुआ व्रजमें आया। उसका ककुद् और शरीर बहुतही ऊँचा और लम्बा चौड़ा था ॥ १ ॥ वह विकट शब्द करता हुआ वारंवार धरतीको खोदता और पूँछ उठाकर सींगोंसे दीवारोंको तोड़ता एवं बीच बीचमें थोड़ा थोड़ा मलत्याग करता जाता था। वह दोनो नेत्र फैलाये भयानक रूपसे गर्ज रहा था। राजन्! उसके कठोर शब्दको सुनकर गौवें और गोपियाँ बहुतही डरीं और अकालमेंही उनके गर्भ गिर पड़े और बह गये। उसका ककुद् इतना ऊँचा था कि उसपर मेघसमूह पर्वतके धोखे ठहर जाते थे। अत्यन्त तीक्ष्ण सींग उठाये उस असुरको व्रजमें आते देखकर गोपी और गोप बहुतही डरे। सब पशु व्रज छोड़कर इधरउधर भागे। गोकुलवासी लोग—"हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! इस वृषभासुरसे हमारी रक्षा करो"—यों कहते-हुए गोविन्दकी शरणमें आये। भगवान्ने देखा कि सब गोकुल भय और घबड़ाहटके कारण प्राणोंकी रक्षाके लिये इधरउधर भाग रहा है। कृष्णचन्द्रने "डरो नहीं" इस अभयवाणीसे उनको आश्वास दिया और वृषभासुरको ललकारकर कहा कि—"रे कायर! हे महादुष्ट! इन गोपों और पशुओंको क्यों वृथा डरा रहा है? तुझऐसे दुष्ट दुरात्मा लोगोंके बलदर्पको दूर करनेवाला मैं खड़ा हूँ"। यों कहकर दीनार्तिहारी अच्युतने ताल ठोंककर अपनी सखाके कन्धेपर धरीहुई भुजा असुरके आगे फैला दी। यह देखकर असुरको बड़ाही कोप हुआ। इसप्रकार हरिद्वारा कोपित असुर, क्रोधके कारण खुराघातसे पृथ्वीको खोदता कृष्णकी ओर बढ़ा। वह इस वेगसे पूँछ उठाकर झपटा कि मेघ चक्कर खागये। वह असुर आगे सींग किये लाल लाल आँखें फैलाये कृष्णपर वक्र दृष्टि डालता हुआ इन्द्रके हाथसे छूटे वज्रके समान वेगसे चला ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ जैसे कोई गजराज अपनेसे भिड़नेवाले किसी दूसरे गजको पीछे हटा दे वैसे ही कृष्णचन्द्रने सींग पकड़कर उस असुरको अट्ठारह पग पीछे रेल दिया ॥ ११ ॥ भगवान्ने पीछे हटा दिया, किन्तु वह फिर शीघ्रही सँभल गया। उसके शरीरसे पसीना बहनेलगा तौ भी वह बड़ी बड़ी साँसें छोड़ता हुआ कोपाकुल होकर फिर कृष्णपर झपटा ॥ १२ ॥ भगवान्ने सामने आरहे बैलके सींग पकड़लिये और पैरोंके आक्रमणसे उसको पृथ्वीपर गिरा दिया; फिर जैसे

कोई गीले वस्त्रको निचोड़े इसप्रकार उसके शरीरको मरोड़ डाला एवं सींग उखाड़ लिये और उसीके प्रहारसे उसे मारडाला ॥ १३ ॥ अरिष्टासुर गिर पड़ा, मुखसे रुधिर बहनेलगा, मल-मूत्र निकल पड़ा, आँखोंकी पुतली घूम गईं। इसप्रकार बार बार पैर पटककर बड़े कष्टसे वह दैत्य यमलोकको गया। यह देखकर देवगण फूलोंकी वर्षा करतेहुए हरिकी स्तुति करने-लगे ॥ १४ ॥ इसप्रकार गोपियोंके नयनोंके आनन्द नन्दनन्दन कृष्णचन्द्र, गोपोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनतेहुए वृषभासुरको मारकर बलरामके साथ व्रजमें आये ॥ १५ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मारडाला तब भगवान्की इच्छा जान-कर एक दिन दिव्य दृष्टिवाले देवऋषि भगवान् नारदजीने कंसके यहाँ जाकर उससे कहा कि-"देवकीके आठवें गर्भसे कन्या नहीं हुई—वह कन्या यशो-दाकी थी, कृष्ण और बलभद्र दोनो देवकी और रोहिणीके पुत्र हैं। वसुदेवने तुम्हारे भयसे अपने मित्र नन्दके यहाँ धरोहरके समान उनको रख छोड़ा है, उन्ही दोनोने तुम्हारे अनुचरोंको मारा है"। यह वृत्तान्त सुनतेही कोपके कारण कंसकी सब इन्द्रियाँ विचलित हो उठीं। उसने वसुदेवको मारनेके लिये एक तीक्ष्ण तवार उठा ली, किन्तु नारदजीके समझानेसे मान गया। कंसको नारदके बतानेसे विदित हुआ कि वसुदेव उसकी कुछ हानि नहीं कर सकते, वसुदेवके दोनो पुत्रही काल हैं इसकारण कंसने वसुदेवको मारा नहीं, किन्तु देवकीसहित लोहेकी जंजीरोंमें बाँधकर बन्दीगृहमें डाल दिया। जब देवऋषि चले गये तब कंसने केशी नाम असुरको बुलाया और उससे कहा कि तुम व्रजमें जाकर कृष्ण और बलभद्र-को मार डालो ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तदन-न्तर भोजराजने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि मल्लोंको और महावत तथा अन्यान्य मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—"हे चाणूर, मुष्टिक आदि वीरवरो! सुनो। वसुदेवके पुत्र कृष्ण और बलदेव नन्दके व्रजमें रहते हैं, नारदसे मुझको विदित हुआ है कि उन्हीके हाथों मेरी मृत्यु बदी है। मैं उनको यहाँ बुलाऊँगा, तुम अपने दावपेंचकी चतुराईसे उनको मार डालना। भाँति भाँति के मञ्च और अखाड़े बनाओ और सजाओ; पुर और जनपदोंके रहनेवाले लोग उन मंचोंपर बैठकर इस स्वैरसंयुग (दंगल)को देखेंगे। महावत! तुम भी उस दिन रङ्गद्वारपर कुवलया-पीड़ हाथीके ऊपर रहना और यथाशक्ति उन दोनो मेरे शत्रुओंको मार डालना, हाथीसे बचकर जाने न पावें! चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुषयज्ञका अरम्भ हो और वरदानी भूतनाथकी पूजामें असंख्य पशुओंका बलिदान किया जाय" ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ स्वार्थ साधनेमें सिद्धहस्त कंसने महावत और मल्लोंको यों आज्ञा देकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरको अपने पास बुलाया और हाथमें हाथ लेकर कहा कि—"हे

अक्रूरजी! तुम मेरे परम मित्र हो, यादवोंमें तुमसे बढ़कर मेरा आदरपात्र और हितू कोई नहीं है, अतएव आज तुमको मेरा एक काम करना होगा ॥ २७ ॥२८॥ जैसे सर्वशक्तिशाली इन्द्रने विष्णुके आश्रयसे सब अपने काम सिद्ध किये वैसे ही मैं भी अपना काम साधनेके लिये तुम्हारा आश्रय लेता हूँ ॥ २९ ॥ तात! हे सौम्य! तुम यहाँसे नन्दके व्रजमें जाओ, वहाँ वसुदेवके दो पुत्र रहते हैं, उनको बहुत शीघ्र रथपर ले आओ–विलम्ब न करो ॥३०॥ विष्णुका जिनको आश्रय है उन देवोंने इन दोनो बालकोंको मेरे मारनेके लिये सिर्जा है। यह निश्चित बात है, नन्दआदिक गोप भाँति भाँति की भेंटें लेकर आवें; उन्हीके साथ तुम कृष्ण बलभद्रको ले आओ। मैं यहाँ आनेपर उन दोनोको कालतुल्य हाथीसे मरवा डालूँगा। कदाचित् वे हाथीसे किसीप्रकार बच गये तो मेरे वज्रके समान कठिन और फुर्तीले मल्ल उनको जीता न छोडेंगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उनके मरनेपर शोकाकुल वसुदेव आदि उनके बन्धुओं और अन्यान्य भोज-वृष्णि-दाशार्हवंशज उनके मित्रोंको सहजमें ही मार डालूँगा ॥ ३३ ॥ फिर बूढ़े होनेपर भी जिसको राज्य करनेकी लालसा है उस अपने पिता उग्रसेन और चाचा देवकको एवं और और जो अपने शत्रु हैं उनको भी मार डालूँगा ॥ ३४ ॥ मित्र! तब यह पृथ्वी निजसम्पत्ति हो जायगी। ससुर जरासन्ध, प्रिय मित्र द्विविद वानर, शम्बरासुर, नरकासुर, बाणासुर आदि जो मेरे हितकारी हैं उनकी सहायतासे देवपक्षवाले राजोंको मारकर मैं पृथ्वीका निष्कण्टक राज्य करूँगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यह जानकर तुम शीघ्रही कृष्ण और बलदेव दोनो बालकोंको धनुपयज्ञ और मथुरा पुरीकी शोभा देखनेके मिससे ले आओ" ॥३७॥ अक्रूरने कहा—"राजन्! आपने जो विचार करके ठीक किया सो बहुत अच्छा है, अपना अमङ्गल मिटाना मनुष्यका कर्तव्य है; किन्तु उसका सिद्ध हो जाना या न सिद्ध होना अपने अधीन नहीं है; फल देनेवाला दैव ही है ॥ ३८ ॥ लोगोंकी उच्च अभिलाषाएँ यद्यपि दैवके प्रतिबन्धक होनेसे प्रायः पूरी नहीं होतीं तथापि वे वैसी कामनाएँ करके आनन्द भी पाते हैं और दुःखित भी होते हैं। जो हो, मैं आपकी आज्ञा अवश्य पालन करूँगा" ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच–एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाऽक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! इसप्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर कंसने मन्त्रियोंको विदा किया और भवनमें गया। इधर अक्रूरजी भी अपने घरको गये ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवन्ते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

बलदेवजीने स्वागत-सत्कारके बाद बैठनेके लिये श्रेष्ठ आसन दिया, विधिपूर्वक पहले पैर धोकर मधुपर्क (शर्बत) आदि दिया ॥ ३८ ॥ विभुने अतिथि अक्रूरको एक सब गुणोंसे युक्त गऊ दी । फिर अक्रूरने कुछ कालतक विश्राम किया और प्रभुने पास बैठकर आदरपूर्वक व्यजन (पंखा) डुलाया । तदनन्तर बलभद्रने अनेक गुणोंसे युक्त पवित्र अन्न लाकर श्रद्धापूर्वक अक्रूरको भोजन कराया ॥ ३९ ॥ जब वह भोजन कर चुके तब श्रेष्ठ धर्मके जाननेवाले बलभद्रने मुखवास (पान इलायची आदि), सुगन्ध और सुगन्धित फूलोंकी माला देकर उनको परमप्रसन्न किया ॥ ४० ॥ इसप्रकार सत्कार हो जानेपर नन्दजीने अक्रूरसे पूछा कि "हे दाशार्ह अक्रूरजी ! निर्दय क्रूर कंस जीवित है, अतएव कसाईके घर पली हुई भेंड़ोंके समान तुम लोगोंको हरघड़ी अपने प्राणोंका खटका लगा रहता होगा । तुमपर कैसी बीतती है ? कंस खल है, वह सब प्रकार अपने शरीरके पालन पोषणकी ही चेष्टामें तत्पर रहनेवाला है । जिसने अपनी बिलख रही बहनके आगे ही उसके पुत्रोंको मार डाला उसकी प्रजाकी कुशल पूछना ही हमारी समझमें व्यर्थ है । उसकी प्रजाको तो जीवन भी दुर्लभ होगा" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ॥
अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

इसप्रकार सत्कारपूर्वक मधुर वाणीसे नन्दने अक्रूरसे कुशलप्रश्न किया । कृष्ण-बलदाऊके सत्कार और शुश्रूषासे अक्रूरका मार्गश्रम दूर होगया और वह स्वस्थ हुए ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंश अध्याय

अक्रूरका कृष्ण बलदेवको लेकर मथुराको लौटना

श्रीशुक उवाच—सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ॥
लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! अक्रूरने आतेसमय राहमें जो जो मनोरथ किये थे उनको श्रीकृष्ण बलदेवने भलीभाँति सत्कार करके पूर्ण कर दिया । अक्रूरजी सुखपूर्वक पलँगपर बैठे ॥ १ ॥ लक्ष्मीपति भगवान्‌के प्रसन्न होनेपर कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो न मिलसके । तथापि हे राजन् ! हरिभक्तलोग कोई भी कामना नहीं करते ॥ २ ॥ सायन्तन भोजनके उपरान्त देवकीनन्दन

कृष्णचन्द्र अक्रूरके पास आकर बैठे एवं "बन्धुओंसे कंस कैसा व्यवहार करता है और अब वह क्या करना चाहता है ?" सो भी इसप्रकार अक्रूरसे पूछा ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं—"हे तात ! भले आये, आपका कल्याण हो। आपके यहाँ तो सब कुशल है ? आपके सुहृद्जन, जातिवाले और बन्धुगण तो सुख-पूर्वक सुस्थशरीर हैं ? ॥ ४ ॥ अथवा यदुकुलको रोगके समान पीड़ा पहुँचानेवाले हमारे मामा कंसका जब अभ्युदय है तब तुम्हारी, तुम्हारे आत्मीयोंकी और प्रजागणकी कुशलही क्या पूछना है ? ॥ ५ ॥ अहो ! मेरेही कारण माता पिताको अनेक कष्ट मिलते हैं। मेरेही कारण उनके पुत्र मारे गये और वे स्वयं वन्दी बने ! ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! अहो भाग्य है जो आज स्वजनदर्शन प्राप्त हुआ; मेरी भी यही अभिलाषा थी। हे तात ! अब आप अपने आनेका कारण कहिये" ॥ ७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! इसप्रकार भगवान्के पूछनेपर मधुवंशीय अक्रूरने सभी बातें कह सुनाईं। अक्रूरने कहा—"कंसने, यादवोंसे अभी घोर वैर बाँधा है, अभी वसुदेवजीको मारडालनेके लिये उद्यत हुआ था, नारदजी उससे कह गये हैं कि आप (कृष्ण) वसुदेवके पुत्र हैं"। इसीप्रकार 'कंसका संदेसा और दुरभिसन्धि एवं इसीलिये दूत बनकर अपना आना' आदि सब वृत्तान्त अक्रूरजीने कह दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ शत्रुसेनाका संहार करनेवाले कृष्ण और बलदेवजी, अक्रूरके वचन सुनकर हँसे एवं अपने पिताको कंसकी आज्ञा सुना दी ॥ १० ॥ नन्दने भी उसी समय व्रजके रक्षक अधिकारीके द्वारा गोपमण्डलीमें यह घोषणा करवादी कि "सब गोरस और भाँति भाँति की भेंटें लेकर अपने अपने छकड़े सुसज्जित करो। सवेरे राजा कंसको धनुर्यज्ञरूप पर्वमें गोरस और भेंटें देनेके लिये चलना होगा। पर्वोत्सव देखनेके लिये सब ग्रामवासी लोग भी वहाँ जाते हैं" ! यह घोर घोषणा सुनकर गोपियाँ बहुत ही व्यथित हुईं कि कृष्ण बलदेव दोनोंको लेजानेकेलिये व्रजमें अक्रूर आये हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ उस व्यथासे उत्पन्न हृदय-तापकी गर्म श्वासाओंसे कुछ गोपियोंके मुखकमल मुरझा गये। कुछ गोपियाँ ऐसी शिथिल हो गईं कि उनको दुपट्टे और कङ्कनोंके गिरने तथा वेणीके खुलनेका भी चेत न रहा ॥ १४ ॥ कुछ गोपियाँ कृष्णके ध्यानमें ऐसी लवलीन होगईं कि उनकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट होगईं और मुक्त व्यक्ति-योंकी भाँति उनको देहाध्यास भी नहीं रहा ॥ १५ ॥ और कुछ गोपियाँ कृष्णके अनुरागपूर्ण, हास्ययुक्त, हृदयहारी मधुरपदवाले वाक्योंको स्मरणकर मोहित होगईं ॥ १६ ॥ गोविन्दकी सुललित गति, चेष्टा, स्नेहपूर्ण हँसी और दृष्टि, शोक दूर करनेवाले नर्मवाक्य और उदारचरित्र आदिको स्मरण करनेसे उनको जब यह चेत हुआ कि उन्हीका वियोग होता है तब अच्युतमें ही जिनका चित्त लगा हुआ है वे गोपियाँ बहुत ही दुःखित और भयभीत हुईं, एवं एकत्र होकर यों विलाप करती

हुईं आँसू बहानेलगीं ॥ १७ ॥ १८ ॥ गोपियाँ कहनेलगीं—"अहो विधाता! तू बड़ाही निठुर है, तुझमें नेक दया नहीं है। तू देहधारियोंको पहले प्रेमकी डोरमें बाँधकर, उनकी इच्छा पूरी नहीं होनेपाती और वृथा वियोग करादेता है। लड़कोंके खेलके समान तेरे भी काम मूर्खतापूर्ण हैं ॥१९॥ जो तू पहले, काली काली अलकोंसे आवृत, सुन्दर नासिका और कपोलोंसे सुशोभित एवं शोक मिटानेवाली मन्द मुसकानसे मनोहर मुकुन्दका मुखारविन्द दिखाकर अब आँखोंकी ओट किये देता है सो अच्छा नहीं है; यह तेरा कर्म निन्दनीय है ॥ २० ॥ अरे क्रूर विधाता! तू ही अक्रूर नाम धरकर, जिनसे हम कृष्णके अङ्गमें एकही स्थानपर तेरी सम्पूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता निहारती थीं उन अपनेही दियेहुए नेत्रोंको मूर्खोंकी भाँति हरने आया है ॥ २१ ॥ किन्तु हमारी समझमें श्रीकृष्ण तो ऐसे निठुर नहीं है कि क्षणभरमें स्नेह छोड़ दें, वह हमको अपनेही लिये व्याकुल होते क्या देख सकेंगे? हम तो उनके मन्दहाससे मोहित हो, उनकेलिये घर, पिता, पति, पुत्र, परिवार छोड़कर सेवामें गईं थीं, क्या वह हमारी ओर न निहारेंगे? कृष्ण प्यारेको नित्य नई वस्तु प्रिय लगती है, इसलिये संभव है कि हमको छोड़कर वह कदाचित् चलें भी तो हम उनको रोक लेंगी" ॥ २२ ॥ दूसरी गोपी ईर्षापूर्वक कहनेलगी कि "आज निश्चय ही मथुराकी स्त्रियोंके लिये सुप्रभात होगा, उनकी सब कामनाएँ पूरी हो जायँगी, क्यों कि जब नन्दनन्दन पुरीमें प्रवेश करेंगे तो वे कटाक्षकी कोरोंसे सूचित उनकी सुधामय मुसकानको नेत्रोंके द्वारा जी भरकर पियेंगी ॥ २३ ॥ उन पुरनारियोंके मधुर वाक्य उनके हृदयको हरलेंगे, और वह उनके लज्जा और मुसकानसे सुललित हाव-भावोंमें फँस जायँगे तब पराधीन और धीर होनेपर भी हम गँवारी नारियोंके निकट किसलिये लौट कर आवेंगे ॥ २४ ॥ आज दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णिवंशज यादवोंके नेत्रोंको परम आनन्द प्राप्त होगा, क्यों कि वे राहमें श्रीपति गुणागार देवकीके पुत्र कृष्णको देखेंगे ॥ २५ ॥ अहो! ऐसे करुणाहीनका नाम "अक्रूर" न होना चाहिये। यह बड़ा ही दारुण है, क्योंकि दुःखित जनोंको आश्वास दिये विनाही प्राणोंसे प्यारे कृष्णको इतनी दूर ले जानेके लिये उद्यत है ॥ २६ ॥ पाषाण ऐसा जिसका हृदय कठोर है वह अक्रूर रथपर चढ़ रहा है, साथही ये दुष्ट गोप भी छकड़े जोतनेकी जल्दी मचा रहे हैं, और वृद्ध लोगभी इनको नहीं रोकते। दैव भी इससमय हमसे प्रतिकूल है, यदि दैव अनुकूल होता तो अवश्य ही इनमें कोई एक मर जाता या वज्रपात होता अथवा कोई न कोई विघ्न अवश्य हो जाता ॥२७॥ चलो सब मिलकर कृष्णको जाने न दें, कुलके बड़े बूढ़े हमारा क्या कर लेंगे। हम आधे पलके लिये भी कृष्णका सङ्ग नहीं छोड़ सकतीं। दुर्दैववश आज उन्हीका वियोग हो रहा है। हमारा चित्त अत्यन्त दुःखी हो रहा है। अर्थात् जब हम मृत्युसे भी नहीं भटकतीं तब बड़े बूढ़ोंका क्या डर है?

॥ २८ ॥ राससभामें जिनकी सानुराग मनोहर बातचीत, लीलाललित कटाक्ष-विक्षेप और आलिङ्गनमें उतनी बड़ी रात क्षणऐसी बीत गई और कुछ जान न पड़ी उन कृष्णके विना हे गोपियो! अपार विरहदुःखको हम कैसे सहेंगी? ॥ २९ ॥ सन्ध्याके समय गौवोंके खुरोंसे उड़कर पड़ी हुई धूलसे भरी अलकावली और मालाओंसे सुशोभित जो कृष्णचन्द्र, गोपगणके साथ वंशी बजाते और हास्यसे मनोहर कटाक्षवाली दृष्टिके द्वारा सुधावृष्टि करतेहुए व्रजमें प्रवेश करके हमारे चित्तको चुराते हैं उनके विना हम कैसे जीवित रह सकती हैं? अतएव साहस करके रोकना ही उचित है" ॥ ३० ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! श्रीकृष्णमें जिनका चित्त आसक्त है वे गोपियाँ विरहकी चिन्तासे अत्यन्त कातर हो, लोकलाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गोविन्द! दामोदर!! माधव!!! कहकर विलाप करनेलगीं ॥ ३१ ॥ गोपियाँ विलाप कर ही रहीं थीं इतनेमें प्रातःकाल हो गया। अक्रूरने भी सन्ध्यावन्दन करके रथ हाँक दिया ॥ ३२ ॥ नन्द आदि गोप भी उनके साथही उपहार और गोरसपूर्ण असंख्य कलश छकड़ोंपर लादकर चले ॥ ३३ ॥ दुःखित गोपियाँ उस स्थानपर गईं और प्रियतम कृष्णकी प्रेमपूर्ण चितवनसे कुछ आश्वासित होकर सन्देशकी प्रत्याशामें खड़ी रहीं ॥ ३४ ॥ गोपियोंको इसप्रकार दुःखित देखकर कृष्णने कहला भेजा कि, "दुःखित न होना, मैं शीघ्रही आऊँगा"। कृष्णके प्रेमपूर्ण वाक्योंसे गोपियोंको कुछ धैर्य हुआ ॥ ३५ ॥ कृष्णके साथही जिनका आत्मा चला गया है वे गोपियाँ, जब तक रथकी ध्वजा और पहियोंसे उड़ी धूर देख पड़ी तबतक उसी ठौरपर उधरही निहारती हुई चित्रलिखीसी खड़ी रहीं ॥ ३६ ॥ जब श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा नहीं रही तब वे अपने अपने घरको लौट गईं और प्रियतमके प्रिय चरित्र गा कर शोकको शान्त करती हुई विरहके दिन बितानेलगीं ॥ ३७ ॥ कृष्ण भगवान् भी बलदेव और अक्रूरके साथ वायुके तुल्य वेगवाले रथसे पापनाशिनी यमुनाके किनारे पहुँच गये ॥ ३८ ॥ वहाँ दोनो भाइयोंने स्नान किया और मोती ऐसा निर्मल और मीठा पानी पीकर वृक्षोंकी छायामें खड़ेहुए रथपर जाकर बैठे ॥ ३९ ॥ अक्रूरने दोनो भाइयोंको रथपर बैठा दिया। फिर वह उनसे आज्ञा लेकर यमुनाके किनारे आये और विधिवत् स्नान किया ॥ ४० ॥ अक्रूरजी जलमें घुसकर सनातन ब्रह्म (गायत्री) का जप करनेलगे। जप करते करते उन्होने देखा कि कृष्ण और बलदेव दोनो भाई वहाँ अवस्थित हैं ॥ ४१ ॥ "वे वसुदेवके पुत्र तो रथपर बैठे हैं, यहाँ कैसे आये? यदि यहाँ हैं तो रथपर न होंगे"—यों विचारकर अक्रूरने जलसे शिर बाहर निकाला। रथपर देखा तो दोनो भाई पहलेकी भाँति बैठेहुए हैं। "तो क्या मैंने जो उनको जलमें देखा सो भ्रम था?"—यह विचारकर अक्रूरजीने फिर जलमें गोता लगाया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ फिर उन्होने जलके भीतर देखा कि

अनन्तदेव विराजमान हैं, सिद्ध, सर्प और असुरगण शिर झुकायेहुए उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ अनन्तदेवके हजार शिर हैं, हजार फणोंमें हजार मुकुट और कमलनालतुल्य श्वेतशरीरमें नीलाम्बर सुशोभित है । सहस्रशिखरयुक्त कैलासके समान अनन्तदेवका विशाल कलेवर देख पड़ता है ॥ ४५ ॥ उन शेषजीकी गोदमें एक पीताम्बरधारी, घनसदृश श्याम-शरीरवाले चतुर्भुज पुरुषकी शान्त मूर्ति विराजमान है । उसके नेत्र कमलके पत्तेके समान अरुण और विशाल हैं ॥ ४६ ॥ उसका प्रसन्न मुख परम सुन्दर है, हास्ययुक्त चितवन महामनोहर है, नासिका और भौंहें ऊँची और सुडौल हैं, कनककुण्डलोंसे कानोंकी अपूर्व शोभा हो रही है, सुन्दर गोल कपोल और अरुण अधर देखनेही योग्य हैं ॥ ४७ ॥ भुजाएँ मोटी और लम्बी हैं, दोनो कन्धे ऊँचे हैं, वक्षःस्थलमें लक्ष्मीदेवी विराजमान हैं । कण्ठ शङ्खके समान सुन्दर है, नाभि गम्भीर है, उदर त्रिवलीसे युक्त है और उसका आकार पीपलके पत्तेके समान है ॥ ४८ ॥ कटितट और श्रोणी (नितम्ब-प्रदेश) विशाल हैं, दोनो ऊरू हाथीकी सूँढ़के समान हैं, दोनो जानु सुन्दर और दोनो जङ्घा मनोहर हैं ॥ ४९ ॥ दोनो चरणकमल किंचित् उन्नत, गुल्फ नव-दलसदृश अङ्गुली और अँगूठे एवं अरुणवर्ण नखसमूहोंकी किरण-कान्तिसे शोभित हैं ॥ ५० ॥ अङ्गोंमें अमूल्य मणिमण्डित किरीट, कटक, अङ्गद, कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र, हार, नूपुर और कुण्डल आदि अनेक आभूषण शोभायमान हैं ॥ ५१ ॥ चारो भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स व प्रभाशाली कौस्तुभ एवं कण्ठमें वनमाला विराजमान है । निर्मल चित्तवाले सुनन्द, नन्द, सनक आदि पार्षदगण, ब्रह्मा, रुद्र आदि सुरेश्वर, मरीचि आदि ऋषिगण एवं प्रह्लाद, नारद और वसु आदि श्रेष्ठ भक्तजन भिन्न भिन्न भावके वाक्योंसे स्तुति कर रहे हैं । श्री, पुष्टि, वाणी, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या और अविद्या, शक्ति एवं माया सेवा कर रही हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे भरतनन्दन ! बहुत देरतक अक्रूरजी यह अपूर्व दृश्य देखते रहे । परम प्रीतिसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंमें आँसू भर आये, एवं भक्तिभावसे हृदय गद्गद हो गया ॥ ५६ ॥

गिरा गद्गदयास्तौषीत्सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ॥
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥

तब अक्रूरजी सत्त्वावलम्बनपूर्वक सावधान होकर हाथ जोड़के धीरे धीरे गद्गद वाणीसे परमपुरुषकी स्तुति करनेलगे ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंश अध्याय

अक्रूरकृत कृष्णकी स्तुति

अक्रूर उवाच—नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥
यन्नाभिजातादरविन्दकोशा-
द्ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥

अक्रूरने कहा—"हे कृष्णचन्द्र ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप बालक नहीं, वरन् आदिपुरुष हैं। आप सब कारणोंके कारण, अव्यय, नारायण हैं। आपकी नाभिमें उपजेहुए कमलसे इस संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, महत्तत्त्व, प्रकृति और पुरुष, मन, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय और अधिष्ठाता देवता; ये सब जगत्‌के कारण आपहीके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ ये माया आदि तत्त्वसमूह प्रत्यक्ष देख पड़नेके कारण जड़ हैं, अतएव आत्मारूप जो आप हैं उनके स्वरूप (तत्त्व) को नहीं जान सकते। ब्रह्मा भी मायाके गुणोंसे आवृत होनेके कारण आपके निर्गुण-रूपको नहीं जानते ॥ ३ ॥ योगी साधुगण आपको अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवका साक्षी, उनका अन्तर्यामी और नियन्ता जानकर आपहीकी आराधना करते हैं ॥ ४ ॥ ऐसे ही कोई कोई कर्मकाण्डनिरत द्विजगण वेदविद्याके द्वारा आपकी उपासना करते हैं। वे कर्मयोगीजन इन्द्रादि अनेक रूप और नामोंसे अनेक महायज्ञोंके द्वारा आपहीका यजन करते हैं ॥ ५ ॥ ऐसे ही जो ज्ञानी लोग कर्मोंसे निवृत्त, अतएव शान्त हैं वे ज्ञानयज्ञ (समाधि) के द्वारा ज्ञानरूप जो आप हैं उन्हीका पूजन और भजन करते हैं ॥ ६ ॥ जिनका आत्मा शुद्ध हो गया है वे वैष्णवजन भी आपकी कही हुई पञ्चरात्र आदि विविध विधियोंसे एकाग्रमन और तन्मय होकर, इष्टदेव जो आप हैं उन्हीको वासुदेव, संकर्षण आदि बहु मूर्तिवाला मानकर अथवा एकमूर्ति नारायण मानकर भजते हैं ॥ ७ ॥ भगवन् ! ऐसे ही शैव लोग भी शिवरूप जो आप हैं उन्हीकी, शिवोक्त विधिके अनुसार शैव, पाशुपत आदि सम्प्रदायभेदसे भलीभाँति उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! जो लोग अनेक देवतोंके भिन्न भिन्न भक्त हैं उनकी बुद्धि यद्यपि अन्यासक्त है, तथापि वे आपहीका पूजन करते हैं, क्योंकि आप सर्वदेवमय परमेश्वर हैं। प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे निकलीहुई नदियाँ, वर्षाकालमें जलपरिपूर्ण होकर चारो ओरसे आकर सागरमें ही प्रवेश करती हैं वैसेही अन्तमें सब मतोंका केन्द्र आपही हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ क्योंकि सत्त्व, रज और तम, ये आपकी मायाके गुण हैं;

उन्ही मायाके गुणोंमें मायासे उत्पन्न ब्रह्मादि-तृणपर्यन्त सब जीव ओतप्रोत हैं ॥ ११ ॥ किन्तु आप सर्वरूप और अन्तर्यामी अर्थात् सब बुद्धियोंके साक्षी हैं, अतएव आपकी बुद्धि निर्लिप्त है। देव, मनुष्य, पशु पक्षी आदी अपने अपने शरीरका अभिमान रखनेवाले सब जीवोंमें आपकी अविद्यामयी मायाके गुणोंका प्रवाह पूर्णरूपसे प्रवृत्त है, परन्तु आप उस मायाके गुणोंसे परे हैं ॥ १२ ॥ अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके चरण है, सूर्य आपके नेत्र हैं, आकाश आपकी नाभि है, सब दिशाएँ आपके कान हैं, स्वर्गलोक आपका मस्तक है, सुरेन्द्र आपके बाहु हैं, सब समुद्र आपकी कुक्षियाँ (कोखें) हैं, वायु आपके प्राण और बल है, वृक्ष और ओषधियाँ आपके केश हैं, पर्वतगण आपकी अस्थियाँ और नख हैं, रात्रि और दिन आपकी पलकोंका उघरना और बन्द होना हैं, सब प्रजापति आपकी गुप्त इन्द्रिय हैं और वृष्टि आपका वीर्य है। आप अविनाशी मनोमय (मनसे ही जानने-योग्य) पुरुष हैं। ये असंख्य जीवोंसे पूर्ण सब लोक और लोकपालगण आपके विश्वमय विराट् शरीरमें विरचित हैं। जैसे जलके भीतर जलमें उत्पन्न असंख्य सूक्ष्म सूक्ष्म जीवोंके समूह बसते हैं अथवा गूलरके फलमें अगणित छोटे छोटे जीव उपजते और रहते हैं वैसे ही अनेक विश्व-ब्रह्माण्ड आपके रोम रोम में हैं; आपको प्रणाम है ॥१३॥१४॥१५॥ आप क्रीड़ा करनेके लिये पृथ्वीपर जिन जिन रूपोंसे प्रकट होते हैं उनसे लोगोंका कल्याण होता है। उन आपके अवतारोंसे लोगोंके दुःख दूर होजाते हैं और वे प्रसन्न होकर आपके पवित्र यशको गाते हैं ॥ १६ ॥ आपने कारणवश मत्स्यरूप धरा, प्रलयसागरमें विचरते रहे, आपको प्रणाम है। आपने हयग्रीवरूप धरकर मधु और कैटभ नाम दानवोंको मारा, आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ आपने महाविशाल कच्छप-रूपसे पीठपर मन्दराचलको धर लिया, आपको प्रणाम है। आपने शूकररूप धरकर लीलापूर्वक रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया, आपको प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे साधुजनोंके भयको दूर करनेवाले! आपने अद्भुत नृसिंहरूप धर कर भक्त प्रह्लादको बचाया, आपको प्रणाम है। आपने वामन अवतार लेकर तीन पगसे त्रिभुवनको नाप लिया, आपको प्रणाम है ॥१९॥ घमण्डी क्षत्रियोंके वनको काटनेवाले हे भृगुपति परशुरामजी! आपको प्रणाम है। रावणका संहार करनेवाले हे रघुवर! आपको प्रणाम है ॥ २० ॥ हे वासुदेव हे संकर्षण! हे प्रद्युम्न! हे अनिरुद्ध! हे यदुनाथ! आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे दैत्य दानवोंको मोहित करनेवाले शुद्ध बुद्धरूप, आपको प्रणाम है। हे म्लेच्छप्राय कलियुगी क्षत्रिय राजोंका संहार करनेवाले कल्किदेव! आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ भगवन्! ये सब लोग आपकी मायामें मोहित हो रहे हैं; इसी कारण "मैं हूँ, मेरा है" ऐसा असत् आग्रह करके कर्ममार्गमें भ्रमण कर रहे हैं ॥ २३ ॥ प्रभो! मैं मूढ भी, स्वप्नके समान मिथ्या जो देह, पुत्र, दारा, घर धन और अन्यान्य

स्वजन आदि हैं उनको सत्य मानकर वृथा भटक रहा हूँ ॥ २४ ॥ अज्ञानान्ध होनेके कारण, मैं, उक्त अनित्य, अनात्म पदार्थोंको नित्य आत्मा जानकर दुःखको सुख मान रहा हूँ। प्रभो! मैं मूढ़ सुख-दुःखादि द्वन्द्व विषयोंमें रम रहा हूँ, अतएव आत्माके परमप्रिय परमात्मा जो आप हैं उनको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जलहीसे उत्पन्न तृण आदिसे ढँकेहुए जलको छोड़कर जैसे कोई अज्ञ पुरुष, मृगतृष्णाके निकट पानी पानेकी आशासे जाय वैसे अपनी ही मायासे ढँकेहुए जो आप हैं उनको छोड़कर मैं मूढ़ सुखकी आशासे देह आदिके लालन-पालनमें तत्पर हो रहा हूँ ॥ २६ ॥ भगवन्! विषय-वासनाओंसे मेरी बुद्धि दीन हो रही है, अतएव काम्य कर्मों और कामनाओंसे चञ्चल एवं बलवान् इन्द्रियोंके द्वारा इधरउधर चलायमान मनका दमन करनेमें मैं असमर्थ हूँ ॥ २७ ॥ हे भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे अन्तर्यामी! आपके चरणकमल असज्जन लोगोंको परम दुर्लभ हैं, तथापि मुझ अधमको आपके चरण मिलजाना, मेरी समझमें आपहीकी कृपाका फल है। हे पद्मनाभ! जब जीवके संसारका 'अन्त' निकट आ जाता है तभी साधुसेवा अर्थात् सत्सङ्गके द्वारा उसकी बुद्धि आपकी ओर झुकती है। यदि आपकी कृपा नहीं होती तो साधुसेवा (सत्सङ्ग) में रुचि नहीं होती और आपमें भी मन नहीं लगता, अतएव मुक्ति भी नहीं होती ॥ २८ ॥ भगवन्! विज्ञान आपका वैभव है, आपही सब प्रकारके ज्ञानोंका मूलकारण है। आप परिपूर्ण ब्रह्म हैं, आपकी शक्ति अनन्त है। आप काल, कर्म, स्वभाव आदिके नियन्ता हैं; आपको प्रणाम है ॥ २९ ॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

आप चित्तके अधिष्ठाता वासुदेव और सब प्राणियोंका आश्रय जो अहंकार है उसके अधिष्ठाता संकर्षण हैं। आप हृषीकेश एवं बुद्धि और मनके अधिष्ठाता प्रद्युम्न व अनिरुद्ध हैं। प्रभो! मुझ शरणागतकी रक्षा करो" ॥ ३० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंश अध्याय

श्रीकृष्णका मथुरापुरीमें प्रवेश

श्रीशुक उवाच—स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जले वपुः ॥
भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! कृष्णचन्द्रने इसप्रकार स्तुति कर रहे अक्रूरको जलके भीतर अपना अपूर्व रूप दिखाकर फिर छिपा लिया, जैसे नट अपनी

कला दिखाकर उसे अन्तर्हित (गायब) कर देता है ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी जलमें भगवान्को न देखकर जलसे बाहर निकले और जल्दीसे सब सन्ध्यावन्दनादि आवश्यक कृत्य करके रथपर आये। अक्रूरने जो कुछ जलमें देखा उससे उनको बहुत विस्मय हुआ ॥ २ ॥ हृषीकेश भगवान् कृष्णने अक्रूरसे पूछा कि "अक्रूर ! तुमने पृथ्वीमें आकाशमें या जलमें कुछ अद्भुत बात देखी है क्या? हमको तुम्हारे मुखमण्डलपर कुछ विस्मयके चिन्ह देख पडते हैं, इसीसे ऐसा अनुमान होता है ॥ ३ ॥ अक्रूरने कहा—भगवन् ! पृथ्वी, आकाश और जलमें जो कुछ अद्भुत है सो सब आपमें विराजमान है, क्योंकि आप विश्वरूप हैं। मैंने जब आपको विशेषरूपसे प्रत्यक्ष देख लिया तब कौन सी अद्भुत वस्तु नहीं देखी? ॥ ४ ॥ परमेश्वर ! पृथ्वी, आकाश और जलकी सब अद्भुत बातें आपमें हैं। आपके सिवा पृथ्वी आदिमें और कौन अद्भुत है? जो मैंने देखा है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! यों कहकर अक्रूरने रथ हाँक दिया और सायंकाल होते होते कृष्ण बलदेवको मथुराके निकट पहुँचा दिया ॥ ६ ॥ राहमें जातेसमय कृष्ण बलदेव जिस गाँवके पास पहुँच वहाँके रहनेवाले लोग निकट आकर उनके अनूप रूपको एकटक निहारते ही रहे। दोनो भाइयोंका मनोहर वेष देखकर वे लोग परम प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ नन्द-आदि व्रजवासी गोपगण पहले ही मथुरा पहुँच चुके थे। नगरके उपवनमें ठहरकर वे लोग कृष्ण बलदेवके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ८ ॥ भगवान् जगदीश्वर कृष्णचन्द्र भी उन लोगोंसे आकर मिले। तदनन्तर कृष्णचन्द्रने विनीत अक्रूरका हाथ अपने हाथमें लेकर हँसतेहुए कहा कि—"तात ! तुम रथ लेकर पहले नगरमें चलो और अपने घरमें विश्राम करो। हम यहीं कुछ कालतक ठहरेंगे और फिर पुरीकी शोभा देखेंगे" ॥ ९ ॥ १० ॥ अक्रूरजीने कहा—"प्रभो ! आपको वहाँ छोड़कर अकेले मैं पुरीमें न जासकूँगा। हे भक्तवत्सल ! मैं आपका भक्त हूँ, मुझको न छोड़िये। नाथ ! आओ चलो। हे अधोक्षज ! हे सुहृत्तम ! बलदाऊ और सुहृद्गण गोपोंके साथ चलकर हमारे घरको सनाथ करिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ भगवन् ! अपने चरणोंके रजसे हम गृहस्थोंके घर पवित्र करिये। आपके चरण-जल (गङ्गा) से अग्निगणसहित पितृगण और देवगण तृप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ ईश ! इन्ही परम दुर्लभ चरणोंको धोनेसे महात्मा बलिको पवित्र यश, अतुल ऐश्वर्य और अनन्य भक्तोंकी गति मिली है ॥ १४ ॥ कहाँतक आपके चरणोदककी महिमा कहें—साक्षात् शिवदेव भी उसको सादर शिरपर धरे हैं ! ब्रह्मदण्डदग्ध महाराज सगरके साठ हजार पुत्र उसी चरणोदकके प्रतापसे स्वर्गलोकको गये हैं ॥ १५ ॥ हे देवदेव ! हे जगदीश्वर ! आपकी चर्चा करने और सुननेसे पुण्य होता है। हे यदुपुङ्गव ! हे उत्तमश्लोक ! हे नारायण ! आपको प्रणाम है" ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—"चाचा ! मैं बलदाऊके साथ अवश्य आपके घर आऊँगा और यदुवंशसे वैर करनेवाले कंसको मार कर

सुहृद् जनोंको प्रसन्न करूँगा" ॥ १७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—भगवान्‌के वचन सुनकर अक्रूरजी कुछ उदास होगये। अक्रूरजीने वहाँसे कंसके पास आकर कृष्ण बलदेवके ले आनेका समाचार सुनाया और फिर अपने घरको गये ॥ १८ ॥ इधर श्रीकृष्णजी मथुरापुरी देखनेकेलिये गोपगणको साथ लेकर बलदाऊके साथ चले ॥ १९ ॥ भगवान्‌ने देखा कि पुरीके द्वार स्फटिक मणिके बनेहुए हैं। बड़े बड़े फाटक हैं, जिनमें सुवर्णके कपाट शोभा बढ़ा रहे हैं। धान्यागार और शालाएँ ताँबे और पीतलसे मण्डित हैं। पुरीके चारो ओर एक विशाल और गहरी खाई बनी है। अतएव शत्रुके लिये इस पुरीपर आक्रमण करना महाकठिन काम है। स्थान स्थानपर रमणीय उद्यान और उपवन पुरीकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥२०॥ सुवर्णमण्डित चौराहे, धनी जनोंके महल और महलोंके अन्तर्गत छोटे छोटे उपवन (चमन), एकरूप शिल्पजीवियोंके सभाभवन और अन्यान्य भवन (इमारतें) चारो ओरसे पुरीको सुशोभित कर रहे हैं। बलभी (सहंची), वेदी, झरोखे एवं कुट्टिम (फर्श) आदि स्थानोंमें हीरा, बिल्लौर, नीलम, विद्रुम (मूँगा), वैडूर्य, मरकत (पन्ना) मुक्ता आदि रत्न जड़ेहुए जगमगा रहे हैं। ठौर ठौर बैठेहुए कबूतर और मोर पक्षी बोल रहे हैं। राजमार्ग, हाट–बाट, गली कूचे, चबूतरे और द्वारोंके आगेवाले सहनोमें छिड़काव किया गया है और सर्वत्र माला, अङ्कुर, खीलें और अक्षत बिथरें पड़े हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ सब भवनोंके द्वार, दधि-चन्दनचर्चित जलभरे कलश, फूल, पल्लव, दीपमाला, फलेहुए केलेके वृक्ष और सुपारीके वृक्ष, ध्वजा और छोटी छोटी झंडियोंसे भलीभाँति सजेहुए हैं ॥२३॥ राजन्! इसप्रकार पुरीकी शोभा निहारतेहुए गोपगणसहित कृष्ण बलदेवने राजमार्गसे पुरीमें प्रवेश किया। पुरनारियाँ कृष्ण बलदेवके आनेका समाचार पातेही उनको देखनेके लिये उत्सुक होकर जल्दी अपने महलोंपर चढगईं। जल्दीके कारण कोई उलटे कपड़े और गहने पहनकर चलदीं। कोई कुण्डल आदि आभूषण, जो दो दो पहने जाते हैं, एकही एक पहनकर चलदीं। किसीने एकही कपोलमें केसरसे पत्ररचना की थी, किसीने एकही पैरमें नूपुर पहना था, किसीने एकही नेत्रमें अंजन लगाया था, वे सब कृष्णदर्शनकी उतावलीमें वैसेही उठ खड़ी हुईं ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ कोई भोजन कर रही थीं, उन्होने हाथका कौर थालीमें छोड़ दिया और कृष्णको देखनेके लिये निकल आईं। कोई सखियोंसे उबटना लगवारही थीं, वे विना स्नान किये वैसेही चलीं। कोई सोरही थीं, वे कोलाहल सुनकर जाग पड़ीं और वैसेही कृष्णको देखने चलीं। कोई अपने बालकोंको दूध पिलारही थीं, वे दूधपीते बालकोंको वैसेही छोड़कर चल खड़ी हुईं ॥ २६ ॥ महाराज! मत्त गजेन्द्रके तुल्य जिनका विक्रम है उन कमललोचन कृष्णने प्रगल्भ लीलाविलाससे पूर्ण हँसी और कटाक्षोंसे एवं लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले अपने

मनोहर श्यामशरीरसे पुरनारियोंको नयनानन्द देकर उनके हृदय हरलिये ॥२७॥ हे शत्रुदमन! कृष्णचन्द्रकी कथाएँ वारंवार सुननेसे पुरनारियोंके चित्त उनको देखनेके लिये आतुर हो रहे थे। आज पुरनारियोंके सौभाग्यका उदय हुआ, उन्होने कृष्णचन्द्रको देखकर अपने नेत्रोंको कृतार्थ किया। कृष्णचन्द्रने भी दया-दृष्टिसे देखकर और मनोहर मुसकानरूप सुधा पिलाकर उनका यथोचित आदर और सत्कार किया। नेत्रमार्गसे मनमें पहुँचेहुए कृष्णकी आनन्दमयी मूर्तिको हृदयसे लगाकर पुरनारियाँ भी अनन्त विरहव्यथासे मुक्त हो गईं; परमानन्द प्राप्त होनेसे उनके शरीरोंमें रोमांच हो आया ॥ २८ ॥ प्रसन्नताके कारण जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हो रहे हैं वे महलोंपर चढ़ीहुई स्त्रियाँ कृष्ण बल-देवपर फूल बरसानेलगीं ॥ २९ ॥ ब्राह्मणादि द्विजातियोंने भी ठौर ठौर पर दही, अक्षत, जल, माला, चन्दन आदि सामग्रियोंसे दोनो भाइयोंका प्रसन्नतापूर्वक पूजन किया ॥ ३० ॥ पुरनारियाँ आपसमें कहनेलगीं कि—"अहो! गोपियोंने पूर्वजन्ममें कौन महातप किया था जो मनुष्यमात्रको आनन्द देनेवाली इन दोनो मनोहर मूर्तियोंको हर घड़ी देखती रहती हैं" ॥ ३१ ॥ जिधरसे कृष्ण जा रहे थे उधरहीसे एक धोबी आ रहा था, वह कपड़े धोता था और उनको रँगता भी था। उसे देखकर भगवान्ने धोये हुए अति उत्तम वस्त्र उससे माँगे ॥ ३२ ॥ कृष्णने कहा—"अरे रजक! हमारे अङ्गोंमें जो ठीक हों वे वस्त्र हमको दे। ये तेरे पासके कपड़े हमारे ही पहनने योग्य हैं। हमको वस्त्र देनेसे अवश्य तेरा कल्याण होगा; इसमें कोई संशय नहीं है" ॥ ३३ ॥ वह रजक राजा कंसके कपड़े धोता था–इसलिये उसको बड़ाही दर्प (घमण्ड) था। पूर्णकाम, परब्रह्म भगवान् कृष्णके यों याचना करनेसे अत्यन्त कुपित होकर उसने तिरस्कार करतेहुए कहा कि–"तुम पर्वत और वनोंमें फिरनेवाले गँवार लोग सदा ऐसेही कपड़े तो पहनते हो? अब तुम इतना बढ़ चले कि राजा कंसके कपड़े लेना चा-हते हो। अरे मूर्खो! यदि जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र यहाँसे भाग जाओ, ऐसे ऐसे उन्मत्त लोगोंको राजकर्मचारीगण बाँधते हैं, मारते हैं और उनका सर्वस्व लूट लेते हैं" ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसप्रकार छोटे मुहसे बढ़ बढ़ कर बातें कर रहे रजकके मुण्डको, भगवान् देवकीसुतने किंचित् कोपसे एक तमाचा मारकर धड़से अलग कर दिया ॥ ३७ ॥ उस रजकके अनुजीवी अन्य रजकलोग, रेशमी कपड़ोंकी गठरियाँ वहीं राहमें छोड़ प्राण लेकर भागे; तब अच्युतने उन वस्त्रोंको लेलिया ॥ ३८ ॥ कृष्ण और बलभद्रने उनमेंसे आप मनमाने कपड़े पहने। फिर सब गोपोंने इच्छानुसार वस्त्र लेलिये। जो कपड़े बचे उनको वहीं पृथ्वीमें छोड़कर कृष्णचन्द्र आगे बढ़े ॥ ३९ ॥ आगे एक दर्जी मिला, वह कृष्णचन्द्र व बलदाऊके अनूप रूपको देखकर परम प्रसन्न हुआ। अतएव उसने छोटे बड़े कपड़ोंको काँट छाँट-कर ठीक कर दिया और वस्त्रनिर्मित विविध रङ्गके आभूषणों (गजरे आदि) से

दोनो भाइयोंके वेषको बनादिया ॥ ४० ॥ रङ्गविरङ्गे वेषमें विराजमान कृष्ण बलदेव ऐसे सुशोभित हुए जैसे पर्वके दिन विचित्रधातुचित्रित श्वेत और श्याम दो बाल-गजराज शोभित हों ॥ ४१ ॥ भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उस दर्जीको परलोकमें सारूप्य मुक्ति (अर्थात् अपना ऐसा रूप) और इस लोकमें परम लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मरणशक्ति और इन्द्रियोंकी अशिथिलता आदि अनेक दुर्लभ वर देकर वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ४२ ॥ वहाँसे दोनो भाई अपने भक्त सुदामा मालीके घर गये। वह दोनो भाइयोंको देखकर उठ खड़ा हुआ। उसने पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और आसन देकर पाद्य, अर्घ्य, माला, ताम्बूल, चन्दन आदि सामग्रीसे गोपगणसहित कृष्ण बलदेवका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ सुदामामालीने कहा—प्रभो ! आज यहाँ आपके श्रीचरण आनेसे मेरा जन्म सफल होगया और कुलभी पवित्र होगया। पितृगण, ऋषिगण और देवगण सन्तुष्ट होगये, अर्थात् मैं उनके ऋणोंसे मुक्त होगा ॥ ४५ ॥ आप अवश्यही जगत्‌का परम कारण परब्रह्म हैं। संसारके अभ्युदय और मङ्गलके लिये ही दो अंशोंसे पृथ्वीपर आपका यह अवतार हुआ है ॥ ४६ ॥ यद्यपि आप भजनेवालोंको ही भजते हैं तथापि समदर्शी हैं, आपकी दृष्टिमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है। क्योंकि आप तो जगत्‌भरके आत्मा और हितकारी हैं; साधारणतः आपकी दृष्टिमें सब प्राणी समान हैं ॥ ४७ ॥ मैं तो आपका चरणसेवक हूँ। हे प्रभो! आज्ञा करिये, मैं क्या सेवा करूँ ? यदि आपकी आज्ञा पाने और पालनेका अवसर प्राप्त हो तो आपकी 'परम कृपा' समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे राजेन्द्र! प्रसन्नचित्त सुदामाने इसप्रकार निवेदन करके दोनो भाइयोंकी इच्छाके अनुसार प्रशंसनीय फूलोंकी मालाएँ बनाकर उनको पहनाई ॥ ४९ ॥ अपने साथी गोपगणसहित कृष्ण बलदेव दोनो भाई उन माला-ओंसे विभूषित होकर परम प्रसन्न हुए। वरदानी दोनो भाइयोंने प्रणत प्रपन्न और प्रसन्न सुदामाको मनोभिलषित 'वर' देनेकी इच्छा प्रकट की ॥ ५० ॥ उस मालीने यही माँगा कि सर्वस्वरूप जगदीश्वर जो आप हैं उनमें मेरी अचल भक्ति हो, आपके भक्तोंसे मित्रता रहे और सब प्राणियोंके लिये मेरे हृदयमें परम दया हो ॥ ५१ ॥

इति तस्मै वरं दत्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥
बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥

राजन् ! मालीने जो माँगा सो तो मिला ही, किन्तु जो न माँगा था वह प्रबल बल, दीर्घ आयु, वंश बढ़ानेवाली स्थिर लक्ष्मी, यश और कान्ति आदि अनेक 'वर' भी उसको कृष्णकी कृपासे प्राप्त हुए। तदनन्तर बलदाऊके साथ कृष्णचन्द्रजी वहाँसे आगे चले ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्ध एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंश अध्याय

कुब्जाका सीधा होना, धनुपभंग और बुरे स्वप्न देख कर
कंसका घवड़ाना ।

श्रीशुक उवाच—अथ व्रजन्राजपथेन माधवः
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ॥
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन्रसप्रदः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! तदनन्तर रसिकवर माधव राजमार्ग होकर आगे चले। आगे चलकर उन्होने देखा कि एक सुन्दर मुखवाली युवती जा रही है, सुन्दरी होनेपर भी वह स्त्री कुब्जा (कुबड़ी) थी। श्रीकृष्णचन्द्रने हँसकर उससे पूछा कि "हे वरोरु! हे सुन्दरी! तुम कौन हो? यह अनुलेपन तुम किसके लिये जारही हो? यदि अच्छा समझो तो हमसे ठीक ठीक बताओ। हमारी इच्छा है कि यह उत्तम अनुलेपन तुम हमको देओ। ऐसा करनेसे बहुत शीघ्र तुम्हारा कल्याण होगा" ॥ १ ॥ २ ॥ कुब्जाने कहा—"हे सुन्दरश्रेष्ठ! मैं तीन जगहसे कुबड़ी हूँ, इसलिये मेरा नाम त्रिवक्रा है। मै कंसकी दासी हूँ। राजाके अङ्गोंमें और मस्तकमें चन्दनआदि अनुलेपन लगाना मेरा काम है। मैं अपना काम करनेमें बहुत ही निपुण हूँ, इसकारण राजा मेरा बड़ा आदर करते हैं और मेरे प्रस्तुत कियेहुए अङ्गलेपनपर उनकी परम प्रीति है। आप पुरुपरत्न हैं—आपके सिवा और कौन इस अनुलेपनके योग्य है?" ॥ ३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! कृष्ण बलदेवके रूप, सुकुमारता, मधुरता, रसिकता, हँसी, बातचीत, चितवन आदिसे चित्त मोहित होनेके कारण उस कुब्जाने दोनो भाइयोंको वह अनुलेपन दिया ॥ ४ ॥ पीत आदि वर्णवाले अङ्गरागोंसे अनुरञ्जित होकर दोनो भाई परम शोभायमान हुए। वे अङ्गराग दोनो भाइयोंके अङ्गोंमें अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ तब प्रसन्न होकर अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये भगवान्ने तीन जगहसे टेढ़ी एवं सुन्दर मुखवाली कुब्जाको सीधा करना चाहा ॥ ६ ॥ भगवान्ने अपने दोनो पैरोंसे कुब्जाके दोनो पैरोंको आगेसे दबाया एवं दो अँगुलियाँ उसकी ठोढ़ीमें लगाकर एक झिटका दिया। अच्युतके झिटकेसे उसका शरीर सीधा होगया और सब अङ्ग समान होगये। तब भगवान्के दर्शनसे वह कुब्जा, शीघ्रही एक बृहत् नितम्ब और पीन पयोधरोंसे सुशोभित परम सुन्दर श्रेष्ठ स्त्री बनगई ॥ ७ ॥ ८ ॥ उससमय मन्मथने उस उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न सुन्दरीके मनको मथ डाला, तब दुपट्टेका छोर पकड़कर वह अच्युतसे कहने

लगी कि "हे वीर! आओ, घर चलें। तुमको यहाँ छोड़कर मैं अकेले घर नहीं जासकती। क्योंकि तुमने मेरे मनको मोहित कर लिया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! मुझ दासीपर प्रसन्न होइये" ॥ ९ ॥ १० ॥ इसप्रकार उस स्त्रीके प्रार्थनावाक्य सुनकर बलदेवके आगे ही अपने साथी गोपोंकी ओर निहारतेहुए कृष्णचन्द्रने हँसकर कहा कि "हे सुभ्रु! मैं अपना कार्य सिद्ध करके हृदयके तापको शान्त करनेवाले तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा। हे सुन्दरी! हम ऐसे अविवाहित पथिकोंके लिये तुम परम आश्रय हो" ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसप्रकार मधुर वाणीसे उस स्त्रीको विदा करके श्रीकृष्णचन्द्र राजमार्गसें आगे चले। वणिक्पथ (बाजार) में वणिक् लोग दोनो भाइयोंके रूपपर मोहित होगये। उन्होने अनेक भेंटें, ताम्बूल, माला, सुगन्ध आदि देकर उनका सत्कार किया ॥ १३ ॥ राहसें जिन जिन रमणियोंने दोनो भाइ-योंको देखा उन उनके मन कामके वेगसे चञ्चल होगये। उनकी वेणियाँ शिथिल होकर खुलगईं और वस्त्र व कङ्कन खिसक खिसक कर गिरपड़े। किन्तु वे चित्र-लिखितसी खड़ी दोनो मनोहर मूर्तियोंको निहारती रहीं। उनको अपने शरीरकी भी सुधि बुधि नहीं रही ॥ १४ ॥ तदनन्तर पुरवासियोंसे धनुर्यज्ञका धनुपभवन पूछतेहुए कृष्णचन्द्र आगे चले। धनुपभवनमें प्रवेश करके कृष्णचन्द्रने देखा कि वहाँ एक बड़ा भारी इन्द्रधनुप ऐसा अद्भुत धनुष धरा हुआ है। बहुतसे सिपाही उस परमसमृद्धिसम्पन्न, पूजनीय धनुपकी रक्षा कर रहे हैं। वे रक्षक रोकते ही रहे, किन्तु कृष्णचन्द्रने नहीं माना और लीलापूर्वक उस धनुषको उठा लिया। जैसे महाविक्रमशाली मदमत्त गजराज ईखके दो खण्ड कर डाले वैसेही भगवान्‌ने, सब लोगोंके आगे, जितनी देरसें पलक लगती है उतनेही समयसें, लीलापूर्वक उस धनुपको खींचकर बीचसे तोड़ डाला ॥१५॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ धनुपके टूटनेका प्रचण्ड शब्द सारे भूमण्डलसें, अन्तरिक्षसें और दशो दिशाओंसें गूँजगया। उस भयानक शब्दको सुनकर कंसका हृदय भयके मारे काँप उठा ॥ १८ ॥ उस धनुपकी रक्षाके लिये जो कंसके अनुचर आततायी दानवगण वहाँ उपस्थित थे वे कुपित होकर कृष्णको पकड़नेकी इच्छासे "पकड़ लो, मारो" कहतेहुए दौड़े ॥ १९ ॥ उनको दुष्ट अभिप्रायसे अपनी ओर आते देखकर कृष्ण बलदेव भी कुपितहुए और टूटेहुए धनुषके दोनो टुकड़े लेकर उनको मारनेलगे ॥ २० ॥ उन रक्षकोंके मरने और धनुपके टूटनेका समाचार पाकर कंसने दोनो भाइयोंपर आक्रमण करनेके लिये और बहुत सेना भेजी। उस सेनाका संहार करके दोनो भाई धनुपभवनसे बाहर निकले और प्रसन्न-तापूर्वक इधरउधर घूमकर पुरीका वैभव और शोभा निहारनेलगे ॥ २१ ॥ दोनो भाइयोंके धनुपभङ्गरूप अद्भुत पराक्रमको, तेजको, धृष्टताको, और रूपको

देखकर पुरवासियोंने समझा कि ये दोनो सुरवर हैं ॥ २२ ॥ इसप्रकार कृष्ण बलराम दोनो भाई गोपोंके साथ इच्छानुसार विचरते रहे। इतनेमें सूर्यदेव अस्त हो गये और गोपगणसहित दोनो भाई पुरीसे लौटकर अपने डेरेमें आये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी यात्राके समय विरहातुरा गोपियोंने मथुरावासियोंके सौभाग्यके सम्बन्धमें जो कहा था सो सब सत्यही हुआ, क्योंकि ब्रह्मादि बड़े बड़े देवता केवल कृपा—कटाक्षकेलिये जिस लक्ष्मीकी उपासना करते हैं वही लक्ष्मी जिनको अनन्य-भावसे भजती है उन पुरुषभूषणके मनोहर श्याम शरीरकी शोभाको उन्होने देखा ॥ २४ ॥ राजन्! कृष्ण बलदेवने हाथ पैर धोकर स्वादिष्ट खीर खाई और फिर शयन करके सुखपूर्वक रातभर सोये, क्योंकि उनको कंसका विचार विदित था और उसके लिये कुछ चिन्ता भी न थी ॥ २५ ॥ कंसने जब सुना कि कृष्ण बलदेवने लीलापूर्वक महाधनुष तोड़ डाला और धनुपरक्ष-कोंको एवं अपनी भेजी हुई सेनाको भी मारडाला, तब उसके भय और चिन्ताकी सीमा नहीं रही। दुर्मति कंसको चिन्ताके कारण रातभर नींद नहीं आई। उसको सोतेमें और जागतेमें भी मृत्युकी सूचना देनेवाले अनेक असगुन देखपड़े ॥ २६ ॥ २७ ॥ कंसने जागतेमें देखा कि जल आदिकमें शरीरका प्रतिबिम्ब है, परन्तु उसमें शिर नहीं देख पड़ता। बीचमें अँगुली आदिकी कोई आड़ न होने-पर भी दीपक, सूर्य, चन्द्रमा आदिकी (एककी जगह) दो ज्योतियाँ कंसको देख पड़नेलगीं ॥ २८ ॥ कंसको अपनी परछाहींमें छिद्रोंकी प्रतीति होनेलगी। कानोंमें अँगुली लगानेसे जो प्राणोंका 'घर्घर' शब्द सुन पड़ता है वह भी उसे न सुनपड़ा। कंसको सब वृक्ष सुवर्णमय दिखाई देनेलगे। धूल, कीचड़ आदिमें कंसको अपने चरणोंके चिन्ह नहीं देख पड़े ॥ २९ ॥ सोतेमें कंसने स्वप्न देखा कि मानो वह प्रेतोंसे लिपटा हुआ है, शिरसे पैरतक तेलसे तर है, गधेपर नंगा सवार है, विप खारहा है ॥ ३० ॥ इसप्रकार सोतेमें और जागतेमें अनेक प्रकारके अशुभसूचक अशकुन देखनेसे कंसको बड़ी चिन्ता हुई; दारुण दुर्भा-वना और मरणभयसे उसको रातभर नींद नहीं आई ॥ ३१ ॥ हे कुरुकुल-भूषण! रात बीतगई, सवेरा हुआ, सूर्यनारायण जलसे ऊपरको उठे। कंसने उठकर मल्लक्रीड़ारूप महाउत्सवका आरंभ करनेके लिये कर्मचारियोंको आज्ञा दी ॥ ३२ ॥ सेवक लोगोंने रङ्गभूमिको भलीभाँति सुसज्जित किया, तूर्य और भेरी आदि बाजे बजनेलगे और पताका, झंडी, फूलोंसे बनायेगये बनावटी तोरण (प्रवेशद्वार) और पुष्पमालाओंसे सब मंच अलंकृत हुए। उन मंचोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब पुरवासी लोग, जनपदवासी लोग, संभ्रान्त राजा लोग यथा-योग्य अपने अपने आसन पर बैठे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कंसने अपने लिये सबसे अलग एक बड़ा ऊँचा राजमंच बनवाया था। उसी मंचमें राजा कंस, अन्यान्य

सामन्तराजोंकी मण्डलीके बीचमें, मन्त्रियोंसहित आकर बैठा। उससमय भी उसका हृदय भय और घबड़ाहटके कारण धडक रहा था ॥ ३५ ॥ नगाड़े बज रहे थे और उस शब्दमें बीच बीच मल्लोंके ताल ठोकनेका शब्द सुन पडता था । इसी अवसरमें अपने अपने गुरुओंके साथ, घमण्डसे भरेहुए और सुन्दर वस्त्र व आभूषणोंसे अलंकृत मल्ललोगोंने रंगभूमिमें प्रवेश किया। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान प्रधान मल्ल लोग बीच अखाड़ेमें आकर बैठे और मनोहर दुंदुभियोंके शब्दको सुनकर प्रसन्न होनेलगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥
निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥

इतनेमें नंदगोप आदिक सब गोप भी आये । उन्होने सब भेंटें कंसको दीं और कंसने भी उनका भली भाँति आदर सत्कार किया। तब वे भी एक मंचपर जाकर बैठे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंश अध्याय

मलक्रीडाका उद्योग

श्रीशुक उवाच–अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे परन्तप! तदनन्तर कृष्ण बलदेव दोनो भाई मल्लोंके ताल ठोकनेका और दुन्दुभियोंका महाशब्द सुनकर देखनेकेलिये मल्लोंकी रङ्गभूमिको चले। उन्होने पहले ही दिन निश्चय कर लिया था कि "हमने धनुषभङ्ग आदि अपूर्व कार्योंसे अपनी शक्ति और ऐश्वर्यका परिचय दिया, तथापि दुरात्मा कंस हमारे माता–पिताको बन्धनमुक्त नहीं करता, बरन् हमें भी मारनेका प्राणपणसे प्रयत्न कर रहा है। अतएव मामा होनेपर भी मारनेयोग्य है। उसका वध करनेमें हमको कोई दोषी नहीं कह सकता" ॥ १ ॥ रंगद्वारपर आकर कृष्णने देखा कि महावतकी प्रेरणासे कालरूप कुवलयापीड़ गजराज रंगभूमिके भीतर जानेकी राह रोककर खड़ा हो गया ॥ २ ॥ तब दुपट्टेको कमरमें लपेटकर और बिखरी हुई घूँघरवाली अलकोंको समेटकर नीरदनादतुल्य वाणीसे महावतको संबोधन करके कृष्णचन्द्रने कहा कि "अरे महावत! राहसे हट जा, हमको भीतर जाने दे, देर न कर; नहीं तो इसी

समय तुझको और इस हाथीको यमलोक पहुँचाता हूँ" ॥ ३ ॥ ४ ॥ यों जब भगवान्‌ने डाँटकर कहा तब महावत बहुतही कुपित हुआ। उसने अङ्कुशके प्रहारसे काल अन्तक और यमके समान भयानक गजराजको कोपित करके कृष्णकी ओर बढ़ाया। गजराजने झपटकर कृष्णको सूँड़में लपेट लिया। किन्तु भगवान् सूँड़के बेठनसे छूटकर अलगहुए और एक घूँसा मारकर उसीके पैरोंमें छिपगये ॥५॥६॥ इधरउधर कृष्णको न देखकर कुवलयापीड़ क्रोधसे लाल हो गया। यद्यपि कृष्णचन्द्र उसकी आँखोंके आगे न थे तथापि सूँघकर उसने उनको ढूँढ़ लिया और फिर सूँड़से लपेटना चाहा। किन्तु भगवान् बलपूर्वक अपनेको छुड़ाकर अलग हो गये ॥ ७ ॥ महाबलशाली कृष्णचन्द्रजी, जैसे गरुड़जी लीलापूर्वक किसी महानागको घसीट ले जायँ वैसेही, पीछेसे पूँछ पकड़कर उस हाथीको सौ हाथतक घसीट ले गये ॥ ८ ॥ पूँछ पकड़ेहुए कृष्णको पकड़नेलिये जब हाथी दाहिनी ओर घूमता था तब श्रीकृष्णजी उसे बाईं ओर घसीटकर घुमा देते थे और जब बाईं ओर घूमता था तब दाहिनी ओर घसीटकर घुमा देते थे। इसीप्रकार जैसे कोई लड़का बछड़ेके साथ खेले वैसेही कृष्णचन्द्र थोड़ी देरतक उस हाथीके साथ खेलते रहे ॥ ९ ॥ फिर भगवान्‌ने सामने आकर हाथीको एक थप्पड़ मारा। वह भी कृष्णचन्द्रको पकड़नेके लिये कुपित होकर दौड़ा। वह हाथी समझता था कि अब मैंने पकड़ लिया–अब मैंने पकड़ लिया। इसीप्रकार पग पगपर पकड़नेकी आशासे दौड़ रहे हाथीको भगवान्‌ने बहुत थकाया और छकाया। इस दौड़में हाथी एकबार गिर भी पड़ा ॥१०॥ इसप्रकार क्रीडा करतेहुए कृष्णचन्द्र एकबार जानकर पृथ्वीमें गिरपड़े और फिर सहसा उठकर छिप गये। कुपित हाथीने कृष्णको गिरा हुआ जानकर अपने दोनो दाँत पृथ्वीपर दे मारे, परन्तु कृष्णचन्द्र तो पृथ्वीपर थे ही नहीं, इसकारण उलटे हाथीहीको चोट लगी ॥ ११ ॥ अपना पराक्रम विफल हुआ देखकर कुवलयापीड़ बहुत ही कुपित हुआ। ऊपरसे महावतोंने भी उसको अङ्कुशके प्रहारसे आगे बढ़ाया। तब वह हाथी क्रोधसे विह्वल होकर कृष्णके पीछे झपटा ॥१२॥ जब वह हाथी झपटकर कृष्णके ऊपर आया तब उन्होने हाथसे सूँड़ पकड़कर झिटका दिया, जिससे कुवलयापीड़ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥१३॥ गिरेहुए हाथीको पैरसे दबा-कर सिंहके समान भगवान्‌के लीलापूर्वक दोनो दाँत उखाड़ लिये और उन्हीके प्रहारसे कुवलयापीड़को व महावतोंको प्राणहीन कर दिया ॥ १४ ॥ गजदन्तोंको लियेहुए कृष्ण और बलदेवजीने अपने साथी गोपोंके साथ रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। भगवान् कृष्णचन्द्र हाथमें हाथीका दाँत लियेहुए थे और उस दाँतका एक सिरा कन्धेपर धराहुआ था, शरीरमें रुधिरकी और गजमदकी छींटें पड़ी हुई थीं, मुखारविन्दमें पसीना निकल आया था। उससमय भगवान्‌की अपूर्व शोभा निहारनेही योग्य थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ रङ्गभूमिमें बलदेवसहित श्रीकृष्णजी,

मल्लोंको वज्र ऐसे, मनुष्योंको पुरुषश्रेष्ठ, स्त्रियोंको साक्षात् कामदेव, गोपगणको स्वजन, दुष्ट राजोंको शासन करनेवाले, अपने माता-पिताको बालक, कंसको साक्षात् मृत्यु, अज्ञानियोंको जड़रूप, योगियोंको परम तत्त्व-परब्रह्म और यादवोंको परम देवतारूप देखपड़े ॥ १७ ॥ महाराज ! कुवलयापीड़को निहत देखकर दुष्ट कंसने जाना कि ये दोनो बालक परम दुर्जय हैं। दोनो भाइयोंको देखकर, धैर्यशाली होनेपर भी, कंस प्राणभयसे बहुत ही घबड़ागया ॥ १८ ॥ आभूषण, माला और सुन्दर वस्त्रोंसे अलंकृत, विचित्रवेषधारी महाबाहु दोनो भाई, उत्तमवेषविभूषित दो नटवरोंके समान अपनी प्रभाके प्रभावसे देखनेवालोंके नयनों व मनोंको अपनी ओर खींचतेहुए रङ्गभूमिमें विराजमान हुए ॥ १९ ॥ राजन् ! उन दोनो पुरुषश्रेष्ठोंको देखकर मंचस्थित नगरवासी एवं राष्ट्रवासी लोगोंके नेत्रकमल और मुखारविन्द आनन्दके वेगसे प्रफुल्लित हो उठे। वे नेत्रोंसे वारम्वार दोनो भाइयोंके मुखारविन्दोंको देखकर भी तृप्त नहीं हुए और एकटक उन्हीकी ओर निहारनेलगे ॥ २० ॥ देखनेसे जान पड़ता था कि दर्शकलोग मानो दोनो भाइयोंको नेत्रोंसे पी लेंगे, जिह्वासे चाटलेंगे, नासिकासे सूँघ लेंगे और दोनो बाहुओंसे लिपटा लेंगे ॥ २१ ॥ कृष्ण-बलदेवके रूप, गुण, माधुर्य और धृष्टताने मानो उनको स्मरण करा दिया, इसप्रकार, वे लोग, जैसा सुना था और देखा वैसा ही परस्पर दोनो भाइयोंके विषयमें वार्तालाप करनेलगे ॥ २२ ॥ वे लोग कहनेलगे कि "ये दोनो बालक साक्षात् नारायण भगवान्के अंशसे पृथ्वीपर वसुदेवके घरमें उत्पन्न हुए हैं ॥ २३ ॥ यह (कृष्ण) देवकीके पुत्र हैं, इनको वसुदेवजीने गोकुल पहुँचा दिया। यह नन्दके ही घरमें अवतक गुप्तरूपसे रहकर इतने बडेहुए हैं ॥ २४ ॥ इन्हीके हाथसे पूतना, तृणावर्त, यमलार्जुन, धेनुक, केशी, शङ्खचूड़ यक्ष एवं ऐसेही अन्यान्य अघासुर आदि दानवोंका संहार हुआ है ॥ २५ ॥ इन्होने ही ग्वालबालोंसहित गौवोंकी दावानलसे रक्षा की है, कालियानागका दमन किया है और इन्द्रके मदका मर्दन किया है ॥ २६ ॥ यही सात दिनतक एकही हाथपर गोवर्धन पर्वत उठाये खड़े रहे हैं और इन्होने ही आँधी, वर्षा व वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा की है ॥ २७ ॥ इनके नित्य प्रसन्न मुखको और मनोहर मन्द मुसकान व चित्तचोर चितवनको देखकर गोपियोंको परम आनन्द प्राप्त होता है एवं वे अनायास ही अनेक तापोंसे मुक्त हो जाती हैं ॥ २८ ॥ विद्वान् लोगोंका कथन है कि 'बहुविख्यात यदुवंश इन्हीके बाहुबलसे सुरक्षित रहकर लक्ष्मी, यश और महत्त्वसे अलंकृत होगा' ॥ २९ ॥ और यह दूसरे इनके बड़े भाई कमलनयन श्रीबलभद्र हैं। इन्होने प्रलम्बासुरको और वत्सासुर, बकासुर आदिको मारा है" ॥ ३० ॥ इसप्रकार दर्शक लोग आपसमें कह रहे थे और नगाड़े बज रहे थे। इसी अवसरमें चाणूरने कृष्ण और

वलदेवसे कहा कि "हे नन्दनन्दन! हे बलभद्र! तुम पराक्रमी माने जाते हो। हमारे राजा कंसने सुना है कि तुम मल्लयुद्धमें भी बहुत ही निपुण हो। इसीसे मल्लयुद्ध देखनेसे लिये महाराजने तुमको यहाँ बुलाया है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कर्म, मन और वाणीसे राजाका प्रिय करनेसे प्रजाका मङ्गल होता है एवं अन्यथा करनेसे अशुभ होता है ॥ ३३ ॥ और यह भी सब लोग जानते हैं कि गोपलोग नित्य प्रसन्नतापूर्वक वनमें मल्लक्रीड़ा करतेहुए पशुओंको चराते हैं ॥ ३४ ॥ इस-कारण अपनी भलाईके लिये, आओ, हम तुम दोनो राजाकी इच्छा पूरी करें। हमारे इस कामसे सभी जीव प्रसन्न होंगे, क्योंकि शास्त्रोंमें राजाको 'सर्वजीवमय' लिखा है" ॥ ३५ ॥ यह तो कृष्ण चाहते ही थे, अतएव चाणूरके वाक्य सुनकर उन्होने पहले उसकी प्रशंसा की और फिर इसप्रकार देश-कालके अनुसार उचित उत्तर दिया ॥३६॥ कृष्णचन्द्रने कहा—"हम इन भोजपति कंसकी वनेचर प्रजा हैं, अतएव इनको सब प्रकार प्रसन्न करना ही हमारा कर्तव्य है । राजाकी इस आज्ञाको हम परम अनुग्रह समझते हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु हे मल्ल! हम बालक हैं, अतएव अपने समान बलवाले बालकोंसे लड़कर राजाको प्रसन्न करेंगे । इसप्रकार उचित रीतिसे मल्लयुद्ध होना चाहिये जिससे सभामें बैठेहुए दर्शक लोगोंको अधर्मभागी न बनाना पड़े" ॥ ३८ ॥ चाणूरने कहा—"अजी! तुम और महा-बली बलभद्र, दोनो भाई, बालक या किशोर नहीं हो। तुमने अभी अभी सहस्र हाथियोंका जिसके बल था उस गजराजको लीलापूर्वक मार डाला है ॥ ३९ ॥

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै ॥
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

तुम दोनो भाई महाबली हो इसलिये हे वृष्णिवंशावतंस! तुम मुझसे युद्ध करो और बलभद्र मुष्टिकसे युद्ध करें। इसमें कुछ अन्याय नहीं होगा" ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंश अध्याय

कंसवध

श्रीशुक उवाच—एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः ।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! इसप्रकार निश्चय करके भगवान् कृष्णचन्द्र चाणूरसे और रोहिणीनन्दन बलभद्रजी मुष्टिकसे भिड़ गये ॥ १ ॥

हाथोंसे हाथ और पैरोंसे पैर बाँधकर जीतनेकी इच्छासे परस्पर बलपूर्वक एक एकको अपनी ओर खींचनेलगे ॥ २ ॥ कृष्ण-बलभद्र और दोनो मल्ल, कलाइयोंसे कलाइयोंपर, जानुओंसे जानुओंपर, शिरसे शिरपर, वक्षःस्थलसे वक्षःस्थलपर परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ ३ ॥ परिभ्रामण (चारो ओर घुमाना), विक्षेप (रेलना), परिरम्भ (लिपटना), अवपातन (गिराना), उत्सर्पण (छूटकर सामने आना), अपसर्पण (पीछे हटना) द्वारा परस्पर बचतेहुए जयकी इच्छासे वे लोग उत्थापन (नीचेवालेको उठानेका प्रयत्न), उन्नयन (हाथोंसे ऊपर उठालेना), संचालन और स्थापन (हाथ पैर समेट कर नीचे बैठाना) आदि पेंचोंसे परस्पर बल प्रकट करतेहुए युद्ध करनेलगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस युद्धमें एकको सबल और एकको निर्बल देखकर अपने अपने घरोंपर खड़ी हुई पुरनारियाँ दयार्द्रचित्ता होकर परस्पर कहनेलगीं कि "यह युद्ध अयुक्त है, क्योंकि दोनो योद्धा बराबरके नहीं हैं। बालकोंसे महाबली मल्लोंको लड़ते देखकर राजाको चाहिये था कि यह युद्ध न होने देते, किन्तु वह उलटे इस अन्यायका अनुमोदन कर रहे हैं, या यों कहो कि उन्हीकी इच्छासे यह युद्ध हो रहा है। राजसभामें बैठेहुए दर्शकों और सभासदोंको भी महा अधर्मभागी होना पड़ेगा, क्योंकि वे सबल और निबलका युद्ध देख रहे हैं और कुछ कहते नहीं हैं॥ ६ ॥ ७ ॥ देखो न ! कहाँ वज्रसदृश सुदृढ़ अंगवाले पर्वत ऐसे ये मल्ल ! और कहाँ अति सुकुमार अंगवाले अप्राप्तयौवन ये किशोर बालक ! ॥ ८ ॥ इस समाजको अवश्य ही अधर्मका घोर फल भोगना पड़ेगा । क्योंकि ये स्वयं भी इस अन्यायका अनुमोदन कर रहे हैं। इनकी यदि इस अधर्ममें अनुमति न थी तो इनको यहाँसे उठ जाना चाहिये था। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है जहाँ अधर्म होता हो वहाँ कभी न ठहरना चाहिये' ॥ ९ ॥ सभामें जो लोग ज्ञानी होकर भी उचित बात नहीं कहते या अनुचित बात कहते हैं अथवा 'हम नहीं जानते' कह कर पीछा छुड़ाते हैं वे दोषभागी होते हैं। अतएव इस बातके जाननेवाले विद्वान् लोगोंको चाहिये कि ऐसी अन्याय-सभामें न जावें ॥ १० ॥ देखो, शत्रुके चारो ओर फिर रहे कृष्णका मुखकमल, श्रमस्वेदके बूँदोंसे जलबिंदुविभूषित कमलकोप ऐसा सुशोभित हो रहा है" ॥ ११ ॥ दूसरी पुरनारी कहने लगी कि "इतना व्याकुल क्यों होती हो ? क्या तुम नहीं देखतीं कि कोपावेशपूर्ण बलभद्रके दोनो नेत्र लाल हो रहे हैं ! देखो, मुष्टिकपर कुपित बलभद्रका मुखमण्डल आवेशयुक्त हास्यसे कैसा सुशोभित हो रहा है ?" ॥ १२ ॥ और और पुरनारियाँ कहनेलगीं कि "अहो, सखियो ! व्रजवीथियाँ धन्य हैं ! क्योंकि लक्ष्मीदेवी शिव जिनके और चरणोंका पूजन करते हैं वे ही पुराणपुरुष मायामानवशरीरधारी ये कृष्णचन्द्रजी विचित्र

वनमाला धारण किये वंशी बजाते बलभद्र और ग्वालबालोंके साथ गौवें चराते अपनी क्रीड़ाओंसे उनको पवित्र और पूजनीय बनाते हैं ॥ १३ ॥ गोपियोंने कौन तप किया है जो ईश्वरके इस दुर्लभ अनूप रूपको नित्य अभिनव भावसे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करती हैं। यह रूप अद्भुत सुन्दर सुषमाका आगार है। इसके समान अथवा इससे अधिक रूप ही नहीं है। यह रूप स्वयंसिद्ध है, अलंकारोंसे इसकी उत्पत्ति नहीं हुई है। यह रूप यश और लक्ष्मी (शोभा) का एकमात्र आश्रय हैं ॥ १४ ॥ सखियो! सब व्रजबालाएँ धन्य हैं! क्योंकि गऊ दुहतेमें, दही मथतेमें, लीपतेमें, झूलतेमें, रोतेहुए लड़कोंको चुप करतेमें, झाड़ू देते, चौका लगातेमें एवं विश्राम समयमें सर्वदा सभी समय इनकी पवित्र कीर्तिका कीर्तन किया करती हैं। उनका चित्त इन्ही महाबलशाली कृष्णपर अनुरक्त और आसक्त है, अतएव कीर्ति-कीर्तन करतेमें उमँगेहुए आनन्दके आँसुओंसे कण्ठावरोध होजानेके कारण उनका स्वर गद्गद होजाता है। उनकी सब कामनाएँ इनकी कृपासे पूरी होती हैं ॥ १५ ॥ यह कृष्णचन्द्र सबेरे गौवों और गोपोंके साथ वंशी बजातेहुए व्रजसे वनको जाते हैं और सायंकालको लौटकर व्रजमें आते हैं। उस समय इनकी वंशीकी ध्वनि कानमें पड़ते ही जो व्रजबालाएँ जल्दीसे निकलकर राहमें कृपाकटाक्षयुक्त इनके मुखारविन्दको देखती हैं उन्होने अवश्यही पूर्वजन्ममें बहुत पुण्य किये हैं" ॥ १६ ॥ हे भरतश्रेष्ठ, स्त्रियाँ इसप्रकार परस्पर कह रही थीं, इसी अवसरमें योगेश्वरोंके ईश्वर हरिने शत्रुको मारनेका विचार किया ॥ १७ ॥ भयविह्वल पुरनारियोंके पूर्वोक्त वाक्य सुन सुन कर कृष्ण बलदेवके पिता माता (वसुदेव-देवकी) पुत्र-स्नेहके कारण शोकातुर होकर चिन्ता करनेलगे। क्योंकि उनको अपने पुत्रका बल भलीभाँति विदित न था ॥ १८ ॥ भाँति भाँति के दाव पेंच करतेहुए कृष्ण और चाणूर जैसे युद्ध करनेलगे वैसे ही बलदेव और मुष्टिक भी परस्पर युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥ भगवान्के कठिन–वज्रपाततुल्य कठोर अंगोंकी चोटोंसे चाणूरके अङ्ग चूर चूर (शिथिल) हो गये और वह वारंवार चोट खाकर व्यथित होनेलगा ॥ २० ॥ एकबार घूसे तानकर चाणूरने महाक्रोधपूर्वक बाजके समान झपटकर भगवान् वासुदेवके वक्षःस्थलपर चोट चलाई ॥ २१ ॥ किन्तु जैसे भालेकी चोटसे हाथी नहीं विचलित होता वैसे ही उस प्रहारसे कृष्णचन्द्र भी नहीं विचलित हुए। भगवान्ने चाणूरको, दोनो हाथ पकड़कर, कईवार ऊपर घुमाया और फिर पृथ्वीपर पटक दिया। घुमातेमें ही जिसके प्राण निकल गये उस चाणूरका मृत शरीर, केश, वेशभूषा, माला, वस्त्र आदिके अस्ताव्यस्त होनेके कारण इन्द्रकी ध्वजाके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसीप्रकार मुष्टिकने बलभद्रके हृदयमें दो घूसे मारे। महाबली बलभद्रजीने भी एक तमाचा तानकर मारा। तमाचा लगनेसे व्यथित मुष्टिकका शरीर काँप गया, मुखसे रुधिर

गिरने लगा, और उसका मृत शरीर आँधीके वेगसे उखड़ेहुए महावृक्षके समान पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ २४ ॥ २५ ॥ तदनन्तर कूट नाम मल्ल आया, उसको श्रेष्ठ योद्धा बलभद्रने, जैसे कोई बालक क्रीड़ा करे वैसे अवज्ञापूर्वक बाएँ हाथके घूँसेसे प्राणविहीन कर दिया ॥ २६ ॥ उधर उसी समय शल और तोशल नाम मल्लोंके शिर कृष्णके चरणोंकी ठोकरसे फट गये और दोनोके प्राण निकल गये ॥ २७ ॥ जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान २ मल्ल मारे गये तब बचे हुए सब मल्ल अपने अपने प्राण लेकर खिसक गये ॥ २८ ॥ जब कोई युद्ध करनेवाला न रहा तब चरणोंमें रत्नजटित नूपुर धारण किये हुए प्रसन्नचित्त कृष्ण और बलदेव अपने साथी ग्वालबालोंको अखाड़ेमें घसीटकर मल्लक्रीड़ा और नृत्य आदि करने लगे ॥ २९ ॥ कंसको छोड़कर और सब देखनेवाले साधुजन तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणगण, कृष्ण–बलदेवके इस प्रशंसनीय कर्मसे प्रसन्न होकर "वाह वाह" करनेलगे ॥ ३० ॥ जब श्रेष्ठ मल्ल मारे गये और जो बचे वे भाग गये तब कंसने नगाड़ोंका बजना बंद कराकर कहा कि "अरे! इन दुष्ट चरित्रवाले वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे शीघ्र निकालकर गोपोंका सर्वस्व लूट लो और दुर्मति नन्दको बंदी बनाओ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ महादुष्ट विचारवाले परम दुष्ट वसुदेवको और उग्रसेनको भी उसके अनुगामियोंसहित इसी समय मार डालो क्योंकि वह मेरा पिता होकर भी मेरे शत्रुओंसे मिला हुआ है" ॥ ३३ ॥ जब कंस इसप्रकार अहंकारके कारण कुवाक्य बकने लगा तब अच्युत कृष्ण बहुत ही कुपित हुए और लघिमा नाम योगसिद्धिके सहारे वेगपूर्वक उचक कर उस ऊँचे मंचपर पहुँच गये,

जिस पर कंस बैठा था ॥३४॥ कंस भी मनस्वी (शूर) था, इसकारण अपने मृत्यु कृष्णको निकट देखकर तवार कि ढाल लिये आसनसे सहसा उठ खड़ा हुआ ॥३५॥ एवं बाजके समान चोट करनेका अवसर ढूंढ़ता हुआ, बाएँ और दाहिने भाँति भाँतिके पैंतरे बदलेलगा। किन्तु जिनका तेज उग्र होनेके कारण असह्य है उन कृष्णचन्द्रने किरीट मुकुट गिराकर, जैसे गरुड़जी कुपित काले नागको बलपूर्वक पकड़लेते हैं वैसे ही कंसके केश पकड़लिये और उतने ऊँचे मंचसे उसको नीचे रङ्गभूमिपर ढकेल दिया। उसके ऊपर स्वयं पद्मनाभ, विश्वमय एवं स्वतन्त्र कृष्णचन्द्र भी फाँद पड़े ॥३६॥३७॥ कृष्णचन्द्रने कंसके मरेहुए हाथी ऐसे शरीरको सबके सामने ही पृथ्वीपर घसीटा। महाराज ! उस समय बहुतसे लोग ऊँचे स्वरसे हाहाकार करनेलगे ॥ ३८ ॥ कंसका चित्त सदा कृष्णकी चिन्तासे उद्विग्न रहा करता था। वह खाते, पीते, उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते सब समय चक्रधारी नारायणको कल्पनासे अपनी आँखोंके आगे ही पाता था । अन्तसमय भी साक्षात् कृष्णचन्द्रने अपने हाथोंसे मारा; इसलिये उसको वही दुर्लभ कृष्णरूप प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ राजन् ! अङ्क और न्यग्रोध आदि उसके आठ छोटे भाई थे; वे भी अत्यन्त कुपित होकर भाईका बदला चुकानेके लिये कृष्ण और बलदेवके सामने दौड़कर आये ॥ ४० ॥ किन्तु रोहिणीतनय बलभद्रने बीचमें ही, सिंह जैसे पशुओंको मार डालता है वैसे एक बेलन उठाकर उन सब वेगसे आ रहे और मारनेको उद्यत असुरोंको मार डाला ॥ ४१ ॥ उससमय आकाशमें नगाड़े बजनेलगे और ब्रह्मा, रुद्र आदि देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा और स्तुति करनेलगे, एवं अप्सराएँ नृत्य करनेलगीं ॥ ४२ ॥ महाराज ! कंस और कंसके भाइयोंकी स्त्रियाँ—अपने अपने पतियोंके मरणसे शोकाकुल होकर रोती तथा शिर व छाती पीटती हुई वहाँपर आईं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यापर सोरहे स्वामियोंके शरीरोंसे लिपटीहुई शोकसे विह्वल स्त्रियाँ आँसू बहातीहुई ऊँचे स्वरसे इसप्रकार विलाप करनेलगीं ॥ ४४ ॥ "हा नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हे करुणानिधे ! हे अनाथवत्सल ! तुम्हारे मरनेसे गृह और पुत्रगणसहित हम भी मरगईं ! ॥ ४५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम स्वामीके बिना यह पुरी भी हमारे समान उत्सवमङ्गलहीना विधवा होगई और अब पहलेकीसी इसकी शोभा भी नहीं रही ॥ ४६ ॥ हे स्वामी ! तुमने निरपराध लोगोंसे घोर द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई। सच है प्राणियोंके अनिष्टकी चेष्टा करनेवाला कौन कुशलसे रह सकता है ? ॥४७॥ सब प्राणी इन्ही कृष्णसे उत्पन्न होकर इन्हीमें लीन हो जाते हैं। इनकी जो अवज्ञा करता है उसको कभी सुख नहीं मिलता" ॥ ४८ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर लोकभावन भगवानूने कंसकी स्त्रियोंको समझाबुझाकर आश्वस्त किया और फिर उन्हीके द्वारा उनके मरेहुए पतियोंके अन्तिम संस्कार कराये ॥ ४९ ॥

कृष्ण बलदेवजी माता-पिताके पास गये और बन्धनसे मुक्त करके चरण छूकर दण्डवत प्रणाम किया ॥ ५० ॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ ५१ ॥

उससमय वसुदेव देवकीको ज्ञान हुआ, उन्होने जाना कि हमारे दोनो पुत्र वास्तवमें जगदीश्वर हैं। अतएव उन्होने उनको सशङ्क होकर हृदयसे नहीं लगाया, किन्तु हाथ जोड़े खड़े रहे॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंश अध्याय

कृष्ण बलदेवका विद्याध्ययन

श्रीशुक उवाच—पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥
माभूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जाना कि सांसारिक सुखका पूर्ण अनुभव होनेके पहलेही हमारे माता पिता हमको ईश्वर जानगये हैं। किन्तु हमारे प्रसन्न होनेपर ऐसा ज्ञान हमको मिलना असम्भव या दुर्लभ नहीं है, वरन् हमको पुत्र समझकर ये जो प्रेमसुख भोग रहे हैं वही दुर्लभ है। अतएव इनको अभी हमारे प्रति ईश्वरभावकी आवश्यकता नहीं है। यह विचारकर भगवान्ने पितामाताकी ज्ञानदृष्टिपर जगत्भरको मोहित करनेवाली अपनी माया-का पर्दा डाल दिया ॥ १ ॥ बड़े भाईसहित यादवश्रेष्ठ कृष्णने पिता माताके पास नम्रभावसे जाकर "हे पिता ! हे माता !" आदि विनीत वाक्योंसे आदरपूर्वक उनको प्रसन्न किया ॥ २ ॥ भगवान्ने कहा—हे पिता ! हम आपके पुत्र हैं। निरन्तर प्रबल इच्छा रहनेपर भी, आप हमारे लड़कपनकी, पौगण्ड अवस्थाकी और किशोर अवस्थाकी क्रीड़ाओंको देखकर सुखी न बनसके ॥ ३ ॥ हम ही अभागे हैं, क्योंकि दैववश हम आपके निकट नहीं रहसके। पितृगृहमें रहकर बालक जो पिता-माताके प्यार और दुलारका उत्तम आनन्द भोग करते हैं वह आनन्द भोगना हमारे भाग्यमें नहीं था ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण फलों (धर्म अर्थ काम मोक्ष) को दिलानेवाला साधनस्वरूप यह नरशरीर जिनसे उत्पन्न हुआ और जिनके द्वारा पाला पोषा गया उन मातापिताके ऋणसे सौ वर्षकी अवस्थाभर सेवा करनेपर भी मनुष्यका उद्धार नहीं होता ॥ ५ ॥ जो माता पिताके समर्थ

पुत्र हैं वे यदि धन अथवा अपने शरीरसे उनकी सेवा नहीं करते तो मरनेपर यमराजके दूत उन कुपुत्रोंको उन्हीका मांस खिलाते हैं ॥ ६ ॥ समर्थ व्यक्ति, यदि वृद्ध पिता, माता, साध्वी भार्या, शिशु सन्तान, ब्राह्मण और शरणागतका भरण पोषण नहीं करता तो वह जीते ही मरेके तुल्य है ॥ ७ ॥ हमारे इतने दिन व्यर्थ बीते, हम सेवा-समर्थ होकर भी कंसके भयसे नित्य उद्विग्न रहनेके कारण आपकी सेवा नहीं करसके ॥ ८ ॥ अतएव हे पिता ! हे माता ! हम आपसे क्षमा-की प्रार्थना करते हैं । हम पराधीन रहनेके कारण आपकी सेवा नहीं करसके । दुष्ट कंसने बुरे विचारसे हमको वारंवार अनेक कष्ट पहुँचाये, परन्तु आपकी कृपासे सब अच्छा ही हुआ ॥ ९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे महाराज ! मायामनुष्य विश्वरूप हरिके इन वाक्योंको सुनकर वसुदेव और देवकी मोहित हो गये, अर्थात् वे फिर कृष्ण बलदेवको अपने पुत्र समझ सुखसे गद्गद हो गये । देवकी वसुदेवने पुत्रोंको गोदमें लेकर गलेसे लगा लिया । परमानन्दसे उनके शरीर पुलकित हो उठे और आनन्दके आँसुओंसे कण्ठ रुँध गये । स्नेहपाशमें बँधेहुए एवं मोहित वसुदेव देवकी आँसुओंकी धाराओंसे दोनो भाइयोंको भिगोनेलगे । उस समय वे कुछ भी न कह सके ॥ १० ॥ ११ ॥ इसप्रकार माता पिताको आश्वास देकर भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी बड़े भाईसहित अपने नाना उग्रसेनके पास गये और उनको बन्धनसे मुक्त करके सम्पूर्ण यादवोंका राजा बनानेके उपरान्त कहनेलगे कि "महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं । हमको आज्ञा दीजिये—हम उसको पूर्ण करें । हमारे पूर्वज यदुके वंशको उनके पिताका शाप है, इसलिये हम यादवलोग राजाके आसनपर नहीं बैठ सकते । अतएव हमारी प्रार्थनासे आप निष्कण्टक राज्य करिये । मुझ भृत्यके निकट रहतेहुए, अन्य राजोंकी कौन बात है, देवगण भी शिर झुकाकर आपकी पूजा करेंगे" ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ राजन् ! विश्वकर्ता कृष्णचन्द्रके सजातीय और सम्बन्धी यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न यादवगण, कंसके भयसे दूर देशोंमें भाग गये थे और दुःसह प्रवासकष्ट भोग रहे थे;—भगवान् कृष्णचन्द्रने उनको सादर सत्कारपूर्वक मथुरामें बुलादिया और धन आदि देकर सन्तुष्ट किया । उन लोगोंने फिर आकर अपने अपने घर बसाये ॥ १५ ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण—बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित यादव लोग, सिद्धजनोंकी भाँति पूर्ण मनोरथ और विगतसन्ताप होकर, नित्यप्रति मुकुन्दके सदय हास और कृपाकटाक्षोंसे सुशोभित, नित्यप्रसन्न, श्रीसम्पन्न मुखारविन्दको देखतेहुए अपने अपने भवनमें सुखपूर्वक निवास करनेलगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ वहाँके बूढ़े भी युवकोंके समान उत्साही, महाबली और तेजस्वी देख पड़ते थे । क्योंकि वे नित्य नयनोंसे मुकुन्दमुखामृत पान करते थे ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर भगवान् कृष्ण और बलभद्रजी नन्दजीके निकट उपस्थित हुए और

मिलकर कहनेलगे कि "पिताजी! आप और माता यशोदाने स्नेहपूर्वक अपने सन्तानसे भी अधिक हमकों माना और हमारा लालन पालन किया। पितामाताको अपने शरीरसे भी बढ़कर पुत्रोंपर प्रेम और ममता होती है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ जिनको पालनेमें असमर्थ बन्धुओंने तज दिया है एवं जो अपना भरण पोषण आप नहीं करसकते उन बालकोंको अपने पुत्रके समान पालनेवालेही उनके सच्चे माता पिता हैं ॥ २२ ॥ पिता! अब आप व्रजको जाइये। हम कुछ दिन स्वजनोंको सुखी करके अपने विरहसे दुःखित और सनेही सुहृद् जन जो आपलोग हैं उनको देखनेके लिये अवश्य आवेंगे" ॥ २३ ॥ भगवान् अच्युतने इसप्रकार व्रजवासियोंको और नन्दको समझाया और अनेक वस्त्र, आभूषण एवं पात्र आदि उपहार देकर सादर सत्कारसहित उनका पूजन किया ॥ २४ ॥ कृष्ण-बलरामके वाक्य सुनकर स्नेहसे विह्वल नन्दजीने दोनो भाइयोंको गलेसे लगालिया। नन्दजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। बड़े कष्टसे धीरज धरके गोपगणसहित नन्दजी विदाहुए और व्रजको चले ॥ २५ ॥ राजन्! तदनन्तर वसुदेवने अपने पुरोहित गर्गाचार्य एवं अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा दोनो पुत्रोंका यथाविधि यज्ञोपवीत संस्कार कराया ॥ २६ ॥ वसुदेवने उन ब्राह्मणोंको अलंकारोंसे भलीभाँति भूषित किया, एवं पूजन करके, जिनके गलेमें स्वर्णमाला और पीठपर रेशमी झूलें शोभा दे रही हैं ऐसी भलीभाँति विभूषित गौवें और उनके बछड़े देकर सन्तुष्ट किया ॥ २७ ॥ कृष्ण बलदेवके जन्मदिनमें महामति वसुदेवने जितनी गौवें दी थीं उनको कंसने अधर्मपूर्वक हरलिया था; उस दिन वे गौवें भी उन्होने ब्राह्मणोंको दीं ॥ २८ ॥ गर्गऋषिके द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार हो जानेपर द्विजपद पाकर सुव्रत कृष्ण-बलदेवने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया ॥ २९ ॥ कृष्ण-बलदेव जगदीश्वर और सब विद्याओंके प्रकट करनेवाले, अतएव सर्वज्ञ होकर भी मनुष्यलीलाओंसे अपने स्वयंसिद्ध ज्ञानको छिपायेहुए थे ॥ ३० ॥ लोकाचारके अनुसार "गुरुकुल"में रहने की इच्छासे दोनो भाई अवन्तिपुरनिवासी काश्यपगोत्रज सान्दीपनि नाम मुनिके निकट गये ॥ ३१ ॥ वहाँ इन्द्रियदमनपूर्वक दोनो भाई पढ़नेलगे; वे पढ़नेके सिवा अपनेसे नीचेकी श्रेणीवाले विद्यार्थियोंको पढ़ाते भी थे। यों दोनो भाई वशवर्ती और श्रद्धायुक्त होकर परम भक्तिसे इष्टदेव ईश्वरके समान गुरुकी सेवा करनेलगे ॥ ३२ ॥ उनके शुद्ध भाव और सेवासे प्रसन्न होकर गुरुने साङ्गोपाङ्ग वेद और उपनिषद् उनको पढ़ाये ॥ ३३ ॥ कृष्ण बलदेवने उनसे मन्त्र व देवताके ज्ञानसहित धनुर्वेद, विविध धर्म, भिन्न भिन्न नीति, आन्वीक्षिकी (तर्क) विद्या और छः प्रकार (संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधभाव और आश्रय) की राजनीतिकी शिक्षा भी पाई ॥ ३४ ॥ महाराज! उन पुरुषश्रेष्ठ दोनो भाइयोंने एकवार गुरुके मुखसे सुनकर सब विद्याएँ सीख लीं। सब विद्याओंके चलानेवाले

जगदीश्वरोंके लिये यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ३५ ॥ इसप्रकार संयत होकर उन्होने चौंसठ दिन और रातमें चौंसठो कला विद्या सीख ली। पढ़ना समाप्त होनेपर अन्तमें उन्होने गुरुसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ सांदीपनि मुनिका एक पुत्र पहले प्रभासक्षेत्रके बीच महासागरमें डूबगया था। इससमय कृष्ण-बलदेवकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धि देखकर स्त्रीके परामर्शानुसार उन्होने वही मराहुआ पुत्र गुरुदक्षिणामें माँगा ॥ ३७ ॥ "तथास्तु" कहकर अनन्त-पराक्रमशाली महारथी दोनो भाई रथपर चढ़कर प्रभास क्षेत्रमें आये और समुद्रके किनारे जाकर एक क्षणभर ठहरे थे कि उनके आगमनको जानकर पूजा लियेहुए समुद्र, पुरुषरूपसे उनकी सेवामें उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ भगवान्‌ने समुद्रसे कहा कि-"तुम यहाँ जिसको अपनी महातरङ्गोंमें बहा ले गये हो उस हमारे गुरुपुत्रको शीघ्र लाओ" ॥ ३९ ॥ समुद्रने कहा—"देव! मैं उस बालकको नहीं हर ले गया। हे कृष्ण! मेरे जलमें एक शङ्खरूपधारी पञ्चजन नाम महादैत्य रहता है—अवश्य वही उस बालकको ले गया होगा"। यह सुनतेही भगवान् जलके भीतर गये और उस पञ्चजन दैत्यको मार डाला। परन्तु उस दैत्यके पेटमें भी बालक नहीं देख पड़ा। तब भगवान् उस दैत्यके अङ्गका पांचजन्य नाम शङ्ख लेकर रथपर आये और बड़े भाईके साथ यमराजकी प्रिय संयमिनी पुरीको गये। वहाँ जाकर भगवान्‌ने अपना शङ्ख बजाया। शङ्खका प्रचण्ड शब्द सुनकर प्रजागणके संहारकारी और शासक यमराज बाहर आये। उन्होने बड़ेही समारोहसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा की। फिर नम्र होकर सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें रहनेवाले लीलामानुषरूप विष्णु जो कृष्णचन्द्र हैं उनसे यमराजने कहा—"प्रभो! हम आपकी क्या सेवा करें?" ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ महाराज! भगवान्‌ने कहा-"अपने कर्मोंसे विवश होकर यहाँ आयेहुए हमारे गुरुपुत्रको हमारी आज्ञाके अनुसार लेआओ" ॥ ४५ ॥ "जो आज्ञा" कहकर यमराज उसी समय गये और उनके गुरुपुत्रको उसीसमय ले आये। कृष्ण-बलदेव भी उस बालकको लेकर गुरुके निकट आये और गुरुको उनका पुत्र देकर कहने लगे कि "और क्या आप चाहते हैं?" ॥ ४६ ॥ गुरुने कहा—"पुत्रो! तुम भली भाँति मुझको गुरुदक्षिणा दे चुके। जो लोग तुम्हारे समान शक्तिमान्‌के गुरु हैं उनकी कोई भी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहसकती ॥ ४७ ॥ हे दोनो वीरवरो! तुम अब घर जाओ। लोकोंको पवित्र करनेवाला तुम्हारा यश चारो ओर तीनो लोकोंमें फैल जायगा। स्वाध्यायपाठ न करनेपर भी कभी तुमको तुम्हारा पढ़ा हुआ न भूलेगा" ॥ ४८ ॥ राजन्! इसप्रकार गुरुकी आज्ञा पाकर दोनो भाई वायुवेगशाली एवं मेघतुल्य शब्दवाले रथपर चढ़ कर अपने पुरमें आये ॥ ४९ ॥

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥
अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥

बहुत दिनोंपर कृष्ण-बलदेवके दर्शन पाकर सब प्रजागण इसप्रकार आनन्दित हुए जैसे किसीको खोयाहुआ धन मिल जाय ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंश अध्याय

उद्धवकी व्रजयात्रा

श्रीशुक उवाच-वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—महाराज श्रीकृष्णके प्रियसखा, और साक्षात् बृहस्पतिजीके शिष्य महामतिमान् उद्धवजी वृष्णिवंशीय यादवोंके माननीय मन्त्री थे ॥१॥ शरणागतदुःखहारी हरिने एक समय एकान्तमें उन्ही एकान्त अनुरक्त भक्त प्रियतम उद्धवका हाथ आदरपूर्वक अपने हाथमें लेकर उनसे कहा ॥ २ ॥ "हे सौम्य उद्धव! तुम शीघ्र व्रज जाकर हमारे माता पिताको प्रसन्न करो और मेरा संदेश सुनाकर मेरे वियोगका रोग (मानसिक ताप) जो गोपियोंको सता रहा है उसे शान्त करो ॥ ३ ॥ उनका मन मुझमें ही रहता है, मैं उनका जीवन प्राण हूँ, उन्होने मेरेलिये पति पुत्र और परिवारको तज दिया है एवं प्रिय-प्रियतम आत्मा जो मैं हूँ उसे मनके द्वारा पाचुकी हैं। जो लोग मेरी चाहमें ऐहिक और पारलौकिक सुख और उनके मिलनेकी इच्छा छोड़ देते हैं उन अनन्य भक्तोंको मैं भी भजता हूँ, अर्थात् सदा सुखी बनाता हूँ ॥४॥ हे उद्धव! मैं गोपियोंको सबसे अधिक प्रिय हूँ। मैं इतनी दूर चला आया हूँ। अतएव सब समय मेराही स्मरण करनेके कारण विरहजनित उत्कण्ठासे विह्वल होकर गोकुलकी स्त्रियाँ मोहित हो जाती हैं ॥ ५ ॥ गोकुलसे मथुरा आते समय मैं "शीघ्रही आऊँगा" कहकर आश्वास दे आया था, उसी आशासे किसी प्रकार बड़े कष्टसे वे प्राण धारण कियेहुए हैं। इसका कारण यही है कि उनका आत्मा मुझमें रहता है। यदि ऐसा न होता, उनका आत्मा उनके शरीरमें होता तो अवश्य ही अबतक विरहकी आगमें भस्म हो जाता" ॥ ६ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर उद्धवजी बहुत प्रसन्न हुए और आदरसहित स्वामीका सन्देश लेकर रथपर चढ़कर नन्दके गोकुलको चले ॥ ७ ॥ सूर्य अस्त होनेके समय उद्धवजी नन्दके व्रज पहुँच गये।

उस समय गौवें वनसे व्रजको आरही थीं, उनके खुरोंसे उड़ीहुई धूलमें उद्धवका रथ छिप सा गया ॥८॥ उद्धवने देखा कि ऋतुमती गौवोंके लिये लड़ रहे मत्त साँड़ शब्द कर रहे हैं। दुग्धभारसे दबी हुई गौवें अपने बछड़ोके निकट वेगसे दौड़ी जा रही हैं एवं स्वच्छस्वरूप श्वेतवर्ण बछड़े इधरउधर कूद फाँदकर व्रजकी शोभा बढ़ा रहे हैं। गोदोहन और बाँसुरीका मिला हुआ मधुर शब्द बहुत ही सोहावना जान पड़ता है ॥ ९ ॥ १० ॥ अलंकार पहनेहुए सुन्दर गोपियाँ इधरउधर कृष्ण–बलदेवकी लीलाएँ गारही हैं। जहाँतहाँ गोपगण कृष्ण–बलदेवकी चर्चा करते देख पड़ते हैं ॥११॥ गोपोंके घरोंमें अग्नि, सूर्य, अतिथि, गऊ, ब्राह्मण, पितर और देवतोंका पूजन हो रहा है। उन घरोंके द्वारोंपर शोभित धूप, दीप, माला, इत्यादिसे व्रज बहुतही रमणीय जान पड़ता है ॥ १२ ॥ व्रजके चारो ओर मनको मोहित करनेवाला कुसुमित कानन है। उसमें भाँति भाँतिके पक्षी और भौरे अपनी विचित्र बोलियोंसे लोगोंको वहाँ बुला रहे हैं, चारोओर हंस कारण्डव आदि पक्षी सुखसे विचर रहे हैं और खिलेहुए कमलपुष्प उसकी शोभाको बढ़ातेहुए सुवर्णमें सुगन्धके समान जान पड़ते हैं ॥ १३ ॥ राजन्! श्रीकृष्णके प्रिय सेवक उद्धवको देखकर नन्दजीके आनन्दकी सीमा नहीं रही; उन्होने जल्दीसे उठकर उद्धवको गलेसे लगालिया और साक्षात् कृष्ण समझकर उनका पूजन किया ॥ १४ ॥ जब उद्धवजी श्रेष्ठ अन्न भोजनकर सुखपूर्वक बिछौनेपर बैठे और पैर दबाकर उनकी थकन मिटाई गई, तब नन्दजीने पास आकर उनसे पूछा कि–"हे महाभाग! हमारे परम मित्र वसुदेवजीने बन्धनसे मुक्त होकर सुहृद्गण और पुत्रोंसहित कुशलसे हैं? ॥ १५ ॥ १६ ॥ बड़ी बात, जो पापी कंस अपने भाइयों और भृत्योंसहित अपने ही पापोंसे आप मारा गया। वह बड़ा ही दुष्ट था, क्योंकि धर्मात्मा और साधुस्वभाव यादवोंसे सदा शत्रुता रखता था ॥ १७ ॥ भला, कृष्णचन्द्र, हमारी, सुहृद्गणकी, सखाजनोंकी, गोपोंकी, स्वयं जिसके स्वामी हैं उन गौवोंकी, वृन्दावन या गोवर्धन पर्वतकी कभी याद करते हैं? ॥ १८ ॥ क्या स्वजनोंको देखनेके लिये एकबार गोविन्द यहाँ आवेंगे? सुन्दर नासिका और कृपापूर्ण कटाक्षोंसे सुशोभित उनका मनोहर हास्यमण्डित मुख हम लोग कभी देखेंगे? ॥ १९ ॥ महात्मा श्रीकृष्णने दावानलसे, प्रचण्ड वायु और वर्षासे, वृषासुरसे, सर्पसे एवं अन्यान्य अनिवार्य मौतोंसे समय समयपर हमारी रक्षा की है ॥ २० ॥ उद्धव! कृष्णकी विविध लीलाओंकी, तिर्छी चितवन और हास विलास तथा बातचीतकी याद आजानेपर हम कोई कार्य नहीं करसकते—हमारे सब अङ्ग शिथिल होजाते हैं ॥ २१ ॥ केवल अङ्ग ही नहीं शिथिल होजाते बरन् उनके चरणचिन्होंसे अलंकृत नदी, पर्वत, वनप्रदेश और केलिकुंज देखनेसे हमारा मन तन्मय हो जाता है ॥ २२ ॥ महा-

मुनि गर्गके गूढ़ वाक्योंके अनुसार मैं कृष्ण-बलदेव दोनोंको श्रेष्ठ देवता समझता हूँ। अवश्यही देवतोंका कोई महाकार्य सिद्ध करनेकेलिये पृथ्वीपर उनका अवतार हुआ है ॥ २३ ॥ क्योंकि दस हजार हाथियोंका बल धारण करनेवाला कंसको, महाबली मल्लोंको, भयानक गजराजको इसप्रकार लीलापूर्वक उन्होने मार डाला जैसे सिंह पशुओंको ॥ २४ ॥ जैसे मदमत्त गजराज किसी छोटीसी छड़ीको तोड़ डाले वैसे ही कृष्णने तीन ताल ऊँचा महाकठिन धनुष तोड़ डाला और एक हाथसे सात दिनोंतक गोवर्धन पर्वतको उठाये रहे ॥ २५ ॥ प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, तृणावर्त, बकासुर आदि दैत्य, जिन्होंने सब देवता और दैत्योंको परास्त कर दिया था, उनको कृष्णने लीलापूर्वक मार डाला" ॥ २६ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! कृष्णके अनुरागका रङ्ग जिनके चित्तपर चढ़ाहुआ है वह नन्दजी, इसप्रकार वारंवार कृष्णका स्मरण करनेके कारण होनेवाले प्रेमके पसारसे विह्वल होकर उत्कण्ठाकी अधिकतासे चुप होगये ॥ २७ ॥ पुत्र कहे जा रहे चरित्र सुनकर यशोदाके नेत्रोंसें आँसू भर आये और स्नेहके वेगमें उनके स्तनोंसे आपही आप दुग्ध निकलनेलगा। नन्द-यशोदाका भगवान् कृष्णमें ऐसा अनुराग देखकर उद्धवजी परम प्रसन्न हुए और नन्दजीसे यों कहनेलगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ "हे व्रजराज! तुम दोनो स्त्री-पुरुष, सब देहधारियोंमें श्रेष्ठ और परमप्रशंसनीय हो, क्योंकि जगद्गुरु नारायणमें तुम्हारी ऐसी इष्टबुद्धि है ॥ ३० ॥ कृष्ण और बलभद्र दोनो, इसविश्वके निमित्तकारण और उपादानकारण हैं। ये सब तत्त्वोंमें अनुप्रविष्ट रहकर उन तत्त्वोंसे विरचित विभेदभावके और जीवके नियन्ता ईश्वर हैं। ये पुराणपुरुष अर्थात् अनादि हैं ॥३१॥ महात्मा नन्दजी! अन्तसमय क्षणभर भी जिनमें विशुद्ध मन लगानेसे सब कर्मवासनाएँ भस्म हो जाती हैं, स्वरूप-साक्षात्कार होता है और शुद्धसत्त्व-मूर्ति हो जानेसे परम गति प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥ वही विश्वहेतु, विश्वात्मा होनेपर भी प्रयोजनवश मायामय मनुष्यरूपसे अवतीर्ण नारायण जो महात्मा कृष्ण हैं उनमें तुम्हारी ऐसी अनन्य भक्ति है, अतएव तुम धन्य हो! तुम कृतकृत्य हो गये ॥ ३३ ॥ कृष्णचन्द्रने कहा है कि 'हम शीघ्र ही व्रजमें आवेंगे और माता और पिता दोनोंकी इच्छा पूर्ण करके प्रसन्न करेंगे' ॥ ३४ ॥ यादवोंके शत्रु कंसको रङ्गभूमिमें मारनेके उपरान्त बसके आगे आपके निकट आकर जो उन्होने कहा था उसे वे अवश्य पूरा करेंगे ॥३५॥ हे महाभाग नन्दजी! और महाभागा यशोदाजी! तुम खेद न करो, शीघ्र ही अपने निकट कृष्णचन्द्रको देखोगे; क्योंकि वह लकड़ियोंमें अग्निके समान सब प्राणियोंमें हृदयाभ्यन्तरमें विराजमान हैं ॥ ३६ ॥ उनको अभिमान नहीं है, अतएव उनको कोई अत्यन्त प्रिय या अप्रिय नहीं है। वह समदर्शी हैं, इसकारण उनकी दृष्टिमें उत्तम, अधम या सम कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ उनके माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि नहीं हैं, और न कोई

अपना है, न पराया है। वह शरीररहित अजन्मा हैं। वह अकर्मा हैं। किन्तु जन्म-कर्महीन होकर भी वह अपनी क्रीड़ाओंसे साधुजनोंके कष्ट मिटानेके लिये सत्, असत् और मिश्र अर्थात् सात्त्विक, राजस, तामस, अथवा देव, मत्स्य, नृसिंह आदि योनियोंमें प्रकट होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उनको क्रीडा करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह निर्गुण हैं; तथापि क्रीडा करनेके लिये मायाके सत्व, रज, तम, इन तीनो गुणोंको भजते हैं और उन्ही गुणोंसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे वेगसे चक्कर लगानेमें (अथवा रेलपर चलते समय) दृष्टिदोषसे पृथ्वी भी घूमतीहुई (अथवा चलतीहुई) जान पड़ती है, परन्तु वास्तवमें वह नहीं घूमती, वैसे वास्तवमें चित्त ही कर्ता होनेपर भी, उसचित्तमें आत्माका अध्यास अर्थात् अहंबुद्धि होनेके कारण अज्ञानवश आत्मा ही कर्ता जान पड़ता है ॥ ४१ ॥ भगवान् हरि केवल तुम्हारे ही पुत्र नहीं हैं, वरन् सबके पुत्र, आत्मा, पिता, माता, स्वामी आदि सब कुछ हैं ॥ ४२ ॥ ऐसी कोई देखी, सुनी, वर्तमान, भविष्य, स्थावर, जङ्गम बड़ी या छोटी वस्तु नहीं है, जो अच्युतसे भिन्न हो। वास्तवमें अच्युतके सिवा "वस्तु" कहनेयोग्य कुछ भी नहीं है; वही परमार्थस्वरूप परमात्मा हैं" ॥ ४३ ॥ राजन्! इसप्रकार कृष्णके प्रिय अनुचर उद्धव और नन्दमें बातचीत होते होते रात बीत गई। दो घड़ी रात रहे सब गोपियाँ उठीं और अपने अपने घरोंमें दीपक जलाकर झाड़ू चौका आदि घरके काम करनेलगीं। भवनकी सफाई करनेके उपरान्त सबने दही मथना आरम्भ किया ॥ ४४ ॥ दही मथतेसमय उनके अरुणवर्ण कुङ्कुममण्डित कपोलोंपर हिलरहे कनककृत कुण्डलोंकी झलक बहुत ही मनोहर जान पड़ती थी, उनके काञ्ची आदि आभूषणोंमें जड़ीहुई मणियोंकी कान्ति दीपकोंकी आभा पड़नेसे दूनी होगई। कङ्कण-मालाओंसे अलंकृत भुजाओंसे मथानीसहित रस्सी पकड़कर दही मथतेसमय उनके हिलतेहुए नितम्ब, स्तन, हार और कुण्डल, शोभाका एक विचित्र दृश्य हो रहे थे ॥ ४५ ॥ दही मथतेमें व्रजवालाएँ ऊँचे स्वरसे कमलनयन कृष्णकी कथाएँ गानेलगीं। दही मथनेके शब्दसे मिलाहुआ वह महाशब्द आकाशतक पहुँचकर सुननेवालोंके अमङ्गलको मिटाता हुआ दिशाओंमें चारो ओर फैल गया ॥ ४६ ॥ कुछ देरबाद भगवान् सूर्यका उदय होनेपर व्रजवासी लोग नन्दके द्वारपर सुवर्णमय रथ खड़ा हुआ देखकर परस्पर कहनेलगे कि—"यह रथ किसका है?" ॥ ४७ ॥ गोपियाँ उस रथको देखकर कहनेलगीं कि "कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये जो आकर कमललोचन कृष्णको मथुरा लेगया वही क्रूर अक्रूर क्या फिर आया है? ॥ ४८ ॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ॥
इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥

"अब क्यों आया है? क्या अब हमारे कृष्णरूप प्राणसे रहित शरीरोंके मांससे अपने मरेहुए स्वामी(कंस)को पिण्डदानकर प्रसन्न करेगा?" इसप्रकार स्त्रियाँ कह रहीथीं, इतनेमें उद्धवजी यमुनातटसे स्नान-संध्या आदि आन्हिक कर्म करके नन्दके घर आते देख पड़े ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंश अध्याय

भ्रमरगीत और उद्धवका मथुरागमन

श्रीशुक उवाच–तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः
प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ॥
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्-
मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! नवीन कमलदलके समान विशाल नेत्र-वाले, पीताम्बरधारी, गलेमें कमलकी माला और वनमाला धारण किये, मणिज-टित कुण्डलोंसे मण्डित मुखारविन्दसे सुशोभित, कृष्णके अनुचर आजानुबाहु उद्धवको देखकर सब गोपियाँ बहुत ही विस्मित हुईं और कहनेलगीं कि "यह परम सुन्दर स्वरूपवाला पुरुष कौन है? कहाँसे आया है? किसका दूत है? इसकी वेपभूषा तो कृष्णके सदृश है!" जिनके चित्त जाननेके लिये उत्सुक हो रहे हैं उन गोपियोंने यों कहकर उत्तमश्लोक कृष्णके चरणसेवक उद्धवको चारो ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ २ ॥ जब गोपियोंने जाना कि उद्धवजी प्यारे कृष्णका संदेश लेकर आये हैं तब विनयावनत होकर लज्जापूर्ण हास्य, कटाक्ष और मधुर वचनोंसे उन्होने उनका सत्कार किया। फिर एकान्तमें उद्धवजीको सुन्दर आसनपर बैठाकर गोपियोंने स्वागत और कुशलप्रश्नके उपरान्त कहा—"हम जानती हैं कि तुम यदुपतिके सेवक हो। पिता माताको प्रसन्न करनेके लिये ही तुम्हारे स्वामीने तुमको भेजा है; इसीसे तुम यहाँ आये हो ॥ ३ ॥ ४ ॥ नहीं तो इस व्रजमें कोई भी वस्तु हमको ऐसी नहीं देख पड़ती, जिसकी कभी उन महापुरुषको याद आती हो। उन्होने माता-पिताका स्मरण किया हो तो ठीक ही है, क्योंकि मुनिलोग भी बन्धु-ओंके स्नेहानुबन्धको सहजमें नहीं छोड़ सकते ॥ ५ ॥ बन्धुओंके सिवा अन्य लोगोंसे जो मित्रता की जाती है सो किसी न किसी प्रयोजनसे की जाती है। जबतक कार्य नहीं सिद्ध होता तभीतक मित्रताका अनुकरणमात्र किया जाता है, कार्य निकल जानेपर इस मैत्रीका अन्त हो जाता है। स्त्रियोंसे पुरुषोंकी मित्रता और

भ्रमरोंका फूलोंपर अनुराग, ऐसा ही स्वार्थमैत्रीका उदाहरण हैं ॥ ६ ॥ संसारमें प्रायः ऐसी ही स्वार्थमैत्री देखी जाती है । देखो, जब मनुष्य निर्धन हो जाता है तब वेश्या उसको छोड़ देती है–बात भी नहीं करती; रक्षा करनेमें असमर्थ राजाको प्रजागण छोड़देते हैं; विद्या पढ़ लेनेपर शिष्यलोग अपने आचार्य (गुरु) को छोड़देते हैं; दक्षिणा पा जानेपर ऋत्विक्लोग यजमानको छोड़ जाते हैं; फल चुक जानेपर पक्षीगण वृक्षको छोड़ देते हैं; अतिथिलोग भोजन करनेके उपरान्त उस घरको छोड़कर अपनी राह लेते हैं; जब वन जलने लगता है तब मृगगण उसे छोड़कर भाग जाते हैं; ऐसेही जारलोग भोग करके अतृप्त एवं अनुरक्त स्त्रियोंको छोड़ देते हैं" ॥७॥८॥ जिनके मन, वाणी और काया कृष्णमय हो रहे हैं वे गोपियाँ, कृष्णके दूत उद्धवके मिलनेपर सम्पूर्ण लौकिक व्यवहारोंको छोड़कर कृष्णके ध्यानमें मग्न होगईं । प्यारे कृष्णने लड़कपनमें और किशोर अवस्थामें जो जो कर्म किये थे उनको याद करके गोपियाँ गाने लगीं । कुछ गोपियाँ लोकलाजको छोड़ रोतीहुई उद्धवसे कृष्णकी चर्चा करनेलगीं । प्रियके समागमकी चिन्ता कररही एक गोपी किसी भौंरेको अपने निकट "गुन गुन" करते देखकर उसे कृष्णका भेजा हुआ दूत मानकर उससे यों कहनेलगी ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ गोपीने कहा—"हे धूर्तके बन्धु मधुकर ! तुम हमारे चरणोंको न छुओ; तुम्हारे श्मश्रुओंमें, सौतके कुचमण्डलमें विहार करनेवाली मालामें लिप्त कुङ्कुम लगा हुआ है । मधुपति कृष्णही, यादवोंकी सभामें उपहास करानेवाले इस प्रसादको धारण करें, हम इस प्रसादको नहीं चाहतीं । तुम्हारी और कृष्णकी बन्धुता ठीक ही है । क्योंकि जैसे तुम सुमनों(फूलों)को रस लेकर छोड़ जाते हो वैसे ही एकबार मोहिनीमय अधरसुधा पिलाकर वहभी चटपट हमको छोड़ चले गये । हमको आश्चर्य है कि इतनी चंचल लक्ष्मी कैसे उनके चरणकमलोंका सेवन करती है ? कदाचित् कृष्णके 'उत्तमश्लोक' (महायशस्वी) इस नामने उसके हृदयको हर लिया है । किन्तु हम लक्ष्मीके समान अविवेकिनी नहीं हैं" ॥१२॥१३॥ भ्रमरको बार बार निकट आकर गुञ्जन करते देख 'हमारा प्रसाद पानेकी आशासे यह बार बार कृष्णका यश गाता है'–ऐसा मानकर गोपियोंने कहा कि:—"हे मधुकर ! तुम क्यों हमारे निकट बार बार आकर कृष्णकी कीर्ति गाते हो ? हम अनेकबार उनके शील स्वभावका अनुभव प्राप्त कर चुकी हैं, वह हमारे लिये नवीन नहीं हैं, पूर्वपरिचित पुराने हैं । तुमको यदि कृष्णकी कीर्ति गाकर कुछ लाभ उठाना है तो अर्जुनके मित्र कृष्णकी वर्तमान सखी जो मथुरापुरीकी स्त्रियाँ हैं उनके आगे जाकर गाओ । वे कृष्णकी प्यारी हैं, कृष्णने हृदयसे लगकर उनके मानसिक तापको शान्त किया है, अतएव वेही प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी ॥ १४ ॥ यदि कहो कि 'ऐसा न कहो, तुम्हारी यादमें मदनविह्वल होकर तुमको प्रसन्न करनेके

लिये उन्होने मुझको भेजा है' तो हमको इसपर विश्वास नहीं हो सकता। क्योंकि स्वर्गमें, पृथ्वीमें या पातालमें कौन ऐसी स्त्री है जो उनको दुर्लभ हो? वह अत्यन्त धूर्त हैं, उनकी कपटपूर्ण मनोहर मन्द मुसकान और भौंहके विचित्र विलासमें कौन स्त्री न मोहित हो जायगी? साक्षात् लक्ष्मी उनके चरणरजकी उपासना करती है, तब हम क्या हैं? किन्तु जो कोई दुःखी जनोंपर दया करते हैं उन्हीके लिये 'उत्तमश्लोक' शब्दका व्यवहार किया जा सकता है" ॥ १५ ॥ चरणोंके निकट आकर उसको गुन गुन करते देखकर 'यह क्षमा चाहता है'–ऐसा मानकर गोपियोंने कहा—"हे मधुकर! हमारे पैरोंपर धरेहुए अपने शिरको हटाओ। तुम दूतपनेसें और मनानेमें बहुत ही चतुर देख पड़ते हो; जान पड़ता है तुमने मुकुन्दसे यह शिक्षा पाई है, किन्तु हम तुमको भलीभाँती जानती हैं, हमसे तुम्हारी चतुराई नहीं चलेगी। ऐसा न कहना कि 'कृष्णका अपराधही क्या है?'। देखो, उनकेलिये हमने अपने पुत्र, पति एवं इसलोक और परलोकको तज दिया, किन्तु वह ऐसे अकृतज्ञ और अव्यवस्थितचित्त हैं कि हमको छोड़कर चले गये। तब उनपर क्या फिर विश्वास किया जा सकता है? ॥ १६ ॥ वह बड़ेही क्रूर हैं; उन्होंने रामावतारमें व्याधकी भाँति वानरराज वालीको एक वाणसे मारडाला। वास्तवमें वह व्याधसे भी बढ़कर क्रूर हैं। क्योंकि व्याध तो मांसके लिये जीवोंको मारता है, परंतु उन्होने वृथाही वालीको मारा। इसके सिवा स्त्रीके वशवर्ती होकर उन्होने रावणकी भगिनी स्त्रीजाति शूर्पणखाके नाक कान काटकर उसको विरूप बनादिया। ऐसेही वामनअवतारमें राजा बलीकी दी हुई बलि (भेंट पूजा) लेकर फिर उसको वँधवाकर स्वर्गसे निकाल रसातलको भेजदिया। अतएव बस, हमें उन काले कृष्णकी मित्रताकी चाह नहीं हैं। यदि कहो कि 'फिर तुम क्यों उनकी कथा कहा करती हो?' तो हे मधुकर! उनकी चर्चा छोड़ना महाकठिन है–सहज नहीं है ॥ १७ ॥ देखो, क्षणभर भी, सुननेमें अमृतसमान मधुर उनका चरित्र कानमें पड़तेही धीर व्यक्तियोंके अन्तःकरणसे राग आदि द्वन्द्वधर्म नहीं रहते और वे विनष्ट हो अपने दुःखित कुटुम्बको छोड़कर विरक्त (भोगवासनाहीन) बन जाते हैं, एवं भिक्षावृत्ति ग्रहण करके पक्षियोंकी भाँति विना घरद्वारके होकर केवल अपनेही पेटको पालते इधरउधर मारे मारे फिरते हैं। उन हरिकी कथाको ऐसी सर्वनाशिनी जानकर भी किसी प्रकार हम नहीं छोड़ सकतीं; इसीसे कहती हैं उनकी कथा दुस्त्यज है ॥ १८ ॥ जैसे अबोध मृगी, व्याधके कपटपूर्ण मधुर गानपर विश्वास कर व्यथाको प्राप्त होती है वैसे ही हम भी कुटिल कृष्णकी बातोंपर विश्वासकर वारंवार उनके नखस्पर्शसे उत्पन्न तीक्ष्ण मदनव्यथाको सहरही हैं। अतएव हे दूत! उनकी बातें छोड़कर और बातें करो" ॥ १९ ॥ भौंरेको थोडा दूर जाकर फिर आतेहुए देख गोपियाँ कहनेलगीं कि–"हे प्रियके सखा! प्यारे कृष्णने

क्या तुमको फिर भेजा है? अहो! प्रियके दूत होनेसे तुम भी हमारे माननीय हो, तुम्हारी क्या इच्छा है? हमसे माँगो। जिनका सङ्ग दुस्त्यज है उन कृष्णके पास क्या तुम हमको ले चलना चाहते हो? किन्तु लक्ष्मीनाम नववधू सदा उनके निकट उनके हृदयमें वास करती है, अतएव हम वहाँ कहाँ रह सकती हैं? ॥ २० ॥ हे सौम्य! आर्यपुत्र कृष्ण महाराज क्या गुरुकुलसे लौटकर मथुरापुरीमें विराजमान हैं? अवश्य ही वह कभी कभी अपने पिता, घर, बन्धु और गोपोंका स्मरण करते होंगे; किन्तु क्या कभी हम दासियोंका भी नाम लेते हैं? अहो! अगरु और चन्दनसे अनुलिप्त सुगन्धित अपनी भुजाको वह कब हमारे शिरपर धरेंगे?" ॥ २१ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णके दर्शनकी जिनको बड़ी लालसा है उन गोपियोंके वचन सुनकर प्रिय कृष्णके संदेशसे आश्वास देतेहुए उद्धवजी उनसे यों बोले ॥ २२ ॥ **उद्धवने कहा**—"अहो गोपियों! तुम कृतार्थ होगई हो, तुम संसारमें परम पूजनीया हो; क्योंकि तुम्हारा मन भगवान् वासुदेवमें यों दृढ-रूपसे लगाहुआ है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, इन्द्रियदमन एवं अन्यान्य अनेक माङ्गलिक अनुष्ठानोंसे कृष्णकी भक्ति सिद्ध होती है। किन्तु तुमने अपने सौभाग्यसे सहजमें वही मुनियोंको भी दुर्लभ अत्यन्त श्रेष्ठ हरिभक्ति पाई है ॥ २४ ॥ तुम परम भाग्यशालिनी हो। तुमने पुत्र, पति, देह, स्वजन और गृह आदि सब छोड़कर परमपुरुष कृष्णमें मन लगाया है ॥ २५ ॥ तुमको कृष्ण भगवान्‌की परम भक्ति प्राप्त हुई है। हे महाभागाओ! तुमने तन्मय-भावपर अधिकार कर लिया है। मैंने व्रजमें आकर तुम्हारे इस अपूर्व भगवत्प्रेमका सुख पाया। तुम्हारे प्रियके विरहने यह अपूर्व प्रेम दिखाकर मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ देखो, मैं स्वामीका गुप्त कार्य सिद्ध करनेके लिये उन्हीं तुम्हारे प्रियका दिया हुआ संदेश लेकर आया हूँ—तुम सब एकाग्र होकर सुनो ॥ २८ ॥ भगवान्‌ने कहा है कि—"प्रियागण! मेरा वियोग तुमको कभी नहीं होसकता, मैं देहधारियोंका आत्मा होनेके कारण सदा तुम्हारे पास हूँ। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पाँचो महातत्त्व सब तत्त्वोंमें अवस्थित हैं वैसे ही मैं मन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और गुणोंका आश्रयस्वरूप हूँ। मैं पंचतत्त्व, इन्द्रिय और त्रिगुण-स्वरूपिणी अपनी मायाके प्रभावसे अपनेही द्वारा अपनेको अपनेमें उत्पन्न करता, पालता और लीन करता हूँ ॥ २९ ॥ ३० ॥ आत्मा, ज्ञानमय होनेके कारण अज्ञानमयी मायासे भिन्न है, अतएव मायाके गुणोंसे उसका संबन्ध नहीं है। आत्मा शुद्ध है। वह आत्मा सुषुप्ति, स्वप्न, जागृति नामक मानसिक वृत्तियोंके द्वारा ही, विश्वरूप हो, तैजस रूपसे और प्राज्ञ रूपसे प्रतीत होता है—स्वयं नहीं ॥ ३१ ॥ जैसे सोकर उठा हुआ व्यक्ति—देखेहुए मिथ्या स्वप्नका ही चिन्तन करता है वैसेही जिसके द्वारा इन्द्रियोंके विषयोंका

चिन्तवन किया जाता है एवं जिसके द्वारा इन्द्रियोंकी उपलब्धि होती है, आलस्य छोड़कर, उस मनका दमन करना ही कर्तव्य है ॥ ३२ ॥ जैसे नदियाँ सागरमें ही चारो ओरसे आकर मिलती हैं वैसेही वेद, मनीषी व्यक्तियोंके अष्टाङ्गयोग, आत्मा-नात्मविवेक, संन्यास, स्वधर्म, इन्द्रियदमन और सत्य आदिका, मार्गविभेद होने-पर भी, यही एक तात्पर्य है जो ऊपर कहा गया है—इस सिद्धान्तमें सब आकर मिल जाते हैं ॥ ३३ ॥ तुम्हारे नयनोंका तारा मैं तुमसे इतनी दूर इसलिये हूँ कि तुम सदैव मेरे ही ध्यानमें लवलीन रहो—तुम्हारा मन सब समय मेरेही निकट रहे ॥ ३४ ॥ प्रियतमके दूर रहनेपर स्त्रियोंका चित्त हरघड़ी उसीमें लगा रहता है, किन्तु प्रियतम यदि आँखोंके आगे पास रहता है तो वह बात नहीं होती ॥ ३५ ॥ इसप्रकार तुम सब वासनाओंसे शून्य शुद्ध मनको मुझमें लगाकर नित्य मेरा ध्यान करनेसे शीघ्रही मुझे पाओगी ॥ ३६ ॥ गोपिकागण! मैंने जब रात्रिके समय रासक्रीड़ा की थी तब गुरुजनोंके रोकनेसे जो गोपियाँ नहीं आसकीं वे इसीप्रकार मेरे चरित्रोंका स्मरण कर विशुद्धरूप हो मुझको प्राप्त हुई हैं" ॥ ३७ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—राजन्! व्रजबालाएँ इसप्रकार उद्धवके मुखसे प्रियतमकी आज्ञा सुनकर परम प्रसन्न हुईं और उनको भगवान्का संदेश सुननेसे शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ **गोपियाँ** उद्धवजीसे कहने लगीं—"हे सौम्य! बड़ी बात, यादवोंको दुःख देनेवाला शत्रु कंस अनुचरगणसहित कृष्णके हाथों मारा गया। और आनन्दकी बात है कि सब कामनाएँ जिनकी पूर्ण होचुकी हैं उन अनुरक्त भक्त यादवोंके साथ इससमय यदुपति कृष्णचन्द्र कुशलसे हैं ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र हमसे जैसी प्रीति करते थे वैसी ही प्रीति पुर-नारियोंके स्नेहपूर्ण लज्जायुक्त हास्य और उदारता व श्रद्धासे मनोहर कटाक्षोंद्वारा पूजित होकर, उनसे भी करते हैं?—या नहीं? ॥ ४० ॥ कृष्णचन्द्र स्वयं रतिचतुर हैं और पुरनारियोंके प्रिय भी हैं, तब वह उनके वचन और विभ्रमोंसे पूजित होकर कैसे न उनपर अनुरक्त होंगे? ॥ ४१ ॥ अस्तु, हमको इस चिन्तासे क्या प्रयोजन है? भला वह प्यारे कृष्णचन्द्र उन पुरनारियोंकी सभामें बातचीत करतेसमय प्रसङ्ग आपड़नेपर हम गँवारियोंका भी कभी स्मरण करते हैं? ॥ ४२ ॥ जब वृन्दावनमें कुमुद, कुन्द आदिके फूल फूले हुए थे, चन्द्रमाकी चाँदनी चाँदनी सी बिछी हुई थी, तब जिन रात्रियोंमें रासमण्डल बनाकर हम प्रियाओंके साथ उन्होने विहार कियाथा,–विहारके समय उनके ओर हमारे चरणोंके नूपर बजते थे और हम सब उन्हीकी मनोहर कथाएँ गाती थीं, भला कृष्णचन्द्र क्या कभी उन रात्रियोंका भी स्मरण करते हैं? ॥ ४३ ॥ हम सब सदैव उनके शोकसे आकुल रहती हैं। इन्द्रदेव जैसे अमृतरूप जलकी वर्षासे घाममें मुरझाये-हुए वनको हराभरा बनाते हैं वैसेही कृष्णचन्द्र कभी यहाँ आकर अपना हाथ

हमारे शरीरपर फेरकर हमारे सन्तापको दूर करेंगे ?" ॥ ४४ ॥ यह सुनकर एक और सखी कहनेलगी, । "नहीं सखी ! श्रीकृष्णने शत्रुको मारकर राज्य पाया है, एवं राजकुमारियोंसे व्याह करके अब सब बन्धुओंके साथ सुखपूर्वक मथुरामें निवास करते हैं, वह भला यहाँ क्यों आवेंगे ?" ॥४५॥ यह सुन एक और सखीने कहा– "सखी ! तुम समझती नहीं हो, श्रीकृष्णचन्द्र परम धीर और लक्ष्मीके पति हैं, स्वयमेव पूर्णमनोरथ एवं परिपूर्ण हैं। उनका कौन मनोरथ है जिसको वनमें रहनेवाली हम गँवारी नारी पूरा कर सकेंगी ? एवं राजकुमारी अथवा और स्त्रियाँही उनकी कौन कामना पूर्ण करसकती हैं ? ॥४६॥ कामचारिणी (वेश्या) पिङ्गला भी कह गई है कि 'निराशा (किसीकी आशा न करना) ही परम सुख है'। हम यह जानकर भी कृष्णकी दुरत्यय आशाको नहीं छोड़ सकतीं ॥ ४७ ॥ जिन उत्तम श्लोककी इच्छा न होनेपर भी लक्ष्मी एक घड़ी भी अङ्गसङ्ग नहीं छोड़ती उन कृष्णचन्द्रकी एकान्तवार्ताको कौन छोड़ सकता है ? ॥ ४८ ॥ इन नदी, पर्वत और वनप्रदेशोंमें बलभद्रके साथ गौवें चरातेहुए कृष्णचन्द्रने क्रीडाएँ की हैं और वंशी बजाई है। अहो ! श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णके श्रीनिकेतन चरणोंके चिन्होंसे सुशोभित ये पर्वत, नदी, वन और वंशीरव व गौवें आँखोंके आगे आकर बारंबार उन्ही कृष्णचन्द्रका स्मरण करा देते हैं, इसीकारण वह कृष्ण प्यारे हमको नहीं भूलते ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे उद्धव ! श्रीकृष्णकी ललितगति, उदार हास्य, लीलाएँ, चितवन एवं मधुर वचन आदिने हमारे चित्तको हरलिया है, अतएव हम उनको कैसे भूल सकती हैं ? ॥ ५१ ॥ हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे आर्तिनाशन ! हे गोविन्द ! यह आपका गोकुल दुःखके सागरमें मग्न होरहा है, शीघ्र इसको उबारो" ॥ ५२ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णका संदेश सुननेसे गोपियोंका विरहताप शान्त हो गया। उन्होने श्रीकृष्ण भगवान्को इन्द्रियोंका साक्षी परमात्मा जानकर उद्धवका भलीभाँति पूजन और आदर सत्कार किया ॥ ५३ ॥ उद्धवने कई महीनेतक गोपियोंका शोक नाश करतेहुए व्रजमें वास किया। उद्धवजी जितने दिन गोकुलमें रहे उतने दिनोंतक कृष्णकी लीलाएँ और कथाएँ कहकर व्रजवासियोंको सुखी बनाते रहे ॥ ५४ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजी नन्दके व्रजमें रहे उतने दिन व्रजवासियोंको कृष्णचन्द्रकी चर्चामें एक क्षणके समान जानपड़े ॥ ५५ ॥ हरिके दास उद्धवजीने नद, नदी, पर्वत, वन, कन्दरा और फूलेहुए वनोंकी शोभा निहारतेहुए एवं व्रजवासियोंको, कृष्णकी कथाएँ कहकर, कृष्णका स्मरण करातेहुए कुछ दिनोंतक सुखपूर्वक गोकुलमें निवास किया ॥५६॥ गोपियोंके श्रीकृष्णमें परम आसक्त चित्तोंकी ऐसी विरहजनित विह्वलता देखकर उद्धवजी अत्यन्त आनन्दित हुए और उनको प्रणाम करके कहनेलगे कि–"इस पृथ्वीमण्डलमें इन गोपियोंने ही अपने जन्मको सफल किया है, वास्तवमें इन्हीका जन्म सफल

है; क्योंकि इनको सबके आत्मा भगवान्‌पर परम प्रेम है। इनका यह प्रेम साधारण नहीं है, वरन् वह गूढ़ प्रेम है जिसे पानेकेलिये हम चरणसेवक भक्तजन और ज्ञानीजन अनेक प्रयत्न करते रहते हैं। जिनको हरिकी कथाओंमें अनन्य अनुराग है उनको ब्राह्मणोंके तीन प्रकारके (एक जन्म, दूसरा गायत्रीशिक्षा और तीसरा यज्ञ–दीक्षा) जन्मोंकी क्या आवश्यकता है? भगवद्भक्त कोई जाति भी हो वह सर्वोत्तम और पूजनीय है ॥५७॥५८॥ देखो, कहाँ व्यभिचारके दोषसे दूषित वनवासिनी गँवारी नारियाँ! और कहाँ परमात्मा कृष्णमें ऐसा असाधारण प्रेमका होना! किन्तु अहो! अज्ञ व्यक्ति भी यदि ईश्वरका भजन करे तो वह उसका परम कल्याण करते हैं, जैसे बिना जाने भी अमृत पीनेसे मङ्गल ही होता है ॥ ५९ ॥ रास-उत्सवमें इनके गलेमें बाहें डालकर कृष्णचन्द्रने इनको सुखी बनाया—अतएव ये धन्य हैं। भगवान्‌का यह सुखद प्रसाद सिवा इनके, औरोंकी कौन कहे—कमलकी ऐसी कान्ति और गन्ध जिनके शरीरमें है उन स्वर्गकी स्त्रियोंको और निपट अनुरक्त होकर वक्षःस्थलमें वास करनेवाली लक्ष्मीको भी नहीं प्राप्त हुआ है ॥ ६० ॥ इन गोपियोंने दुस्त्यज स्वजनोंको और आर्यधर्मको छोड़कर वेदोंमें जिसकी खोज होती है उस मुकुन्दपदपदवीको प्राप्त किया है। ये अत्यन्त धन्य हैं। मेरी इच्छा है कि मैं उस जन्ममें—इनके चरणोंकी रज जिनपर पड़ती है उन वृन्दावनकी लता ओषधि और झाड़ियोंमेंसे कोई न कोई अवश्य होऊँ ॥ ६१ ॥ जिनकी सेवा लक्ष्मीजी करती हैं एवं ब्रह्मादिक और पूर्णमनोरथ मुनिगण अपने हृदयमें स्थापितकर ध्यान व पूजन करते हैं उन्ही कृष्णके कमनीय चरणकमलोंको रास-नृत्यके समय अपने कुचकलशोंपर धरकर इन्होने अपने हृदयकी तपन बुझाई है ॥ ६२ ॥ अतएव मैं इन सब नन्दव्रजकी सुन्दरियोंके चरणरजकी बारंबार वन्दना करता हूँ। इनके गाएहुए हरिकथामण्डित गीत सब त्रिभुवनको पवित्र करनेवाले हैं—अतएव ये परम धन्य हैं" ॥ ६३ ॥ **शुकदेवजी** कहते हैं—राजन्! इसप्रकार कई महीने रहकर उद्धवजीने मथुरामें जानेका विचार किया। एक दिन उद्धवजी यशोदा, नन्द, गोपगण और गोपियोंसे विदा होकर मथुराको जानेके लिये रथपर सवार हुए ॥ ६४ ॥ इसी समय अनेक प्रकारके उपायन (भेंट–नजर) हाथोंमें लिये नन्द आदि सब गोप उद्धवजीके निकट उपस्थित हुए। अनुरागके कारण आँखोंमें आँसू भरेहुए गोपगण उद्धवसे कहनेलगे कि—"हमारी यही कामना है कि हमारा मन सब प्रकारसे पूर्णतया कृष्णके चरणारविन्दोंमें लगा रहे और हमारी वाणी सदा उनके नामोंका कीर्तन किया करे एवं हमारी काया उनको प्रणाम आदि करनेमें तथा उनकी सेवा करनेमें लगी रहे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ कर्मोंका कारण भ्रमण करते करते ईश्वरकी इच्छासे कोई भी योनि हमको मिले, किन्तु हमारी मति कृष्णमेंही लगी रहे। हमने जो कुछ

मङ्गलकारी कार्य किये हैं और दान दिये हैं, उन सबके बदलेमें हम यही माँगते हैं कि ईश्वरस्वरूप कृष्णकी अनन्य भक्ति हमको प्राप्त हो" ॥ ६७ ॥ राजन्! गोपोंने कृष्णहीके समान मान करके भक्तिपूर्वक इसप्रकार उद्धवका पूजन किया और उद्धवजीने कृष्ण जिसके रक्षक हैं उस मथुरापुरीको प्रस्थान किया ॥ ६८ ॥

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥

मथुरामें पहुँचकर उद्धवजी कृष्णके पास आये और उनको प्रणाम किया। फिर व्रजवासियोंकी अनन्य भक्तिका वर्णन करतेहुए उद्धवजीने नन्दके दियेहुए उपायन कृष्ण-बलदेव और राजा उग्रसेनको दिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंश अध्याय

अक्रूरका हस्तिनापुरको जाना

श्रीशुक उवाच—अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥
सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! सबके मनकी जाननेवाले सर्वज्ञ अन्तर्यामी हरिने जाना कि कुब्जा मेरे कारण कामकी पीड़ा सह रही है। यह जानकर उसका प्रिय करनेकी इच्छासे कृष्णचन्द्र एक दिन उसके घर गये ॥ १ ॥ कुब्जाका भवन महामूल्यवाली गृहसामग्री और कामोद्दीपन करनेवाली सामग्रीसे परिपूर्ण था। मोतियोंकी झालरें, पताका, चन्द्रातप (चँदोवा), शय्या और अनेक आसन उस भवनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २ ॥ सुन्दर गन्धवाले धूप, दीप, माला और केसर, कस्तूरी, कपूर, चन्दन, अगुरु, पुष्पसार आदि गन्धद्रव्य वहाँ जानेसे मनको प्रसन्न कर देते थे। कामशास्त्रके अनुकूल अनेक रङ्गके विचित्र चित्र वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ३ ॥ अच्युतको अपने घरमें आते देखकर शीघ्रताके साथ कुब्जा आसनसे उठ खड़ी हुई, एवं सखीयोंके साथ आगे बढ़कर प्रियतमको लिवालाई। कुब्जाने यथाविधि आसन आदि देकर कृष्णचन्द्र और उद्धवका पूजन किया ॥ ४ ॥ हरिभक्त उद्धवजी केवल हाथसे आसनको छूकर पृथ्वीपर बैठ गये। कृष्णभगवान् भी लोकाचारका अनुसरण करतेहुए सब सुखकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण महामूल्य पलँगपर विराजमान हुए ॥ ५ ॥ कुब्जाभी स्नान, लेपन, दुकूल, भूषण, माला, गन्ध, ताम्बूल, सुधासम आसव आदि

सोलह सिङ्गारोंसे शरीरकी वेषभूषा बनाकर सलज्जलीलायुक्त मुसकानसे मनोहर विभ्रमपूर्ण कटाक्षोंसे चित्तको चञ्चल करती हुई कृष्णके निकट आई ॥ ६ ॥ कृष्ण भगवान्‌ने दोनो हाथ पकड़कर नवसङ्गमकी लाजसे कुछ शङ्कित सुन्दरी कुब्जाको पास बुलाकर पलँगपर लिटा लिया और अनुलेपन देनेके लेशमात्र पुण्यका फल देतेहुए उसके साथ विहार करनेलगे ॥ ७ ॥ उसने अनन्त भगवान्‌के चरण-कमलोंको सूँघकर और कामाग्निसे तपेहुए कुचोंपर व वक्षःस्थलपर रखकर एवं आनन्दमूर्ति कान्त कृष्णको दोनो बाहुओंसे लिपटाकर चिरसंचित तापको शान्त किया ॥ ८ ॥ अहो ! उस अभागिनी कुब्जाने अनुलेपन देकर मोक्ष देनेवाले दुर्लभ ईश्वरको पाकर यह माँगा कि "हे प्रियतम ! यहाँ कुछ दिन रहकर मेरे साथ विहार करो। हे कमलनयन ! मुझसे आपका सङ्ग नहीं छोड़ा जाता" ॥९॥१०॥ मान देनेवाले जगदीश्वर कृष्णचन्द्र उसको मुहमाँगा वर देकर और अलंकार आदिके दानसे सम्मानित कर उद्धवके साथ अपने समृद्धिसम्पन्न घरको गये ॥ ११ ॥ महाराज ! जगत्‌के ईश्वर दुराराध्य हरिको आराधनासे प्रसन्न करके उनसे अति तुच्छ विषयसुखको जो माँगता है वह महा मन्दमति है ॥ १२ ॥ इसकेबाद प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र, अक्रूरको प्रसन्न करनेके लिये और हस्तिनापुर भेजनेके लिये उद्धव और बलभद्रके साथ उनके घर गये ॥ १३ ॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ अपने बान्धवोंको दूर-हीसे आते देखकर अक्रूरजी उठ खड़ेहुए और आगे जाकर आनन्दसे अभिन-न्दनपूर्वक उनको हृदयसे लगालिया ॥ १४ ॥ कृष्ण-बलभद्रको अक्रूरने प्रणाम किया और उन्होने भी लोकाचारके अनुसार अक्रूरजीको प्रणाम किया। फिर अक्रूरजीने सुन्दर आसन देकर उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥ १५ ॥ अक्रूरने उनका पवित्र चरणोदक शिरपर धारण किया और पूजनसामग्री, दिव्य वस्त्र, सुगन्धित माला, उत्तम आभूषण और पान-इलायची आदिसे भलीभाँति सत्कार किया ॥ १६ ॥ फिर विनीत और नम्र अक्रूरजी दण्डवत् प्रणाम करनेके उपरान्त कृष्ण बलभद्रके चरणोंको गोदमें रखकर दबातेहुए यों कहनेलगे ॥ १७ ॥ अक्रूरने कहा—"बड़ीबात जो पापी कंस अपने अनुचरोंसहित आपके हाथों मारागया, एवं आपने अपने कुलको दुरन्त कष्टसे उबार कर उन्नत और समृद्ध बनाया ॥ १८॥ आप दोनो प्रधानपुरुष, जगत्‌के कारण और जगन्मय हैं। आपसे विभिन्न और कोई कारण या कार्य नहीं है ॥ १९ ॥ ब्रह्मन् ! रजोगुण आदि अपनी ही शक्तियोंद्वारा स्वयंसृष्ट इस विश्वमें, कारण होनेके कारण अनुप्रविष्ट न होकर भी आप अनुप्रविष्टसे प्रतीत होते हैं एवं श्रुत, प्रत्यक्ष व गोचर की भाँति एक होकर भी अनेक प्रतीत होते हैं ॥ २० ॥ भगवन् ! जैसे अपनेही रूपान्तरकी अभि-व्यक्तिके स्थान जो चराचर प्राणी हैं उनमें पृथ्वी आदि सब कारण अनेक रूपोंसे प्रकाशित होते हैं वैसे ही आप, निरवच्छिन्न आत्मा और स्वतन्त्र होकर भी, स्वयं

जिनका निमित्तकारण हैं उन भूत-भौतिकादि पदार्थोंमें अनेक प्रतीत होते हैं ॥२१॥ रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण; ये आपकी शक्तियाँ हैं। आप इन्ही शक्तियोंसे इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और नाश करके भी उन गुणोंमें या गुणोंके कर्मोंमें लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप ज्ञानस्वरूप हैं, बन्धनका कारण जो अविद्या है वह आपमें नहीं है ॥ २२ ॥ विचारके द्वारा देहादि उपाधियोंकी यथार्थताका स्थापन नहीं किया जासकता; अतएव जीवात्मामें जन्म या जन्मजनित भेद साक्षात्स्वरूपसे नहीं सिद्ध हो सकता। इसकारण आप बन्धन और मोक्ष दोनोसे रहित हैं-हमारा अज्ञानही आपमें बन्धन और मोक्षकी कल्पना करता है ॥ २३ ॥ आपने जगत्‌के मङ्गलके लिये यह पुरातन वेदमार्ग प्रकट किया है। इस सनातनमार्गको जब जब असत् लोगोंके कल्पित पाखण्डमार्गसे बाधा पहुँचती है तब तब आप धर्ममार्गकी रक्षाकेलिये सतोगुणका अवलंबन कर अवतार लेते हैं ॥ २४ ॥ हे सर्वव्यापक! वही आप इससमय असुरोंके अंशोंसे उत्पन्न दुष्ट राजालोगोंकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाका संहार कर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वसुदेवके यहाँ प्रकट हो यदुवंशका यश फैला रहे हैं ॥ २५ ॥ हे ईश्वर! सब वेद, पितृगण, भूतगण, मनुष्यगण और देवगण जिनकी मूर्ति हैं एवं जिनका चरणोदक त्रिभुवनको पवित्र करता है वही अधोक्षज जगद्गुरु आप मेरे भवनमें पधारे हैं, आपके चरणोंने मेरे भवनको परम पवित्र और धन्य बना दिया—इसमें कोई संदेह नहीं। आपके आगमनसे आज मैं कृतार्थ हो गया ॥ २६ ॥ नाथ! आप भक्तवत्सल हैं, आपके वाक्य सत्य हैं। आप कृतज्ञ और सबके सुहृद् हैं। आप घटते बढ़ते नहीं हैं, सदा एकसे रहते हैं। जो आपके सुहृद् भक्तजन आपका भजन करते हैं, आप सब प्रकार उनकी सब अभिलाषाएँ पूरी करते हैं। इतना ही नहीं वरन् आप अपनेको भी उन्हे दे डालते हैं। भला कौन बुद्धिमान् और पण्डित ऐसा होगा जो आपको छोड़कर किसी औरकी शरणमें जायगा? ॥ २७ ॥ योगेश्वर और बड़े बड़े देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जानपाते। वही आप आज हमारी आँखोंके आगे विराजमान हैं—यह हमारा परम सौभाग्य है। हे जनार्दन! आपकी पुत्र, स्त्री, धन, स्वजन, गृह और देहरूपिणी माया प्राणियोंको मोहित करती है। कृपापूर्वक उस दुरन्त मायासे मुझको मुक्त कीजिये" ॥ २८ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! भक्त अक्रूरने इसप्रकार पूजनपूर्वक स्तुति की, तब भगवान् कृष्णचन्द्र अपने वाक्योंसे मोहित करतेहुए मुसकाकर कहनेलगे कि "हे तात! तुम हमारे गुरु, पितृव्य एवं सब समय प्रशंसनीय हितैषी बन्धु हो। हम आपके कृपापात्र सन्तान हैं। आपका कर्तव्य है कि आप हमारा पालन, पोषण और रक्षा करें ॥ २९ ॥ ३० ॥ जिन मनुष्योंको मङ्गललाभकी इच्छा हो उनको उचित है कि आपऐसे पूजनीय महाभाग साधुओंकी सेवा करें। आपऐसे साधुजन देवतोंसे भी बढ़कर हैं, क्योंकि देवतालोग

अपना कार्य सिद्ध करनेमें तत्पुर देखे जाते हैं, किन्तु आपऐसे साधुजन सदा परोपकारमें निरत रहते हैं ॥ ३१ ॥ जलमय तीर्थ अवश्य तीर्थ हैं, और मट्टी व शिलाके बनेहुए देवता भी अवश्य देवता हैं। किन्तु साधुलोग उनसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे चिरकालतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं, परन्तु साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और मन शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ तात! हमारे सब आत्मीय स्वजनोंमें आप श्रेष्ठ हैं। अतएव आप पाण्डवोंके कल्याणके लिये और कुशल क्षेम जाननेके लिये हस्तिनापुरको जाइये ॥ ३३ ॥ हमने सुना है कि बालक पाण्डवोंके पिता पाण्डुका देहान्त हो गया है, अतएव वे मातासहित अत्यन्त दुःखमें पड़कर पीड़ित हो रहे हैं। अब उनके चाचा राजा धृतराष्ट्रने उनको लाकर अपने पुरमें बसाया है ॥ ३४ ॥ किन्तु अम्बिकाके तनय दीनबुद्धि अन्ध राजा धृतराष्ट्र अपने कुपुत्रोंके कहनेपर चलते हैं, इसलिये अवश्य वह अपने पुत्र और भतीजोंसे एकसा बर्ताव न करते होंगे ॥३५॥ तुम जाकर वहाँ उनका वृत्तान्त विदित करो कि वे (पाण्डव) सुखसे रहते हैं या उनको कष्ट मिलता है। तुम्हारे मुखसे वहाँकी हाल जानकर मैं उचित उपाय करूँगा, जिससे स्वजनों (पाण्डवों)का कल्याण होगा" ॥ ३६ ॥

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥
संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महाराज! इसप्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर श्रीकृष्णजी बलभद्र और उद्धवके साथ अपने भवनको गये ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाश अध्याय

अक्रूरका हस्तिनापुर जाना

श्रीशुक उवाच—स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोङ्कितम् ॥
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! पुरुवंशी श्रेष्ठ राजोंकी कीर्तिसे व्याप्त हस्तिनापुरमें जाकर अक्रूरने धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाल्हीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डवगण एवं अन्यान्य सुहृद् और बन्धुओंसे भेट की ॥ १ ॥ २ ॥ अक्रूरजी यथोचित रीतिसे जब बन्धुबान्धवोंसे मिल चुके तब उन्होने अक्रूरसे और अक्रूरने उनसे परस्पर सब बन्धुओंकी

कुशल पूछी। इसप्रकार अक्रूरजीने सबको प्रसन्न किया और स्वयं आनन्दित हुए ॥३॥ महाराज! अक्रूरजीने दुर्बुद्धि राजाके आचरण जाननेकेलिये कुछ दिन हस्तिनापुरमें वास किया। अक्रूरने देखा कि राजा धृतराष्ट्रके सब पुत्र दुष्ट हैं और वे अपने दुष्ट मन्त्री कर्ण आदिकी इच्छाके अनुसार सब कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ कुन्ती और विदुरने पाण्डवोंके तेज, शस्त्रचलानेकी निपुणता, बल, वीर्य, विनय आदि सद्गुण एवं उनपर प्रजागणके अनुरागका सम्पूर्ण वृत्तान्त अक्रूरको बताया। और यह भी बताया कि 'दुष्ट धृतराष्ट्रके पुत्र पाण्डवोंके बल और गुणोंकी उन्नतिको नहीं देख सकते' ॥ ५ ॥ पाण्डवोंको मारनेकेलिये दुष्ट दुर्योधन आदिने विषदान आदि जो दुराचरण किये थे उनका भी कुन्ती और विदुरने वर्णन किया ॥ ६ ॥ कुन्तीजी आयेहुए भाई अक्रूरके पास आईं और अपने जन्मभवन (माया)का स्मरण करके आँखोंमें आँसू भरकर कहनेलगीं कि "हे सौम्य! हमारे माता, पिता, भाई, भगिनी, भतीजे, कुलकी स्त्रियाँ और सखियाँ क्या कभी हमारा स्मरण करते हैं? ॥ ७ ॥ ८ ॥ शरणागतरक्षक, भक्तवत्सल हमारे भतीजे भगवान् कृष्ण और कमलनयन बलभद्रजी क्या कभी अपनी बुआके पुत्रोंका स्मरण करते हैं? ॥ ९ ॥ भेंड़ियोंके बीच हरिणीके समान मैं शत्रुओंके बीच वास करती हुई शोकसे आकुल होरही हूँ। क्या कृष्णचन्द्र कभी यहाँ आकर मुझको और बिना पिताके मेरे बालकोंको अपने मधुर बचनोंसे धैर्य देंगे? ॥ १० ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगी! हे विश्वमय! हे विश्वपालक! हे गोविन्द! मैं अपने असमर्थ बालकोंसहित निरन्तर कष्ट भोग रही हूँ। भगवन्! मैं अत्यन्तही पीड़ित हो रही हूँ। और मैं आपकी शरणमें आई हूँ—मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ हे ईश्वर! मोक्षदेनेवाले आपके चरणकमलोंके सिवा मृत्यु और संसारके भयसे शङ्कित मनुष्योंके लिये और कोई बचावका स्थान मुझको नहीं देख पड़ता ॥ १२ ॥ धर्मात्मा, अपरिच्छिन्न, जीवके सखा, अणिमादिगुणयुक्त, ज्ञानस्वरूप, श्रीकृष्णको प्रणाम है। हे प्रभो! मैं आपकी शरणमें आई हूँ" ॥ १३ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! आपकी प्रपितामही कुन्ती स्वजनोंका और श्रीपति जगदीश्वर कृष्णका स्मरणकर इसप्रकार दुःखित हो रोनेलगीं ॥ १४ ॥ दुःख और सुखको समान समझनेवाले अक्रूर और महायशस्वी विदुरने कुन्तीके पुत्रोंके जन्मदाता इन्द्र आदिकी कथा कहकर कुन्तीको समझाया और आश्वास दिया ॥ १५ ॥ अक्रूरजी चलतेसमय पुत्रवत्सल एवं भतीजोंसे विषम व्यवहार करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास गये। उससमय सभामें सभी जातिवाले, वंशवाले एवं सुहृद्गण उपस्थित थे। जो कुछ मित्रभावसे कृष्ण बलभद्र आदि बन्धुओंने धृतराष्ट्रसे कहनेके लिये सँदेसा दिया था सो सबके सामने अक्रूरजी इसप्रकार कहनेलगे ॥ १६ ॥ अक्रूरजीने कहा—

"हे विचित्रवीर्यके पुत्र महाराज ! कुरुवंशकी कीर्तिको बढ़ानेवाले बड़े भाई पाण्डुका देहान्त हो जानेसे आप इससमय राज्यासनपर बैठे हैं ॥ १७ ॥ आप यदि आत्मीय स्वजनोंको समदृष्टिसे देखतेहुए, धर्मसे पृथ्वीका पालन करेंगे और अपने सत् चरित्र व सुशीलसे प्रजाको प्रसन्न रक्खेंगे तो आपका कल्याण होगा और जगत्में सुकीर्ति फैलेगी। यदि इसके विपरीत चलेंगे तो यहाँ निन्दा होगी और मरनेपर नरकोंकी घोर यातनाएँ भोगना होगा। इसकारण आप अपने पुत्रोंको और पाण्डवोंको समदृष्टिसे देखिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ राजन् ! यहाँ किसीके साथ किसीको चिरकालतक नहीं रहना है। स्त्री-पुत्र आदिकी कौन कहे-अपना प्यारा शरीर भी साथ नहीं जाता ॥२०॥ यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही यहाँसे जाता है एवं अकेला ही अपने किये पाप या पुण्यका फल भोगता है ॥ २१ ॥ जलमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीवोंके प्रिय जलको जैसे और लोग ले जाते हैं वैसेही मूढ़ व्यक्तिके अधर्म संचित धनको स्त्री-पुत्र-बन्धुनामधारी और ही लोग उड़ाते हैं ॥ २२ ॥ यह मूर्ख जीव, अपना समझकर, अधर्मपूर्वक जिनका पोषण करता है वे शरीर, पुत्र और सम्पत्ति आदि, उसकी इच्छा भलीभाँति पूर्ण नहीं होने पाती और बीचमें ही उसको छोड़ देते हैं। तब अपने धर्मसे विमुख और अपने उचित प्रयोजनको न जाननेवाला, अपूर्णमनोरथ जीव, कियेहुए पापोंका फल भोगनेके लिये नरकमें जाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन् ! हे प्रभो ! अतएव इस लोकको स्वप्न, माया अथवा मनोरथके समान अनित्य समझकर अपने आपही मनका दमन करो एवं शान्त और समदर्शी बनो" ॥ २५ ॥ यह सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—"हे अक्रूर ! आपके ये वचन मङ्गलमय हैं, जैसे मनुष्य अमृतको पाकर तृप्त नहीं होता वैसे ही मुझे भी इन वचनोंसे तृप्ति नहीं होती, अर्थात् जी चाहता है कि सुना ही करूँ ॥ २६ ॥ हे सौम्य ! तथापि मेरा हृदय पुत्रानुरागसे ऐसा विषम और चञ्चल हो रहा है कि सौदामिनी बिजलीकी भाँति तुम्हारे ये सुन्दर वचन उसमें नहीं ठहरते ॥ २७ ॥ जो ईश्वर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतरे हैं उन कृष्णचन्द्रके विधानको कौन पुरुष अन्यथा कर सकता है ? ॥ २८ ॥ जिसके मार्ग अचिन्त्य हैं उस अपनी मायाद्वारा जो विश्वकी रचना करके विश्वके भीतर प्रवेशपूर्वक कर्म और कर्मफलोंका विभाग कर देते हैं उन परमेश्वरको प्रणाम है। उनकी दुर्बोध क्रीड़ाही इस संसारका कारण है; वही कालरूपसे इस संसारचक्रके संचालक हैं" ॥ २९ ॥ ३० ॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥
पाण्डवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेपितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! यदुवंशी अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्रके उक्त अभिप्रायको जानकर सुहृद्गणसे आज्ञा ले, मथुरापुरीको लौटे । अक्रूरजीने पुरीमें आकर कृष्ण और बलदेवसे धृतराष्ट्रका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इति दशमस्कन्धपूर्वार्धं समाप्तम् ।

शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

दशमस्कन्ध—उत्तरार्धः

रुक्मिणीहरण ।

रुक्मिणीपरिणय ।

श्रीः

शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

दशमस्कन्ध—उत्तरार्धः ।

पञ्चाशत्तम अध्याय

द्वारकादुर्गकी रचना

श्रीशुक उवाच—अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स पितुर्गृहान् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ! अस्ति और प्राप्ति नाम कंसकी दोनो रानियाँ स्वामीके मरनेपर दुःखसे आतुर होकर अपने पिता जरासंधके घर गईं ॥ १ ॥ उन दुःखित रानियोंने अपने पिता मगध देशके राजा जरासंधको अपने विधवा होनेका कारण कहा ॥ २ ॥ यह अप्रिय संवाद सुनते ही राजा जरासंधको पहले शोक और पीछे अत्यन्त क्रोध हुआ। उसने पृथ्वीको यादवोंसे शून्य करनेके लिये बड़ा उद्योग किया ॥ ३ ॥ जरासंधने तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्र कर यादवोंकी राजधानी मथुराको चारो ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ कृष्णभगवान्ने देखा कि उमड़तेहुए सागरके समान शत्रुसेनाने अपने पुरको घेर लिया और यह देखकर सब स्वजन भयाकुल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ तब किसी कारणसे मायामा नव-

रूपधारी वृन्दावनविहारीने देश-काल-गुणके अनुरूप अपने अवतारके प्रयोजनपर विचार करके यह निश्चय किया कि—"मगधराज जरासंधकी लाईहुई राजोंकी इस पदाति, अश्व, गज और रथ आदिसे सुशोभित कई अक्षौहिणी सेनाने मेरे नगरपर आक्रमण किया है; यही पृथ्वीका संचित भार है। मैं इस सेनाका संहार करके जरासंधको छोड़ दूँगा, क्योंकि यह फिर जाकर सेनाका संचय करेगा। साधुओंकी रक्षा, असाधुओंका संहार और पृथ्वीका भार उतारना ही मेरे अवतारका प्रयोजन है। कभी कभी मुझको पृथ्वीपर प्रकट होना पड़ता है। धर्मकी रक्षा और अधर्मका उच्छेद करनेके लिये मेरे अन्यान्य अवतार भी होते हैं" ॥६॥७॥८॥९॥१०॥ सूतजी अट्ठाईस हजार शौनकादिक ऋषियोंसे कहते हैं कि—कृष्ण भगवान् यों विचार कर ही रहे थे कि इसी अवसरमें आकाशसे सूर्यके समान किरणमालामण्डित दो रथ आपही आप पृथ्वीपर उतरते देखपड़े। रथोंमें दो सारथी बैठेहुए थे, एवं विचित्र ध्वजा-पताका और दिव्य सनातन अस्त्र शस्त्र उस रथकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन रथोंको देखकर कृष्णचन्द्रने संकर्षण भगवान्से कहा कि "हे आर्य! देखो, आपही जिनकी रक्षा करनेवाले हैं वे यादव आज विपत्तिमें पड़े हैं। दादा! यह आपको रथ और प्रिय शस्त्र आगये हैं। रथपर चढ़कर इस शत्रुसेनाका संहार करिये और आत्मीयोंको इस घोर विपत्तिसे उबारिये। हे ईश! साधुओंको सुखी रखनेके लिये ही हमारा अवतार हुआ है। यह तेईस अक्षौहिणीसेनारूप पृथ्वीका भार नष्ट करिये"। इसप्रकार मन्त्रणा कर कृष्ण बलभद्रने कवच धारण किया और अस्त्रशस्त्रपूर्ण रथोंपर चढ़कर थोड़ीसी सेना साथ ले पुरसे बाहर निकले। दारुक जिनका सारथी है उन कृष्णने बाहर आकर अपना शङ्ख बजाया। उस शङ्खनादसे शत्रुसेनाके हृदय हिला दिये। जरासंधने जब कृष्ण बलभद्रको देखा तो पास आकर कहनेलगा कि "रे पुरुषाधम कृष्ण! तू बालक है, तुझसे लड़ते मुझे लज्जा आती है। इसकारण यद्यपि तू मेरे बन्धु (कंस) का घातक है तथापि मैं तुझसे नहीं लड़ूँगा। तू अपनेको बालक होनेके कारण सुरक्षित समझ, अन्यथा तेरा बचना असम्भव था। बलभद्र! तेरी यदि युद्ध करनेकी इच्छा हो तो धैर्यसहित युद्ध कर। तू या मेरे बाणोंसे छिन्नभिन्न शरीरको छोड़कर स्वर्गको जा अथवा मुझको मार कर जय प्राप्त कर" ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा—"अरे मन्द! शूरलोग अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं करते, किन्तु अपना पौरुष दिखलाते हैं। मगधराज! तू मरनेवाला है—इसलिये हम तेरे असत्प्रलापका बुरा नहीं मानते" ॥ २० ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—राजन्! वायु जैसे मेघमालासे सूर्यको और धूलसे अग्निको ढाँक लेता है वैसे ही मगधराज जरासंधने सामने होकर अपनी प्रचण्ड सेनाके प्रवाहसे सैनिक, रथ, ध्वजा, अश्व और सारथी सहित कृष्ण-बलभद्रको आच्छन्न कर लिया ॥ २१ ॥ पुरनारियाँ नगरीकी अटारी, महल और गोपुरोंपर

चढ़ीहुई युद्धको देख रही थीं। वे स्त्रियाँ, गरुड़ और ताड़के चिन्ह जिनमें हैं उन कृष्ण-बलभद्रके रथोंको रणभूमिमें न देखकर शोक और सन्तापकी व्यथासे अचेत हो गईं ॥२२॥ भगवान्‌ने शत्रुसेनारूप विशाल मेघमालासे हो रही अनन्त बाणोंकी वर्षासे अपनी सेनाको विचलित होते देख, सींङ्गका बना हुआ (शार्ङ्ग) श्रेष्ठ धनुष हाथमें लिया और उसपरसे तीक्ष्ण बाण बरसाकर पदाति, रथ, अश्व और गजोंका विनाश करना आरम्भ किया। भगवान्‌को तर्कससे बाण निकालते, धनुपको चढ़ाते, डोरीको खींचते और बाणको छोड़तेमें कुछ भी देर न लगती थी—अङ्गारचक्रके समान धनुषका मण्डल देख पड़ता था ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ हाथियोंके मस्तक फटगये और वे रणभूमिपर मर मर कर गिरनेलगे, अनेकानेक घोड़ोंके शिर धड़से अलग हो गये और बाण लगनेसे वे गिरकर मरनेलगे और घोड़े, सारथी, रथी एवं ध्वजाओंसे शून्य रथ, बाणोंकी चोटोंसे चूर होनेलगे। पदातिसेनाके भुजा, ऊरू, कन्धे आदि अङ्ग सब छिन्नभिन्न होगये ॥ २५ ॥ महामनस्वी अपरिमित तेजस्वी बलभद्र देवने मुसलसे मदमत्त शत्रुओंको मारकर घोड़े हाथी और मनुष्योंके कटेहुए अंगोंसे बह रहे रक्तकी सैंकड़ों नदियाँ बहा दीं। वे नदियाँ भीरु जनोंको भय देनेवाली और शूरवीरोंको उत्साहित व प्रसन्न करनेवाली थीं। उन नदियोंमें बह रहे कटेहुए हाथ सर्प जान पड़ते थे। खोपडियाँ कछुओंकी श्रेणी जान पड़नी थीं। मरेहुए हाथियोंके शरीर छोटे छोटे टापू जान पड़ते थे। घोड़ोंके रुण्डमुण्ड ग्राहसे जान पड़ते थे और कटेहुए पैर एवं भुजाएँ मानो मच्छ और मछलियाँ थीं। उन नदियोंको, नरकेशोंकी सेवार, धनुपोंकी तरंगें, अस्त्रोंके गुल्म, ढालोंके भयंकर आवर्त (चक्कर) एवं उत्तम उत्तम आभूपण व मणिगणकी कंकड़ियाँ बहुत भयानक बनारही थीं ॥२६॥२७॥२८॥ हे राजन्! सागरसदृश दुर्गम भयानक और अथाह उस जरासंधकी लाई हुई सेनाको क्षणभरमें कृष्ण-बलभद्रने विनष्ट कर डाला। यह अद्भुत कार्य उन जगदीश्वरोंके लिये एक साधारण क्रीड़ा-मात्र है ॥ २९ ॥ जो अनन्तगुणपूर्ण भगवान् अपनी लीला (माया) के द्वारा इस-विश्वकी सृष्टि, पालन और नाश करते हैं उनके लिये असाधुओंका दमन करना कुछ विचित्र बात नहीं है; तथापि उन्होने मनुष्यचरित्रका अनुकरण किया, इस कारण उनके ऐसे अलौकिक पवित्र चरित्रोंका वर्णन किया जाता है ॥ ३० ॥ जरासंधकी सब सेनाका क्षय हो गया-रथ भी टूट गया-केवल प्राण रह गये, उससमय महाबली मगधराजको बलभद्रजीने लपककर पकड़ लिया, जैसे कोई सिंह किसी गजको पकड़ले ॥ ३१ ॥ यद्यपि जरासंधने अनेक राजोंको मारडाला था उसको मार डालनाही योग्य था, तथापि वारुण और मानुप पाशोंसे बाँध-कर जब बलभद्रजीने उसको मारना चाहा तब कृष्णने उनको रोक लिया, क्योंकि

कृष्णचन्द्रको जरासंधसे अभी और काम कराना था ॥ ३२ ॥ वीरसमाजमें माननीय जरासंधको जगदीश्वरोंने छोड़ दिया और वह लज्जाके कारण तपका संकल्प करके किसी पवित्रस्थानको चला; किन्तु राहमें उसके साथी राजोंने समझा-बुझाकर, धर्मवाक्योंकी शिक्षा सुनाकर और लौकिक नीतिका वर्णन करके उसको रोक लिया। राजोंने कहा कि "आप भाग्यवश यादवोंसे अबकी हार गये हैं—इसलिये शोक या लज्जाके वश न होकर फिर प्रयत्न करिये" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ राजन्! सब सेना नष्ट हो गई और कृष्ण बलदेवने उपेक्षापूर्वक छोड़ दिया, अतएव जरासंध उदास होकर अपने मगध देशको लौट गया ॥ ३५ ॥ इधर मुकुन्दने भी शत्रुसेनासागरके पार पहुँचकर, जिनका सब भय दूर होगया है उन प्रसन्नचित्त मथुरावासियोंके साथ, पुरीमें प्रवेश किया। कृष्णने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे अपनी सेनाको देखा, उसीसमय सब सेना सजीव हो गई, किसीके शरीरमें मानो एक भी घाव नहीं लगा था। उस समय "साधु-साधु" कहकर अनुमोदन करतेहुए देवगण दोनो भाइयोंके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे। राजन्! जिससमय कृष्ण-बलभद्रने पुरीमें प्रवेश किया उससमय सूत, मागध और बन्दीजन जयगान करतेहुए आगे आगे चले। शङ्ख, दुन्दुभी, भेरी, तूर्य, वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदि अनेकानेक बाजे बजनेलगे ॥३६॥३७॥३८॥ नगरीके सब मार्गोंमें चन्दनके जलका छिड़काव हुआ था, ध्वजा और पताकाएँ शोभा बढ़ा रही थीं, स्थान स्थानपर ब्राह्मणलोग पवित्र वेदपाठ कर रहे थे, कौतुकके लिये बन्दनवार बँधेहुए थे और कृत्रिम फूलोंसे सजेहुए फाटक बहुत ही मनोहर जान पड़ते थे ॥ ३९ ॥ पुरप्रवेशके समय सब पुरनारियाँ प्रभुके ऊपर माला, दही मिले अक्षत, दूबके अङ्कुर और फूल फेंकती हुई प्रीतिप्रफुल्ल नयनकमलोंसे स्नेहपूर्वक उनको दीहारनेलगीं ॥ ४० ॥ रणभूमिमें जो शत्रुओंकी अनन्त सम्पत्ति और आभूषण मिले सो सब लाकर कृष्णचन्द्रने उग्रसेनजीके आगे रख दिया ॥ ४१ ॥ राजन्! हारनेपर भी मगधराजका उत्साह नहीं नष्ट हुआ। इसीप्रकार उसने तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना संग्रह कर, सत्रह बार, कृष्ण-बलदेव जिनके रक्षक हैं उन यादवोंसे युद्ध किया ॥ ४२ ॥ किन्तु कृष्णभगवान्के तेजसे यादवोंसे हरबार उसकी सब सेनाको संहारके उसको पहलेकी भाँति बारंबार छोड़ छोड़ दिया ॥ ४३ ॥ जरासंध अठारहवीं बार यादवोंपर आक्रमण करनही वाला था, इसी बीचमें नारदकी प्रेरणासे युद्ध करनेके लिये आया हुआ कालयवन युद्धभूमिमें देख पड़ा। उसने पृथ्वीमण्डलपर फिरकर कहीं अपनी समताका बली योद्धा नही पाया। इससमय नारदके मुखसे यादवोंको समकक्ष सुनकर तीन करोड़ यवनोंसे उसने मथुराको घेर लिया ॥४४॥४५॥ उसको देखकर बलभद्र जिनके सहायक हैं उन कृष्णचन्द्रने विचार किया कि—"अहो! दोनो ओरसे

यादवोंके लिये महा विपत्ति उपस्थित है। इससमय इस महावली यवनने आकर हमको घेर लिया है; उधर जरासंध भी कल या परसों आकर पहुँच जायगा ॥४६॥ ॥ ४७ ॥ कालयवनसे युद्ध करतेसमय यदि बली जरासंध आजायगा तो हमारे बन्धुओंको मार डालेगा अथवा पकड़कर अपने पुरको ले जायगा। इससे हम ऐसे दुर्गकी रचना करावेंगे, जहाँ कोई मनुष्य कठिनतासे नहीं जा सकेगा; उसी दुर्गमें स्वजनोंको रखकर यवनका विनाश (मुचुकुन्दद्वारा) करावेंगे" ॥४८॥४९॥ इस-प्रकार विचार करके भगवान्‌ने विश्वकर्मासे समुद्रके भीतर बारह योजनका संपूर्ण विचित्र (द्वारका) नगर एक ही रातमें बनवाया ॥ ५० ॥ उस नगरमें विश्वकर्मा-का विज्ञान और शिल्पनिपुणता (कारीगरी) झलकती थी। उसमें वास्तुगृह बनानेके लिये स्थान छोड़कर राजमार्ग, छोटी छोटी गलियाँ और आँगन (सहन) बनेहुये हैं ॥ ५१ ॥ देवलोकके वृक्ष और लताओंसे सुशोभित बड़े बड़े उद्यान और विचित्र उपवन उस नगरकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। आकाशको जारहे ऊँचे ऊँचे महलोंके सुवर्णमण्डित शिखर और स्फटिकमणिसे परिपूर्ण अटारियाँ और गोपुर देखनेही योग्य हैं ॥ ५२ ॥ हेमकलशोंसे अलंकृत, चाँदी–पीतल–लोहा आदि धातुओंसे संकलित अश्वशालाएँ और अन्नशालाएँ जहाँतहाँ बनी हुई हैं। सुवर्णमण्डित अनेक भवन बनेहुए हैं, उन भवनोंके शिखर रत्नमय हैं और पृथ्वी (फर्श) मरकत मणिकी बनी हुई है ॥ ५३ ॥ वास्तुभवन और वलभियाँ उन भवनोंकी शोभा बढ़ा रही हैं। चारो वर्णके लोग वहाँ रहते हैं। नगरके बीचमें कृष्णचन्द्रके और उनके परिवारके महल बनेहुए हैं ॥ ५४ ॥ राजन्! इन्द्रने हरिके पास कल्पवृक्ष और अपनी सुधर्मा सभा भेज दी। उस सभामें बैठनेवाले पुरुषोंको भूख–प्यास–शोक–मोह–वृद्धता आदि मनुष्यधर्म नहीं पीड़ा पहुँचाते ॥ ५५ ॥ वरुणने मनके समान वेगवाले श्वेतवर्ण घोड़े भेजे, जिनका एक एक कान श्यामवर्ण था। निधि-पति कुवेरने आठो निधियाँ एवं और और लोकपालोंने अपनी अपनी विभूतियाँ ईश्वरके नगरमें भेज दीं। राजन्! भगवान्‌ने अपना अपना अधिकार साधनके लिये अन्यान्य सिद्धजनोंको जो जो सिद्धियाँ दी थीं, उन्होने, पृथ्वीमें अवतीर्ण उन्ही भगवान्‌को वे वे सिद्धियाँ कुछ कालके लिये लौटा दीं। भगवान् हरि श्रीकृष्णने अपने योगवलसे आत्मीय जनोंको उसी द्वारका नगरमें पहुँच दिया और कालयवन या उसके सैनिक कोई भी नहीं जानसके ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ॥
निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥

कृष्णचन्द्रजी सबको द्वारकामें भेजकर और बलभद्रसे कहा कि 'तुम यहीं रहकर प्रजाकी रक्षा करो–मैं यवनको मारकर अभी आता हूँ' यह कह कर मथुरापुरीसें

लौट आये। तदनन्तर केवल कमलकी माला पहने कमलनयन कृष्णचन्द्र पुरके द्वारसे बाहर निकले। उससमय भगवान्‌के पास कोई शस्त्र नहीं था ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तम अध्याय

मुचुकुन्दकी दृष्टिसे कालयवनका विनाश

श्रीशुक उवाच—तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! जैसे पूर्व दिशामें पूर्ण चन्द्र प्रकट हो वैसे कृष्णचन्द्र पुरद्वारसे बाहर निकलकर शोभायमान हुए। परम सुन्दर हरिके श्यामशरीरपर पीतपट और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स एवं गलेमें दीप्तिशाली कौस्तुभमणि शोभायमान था। उनकी चारो भुजाएँ विशाल और स्थूल एवं आँखें नवीन रक्तकमलके समान थीं। उनका सदैव शान्त मुखमण्डल आनन्दसे परिपूर्ण था। उनके सुन्दर कपोल महामनोहर रूपसे सुशोभित थे। मन्द मुसकानसे मुखारविन्दकी अपूर्व शोभा थी और उस शोभाको हिलरहे मकराकृत कुण्डल और भी बढ़ाते थे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान्‌को देखकर यवनने विचारा कि "नारदने जो चिन्ह बताये थे वे सब इसमें देख पड़ते हैं। इसके हृदयमें श्रीवत्सका चिन्ह है, चार भुजा हैं, कमलके समान विशाल नेत्र हैं, गलेमें वनमाला पड़ी है, रूप अत्यन्त सुन्दर है। अतएव अवश्य यही वासुदेव कृष्ण है, और कोई नहीं है। इससमय यह पैदल है और इसके पास कोई शस्त्र नहीं है, इसकारण मैं भी विना कोई शस्त्र लिये पैदल ही इससे युद्ध करूँगा" ॥ ४ ॥ ५ ॥ यह निश्चय करके यवनने पीछेसे दौड़कर, योगीजन भी जिनको नहीं पकड़ पाते उन कृष्णको पकड़ना चाहा। यवनराज, अब पकड़ लिया, अब पकड़ लिया, ऐसा समझकर बार बार हाथ लपकाता हुआ बहुत दूर कृष्णके पीछे चला गया। कृष्णचन्द्र उसको यों दौड़ाते हुए एक पर्वतकी कन्दरामें घुस गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ जिसका अशुभ नष्ट नहीं हुआ वह कालयवन "हे कृष्ण! तू यदुवंशमें उत्पन्न हुआ है, तुझे भागना उचित नहीं है" यों आक्षेप करताहुआ कृष्णके पीछे गया; किन्तु कृष्णको नहीं पासका ॥ ८ ॥ इसप्रकार कालयवनने वारंवार क्रोध उपजानेवाले आक्षेपपूर्ण वाक्य कहे, किन्तु कृष्णचन्द्र नहीं ठहरे और पर्वतकी कन्दरामें घुस गये। कृष्णके पीछे कालयवन भी कन्दरामें घुसा। उसने कन्दरामें जाकर देखा तो एक पुरुष सो रहा है। वह पुरुष कोई और था, कृष्णचन्द्र नहीं थे, किन्तु कालयवनने यह समझा कि यह कृष्ण ही

मुझको इतनी दूर यहाँ लाकर जैसे कुछ जानता ही नहीं, इसप्रकार ढोंग साधकर प्राण बचानेके लिये सो रहा है। अतएव उसने उस सोरहे पुरुषको कसकर एक लात मारी ॥९॥१०॥ बहुत कालसे सो रहा वह पुरुष लातके प्रहारसे उठ बैठा। उसने धीरे धीरे नेत्र खोलकर चारो ओर देखा। पास ही खड़ेहुए कालयवनपर जब उसकी दृष्टि पड़ी उसी क्षणभरमें अपने ही शरीरसे उत्पन्न अग्निमें यवनराज भस्म होगया ॥११॥१२॥ राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! जिसकी दृष्टि पड़तेही यवनराज भस्म हो गया वह पुरुष कौन था? किसका पुत्र था? उसमें तेज और पराक्रम कितना था? उस कन्दरामें जाकर क्यों सोया था? ॥१३॥ शुकदेवजीने कहा—महाराज! वह इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न महाराज मान्धाताके पुत्र महाब्रह्मण्य और सत्यवादी राजा मुचुकुन्द थे ॥ १४ ॥ एक समय प्रबल असुरोंने देवतोंको हरा दिया, तब असुरोंसे डरेहुए इन्द्र आदि देवतोंने अपनी रक्षा करनेकेलिये राजा मुचुकुन्दसे आकर प्रार्थना की। राजाने जाकर बहुत कालतक स्वर्गलोककी और इन्द्र आदि देवतोंकी रक्षा की ॥ १५ ॥ तदनन्तर शिवके पुत्र कार्तिकेयको अपना रक्षक पाकर सब देवतोंने राजा मुचुकुन्दसे कहा कि—"राजन्! अब आप हमारी रक्षाके कष्टसे निवृत्त होइये। हे वीर! आप मनुष्यलोक और निष्कण्टक राज्य छोड़कर हमारी रक्षामें प्रवृत्त हुए एवं सब प्रकारके सांसारिक भोगोंसे वंचित रहे ॥ १६ ॥ १७ ॥ आपके पुत्र, रानियाँ, जातिवाले, अमात्य, मन्त्री एवं समकालीन प्रजागण इससमय पृथ्वीपर नहीं हैं, उनको कालने नष्ट कर दिया ॥१८॥ महाराज! काल बड़ा बली है, उसीको भगवान्, ईश्वर और अव्यय कहते हैं। क्रीड़ा करतेहुए पशुपाल जैसे पशुओंका संचालन करता है वैसे ही वह काल प्रजागणका संचालन करता है ॥ १९ ॥ महाराज! आपका कल्याण हो, मुक्तिको छोड़कर और जो कुछ आपकी अभिलाषा हो सो निःसंकोच होकर हमसे माँगो। मोक्ष देनेकी शक्ति केवल भगवान् अव्यय नारायणमें ही है" ॥२०॥ राजाने जब देवतोंसे निद्रा माँगी तब देवतोंने कहा कि "जाओ तुम जाकर शयन करो, तुमको सोतेमें जो कोई जाकर जगावेगा वह तुम्हारी दृष्टि पड़तही उसी क्षण भस्म हो जायगा" ॥२१॥ इसप्रकार देवतोंके कहनेपर महायशस्वी मुचुकुन्द उनको प्रणाम कर कन्दरामें देवदत्त निद्रासे अचेत होकर सोगये ॥२२॥ राजन्! इसप्रकार मुचुकुन्दकी दृष्टिसे जब कालयवन भस्म होगया, तब यादवश्रेष्ठ बुद्धिमान् भगवान् मुचुकुन्दके सामने आये ॥२३॥ मुचुकुन्दने देखा कि भगवान्‌का शरीर जल भरे मेघके समान श्यामवर्ण है, उस शरीरपर रेशमी पीतपट शोभायमान है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स और कण्ठमें दीप्तिशाली कौस्तुभमणि शोभाको बढ़ा रहा है ॥ २४ ॥ चतुर्भुज भगवान् वैजयन्ती मालासे सुशोभित हैं। प्रसन्न मुख महामनोहर है और कानोंमें मकरा-

लदायेहुए द्वारकापुरीको जानेके लिये उद्यत थे, इसी अवसरपर तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लिये जरासन्ध फिर आ पहुँचा। भगवान् कृष्ण और बलभद्रजी दोनो भाई बड़े वेगसे आरही शत्रुसेनाको देख मनुष्योंके समान (जैसे कोई डरकर प्राण बचानेके लिये भागे उसप्रकार) वहाँसे भागे। यद्यपि भगवान् निर्भय हैं, तथापि जैसे कोई बहुत ही डर गया हो वैसे बहुतसा धन छोड़कर पद्मपल्लव-तुल्य कोमल चरणारविन्दोंसे कई योजनतक भागते चलेगये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ महाबली मगधराज ईश्वरकी शक्तिको नही जानता था, अतएव उनको भागतेदेख, रथपर चढ़, सेनाको साथ ले, उनको पकड़नेके लिये पीछे चला ॥ ९ ॥ बहुत दूर दौड़नेके कारण विश्राम करनेके लिये दोनो भाई बहुत ऊँचे प्रवर्षण नाम पर्वतपर चढ़ गये। उस पर्वतपर भगवान् इन्द्र नित्य वर्षा करते हैं—इसीसे उसका नाम प्रवर्षण है ॥ १० ॥ जरासंधने बहुत देरतक उनके उतरनेकी अपेक्षा की। जब वे नहीं उतरे तो उनको पर्वतमें छिपाहुआ जानकर बहुत ढूँढा, परन्तु पता न लगा। उससमय जरासंधने पर्वतके चारो ओर लकड़ियाँ चुनवाकर उनमें आग लगा दी ॥ ११ ॥ जब उसपर उस अग्निसे वृक्ष जलनेलगे तब कृष्ण बलभद्र दोनो भाई ग्यारह योजन ऊँचे पर्वतसे नीचे पृथ्वीपर फाँद पड़े ॥ १२ ॥ अपने अनुचरोंसहित जरासंधने शत्रुको नहीं देख पाया और कृष्ण व बलदेव इसप्रकार अपनी द्वारकापुरीमें पहुँच गये; वह द्वारकापुरी समुद्रके भीतर थी—पुरीको चारो ओरसे खाईकी भाँति समुद्र घेरा हुआ था ॥ १३ ॥ जरासंधने समझा कि कृष्ण बलदेव दोनो भाई जल गये, [किन्तु यह मिथ्या था] अतएव वह सब सेना साथ लेकर प्रसन्नचित्त हो अपने राज्य मगधदेशको लौट गया ॥ १४ ॥ महाराज! "आनर्त देशके राजा श्रीमान् रैवतने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपनी कन्या रेवतीका विवाह बलभद्रके साथ कर दिया" यह हम तुमसे पहलेही कह चुके हैं। अब कृष्णचन्द्रके विवाहोंकी कथा सुनो। हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान् गोविन्दने भी विदर्भनरेश भीष्मककी कन्या लक्ष्मीका अंशावतार श्रीरुक्मिणीजीसे विवाह किया। जैसे गरुड़जी देवतोंको हटाकर सुधा ले आये थे वैसेही स्वयंवरमें सब लोगोंके आगे भगवान् भी शिशुपालके पक्षमें आयेहुए शाल्व आदि राजोंका दर्प चूर्ण कर रुक्मिणीको हर लाये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीसे पूछा कि—ब्रह्मन्! भगवान्‌ने राक्षस-विधिके अनुसार भीष्मककी कन्या चारुवदना रुक्मिणीसे विवाह किया, यह मैंने सुना। अब महातेजस्वी कृष्णचन्द्र जिसप्रकार शाल्व, जरासंध आदि राजोंके शिरपर पैर धरकर रुक्मिणीको हर लेगये, सो सब कथा विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवन्! कृष्णचन्द्रकी कथाएँ पवित्र हैं। उनको सुननेसे पुण्य होता है। मधुर होनेके कारण वे कानोंको भली लगती हैं। उनको बारंबार

सुनिये, चाहे जब सुनिये, वे नित्य नई जान पड़ेंगी। भला उन कथाओंके सुननेमें कौन ऊबेगा? कौन तृप्त हो जायगा? ॥ २० ॥ **शुकदेवजी कहते हैं—**राजन्! महाबली और महातेजस्वी भीष्मक नाम विदर्भ देशका नरेश था। उसके पाँच पुत्र और एक सुमुखी कन्या थी ॥ २१ ॥ रुक्मी सब पुत्रोंमें बड़ा था और रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश व रुक्ममाली उसके छोटे भाई थे, और सुशीला रुक्मिणी इनकी छोटी बहन थी ॥ २२ ॥ रुक्मिणीने घरमें आनेवाले लोगोंके मुखसे कृष्णचन्द्रके रूप, वीर्य, गुण और शोभा व सम्पत्तिकी प्रशंसा सुनकर मनमें निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्ण ही मेरे योग्य पति हैं ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णने भी बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील एवं गुणोंकी खानि रुक्मिणीको अपने योग्य जानकर उनसे विवाह करनेका दृढ़ विचार कर लिया ॥ २४ ॥ राजन्! रुक्मिणीके पिता, माता और बन्धुओंकी भी यही इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह कृष्णसे हो। वे कृष्णके साथ रुक्मिणीका विवाह निश्चित करना चाहते थे, किन्तु कृष्णसे द्रोह करनेवाले रुक्मीने नहीं माना और इस विचारको पलटकर शिशुपालके साथ रुक्मिणीका विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की, एवं रुक्मिणीके साथ शिशुपालका सम्बन्ध निश्चित भी कर लिया ॥ २५ ॥ मृगनयनी विदर्भराजकुमारी रुक्मिणी यह समाचार पाकर बहुत ही दुःखित और उदास हुईं एवं कुछ देर सोचकर उन्होने किसी पूर्णतया विश्वस्त वृद्ध ब्राह्मणको पत्री देकर शीघ्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास भेजा ॥ २६ ॥ वह ब्राह्मण महाशय द्वारकापुरीमें पहुँचकर कृष्णचन्द्रके द्वारपर उपस्थित हुए। द्वारपाल उनको भीतर लेगया। भीतर जाकर विप्रदेवने देखा कि भगवान् आदिपुरुष सुवर्णके सिंहासनपर बैठेहुए हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मण्यदेव कृष्णचन्द्रने जैसे ही उन ब्राह्मण महोदयको देखा वैसे ही सिंहासनसे उतरकर अपने हाथसे उनको आसन दिया और आदरपूर्वक बैठाया, एवं देवता लोग जैसे उनकी पूजा करते हैं वैसे ही उन्होंने विप्रदेवका पूजन किया ॥ २८ ॥ तदनन्तर विप्रदेवने भोजन करके थोड़ी देरतक विश्राम किया। थोड़ी देरबाद सज्जनोंकी एकमात्र गति श्रीकृष्णजी ब्राह्मणके पास आये। भगवान् कृष्णचन्द्रने अपने सुकुमार करकमलोंसे ब्राह्मणके पैर दबाते दबाते धीर भावसे कहा कि "हे द्विजश्रेष्ठ! आपका मन सदा सन्तुष्ट रहता है? और वृद्धसम्मत सदाचार एवं धर्मका निर्वाह भी आप यथारीति करते रहते हैं? ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैं आपसे सबसे पहले ये ही प्रश्न इसलिये करता हूँ कि, यदि ब्राह्मण सब प्रकार सन्तुष्ट रहकर अपने धर्मसे भ्रष्ट न हो—अर्थात् अपने धर्मको न छोड़े और इसीप्रकार सनातन धर्मको पालन करतेहुए अपने जीवनको विता सके तो वह धर्म ही उसकी सब कामनाओंको पूर्ण करता है ॥ ३१ ॥ जो कोई वारंवार अभिलषित पदार्थ पाकर भी असन्तुष्ट रहता है वह

इन्द्रपदवी भी पाकर सुखको या शान्तिको नहीं पासकता, क्योंकि उसके मनमें सन्तोषकी शीतल छाया नहीं है। और जो लोग सन्तुष्ट हैं वे अकिञ्चन होनेपर भी सुखसे अपने जीवनको विताते हैं। जो लोग स्वलाभ (आत्माके लाभ या स्वतः प्राप्त भोगों) में सन्तुष्ट रहते हैं, साधु (परोपकारी) हैं, सब प्राणियोंके परम बन्धु हैं, अहंकारशून्य और शान्त हैं—उन सब ब्राह्मणोंको शिर झुकाकर मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ब्रह्मन्! आप सब कुशलपूर्वक अपने राजाके राज्यमें वास करते हैं? जिस राजाके राज्यमें सब प्रजाका भलीभाँति पालन होता है और प्रजागण सुखपूर्वक रहते हैं वही राजा मुझको प्रिय है ॥३४॥ आप जिस कार्यके लिये जहाँसे समुद्रके पार इस दुर्गमें आये हैं सो यदि छिपाने योग्य न हो तो मुझसे कहिये। मैं आपका क्या कार्य सम्पन्न करूँ?" ॥ ३५ ॥ लीला करनेके लिये मायामानवशरीरधारी परमेश्वरने जब इसप्रकार प्रश्न किया तब विप्रदेवने, जिसलिये वह इतनी दूर आये थे, सो सब कह सुनाया। रुक्मिणीने एकान्तमें बैठकर जो पत्रिका कृष्णचन्द्रको देनेके लिये लिखी थी, ब्राह्मणने लिफाफेसे निकालकर, वह प्रेमका चिन्ह कृष्णचन्द्रको दिखाय, एवं श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार आपही वह पत्रिका पढ़नेलगे ॥ ३६ ॥ **श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं** कि—हे अच्युत! हे त्रिभुवनसुन्दर! जो कानोंके द्वारा हृदयमें प्रवेश करके सुननेवालोंके अङ्गतापको शान्त करते हैं वे आपके सब गुण, और जो नेत्र रखनेवाले लोगोंकी दृष्टिका परम मुख्य लाभ वा फल है उस आपके रूपकी प्रशंसा सुनकर मेरा चित्त आपपर ऐसा आसक्त होगया है कि लोकलज्जाका बन्धन भी उसको नहीं रोक सकता ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द! कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, द्रव्य-सम्पत्ति और प्रभावमें आपही अपने तुल्य हैं। हे नर-श्रेष्ठ! आप मनुष्योंके मनको रमानेवाले हैं। हे पुरुषसिंह! विवाह-समय उपस्थित होनेपर कौन कुलवती, गुणवती और बुद्धिमती कामिनी आपको अपना पति बनानेके लिये अभिलाषा न करेगी? ॥ ३८ ॥ विभो! इसी कारण मैंने आपको अपना पति मनसे मान लिया है एवं आपके हाथमें आत्मसमर्पण कर दिया है। अतएव आप यहाँ आकर अवश्य मुझको अपनी धर्मपत्नी बनाइये। हे कमल-नयन! सियार कहीं सिंहके भागको हर ले जासकता है? सो मैं भी चाहती हूँ कि शिशुपाल शीघ्र आकर, वीरवर जो आप हैं उनके भागको अर्थात् मुझको, लेजाना कैसा, हाथ भी न लगा सके ॥ ३९ ॥ यदि पूर्त (कुँआ आदि खुदवाना), इष्ट (अग्निहोत्रादि), दान, नियम, व्रत एवं देवता, ब्राह्मण और गुरुओंके पूजन आदिके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी मैंने कुछ आराधना की है तो कृष्ण भगवान् आकर मेरा पाणिग्रहण करें और दमघोषनन्दन (शिशुपाल) आदि अन्य राजालोग मेरे हाथको हाथ न लगा सकें ॥ ४० ॥ हे अजित! परसों विवाहका दिन है, अतएव आप पहले ही गुप्तभावसे आजाइये। फिर पीछेसे आयेहुए

यादवसेनापतियोंको साथ ले शिशुपाल और जरासंधकी सेनाको नष्ट भ्रष्ट करते हुए, बलपूर्वक, वीर्यरूप मूल्य देकर, राक्षसी विधिके अनुसार, मुझसे विवाह करिये यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४१ ॥ यदि आप कहिये कि तुम तो अन्तःपुरमें रहती हो, तुम्हारे बन्धुओं (रुक्मी आदि) की हत्या विना किये मैं कैसे तुम्हारे साथ विवाह कर सकता हूँ या तुमको हर लेजासकता हूँ ? तो मैं आपको उसका एक उपाय बताती हूँ। हमारे कुलमें एक रीति सनातनसे चली आती है कि, विवाहके पहले दिन कन्या कुलदेवी भवानीकी पूजा करनेके लिये बाहर मन्दिरमें जाती है ॥ ४२ ॥ हे कमललोचन! उमापति शम्भुके समान महान् लोग, अपने अन्तः-करणका अज्ञान मेटनेके लिये जिस आपके चरणरजसे स्नान करनेकी प्रार्थना करते रहते हैं, मै यदि उसी प्रसादको नहीं पासकी, तो निश्चय है कि विवाह ही नहीं करूँगी और व्रतके द्वारा शरीरको दुर्बल बनाकर प्राणत्याग कर दूँगी। सौ जन्मोंमें तो आपका प्रसाद प्राप्त होगा" ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच—इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः ॥
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणने कहा—हे यदुदेव! यह रुक्मिणीका गुप्त संदेश मैं आपके पास लाया हूँ; इस विषयमें जो करना चाहिये उसपर विचार कीजिये और शीघ्र ही उसे कार्यरूपमें परिणत कीजिये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय

रुक्मिणी-हरण

श्रीशुक उवाच—वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ॥
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! रुक्मिणीका संदेश सुनकर यदुनन्दन कृष्ण-चन्द्र, प्रेमपूर्वक ब्राह्मणका हाथ अपने हाथमें लेकर मन्द मन्द मुसकातेहुए यों कहने-लगे ॥१॥ श्रीभगवान्ने कहा—"भगवन्! जैसे रुक्मिणीका चित्त मुझमें आसक्त है वैसेही मेरा भी मन उनमें लगा हुआ है। मुझे तो रातको नींद नहीं आती। यह भी मुझे विदित है कि रुक्मीने द्वेषभावसे मेरे विवाहको रोक दिया है और शिशुपालको बुलाया है ॥२॥ किन्तु मैंने भी निश्चयकर लिया है कि युद्धमें अधम क्षत्रियोंकी सेनाको मथकर उसके बीचसे, काष्ठके भीतरसे अग्नि-शिखाके समान, उस

अपनेको एकान्तभावसे भजनेवाली अनिन्दिताङ्गी राजकुमारीको ले आऊँगा" ॥३॥ हे भरतनन्दन! परसों रात्रिको रुक्मिणीका विवाह होगा, यह जानकर मधुसूदनने सारथीसे कहा कि हे दारुक! शीघ्र रथको जोतो ॥ ४ ॥ दारुक भी उसी क्षण शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम चार घोड़े जोतकर रथ ले आया और हाथ जोड़कर आगे खड़ा होगया ॥ ५ ॥ पहले कृष्णचन्द्र रथपर चढ़े और फिर ब्राह्मणको चढ़ा लिया, एवं द्रुतगामी घोड़ोंकी गतिके अनुसार एकही रात्रिमें आनर्त देशसे विदर्भदेशमें पहुँच गये ॥ ६ ॥ इधर कुण्डिन देशके राजा भीष्मक, पुत्र-स्नेहके वशवर्ती होकर शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये उद्यत हो, विवाहके पहले जो कर्म किये जाते हैं उन्हे करानेलगे ॥ ७ ॥ नगरमें राजपथ, क्षुद्रपथ और चत्वर इत्यादि स्थान झाड़े बहारे गये और उनमें छिड़काव किया गया। अनेक रङ्गकी ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगर भलीभाँति सुसज्जित किया गया ॥ ८ ॥ नगरवासी नर और नारियोंने सुन्दर निर्मल वस्त्र पहने, चन्दन लगाया, मालाएँ पहनीं, और आभूषणोंसे आभूषित होकर परम शोभायमान हुए। श्रीसम्पन्न सब भवन, अगुरु और धूपके धूमसे सुवासित कियेगये ॥ ९ ॥ राजन्! राजा भीष्मकने यथाविधि पितृगण और देवगणका पूजन किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया एवं उन ब्राह्मणोंके मुखसे नियमानुसार मङ्गलपाठ कराया ॥ १० ॥ सुन्दर दाँतोंवाली कन्या रुक्मिणीने भलीभाँति स्नान किया, तब उनके विवाह-सम्बन्धी सब मङ्गलकृत्य कियेगये। फिर रुक्मिणीजीको नवीन अमूल्य विमल वस्त्र और महामूल्य उत्तम अलंकार पहनायेगये॥११॥ सब श्रेष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने ऋक्, यजुः और सामवेदकी ऋचाएँ पढ़कर कन्याके रक्षाबन्धन किया। फिर अथर्ववेदके ज्ञाता पुरोहितने ग्रहशान्तिके लिये हवन किया ॥ १२ ॥ विधि जाननेवालोंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने उससमय सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, तिल, गुड़ और बहुत सी गौवें ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥ इसीप्रकार चेदिदेशके नरेश दमघोषने भी मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा पुत्रके अभ्युदयके लिये सब समयोचित कृत्य कराये ॥ १४ ॥ तदनन्तर मद जिनके बह रहा है उन हाथियोंके झुण्ड, स्वर्णमालामण्डित रथोंके दल एवं पैदल व अश्वसमूहसे सुशोभित सेनाको साथ लिये शिशुपालका पिता दमघोष कुण्डिन-पुरमें आ पहुँचा ॥ १५ ॥ विदर्भ देशके राजा भीष्मकने आनन्दपूर्वक अगवानी करके सबको, पहलेहीसे ठीक कियेहुए एक घरमें जनवासा देकर ठहराया और पूजन किया। दमघोषके साथ शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौण्ड्रक (मिथ्यावासुदेव) आदि अन्यान्य हजारों शिशुपालके मित्र एवं कृष्ण-बलभद्रसे द्वेष रखनेवाले राजा लोग, यह निश्चय करके कि "कृष्णचन्द्र यदि बलराम आदि यादवोंको साथ लेकर आवें और रुक्मिणीको हर ले जाना चाहें तो हम लोग मिलकर उनसे युद्ध करेंगे" वाहनोंसहित सब सेना लेकर वहाँ आये ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलभद्रजी इसप्रकार शत्रुपक्षके राजोंका उद्यम (तैयारी) और श्रीकृष्णजी अकेले ही रुक्मिणीको हरनेकेलिये गये हैं, यह जानकर, कलहकी शङ्कासे, भाईके स्नेहवश, गज, अश्व, रथ और पैदलोंसे परिपूर्ण बहुतसी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर शीघ्रताके साथ कुण्डिनपुरको गये ॥२०॥२१॥ इधर सर्वाङ्गसुन्दरी भीष्मककन्या रुक्मिणीजी हरिके आनेके लिये बहुत ही उत्सुक हुईं। सूर्योदय होनेपर था, परन्तु तबतक ब्राह्मण लौटकर नहीं आये, यह देखकर रुक्मिणीजी इसप्रकार चिन्ता करने लगीं कि "अहो! रात तो बीत गई, सबेरे मुझ मन्दभागिनीके विवाहका दिन है; किन्तु कमललोचन कृष्ण अभीतक नहीं आये, इसका कुछ कारण मुझको नहीं जान पड़ता। मेरा संदेश ले जानेवाला ब्राह्मण भी अबतक नहीं फिरा। अनिन्दितात्मा कृष्णचन्द्रने क्या मुझसें कोई निन्दनीय बात देखी या सुनी है? इसीलिये क्या मेरे पाणिग्रहणका उद्योग करके नहीं आते? अथवा भगवान् विधाता और महेश्वर मुझ अभागिनीके प्रतिकूल हैं? गिरितनया सती रुद्राणी गौरी देवी भी क्या मेरे अनुकूल नहीं हैं?" गोविन्दने जिनके चित्तको हर लिया है वह समयको जाननेवाली बाला रुक्मिणीजी, आँसू जिनमें भरे हैं उन नेत्रोंको मूँदकर सङ्कटमोचन हरिका ध्यान करनेलगीं। राजन्! इसप्रकार नववधू होनेवाली रुक्मिणीजी गोविन्दके आनेकी प्रतीक्षा कर ही रही थीं कि उनकी बाईं ऊरू, भुजा और नेत्र आदि अङ्ग भावी प्रिय की सूचना देतेहुए फड़क उठे। तदनन्तर कृष्णके पास भेजेहुए वही ब्राह्मण महाशय कृष्णकी अनुमतिसे रुक्मिणीके पास अन्तःपुरसें आये। अन्तःपुरसें आकर उन्होने राजकुमारी रुक्मिणीसे साक्षात् किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ सती, लक्षणोंको जाननेवाली राजकुमारीने उनका प्रफुल्लित मुख और देहका आकार अव्यग्र देखकर जान लिया कि कार्य सिद्ध होगया। तब मन्द मुसकातीहुई रुक्मिणीने विप्रदेवसे पूछा कि कहिये, क्या समाचार है? विप्रदेवने रुक्मिणीसे कहा कि कृष्णचन्द्र मेरे साथ कुण्डिनपुरसें आगये हैं, और उन्होने तुमको हर ले जानेके लिये प्रण भी किया है। कृष्णचन्द्र आगये हैं, यह समाचार पाकर रुक्मिणीजीको अपार आनन्द हुआ; उन्होने उस समय इस उपकारके बदलेमें देनेयोग्य कोई वस्तु न देखकर केवल प्रणामसे विप्रदेवको प्रसन्न किया, और प्रणामके उपरान्त बहुतसा धन भी उनको दिया। विदर्भराज भीष्मकने जब सुना कि हमारी कन्याके विवाहका उत्सव देखनेके लिये कृष्ण और बलदेव आये हैं तब उनको बहुत ही आनन्द हुआ। वह पूजाकी सामग्री लेकर उनकी अभ्यर्थना करनेके लिये चले; आगे आगे नगाड़े और ढोल बजते जाते थे। आगेसे जाकर भीष्मकने कृष्ण बलदेवकी अगवानी ली एवं मधुपर्क, निर्मल वस्त्र और प्रार्थनीय सामग्री आदि देकर सत्कारपूर्वक उनका

पूजन किया। महामति राजाने, सैन्य व अनुचरगणसहित आयेहुए उन दोनो यदुवीरोंके रहनेकेलिये एक स्थान दिया और भलीभाँति यथाविधि उनका आतिथ्य सत्कार (पहुनाई) किया। राजाने इसप्रकार अपने यहाँ विवाहके निमन्त्रणमें आये सब राजोंका, उनके बल, वित्त, अवस्था, वीर्य आदिके अनुसार, सब प्रकार चितचाही, मुहमाँगी वस्तुएँ देकर, सत्कार और पूजन किया। कृष्णचन्द्र आये हैं, यह सुनकर विदर्भपुरमें रहनेवाले लोग उनके निकट आये और नेत्ररूप अञ्जलियोंसे उनके मुखकमलकी सुधाको पीनेलगे। सब लोग कहनेलगे कि रुक्मिणी इन्हीकी स्त्री होने योग्य है, उसके योग्य अनिन्दितात्मा कृष्णचन्द्रही एक वर है, हमारी समझमें और कामिनी इनकी स्त्री होने योग्य नहीं है। हमने यदि कुछ भी सुकृत किया हो तो त्रिलोकके विधाता अच्युत भगवान् ऐसा कुछ करें कि यही मनमोहन कृष्ण रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इधर प्रेमके आँसू बहातेहुए पुरवासी लोग सर्वत्र इसप्रकार कह रहे थे, उधर इसी अवसरमें सैनिकोंके बीचमें घिरीहुई कन्या रुक्मिणीजी सुरक्षित होकर पैदलही अन्तःपुरसे भवानीके पादपद्म देखनेके लिये मन्दिरको चलीं। उससमय रुक्मिणीजी मौनव्रत धारण किये सखीगण और माता आदि बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंके साथ मनसें भलीभाँति मुकुन्द भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करतीहुई जा रही थीं। चारो ओरसे कवचधारी, खुलेहुए शस्त्र हाथमें लिये बड़े बड़े वीर राजभट घेरेहुए उनकी रक्षा कर रहे थे। रुक्मिणीजी जब अम्बिकाके मन्दिरको चलीं तब मृदङ्ग, शङ्ख, पणव, तूर्य, भेरी आदि माङ्गलिक बाजे बजनेलगे। हजारों वारवधू अनेक प्रकारके उपहार और भेंटें लिये और भलीभाँति विभूषित ब्राह्मणियाँ हाथोंमें माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण आदि लिये राजपुत्रीके साथ चलीं। गानेवाले और बाजे बजानेवाले लोग गाते बजातेहुए एवं सूत, मागध, बन्दीजन प्रशंसा करतेहुए नववधूको चारो ओरसे घेरकर चले। देवीभवनमें पहुँचकर राजपुत्रीने अपने हाथ और पैर धोये एवं आचमन करके पवित्र होकर शान्त भावसे मन्दिरमें प्रवेशकर अम्बिकाके निकट गई। विधिको जाननेवाली वृद्धा ब्राह्मणियोंने रुक्मिणीसे शिवसहित शिवकी धर्मपत्नी भवानीको प्रणाम कराया। रुक्मिणीने अम्बिकाको प्रणाम करके कहा कि—"हे अम्बिकादेवी! अपने सन्तान गणेशादिसे युक्त जो कल्याणकारिणी आप हैं उनको मैं प्रणाम करती हूँ। श्रीकृष्ण भगवान् मेरे पति हों—इस मेरी कामनाका आप अनुमोदन करिये"। कुमारीने जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, आभूषण और दीपक आदि पूजाकी सामग्रियोंसे शिव-शिवाका पूजन किया। सधवा ब्राह्मणियोंने भी उक्त सामग्रीसे एवं, नमकीन पुए, मीठे पुए, पान, कण्ठसूत्र, फल, ईख आदिसे देवी और महादेवका

पूजन किया। तदनन्तर उन वृद्धा स्त्रियोंने देवीका चढ़ाहुआ प्रसाद देकर रुक्मिणीजीको अमोघ आशीर्वाद दिये। रुक्मिणीने देवीजीको और उन स्त्रियोंको प्रणाम किया। इसप्रकार प्रसाद व आशीर्वाद लेकर रुक्मिणीजीने मौन–व्रतको त्याग किया और रत्नजटित अँगूठीसे सुशोभित हाथसे दासीका हाथ पकड़कर अम्बिकाके भवनसे बाहर निकलीं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ रुक्मिणीजी देवमायाके समान बड़े बड़े धीर वीर व्यक्तियोंको अपने रूपसे मोहित करनेवाली थीं। उनकी परम सुन्दर कमर अत्यन्त सूक्ष्म थी, उनका मुखकमल अमल कुण्डलोंकी झलक पड़नेसे अपूर्व शोभासे युक्त था। उनकी सोलह वर्षकी युवा अवस्था जितेन्द्रियोंके भी चित्तको डिगा देनेवाली थी। नितम्बोंपर रत्नजटित सुवर्णकी कर्धनी पड़ी हुई थी। उभर रहे कुच दुपट्टेमें झलक रहे थे, अलकें खुली थीं और वह शङ्कायुक्त चञ्चल दृष्टिसे इधरउधर देखती जाती थीं। उनकी मन्द मुसकान अत्यन्त मनोहर थी। बिम्ब (कुँदरू) फलके सदृश अधरकी अरुण द्युतिसे उनके कुन्दकलिकासे उज्ज्वल दशन लाल देख पड़ते थे। वह कलहंसके समान मन्दगतिसे पैदल जा रही थीं। उससमय उनके चरण, शोभायुक्त शब्दायमान नूपुरोंकी आभासे अत्यन्त सुन्दर जान पड़ते थे। देवी रुक्मिणीकी ऐसी अपूर्व छवि निहारकर, उद्दीपित कामकी पीड़ासे, रक्षा करनेके लिये आये अनेक युद्धोंमें जय पायेहुए यशस्वी वीर योद्धागण मोहित हो पड़े। रुक्मिणीने अश्व, रथ, गज आदिपर चढ़ेहुए उन राजा लोगोंके चित्त अपनी उदार हँसी और लजीली चितवनसे चुरा लिये। वे लोग ऐसे मोहित होकर एकटक रुक्मिणीकी ओर देखनेलगे कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिरपड़े और उन्होने नहीं जाना। चलनेके मिससे हरिको अपनी शोभा दिखला रही रुक्मिणीकी छवि देख, सब साथके वीर योद्धा अचेत हो हो कर पृथ्वीपर गिरनेलगे। कृष्णचन्द्रके आनेकी राह देखती हुई रुक्मिणीजी धीरे धीरे चञ्चल कमलकोपतुल्य चरणोंको धीरे धीरे उठाकर रखती हुई जा रही थीं। इसी अवसरमें भगवती रुक्मिणीने बाएँ हाथसे बिखरी हुई अलकोंको सँवारकर (मुखपरसे हटाकर) साथ आयेहुए राजोंकी ओर लज्जापूर्ण कटाक्षपात करतेहुए देख दिया। उसीसमय राजकुमारीको एक ओरसे आतेहुए कृष्णचन्द्र भी देख पड़े। महाराज! राजकुमारी रथपर चढ़ना चाहती थीं, इतनेहीमें माधव कृष्णचन्द्र बराबर आगये और शत्रुओंके आगे ही गरुड़चिन्हयुक्त रथपर स्फुर्तीसे रुक्मिणीको चढ़ाकर चल दिये। जिन क्षत्रियोंने पीछा भी करना चाहा उनको कृष्णने वहीं ठंढा कर दिया। भगवान् कृष्णचन्द्र, जैसे सियारोंके बीचसे सिंह अपने भागको बलपूर्वक ले जाता है उसप्रकार बलभद्र आदि यादवोंके साथ आकर रुक्मिणीजीको हर लेगये और रक्षा करनेवाले राजालोग मुह ताकते ही रह गये, उनसे कुछ करते न बनपड़ा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥
अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ५७

उससमय जरासंध आदि मानी राजालोग इस अपनी पराजय और यशके क्षयको न सहसके, एवं आक्रोशपूर्वक कहनेलगे कि–हम लोगोंको धिक्कार है! जैसे मृगगण सिंहोंके भागको उनके सामनेसे ले जायँ वैसे ही आज गोपगण धनुषधारियोंके आगे आकर हमारे यशको कन्याके साथ हर लेगये!! ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तम अध्याय

रुक्मिणीका विवाह

श्रीशुक उवाच–इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥
स्वैः स्वैर्बलैः पराक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—राजन्! सब राजालोग आपसमें इसप्रकारके वचन कहतेहुए अत्यन्त क्रोधपूर्वक कवच धारण कर अपने अपने वाहनोंपर सवार हुए एवं अपनी अपनी सेना साथ लेकर धनुष हाथमें ले कृष्णचन्द्रके पीछे चले ॥ १ ॥ उनको अपनी ओर आते देख यादवसेनाके यूथप योद्धालोग पलटकर खड़े हो, अपने अपने धनुष चढ़ाकर प्रत्यञ्चाका शब्द करनेलगे ॥ २ ॥ घोड़े और हाथियोंकी पीठोंपर बैठेहुए अस्त्र शस्त्र चलानेमें चतुर राजालोग, मेघ जैसे पर्वतोंपर बड़े बड़े बूँदोंसे जलकी वर्षा करते हैं वैसेही यादवोंकी सेनापर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ अपने स्वामीकी सेनाको बाणवर्षामें छिपती देखकर सुन्दर कमरवाली राजकुमारीने लज्जापूर्वक भयसे विह्वल हो रहे नेत्र उठाकर कृष्णचन्द्रकी ओर देखा ॥ ४ ॥ रुक्मिणीकी दशा देखकर भगवान् हँसे और कहनेलगे कि "हे सुन्दर नयनवाली सुन्दरी! भय न करो। इसी समय तुम्हारी सेना (यादवलोग) शत्रुओंकी सेनाका संहार करेगी—इसमें कोई सन्देह नहीं है" ॥ ५ ॥ इधर गद, सङ्कर्षण आदि वीर यादवगण अपने शत्रुओंके विक्रमको न सह सके, अतएव शत्रुसेनाके घोड़े हाथी और रथोंपर नाराच बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ६ ॥ उससमय रथ, अश्व और हाथियोंपर बैठेहुए योद्धा लोगोंके करोड़ों कुण्डल, किरीट (कलँगी) और पगड़ियोंसे शोभित शिर एवं खड्ग, गदा व धनुषयुक्त हाथ, कलाइयाँ, ऊरू तथा पैर कट कट कर युद्धभूमें गिरनेलगे। ऐसे ही घोड़े, खचर, हाथी, ऊँट, गधे और पैदलोंके भी शिर कट कट कर पृथ्वीपर

गिरनेलगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ जयकी इच्छा रखनेवाले यादवगण जब इसप्रकार सामन्तोंसहित शत्रुसेनाका संहार करनेलगे तब जरासंध आदि राजालोग विमुख होकर युद्धभूमिसे भागे ॥ ९ ॥ जिसकी स्त्री छिन गई हो उस पुरुषके समान शोकसे कातर होनेके कारण जिसका मुख सूख रहा है उस प्रभा और प्रभावसे हीन, उत्साहशून्य, हतबुद्धि शिशुपालके निकट आकर समरसे भागेहुए उक्त जरासंध आदि राजालोग यों कहकर समझानेलगे कि-हे पुरुषसिंह! तुम क्यों इतना उदास होते हो? इस उदासीको छोड़ो। राजन्! देखा जाता है कि प्राणियोंको कोई प्रिय या अप्रिय विषय स्थायीरूपसे नहीं प्राप्त होता। कभी अपने चित्तकी प्रिय बात होती है और कभी अपनी इच्छाके विरुद्ध अप्रिय बात होती है, यह चक्र चलता ही रहता है ॥ १० ॥ ११ ॥ जैसे नचानेवाले(जादूगर)की इच्छाके अनुसार कठपुतली नाचती है वैसे ही यह देहधारी जीव ईशके वशमें रहकर सुख और दुःखकी चेष्टा (पुण्य, पाप) करता है एवं सुख और दुःख पाता है। जरासन्ध कहता है, देखो मैं तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्णसे युद्ध करनेके लिये सत्रह बार गया और बराबर हारता रहा। अन्तमें अट्ठारहवीं बार मैंने उसको भगा दिया और विजयको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तथापि देखो, मैं न कभी अपनी हारपर शोक करता हूँ और न अपनी जीतपर हर्ष मनाता हूँ; मैं जानता हूँ कि दैवके द्वारा प्रेरित बहुत ही प्रबल एवं अटल 'काल' इस जगत्को भलाई बुराई और सुख-दुःख देता है ॥ १४ ॥ इससमय भी श्रेष्ठ वीरोंमें श्रेष्ठ हम लोग, कृष्ण जिनका पालन करनेवाला है उन थोड़े से यादवोंसे हार गये ॥ १५ ॥ किन्तु इसका शोच व्यर्थ है। यह समय हमारे शत्रुओंको अनुकूल है, इसलिये उन्होने हमको जीत लिया; जब हमारे अनुकूल समय होगा तब हम उनको जीतलेंगे ॥ १६ ॥ मित्रगणके इसप्रकार आश्वासन देनेपर शिशुपाल अनुचरोंसहित अपने पुरको लौट गया और मरनेसे बचेहुए राजालोग भी अपने अपने नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥ राजन्! श्रीकृष्णद्रोही बलवान् रुक्मी अपनी बहनके हर लेजानेका समाचार पाकर उसको नहीं सह सका। उसने उसी समय अत्यन्त कुपित होकर कवच पहना और धनुष हाथमें लिया एवं सब राजोंके आगे प्रतिज्ञा की कि "समरमें कृष्णको विना मारे और विना रुक्मिणीको लौटा कर लाये मैं कुण्डिनपुरमें नही प्रवेश करूँगा-यह मैं आप लोगोंसे सत्य कहता हूँ" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ यों प्रतिज्ञा करके रुक्मीने रथमें चढ़कर सारथीसे कहा कि जिधर कृष्ण है उधर ही घोड़ोंको हाँककर रथ लेचल, उससे मैं युद्ध करूँगा। अत्यन्त दुर्बुद्धि गोपाल जिस अपने बलके घमण्डसे बलपूर्वक मेरी बहनको हर लेगया है, आज मैं इन तीक्ष्ण बाणोंसे उसके उस घमण्डको मिटाऊँगा ॥२१॥२२॥ ईश्वरकी महिमा और शक्तिको न जाननेवाला कुबुद्धि वह रुक्मी इस प्रकार

बकता हुआ अकेले अपना रथ दौड़वाकर कृष्णके निकट पहुँचा और कोपपूर्वक "खड़ा रह, खड़ा रह" कहने लगा। फिर रुक्मीने धनुष चढ़ाकर कृष्णको तीन बाण मारे और कहा कि–"रे यदुकुलदूषण! क्षणभर ठहर जा; कौआ जैसे घृतको ले भागे उसभाँति मेरी बहनको चुराकर लिये कहाँ भागा जाता है? हे मन्द! तू बड़ा मायावी है, आज मैं तेरे घमण्डको मिटा दूँगा। तू कपटयुद्धमें बड़ा निपुण है। कन्या देकर, अपने प्राण लेकर भाग जा, नहीं तो अभी मेरे बाणोंके प्रहारसे प्राणहीन होकर शीघ्र ही पृथ्वीपर सोवेगा"। रुक्मीके दुर्वचन सुनकर कृष्णचन्द्र मुसकाये और उन्होंने रुक्मीका धनुष काटकर छः बाण उसके शरीरमें मारे। कृष्णचन्द्रने आठ बाणोंसे उसके रथके चारो घोड़े मारडाले और दो बाणोंसे सारथीको मारडाला एवं तीन बाणोंसे ध्वजा काट डाली। रुक्मीने दूसरा धनुष लेकर कृष्णचन्द्रको पाँच बाण मारे। उन बहुतसे बाणोंका प्रहार सहकर कृष्णचन्द्रने दूसरा भी धनुष काट डाला। रुक्मीने और धनुष लिया, कृष्ण भगवान्‌ने वह भी काट डाला ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल–तर्वार, शक्ति और तोमर आदि जो जो शस्त्र रुक्मीने हाथमें लिया उसको कृष्णचन्द्रने स्फुर्तीसे काट डाला ॥२९॥ तब रुक्मी खड्ग हाथमें लेकर मारनेकी इच्छासे रथसे पृथ्वीपर फाँद पड़ा और जैसे जलनेके लिये पावकपर पतङ्ग आक्रमण करता है वैसे कृष्णकी ओर झपटा ॥ ३० ॥ कृष्णचन्द्रने उसके खड्ग और ढालको बीचमें ही तिल तिल करके काट डाला। फिर कृष्णचन्द्रने रुक्मीको पकड़ लिया और तीक्ष्ण तर्वार लेकर उसको मारनेकेलिये उद्यत हुए ॥ ३१ ॥ अपने भाईके वधका उद्योग देखकर सती रुक्मिणीजी भयसे विह्वल हो पतिके पैरोंपर गिर पड़ीं और इसप्रकार दीन वचन कहनेलगीं कि हे योगेश्वर! आपकी शक्ति या स्वरूप अप्रमेय है। हे देवदेव हे जगत्‌के स्वामी! हे कल्याणरूप! हे महाबाहो! मेरे भाईका वध करना आपको उचित नहीं है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—राजन्! उस समय भयके कारण रुक्मिणीजीके शरीरमें कँपकँपी सी चढ़ी थी और शोकके वेगसे मुख सूख रहा था एवं आँसुओंसे गला रुँध गया था। कातरताके कारण उनके गलेसे सुवर्णकी माला गिरपड़ी। इस दशासे जब रुक्मिणीने पैर पकड़कर प्रार्थना की तब दयासिन्धु कृष्णचन्द्र उसके वधसे निवृत्त हुए, किन्तु योंही नहीं छोड़ दिया। कृष्णने दुर्वचन कहनेवाले अपकारी रुक्मीको दुपट्टेसे रथके पीछे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी, मूछ और शिरके केश स्थान पर थोड़े थोड़े छोड़कर सब उड़ादिये। इधर कृष्णने रुक्मीको इसप्रकार विरूप कर दिया, उधर श्रेष्ठ वीर यादवगण, हाथी जैसे नलिनीवनको रौंद कर उसका सत्यानाश कर दें वैसे ही उद्धत शत्रुसेनादलको दलमल कर गरजने लगे ॥३४॥३५॥ यादवलोग शत्रुसेनाको नष्ट करके निकट आये, और उन्होने वहाँ आकर हतप्राय

(अधमरे) रुक्मीको पूर्वोक्त दशामें देखा। दयालु विभु बलदेवजीको दया आगई, उन्होने रुक्मीको बन्धनसे खोल दिया और कृष्णसे कहा कि हे कृष्ण! यह तुमने बुरा किया, अपने बन्धुकी दाढ़ी मूछ मूड़कर उसको विरूप बनाना हम लोगोंके लिये निन्दाकी बात है, यह वधके समान दण्ड है। हे साध्वी रुक्मिणी! भाईका रूप बिगाड़नेकी बात सोचकर तुम हमपर रोष न करना। कोई कीसीको सुख या दुःख नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि सब लोग अपने अपने कर्मोंका फल पाते हैं। कृष्ण! बन्धूने चाहे मार डालनेयोग्य कोई अपराध किया हो तो भी उसका वध करना उचित नहीं है। उसको छोड़ ही देना चाहिये। क्योंकि वह अपने दोषसे आप ही मर जाता है, तब मरेको क्या मारना?। हे रुक्मिणी! प्रजापतिने क्षत्रियोंकेलिये ऐसा ही धर्म नियत किया है, इसके अनुसार भाई भाईको भी मार डालताहै। यह अति उग्र धर्म है, तथापि हमारा इसमें अपराध नहीं है ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो लोग ऐश्वर्यमदमें अन्धे हो रहे हैं वे राज्य, लक्ष्मी, भूमि, धन, तेज, मान वा अन्य कारणोंसे मानी लोगोंका तिरस्कार (या तिरस्कारकी चेष्टा) करते हैं ॥ ४१ ॥ तुम्हारे जो भाई, सर्वदा सब प्राणियोंका अप्रिय–अनिष्ट किया करते हैं, तुम अज्ञ व्यक्तियोंकी भाँति उन्हीके मङ्गलकी कामना करती रहती हो; सुतराम् तुम्हारी यह बुद्धि विषम है, क्योंकि वही उन लोगोंके लिये अमङ्गल है ॥ ४२ ॥ "यह मित्र है, यह शत्रु है, यह उदासीन है" इसप्रकारका मोह देहात्मवादी (देहकोही आत्मा माननेवाले) लोगोंके आत्माको ईश्वरकी मायाके कारण रहता है। सब देहधारियोंका आत्मा एकमात्र विशुद्ध है। सब मूढ़ व्यक्ति जलमें चन्द्र और घटादि पदार्थोंमें आकाशकी भाँति उस एक आत्माके विषयमें अनेक-कल्पना करते हैं। यह देह, आदि और अन्तसे युक्त है। अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवात्मक यह (लिङ्ग) शरीर आत्मामें अविद्याके द्वारा कल्पित है। यही (लिङ्ग) शरीर देहधारी जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालता है ॥४३॥४४॥४५॥ जैसे सूर्यसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाश होता है वैसे ही आत्मासे उक्त अधिभूत आदिका प्रकाश होता है। अतएव अधिभूत आदिक असत् हैं; सुतराम् उनके साथ आत्माका न संयोग है और न वियोग है ॥ ४६ ॥ जन्म-आदि, देहके ही विकार (रूपान्तर) हैं, आत्माके कभी नहीं। जैसे चन्द्रमाका स्वयं जन्म (उदय) मरण (अस्त होना) नहीं है, उसकी कलाएँ ही प्रकाशित और नष्ट होती हैं, वैसे ही आत्माके भी जन्मादि नहीं हैं; आत्माका मरण अमावास्याकी भाँति है ॥४७॥ जैसे निद्रित व्यक्ति मिथ्या विषयोंमें भोक्ता, भोग्य और भोगका अनुभव करता है वैसेही अज्ञव्यक्ति संसार–भोग करते हैं ॥ ४८ ॥ इसकारण हे शुचिस्मिते! आत्माको कष्ट और मोहमें फँसानेवाले इस अज्ञानजनित शोकको उक्त तत्त्वज्ञानसे दूर करके, तुम स्वस्थचित्त हो कर धैर्य धारण करो ॥ ४९ ॥

बंक भ्रुकुटीके द्वारा कुटिल कटाक्षपातसे उन कमलदलसदृश विशाल लोचनवाले, आजानुबाहु, नरलोकसुन्दर स्वामीको रिझातीहुई प्रीतिपूर्वक उनके निकट रहनेलगी। यह भाव देखकर भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने रतिसे कहा कि "माता! तुम्हारी बुद्धिमें यह विपरीत भाव कैसा देख पड़ता है? तुम माताका भाव छोड़कर पत्नीके भावसे मेरे पास रहती हो; इसका क्या कारण है?" ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ रतिने कहा—"प्रभो! तुम नारायणके पुत्र हो। यह दुष्ट शम्बरासुर तुमको तुम्हारे घरसे उठा लाया था। मैं तुम्हारी पूर्व जन्मकी धर्मपत्नी रति हूँ और तुम कामदेव हो ॥ १२ ॥ इस शम्बरासुरने तुम्हारे दाँत भी नहीं निकलने पाये थे उसी अवस्थामें तुमको समुद्रमें फेंक दिया था। प्रभो! तदनन्तर एक मत्स्य तुमको समुद्रमें निगल गया, और उसी मत्स्यके उदरसे तुम यहाँ निकले ॥ १३ ॥ अब तुम इस दुर्धर्ष, दुर्जय और अनेकों माया जाननेवाले अपने शत्रु शम्बरासुरको इससमय मोहन आदि मायाओंसे नष्ट करो। पुत्रके खोजानेसे तुम्हारी माता, जिसका बछड़ा खोगया हो उस गऊके समान, पुत्रस्नेहसे आकुल, कातर और दुःखित होकर कुररी (एकप्रकारका पक्षी जो आकाशमें कतार बाँध कर "कों कों" करता हुआ चलता है) की भाँति शोकसे विलाप किया करती हैं" ॥ १४ ॥ १५ ॥ यों कहकर मायावतीने महात्मा प्रद्युम्नको सब माया-ओंको मिटानेवाली महामाया नाम विद्या बतलाई ॥ १६ ॥ उक्त महाविद्या पाकर प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके निकट गये और असह्य कटु वचन कहकर उसका तिरस्कार करनेलगे; जिसमें वह कुपित होकर युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए ॥१७॥ पादप्रहारसे कुपित सर्पकी भाँति शम्बरासुर उन कटुवाक्योंको न सह सका, उसके नेत्र क्रोधके आवेशसे लाल हो गये, एवं तत्क्षण वह गदा हाथमें लेकर घरसे बाहर निकल आया। शम्बरासुरने बलपूर्वक वेगसे कई बार घुमाकर वह गदा महात्मा प्रद्युम्नके ऊपर चलाई और जैसे आकाशमें बिजलियोंकी परस्पर टक्कर होनेसे घोर शब्द हो उसप्रकार गर्जनेलगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ किन्तु अपने ऊपर आ रही शत्रुकी गदाको भगवान् प्रद्युम्नने अपनी गदापर रोक लिया और फिर क्रोधपूर्वक सिंहनाद करतेहुए अपनी घोर गदा शत्रुके ऊपर चलाई ॥ २० ॥ शम्बरासुरने देखा कि सम्मुखयुद्धमें मैं पार नहीं पाऊँ गा, इसकारण वह असुर मय दानवकी अपूर्व आसुरी मायाका आश्रय लेकर अदृश्य हो गया एवं आकाशमें खड़े हो अदृश्य भावसे कृष्णतनय प्रद्युम्नजीपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगा ॥२१॥ महारथी रुक्मिणीनन्दनने जब देखा कि दुष्ट दैत्य अन्तरिक्षसे छिपे छिपे पत्थरोंकी वर्षा करके पीड़ा पहुँचाता है तब उसी मायावतीकी बताई हुई सब मायाओंको मिटानेवाली सत्त्वगुणमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर उस दैत्यने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाएँ प्रकट कीं, परन्तु उनको महामति प्रद्युम्नने उसी

क्षण नष्ट कर दिया ॥ २३ ॥ अन्तमें प्रद्युम्नजीने एक तीक्ष्ण तर्वार लेकर उससे शम्बरासुरका किरीटविभूषित, कुण्डलमण्डित, अरुणवर्ण दाढ़ी मोछोंसे युक्त मस्तक बलपूर्वक धड़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ उस समय देवगण उनके ऊपर राशि राशि फूलोंकी वर्षा करतेहुए स्तुति करनेलगे। मायावती आकाशमें चलनेकी शक्ति रखती थी; वह अपने पति प्रद्युम्नको पीठपर चढ़ाकर आकाशमार्गसे द्वारका पुरीको लेगई ॥ २५ ॥ राजन्! दामिनीयुक्त श्याम मेघके समान शोभायमान प्रद्युम्नने पत्नीसहित अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नजीका शरीर श्यामवर्ण था, उस शरीरपर पीतपटकी अपूर्व शोभा थी। आजानुबाहु प्रद्युम्नके नयन अरुण-वर्ण, हास्य परमसुन्दर, मुखमण्डल महामनोहर कमलके तुल्य था; उसपर भ्रमर-तुल्य काली अलकें बिखरी हुई थीं। स्त्रियोंने समझा कि कृष्णचन्द्र आरहे हैं, अत-एव लज्जित होकर इधरउधर छिप गईं ॥२७॥२८॥ क्रमशः कुछ विलक्षणता देख-कर स्त्रियोंने जाना कि यह कृष्ण नहीं हैं, कोई और है। तब सब स्त्रियाँ आनन्द-पूर्वक स्त्रीरत्नयुक्त प्रद्युम्नजीके निकट आकर आश्चर्यके साथ उनको देखनेलगीं ॥२९॥ उससमय प्रद्युम्नको देखनेसे असितापाङ्गी विदर्भनरेशकी कन्या रुक्मिणीको अपने खोएहुए पुत्रका स्मरण हो आया। स्नेहके कारण रुक्मिणीके स्तनोंसे आपहीआप दुग्ध निकलनेलगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी अपने मनमें कहनेलगीं कि—"यह पुरुषश्रेष्ठ कौन है? यह कमललोचन किसका पुत्र है? किस कामिनीने इसको अपने गर्भमें रक्खा है? इस पुरुषके साथ यह श्रेष्ठ स्त्री कौन है? मेरा जो पुत्र सूतिकागृहसे नष्ट होगयाथा, जिसका पता अबतक नहीं लगा है, वह भी यदि कहीं जीता जागता होगा तो उसकी अवस्था और रूप भी ऐसा ही होगा। यह पुरुष-श्रेष्ठ आकार, अङ्गगठन, गति, स्वर, हँसी और चितवन आदि बातोंमें मेरे स्वामीके समान है। इसका क्या कारण है? क्या यह वही बालक है जो मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ था? क्यों कि यह मुझे बहुतही प्रिय जान पड़ता है और शुभसम्वादकी सूचना देती हुई मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है"। रुक्मिणीजी इसीप्रकार अपने मनमें तर्कवितर्क कर रही थीं कि इतनेमें उत्तमश्लोक भगवान् देवकीनन्दन देवकी और वसुदेवके साथ वहाँपर उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यद्यपि भगवान् जनार्दनको सब वृत्तान्त विदित था तथापि वह चुपचाप खड़े रहे। इतनेमें नारदजीने सब वृत्तान्त कह सुनाया कि इनको शम्बर दैत्य हर ले गया था और अब यह उस शत्रुको मारकर आये हैं, यह तुम्हारे ही पुत्र प्रद्युम्न हैं ॥ ३६ ॥ यह महाआश्चर्यमय वृत्तान्त सुननेपर सब अन्तःपुरकी स्त्रियाँ, जैसे कोई मराहुआ बन्धु फिर जीवित होकर आ मिले उसप्रकार प्रद्युम्नको पाकर परम प्रसन्न हुईं ॥ ३७ ॥ देवकी, वसुदेव, कृष्ण, बलदेव और सब स्त्रियोंसहित रुक्मिणीने नववधूयुक्त प्रद्युम्नको गलेसे लगाया और परमानन्दित हुईं ॥ ३८ ॥ खोएहुए

प्रद्युम्नको फिर आयेहुए सुनकर सब द्वारकावासी लोग कहनेलगे कि "अहो! बड़े भाग्यकी बात है कि खोयाहुआ बालक, जिसके जीवित रहनेमें भी सन्देह था, सो आपही आगया" ॥ ३९ ॥

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावा-
स्तन्मातरो यदभजन् हृदिरूढभावाः ॥
चित्रं न तत्खलु रमास्पदविम्बविम्बे
कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥

हम पहले ही कह चुके हैं प्रद्युम्नका रूप व आकार कृष्णके समान था, वह कृष्णका प्रतिविम्ब जान पड़ते थे। इसीकारण उनकी माताएँ भी उनको आत्मीय और भर्ताके भावसे मनही मन अनुरक्त होकर भजती थीं इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिसके स्मरणसे ही क्षोभ होता है उसी कामका अवतार प्रद्युम्नजी आँखोंके आगे हर घड़ी रहते थे। जब माताओंकी यह दशा थी तब अन्य कामिनियोंके लिये क्या कहना है! ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तम अध्याय

स्यमन्तकहरण

श्रीशुक उवाच—सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सत्राजित् नाम यादवने पहले कृष्णको अपराध लगाया। किन्तु फिर वह अपराध क्षमा करानेके लिये स्यमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा उनको व्याह दी ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि—भगवन्! सत्राजित् ने श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था? और उन्होने दिव्य स्यमन्तकमणि कैसे और किससे पाई थी? एवं उन्होने हरिको अपनी कन्या किसलिये दी? यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक हमसे कहिये ॥ २ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्! सत्राजित् यादव सूर्यदेवके परमभक्त और सखा थे। सूर्यदेवने सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर उनको स्यमन्तक नाम दिव्य मणि दी। उस मणिको कण्ठमें पहनेहुए सत्राजित् द्वारकापुरीमें आये। उस मणिके तेजसे सत्राजित् दूसरे सूर्य जान पड़ते थे। उस तेजके कारण कोई पुरवासी न पहचान सका कि यह सत्राजित् हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ दूरसे देखनेपर सब लोगोंकी आँखें चौंधियाँ

गईं। तब वे लोग चौसर खेल रहे भगवान् कृष्णके पास आकर सूर्यनारायणको आते जानकर शङ्कित भावसे कहनेलगे कि "हे नारायण! हे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दामोदर! कमलनयन! गोविन्द! यदुनन्दन! आपको प्रणाम है॥ ५॥ ६॥ हे जगन्नाथ! यह सूर्यनारायण अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे हमारे नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न करतेहुए आपको देखनेके लिये आरहे हैं॥ ७॥ हे प्रभो! आप यदुवंशमें छिपेहुए हैं–यह जानकर सूर्यदेव आपको देखने आरहे हैं। भगवन्! सब देवगण सदा आपके मिलनेके मार्गकी खोजमें रहते हैं, परंतु पाते नहीं हैं॥ ८॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—राजन्! उन अजान लोगोंकी ये बातें सुनकर कमलनयन भगवान्‌ने हँसकर कहा कि–"यह सूर्यदेव नहीं हैं, सत्राजित् नाम यादव हैं; यह प्रकाश उनके कण्ठमें पड़ी हुई मणिका है"। सत्राजित्‌ने अपने श्रीसम्पन्न भवनमें प्रवेश करके ब्राह्मणोंके द्वारा मङ्गलाचरण कराके देवालयमें मणिको धर दिया॥ ९॥ १०॥ वह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देती थी। उसमें एक गुण यह भी था कि जहाँ धरकर उसकी पूजा की जाती थी उस देशमें दुःखके कारण जो दुर्भिक्ष, अकालमृत्यु, अमङ्गल, सर्पभय, आधि, व्याधि, अशुभ और महामारी आदि अरिष्ट हैं उनकी बाधा नहीं होती थी॥११॥ देवकीनन्दनने एक समय वह मणि उग्रसेनके लिये माँगी, किन्तु धन-लोभी सत्राजित्‌ने कृष्णके महत्त्वका ध्यान न करके देनेसे नाहीं कर दी। राजन्! तदनन्तर एक दिन सत्राजित्‌का भाई प्रसेन उस महातेजस्वी मणिको पहनेहुए घोड़े पर चढ़कर वनमें मृगया (शिकार) करनेके लिये गया। वनमें एक सिंहने घोड़ेसहित प्रसेनको मारकर मणि छीन ली। वह सिंह पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश कर रहा था उसी समय उसको जाम्बवान् नाम ऋक्षराज मिल गये। जाम्बवान्‌ने मणि लेनेकी इच्छासे उस सिंहको मार डाला और अपने बिलमें जाकर वह मणि अपनी कन्याको खेलनेके लिये देदी। इधर सत्राजित् अपने भाईका पता न पाकर अत्यन्त विचलित हुए और सन्तापपूर्वक कहनेलगे कि "मेरा भाई गलेमें मणि पहनकर वनको गयाथा, अवश्य ही मणि लेनेके लिये कृष्णने उसको मरवा डाला होगा"। बात कहीं मुखसे निकलनेपर छिपती है? यह बात एक कानसे दूसरे कानमें पहुँची, और सब लोग इसप्रकार परस्पर कानाफूसी करनेलगे॥ १२॥ १३॥ १४॥ १५॥ १६॥ भगवान् कृष्णने जब यह सुना तब नगरवासियोंको साथ ले, अपना कलङ्क मिटानेके लिये प्रसेनको ढूँढनेचले॥ १७॥ वनमें इधरउधर खोज करनेपर उन्होने सिंहके द्वारा मारे गये प्रसेन और उसके घोड़ेको एवं तदनन्तर ऋक्षराजके द्वारा निहत उस सिंहको भी देखा॥१८॥ वहाँपर अपार अन्धकारसे आवृत ऋक्षराजका भयानक बिल भी उनको मिला। भगवान् कृष्णचन्द्र सब लोगोंको बिलके बाहर ठहराकर अकेले ही उसके भीतर

गये ॥ १९ ॥ भगवान्‌ने देखा कि एक बालिका उस मणिको लिये खेलरही है। भगवान् वह मणि लेनेके विचारसे वहाँ उस कन्याके पास खड़े होगये। अपूर्व मनुष्य कृष्णचन्द्रको देखकर उस बालिकाकी धाय डरकर चिल्लाउठी। धायकी चिल्लाहट सुनकर बलवानोंमें श्रेष्ठ जाम्बवान् वहाँ दौड़कर आये एवं क्रोधपूर्वक अपने प्रभु कृष्णचन्द्रसे भिड़ गये। दोनोको जयकी इच्छा थी, इसकारण मांसके लिये जैसे दो बाज लड़ते हैं वैसेही दोनो सुभट अस्त्र, शस्त्र, पत्थर, वृक्ष, बाहु, मुष्टि इत्यादिसे अतिघोर द्वन्द्वयुद्ध करनेलगे। क्रोधके आवेशसे अपने स्वामी कृष्णकी यथार्थ शक्ति और प्रभावको न पहचाननेके कारण जाम्बवान्‌ने उनको एक साधारण मनुष्य समझा एवं इसप्रकार युद्ध किया। अट्ठाईस दिनोंतक निरन्तर दिन और रात बराबर वज्रप्रहारके सदृश कठोर घूसोंसे दोनोने परस्पर युद्ध किया ॥२०॥२१॥ ॥२२॥२३॥२४॥ अन्तमें कृष्णने कठोर घूसोंकी चोटने जाम्बवान्‌के सुदृढ़ अङ्गबन्धनोंको ढिला कर दिया; उनके शरीरसे पसीना बहनेलगा। तब अत्यन्त विस्मित होकर जाम्बवान्‌ने भगवान्‌से कहा कि—"मैंने अब जाना, आप पुराणपुरुष परमेश्वर सबके स्वामी, सर्वशक्तिमान् श्रीविष्णु भगवान् हैं। सब प्राणियोंके प्राण, इन्द्रियबल, मानसिक बल और शारीरिक बल आप ही हैं। जो लोग विश्वकी सृष्टि करते हैं, उन प्रजापतियोंको आप उत्पन्न करनेवाले हैं। सृष्टिमें जितने पदार्थ देख पड़ते हैं उनका उपादान-कारण भी आप ही हैं, सुतराम् आप पुराणपुरुष हैं। जो लोग सृष्टिका संहार करते हैं उनके ईश्वर महाप्रबल "काल" आपही हैं। आप सब आत्माओंके आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ प्रभो! आपहीके किञ्चित् उद्दीप्त कोप-कृत-कटाक्ष-पातसे सागरके भीतर रहनेवाले मगर, तिमिंगिल आदि जीव जन्तु क्षोभसे चंचल हो उठे थे और सागरने उसी समय आपको पार जानेके लिये मार्ग दिया था, तथापि अपने यशको चिरकालतक स्थिर रखनेके लिये आपने सेतुरचना कराई और उस पार जाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काट गिराये एवं अपने यशके प्रकाशसे लंकाको उज्ज्वल कर दिया" ॥ २८ ॥ इसप्रकार ऋक्षराजके हृदयमें जब ज्ञानका उदय हुआ तब देवकीनन्दन कमलनयन अच्युतने अपना मङ्गलमय हाथ फेरकर परमभक्त ऋक्षराजकी सब थकन और शिथिलता दूर कर दी और फिर परम कृपापूर्वक मेघके सदृश गम्भीर स्वरसे कहा कि—"हे ऋक्षराज! मणिके लिये मैं इस तुम्हारे बिलमें आया हूँ; इसमणिसे मैं अपने मिथ्या कलङ्कको मिटाऊँगा"। भगवान्‌के ये वचन सुनकर जाम्बवान् बहुत सन्तुष्ट हुए एवं पूजाकेलिये उपहारमें मणिसहित वह अपनी जाम्बवती नाम कन्या कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दी ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इधर बिलके बाहर ठहरेहुए नगरवासी लोगोंने कृष्णकी आज्ञाके अनुसार बारह दिनतक उनके निकलनेकी राह देखी। जब बारह दिनमें कृष्णचन्द्र नहीं बाहर निकले तब तेरहवें दिन दुःखित और निराश

होकर सब नगरवासी लोग द्वारकापुरीको लौट गये । देवकी देवी, रुक्मिणी, वसुदेव, सुहृद्गण और अन्यान्य सजातीय लोग यह सम्वाद पाकर कि 'कृष्ण-चन्द्र बिलसे बाहर नहीं निकले—उसीमें रह गये' अत्यन्त शोकाकुल और दुःखित हुए ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब द्वारकावासी लोग सत्राजित्को भला-बुरा कहतेहुए 'श्रीकृष्ण फिर हमसे आकर मिलें'—इस कामनासे चन्द्रभागा नाम महामाया दुर्गादेवीकी आराधना करनेलगे ॥ ३५ ॥ पूजा समाप्त होनेपर इधर दुर्गादेवीने अमोघ आशीर्वाद दिया और उधर उस आशीर्वादको सत्य करतेहुए कृष्णचन्द्र कार्य सिद्ध करके पत्नी जाम्बवतीको साथ लिये द्वारकापुरीमें आगये । भगवान्ने आकर अपने इष्ट-मित्र और बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित कर दिया ॥ ३६ ॥ यमलोकसे लौटेहुए मृत व्यक्तिके समान कृष्णको आये देखकर एवं उनके कण्ठमें स्यमन्तकमणि तथा साथमें एक सुन्दरी स्त्री देखकर सब पुरवासी लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर महाउत्सव करनेलगे ॥३७॥ तदनन्तर भगवान्ने सभामें सब राजा लोगोंके आगे सत्राजित्को बुलाया एवं जिसप्रकार मणि मिली थी सो सब कहकर उनको मणि देदी ॥ ३८ ॥ सत्राजित्ने लज्जित होकर वह मणि लेली और वहाँसे शिर नीचा कियेहुए अपने अपराधके लिये पश्चात्ताप करते करते अपने भवनको गये । वह उस अपराधकी चिन्तासे व्याकुल हो उठे एवं बलवान्के साथ झगड़ा ठाननेके कारण बहुतही घबड़ाये । सत्राजित् सोचनेलगे कि—"किसप्रकार मैं इस अपने अपराधको मिटाऊँ ? कैसे अच्युत भगवान्को प्रसन्न करूँ ? क्या करनेसे मेरा मङ्गल होगा ? क्या करनेसे लोग मुझे अविचारी, कृपण, मन्दमति, धनलोलुप न कहें ? मेरी कन्या स्त्रीरत्न है, मैं उस स्त्रीरत्नके साथ यह मणिरत्न देकर कृष्णको प्रसन्न करूँ-यही एक उपयुक्त उपाय है । इसके सिवा और उपायसे इस अपराधका प्रायश्चित्त न होगा" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसप्रकार मनमें निश्चय करके सत्राजित्ने आपहीसे श्रीकृष्णको अपनी कल्याणरूपिणी कन्या और वह मणि देदी । भगवान्ने विधिपूर्वक सत्राजित्की कन्या सत्यभामासे विवाह किया ॥४३॥ सत्यभामाजी उत्तम शील, रूप, उदारता आदि गुणोंसे विभूषित थीं । अनेक राजोंने सत्राजित्से उनके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४४ ॥

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥

भगवान्ने सत्राजित्से कहा कि—"हम मणि नहीं लेंगे । आप सूर्यके भक्त हैं, इसलिये यह सूर्यका प्रसाद आपहीके पास रहना चाहिये । हम केवल इसका फल (अर्थात् सुवर्ण) लेंगे" ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तम अध्याय

स्यमन्तकोपाख्यान

श्रीशुक उवाच–विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ॥
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! गोविन्दको यद्यपि यह विदित था कि विदुरकी सहायतासे पाण्डवगण लाक्षाभवनसे सुखपूर्वक बाहर निकलगये वे लाक्षाभवनमें जले नहीं, तथापि पाण्डवलोग माता कुन्तीके साथ मानो वास्तवमें लाक्षाभवनके भीतर जलगये–इसप्रकार उक्त समाचारको सुनकर कुलोचित और लोकोचित व्यवहारकी पूर्तिके लिये वह बलभद्रके साथ कुरुदेशको गये ॥ १ ॥ वहाँ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और गान्धारीसे मिलकर समान दुःख प्रकट करतेहुए कृष्ण–बलभद्रने कहा कि "हाय! कैसे कष्टकी बात है!"। राजन्! इधर कृष्णचन्द्रके हस्तिनापुर जानेसे सुअवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वासे कहा कि "देखो! सत्राजित्ने पहले हमलोगोंसे अपनी कन्याके देनेका पण किया था और फिर वही कन्या कृष्णचन्द्रको देदी। अब उससे वह श्रेष्ठ मणि क्यों नहीं लेते? जहाँ सत्राजित्का भाई प्रसेन गया है वहीं (यमलोकमें) सत्राजित्को भी पहुँचाना चाहिये, हमारी तो यही सम्मति है" ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ जिसका जीवन क्षीण हो गया है उस पापाचारी, महादुष्ट शतधन्वाने अक्रूर और कृतवर्माके कहनेमें आकर लोभवश सत्राजित्के घर जाकर सोतेहीमें उनको मार डाला ॥ ५ ॥ पशुको मारनेके अनन्तर जैसे कसाई चला जाता है वैसेही निर्दय शतधन्वा सत्राजित्को मारकर और उत्तम मणि लेकर चला गया। अन्तःपुरकी स्त्रियाँ अनाथोंकीभाँति उच्च स्वरसे चिल्लाती और रोती रहीं, परन्तु उनके रोने या चिल्लानेपर उस निष्ठुरने ध्यान नहीं दिया। सत्यभामाजी अपने पिताको निहत देखकर "हाय पिता" कहती हुई विलाप करने लगीं। तदनन्तर उन्होने मृत पिताके शरीरको तेलसे भरी नावमें रख दिया और आप सन्ताप करतीहुई हस्तिनापुरको गईं। वहाँ जाकर सत्यभामाने श्रीकृष्णचन्द्रसे पिताकी हत्याका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ कृष्ण और बलदेव दोनो भाई, ईश्वर होनेपर भी मनुष्यचरित्रका अनुकरण करके "हमलोगोंके लिये महाकष्ट उपस्थित हुआ" कहकर आँसू गिरातेहुए विलाप करनेलगे ॥ ९ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्र भाई और स्त्रीके साथ द्वारकापुरीको लौट आये और शतधन्वाको मारने व उससे मणि लेनेके लिये उद्यत हुए ॥ १० ॥ दुराचारी शतधन्वाने जब जाना कि कृष्णचन्द्र मुझे मारनेके लिये उद्यत हैं तब वह भयभीत हो प्राण बचानेके लिये कृतवर्माके पास जाकर

उनसे सहायता माँगनेलगा। कृतवर्माने कहा-"भाई! कृष्ण और बलभद्र साक्षात् ईश्वर हैं, मैं उनका सामना नहीं कर सकता। भला कौन व्यक्ति उनके विरुद्ध कार्य करके कुशलसे रह सकता है? जब राजा कंस ऐसा बली योद्धा उनसे द्रोह करनेके कारण अनुचरसहित राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो प्राण भी गँवा बैठा, एवं जरासंध-ऐसा सुभट सत्रह बार युद्धमें हारकर विरथ हो युद्धके विचारसे निवृत्त होगया, तब उन कृष्ण बलभद्रका अप्रिय करनेवाला कौन सुखी रह सकता है?" ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ जब इसप्रकार कृतवर्माने सहायता देनेसे नाहीं कर दी तब शतधन्वाने अक्रूरके पास जाकर उनसे सहायता माँगी। अक्रूरने भी कहा कि "उन ईश्वरके अवतार दोनो भाइयोंके बल और शक्तिको जानकर भी कौन उनके विरुद्ध काम करेगा? जो लीलापूर्वक इस विश्वको उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं एवं अन्तसमय इसका संहार करते हैं, बड़े बड़े प्रजापति जिनकी मायामें मोहित रहनेके कारण, चेष्टा तकको नहीं जान सकते, जिन्होने सात वर्षकी अवस्थामें—बालक जैसे धर्तीके फूलको खेलते खेलते उखाड़ ले वैसेही एक हाथसे गोवर्धनगिरिको उठालिया उन भगवान्, अद्भुत-कर्म करनेवाले, अनन्त, आदिभूत, कूटस्थ, आत्मा, कृष्णचन्द्रको प्रणाम हैं" ॥१४॥ ॥१५॥१६॥१७॥ जब अक्रूरसे भी सहायता नहीं मिली तब शतधन्वाने स्यमन्तक मणि तो अक्रूरजीको देदी और आप सौ योजनतक चलनेवाले घोड़ेपर चढ़कर वहाँसे भागा ॥१८॥ कृष्णचन्द्र और बलभद्र भी गरुड़चिन्हयुक्त ध्वजवाले रथपर चढ़कर महावेगशाली घोड़ोंद्वारा गुरुद्रोही शतधन्वाके पीछे चले। मिथिलापुरीके उपवनमें पहुँचकर शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा। तब शतधन्वाने घोड़ेको वहीं छोड़ दिया और आप भयके मारे पैदलही भागा; किन्तु कृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उसका पीछा किया। पैदल जा रहे कृष्णचन्द्रने पैदल भाग रहे शत्रुको थोड़ीही दूरपर पकड़ लिया और तीक्ष्ण धारावाले चक्रसे उसका शिर काट लिया एवं उसके वस्त्रोंमें वह मणि खोजनेलगे। श्रीकृष्णचन्द्रने जब शतधन्वाके पास मणि नहीं पाई तब बड़े भाईके पास आकर कहा कि "हमने व्यर्थही शतधन्वाको मारा, उसके पास मणि नहीं है"। बलभद्रने कहा—"शतधन्वाने वह मणि अवश्यही किसी अन्य व्यक्तिके पास रख दी है। तुम उस व्यक्तिका पता लगाओ-नगरमें जाओ, मैं अपने प्रियतमभक्त विदेहराज जनकसे मिलना चाहताहूँ"। यह कहकर यदुनन्दन बलभद्रजी मिथिलापुरीको चलेगये ॥ १९ ॥२०॥२१॥२२॥२३॥ ॥२४॥ मिथिलानरेशने पूजनीय बलभद्रको आते देख, सहसा उठकर प्रसन्नतापूर्वक पूजनकी सामग्रियोंसे विधिपूर्वक पूजन किया ॥ २५ ॥ बलभद्रजी कई वर्षोंतक मिथिलापुरीमें सुखसे रहे। उक्त घटनाके कुछ दिन बाद धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन मिथिलापुरीमें गया और वहाँ उसने महात्मा जनकके द्वारा आदरसहित पूजित होकर बलभद्रसे गदायुद्ध सीखा ॥ २६ ॥ इधर प्रियाका प्रिय करनेवाले प्रभु

कृष्णने द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाके वध और उसके पास मणि न मिलनेका वृत्तान्त अपनी प्रिया सत्यभामासे कहा एवं सुहृद्जनोंको साथ लेकर अपने निहत बन्धु सत्राजित्का पारलौकिक कृत्य सम्पन्न किया। अक्रूर और कृतवर्माने जब सुना कि शतधन्वा मारागया तब दोनो भयभीत होकर द्वारकासे परदेशको चल दिये। क्योंकि इन्होनेही सत्राजित्को मारने व मणि लेनेकी सम्मति शतधन्वाको दीथी ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ महाराज! जब अक्रूरजी चलेगये तब द्वारकावासी लोग सदैव शारीरिक, मानसिक, दैविक और भौतिक आदि भाँति भाँतिके सन्ताप और चिन्ताओंसे पीड़ित रहनेलगे ॥ ३० ॥ पूर्वोक्त श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूल जानेवाले कुछ लोग अक्रूरके प्रवासको द्वारकावासियोंके इस कष्टका कारण कहते हैं। किन्तु यह उनका कथन युक्तिसङ्गत नहीं जान पड़ता, क्योंकि श्रेष्ठ मुनिगण जिन हरिमें (अन्तःकरणात्मक लिङ्गशरीरसे) निवास करते हैं अर्थात् लीन रहते हैं, मग्न रहते हैं, वह हरि जहाँ रहे वहाँ ऐसे अरिष्टोंका संघटन असम्भव है। "एक समय राज्यमें बहुत दिनोंतक इन्द्रकृत वर्षाके न होनेपर काशिराजने अपनी कन्या गान्दिनी अक्रूरके पिता श्वफल्कको व्याह दी थी, तब काशीमें वर्षा हुई, और सुकाल हुआ। अक्रूरजी उन्ही श्वफल्कके पुत्र हैं, अतएव उनका भी प्रभाव पिताके समान है। अक्रूरजी जिस स्थानमें रहते हैं वहाँ इन्द्रदेव भलीभाँति जलकी वर्षा करते हैं, और महामारी एवं अन्यान्य कष्टकारी उत्पात नहीं होते"—इसप्रकार वृद्ध लोगोंके मुखसे सुनकर भगवान्ने विचारा कि "इन उत्पातोंका कारण यहाँ अक्रूरका न रहना नहीं, वरन् मणिका न रहना है"। तदनन्तर अन्तर्यामी कृष्णचन्द्रने अक्रूरको द्वारकापुरीमें सादर बुलवाया एवं यथाविधि सत्कार करके मनोहर मधुर वार्तालाप करतेहुए मन्द मन्द मुसकाकर कहा कि—"हे दानपति अक्रूर! शतधन्वा मणि तुमको देगया है और वह तुम्हारे पास है, यह मैं पहलेहीसे निश्चितरूपसे जानता हूँ। अक्रूरजी! सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उनकी कन्याका पुत्रही मणिका यथार्थ उत्तराधिकारी है। क्योंकि जो कोई जिसको शेष ऋण (पितृऋण)से छुड़ा सके और जल-पिण्ड पहुँचा सके वही शास्त्रकी सम्मतिसे उसकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी हो सकता है। किन्तु उस मणिको अपने पास रखना अन्य किसीके लिये दुष्कर और कठिन काम है, अतएव वह मणि तुम्हारेही पास रहना चाहिये; क्योंकि तुम सच्चरित्र हो। किन्तु मणिके न मिलनेकी बातपर हमारे बड़े भाईको भी कुछ अविश्वास सा है, इसलिये तुम सब बन्धुओंके आगे एक बार वह मणि निकालकर दिखादो। यदि तुम कहो कि मेरे पास मणि नहीं है, तो हमको सब विदित है, तुम्हारा यह कहना वृथा होगा। हमको विदित है कि इधर तुमने सुवर्णकी वेदियाँ (उसी मणिके सुवर्णसे) बनवाकर कईएक यज्ञ किये हैं"। इसप्रकार प्रभुके प्रबोध देनेपर श्वफल्कपुत्र अक्रूरका भय जातारहा; उन्होने वस्त्रके भीतर

शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

अष्टमस्कन्धः

और पाण्डवोंके द्वारा पूजित व नमस्कृत होकर कृष्णचन्द्रजी आसनपर जब बैठे तब और और लोग भी कृष्णचन्द्रसे यथायोग्य सत्कार व पूजन पाकर आसनोंपर बैठे ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुन्ती देवीने कृष्णके निकट जाकर उनको प्रणाम किया—स्नेहके कारण उनके दोनो नेत्र प्रेमके आँसूओंसे परिपूर्ण हो गये। कुन्तीने गद्गद होकर कृष्णको हृदयसे लगा लिया एवं तदनन्तर उनसे अपने बन्धु बान्धवोंकी कुशल पूछने लगीं। भगवान्‌ने भी यथोचित उत्तर देकर अपनी बुआ कुन्तीसे उनकी और उनकी वधूकी कुशल पूछी। भगवान् भक्तोंका क्लेश मिटानेहीके लिये पृथ्वीपर प्रकट होते हैं—यह विचारकर प्रेमकी उमङ्गसे उमड़ेहुए आँसुओंसे जिनका कण्ठ रुँध गया है एवं आँखोंमें प्रेमके आँसू भरेहुए हैं वह कुन्तीजी पहले पायेहुए अनेक कष्टोंका स्मरण करती हुई कृष्णसे कहने लगीं कि "हे यदुनन्दन कृष्ण! तुमने जब अपने सुहृद् जो हम हैं उनका स्मरण करके मेरे भाई अक्रूरको यहाँ कुशलवृत्तान्त जाननेके लिये भेजा था, तभीसे हम सकुशल हैं एवं तभी तुमने हमको सनाथ कर दिया था। तुम विश्वभरके बन्धु और आत्मा हो, अतएव तुमको "अपना है—पराया है"—इस प्रकारका भ्रम नहीं है। तथापि जो कोई तुम्हारा निरन्तर स्मरण करते हैं—उनके तुम सब क्लेशोंको और मानसिक चिन्ताओंको मिटादेते हो" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ युधिष्ठिरने कहा—"स्वामी! हम लोगोंने कौन ऐसा पुण्य किया है न मालूम होता क्योंकि जो योगी जनोंको भी दुर्लभ जो आप हैं उन्होने अपना दर्शन देकर हम मन्द-मतियोंको कृतार्थ किया" ॥ ११ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र इसप्रकार युधिष्ठिरके द्वारा पूजित और अभ्यर्थित होकर वर्षाऋतुके कई महीनेतक हस्तिनापुरवासियोंके नयनोंको आनन्द देतेहुए सुखपूर्वक वहाँ रहे ॥ १२ ॥ एक दिन शत्रुदलदलन वीरवर अर्जुनजीने अपना गाण्डीव धनुष और अक्षय-बाण-पूर्ण दोनो तर्कस लिये और उत्तम अभेद्य कवच पहना एवं कपिके चिन्हसे सुशोभित ध्वजावाले रथपर भगवान् कृष्णचन्द्र सहित सवार होकर मृगया करनेकी इच्छासे अनेकों सर्प सिंह आदि हिंसक जीव जहाँ अधिकतर रहते हैं उस घोर वनको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहाँ अर्जुनने तीक्ष्ण बाणोंसे अनेकानेक व्याघ्र, शूकर, भैंसे, रुरु, चौगड़े, शरभ, गवय, गैंड़े, हरिण और स्याही आदि जीवोंका वध किया। अनुचरगण उन निहत, यज्ञके योग्य पशुओंको राजा युधिष्ठिरके समीप लेगये। इधर कृष्णचन्द्र और अर्जुन—दोनो मृगया करते करते थक गये और प्यासेहुए तब जल पीनेकी इच्छासे निकटवर्तिनी यमुना नदीके किनारेपर गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ जाकर दोनो वीरोंने यमुनाके निर्मल जलमें हाथ पैर धोये और जलपान किया। कृष्ण और अर्जुनने यमुनाके किनारे एक परम सुन्दरी कन्याको देखा। तब कृष्णचन्द्रके भेजनेसे अर्जुनजी उस सुन्दर मुख, सुन्दर दाँत और सुन्दर मुखवाली

कन्यारत्नके पास गये और बोले कि "हे सुन्दर श्रोणीवाली सुन्दरी! तुम कौन हो? किसीकी स्त्री हो? किस विचारसे इस स्थानपर विचरती हो! हे कामिनी! जान पड़ता है अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ और तुम अपने सदृश वरकी खोजमें हो" ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ कालिन्दी अर्थात् उसी स्त्रीने कहा कि–"हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं भगवान् सूर्यकी कन्या हूँ और श्रेष्ठतम वरदानी विष्णु भगवान् मेरे पति हों–इस कामनासे यहाँ कठोर तप कर रही हूँ ॥ २० ॥ हे वीर! श्रीपतिके सिवा और किसीको मैं अपना पति वनाना नहीं चाहती। अनाथोंके नाथ वह मुकुन्द भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। मेरा नाम कालिन्दी है, पिताने इस यमुनाके जलमें मेरेलिये एक भवन बनवा दिया है। जबतक अच्युत भगवान् प्रसन्न होकर मुझको दर्शन न देंगे तबतक मैं उसी सुरक्षित भवनमें रहकर तप करूँगी" ॥२१॥२२॥ वासुदेव भगवान् पहलेहीसे इस वृत्तान्तको जानते थे, इससमय अर्जुनके मुखसे सब वृत्तान्त सुनकर उस कन्याके निकट गये और उसे रथपर विठाकर युधिष्ठिरजीके निकट आये। महाराज! तदनन्तर अर्जुनके अनुरोधसे कृष्णचन्द्रने विश्वकर्माद्वारा एक विचित्र नगर बनवादिया। वास्तवमें उस नगरकी रचना परम अद्भुत थी ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रीतिके लिये भगवान् कृष्णचन्द्र और भी कुछ दिन उनके यहाँ रहे। इसी अवसरमें अर्जुनने अग्निको इन्द्रका खाण्डव वन जलानेकी आज्ञा दी। इन्द्रसे और अर्जुनसे युद्ध हुआ, उस समय कृष्णचन्द्र अर्जुनकी सहायता करनेके लिये उनके सारथी बने ॥ २५ ॥ अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको विचित्र धनुष, श्वेतध्वजायुक्त रथ, दो अक्षय तर्कस एवं बड़े बड़े अस्त्रधारियोंके प्रहारोंसे भी न टूटनेवाला दिव्य कवच दिया। खाण्डव वनमें उस समय मयासुर भी था, उसको अर्जुनके कहनेसे अग्निने छोड़ दिया। मयासुरसे इसीकारण अर्जुनकी मित्रता हो गई। मयासुरने अपने मित्र अर्जुनको उपहारमें एक सुन्दर और विचित्र सभा बना दी। उसी सभामें प्रवेश करनेपर दुर्योधनको स्थलमें जलका और जलमें स्थलका भ्रम होगया ॥२६॥२७॥ राजन्! तदनन्तर वर्षाके अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रजी पाण्डव आदि अपने बन्धु बान्धवोंसे मिलकर–पूछकर–विदा होकर सात्यकी आदि यादवोंके साथ द्वारकापुरीको लौट आये ॥ २८ ॥ कृष्णचन्द्रने पुरीमें आकर पुण्य-ऋतु और पुण्यनक्षत्रयुक्त लग्नके परम मङ्गलमय समयमें कालिन्दीके साथ विवाह किया ॥ २९ ॥ महाराज! विन्द और अनुविन्द नाम अवन्तीनरेश दोनो भाई दुर्योधनके वशवर्ती और आज्ञाकारी थे। उनकी बहनका नाम मित्रविन्दा था। मित्रविन्दाने स्वयंवरके अवसरपर कृष्णचन्द्रके कण्ठमें जयमाल डालनेका विचार किया, किन्तु कृष्णसे द्रोह करनेवाले दोनो भाइयोंने उसे ऐसा करनेसे रोका। मित्रविन्दा, कृष्णकी बुआ राजाधिदेवीकी कन्या थी। कृष्णचन्द्र, उसी समय सब

राजा लोगोंको परास्त करके बलपूर्वक उनके आगे ही मित्रविन्दाको हरकर घर ले आये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राजन्! ऐसे ही कोशल देशके नरेश अयोध्याधिपति अत्यन्त धार्मिक नग्नजित्के परम कान्तिमती सत्या नाम कन्या थी। पिताके नामके अनुसार उसका दूसरा नाम नाग्नजिती भी था ॥ ३२ ॥ तीक्ष्ण सींगोंवाले, सुदुर्धर्ष, वीरगणके गन्धको भी न सह सकनेवाले महादुष्ट सात बैलोंको एक ही रस्सीसे न नाथ सकनेके कारण राजालोग उस कन्यासे विवाह नहीं कर सके ॥ ३३ ॥ यह समाचार सुनकर यदुपति कृष्णचन्द्र अनेक अनीकिनी सेना साथ ले कोशलदेशको गये। कोशलनरेशने प्रसन्न हो, आसनसे उठकर भगवान्‌को उत्तम आसन और अर्घ्य दिया। इसप्रकार भगवान्‌का पूजन और आतिथ्य सत्कार करके अयोध्याधिपति नग्नजित् परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अपने मनमाने इच्छानुरूप वरको आपहीसे आये देखकर नरेन्द्रकन्या सत्या मनही मन उन्हीको अपना पति मानकर कहने लगीं कि "यदि मैं आजतक अपने व्रतका पालन करती रही हूँ तो अग्निदेवके अमोघ आशीर्वादसे यह श्यामसुन्दर ही मेरे पति हों" ॥ ३६ ॥ नारायणका पूजन करके राजा नग्नजित्ने कहा कि "हे नारायण! हे जगन्नाथ! आप आत्मानन्दमें मग्न, अतएव सब प्रकार पूर्ण हैं; मैं क्षुद्र व्यक्ति आपका कौन कार्य करनेको समर्थ हूँ? लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिव और अन्यान्य लोकपालगण जिनके चरणकमलोंके रजको अपने शिरपर सादर स्थान देते हैं, जो उचित समयपर अपने बनायेहुए धर्मसेतुकी रक्षाके लिये लीलाललाम देह धारण करते हैं उन आपको हम क्या करके सन्तुष्ट कर सकते हैं?" ॥३७॥३८॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—हे कुरुनन्दन! भगवान् कृष्णचन्द्र आसनपर सुखपूर्वक बैठकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे मुसकातेहुए कहने लगे कि "हे राजन्! कवियोने अपने धर्मका पालन करनेवाले क्षत्रियके लिये 'कुछ माँगना' निन्दित कहा है; तथापि आपसे सुहृद्भाव होनेकी लालसासे हम आपकी कन्या माँगते हैं। किन्तु हम कन्याका मूल्यस्वरूप कुछ धन नहीं देंगे" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ **राजाने कहा**—"हे नाथ! आप सम्पूर्ण गुणोंका एकमात्र आधार हैं एवं आपके शरीरमें अनिन्दिता कमला नित्य निरन्तर निवास करती हैं, अतएव हे प्रभो! आपसे अधिक उत्तम एवं प्रार्थनीय और कौन कन्याका वर मिल सकता है? ॥ ४१ ॥ किन्तु हे यदुश्रेष्ठ! कन्याके योग्य वर पानेके लिये अर्थात् प्रार्थना करनेवाले पुरुषोंके पराक्रम व बलकी परीक्षाके लिये मैंने पहलेसे एक प्रण कर रक्खा है ॥ ४२ ॥ हे वीर! ये सात बैल दुर्दान्त हैं, इनको अबतक कोई वीर अपने वशमें नहीं कर सका। इन्होने अनेक क्षत्रियोंके कुमारोंका अङ्गभङ्ग करके उनको हतोत्साह कर दिया है ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन! हे लक्ष्मीनाथ! यदि ये आपके द्वारा परास्त हों तो आप ही इस कन्याके अभिमत वर

होंगे" ॥ ४४ ॥ राजन्! इसप्रकार राजाका प्रण सुनकर वासुदेवने दुपट्टेको कसकर कमरसे बाँध लिया और सात भिन्न भिन्न रूप धरकर लीलापूर्वक उन दुष्ट बैलोंको पकड़कर रस्सियोंमें नाथ लिया। भगवान्‌ने इसप्रकार जिनका घमण्ड चूर हो गया है और वेग नष्ट हो गया है उन लीलापूर्वक नाथेगये बैलोंको लड़का जैसे लकड़ीके बैलोंको खींचे वैसे घसीटा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ यह देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने विस्मयपूर्वक आनन्दसे अपनी कन्याका हाथ भगवान् कृष्णचन्द्रको पकड़ा दिया। प्रभुने भी अपने सदृश भार्या नाग्नजितीसे विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ४७ ॥ राजा नग्नजित्‌की रानियाँ भी कन्याको श्रीकृष्णऐसे प्रिय पति प्राप्त हुए, यह देखकर परम आनन्दको प्राप्त हुईं, आनन्दसे उनके शरीरोंमें रोमांच हो आया। इस विवाहके अवसरपर राजभवनमें और पुरीमें बड़ा ही उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शङ्ख, भेरी, ढोल आदि माङ्गलिक बाजे बजनेलगे। स्त्रियाँ गानेलगीं और ब्राह्मणगण अमोघ आशीर्वाद देनेलगे। विविध वस्त्र और माला आदिसे अलंकृत नरनारीगण वर और वधूको आशीर्वाद देकर प्रसन्नता प्रकट करनेलगे। राजाने कण्ठमें पदक पहनेहुए सुन्दर वेशवाली तीन हजार सुन्दरी युवती दासियाँ, भलीभाँति सजीहुई दस हजार गौवें, नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, करोड़ घोड़े एवं नौ पद्म दास यौतुकमें दिये। परम आनन्दमें मग्न कोशलनरेशने कन्या और दमादको रथपर चढ़ाकर बिदा किया और स्नेहवश रक्षाके लिये बहुत सी सेना साथ करदी। कोशलनरेश इसप्रकार कन्या व दमादको बिदा कर अपने पुरको लौट गये और सुखपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इधर जिन राजोंके घमण्डको यादवोंने और नग्नजित्‌के बैलोंने भग्नकर डाला था उन्होने जब सुना कि कृष्णचन्द्र उसी कन्याको ब्याह कर लिये जाते हैं तब वे ईर्ष्यावश सहन न कर सके। उन्होने राहमें आकर कृष्णचन्द्रको घेर लिया और इनपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे। कृष्णचन्द्रके साथ उनके प्रिय सखा गाण्डीवधनुपधारी अर्जुन भी थे। उन्होने अपने बन्धु कृष्णकी प्रीतिके लिये धनुष चढ़ाकर बाणोंकी वर्षासे विपक्षीय राजालोगोंको यों भगा दिया जैसे सिंह छोटे छोटे मृगोंको भगा देता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ देवकीके पुत्र यदुश्रेष्ठ भगवान्‌ने वैवाहिक सामग्री(यौतुक)सहित, सत्याके साथ द्वारका पुरीमें प्रवेश किया। इसप्रकार भगवान् कृष्ण द्वारका पुरीमें रहकर विहार करनेलगे ॥ ५५ ॥ इस विवाहके उपरान्त कृष्णचन्द्रने अपनी बुआ श्रुतकीर्तिकी कन्या केकयदेशजा भद्रासे विवाह किया। भद्राके भाई सन्तर्दन आदिने स्वयं सादर बुलाकर कृष्णको अपनी बहन ब्याह दी ॥ ५६ ॥ इस विवाहके उपरान्त जैसे गरुड़ अकेले ही अमृत हर लाये थे वैसेही कृष्णचन्द्र अकेले जाकर मद्रदेशके राजाकी कन्या सुन्दर लक्षणवाली सुलक्षणाको स्वयंवरसे हर लाये ॥ ५७ ॥

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ॥
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

राजन्! इसप्रकार श्रीकृष्णके हजारों स्त्रियाँ हुईं। वह भूमिनन्दन नरकासुरको मारकर उसके अन्तःपुरसे परम सुन्दरी सोलह हजार एक सौ कन्याएँ हर लाये ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितम अध्याय

भौमासुरवध

राजोवाच—यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! भौमासुरने इतनी कन्याओंको क्यों अपने अन्तःपुरमें बन्द कर रक्खा था एवं भगवान् कृष्णने उस असुरको क्यों और कैसे मारा? यह सब विष्णु भगवान्के विक्रमका विषय आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! भौमासुरने इन्द्रकी माता अदितिके कुण्डल और इन्द्रका छत्र (यद्यपि वह छत्र वरुणका था, परन्तु उसके छीन जानेसे इन्द्रका ही अपमान हुआ, क्योंकि इन्द्र सब लोकपालोंमें प्रधान है) बलपूर्वक छिन लिया एवं भूमिवंशज मन्दरशिखरनामक महामणि जो इन्द्रके पास था वह भी लिया। तब इन्द्रने कृष्णचन्द्रसे आकर भौमासुरकी दुष्टताका सब वृत्तान्त कहा। श्रीकृष्ण भगवान् उसी समय अपनी भार्या सत्यभामाको साथ ले, गरुड़पर चढ़कर भौमासुरके प्राग्ज्योतिषनामक पुरको गये। वह नगर बड़ा ही दुर्गम था। क्योंकि वह गिरिदुर्ग और शस्त्रदुर्गसे सुदृढ़ था एवं पर्वतों और शस्त्रोंके आवरणोंके बाद जल, अग्नि और वायुके आवरणोंसे सुरक्षित था। इसप्रकार वह नगर चारो ओरसे सुरक्षित और घिरा हुआ था। इसके सिवा मुर दैत्यके दश सहस्र अत्यन्त प्रचण्ड पाशोंद्वारा चारो ओरसे घिरा हुआ था। तात्पर्य यह कि उसके भीतरतक पहुँचना शत्रुके लिये कठिन ही नहीं, वरन् एक प्रकारसे असंभव ही था। किन्तु गदाधर कृष्णने पहुँचतेही गदाके प्रहारसे पहाड़ोंके आवरणको तोड़ डाला, बाणोंके प्रयोगसे शस्त्रोंके आवरणोंको नष्ट कर दिया, चक्रसे अग्नि, जल और वायुके आवरणोंको एवं खड्गसे मुर दैत्यके पाशोंको नष्ट किया तथा तदनन्तर प्रचण्ड शङ्खनादसे यन्त्रोंको तथा गुरु गदाके आघातसे शत्रुपक्षवाले साहसी वीरोंके हृदयोंके साथ

ही पुरके प्राकार (चहारदीवारी)को तोड़ डाला। उससमय पाँच शिरवाले मुर दैत्यके कानमें पाञ्चजन्यकी प्रलयकालीन वज्रपातके समान घोर ध्वनिने प्रवेश किया। वह दैत्य जलके भीतर पड़ा सो रहा था, सो शङ्खका शब्द सुनते ही उठ बैठा। वह दैत्य प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान उग्र मूर्ति धरकर, त्रिशूल हाथमें ले, सर्प जैसे गरुड़पर चोट करनेको झपटे वैसे ही पाँचो मुख फैलाकर मानो तीनो लोकोंको लील लेगा यों कृष्णकी ओर वेगसे चला। उसने वह त्रिशूल बड़े वेगसे गरुड़के ऊपर मारा एवं पाँचो मुखोंसे भयानक शब्द किया। वह शब्द आकाश-मण्डल, स्वर्गलोक और दशो दिशाओंमें भर गया, अर्थात् उस शब्दसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त होगया ॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥ भगवान्‌ने जब वह त्रिशूल गरुड़की ओर आते देखा तब शस्त्रकौशलप्रयोगपूर्वक दो बाणोंसे उसके तीन खण्ड कर डाले और फिर दैत्यके फैलेहुए मुखोंमें कई तीक्ष्ण बाण मारे। बाणोंकी चोटसे व्याकुल और कुपित दैत्यने भी कृष्णचन्द्रपर गदाका प्रहार किया। गदाको अपनी ओर आते देख गदके अग्रज कृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। तब निःशस्त्र होनेपर वह दैत्य दोनो हाथ उठाकर कृष्णकी ओर झपटा। तब अजित भगवान्‌ने लीलापूर्वक सुदर्शन चक्रसे उसके पाँचो शिर काट डाले। मुरके शिर कट-गये और प्राण निकलगये तब वह इन्द्रके तेजसे जिसके शिखर कटगये हों उस पर्वतके समान जलके भीतर गिर पड़ा। ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और वरुण नाम मुर दैत्यके सातो पुत्र पिताके वधसे आतुर होकर भौमा-सुरकी आज्ञासे वदला लेनेके लिये उत्साह करके चले एवं पीठनाम एक असुरको सेनापति बनाकर युद्ध भूमिमें आये। वे खड्ग, बाण, गदा, शक्ति, ऋष्टि, शूल आदि शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगे। तब अमोघवीर्य भगवान् कृष्णने उक्त शस्त्रोंको अपने बाणोंसे तिल तिल करके काटडाला एवं शिर, कन्धे, भुजा, चरण और कवच जिनके कटगये हैं उन मुरके पुत्रोंको पीठनाम सेनापति सहित यमपुरको भेज दिया। पृथ्वीका पुत्र भौमासुर इसप्रकार अच्युतके चक्र और बाणोंसे अपनी सेना व सेनापतियोंको परास्त होते देख अत्यन्त कोप करके समुद्रसम्भव, मदमत्त हाथीपर चढ़कर युद्ध करनेके लिये निकला। उसके साथ बहुतसे समुद्रसंभव हाथी थे, जिनके गण्डस्थलसे निरन्तर मदकी धारा बह रही थी। तदनन्तर सूर्यके ऊपर विद्युत्युक्त मेघके समान गरुड़की पीठपर सत्यभामासहित विराजमान कृष्णको देखकर नरकासुरने उनपर एक शतघ्नी चलाई। योद्धालोग भी अस्त्र और शस्त्र चलाकर संग्राम करनेलगे। भगवान् कृष्णने उसी क्षण विचित्रपत्रयुक्त सुतीक्ष्ण बाणोंसे भौमासुरकी सेनाके घोड़े और हाथियोंका विनाश किया एवं पैदल व रथी लोगोंके बाहु, ऊरु, कन्धे व शिर आदि अङ्ग तथा शरीरोंको छिन्न भिन्न कर दिया ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ हे कुरुश्रेष्ठ! योद्धालोगोंने जो अस्त्र

शस्त्र कृष्णपर चलाये वे पास भी नहीं आने पाये, बीचहीमें कृष्णचन्द्रने तीन तीन तीक्ष्ण बाणोंसे एक एक अस्त्र और शस्त्रके कई कई टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥ कृष्णचन्द्रको अपनी पीठपर चढ़ायेहुए पक्षिराज गरुड़ भी अपने दोनो विशाल परोंकी थपेड़से मदमत्त मातङ्गदलको दलित करनेलगे। गरुड़के प्रचण्ड तुण्ड (चोंच), पक्ष और नखोंके प्रहारसे पीड़ित हाथियोंका झुण्ड युद्धभूमिमें न टिकसका और युद्धसे विमुख होकर नगरकी ओर भागा। अब नरकासुर अकेला ही रह गया। गरुड़ने दैत्यसेनाको भगा दिया–यह देखकर नरकासुरने गरुड़के ऊपर एक अमोघ शक्ति चलाई। किन्तु गरुड़के अङ्गमें जब इन्द्रका वज्र भी विफल होगया तब वह शक्ति क्या थी? जैसे फूलोंकी माला खींचकर मारनेसे गजराजको कुछ व्यथा नहीं होती और वह वैसे ही खड़ा रहता है वैसे ही गरुड़जी भी जहाँके तहाँ खड़े रहे ॥१८॥१९॥ ॥ २० ॥ तब भौमासुरने कृष्णको मारनेके अभिप्रायसे त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु उसकी इच्छा सफल नहीं हुई। क्योंकि त्रिशूल फेंकनेके पहले ही कृष्णने हाथीपर सवार नरकासुरका शिर तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे काट डाला। कुण्डल और किरीट मुकुटसे सुशोभित नरकासुरका कान्तिमान् शिर कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देखकर दैत्यलोग हाहाकार करनेलगे और ऋषिगण व देवतागण जय जय और साधु साधु कहकर प्रसन्नता प्रकट करतेहुए मुकुन्दपर फूलोंकी वर्षा व उनकी स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ भौमासुरके मरनेपर पृथ्वीने वैजयन्ती माला व वनमाला, तपायेहुए सुवर्णके बनेहुए रत्नमण्डित चमचमातेहुए कुण्डल, वरुणका छत्र एवं मन्दरशिखर नाम महामणि लाकर कृष्ण भगवान्‌को देदी और फिर हाथ जोड़, नम्रतापूर्वक भक्तिपूर्ण अन्तःकरणसे उन्ही देवदेव संसारके स्वामी श्यामसुन्दरकी इसप्रकार स्तुति करनेलगी ॥ २३ ॥ २४ ॥ पृथ्वीने कहा—"हे देवदेव! हे ईश्वर! हे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले! हे परमात्मा! आप निराकार निर्गुण होकर भी भक्तोंकी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करते हैं। आपको प्रणाम है ॥२५॥ हे अन्तर्यामी! हे कमलनाभ! हे कमललोचन! आपको प्रणाम है। आपके चरण कमलतुल्य कोमल हैं और आपके वक्षःस्थलमें कमलके फूलोंकी माला शोभायमान है ॥ २६ ॥ हे भगवन्! हे वासुदेव! हे विष्णु! हे बीजस्वरूप आदिपुरुष! हे पूर्णज्ञानमय! आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ आप ब्रह्म अर्थात् बृहत् हैं, आपकी शक्ति अनन्त है; अतएव जन्मरहित होकर भी आप जगत्‌के जन्मदाता परम पिता हैं। आप उत्कृष्ट और निकृष्ट–सब प्रकारके प्राणीयोंके आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं, हे अन्तर्यामी! आपको प्रणाम है ॥२८॥ प्रभो! आप विश्वकी सृष्टिकी इच्छासे उत्कट रजोगुणको, जगत्‌को पालनेकी इच्छासे सतोगुणको एवं संसारके संहारकी इच्छासे तमोगुणको समय समयपर भजते हैं, तथापि मायामें लिप्त नहीं होते। अर्थात् उक्त तीनो गुणोंसे आच्छन्न नहीं होते। हे जगत्पति! काल,

प्रकृति और पुरुष–सब आप ही हैं ॥२९॥ भगवन् ! आप अद्वितीय हैं, अर्थात् आपसे भिन्न और कुछ नहीं है। 'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय एवं इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता;–इन्हीसे चराचर जगत्का संगठन होता है'–आपमें लोगोंको इसप्रकारका भ्रम होता है (अर्थात् वास्तवमें आपहीसे इस जगत्की रचना होती है, क्योंकि उक्त पृथ्वी आदि उपादानोंकी सृष्टि आपहीसे होती है) ॥३०॥ हे शरणागत जनोंके दुःखोंको दूरकरनेवाले ! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीत होकर आपके चरणोंकी शरणमें आया है–इसकी रक्षा करिये और अपना कलिकलुषनाशन करकमल इसके शिरपर धरिये" ॥ ३१ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! भूमिने प्रणत होकर जब इसप्रकार विनीतवचनोंसे स्तुति और प्रार्थना की तब भगवान् कृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर भगदत्तको अभयदान करके सम्पूर्ण समृद्धिसम्पन्न भौमासुरके भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ राजन् ! महापराक्रमी भौमासुर राजा लोगोंकी सोलह हजार एक सौ कन्याएँ बलपूर्वक हर लाया था। श्रीकृष्णने अन्तःपुरमें जाकर उन सब कन्याओंको देखा ॥ ३३ ॥ वे सब स्त्रियाँ नरवर कृष्णको अन्तःपुरमें देखते ही मोहित होगईं एवं मनही मन उनको ईश्वरका भेजा हुआ अपना अभीष्ट पति मानकर इसप्रकार विधातासे प्रार्थना करनेलगीं कि "हे विधाता ! यही कृष्णचन्द्र हमारे वर हों, हमारी इस इच्छाको आप स्वीकृत करिये"। विधातासे यों सबने अलग अलग प्रार्थना की और अनुरागपूर्वक अपने अपने हृद्दमें श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति स्थापित कर ली अर्थात् अपना अपना हृदय कृष्णको अर्पण कर दिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कृष्णचन्द्रने उन सब स्त्रियोंको पालकियोंपर बिठाकर द्वारकापुरीको भेज दिया। उनके साथ ही महाकोष, रथ, अश्व, अतुल ऐश्वर्य और वेगगामी ऐरावतके वंशमें उत्पन्न, चार दाँतवाले, शुक्ल वर्ण चौंसठ गजराज भी द्वारकापुरीको भेजे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्र अपनी प्रिया सत्यभामाके साथ उधरहीसे इन्द्रलोकको गये। महेन्द्र और इन्द्राणीने उनका आदर सत्कार व पूजन किया। भगवान्ने अदितिको उनके कुण्डल दिये और द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। लौटतेसमय सत्यभामाके अनुरोधसे भगवान्ने कल्पवृक्षको उखाड़कर गरुड़की पीठपर रखलिया। उस समय इन्द्र आदि देवगण युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए, तब कृष्णचन्द्रने उनको परास्त किया और कल्पवृक्ष लेकर द्वारका पुरीको प्रस्थान किया। कृष्णचन्द्रने कल्पवृक्ष लाकर सत्यभामाके भवनकी बगियामें लगा दिया; उससे भगवानके उपवनकी और भी शोभा अधिक होगई। कल्पवृक्षके आसवरूप गन्धके लोलुप स्वर्गलोकके भ्रमरगण कल्पवृक्षके पीछे पीछे स्वर्गलोकसे आकर द्वारकापुरीमें रहनेलगे। शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! अहो देवतोंकी प्रकृति कैसी तामसी है ! जिन इन्द्रने अपने प्रयोजनके लिये कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना किरीटमुकुट रख दिया वही इन्द्र प्रयोजन सिद्ध

हो जानेपर उन्ही अपने सहायक स्वामी कृष्णसे उसी समय युद्ध करनेके लिये उद्यत होगये ॥३८॥३९॥४०॥४१॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रने एक ही दिन एक ही मुहूर्तमें उन सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंसे भिन्न भिन्न भवनोंमें उतने ही रूप धर कर विवाह किया ॥ ४२ ॥ उन रानियोंके भवन ऐसे समृद्धिसम्पन्न थे कि उनके समान वा अधिक कोई भवन तीनो लोकोंमें नहीं होगा। जिनके कर्म अचिन्त्य हैं वह अपने ही आनन्दसे परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्र, उन भवनोंमें निरन्तर निवास करके गृहस्थ धर्मका आचरण करनेवाले साधारण व्यक्तिके समान जैसे कोई कामी-विषयी पुरुष हो वैसे अपनी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंसे रमण करनेलगे ॥ ४३ ॥ जिनकी पदवीको ब्रह्मा आदि भी भलीभाँति नहीं जानते उन्ही लक्ष्मीपतिको पतिरूपसे पाकर वे सुन्दरियाँ अनुरागपूर्ण हँसी, चितवन एवं लज्जायुक्त नवसंगमकी बातचीत आदिके द्वारा प्रसन्न करती हुई आनन्दपूर्वक नित्य निरन्तर भजने लगीं ॥ ४४ ॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै-
र्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥

राजन्! सेवामें सैकड़ों दासियोंके उपस्थित रहनेपर भी वे रानियाँ आपही श्रीकृष्णचन्द्रके आते समय उठकर आदरपूर्वक उनको भीतर लातीं, सुन्दर आसनपर बिठलातीं, पैर धोतीं, पान देतीं, पैर दबातीं, पङ्खा डुलातीं और चन्दन-माला आदिसे आभूषित करतीं, केशोंका संस्कार करतीं, स्नान करातीं एवं अनेक प्रकारके उपहार देकर सेवा करतीं थी ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितम अध्याय

श्रीकृष्ण व रुक्मिणीका वार्त्तालाप

श्रीशुक उवाच—कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥
पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! एक समय जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीजीके भवनमें शय्यापर सुखसे बैठेहुए थे और रुक्मिणीजी सखियोंसहित पङ्खा डुलातीहुई अपने पतिकी सेवा कर रही थीं ॥ १ ॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक

इस विश्वको उत्पन्न करके पालन और संहार करते हैं वही जन्मरहित होकर भी अपनी बनाई हुई धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ राजन्! वह रुक्मिणीका भवन अत्यन्त समृद्धिसम्पन्न था। उसमें मोतियोंकी झालरें जिनमें टँकी हैं ऐसे चन्द्रातप (चँदोवे) तनेहुए थे, ठौर ठौर पर मणिमय दीपक जल रहे थे, शोभाके लिये अनेक प्रकारके फूलोंके गुच्छे और मल्लिकाकी मालाएँ सजाई हुई थीं–जिनमें सुगन्धके लोभसे भ्रमरपुञ्ज बैठेहुए गुँजारव करते थे। सुन्दर चाँदनी और उपवनमें लगेहुए कल्पवृक्षके फूलोंकी महक झरोखोंकी राहसे जाकर उस भवनके भीतर रहनेवालोंके हृदयको प्रफुल्लित और मनको प्रसन्न करती थी एवं अगुरुकी धूपका धुआँ उस भवनको आमोदित कियेहुए था ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ राजन्! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी उसी भवनमें पलँगके ऊपर दूधके फेनेके समान उज्ज्वल बिछौनोंपर सुखसे बैठेहुए अपने पति जगत्पतिकी सेवा करनेलगीं। देवी रुक्मिणी रत्नदण्डयुक्त वालव्यजन सखीके हाथसे लेकर आप डुलानेलगीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीजी मणिमय नूपुरोंको चरणोंकी थपकसे बजाती हुई कृष्णचन्द्रकी सेवामें तत्पर थीं। उनकी कलाइयोंमें रत्नमणिमय कङ्कण, अँगुलियोंमें बहुमूल्य नग जिनमें जड़े हैं ऐसी अँगूठियाँ और हाथमें श्वेतव्यजन (पंखा) शोभायमान था। अञ्चलमें छिपेहुए उन्नत कुचोंमें लगेहुए कुङ्कुमकी प्रभासे अरुणवर्ण हारकी कान्ति और नितम्बोंपर विराजमान अमूल्य काञ्ची (कर्धनी–तागड़ी) से रुक्मिणीजीकी अपूर्व शोभा देख पड़ती थी ॥ ८ ॥ रुक्मिणीजी साक्षात् लक्ष्मीका रूप थीं, उनका रूप मायामानवदेहधारी श्रीकृष्णके अनुरूप था; अलकजाल, दोनो कुण्डलोंकी झलक एवं पदक आदि आभूषणोंसे विभूषित कण्ठकी चारो ओर फैल रही कान्तिसे सुशोभित उनके आननचन्द्रसे मुसकानमय अमृतकी वर्षा हो रही थी। ऐसी अनन्यगति रुक्मिणीजीकी ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक मन्द मन्द मुसकातेहुए कृष्णचन्द्रने कहा–"हे राजकुमारी! लोकपालोंके समान वैभवशाली महानुभाव धनवान्, श्रीमान् एवं रूप, उदारता और बलद्वारा समृद्ध राजा लोग तुमसे विवाह करना चाहते थे। मदनमत्त शिशुपाल तुमसे ब्याह करनेके लिये दलबलसहित आचुका था; तुम्हारे भाई और पिताने भी तुम्हारा विवाह शिशुपालके साथ करनेका निश्चय कर लिया था। तथापि सब प्रकार अपने योग्य उक्त राजकुमारोंको छोड़कर तुमने, जो किसी बातमें अपने समान नहीं हैं उन हमऐसोंको अपना पति क्यों बनाया? ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु! हम राजा लोगोंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं, क्योंकि हमने अपनेसे बली लोगोंसे वैर बाँध रक्खा है। फिर हम राज्यासनके अधिकारी भी नहीं हैं ॥ १२ ॥ जिनका आचरण दुर्बोध है और जो स्त्रियोंके वशवर्ती नहीं हैं उन पुरुषोंकी पदवीका अनुसरण करनेवाली स्त्रियाँ प्रायः कष्ट

पाती और दुःख उठाती हैं ॥ १३ ॥ हे सुमध्यमे ! हम लोग निष्किञ्चन हैं और निष्किञ्चन जनही हमसे स्नेह करते हैं। अतएव समृद्धिसम्पन्न लोग प्रायः हमको नहीं भजते ॥ १४ ॥ जो लोग धन, जन्म, ऐश्वर्य, आकार और अवस्थामें अपने समान हों उन्हीसे मित्रता और विवाह करना सोहता है। उत्तम और अधमके साथ मित्रता और विवाह होना कभी भला नहीं है ॥ १५ ॥ हे विदर्भ-राजकुमारी ! तुम दूरदर्शिनी नहीं हो, इसीकारण पूर्वोक्त नीतिको विना जाने तुमने मुझऐसे गुणहीन नरको भिक्षुकोंके (नारदके) मुखसे प्रशंसा सुनकर अपना पति ठीक कर लिया, वास्तवमें तुम ठगगई ॥ १६ ॥ अस्तु अब भी तुम जिसके सङ्गसे इसलोक और परलोकमें सुख पासको ऐसे किसी अपने योग्य श्रेष्ठ क्षत्रियको ढूँढलो ॥ १७ ॥ हे सुन्दर ऊरूवाली सुन्दरी ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र आदि राजा लोग और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी भी हमसे वैरभाव रखता है। वीर्यके मदसे अन्धे हो रहे उक्त घमण्डी राजोंका गर्व खर्व करनेके लियेही मैं तुमको हर लाया था। क्योंकि असत् जनोंके तेजको मिटाना हमारा कर्तव्य है ॥ १८ ॥ १९ ॥ राजकुमारी ! तुम निश्चय जानो कि हम उदासीन हैं। हमको स्त्री, पुत्र और धन आदिकी कामना नहीं है, क्योंकि हम देह और गेह दोनोंके विषयोंमें निर्लिप्त हैं, आत्मलाभसे ही पूर्ण हैं। अतएव दीपादिककी ज्योतिके समान क्रियासे रहित केवल साक्षीमात्र हैं" ॥ २० ॥ शुकदेवजी कहते हैं— राजन् ! रुक्मिणीसे कृष्णचन्द्र कभी अलग न होते थे सब समय उनके निकट बने रहते थे; इसीकारण उन्होने समझा कि कृष्णचन्द्र मुझको ही सबसे बढ़कर मानते हैं। अतएव रुक्मिणीका दर्प दूर करनेके लिये इतना कहकर भगवान् चुप हो रहे ॥ २१ ॥ तीनो लोकके ईश्वर अपने प्यारे पतिके मुखसे ऐसे अप्रिय वचन, जैसे पहले कभी और नहीं सुने थे, सुनकर देवी रुक्मिणी बहुत ही भयभीत हुईं और उनका हृदय धड़कने लगा। वह अत्यन्त चिन्तित होकर अपने सुडौल नखोंकी प्रभासे और भी अरुण हो रहे चरणसे पृथ्वीको खोदती-हुई मुख नीचा करके रोनेलगीं। काजलमें मिलकर काले हो गये आँसुओंसे उनके पीन पयोधर भीग गये। दारुण मानसिक वेदनासे उनका कण्ठ रुँध गया, वह कुछ भी न कहसकीं। अत्यन्त दुःख, भय और शोकसे वह अचेत होगईं, हाथोंके कङ्कण शिथिल होकर खिसक गये और पंखा अलग गिर पड़ा। चिन्तासे चञ्चल शरीर भी, चेतनाशून्य होकर आँधीके झटकेसे जैसे कोई केलेका वृक्ष उखड़कर गिर पड़े वैसे पृथ्वीतलपर गिर पड़ा और बाल खुलकर बिखर गये। रुक्मिणीजी हँसीकी गम्भीरता न जानती थीं, इसीकारण उनकी यह दशा हुई। तब प्रियाके सुदृढ़ प्रेमको देखकर दयानिधान भगवान्को दया आगई, उसी समय उन्होने चतुर्भुज हो, झटपट पलँगसे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठा लिया

और दो करकमलोंसे उनके बिखरेहुए केश सँवारकर आँसू पोंछे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ महाराज! समझानेमें चतुर, साधुओंकी एकमात्र गति प्रभु देवकीनन्दनने, हँसीकी गम्भीरता न जाननेके कारण चिन्तित और दीन होरही एवं ऐसे गूढ़ उपहासके अयोग्य जो अनन्य प्रेम करनेवाली सती रुक्मिणीजी हैं उनको कृपापूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके अश्रुविकल नेत्र एवं शोकशुष्क पीन पयोधरोंको वस्त्रसे पोंछकर यों समझाना आरम्भ किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ भगवान्ने कहा—"हे वैदर्भी! तुम मेरेऊपर रोष न करना। मुझे भलीभाँति विदित है कि तुम मेरे सिवा किसी अन्य पुरुषको जानती भी नहीं। हे सुन्दरी! तुम्हारे मुखसे प्रणय-कोपको प्रकट करनेवाली बातें सुनने एवं प्रणयकोपके कारण फरक रहे तुम्हारे अधर, कुटिल कटाक्षोंसे सुशोभित अरुण अपाङ्ग तथा भ्रूभङ्गके रङ्गसे मनोहर मुख देखनेके लिये ही मैंने यह हँसी की थी। हे भीरु भामिनी! गृहस्थ लोगोंको गृहस्थाश्रममें यही परम लाभ है कि वे अपनी प्रियाके साथ हँसी दिल्लगीमें समयको व्यतीत करतेहुए मनको बहलाते हैं" ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! भगवान्ने जब इसप्रकार समझाया और कहा कि मैंने तुमसे हँसी की थी, तब विदर्भनन्दिनीको धैर्य हुआ और उनके हृदयसे प्रियके त्याग करनेका भय जाता रहा ॥ ३२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ! तब रुक्मिणीदेवी लज्जायुक्त मन्दमुसकानके साथ सुन्दर स्नेहपूर्ण कुटिल कटाक्षोंसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णके ऐश्वर्ययुक्त मुखको देखतीहुई इसप्रकार कहनेलगीं ॥ ३३ ॥ रुक्मिणीजीने कहा—"हे कमलनयन! आपने जो कहा कि 'मैं तुम्हारे सदृश न था, तुमने क्यों मेरे साथ बिवाह किया—' इत्यादि, सो सत्य ही है, मैं आपके योग्य नहीं हूँ। कहाँ आप ब्रह्मादि तीनो देवोंके अथवा तीनो गुणोंके अधीश्वर अर्थात् नियन्ता एवं दिव्य शक्तिसम्पन्न भगवान्! और कहाँ मैं गुणमयी प्रकृति! मैं आपके समान कहाँ हो सकती हूँ। अज्ञ अर्थात् सकाम लोग ही मेरे चरणोंकी सेवा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे विशालविक्रम! आपका यह कथन भी सत्य है कि 'हम राजोंसे डरकर समुद्रकी शरणमें बसे हैं'। क्योंकि शब्दादि गुणही राजमान होनेके कारण 'राजा' हैं, उनके भयसे ही मानो समुद्रतुल्य अगाध अर्थात् विषयोंसे अपरिच्छिन्न शुद्ध भक्तोंके हृदयस्थलमें आप शयन करते हैं, अर्थात् निश्चलभावसे प्रकाशमान हैं। आप निरवच्छिन्न ज्ञानमय परमात्मा हैं, आपका यह कहना भी ठीक ही है कि 'हमने बलवानोंसे वैर बाँध रक्खा है, और हमको राज्यकी इच्छा वा अधिकार नहीं है' इत्यादि, क्योंकि जिनकी प्रबल इन्द्रियाँ बाहरी विषयोंमें लिप्त हैं उनसे अथवा प्रबल कुत्सित इन्द्रियोंसे ही आपको विद्वेष है अर्थात् उनकी प्रतीति आपको नहीं है। हे नाथ! राजपद घोर अज्ञानरूप है, इसको पाकर मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यके

विवेकसे विहीन अन्धासा होजाता है। उस राजपदको जब आपके सेवकलोगोंने छोड़ दिया अर्थात् उसकी इच्छा नहीं करते तब आपके लिये कहना ही क्या है ॥३५॥ भगवन्! आपने अपने विषयमें और जो जो बातें कहीं हैं सो सब उचित और सत्य हैं। यथा, आपके चरणकमलके मकरन्दका सेवन करनेवाले मुनिजनोंके ही आचरण दुर्बोध हैं, पशुसमान अज्ञानी-विषयी मनुष्योंकी समझमें नहीं आते। जब आपका अनुसरण करनेवालोंका ही चरित्र अलौकिक एवं अचिन्त्य है तब हे भूमन्! स्वयं साक्षात् ईश्वर जो आप हैं उनके चरित्रका दुर्बोध वा अलौकिक होना कुछ आश्चर्य नहीं है ॥३६॥ हे स्वामी! जिन ब्रह्मादिकोंकी और सब लोग पूजा करते हैं वे भी आदरसहित आपका पूजन करते हैं; अतएव आप निष्किञ्चन नहीं हैं। किन्तु आप एक प्रकारसे निष्किञ्चन ही हैं। क्योंकि आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है। आप अन्तक हैं, ऐश्वर्यके मदमें अन्धे हो रहे, अतएव केवल अपने शरीरके लालन पालनमें निरत लोग आपको नहीं जानते। आप सब पूजनीय जनोंमें श्रेष्ठ हैं, ब्रह्मादिक जगत्पूज्य देवता भी इष्टदेव मानकर आपको भजते हैं एवं वे ही आपको भी प्रिय हैं ॥३७॥ अच्छी बुद्धिवाले लोग जिसके मिलनेकी अभिलाषसे सब वस्तुओंका त्याग कर देते हैं, आप वही सम्पूर्णपुरुषार्थमयफलस्वरूप परमात्मा हैं। भगवन्! पूर्वोक्त अच्छी बुद्धिवाले ब्रह्मादिसे ही आपका सेव्य-सेवकसम्बन्ध समुचित है। स्त्री पुरुषरूप हमारा सम्बन्ध आपके योग्य नहीं है, क्योंकि इस सम्बन्धसें आसक्तिके कारण प्राप्त-हुए भयंकर सुख-दुःखोंसे हमलोग आकुल हैं ॥ ३८ ॥ संन्यस्त मुनिगण ही आपके प्रभावको जानते और कहते हैं; 'आप जगत्के आत्मा और आत्मज्ञानके देनेवाले हैं'—यह जानकर ही ब्रह्मादिकोंको छोड़ मैंने आपको अपना पति बनाया है। आपकी भ्रुकुटियोंके वीचसे उत्पन्न जो काल है उसके वेगसे जिनके मङ्गल और वैभवका विनाश हो सकता है उन ब्रह्मादि देवतोंको पति बनाना मैंने उचित एवं उत्तम नहीं समझा ॥ ३९ ॥ हे गदाग्रज गदाधर! सिंह जैसे अपने गर्जनशब्दसे पशुपालकोंको भगाकर अपना आहार ले आता है वैसे ही आप शार्ङ्ग धनुषके नादसे राजोंको भगाकर अपना अंश अर्थात् भाग जो मैं हूँ उसको हर ले आये। वही आप उन्हीं राजोंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं—इस अभिप्रायके आपके वचन ठीक नहीं जान पड़ते ॥ ४० ॥ हे कमल-नयन! अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि महीशमौलिमुकुटमणि महा-राजोंने भजनकी अभिलाषसे चक्रवर्ती राज्य छोड़ दिया और आपकी पदवी पानेके लिये वनमें जाकर तपमें निरत हुए। क्या उनको किसी प्रकारका कष्ट मिला? अथवा वे आपकी पदवीको नहीं प्राप्त हुए? नहीं नहीं, वे सब कष्टोंके पार हो आपकी चरणपदवी पाकर परमानन्दमें लीन होगये हैं ॥ ४१ ॥ भगवन्! आप सब गुणोंकी खान हैं। आपके पादारविन्दोंका मकरन्द-गन्ध साधुओंके

द्वारा वर्णित है और लक्ष्मी निरन्तर उसका सेवन करती हैं, एवं भक्तजन उससे मोक्षको प्राप्त होते हैं। उसी चरणकमलमकरन्दकी सुवासको सूँघकर, अपने प्रयोजनको विवेककी शुद्ध दृष्टिसे देखनेवाली कौन कामिनी फिर किसी मरणशील एवं सर्वदा कालके भयसे शङ्कित अन्य पुरुषका आश्रय लेगी ? ॥ ४२ ॥ आप जगत्के अधीश्वर आत्मा हैं–इसलोक और परलोकमें सब अभिलाषाएँ पूरी करनेवाले हैं; यह जानकर अपने अनुरूप जो आप हैं– उनको मैं अपना पति बनाया। मेरी यही प्रार्थना है कि मैं देवता, पशु–पक्षी आदिकी, चाहे जिस योनिमें कर्मानुसार भ्रमण करूँ, सर्वत्र आपहीके चरणोंकी शरणमें रहूँ। नाथ! जो लोग आपको भजते हैं, आप समदर्शी व निःस्पृह होकर भी उनको भजते हैं, एवं आपके भजनद्वारा असत्य संसारसे मुक्ति मिलती है ॥ ४३ ॥ हे अच्युत! हे शत्रुनाशन! स्त्रियोंके गृहोंमें जो गधेके समान भार वहन करते हैं और बैलके समान नित्य गृहस्थीके व्यापारोंमें जुते रहकर क्लेश भोगते हैं, कुत्तेके समान जिनका निरादर होता है, बिलावके समान जो दीन बने रहकर सेवकोंके समान स्त्रीआदिकी सेवामें लगे रहते हैं वे आपके बतायेहुए(शिशुपालआदि)नरपतिगण उसी स्त्रीके पति हों जिसके कानोंमें कभी आपकी उन पवित्र कथाओंने प्रवेश नहीं किया–जिनको ब्रह्मा, शिव आदिकी सभाओंमें आदर मिलता है ॥ ४४ ॥ स्वामी! जिसने आपके चरणारविन्दमकरन्दकी सुगन्धको नहीं सूँघा वही मूढ़ स्त्री, ऊपर त्वचा, श्मश्रु, रोम, नख और केशोंसे आवृत एवं भीतर मांस, अस्थि, रक्त, कृमि, विष्ठा, कफ, पित्त और वातसे परिपूर्ण जीवन्मृत पुरुषको कान्तभावसे भजेगी ॥ ४५ ॥ हे कमलनयन! आप आत्मरत हो, मुझपर भी आपकी अत्यन्त अधिक दृष्टि नहीं है, तथापि मेरी यही प्रार्थना है कि आपके चरणोंमें मेरा मन लगा रहे। आप इस जगत्की बढ़तीके लिये उत्कृष्ट रजोगुणको स्वीकार करतेहुए जो मुझपर दृष्टि डालते हैं उसीको मैं आपका परम अनुग्रह मानती हूँ ॥ ४६ ॥ हे मधुसूदन! आपने जो कहा कि 'किसी अन्य अपने अनुरूप श्रेष्ठ क्षत्रियको ढूँढ लो'—सो आपका कथन मिथ्या नहीं है। क्योंकि जगत्में कोई कोई स्त्रियाँ। स्वामीके रहते भी अन्य पुरुषपर आसक्त हो जाती हैं–जैसे काशिराजकी कन्या शाल्वपर अनुरक्त और आसक्त होगई ॥ ४७ ॥ पुंश्चली स्त्रियोंका मन विवाह हो जानेपर भी नवीन नवीन पुरुषोंपर आसक्त होता रहता है। किन्तु चतुर बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे ऐसी असती स्त्रियोंसे कभी विवाह न करें, क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ दोनो कुलोंको कलङ्कित करती हैं, जिससे पुरुषकीभी इस लोकमें अकीर्ति और उसलोकमें दुर्गति होती है" ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे साध्वी! हे राजकुमारी! तुम्हारे मुखसे ऐसे ही वचन सुननेके लिये मैंने हँसी की थी। तुमने मेरे वाक्योंका यथार्थ अर्थ किया है ॥ ४९ ॥ हे कल्याणी! तुम्हारा चित्त मुझमें

अत्यन्त अनुरक्त है, अतएव मुक्ति और निर्वाणके लिये तुम जिन जिन वरोंको मुझसे माँगती हो वे सब तुमको सब समय प्राप्त हैं ॥ ५० ॥ हे पापरहित सुन्दरी! मैंने कुछ कठोर वाक्य कहकर तुमको कुपित करना चाहा, किन्तु तुम्हारे मनमें मेरा प्रेम वैसा ही बना रहा; इससे मुझको भलीभाँति विदित होगया कि तुम्हारा हृदय पति-प्रेमसे परिपूर्ण है और तुम पातिव्रत्य धर्मको भलीभाँति जानती हो ॥ ५१ ॥ मैं मोक्षका अधीश्वर अर्थात् देनेवाला हूँ; जो कामी नर या नारी तप और व्रत करके स्त्री-पुरुषोंके विषयभोगसुखकी कामनासे मेरा भजन करते हैं वे अवश्य ही मेरी मायामें मोहित हो रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे मानिनी! मुक्ति और सब सम्पत्तियाँ मुझमें अवस्थित हैं और मैं सब सम्पत्तियोंका अधीश्वर हूँ। जो लोग मुझको पाकर मुझसे सम्पत्ति माँगते हैं वे अवश्य ही अभागे हैं। जो विषय नरकमें अर्थात् अत्यन्त निकृष्ट योनियोंमें भी मिलते हैं उनकी इच्छा रखनेवाले विषयी लोगोंको उन निकृष्ट योनियोंका सङ्गम ही भला जान पड़ता है ॥ ५३ ॥ अतएव हे गृहेश्वरी! यह अत्यन्त हर्ष और मङ्गलकी बात है कि तुमने आजतक निष्काम भावसे मेरी सेवा की है। अन्य स्त्री ऐसी सेवा कभी नहीं कर सकती। विशेषकरके जिनकी बुद्धि दूषित है, अतएव जो केवल शरीरके लालनपालनमें ही तत्पर हैं उन छलछन्द करनेवाली स्त्रियोंके लिये तो यह अत्यन्त दुष्कर कर्म है ॥ ५४ ॥ हे मानिनी! मुझको गृहस्थाश्रममें तुमऐसी प्रणयपूर्ण गृहिणी और नहीं देख पड़ती। तुमने मेरी प्रशंसा सुनकर विवाहके समय आयेहुए राजोंपर दृष्टि न करके अत्यन्त गुप्त रीतिसे ब्राह्मण देवताको मेरे निकट भेजा ॥ ५५ ॥ तुम्हारे भाईको मैंने विरूप बना दिया और द्यूतक्रीड़ामें वलदेवने उसको मार ही डाला, परन्तु तुमने मेरे वियोगके भयसे उस असह्य घोर दुःखको सह लिया और कुछ भी नहीं कहा। इन्ही बातोंसे तुमने मुझको जीत लिया है ॥ ५६ ॥ तुमने मुझको ही पति बनानेका दृढ़ निश्चय करके अपने प्रणकी सूचना देनेके लिये मेरे पास दूतको भेजा, और जब मेरे आनेमें विलम्ब हुआ तब सब जगत् शून्य देख तुमने विचार किया कि यह शरीर और किसीके योग्य नहीं है, इसका न रहनाही अच्छा है। मैं तुम्हारे प्रेमका बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ-जो तुमने किया सो तुम्हारे ही योग्य है। मैं केवल तुमको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता रहता रहूँगा" ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥
आस्थितो गृहमेधीयान्धर्माँल्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! इसीप्रकार आत्माराम जगदीश्वर कृष्णचन्द्र-मनुष्योंका अनुकरण करके एकान्तकी बातचीत आदिके द्वारा रमा (रुक्मिणी) को

रमातेहुए स्वयं विभु तथा जगत्के गुरु होकर भी गृहस्थोंके समान अन्यान्य रानि-योंके भवनोंमें रहकर गृहस्थधर्मका पालन करनेलगे ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितम अध्याय

रुक्मीका वध

श्रीशुक उवाच—एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः ॥
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णकी पूर्वोक्त रानियोंमें हरएकने दस दस पुत्र उत्पन्न किये। वे सब पुत्र किसी बातमें अपने पितासे कम नहीं थे ॥ १ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र आत्माराम हैं—इस बातको रानियाँ नहीं जानती थीं। इसीकारण श्रीकृष्णको अपने अपने घरमें निरन्तर निवास करते देखकर हरएक स्त्री समझती थी कि "श्रीकृष्णचन्द्र मुझको ही सबसे अधिक चाहते हैं," किन्तु वे रानियाँ स्वयं परिपूर्ण भगवान्के सुन्दर मुखकमल, विशाल भुजा और नेत्र, प्रेमयुक्त हँसी, रसीली चितवन एवं मनोहर वार्तालापसें आप ही मोहित होजानेके कारण उनके मनको अपने लीलायुक्त हाव-भावसे वशीभूत नहीं कर सकीं ॥ २ ॥ ३ ॥ वे एकसे एक सुन्दरी सोलह सहस्र रानियाँ गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्षोंके द्वारा सूचित 'भाव'से मनोहर, कमानके समान भ्रूमण्डलके द्वारा चलाये जानेवाले सुरत-मन्त्र-पटु कामके वाणों व अन्यान्य उपायोंसे भी ईश्वरकी इन्द्रि-योंको अपने वशमें नहीं कर सकीं ॥ ४ ॥ राजन्! ब्रह्मा आदि देवका भी जिनकी पदवीको नहीं जानपाते उन रमापतिको, पतिके रूपमें, निरन्तर बढ़रहे आनन्दके साथ अनुरागपूर्ण हँसी, चितवन, नवसङ्गमकी उत्सुकता आदि विविध हावभाव व विभ्रमोंसे भजकर उन रानियोंने अपने अपने जन्मको सफल किया। हरएक रानीके घरमें सैकड़ों दासियाँ थीं, तथापि (स्वामीके) आतेसमय प्रत्युद्गमन, आसनसमर्पण, चरणप्रक्षालन, उत्तम सामग्रियोंसे पूजन तथा चन्दनमाला व अन्यान्य सुगन्ध वस्तु देना, उबटना लगाना, शिर मलना, स्नान कराना, पान देना, पैर दबाना, शयन करना—इत्यादि कर्मोंसे प्रभुकी सदा सेवकाई करती थीं ॥ ५ ॥ ६ ॥ राजन्! अब दस पुत्र उत्पन्न करनेवाली कृष्णकी रानियोंमें जिन आठ पटरानियोंका पहले वर्णन किया गया है उनके पुत्र प्रद्युम्न आदिका विवरण सुनिये ॥ ७ ॥ रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यशाली चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। ये

सब किसी बातमें पितासे न्यून न थे। ऐसेही सत्यभामाके गर्भसे भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। जाम्बवतीके गर्भसे साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण, क्रतु नाम सब बातोंमें पिताके समान दस पुत्र उत्पन्न हुए। नाग्नजितीके गर्भसे वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु और श्रीमान् कुन्ति नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। कालिन्दीके गर्भसे श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। माद्रीके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। मित्रविन्दाके गर्भसे वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महांशु, पावन, वह्नि और क्षुधि नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। भद्राके गर्भसे संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, राम, आयु और सत्य नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ राजन्! भोजकट नगरमें रहनेवाले रुक्मिणीके बड़े भाई रुक्मीकी कन्या रुक्मवतीके साथ प्रद्युम्नका विवाह हुआ। प्रद्युम्नके अनिरुद्धजी हुए ॥ १८ ॥ महाराज! पूर्वोक्त आठ पटरानियोंके तथा अन्यान्य सोलह हजार एक सौ रानियोंके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंके भी करोडों पुत्र उत्पन्न हुए ॥१९॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि—"ब्रह्मन्! रुक्मीने अपने शत्रुके पुत्रको अपनी कन्या कैसे दी? वह तो कृष्णका कट्टर शत्रु था। कृष्णने अपमानपूर्वक जीतकर उसको छोड़ दिया था, अतएव वह कृष्णको मारनेके ताकमें रहता था। शत्रुने शत्रुके साथ विवाहसम्बन्ध कैसे किया, सो मुझसे कृपापूर्वक कहिये। योगीलोग भूत, भविष्य, वर्तमान, अतीन्द्रिय (जिसमें इन्द्रियोंकी गम्य न हो) दूरस्थ और परोक्षकी सभी बातें भलीभाँति देख पाते हैं"। शुकदेवजीने कहा—राजन्! यद्यपि श्रीकृष्णके हाथोंसे हुए अपने अपमानके ध्यानसे रुक्मी मनमें शत्रुता ही रखता रहा, तथापि बहनको प्रसन्न रखनेके लिये उसने भांजेको अपनी कन्या ब्याह दी। प्रद्युम्नजी साक्षात् कामदेवका अवतार थे; इसकारण स्वयँवरमें रुक्मवतीने मोहित होकर उन्हीके गलेमें जयमाल डाल दी। उससमय प्रद्युम्नजी अकेले ही युद्धमें सब एकत्रित हुए राजोंको जीतकर रुक्मवतीको हरलाये। राजन्! कृतवर्माके महाबली पुत्रसे विशाल नेत्रवाली परम सुन्दरी चारुमती नाम कन्याका विवाह हुआ। हरिसे यद्यपि रुक्मीकी सुदृढ़ शत्रुता थी और वह यह भी जानता था कि ऐसा विवाह धर्मसङ्गत नहीं है, तथापि स्नेहपाशमें बँधकर भगिनीका प्रिय करनेके लिये उसने अपने नाती अनिरुद्धको अपनी रोचना नाम पोती ब्याह दी। राजन्! इसी अनिरुद्धके विवाहके उत्सवमें रुक्मिणी, बलभद्र, केशव एवं प्रद्युम्न आदि सब भोजकट नगरको गये। वहाँ जब विवाह हो गया तब कलिङ्ग-

नरेश आदि घमण्डी दुष्ट राजोंने रुक्मीसे कहा कि–"आज बलदेवको बुलाकर चौंसर खेलो और पाँसोंसे उनको जितो। राजन्! बलभद्र चौंसर खेलनेमें चतुर नहीं हैं तथापि उनको चौंसर खेलनेकी बड़ी चाह रहती है" ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ रुक्मी इसमें सहमत हो गया। उसीसमय बलदेवजी बुलाये गये और रुक्मी उनके साथ खेलने बैठा। बलभद्रने क्रमशः सौका, सहस्रका और फिर दश सहस्र मोहरोंका दाँव लगाया, उनको बराबर रुक्मी ही जीतता रहा। जब दश सहस्रका दाँव रुक्मीने जीता तब कलिङ्ग-नरेश ठट्टा मारकर हँसा। बलदेवजी कलिङ्गनरेशकी अपमानसूचक हँसीको न सहसके और मन ही मन कुपित हुए। तदनन्तर रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दाँव लगाया, उसे बलदेवने जीत लिया। किन्तु रुक्मीने कहा–"मै जीता"। रुक्मीने सरासर छल किया, परन्तु बलदेवजीने कुछ समझकर टाल दिया। फिर पर्वकालमें क्षोभको प्राप्त समुद्रके समान बढ़ रहे क्रोधके वेगको रोककर बल-देवजीने दश कोटि मोहरोंका दाँव लगाया। उसको भी यथार्थमें बलदेवने जीता, परन्तु फिर रुक्मीने छलपूर्वक कहा कि नहींजी! यह दाँव मैंने जीता है, ये पास बैठे लोग ही कह दें कि किसने यह दाँव जीता"। इसीसमय आकाशवाणी हुई–"धर्मकी बात यह है कि इस दाँवको बलदेवजीही जीते हैं, बलदेवजी सत्य कहते हैं, रुक्मी झूठा है"। किन्तु काल जिसके शिर-पर सवार था उस रुक्मीने दुष्ट राजोंकी प्रेरणासे आकाशवाणीको भी न माना और ठट्टा मारकर हँसतेहुए बलदेवसे कहा कि–"तुम लोग गऊ चरानेवाले, वनवासी अहीर चौंसर खेलना क्या जानो। राजालोगही पाँसे और बाणोंसे खेलते रहते हैं, तुम्हारेऐसे लोग नहीं खेल सकते" ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ॥३२॥३३॥३४॥३५॥ रुक्मीने जब इसप्रकार तिरस्कार किया और राजालोगोंने हँसलिया तब बलदेवजी क्रोधके वेगसे सब सम्बन्ध और स्नेह भूल गये। कुपित बलभद्रने द्वारका परिघ (बेलन)को उठा कर रुक्मीका शिर काट डाला। उसी समय उस राजोंसे भरी मङ्गलसभामें रुक्मीका शिर चूर्ण होगया और प्राण निकल गये। जो कलिङ्गराज दाँत निकालकर हँसा था वह रुक्मीका वध देख, प्राणलेकर भागा। किन्तु दस पग भी भाग कर न गया होगा कि उसको बलदेवजीने दौड़कर पकड़ लिया और कुपित होकर सब दाँत गिरा दिये, क्योंकि वह खिलखिलाकर हँसा था। और भी रुक्मीके साथी राजा लोग कोरे नहीं बचे; बलभद्रजीके बेल-नकी चोटसे, बाहु, ऊरु, शिर आदि उनके अङ्ग टूट फूट गये और शरीर रुधिरसे भीग गये एवं वे भयके मारे अपने अपने प्राण लेकर भागे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ अपने साले रुक्मीके मरनेका समाचार पाकर कृष्णचन्द्रने भला या बुरा कुछ नहीं कहा। क्योंकि भला कहनेसे रुक्मिणी और बुरा कहनेसे बलभद्रजी बुरा मानते ॥ ३९ ॥

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥
रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

तदनन्तर बलदेव आदि कृष्णके आश्रित यादव लोगोंने विवाहकी शेष रीतियाँ पूरी कीं और वर अनिरुद्धको नवविवाहिता स्त्रीसहित रथपर बिठाकर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको गये ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितम अध्याय

बाणासुरके घरमें अनिरुद्धका पकड़ा जाना

राजोवाच—बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥
तत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥
एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! जिसप्रकार यदुश्रेष्ठ अनिरुद्धका विवाह बाणासुरकी कन्या ऊषाके साथ हुआ और उस विवाहमें जिसप्रकार कृष्णचन्द्र और शङ्करसे भयङ्कर युद्ध हुआ—हे महायोगी! सो सब वृत्तान्त आप हमसे कृपाकर कहिये ॥ १ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्! राजा बलिके एक सौ पुत्रोंमें बाणासुर सबसे बड़ा था। जिन्होने वामनरूप हरिको तीनो लोकोंका राज्य दे डाला, बाणासुर उन्ही महात्मा बलिका पुत्र था। बाणासुर शिव भगवान्‌का इष्ट था। वह मान्य, वदान्य (उदार), बुद्धिमान्, सत्यवादी, दृढ़व्रत और सुशील था। वह शोणितपुरमें राज्य करता था और शंभुके प्रसादसे सब देवता-लोग सेवकऐसे उसके आज्ञाकारी थे। शंभुके प्रसादसे बाणासुरके सहस्र भुजाएँ हो गईं थीं। जब शंभु ताण्डवनृत्य करते थे तब वह बाजा बजाकर उनको प्रसन्न करता था। शरणागतपालक, भक्तवत्सल, सब प्राणियोंके ईश्वर भगवान् शंकरने सन्तुष्ट होकर उससे वर माँगनेके लिये कहा, तब बाणासुरने यह वर माँगा कि, आप सदैव पास रहकर मेरे पुरकी रक्षा करिये ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ बाणासुरको अपने वीर्यका बड़ा घमण्ड हो गया। उसने अपने निकटवर्ती शिवके चरणकमलोंपर सूर्यके समान चमकीला किरीट मुकुट धरकर कहा कि "हे महादेव! आप सब लोगोंके गुरु और ईश्वर हैं। जिन पुरुषोंकी कामना पूर्ण नहीं हुई उनकी कामनाएँ आपकी कृपासे पूर्ण हो जाती हैं; आप कल्पवृक्षके समान कामना पूर्ण करनेवाले दानी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥ भगवन्!

आपके दियेहुए ये हजार हाथ मुझको बोझसे लगते हैं, क्योंकि मुझे आपके सिवा तीनो लोकोंमें कोई अपने समान पुरुष नहीं मिलता, जिससे मैं युद्ध करूँ। मेरे हाथोंमें बहुत खुजली उठी, तब मैं वह खुजली मिटानेके लिये दिग्गजोंसे युद्ध करने-गया। हे आदिदेव! मैं राहमें बाहुओंसे पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ चला, यह देख भयभीत होकर वे दिग्गज भी भाग गये" ॥ ८ ॥ ९ ॥ बाणासुरके ये गर्वभरे वचन सुनकर भगवान्‌को क्रोध आगया। शंभुने एक झण्डी देकर कहा कि "इसको ले जाकर तू अपने घरमें बाँध दे, जिसदिन आप-ही-आप यह झण्डी टूट-कर गिर पड़ेगी, उसदिन हे मूढ़! मेरे ही समान योद्धा तुझसे युद्ध करने आवेगा" ॥ १० ॥ यह सुनकर मन्दमति बाणासुर बहुत प्रसन्न होता हुआ अपने घरको गया और हे नृप! भगवान् शङ्करके बतायेहुए अपने वीर्यविनाशन दिनके आनेकी प्रतीक्षा करनेलगा ॥ ११ ॥ बाणासुरके एक ऊषा नाम कन्या थी। परमसुन्दरी ऊषाने प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको कभी देखा या सुना न था। एक दिन स्वप्नमें ऊषाने अनिरुद्धको देखा और उनपर आसक्त होगई। यकायक अनिरुद्धको न देखकर "मित्र! कहाँ गये?" कहती हुई, जाग पड़ी। उससमय ऊषा प्रियवि-योगसे विह्वल हो रही थी। ऊषाकी सब सखियाँ वहाँ उपस्थित थीं–उनको देखकर ऊषा बहुतही लज्जित हुई ॥ १२ ॥ १३ ॥ बाणासुरका एक कुभाण्ड नाम मन्त्री था, उसकी कन्या चित्रलेखा ऊषाकी प्रिय सखियोंमें थी। उसने विस्मित होकर ऊषासे पूछा कि–"हे सुन्दर भौंहवाली! तुम किसकी खोज करती हो? तुम्हारा मनोरथ क्या है? हे राजपुत्री! अभीतक तो तुम्हारा किसीके साथ विवाह नहीं हुआ" ॥१४॥१५॥ ऊषाने कहा—"सखी! मैंने स्वप्नमें एक परमसुन्दर पुरुषको देखा है, उसका वर्ण श्याम था, भुजाएँ विशाल थीं, दोनो नेत्र कमलऐसे थे। वह पीताम्बर पहनेहुए था। सखी! वास्तवमें उसका रूप स्त्रियोंके हृदयमें बस जानेवाला था। मैं उसी कान्तको खोज रही हूँ, वह अपना अधरमधु पिलाकर, मेरी ईच्छा पूर्ण नहीं होने पाई और मुझको दुःखके सागरमें डाल कर, न जाने कहाँ चलागया" ॥ १६ ॥ १७ ॥ चित्रलेखाने कहा—"मैं तुम्हारा दुःख अभी दूर कर दूँगी। तुम्हारा चितचोर तीन लोकमें जहाँ होगा वहाँसे उसको ले आऊँगी बता देना तुम्हारा काम है" ॥ १८ ॥ यह कहकर चित्रलेखाने उसीसमय क्रमशः देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर और यक्षोंके चित्र लिखे। तद-नन्तर मनुष्योंके चित्र लिखे ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें वृष्णिवंशी यादवोंको लिखा, यादवोंमें, शूरसेनका फिर वसुदेवका चित्र लिखा। फिर कृष्ण, बलदेव और प्रद्युम्नके चित्र लिखे। प्रद्युम्नको देखते ही ऊषा लज्जित होकर सकुची ॥ २० ॥ तदनन्तर सखीने जब अनिरुद्धका चित्र बनाया तब उनको देखकर ऊषाने लज्जासे मुख नीचा कियेहुए मुसकाकर कहा कि–"यही

वह हैं" ॥ २१ ॥ चित्रलेखाने योगविद्याके प्रभावसे जाना कि यह कृष्णके पौत्र अनिरुद्ध हैं। उसी समय चित्रलेखा आकाशमार्गसे द्वारा कृष्णके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारका पुरीको गई ॥ २२ ॥ वहाँ पलँगपर पड़ेहुए अनिरुद्धजी सो रहे थे। उसी समय चित्रलेखा योगबलसे अनिरुद्धका पलँग उठाकर शोणितपुरमें ले आई और अपनी सखीको उसके प्रियसे मिला दिया ॥ २३ ॥ परम सुन्दर अनिरुद्धको देखते ही ऊषाका मुखकमल प्रफुल्लित होगया। जहाँ पुरुषोंकी दृष्टि भी नहीं पड़सकती उस अन्तःपुरमें, तबसे ऊषा अनिरुद्धके साथ रमण करने लगी ॥ २४ ॥ सुन्दर वस्त्र, माला, चन्दन, धूप, दीप, आसन आदि सामग्री और भोजन एवं मधुर वचन तथा अन्यान्य प्रकारकी सेवासे ऊषाने इसप्रकार चित्तको वश कर लिया कि अनिरुद्धजी कन्याके अन्तःपुरमें छिपकर बहुत समयतक रहे। नित्य बढ़ रहे ऊषाके स्नेहमें अनिरुद्धजी ऐसे मग्न होगये कि उनको यह भी न जान पड़ा कि कितना समय बीत गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ यदुवीरने भोग किया, ऊषाकी देह फफक उठी, कुमार व्रत नष्ट होगया। वह यौवनका उभार छिपाए नहीं छिप सकता। एक दिन ऊषा ऊपरसे झाँकी, लक्षण देखकर द्वारपालोंने शंकित हो बाणासुरसे जाकर कहा कि—"राजन्! हमें जान पड़ता है कि आपकी अविवाहिता कन्याके आचरण बिगड़े हुए हैं; जिनसे पिताके कुलको कलंक लगता है। प्रभो! हम हर घड़ी सावधानतासे उस घरकी रखवाली किया करते हैं। कोई पुरुष राजकुमारीको देख भी नहीं पाता, तब भी न जानें किसप्रकार यह अनर्थ हुआ? कुछ हमारी समझमें नहीं आता" ॥ २७ ॥ २८ ॥ कन्याको किसीने दूषित कर दिया—यह सुनकर बाणासुर बहुतही व्यथित हुआ और उसी समय जल्दीसे कन्याके भवनमें गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि यदुश्रेष्ठ त्रिभुवन-सुन्दर साक्षात् कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजी बैठे हुए हैं। उनके श्याम शरीरपर पीताम्बरकी अपूर्व शोभा है। नेत्र कमलदलऐसे विशाल हैं, भुजाएँ लंबी लंबी हैं। कुण्डल और अलककी झलक तथा मन्दमुसकान व मनोहर चितवनसे मुख-मण्डलकी अपूर्व शोभा होरही है। प्रियाके स्तन-कुंकुमसे अनुरंजित मल्लिकाकी माला कंधोंपर पड़ी हुई है। ऐसे अनिरुद्धको सामने बैठी हुई स्नेहयुक्त अपनी प्रियासे चौसर खेलते देखकर बाणासुरको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ अस्त्र, शस्त्र ताने हुए बहुतसे भटोंके साथ बाणासुरको भवनमें आते देखकर अनिरुद्धजी भी द्वारपर लगा हुआ बेलन उठा कर, जैसे कालदण्ड लेकर संहारकी इच्छासे यमराज खड़े हों उस प्रकार खड़े हो गये ॥ ३२ ॥ वे सब भट चारो ओरसे पकड़नेके लिये जब उद्यत हुए तब वह, शूकरयूथपति जैसे कुत्तोंके झुण्डको मार भगाता है वैसेही उनका विनाश करने लगे। उन सैनिकोंके शिर, ऊरू, भुजा आदि अङ्ग टूट फूट गये और वे मार न सह सकनेके कारण उस घरसे बाहर निकलकर इधर उधर भागने लगे ॥ ३३ ॥

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ॥
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥३४॥

तब महाबली बलिके पुत्र बाणासुरने कुपित होकर अपनी सेनाका संहार कर रहे अनिरुद्धको नागपाशसें बाँध लिया । अपने प्रियको बंदी होते देख ऊषा शोक और विषादसे विह्वल हो आँसू बहाती हुई रोनेलगी ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टित्तम अध्याय

बाणासुरसे व कृष्णचन्द्रसे युद्ध होना और युद्धमें कृष्णचन्द्रका विजय ।

श्रीशुक उवाच–अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ॥
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे भरतनन्दन ! इधर अनिरुद्धको न देखकर उनके बन्धु बान्धवोंको बड़ा ही शोक हुआ । इसीप्रकार वर्षाके चार महीने बीत गये और अनिरुद्धका पता नहीं लगा ॥ १ ॥ चार महीने बाद एक दिन नारदजीने जाकर सब वृत्तान्त सुनाया कि अनिरुद्धने क्रुद्ध हो बाणासुरसे युद्ध किया और अन्तमें उसके बंदी हुए । यह सम्वाद पाकर, कृष्णही जिनके इष्टदेव हैं वे यादव लोग उसी समय अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हो युद्धका सामान करके शोणितपुरको चलदिये ॥२॥ प्रद्युम्न, सात्यकी, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदि श्रेष्ठ यादवोंने कृष्ण बलदेवके साथ बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके पुरको चारो ओरसे जाकर घेर लिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ जब यादवोंकी सेना नगरके बाग, प्राकार, अँटारी एवँ गोपुर आदिको तोड़ने फोड़ने लगी तब कुपित हो उतनी ही सेना ले बाणासुर भी युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा । बाणकी ओरसे भक्तवत्सल भगवान् शंभु स्वयं नन्दीपर सवार हो अपने पार्षदों और पुत्रोंसहित युद्ध करनेके लिये आये ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस समय कृष्ण और शिवसे, प्रद्युम्न और शिवके पुत्र कार्तिकेयसे, कुम्भाण्ड व कूपकर्ण और बलभद्रजीसे, बाणासुरके पुत्र और साम्बसे एवं बाणासुर और सात्यकीसे महाघोर युद्ध हुआ; जिसके सुननेसे भी रोम खड़े हो जाते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ब्रह्मादिक देवनायक, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष यादि सब झुंडके झुंड देव–उपदेवगण युद्ध देखनेके लिये विमानों-पर बैठ २ कर आये ॥ ९ ॥ कृष्णचन्द्रने शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण नोकवाले बाणोंकी वर्षा करके शंकरके भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस आदि अनुचरोंको मार

भगाया ॥ १० ॥ ११ ॥ शिवजीने भाँति भाँति के अनेकों दिव्य अस्त्र कृष्णचन्द्रपर चलाये और कृष्णचन्द्रने भी कुछ विस्मय न करके लीलापूर्वक अपने अस्त्रोंसे उन अस्त्रोंको विफल कर दिया ॥ १२ ॥ कृष्णचन्द्रने ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यको पार्वतसे, आग्नेयको पर्जन्यास्त्रसे और पाशुपत अस्त्रको नारायणास्त्रसे शान्त किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर कृष्णचन्द्रने शिवपर मोहन अस्त्र चलाया, जिससे मोहित होकर शिवजी जम्हाई लेनेलगे। उस समय भगवान् वासुदेव तर्वार, गदा, बाण आदिसे बाणासुरकी सेनाका संहार करनेलगे ॥ १४ ॥ प्रद्युम्नके बाणोंकी वर्षासे कार्तिकेयके शरीरसे रुधिर बहनेलगा, एवं पीड़ित मयूर उनको लेकर रणभूमिसे टल गया ॥ १५ ॥ कुम्भाण्ड और कूपकर्ण, दोनो राक्षस बलभद्रके मूशलकी चोटसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े; तब उनकी सेना विना किसी रक्षकके विकल होकर भागी ॥ १६ ॥ रथपर सवार बाणासुर, अपनी सेनाको भागते देख, अत्यन्त कुपित हो, सात्यकीसे युद्ध करना छोड़, कृष्णचन्द्रकी ओर चला ॥ १७ ॥ रणदुर्मद बाणासुरने एक साथ पाँच सौ धनुषोंकी प्रत्यञ्चाएँ खींचकर एक एक धनुषपर दो दो बाण चढ़ाये ॥ १८ ॥ किन्तु हरि भगवान्ने, बाणासुर बाण-वर्षा करने भी न पाया—पहले ही उसके सब धनुषोंको काट डाला और फिर उसके सारथी, घोड़े और रथको नष्ट करके शङ्ख बजाया ॥ १९ ॥ पुत्रके प्राणोंपर संकट देखकर बाणासुरकी माता कोटरा बाल खोल नंगी हो बाहर निकल आई और पुत्रके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये आकर कृष्णके आगे खड़ी हो गई ॥ २० ॥ भगवान्ने मुख फेर लिया—क्योंकि नंगी स्त्रीको देखना नीतिविरुद्ध बात है। इसी अवसरमें बाणासुर और रथ व धनुष लेनेके लिये पुरमें चला गया, क्योंकि उसका रथ और धनुष कृष्णके बाणोंसे कट गया था ॥२१॥ इधर जब सब भूतगण भाग गये तब शिवने तीन शिर और तीन पैरवाले ज्वरको छोड़ा। वह ज्वर दशो दिशाओंको अपने तेजसे जलाता हुआ कृष्णचन्द्रकी ओर चला। तब नारायणदेवने उसको देखकर अपने ज्वर अर्थात् शीतज्वर (जूड़ी) को छोड़ा ॥ २२ ॥ महेश्वर और विष्णुके दोनो ज्वर परस्पर युद्ध करनेलगे। महाबली विष्णुके ज्वरसे पीड़ित होकर चिल्लाता हुआ शङ्करका ज्वर अन्यत्र कहीं अपनी रक्षा न देख, भयभीत हो, हाथ जोडकर इसप्रकार भगवान्की स्तुति करता हुआ शरणकी प्रार्थना करनेलगा ॥ २३ ॥ २४ ॥ ज्वरने कहा—"आप अनन्तशक्तिशाली ईश्वर हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप सर्वात्मा, निरवच्छिन्न, विज्ञानमात्र और ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर हैं। आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति व संहारका कारण हैं। कर्मरहित होनेके कारण वेदोंके द्वारा जिसका ज्ञान होता है वह ब्रह्म भी आप ही हैं—आपको प्रणाम है। आप शान्तिमय हैं ॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्म पञ्चतत्त्व,

प्राण, अहङ्कार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत, देह एवं देहके बीजका उगना व बढ़ना—ये सब आपहीकी माया हैं; किन्तु आपमें इनका सद्भाव नहीं है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥ २६ ॥ आप लीला करनेहीके लिये मत्स्य, कूर्म आदि योनियोंमें अवतार ले देवगण, साधुगणकी और सनातन लोकमर्यादाओंकी रक्षा एवं हिंसा करनेवाले उन्मार्गगामी दैत्य आदिका संहार करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लियेही हुआ है ॥ २७ ॥ आपके शान्त और उग्र अत्यन्त उज्वल भयानक दुःसह तेजसे मैं तप रहा हूँ। देही लोग आशामें फँसे रहकर जबतक आपके चरणकमलोंकी सेवा नहीं करते तभीतक उनको सब प्रकारके तापोंकी पीड़ा रहती है। यही जानकर मैं आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ" ॥ २८ ॥ भगवान्ने कहा—"हे त्रिशिरा ज्वर! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ; अब तुझको मेरे ज्वरसे कुछ भय नहीं है। आजसे जो व्यक्ति हमारे तुमारे संवादको सुनेंगे उनको तेरा भय नहीं रहेगा" ॥ २९ ॥ इसप्रकार जब कृष्णचन्द्रने कहा तब प्रणाम करके शिवका ज्वर चला गया। इधर बाणासुर भी दूसरे रथपर चढ़कर युद्ध करनेके लिये जनार्दनके सामने आया ॥ ३० ॥ तब बाणासुर कुपित होकर हजारों हाथोंसे कृष्णचन्द्रपर अनेक शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा ॥ ३१ ॥ जब बाणासुर अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा, तब भगवान् तीक्ष्ण धारा जिसकी है उस सुदर्शन चक्रसे जैसे कोई बड़े वृक्षकी शाखाओंको काटे उसप्रकार बाणासुरकी भुजाओंको काटना आरम्भ किया ॥ ३२ ॥ चक्रधर भगवान्को बाणासुरकी भुजाएँ काटते देख भक्तोंपर दया करनेवाले भगवान् शंकर उनके निकट आकर यों कहनेलगे ॥ ३३ ॥ शंकरने कहा—भगवन्! आप वेदोंमें छिपेहुए परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं। जिनका मन निर्मल है वे साधुगण केवल आकाशके समान सर्वव्यापक भावसे आपको सर्वत्र देख पाते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि है, अग्नि आपका मुख है, जल आपका वीर्य है, स्वर्ग आपका मस्तक है, दिशाएँ आपके कान हैं, पृथ्वी आपके चरण हैं, चन्द्रमा आपका मन है, सूर्य आपका नेत्र है, अहङ्काररूप मैं आपका आत्मा हूँ, समुद्र आपका उदर है, इन्द्र आपकी भुजा हैं ॥ ३५ ॥ औषधियाँ आपके रोम हैं, मेघ आपके केश हैं, ब्रह्मा आपकी बुद्धि हैं, प्रजापति तुम्हारी लिङ्गेन्द्रिय हैं, एवं धर्म आपका हृदय है। ऐसे आपके त्रिलोकमय विराट्रूपकी कल्पना की जाती है ॥ ३६ ॥ हे अकुण्ठित तेजवाले नाथ! आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा और संसारके मङ्गलके लिये हुआ है। आप हम सब प्रजापतियोंके रक्षक हैं—हम लोग आपहीकी कृपा और सहायतासे समग्र ब्रह्माण्डका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप स्वप्रकाश, शुद्ध, तुरीय, आदिपुरुष, एकमात्र हैं। आपही सब जगत्का मुख्य कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है। आप

अद्वितीय ईश्वर हैं। तथापि सब विषयोंको प्रकट करनेके लिये अपनी मायाके योगसे प्रत्येक शरीरमें भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य, अपनी छायासे आच्छन्न होकर भी उस छायाको और रूपोंको प्रकाशित करते हैं, वैसेही हे भगवन्! स्वप्रकाश आप मायाके गुणोंसे आच्छन्न होकर भी उन गुणोंको और गुणी-अर्थात् जीवोंको प्रकाशित करते हैं। अर्थात् आप सर्वसाक्षी हैं। आपको संसारका बन्धन नहीं होसकता ॥ ३९ ॥ भगवन्! आपकी मायाने जिनकी बुद्धिको मोहित कर रक्खा है वे जीव-पुत्र, स्त्री और गृह आदिमें आसक्त रहकर दुःखसागरमें गोते खाते रहते हैं, कभी नीचे चले जाते हैं और कभी ऊपर आजाते हैं अर्थात् कभी निकृष्ट योनियोंमें और कभी उत्कृष्ट योनियोंमें जन्म पाते हैं-परन्तु इस आवागमनसे नहीं मुक्त होते ॥ ४० ॥ भगवन्! भाग्यवश इस मनुष्यदेहको पाकर भी जो अजितेन्द्रिय व्यक्ति आपके चरणकमलोंका आदर (भजन) नहीं करता वह अपनेको ठगनेवाला है, अतएव शोचनीय है ॥ ४१ ॥ यह इन्द्रिय सुख-देखनेमें सुख जान पड़ता है परन्तु वास्तवमें महादुःखरूप है। इसी इन्द्रिय-सुखके लिये जो कोई प्रिय, ईश्वर, आत्मा जो आप हैं उनके भजनसे विमुख रहता है वह अमृतको छोड़कर विष-भोजन करता है ॥ ४२ ॥ ईश! मैं, ब्रह्मा आदिक देवगण और निर्मल अन्तःकरणवाले मुनिगण सब—प्रियतम आत्मारूप परमेश्वर जो आप हैं उनके सबप्रकार अर्थात् मन, वाणी और कायासे शरणागत हैं ॥ ४३ ॥ हे देव! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंसके कारण, शान्त-रूप,-अतएव कर्मरहित और सबके सुहृद्, आत्मा व देव, तथा चराचर जगत्के व संपूर्ण आत्माओंके आधारस्थान-अतएव अनन्य जो एक मात्र आप हैं उनका भजन हम संसारसे मुक्त होनेके लिये करते हैं ॥ ४४ ॥ हे देव! यह बाणासुर मेरा परम प्रिय अनुचर है। मैंने इसको अभय वर दिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि दैत्यराज बलिपर आपने जैसे अनुग्रह किया है वैसेही इस दास-पर भी करेंगे। यही मेरी प्रार्थना है" ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—"भगवन्! आपका कथन हमको स्वीकृत है। आप जिसमें प्रसन्न हों वही हम करेंगे। आपने इसको अभय वर दिया सो उत्तम किया—मैंभी कहता हूँ कि यह अबसे अभय होगया ॥ ४६ ॥ यों भी मैं इस असुरका वध न करता, क्योंकि यह बलिका पुत्र है। मैं प्रह्लादको वर देचुका हूँ कि 'किसी तुम्हारे वंशजको मैं नहीं मारूँगा, ॥ ४७ ॥ केवल इसका गर्व खर्व करनेके लिये मैंने इसके बाहुओंको काटडाला है और पृथ्वीका भार जो इसकी बहुतसी सेना थी उसका संहार किया ॥ ४८ ॥ इसकी चार भुजा बच रही हैं-ये सदा बनी रहेंगी। यह बाणासुर अजर अमर रहेगा और आपके पार्षदोंमें प्रधान माना जायगा—इसको किसीसे भय न होगा" ॥ ४९ ॥ इसप्रकार कृष्णचन्द्रसे अभय वर पाकर बाणासुरने चरणोंपर

गिर, दण्डवत् प्रणाम किया एवं अनिरुद्धको वधूसहित रथपर बिठाकर सेवामें उपस्थित किया ॥ ५० ॥ सुन्दर वस्त्र व अलङ्कारोंसे सुशोभित सपत्नीक अनिरुद्धको आगे करके शङ्करसे जानेकी अनुमति लेकर कृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। एक अक्षौहिणी सेना भी बाणासुरने अपनी ओरसे साथ कर दी ॥ ५१ ॥ इधर यह सुसमाचार सुनते ही द्वारकापुरी सुसज्जित की गई। प्रत्येक प्रासादमें मनोहर ध्वजाएँ फहरानेलगीं। सब राहें और चौराहे सजाये गये। बदंनवार बाँधे गये–विविध विचित्र वस्त्र व फूलोंसे बनाये गये फाटकोंकी शोभा देखने ही योग्य हुई। भगवान् कृष्णचन्द्रने इसप्रकार सुसज्जित और सुशोभित नगरीमें वर और वधूसहित प्रवेश किया। पुरवासी, बन्धुवर्ग और द्विजातियोंने आगे बढ़कर अभ्यर्थना की एवं उससमय शङ्ख, ढोल, नगाड़े आदि माङ्गलिक बाजे चारो ओर बजनेलगे ॥ ५२ ॥

य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥
संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥

राजन्! जो कोई प्रातःकाल उठकर कृष्णके साथ शङ्करके युद्ध व कृष्णके विजयकी यह कथा पढ़ते या सुनते हैं वे कभी नहीं हारते ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितम अध्याय

नृगराजाकी कथा

श्रीशुक उवाच–एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु और गद आदि सब यदुकुमार मिलकर खेलनेके लिये उपवनको गये ॥ १ ॥ वहाँ बहुत समयतक खेलनेके उपरान्त सब प्यासे हुए जलकी खोजमें वे लोग एक कुँएके पास पहुँचे वह, कुआँ सूखा हुआ था। सबने झाँककर देखा तो जलके बदले उसमें एक बड़ा भारी विचित्र जीव देख पड़ा ॥ २ ॥ पहाड़ ऐसे बृहत् गिरगिटको उसमें देख सबको बड़ा विसय हुआ। तब वे लोग कृपापूर्वक उस गिरगिटको ऊपर निकालनेकी चेष्टा करनेलगे ॥ ३ ॥ उन्होने चमड़ेके और सूतके बड़े बड़े रस्सोंसे बाँधकर उसको खींचा परन्तु उसको ऊपर न लासके। तब उन्होंने उत्सुकताके साथ कृष्णचन्द्रसे आकर सब वृत्तान्त कहा ॥ ४ ॥ कमललोचन विश्वभावन भगवान्‌ने आकर उसको देखा और जैसेही उसके

शरीरमें हाथ लगाया वैसेही उत्तमश्लोक कृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही गिरगिटके शरीरको छोड़कर वह एक सुन्दर पुरुष होगया । वह अद्भुत अलंकार और मालाओंसे विभूषित, सुवर्णवर्ण देवरूप होगया । यद्यपि भगवान् मुकुन्द सर्वत्र हैं तथापि सबके यह जाननेके लिये कि 'इसको यह अधम योनि किस कुकर्मसे मिली'—उससे कृष्णचन्द्रने पूछा कि "हे महाभाग ! सुन्दर रूपधारी तुम कौन हो ? तुम तो कोई श्रेष्ठदेवता जान पड़ते हो । हे सुभद्र ! कौन कर्मसे तुम्हारी यह दुर्दशा हुई थी ? तुम तो इस दशाके योग्य नहीं जान पड़ते हो, यदि यह सब हमसे कहना उचित समझो तो कहो । हम सुनना चाहते हैं ।" ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! आनन्दमूर्ति श्रीकृष्णने जब इसप्रकार पूछा तब दिव्यरूपधारी राजा नृगने सूर्यके समान चमकीले किरीट मुकुटसे माधवके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके कहा कि "हे प्रभो ! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजर्षियोंमें श्रेष्ठ नृग नाम राजा हूँ । दानी लोगोंकी गिनतीमें कदाचित् मेरा नाम भी आपने सुना होगा । नाथ ! आप सब प्राणियोंके अन्तर्यामी अर्थात् बुद्धिके साक्षी हैं, आपको क्या नहीं विदित है । कालद्वारा आपकी दिव्य ज्ञान-दृष्टि अप्रतिहत है । तथापि आपकी आज्ञाके अनुसार मैं अपना पूर्ववृत्तान्त करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ पृथ्वीमें जितने रजःकण हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र हैं एवं वर्षामें जितने बूँद गिरते हैं उतनी ही दुधार, तरुणी, सुशीला, सुरूपा, अच्छे गुणवाली, कपिला, जिनके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े-हुए हैं ऐसी वस्त्र-माल्य आदिसे अलंकृत, बछड़ेवाली, न्यायपूर्वक एकत्र की गई सुन्दर गौवें मैंने गुणशीलसम्पन्न, बहुकुटुम्बी, सदाचारनिरत, तपस्वी, वेदपाठी, उदारप्रकृति, सब शास्त्र पढ़ानेवाले श्रुतिकथित कर्म करनेवाले श्रेष्ठ और तरुण ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दी हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैंने ब्राह्मणोंको गऊ, सुवर्ण, भवन, घोड़े, हाथी, दासीयुक्त कन्याएँ, तिल, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, परिच्छद और रथ आदि अनेकोंवार दिये हैं, यज्ञ किये हैं, कुँए बावली-तालाव आदि बनवाये हैं ॥ १५ ॥ एक समय किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणकी एक गऊ मेरे दान करनेकी गौवोंके झुण्डमें आकर मिल गई और किसीने नहीं जाना । मैंने विना जाने वह गऊ दूसरे ब्राह्मणको दे डाली । वह ब्राह्मण उस गऊको लिये जारहाथा, राहमें गऊके पूर्व स्वामी ब्राह्मणने उसको देखकर कहा "यह गऊ तो मेरी है, तूने कहाँसे पाई ?" । दूसरे ब्राह्मणने कहा—"नहीं, तू झूठ कहता है—यह गऊ मेरी है, मुझको अभी राजा नृगने दी है" । इसप्रकार झगड़तेहुए दोनो ब्राह्मण अपना अपना कार्य सिद्ध करनेकेलिये मेरे पास वह गऊ लेकर आये और उन्होने कहा कि—"राजा ! तुम देनेवाले हो या हरनेवाले ?" । उनके वचन सुनकर मैं बहुत व्याकुल हुआ । धर्मसङ्कट देखकर मैंने दोनो ब्राह्मणोंसे विनयपूर्वक

कहा कि–"आपमेंसे कोई एक लाख उत्तम गौवें लेकर यह गऊ दे दीजिये । मैं सेवक हूँ, मुझसे विना जाने यह अपराध हो गया है; आप मुझपर अनुग्रह करें । मैं इस अपराधसे नरक जाऊँगा, आप उस नरकसे मुझको बचाइये" । भगवन् ! "मैं आपका दान नहीं लेना चाहता" कहकर गऊको छोड़ दूसरा स्वामी चला गया और पहला स्वामी भी "मैं दस लाख गौवें भी इसके बदलेमें न लूँगा" कहकर चला गया । इसी अवसरमें यमराजके दूत आकर मुझको यमराजके पास लेगये । हे देव-देव ! हे जगन्नाथ ! यमराजने वहाँ मुझसे पूछा कि–"राजन् ! तुम पहले अपना पुण्य भोगोगे या पाप ? धर्मानुष्ठान और दान करके तुमने जिन उज्वल लोकोंको प्राप्त किया है वे अनन्त हैं, क्योंकि तुम्हारे दान और धर्मकी सीमा नहीं है" । मैंने कहा कि–"हे देव ! मैं पहले अपने पापकर्मका ही फल भोगना चाहता हूँ" । प्रभो ! यह सुनकर यमराजने कहा–"अच्छा तो गिरो" । यमराजके यों कहतेही मैंने देखा कि मैं गिर-गिट होकर नीचे गिर रहा हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे केशव ! मैं ब्राह्मणोंका भक्त, दानी और आपका सेवक था, इसी कारण गिरगिटकी योनिमें भी मुझको पूर्वजन्मका वृत्तान्त नहीं भूला । मुझे आपके दर्शनकी बड़ी लालसा थी । किन्तु मुझको बड़ा ही आश्चर्य होता है कि आपने किसप्रकार साक्षात् होकर मुझको दर्शन दिया । क्योंकि आप परमात्मा हैं, इन्द्रियोंमें इतनी शक्ति नहीं कि आपको जान सकें, अतएव बड़े बड़े योगीलोग भी उपनिषद्रूप नेत्रोंकेद्वारा निर्मल अपने हृदयमें केवल आपका ध्यान कर सकते हैं–आपके साक्षात् दर्शन उनको भी नहीं होते । संसारबन्धनसे छूटनेके दिन जिनके निकट आ जाते हैं उन्हीको आपका दर्शन होता है । मैं भव-दुःखसे अन्धा हो रहा था । अब आपके दर्शन होनेसे अवश्य ही मैं संसारसे मुक्त होगया । हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण ! हे हृषीकेश ! हे पुण्यश्लोक ! हे अच्युत ! हे अव्यय ! हे कृष्ण ! आप आज्ञा दीजिये, मैं देवलोकको जाऊँ । मेरी यही प्रार्थना है कि मैं चाहे जिस स्थानमें रहूँ, मेरा चित्त आपके ही चरणकमलोंमें लगा रहे । आपहीसे सब विश्वकी सृष्टि होती है, तथापि आपमें विकारका लेश भी नहीं है; क्योंकि वह माया आपहीकी शक्ति है, जिससे सृष्टि होती है । आप सब प्राणियोंका आधार हैं, आनन्दस्वरूप हैं एवं इष्टापूर्त आदि कर्मोंका फल देनेवाले हैं–आपको प्रणाम है" ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—यों कहकर राजा नृगने चरणोंपर शिर रख भगवान्को प्रणाम किया और परिक्रमा की एवं भगवान्से आज्ञा ले सबके सामने श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्य लोकको गये ॥ ३० ॥ तब ब्रह्मण्यदेव धर्मात्मा देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने राजोंको शिक्षा देतेहुए अपने बान्धवों और बन्धुओंसे कहा कि "अहो ! बहुत थोड़ेसे भी थोड़ा ब्राह्मणका धन खाकर अग्निके समान तेजस्वी पुरुष भी उसको नहीं पचा सकते; तब अपनेको ईश्वर (समर्थ)

माननेवाले राजोंके लिये क्या कहना है? उनको तो सदा ब्राह्मणके धनसे बचना चाहिये। मैं हालाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उससे बचनेके लिये उपाय है। मेरी समझमें ब्राह्मणका धन ही विष है, जिससे बचनेका उपाय, पृथ्वीपर क्या—तीनो लोकोंमें नहीं है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ फिर विष तो केवल खानेवालेहीके प्राण लेता है और अग्नि भी जलसे शान्त होजाता है, परन्तु ब्राह्मणरूप काष्ठसे उत्पन्न ब्रह्म-स्व-रूप अग्नि मूलसहित सम्पूर्ण वंशको भस्म कर देता है ॥३४॥ यदि इच्छापूर्वक ब्राह्मणकी अनुमति न प्राप्त हो और उसकी सम्पत्तिका अन्यायसे भोग करे तो उस पुरुषकी तीन पीढ़ियाँ (बाप, दादा, परदादा) नरकको जाती हैं और जो कोई बलपूर्वक ब्राह्मणकी सम्पत्तिको छीनकर खाता पीता और उड़ाता है उसकी दस जो पहले होगई हैं और दस जो आगे होंगी, बीस पीढ़ियाँ उसके साथ नरकमें पड़कर कष्ट भोग करती हैं। जो लोग ब्राह्मणकी सम्पत्तिपर दाँत लगाते हैं वे मानो स्वयं नरक जानेकी अभिलाषा करते हैं। विप्रसम्पत्तिको हरनेवाले अज्ञ राजोंको नहीं सूझता कि हम अपने हाथों राजलक्ष्मीको ढकेलकर अपनेको नरकमें गिरा रहे हैं। उदार, कुटुम्बी ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति या वृत्ति छिन जानेपर वे रोते हैं; उनके आँसुओंके जलसे जितने पृथ्वीके रजःकण भीगते हैं उतने ही वर्षोंतक उनकी सम्पत्ति या वृत्तिके हरनेवाले राजा और राजकर्मचारी लोग अपने अपने परिवारसहित घोर कुम्भीपाक नरकमें गर्मतेलमें पकाये जाते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जो कोई अपनी या पराई दी हुई ब्राह्मणकी सम्पत्ति या वृत्तिको हर लेता है वह साठ हजार वर्ष विष्ठामें कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ मैं यही चाहता हूँ कि मैं कभी जाने या विनाजाने ब्राह्मणके धनका अपहरण न करूँ। जो दुष्ट राजालोग ब्राह्मणकी सम्पत्ति लेना चाहते हैं वे अल्पायु, राज्यसे भ्रष्ट, पराजित होते व व्याकुल रहते हैं ॥ ४० ॥ अतएव हे बन्धु-बान्धवगण! ब्राह्मण यदि अपराध भी करे तो उसका अप्रिय या अनिष्ट न करना। ब्राह्मण चाहे मारे या गालियाँ दे, तो भी तुम उससे द्रोह न करके प्रणाम ही करना। जैसे मैं सब समय ध्यान रखकर ब्राह्मणको वन्दना करता हूँ वैसे ही तुम लोग भी नम्रतापूर्वक प्रणाम किया करो। जो कोई ऐसा न करेगा उसको मैं बड़ा दण्ड दूँगा। ब्राह्मणका धन हरनेवालेको नरकमें गिराता है, इसका प्रमाण तुमने प्रत्यक्ष ही देखा है कि विना जाने ब्राह्मणकी सम्पत्ति हरनेके लिये महादानी धर्मात्मा नृगको गिरगिटकी योनिमें जाना पड़ा" ॥४१॥४२॥४३॥

एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः ॥
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

सब लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् कृष्ण द्वारकावासियोंको यों उपदेश सुनाकर अपने मन्दिरमें चलेगये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितम अध्याय

बलभद्रका रास-विलास

श्रीशुक उवाच–बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे कुरुश्रेष्ठ! एकदिन भगवान् बलभद्रका मन अपने सुहृद् जनोंको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो आया और वह उसीसमय रथपर चढ़कर नन्दके गोकुलको गये ॥ १ ॥ गोकुलमें पहुँचते ही चिरकालसे उत्कण्ठित गोप और गोपियोंने बलभद्रजीको हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर बलभद्रजीने प्रणाम किया और उन्होने भी शुभ आशीर्वाद देकर इनका अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ नन्द यशोदाने कहा–"हे दाशार्ह! हे जगदीश्वर! आप अपने अनुजसहित चिरकालतक हमारी रक्षा करो"। यों कहकर उन्होने बलभद्रजीको गोदमें लेलिया और आनन्दके आँसुओंसे बहुत देरतक उनको भिगोते रहे ॥ ३ ॥ जो गोप अवस्थामें बड़े थे उनको बलभद्रजीने स्वयं प्रणाम किया और जो अवस्थामें छोटे थे उन्होने इनको प्रणाम किया। इसीप्रकार अवस्था, मित्रता और सम्बन्धके अनुसार हँसकर और हाथ मिलाकर बलभद्रजी सब गोपोंसे मिले और बोले। जब बलदेवजी प्रेमपूर्ण गद्गद वचन कहकर सब प्रकारकी कुशल पूछ चुके तब कमललोचन श्रीकृष्णके पीछे जिन्होने सब विषय छोड़ दिये हैं वे गोपगण उनसे कहनेलगे कि "हे राम! हमारे सब बन्धु बान्धव कुशलसे हैं? तुम दोनो भाई अब स्त्री, पुत्रवाले हुए हो, भला क्या अब कभी हमाराभी स्मरण करते हो? बड़ी बात जो दुष्ट कंसको तुमने मारा और अपने बान्धवोंको कष्टसे छुड़ाया और अब सब शत्रुओंको हराकर एक दुर्भेद्य दुर्गमें रहते हो" ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ गोपियाँ बलभद्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और हँसतीहुईं पूछने लगीं कि—"नागरी स्त्रियोंके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण सुखपूर्वक क्षेमकुशलसे हैं? वह क्या कभी पिता माता और बन्धु-बान्धवोंका स्मरण करते हैं? वह महापुरुष क्या कभी हमारी सेवाकी चर्चा करते हैं? हे यदुनन्दन! हे प्रभो! हमने उनके लिये, जिनको छोड़ना सहज नहीं है उन माता, पिता, भ्राता, पति और बहनोंको छोड़ दिया, तथापि वह एकदम सब मित्रता और प्रेमके बन्धनको तोड़ हमको छोड़ मुह मोड़कर चले गये! यदि कहो कि तुमने जातेसमय उनकों रोक क्यों न लिया? तो जातेसमय वह जो कह गये थे कि 'हम शीघ्रही लौट आवेंगे' उसपर हम स्त्रियाँ कैसे न विश्वास करतीं?"। और एक गोपीने कहा कि "नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ी ही चतुरा होती हैं, वे कैसे अव्यवस्थितचित्त कृतघ्न कृष्णके वचनोंपर विश्वास करती हैं? अथवा

कृष्णकी बातें बहुतही मनोहर और मधुर होती हैं, अतएव पुरनारियाँ भी उनके सुन्दर मन्दमुसकानसे सुशोभित कटाक्षोंसें मोहित हो जाती होंगी, उनका चित्त कामकी उमङ्गसे चञ्चल हो जाता होगा–इससे वे उनके वचनोंपर विश्वास कर लेती होंगी"। अन्य एक गोपीने कहा—"हे गोपियो! उनकी बातोंसे हमको क्या प्रयोजन है? और और बातें करो। यदि हमारे विना वह सुखसे समय विताते हैं तो हम भी उनके बिना समय विता सकती हैं" ॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥ यों कहकर सब गोपियाँ श्रीकृष्णकी हँसी, बातचीत, सुन्दर चितवन, चाल और प्रेमालिङ्गन आदिको स्मरण करती हुई विलाप करनेलगीं ॥ १५ ॥ तब अनेक प्रकारके अनुनय करनेमें चतुर भगवान् बलभद्रने श्रीकृष्णके मनोहर संदेश सुनाकर उन गोपियोंको समझाया ॥ १६ ॥ भगवान् रोहिणीनन्दन रात्रिके समय गोपियोंसे विहार करतेहुए चैत्र और वैशाख दो महीनेतक वहाँ रहे। बलभद्रने उन गोपियोंके साथ पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे समुज्वल एवं कुमुदगन्धसे मनोहर यमुनाके उपवनमें विहार किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ उससमय वरुणजीकी भेजी हुई वारुणी (मदिरा) वृक्षकोटरसे बहकर अपने सुवाससे उस वनभरको सुगन्धित करनेलगी ॥ १९ ॥ वायुके द्वारा उस वारुणीकी सुवास बलभद्रतक पहुँची, उस गन्धको सूँघकर बलभद्रजीने स्त्रियोंसहित वहाँ जाकर वारुणी मदिराको पिया ॥ २० ॥ इसप्रकार मदसे जिनके नेत्र विह्वल हो रहे हैं वह उन्मत्त बलदेवजी वनमें विचरनेलगे और स्त्रियाँ उनके पवित्र गुण गानेलगीं ॥ २१ ॥ भगवान् बलभद्रके कण्ठमें माला तथा वैजयन्तीमाला और एक कानमें एक कुण्डल एवं मुसकानसे मञ्जुल मुखमण्डलमें पसीनेके बूँद सुशोभित हो रहे थे। उससमय ईश्वर बलभद्रने जलविहार करनेकी इच्छासे यमुनाको अपने निकट बुलाया। किन्तु यमुना वहाँ नहीं आई। यह देखकर बलभद्रजीने जाना कि "मुझे मतवाला जानकर यमुनाने मेरी आज्ञाका अनादर किया है," अतएव कोपपूर्वक उन्होने हलसे यमुनाको अपनी ओर खींचतेहुए कहा कि–"पापिनी! मैंने तुझको बुलाया, किन्तु तूने मेरा अनादर किया और यहाँ नहीं आई। तूने अपने मनका काम किया, अतएव मैं अपने हलसे खींचकर मुसलसे तेरे सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा" ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ राजन्! इसप्रकार बलभद्रजीने डाँटा, तब भयभीत व चकित होकर यमुना उनके पैरोंपर गिरकर कहने लगी कि "हे राम! हे महाबाहो! मैं आपके विक्रमको नहीं जानती थी। हे विश्वनाथ! आप अपने एक अंशसे इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। हे भगवन्! मैं आपकी अपार महिमाको नहीं जानती। हे विश्वात्मा! हे भक्तवत्सल! मैं शरणागत हूँ, मुझे छोड़ दीजिये—आप मेरी रक्षा कीजिये" ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसप्रकार अधीनतापूर्वक प्रार्थना करनेपर भगवान् बलभद्रने यमुनाको छोड़ दिया; और हथनियोंके साथ जैसे गजराज क्रीड़ा करे

उसप्रकार गोपियोंके साथ यमुनाजलमें घुसकर जलविहार करना आरम्भ किया ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक जलविहार करनेके उपरान्त भगवान् जब जलसे बाहर निकले तब लक्ष्मीदेवीने उनको नीलाम्बर और उत्तरीय वस्त्र तथा महामूल्य अलङ्कार व मङ्गलमयी एक माला दी ॥ २९ ॥ तब बलभद्रजी उत्तम नीलाम्बर धारण करके एवं सुवर्णकी माला पहनकर व चन्दन लगाकर इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान सुशोभित हुए ॥ ३० ॥ हे राजन्! जहाँपर बलभद्रजीने यमुनाको हलसे खींचा था वहाँ अब भी अनन्तवीर्य बलदेवके बलको बतातीहुई यमुना टेढ़ी देख पड़ती है ॥ ३१ ॥

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥

हे तात! इसप्रकार व्रजवनिताओंके माधुर्यविलासके द्वारा आकृष्ट-हृदय होकर बलदेवजीने उनके साथ रमण किया और रासविलासमें दो महीनेकी रात्रियाँ एक रात्रिके समान बीत गईं ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितम अध्याय

मिथ्या-वासुदेव और काशिराजका वध

श्रीशुक उवाच–नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! बलदेवजी तो नन्दके व्रजको गये। इधर कुछ दिनके उपरान्त करूप देशके अधिपति अज्ञानसे अन्धं हो रहे पौण्ड्रकने "मैंही वासुदेव हूँ" ऐसा निश्चय करके भगवान् श्रीकृष्णके निकट एक दूत भेजा ॥ १ ॥ अज्ञ लोगोंके "आप ही भगवान् जगत्पति वासुदेव पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए हैं" इसप्रकार कहकर पौण्ड्रकको बहँकाया। अतएव करूपराजने अपनेको अच्युतका अवतार मान लिया एवं खेलके समय बालकोंद्वारा कल्पित राजाकी-भाँति उस अज्ञ मन्दबुद्धिने द्वारकामें अव्यक्तगति नारायणके निकट अपना दूत भी भेज दिया ॥ २ ॥ ३ ॥ द्वारकामें जाकर दूत कृष्णकी सभामें उपस्थित हुआ एवं वहाँपर बैठेहुए कमलनयन प्रभु श्रीकृष्णसे उस दूतने इसप्रकार पौण्ड्रकका संदेश सुनाया कि–"करूपराजने कहा है कि मैं ही एकमात्र वासुदेव हूँ, और कोई वासुदेव नहीं है; जीवोंपर दया करके मैंने अवतार लिया है। तुम मिथ्या

'वासुदेव' नामको छोड़ दो। हे यादव! तुमने मूढ़तावश जो मेरे चिन्ह धारण किये हैं उन सबको त्याग मेरी शरणमें शीघ्र आकर क्षमा माँगो, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो" ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ शुकदेवजी कहते हैं— महाराज! उग्रसेन आदि सभासद लोग जो वहाँ उपस्थित थे वे अल्पबुद्धि पौण्ड्रककी यह मिथ्या आत्मश्लाघा सुनकर ऊँचे स्वरसे हँसनेलगे। भगवान्‌ने भी हँसकर दूतसे कहा कि उससे कह देना कि "रे मूढ़! जिन लोगोंकी सहायताके बल और घमण्डपर तू इसप्रकार मिथ्या आत्मश्लाघा करता है उनपर और तुझपर अपने सुदर्शन आदि चिन्ह मैं आकर छोड़ूँगा। तू जिस मुखसे अपनी झूठी बड़ाई करता है उस मुखको छिपाकर जब समरभूमिमें शयन करेगा तब कङ्क, गृध्र और बक आदि सब पक्षी तुझको घेरकर बैठेंगे और कुत्ते तेरी शरणमें आवेंगे" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णके कहेहुए तिरस्कारसूचक वचन जैसेके तैसे दूतने जाकर अपने स्वामीसे कह दिये। श्रीकृष्णजी भी इधर रथपर चढ़कर काशीको चले। महारथी पौण्ड्रक अपने पुरमें था, वह भी इसप्रकार समर करनेकेलिये श्रीकृष्णका उद्योग देखकर दो अक्षौहिणी सेना ले शीघ्र ही पुरसे बाहर निकला ॥ १० ॥ ११ ॥ राजन्! उसका मित्र काशिराजभी एक अक्षौहिणी सेना लेकर सहायताके लिये उसके साथ आया। इसप्रकार तीन अक्षौहिणी सेनासहित समरभूमिमें खड़ेहुए पौण्ड्रकको भगवान्‌ने देखा कि वह भी अपनेही समान शङ्ख, श्रेष्ठ खड्ग, गदा, शार्ङ्ग धनुष और श्रीवत्स आदि चिन्ह धारण कियेहुए है। गलेमें कौस्तुभ व वनमालासे विभूषित है। पीताम्बर और उत्तरीय वस्त्र एवं अमूल्य चूड़ाभरण धारण कियेहुए अपने ही समान (बनावटी) वेषसे रङ्गभूमिमें नटके समान, युद्धभूमिमें गरुड़की ध्वजावाले रथपर अवस्थित पौण्ड्रकको देखकर भगवान् बहुतही हँसे। कानोंमें मकराकृत कुण्डल धारण कियेहुए शत्रुकी सेना हरिके ऊपर शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टिश और बाणोंकी वर्षा करनेलगी। युगान्तके समय प्रचण्ड होकर अग्नि जैसे प्रजागणको भिन्न भिन्न रूपसे पीड़ित करता है वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रने गदा, खड्ग, चक्र और बाणसमूहसे पौण्ड्रक और काशिराजकी चतुरङ्गिणी सेनाको अलग अलग पीड़ित करना आरम्भ किया। कृष्णचक्रके प्रहारसे जिनके खण्ड खण्ड होगये हैं उन रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे व्याप्त वह समरभूमि साहसी वीर पुरुषोंको प्रसन्न और उत्साहित करतीहुई प्रलयकालमें रुद्रकी अति भयानक क्रीड़ाभूमि मसानके समान जान पड़नेलगी। तदनन्तर वासुदेवने सामने आकर मिथ्यावासुदेवसे कहा कि—हे पौण्ड्रक! तूने दूतके द्वारा जिन सब अस्त्र-शस्त्रोंके छोड़नेके लिये मुझसे कहला भेजा था उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको मैं इससमय तेरे ऊपर छोड़ता हूँ। साथ ही यदि युद्ध करना न चाहूँगा तो तेरे मिथ्या नामको भी छोड़कर तेरी

शरणमें आ जाऊँगा। इसप्रकार आक्षेपपूर्ण वचन सुनाकर भगवान्ने इन्द्र जैसे वज्रसे पर्वतको भेदते हैं वैसे बाणवर्षासे पौण्ड्रकके रथको काटकर सुदर्शन चक्रसे उसके शिरको भी काट डाला। साथ ही एक बाणसे उसके सहायक काशिराजका भी शिर काटकर वायुसंचालित कमलपत्रके समान काशीपुरीमें पहुँचा दिया ॥१२॥ ॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥ इसप्रकार गर्वित पौण्ड्रकको उसके सहायक सखासहित मारकर श्रीकृष्णचन्द्रने राहमें सिद्धगणके मुखसे अपनी अमृतमय कथाएँ सुनतेहुए लौटकर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ राजन्! पौण्ड्रक शत्रुतावश सब समय भगवान्का ध्यान किया करता था, अतएव उसके सब कर्मबन्धन शिथिल होगये थे। बस, इसी कारण सर्वदा हरिके रूपका ध्यान करनेसे मरनेके उपरान्त वह तन्मय होगया ॥ २४ ॥ इधर काशी-पुरीमें राजद्वारपर काशिराजका कुण्डलमण्डित कटा हुआ शिर देखकर "यह क्या है? किसका शिर है?" इसप्रकार कहते सब पुरवासी लोग आन्दोलन करने-लगे ॥२५॥ तदनन्तर जब सबने जाना कि यह काशीपतिका शिर है तब रानियाँ, राजकुमार और बन्धुबान्धवगण एवं प्रजागण "हाय, हम मरगये! हाय, राजन्! हाय, नाथ! हाय, नाथ!" ऐसा कहकर विलाप करनेलगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर काशिराजका पुत्र सुदक्षिण जब पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया कर चुका तब उसने प्रतिज्ञा की कि "मैं जब अपने पिताके मारनेवालेको मारकर बदला लेलूँगा तभी पिताके ऋणसे मुक्त होऊँगा"। यह निश्चय करके वह उपाध्यायके साथ परम समाधि लगाकर महेश्वरकी आराधना करनेलगा ॥ २७ ॥ भगवान् शङ्करने उसकी आराधनासे प्रसन्न व मुग्ध हो प्रकट होकर कहा कि—"जो इच्छा हो, वह वर माँग"। उसने यही वर माँगा कि "जिसने मेरे पिताको मारा है उसके वधका उपाय बताइये" ॥ २८ ॥ शङ्करने कहा कि "तुम ब्राह्मणोंके साथ यज्ञके देव दक्षिणाग्निकी भलीभाँति उपासना करो। ऐसा करनेसे प्रमथगणपरिवृत वह अग्नि हिंसाकार्य (मारण)में नियुक्त होकर तुम्हारे संकल्पको सिद्ध करेगा। परन्तु स्मरण रहे कि जो कोई ब्राह्मणोंका भक्त होगा उसपर उसका विक्रम नहीं काम देगा, अर्थात् विफल हो जायगा" ॥ २९ ॥ ३० ॥ काशिराजके पुत्र सुदक्षिणने महादेवकी यह आज्ञा पाकर नियमधारणपूर्वक श्रीकृष्णके ऊपर उक्त विधिके अनुसार अभिचारविधिका अनुष्ठान किया। ऐसा करनेपर कुण्डसे वही अति भयानक रूपधारी दक्षिणाग्नि मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसकी शिखा व श्मश्रुके केश तपेहुए ताँबेके समान अरुणवर्ण थे, दोनो नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकल रही थीं एवं दाढ़ें व प्रचण्ड भौंहें उसके मुखमण्डलको महाभयानक बनाये-हुए थीं। वह अग्नि अपनी जीभसे चौंहोंको वारंवार चाटता हुआ, ताड़ ऐसे लम्बे पैरोंसे पृथ्वीको कँपाता हुआ, अपने तेजसे दशो दिशाओंको जलाता हुआ

प्रमथगणको साथ लिये द्वारकाकी ओर दौड़ा। वह प्रज्वलित मूर्तिमान् अग्नि नग्नवेष था। अभिचारक्रियाके लिये उत्पन्न उस भयंकर अग्निको आते देखकर वनको जलता देख जैसे पशुपालक लोग भयसे प्राण लेकर भागते हैं वैसे ही डरकर द्वारकावासी लोग प्राण बचानेके लिये इधरउधर भागनेलगे। भगवान् उससमय सभामें बैठेहुए चौंसर खेल रहे थे। सब भयसे आतुर पुरवासी लोग भगवान्के पास जाकर दीनभावसे पुकारकर कहनेलगे कि-"हे त्रिलोकीके ईश्वर! यह घोर अग्नि पुरको जला रहा है, इससे हमारी रक्षा करो"। सब प्राणियोंके अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने प्रजागणको आकुल और अपने आत्मीयोंको भयभीत देखकर हँसतेहुए कहा कि-"डरो नहीं, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा"। सब जगत्के भीतर और बाहरके साक्षी भगवान् जान गये कि यह "माहेश्वरी कृत्या" है, अतएव उसका विनाश करनेके लिये उन्होने अपने पास ही उपस्थित सुदर्शन चक्रको आज्ञा दी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भगवान्का श्रेष्ठ अस्त्र सुदर्शन, उस समय करोड़ सूर्यके समान प्रज्वलित हो प्रलयकालीन अग्निके समान भयंकर रूप धारण कर उस अग्निके आगे आया। सुदर्शनके प्रचण्ड तेजसे आकाश, अन्तरिक्ष और दशो दिशाएँ व्याप्त और प्रकाशित होगईं ॥ ३९ ॥ सुदर्शन चक्रके तेजसे पीड़ित वह कृत्यानल प्रतिहत होकर लौट पड़ा। चक्रपाणिके चक्रके तेजसे जिसका तेज नष्ट हो गया उस कृत्यारूप अग्निने वहाँसे लौट वाराणसी पुरीमें आकर सुदक्षिणको ऋत्विजोंसहित तत्क्षण ही भस्म कर डाला। अपने किये अभिचारसे वह दुष्ट आप ही नष्ट हो गया। विष्णुके चक्र सुदर्शनने भी उस अग्निका पीछा नहीं छोड़ा और उसके पीछे पुरीमें प्रवेश करके अट्टालिका, सभामण्डप, हाट, बाट, गोपुर, अट्टालक, कोष्ठसमूह, कोषशाला, हस्तिशाला, अश्वशाला और अन्नशाला आदिसे सुशोभित वाराणसीपुरीको भस्म कर दिया। सहजमें ही लीलापूर्वक ये सब दुष्कर कर्म करके सुदर्शनचक्र लौट कर कृष्णके निकट आ गया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

य एवं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥
समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

राजन्! जो मनुष्य सावधानतासहित मन लगा कर उत्तमश्लोक हरिके इस अद्भुत विक्रम-व्यापारको सुनता या सुनाता है वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितम अध्याय

द्विविद वानरका वध

राजोवाच-भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्म करनेवाले, अनन्त, अप्रमेय, प्रभु बलभद्रजीने जो और कर्म किये हों उन उनके विक्रमोंको मैं सुनना चाहता हूँ। शुकदेवजी कहने लगे—राजन्! सुग्रीवका मन्त्री और मैन्दका भाई वीर्यवान् द्विविद नाम एक वानर भौमासुरका परम मित्र था ॥१॥२॥ भौमासुरको जब कृष्णचन्द्रने मार डाला तब मरेहुए मित्रका बदला चुकानेकी इच्छासे राष्ट्रविप्लव करनेकी अभिलाषासे वह वानर द्वारकामें आकर घोर उत्पात करनेलगा। कभी वह आग लगाकर आसपासके पुर, ग्राम, व्रज और आकरोंको भस्म कर देता, कभी पर्वत उठाकर देशोंके ऊपर छोड़ देता, जिससे वे देश नष्ट होजाते। इसप्रकार जहाँ दुष्टदमनकारी कृष्णचन्द्र निवास करतेथे उन आनर्त देशके पुरोंको वह विनष्ट करनेलगा। वह उत्पाती वानर समुद्रमें घुसकर जलको उचलकर किनारेकी ओर फेंकता, जिससे किनारेकी वस्तियाँ बह जातीं। वह दश हजार हाथियोंके समान बली दुष्ट द्विविद कभी श्रेष्ठ ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वहाँके वृक्षोंको उखाड़ उखाड़ कर फेंक देता और मलमूत्रके द्वारा हवनकी अग्निको बुझाकर कुण्डोंको दूषित कर देता। जैसे भ्रमर और और कीड़ोंको पकड़कर ले जाता है और अपने रहनेके बिलमें बन्द कर देता है वैसे ही घमण्डी वानर भी स्त्रीपुरुषोंको पकड़कर ले जाता और कन्दरामें डालकर पत्थरसे उसका द्वार बन्द कर देता ॥३॥४॥५॥६॥७॥ इसीप्रकार अनेक देशोंको उजाड़ता और कुलनारियोंको दूषित करता वह वानर इधरउधर विचरता रहता था। एक दिन सुललित सङ्गीतका मधुर स्वर सुनकर वह वानर रैवतक पर्वतपर चढ़ गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि भगवान् यदुपति बलभद्रजी विराजमान हैं, उनके गलेमें वनमाला पड़ीहुई है एवं सब अङ्ग देखनेमें परम सुन्दर हैं। वह सुन्दर रमणियोंकी मण्डलीके बीचमें बैठेहुए वारुणी मदिरा पान कर रहे हैं। उनके नेत्र मदके कारण विह्वल हो रहे हैं। उनका विशाल शरीर देखनेसे जान पड़ता है कि कोई मदमत्त गजराज हथनियोंके साथ विहार कर रहा है। इसप्रकार स्त्रियोंके साथ मदिरापान और गान कर रहे बलभद्रको देख वह दुष्ट वानर एक वृक्षपर चढ़ गया और उसकी शाखाओंको वेगसे हिलाता हुआ अपनी गुप्त इन्द्रिय दिखाकर किलकिला शब्द करनेलगा। स्त्रियाँ स्वाभाविक

चञ्चल और हास्यप्रिय होती हैं, अतएव वे (बलभद्रकी स्त्रियाँ) वानरकी यह ढिठाई देखकर हँसनेलगीं । वह दुष्ट वानर बलभद्रजीके आगे ही फिर अपनी गुप्त इन्द्रिय दिखाकर भौंह मटकाकर मुख बना कर वारंवार उन स्त्रियोंको चिढ़ानेलगा। तब श्रेष्ठ वीर बलदेवने कुपित हो एक पत्थरका बड़ा भारी टुकड़ा उठाकर उसके खींच मारा। वह वानर उस शिलाप्रहारको बचा गया और बलभद्रके आगे धरेहुए मदिराके पात्रको फुर्तीसे लेकर दूर भाग गया और दूरसे हँस हँस कर बलदेवजीके हृदयमें कोप उपजानेलगा। इतना ही तिरस्कार करके वह दुष्ट नहीं शान्त हुआ। उसने मदिराके पात्रको पटककर फोड़ डाला और फिर स्त्रियोंके कपड़े खींच खींच कर फाड़ता हुआ अनेक नीच व्यवहारोंसे बलभद्रके कोपको बढ़ानेलगा। उस मदोद्धत दुष्टके इसप्रकार अविनीत और नीच व्यवहारको देखकर तथा यह जानकर कि इसी दुष्टने यहाँके अनेकों देशों व पुरोंको उजाड़ कर दिया है, भगवान् बलभद्र क्रोधसे विह्वल होगये। वह उसी समय उसको मारनेके लिये हल और मुसल लेकर उठ खड़ेहुए ॥८॥९॥१०॥११॥ ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ महाबली द्विविद भी युद्धके लिये उद्यत हुआ। उसने एक बड़ा भारी शालका वृक्ष उखाड़ लिया और निकट आकर बलभद्रजीके मस्तकपर बड़े वेगसे प्रहार किया ॥ १७ ॥ संकर्षण देव पर्वतके समान अटल भावसे उसी स्थानपर खड़े रहे, जब वह वृक्ष शिरके ऊपर आया तो उसको उन्होने एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरे हाथसे वानरपर मुसलका प्रहार किया। मुसलके प्रहारसे उस वानरका शिर फट गया और रुधिरकी धारा बहनेलगी। उस समय जैसे किसी पर्वतसे पानीमें घुलकर गेरूकी धारा बहचले वैसे ही उस वानरकी शोभा हुई। उस प्रहारको न मानकर फिर दारुण क्रोध करके उस वानरने एक पत्रशून्य वृक्षको ठूँठ उखाड़कर बलभद्रके शिरपर बड़े वेगसे खींच मारा। किन्तु कुपित हो बलभद्रजीने बीचमें ही उस वृक्षके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। वानरने और भी कुपित हो और एक वृक्ष बलभद्रपर चलाया। भगवान्ने उसके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले। इसप्रकार जब युद्ध करनेमें वारंवार उद्यम वृथा गया तब वह वानर मारे क्रोधके आपेसे बाहर हो गया। यहाँतक कि उसने उस वनभरके वृक्ष उखाड़ उखाड़ कर बलभद्रजीपर चलाये, जिससे कि वह वन एकप्रकार वृक्षोंसे शून्य होगया। जब वृक्ष चुक गये और कुछ भी न हुआ तब वह वानर अत्यन्त कुपित हो बलभद्रके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगा। किन्तु उन शिलाओंको भी यदुनायकने अपने मुसलके प्रहारसे चूर चूर कर डाला ॥ १८ ॥ ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ अन्तको ताड़ ऐसे लम्बे दोनो हाथोंसे घूसा बाँधकर वह वानर दौड़ा और रोहिणीनन्दनके निकट आकर उनके वक्षःस्थलपर उसने घूँसे मारे। भगवान् बलभद्रने कुपित हो हल मुसलको धर दिया और दोनो हाथोंसे

क्रोधपूर्वक कण्ठ और बाहुके बीचमें पकड़कर उस वानरको पीड़ा पहुँचाई । मर्म-स्थलमें पीड़ित होनेपर उस वानरके मुखसे रुधिर गिरनेलगा और वह तुरन्त प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जैसे आँधीकी थपेड़से समुद्रके भीतर जा रही नाव हिलने लगती है वैसे ही उस वानरका शरीर जब गिरा तो उसके धमाकेसे कन्दराओं, शिखरों और वृक्षोंसहित वह पर्वत हिल गया ॥ २६ ॥ उससमय आकाशसे देवता, सिद्ध और मुनीन्द्रगण फूलोंकी वर्षा करतेहुए "जयजय, नमोनमः, साधु साधु" कहकर प्रसन्नता प्रकट करनेलगे ॥ २७ ॥

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥
संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥

इसप्रकार जगत्को सतानेवाले और उथल-पथल मचानेवाले दुष्ट द्विविदको मारकर अपने परिजनोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनतेहुए भगवान् बलभद्रने पुरमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितम अध्याय

बलदेवविजय

श्रीशुक उवाच–दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिंजयः ॥
स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! दुर्योधनको एक कन्या थी, उसका नाम लक्ष्मणा था । उसका स्वयंवर रचा गया । शत्रुओंको जीतनेवाले जाम्बवतीके पुत्र वीर साम्ब अकेले ही स्वयंवरमें पहुँचे और उस कन्याको हरकर द्वारकाको चले ॥ १ ॥ यह देख सब कौरवगण कुपित होकर कहनेलगे कि "यह बालक बड़ाही ढीठ है । देखो न! कन्याकी इच्छा न होनेपर भी हम सबको तृणसम तुच्छ मानकर बलपूर्वक उसे हर ले गया । इसलिये यही उचित है कि इस ढीठ बालकको पकड़कर बंदी बना लो, वृष्णि (यादव) लोग हमारा क्या कर लेंगे? वे तो हमारे ही प्रसादसे राज्यभोग कर रहे हैं, हमने ही उनको राज्य दिया है, वे तो स्वयं राज्यके अधिकारी नहीं हैं । और पुत्रका पकड़ा जाना सुन-कर यदि यादव लोग चढ़ाई करके आवेंगे तो यहाँ उनका घमण्ड चूर हो जायगा और वे प्राणायामादि उपायोंसे जिनका दमन किया गया है उन इन्द्रियोंके

समान शान्त हो जायँगे" ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ कुरुवृद्ध भीष्म पितामहने भी इसका अनुमोदन किया, बस—फिर क्या था; भीष्मपितामहको आगे करके कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन आदि कई चुनेहुए महारथी योद्धा पकड़नेके लिये साम्बके पीछे चले। महारथी अनुचरोंसहित धृतराष्ट्रके पुत्रोंको पीछा करते देख क्षत्रियश्रेष्ठ साम्ब निर्भय भावसे सुन्दर धनुष्य लेकर अकेले ही सिंहके समान युद्ध करनेके लिये खड़े होगये ॥ ५ ॥ ६ ॥ साम्बको पकड़नेकी इच्छासे "ठहर ठहर" करतेहुए कुपित कौरवगण निकट आगये और धनुष चढ़ाकर बाणोंकी वर्षा करनेलगे। कर्ण उन सबमें अगुआ था ॥ ७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जब कौरवोंने इसप्रकार आक्रमण किया तब जैसे सिंहको क्षुद्र मृग घेर लें और वह उनको कुछ न समझे वैसे ही बालक और अकेले होनेपर भी साम्ब घबड़ाये नहीं। वह उनके आक्रमणको न सहकर क्रोधपूर्वक सुन्दर धनुष चढ़ाकर युद्ध करनेलगे। साम्बने कर्ण आदि छः महारथियोंको उतने ही बाणोंसे अलग अलग घायल किया। उन महारथी शत्रुओंने भी साम्बके इस कर्मकी प्रशंसा की। महाराज! कौरवोंने भी कृष्णपुत्र साम्बका रथ काट डाला। चार जनोंने साम्बके चारो घोड़ोंको और एकने सारथीको मार डाला, एवं एकने धनुषको काट डाला। इसप्रकार कौरवोंने युद्धभूमिमें अकेले साम्बको बड़े कष्टसे रथहीन करके बाँध लिया। जय पाकर कुमार साम्बको कन्यासहित पकड़ आनन्द मनातेहुए कौरव लोग अपने पुरको लौट गये। नारदने जाकर यह सब वृत्तान्त द्वारकापुरीमें कहा। सो सुनकर वीर यादवोंको बड़ा क्रोध हो आया एवं वे उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए। परन्तु बलभद्रजीकी यह इच्छा न थी कि कौरवों और यादवोंमें परस्पर युद्ध हो; इसलिये कलिकलुषनाशन बलभद्रने कुपित और युद्धके लिये उद्यत यादवोंको समझाबुझाकर शान्त किया और आप मेल करानेकी इच्छासे ग्रहोंसहित चन्द्रमाके समान सूर्यसम प्रकाशमान रथपर चढ़कर कुलके बड़े बूढे लोगों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर हस्तिनापुरकी ओर चले ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥ हस्तिनापुर पहुँचकर बलभद्रजी पुरके बाहर उपवनमें ही ठहरे और धृतराष्ट्रका अभिप्राय जाननेके लिये उद्धवजीको कौरवोंकी सभामें भेजा ॥ १६ ॥ उद्धवने भी सभामें जाकर यथोचित रीतिसे धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, बाल्हीक और दुर्योधन आदिको प्रणाम करके कहा कि "बलभद्रजी आये हैं" ॥ १७ ॥ वे अपने प्रियतम सुहृद् बलभद्रजीका आना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने पहले उद्धवका पूजन और सत्कार किया एवं फिर माङ्गलिक पूजनसामग्री लेकर बलदेवजीके पास चले। सब लोग विधिपूर्वक बलभद्रजीसे मिले, फिर गोदान और अर्घ्यदान कर, जो लोग बलभद्रजीके प्रभावको जानते थे

उन्होने शिर झुका उनको प्रणाम किया। तदनन्तर परस्पर कुशल-प्रश्नके उपरान्त जब सब सुखसे बैठे तब बलभद्रजीने धीर भावसे कहा कि "राजाधिराज प्रभु उग्रसेनने जो आज्ञा तुमको दी है उसको चित्त लगाकर सुनो और शीघ्र ही उसे पालन करो। उन्होने कहा है कि तुम कई जनोंने जो अधर्मपूर्वक एक धर्मयुद्ध करनेवाले बालकको पकड़कर बन्दी बनाया है उसको हम लोग इसलिये सहे लेते हैं कि जिससें हम बन्धुओंमें मेल बना रहे और युद्ध न हो। अतएव इसीसमय तुम उस बालकको हमें दे दो" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रभाव, उत्साह और बलके उल्लेखसे युक्त एवं अपनी शक्तिकी समताकी सूचना देनेवाले बलभद्रके वचन सुनकर कौरवगण अत्यन्त कुपित हुए और कहनेलगे कि- "अहो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है! दुरत्यय कालचक्रकी गतिके प्रभावसे आज चरणपादुकाएँ मुकुटके स्थान शिरपर चढ़ना चाहती हैं। कुन्तीके विवाह-द्वारा इन यादवोंके साथ हमारा योनिसम्बन्धमात्र है, इसी सम्बन्धके कारण ये लोग हमारे बराबर बैठने उठने और साथ भोजन करनेलगे। अब ये इतने मूढ़ होगये हैं कि हमारे ही दियेहुए राज्यासनको पाकर हमारी समता करनेलगे!! हमलोग कुछ ध्यान नहीं देते, अतएव ये लोग स्वतन्त्रतापूर्वक राजोंके समान चामर व्यजन, शङ्ख, श्वेत छत्र, किरीट, मुकुट, उत्तम आसन एवं शय्याआदि राजभोग्य सामग्रियोंका उपभोग करते हैं। अहो! हमारे ही अनुग्रहसे सुखसमृद्धिसम्पन्न होकर ये यादवगण आज हमको ही आज्ञा दे रहे हैं! अतएव जैसे सर्प दूध पिलानेवालेहीको काटता है उसीप्रकार उपकार करनेवालोंपरही चोट करनेवाले यादवोंकी यह ढिठाई क्षमा करनेयोग्य नहीं है। अभी इनसे उक्त राजचिन्ह छीन लेने चाहिये। भीष्म, द्रोण आदि कौरव यदि न चाहें तो इन्द्रकी भी सामर्थ्य नहीं है कि वह किसी वस्तुको अपने पास बलपूर्वक रख सकें। सिंहके भागको कहीं सियार या साधारण भेंड़ा पचा सकता है?" ॥२३॥ ॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे कुरुश्रेष्ठ! जन्म, बन्धु, लक्ष्मी आदिके प्रबल मदोंसे अपनेको भूलेहुए अर्थात् मदान्ध, असभ्य कौरवगण यों कटु वचन कहकर नगरमें चलेगये। भगवान् बलभद्रजी कौरवोंके ऐसे दुष्ट व्यवहारको देखकर और कटु वाक्योंको सुनकर अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधके कारण उनका रूप ऐसा रौद्र होगया कि कोई उनकी ओर भलीभाँति नेत्र उठाकर देखनेका साहस नहीं कर सका। भगवान् बलभद्र क्रोधके आवेशमें वारंवार उच्च स्वरसे हँसकर आप ही आप कहनेलगे-"यह बात बहुत ही ठीक है कि अनेक प्रकारके मदोंसे अन्धे हो रहे दुष्ट लोग शान्तिकी इच्छा नहीं करते; जैसे पशुगण डंडेकी चोटसे ही सीधी राहपर आते हैं वैसे ही दण्डके द्वारा वे शान्त किये जा सकते हैं। अहो! मैं तो इनकी भलाईके लिये कुपित कृष्णको और युद्धके लिये

उद्यत यादवोंको रोककर और किसीप्रकार समझाबुझाकर यहाँ मेलके लिये आया था, किन्तु ये मतिमन्द लड़ाईमें निरत और दुष्ट हैं अतएव गर्वपूर्वक इन्होने मेरा तिरस्कार किया और कटु वचन कहे। इन्द्र आदि श्रेष्ठ लोकपाल-गण भी जिनकी आज्ञाको शिर आँखोपर लेते हैं वह वृष्णि और अन्धक यादवोंके अधीश्वर उग्रसेन इन दुष्टोंकी दृष्टिमें विभु (आज्ञा देनेवाले) पदके योग्य नहीं हैं! जो सुधर्मा सभामें विराजमान हैं, जिन्होने कल्पवृक्ष लाकर अपने भवनके उपवनमें लगाया है वह कृष्णचन्द्र अधिपतिके आसनके योग्य नहीं है! अखिलेश्वरी साक्षात् लक्ष्मी नित्य-निरन्तर जिनके चरणकमलोंका सेवन करती है वह लक्ष्मीपति राज्यभोग्य सामग्रीका भोग करनेयोग्य नहीं हैं! तीर्थस्वरूप योगीजन तीर्थ मानकर जिसकी उपासना करते हैं उस हरिचरणकमल-रजको लोकपालगण अपने उत्तम मुकुटमण्डित मस्तकोंपर सादर स्थान देते हैं। मैं, ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि सब उन्ही ईश्वर कृष्णचन्द्रकी अंश कला हैं और उन्हीके चरणोंकी सेवामें तत्पर रहते हैं, उन कृष्णको राज्यासन कहाँ है? ठीक है; यादवगण कौरवोंके दिये राज्यासनका भोग करनेवाले हैं, और यह भी ठीक ही है कि हमलोग चरणपादुकाएँ हैं एवं कौरवलोग शिर हैं। अहो! मतवालोंकी भाँति ऐश्वर्यके मदमें चूर इन घमण्डी कौरवोंकी बे-सिर-पैरकी रूखी बातोंको स्वयं शासक होकर भी कौन सहसकता है?"। तदनन्तर "आज मैं पृथ्वीको कौरवोंसे सूनी कर दूँगा"–ऐसा कहकर दारुण क्रोधसे मानो तीनो लोकोंको भस्म कर देंगे, इसभाँति हल हाथमें लिये भगवान् बलभद्र उठ खड़ेहुए और गङ्गामें गिरा देनेके लिये हस्तिनापुरको हलके अग्रभागसे गङ्गाकी ओर घसीटा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ हलके द्वारा खींचेगये नगरको नावके समान घूमकर गङ्गामें गिरते देख सब कौरवगण भयसे व्याकुल हो उठे एवं प्राण बचानेकी इच्छासे अपने कुटुम्ब-परिवारसहित लक्ष्मणा और साम्बको आगे करके हाथ जोड़े नम्र-भावसे उन्ही प्रभु बलभद्रकी शरणमें आये और कहनेलगे कि हे राम! हे राम! हे सम्पूर्ण जगत्के आधार! हम आपके प्रभावको नहीं जानते। हे अधीश्वर! हम महामूढ़ और कुमति हैं, आप हमारे अपराधोंको क्षमा करिये। आपको ऐसा ही उचित है। आप इस जगत्की सृष्टि, पालन और ध्वंसका एकमात्र कारण हैं। आप निराश्रय हैं। आप जिससमय क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त होते हैं उससमय ये सब लोग आपकी क्रीड़ाकी सामग्रीके समान उत्पन्न होते हैं। हे सहस्र मस्तकवाले अनन्त! आप ही अनन्त लीलाओंके लिये इस पृथ्वीमण्डलको अपने एक मस्तक-पर धरेहुए हैं। अन्तसमय जो अपनेमें विश्वको लीन करके अकेले अवशिष्ट रहते और अनन्त-शय्यापर शयन करते हैं वह शेषशायी नारायण भी आप ही हैं।

आप जगत्की स्थिति और पालनमें तत्पर होकर सत्त्वगुणको ग्रहण कियेहुए हैं। शत्रुताके कारण आप किसीसे द्वेष या मात्सर्य नहीं रखते, वरन् कभी कभी जगत्को शिक्षा देनेके लिये ही आप कुपित होते हैं। हे सर्वभूतस्वरूप! हे सर्वशक्तिधर! हे अव्यय! हे विश्वकर्मा! आपको प्रणाम है। हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जिनका नगर हिल उठा उन विपन्न भीतचित्त, शरणागत कौरवोंने जब इसप्रकार नम्र वचनोंसे प्रसन्न किया तब भगवान् बलभद्रने उनको अभयदान किया॥ ४९ ॥ तदनन्तर दुहितावत्सल दुर्योधनने साठ वर्षकी अवस्थावाले बारह सौ प्राचीन गजराज, दस हजार घोड़े, स्वर्णनिर्मित-सूर्यकिरणयुक्त छः हजार रथ एवं स्वर्णपदकभूषित ग्रीवावाली एक हजार दासियाँ यौतकमें कन्या और वरको दीं॥ ५० ॥ ५१ ॥ यह सब सामग्री लेकर यादवश्रेष्ठ भगवान् पुत्र, और वधूको आगे करके सुहृद्गणके द्वारा अभिनन्दित हो पुरीको लौटे॥ ५२ ॥ तदनन्तर अपनी पुरीमें आकर हलधरजी अनुरक्तचित्त बन्धु-बान्धवोंसे मिले और कौरवोंने जैसा व्यवहार पहले और पीछे किया सो सब वृत्तान्त उनसे भरी सभामें कह सुनाया॥ ५३ ॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम्॥
समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनु दृश्यते॥ ५४ ॥

राजन्! हस्तिनापुर नगर दक्षिणभागमें गङ्गाकी ओर उन्नत है और अभीतक बलभद्रजीके विक्रमको जगत्में प्रकट कर रहा है॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितम अध्याय

मायाविभववर्णन

श्रीशुक उवाच—नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम्॥
कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स नारदः॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! नारदने सुना कि नरकासुरको मारकर भगवान् कृष्णचन्द्रने उसकी बन्दिनी सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह किया है। यह सुनकर नारदको बड़ा विस्मय हुआ और वह इस विचित्र व्यापारको देखनेकी इच्छासे द्वारकापुरीमें आये। नारदजी मन-ही-मन विचारने-

लगे कि "अहो! यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है! एक श्रीकृष्णने एकही शरीर से भिन्न भिन्न महलोंमें सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंसे विवाह किया!"। नारदने आकर देखा कि द्वारकाके फूलेहुए उपवन और बागोंमें पक्षी और भौंरे मनोहर मधुर बोलियाँ बोल रहे हैं एवं सब सरोवर फूलेहुए इन्दीवर, पद्म, कल्हार, कुमुद और उत्पल आदि भाँति भाँति के कमलोंसे व्याप्त हो रहे हैं। हंस और सारसोंके झुण्ड उन सरोवरोंके किनारे बैठेहुए ऊँचे स्वरमें तानें मार रहे हैं। वह पुरी स्फटिक और चाँदीके बनेहुए लाखों नवीन महलोंमें जड़ीहुई महामरकत मणियोंकी चमकसे प्रकाशित होरही है एवं रत्नजटित पर्यङ्क उनमें अपूर्व भावसे शोभायमान हैं। परस्पर बँटेहुए राजपथ, क्षुद्रपथ, चत्वर, आपण (बाजार) अन्न आदिकी शालाएँ एवं अनेकानेक देवालयोंसे वह नगरी बहुत ही भली और मनोहर जान पड़ती है। उसके मार्ग, आपणमार्ग, देहली आदि स्थानोंमें सुगन्धित जलसे छिड़काव किया गया है। पुरीमें प्रायः सर्वत्र वायुसे लहरा रही पताकाएँ और ध्वजाएँ घोर धामको रोककर अपनी छाया फैला रही हैं॥१॥२॥३॥ ॥४॥५॥६॥ नगरीके भीतर हरिके श्रीसम्पन्न एवं सर्वलोकपालपूजित अन्तःपुरकी रचनामें विश्वकर्माने अपना विशेष कौशल (कारीगरी) झलकाया है। वह विशाल अन्तःपुर कृष्णकी स्त्रियोंके सोलह हजार महलोंसे सुशोभित है। उसी अन्तःपुरमें पहुँचकर देवऋषि नारदने एक बड़ेभारी महलमें प्रवेश किया। नारदने देखा कि वैदूर्यके फलकोंपर विद्रुमके बहुतसे बड़े बड़े खम्भे उस महलमें स्थापित हैं। दीवारें सब इन्द्रनीलमणिकी बनीहुई चमक रही हैं। जहाँ तहाँ विश्वकर्माके बनायेहुए मोतियोंकी झालरोंसे युक्त उत्तम चँदोवे तनेहुए हैं। उत्तम मणियोंकी मालाओंसे विभूषित हाथीदाँतके पलँग पड़ेहुए हैं, जिनमें उत्तम रत्न जड़ेहुए शोभाको बढ़ा रहे हैं। सुन्दर वस्त्र धारण किये, कण्ठमें सुवर्णके आभूषण पहने दासियाँ और सुन्दरवस्त्र पहने, मणिकुण्डलधारी, जामा व पगड़ीसे सुशोभित दासलोग अपने अपने स्थानपर खड़ेहुए उस भवनको सुशोभित कर रहे हैं। बहुतसे रत्नदीपक अपने स्वच्छ प्रकाशसे भवनके अन्धकारको दूर कर रहे हैं। महाराज! वहाँ सुलग रहे अगुरुके धुँएको देख मेघके भ्रमसे विचित्र वलभियोंमें बैठेहुए मोर प्रसन्नता प्रकट करनेवाली आनन्द ध्वनिके साथ नाचने लगते हैं। नारदने उस भवनमें यदुपति कृष्णको देखा कि बैठेहुए हैं और समान-गुण-रूप-अवस्था तथा सुन्दर वेषवाली दासियोंसे घिरी हुई श्रीमती रुक्मिणीदेवी सुवर्णदण्डयुक्त चामर हाथमें लिये उनकी सेवा कर रही हैं। सम्पूर्ण धार्मिकोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण नारदजीको देखते ही सहसा रुक्मिणीके पलँगसे उठ बैठे और हाथ जोड़ ऋषिके चरणोंमें किरीटमण्डित मस्तक रखकर प्रणाम किया एवं उनको अपने आसनपर बिठलाया। राजन्! भगवान् कृष्णके चरणोंका धोवन (गङ्गा) सब

तीर्थोंसे बढ़कर अथवा सर्वतीर्थमय है एवं वह कृष्णचन्द्र स्वयं सम्पूर्ण जगत्‌के एकमात्र श्रेष्ठ गुरु हैं, तथापि उन्होने नारदजीके चरणोंको भक्तिसे धोकर उस जलको अपने सब अङ्गोंपर एवं शिरपर डाल लिया। वह भगवान् सत्य-सत्यही साधुजनोंके स्वामी हैं। उनका 'ब्रह्मण्यदेव' यह नाम गुणकृत है, वास्तवमें वही इस नामके योग्य हैं। पुरातन ऋषि नरके सखा नारायण श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि-श्रेष्ठ नारदकी पूजा करके विधिपूर्वक कहेगये, परिमित, अमृततुल्य मधुर "भले आप आये, बड़े भाग्यसे आपका दर्शन हुए" इत्यादि वचनोंसे प्रिय सम्भाषण किया। तदनन्तर फिर कृष्णचन्द्रने कहा कि "प्रभो! आपका क्या कार्य करना होगा, मुझको आज्ञा दीजिये" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ नारदने कहा—"हे विभो! हे सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी! सब लोगोंसे मित्रभाव एवं दुष्टोंका दमन करना, ये दोनो बातें आपमें हैं, सो कुछ आश्चर्य नहीं है। हे महायशस्वी! हम भलीभाँति जानते हैं कि जगत्‌की स्थिति और रक्षाके ही लिये आपका यह स्वेच्छावतार होता है ॥ १७ ॥ भगवन्! अपने जनोंके लिये मुक्तिमय आपके चरणकमलोंको अगाध बोधवाले ब्रह्मादिक भी हृदयमें धरकर ध्याते हैं, क्योंकि ये चरण संसाररूप कूपमें पड़ेहुए लोगोंके लिये कूपसे निकालनेवाला एकमात्र अवलम्ब हैं। आज इनके साक्षात् दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य होगया; मैं सदैव इन्ही चरणोंका ध्यान करताहुआ विचरता रहता हूँ। भगवन्! ऐसी कृपा करो जिसमें आपका ध्यान बना रहे" ॥१८॥ हे अङ्ग! योगे-श्वरोंके ईश्वर कृष्णचन्द्रकी योगमाया देखनेके लिये नारदजी उस महलसे निकल-कर दूसरे महलमें गये ॥१९॥ वहाँ भी जाकर नारदने देखा कि श्रीकृष्ण भगवान् अपनी प्रिया और उद्धवके साथ चौंसर खेल रहे हैं। भगवान्‌ने उठकर मुनिको बैठनेके लिये आसन दिया, पूजन किया और जैसे नारदसे भेंट ही नहींहुई इस-प्रकार कहा कि "मुनिवर! आप कब आये? आप तो स्वयं परिपूर्ण हैं, हमारे समान अपूर्ण व्यक्ति आपका कौनसा अभीष्ट पूरा कर सकते हैं? हे ब्रह्मन्! तथापि आज्ञा करिये, हम उसे पालन करके अपने जन्मको सफल करें"। नारदजी मारे विस्मयके कुछ भी न कहसके और चुपचाप उठकर तिसरे महलमें गये ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहाँ भी नारदने देखा कि भगवान् अपने पुत्रों और पौत्रोंको खेला रहे हैं। और महलमें जाकर नारदने देखा कि भगवान् स्नान करनेके लिये जा रहे हैं ॥ २३ ॥ इसीप्रकार नारदने अनेक महलोंमें जाकर देखा और सर्वत्र भगवान्‌को भिन्न भिन्न अवस्थामें पाया। कहीं आहवनीय आदि अग्नियोंमें हवन एवं पञ्च-महायज्ञ करते, कहीं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर बचेहुए अन्नसे भोजन करते, कहीं सन्ध्योपासनमें मौनभावसे गायत्रीका जप करते, कहीं ढाल तर्वार हाथमें लिये खड्ग-विद्याका अभ्यास करते, कहीं घोड़ेकी पीठपर, कहीं

हाथीकी पीठपर विचरतेहुए देखा। कहीं देखा कि भगवान् सो रहे हैं और बन्दीजन स्तुति करके जगा रहे हैं। कहीं देखा कि उद्धव आदि मन्त्रियोंसे बैठेहुए सलाह कर रहे हैं। कहीं देखा कि सुन्दर स्त्रियोंके बीचमें घिरेहुए उनके साथ जलविहार कर रहे हैं। कहीं देखा कि सुन्दर और भलीभाँति अलंकृत असंख्य गौवें ब्राह्मणोंको दे रहे हैं। किसी महलमें इतिहास, पुराण आदि मङ्गल कथाएँ सुनतेहुए पाया। कहीं देखा कि प्रियाके साथ हँसी दिल्लगी करतेहुए उनको प्रसन्न कर रहे हैं। कहीं कहीं क्रमशः धर्म, अर्थ, कामका सेवन और साधन करते देखा। कहीं देखा कि प्रकृतिसे परे पुरातनपुरुष कृष्णचन्द्र अपने ध्यानमें निविष्टचित्त हैं। कहीं देखा कि अभिलापपूरण, भोगप्रदान और पूजा करके बड़े बूढ़े गुरुजनोंकी सेवा कर रहे हैं। कहीं देखा कि कुछ राजोंके साथ युद्ध करनेकी और कुछ राजोंके साथ सन्धि करनेकी सलाह कर रहे हैं। कहीं देखा कि बलरामके साथ बैठेहुए साधुजनोंकी भलाई और मङ्गल सोच रहे हैं। कहीं देखा कि शुभ समयमें अपने पुत्र और पुत्रियोंका, यथायोग्य गुण, रूप, विभवमें समान पात्री और पात्रोंसे विवाह कर रहे हैं। कहीं देखा कि कन्या और दामादोंको बिदाकर रहे हैं, और कहीं देखा कि उनको बुला रहे हैं और ऐसे समयमें महा उत्सव हो रहा है, एवं योगेश्वर कृष्णके पुत्र पौत्रादिके महा उत्सवोंको देखकर सब दर्शक लोग विस्मित हो रहे हैं। कहीं समृद्धिसम्पन्न अनेक यज्ञोंसे अपने अंश देवतोंका पूजन कररहे हैं। कहीं कूप, आराम और देवालय आदिकी प्रतिष्ठा करके इष्टा-पूर्त आदि कर्मोंका अनुष्ठान कररहे हैं। कहीं श्रेष्ठ यादवोंके साथ सिन्धुदेशके घोड़ेपर चढ़कर शिकार खेलने जा रहे हैं, कहीं यज्ञके योग्य पशुओंको मारकर लिये आ रहे हैं। कहीं अव्यक्तस्वरूप योगेश्वर कृष्णचन्द्र विशेष विशेष भावोंका संभोग करनेके लिये अन्तःपुरके महलोंमें स्त्रियोंके बीच विराजमान हैं॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसप्रकार नारदजी मानुषी लीला कर रहे केशवकी योगमायाको देख मन्द मुसकानके साथ उनसे कहनेलगे कि "हे प्रभो! आपकी योगमायाके विभवको बड़े बड़े योगेश्वर भी नहीं देख पाते, किन्तु मैं आपके चरणोंका सेवक हूँ-ऐसी मुझको प्रतीति होती है, अतएव मैं जानसका हूँ। हे देव! जो सब लोक आपके यशसे उज्ज्वल हो रहे हैं वहाँ मैं जाना चाहता हूँ, मुझको आज्ञा दीजिये। मैं आपकी भुवनपावनी लीलाओंको गाताहुआ विचरण करता रहता हूँ"। श्रीभगवान्‌ने कहा—"ब्रह्मन्! मैं धर्मका कहनेवाला करनेवाला और अनुमोदन करनेवाला हूँ। सब लोगोंको धर्मकी शिक्षा देनेके लिये ही इस रूपसे मैं अवस्थित हूँ, मेरी योगमाया देखकर तुमको मोहित न होना चाहिये"। शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! नारदने एकमात्र कृष्णचन्द्रको ही सब भव-

नोंमें गृहस्थोंको पवित्र करनेवाले धर्मोंका आचरण करते देखा। अनन्तवीर्यशाली कृष्णकी योगमायाके महाविभवको वारंवार देखकर नारदको बड़ा विस्मय और कौतुक हुआ। श्रीकृष्णने श्रद्धायुक्त चित्तसे इसप्रकार धर्म अर्थ कामके द्वारा भलीभाँति ऋषिका पूजन किया और वह उन्ही कृष्णचन्द्रका स्मरण करतेहुए वहाँसे चलदिये। राजन्! सम्पूर्ण जगत्के मङ्गलके लिये मायाशक्ति-धारी उन्ही नारायणने मनुष्यपदवीका अनुकरण करतेहुए सोलह हजार श्रेष्ठ कामिनियोंके भवनोंमें उनके लज्जापूर्ण सौहार्द, कटाक्ष और हासविलासका संभोग करतेहुए इसीप्रकार विहार किया ॥ ३७–४४ ॥

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ४५

विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयके कारणरूप हरिने जो इस पृथ्वीमें असाधारण व अलौकिक कर्म किये हैं उन कर्मोंको जो लोग गाते, सुनते अथवा उनका अनुमोदन करते हैं उनको मुक्तिदायक भगवान्की भक्ति मिलती है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितम अध्याय

श्रीकृष्णके पास जरासंधके सताये राजोंके दूतका आना

श्रीशुक उवाच–अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ॥
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! एक समय सवेरेके समय कुक्कुट (मुर्गे) शब्द कर रहे थे। श्रीहरि इतने समयतक स्त्रियोंके गलेमें हाथ डालेहुए सो रहे थे। इससमय कृष्णचन्द्रकी स्त्रियाँ प्रिय पतिके वियोगके भयसे कातर होकर विरहके कारण उन कुक्कुटोंको भला-बुरा कहने लगीं। उस प्रभातसमयमें भ्रमरसमूह कल्प-वृक्षके सुगन्धको ले जानेवाले वायुके साथ गान करनेलगे एवं सब पक्षिगण जाग जाग कर बन्दीगणकी भाँति श्रीकृष्णको जगानेके लिये मानो ऊँचे स्वरसे मधुर बोलियाँ बोलनेलगे। उन पक्षियोंका शब्द अत्यन्त सुन्दर, मधुर होनेपर भी, प्रियकी दोनो बाहुओंके भीतर पड़ीहुई रुक्मिणी आदि रानियोंको आलिङ्गन-वियोगकी घबराहटसे मुहूर्त भरके लिये भी असह्य था। ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर हाथ पैर धोकर आचमन करके माधवने सब इन्द्रियोंको प्रसन्न और मनको स्वस्थ किया। तदनन्तर उपाधिशून्य, आत्मसंस्थित, अव्यय, अखण्ड, अज्ञान-निर्मुक्त

होनेके कारण साक्षात् ज्योतिःस्वरूप एवं जगत्की उत्पत्ति व नाशका कारण जो अपनी शक्तियाँ हैं उनके द्वारा जिनकी सत्ता लखी जाती है वह श्रीकृष्णचन्द्र ब्रह्मनामक सदानन्दमय अपने ही रूपके ध्यानमें मग्न हुए। साधुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने निर्मल जलमें स्नान करके वस्त्र और उत्तरीय धारण किया एवं यथाविधि सन्ध्योपासनादि नित्य-कर्म और अग्निमें हवन करके मौनभावसे अवस्थित हो गायत्रीका जप करनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनन्तर सूर्योदय होनेपर उठकर हरिने सूर्य-देवको प्रणाम किया। फिर उन्होने अपने ही अंश जो देवता, ऋषि, पितर, बड़े-बूढ़े और ब्राह्मण हैं उनकी पूजा की। तदनन्तर भलीभाँति अलंकृत ब्राह्मणोंको पट्टवस्त्र, मृगचर्म और तिलसहित तेरह अधिक चौरासी हजार गौवें दीं; जिनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़ेहुए थे, मोतीकी मालाएँ गलेमें पड़ी थीं, सुन्दर झूलें पीठपर पड़ी थीं। ऐसी दुधार, एक बारकी व्याई, सुशीला, सवत्सा गौवें देकर माधवने अपनी विभूति जो गऊ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सम्पूर्ण प्राणी हैं उनको नमस्कार किया और कपिला गऊ आदि माङ्गलिक पदार्थोंका स्पर्श किया। फिर मनुष्यलोकके लिये आभूषणस्वरूप भगवान्ने अपनेको वस्त्र, आभूषण, दिव्य माला और चन्दन आदिसे विभूषित किया एवं घृत, दर्पण, वृष, द्विज और देवतोंके दर्शनके उपरान्त सब वर्णके पुरवासी और अन्तःपुरचारी लोगोंको उनकी चितचाही वस्तुएँ दीं। इसप्रकार अपनी प्रजाको सन्तुष्ट करके स्वयं भी आनन्दित हुए। तदनन्तर पहले चन्दन, पान आदि देकर ब्राह्मणोंका सत्कार किया और फिर मित्र, आत्मीय और रानियोंसे मिलकर उनको सन्तुष्ट किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसी अवसरपर सारथी, सुग्रीव आदि श्रेष्ठ अश्वोंसे युक्त रथ लेकर आया और प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। सूर्यनारायण जैसे उदयाचलपर आरूढ़ होते हैं वैसे ही भगवान् कृष्णचन्द्र सारथीका हाथ पकड़कर सात्यकी और उद्धवके साथ रथपर सवार हुए। अन्तःपुरकी कामिनियाँ उस समयकी छविको लज्जापूर्ण प्रेम-दृष्टिसे देखनेलगीं, भगवान् उनके लिये क्षणभर वहाँ ठहर गये। बड़े ही कष्टसे वे स्त्रियाँ हटीं और भगवान् भी अपनी मधुर हँसीसे उनके मनको हरतेहुए अन्तःपुरसे बाहर निकले। इसप्रकार सब भवनोंसे भिन्न भिन्न रूपधारी भगवान् बाहर निकले और फिर एकरूप होकर सब यादवोंसे सुशोभित सुधर्मा सभामें जाकर विराजमान हुए। राजन्! जिन लोगोंने काम, क्रोध आदि बड़े बली छः शत्रुओंको जीत लिया है वे ही सुधर्मा सभामें प्रवेश करसकते हैं। यदुश्रेष्ठ विभु कृष्णचन्द्र उसी पवित्र सभामें प्रवेश करके तारागणसे घिरेहुए चन्द्रमाके समान अपने तेजसे उस स्थानको प्रकाशमय करतेहुए पुरुषसिंह यादवोंके बीचमें शोभायमान हुए। राजन्! वहाँ हँसी करनेवाले विदूषकगण अनेक रसीली बातें कहकर और नाट्याचार्य व नर्त-

कियाँ अपने अपने कलाकौशलसे प्रसन्न करतेहुए भगवान्‌की उपासना करनेलगे। सूत, मागध और बन्दीगण प्रशंसा करतेहुए मृदङ्ग, वीणा, मुरज, वेणु, करताल और शङ्ख आदि बाजे बजाकर नृत्य-गानके द्वारा कृष्णचन्द्रको सन्तुष्ट करनेलगे। वहाँ बैठेहुए कुछएक सभाचतुर, वाक्‌पटु ब्राह्मणगण वेदमन्त्रोंकी व्याख्या करने एवं पूर्वकालके पवित्र यशवाले राजोंकी कथाएँ कहनेलगे ॥ १४ ॥ ॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥ राजन्! इसी समयमें उस स्थानपर एक ब्राह्मण, जो पहले कभी नहीं आया था, वहाँ आया। भगवान्‌के पास उसके आनेकी सूचना दी गई, तदनन्तर प्रभुकी आज्ञाके अनुसार द्वारपाल उसको सभामें ले आया। ब्राह्मणने आकर परमेश्वर भगवान्‌को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और फिर जरासंधके सताये राजोंका सँदेसा इसप्रकार कहनेलगा कि—"हे नाथ! जरासंधने दिग्विजय किया था, उससमय जो राजालोग उसके आगे 'नत' नहीं हुए उनको पकड़कर उस दुर्वृत्त मगधराजने अपने गिरिव्रज नामक दुर्भेद्य दुर्गमें बलपूर्वक कैद कर रक्खा है। वे राजे बीस हजार हैं। उन राजोंने कहा है कि "हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे प्रपन्नभयभंजन! हमलोग भेद-भाववाले हैं, भवभयसे भीत होकर आपकी शरणमें आये हैं। लोग, सकाम और निषिद्ध कर्मोंमें निरत होकर आपके बतायेहुए आपके पूजनरूप कुशलकारी कर्म करनेमें असावधान रहते हैं, उनको जो बलवान् पुरातनपुरुष तत्क्षण अचानक आकर धर दबोचता है और उनकी जीवनाशको मिटा देता है वही काल-स्वरूप आप हैं; आपको हम प्रणाम करते हैं। आप जगदीश्वर हैं, साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेहीके लिये आपने पृथ्वीतलपर अवतार लिया है। हे ईश्वर! अन्य कोई आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है अथवा लोग अपने अपने कर्मोंका फल भोगते हैं, सो हम नहीं जानते (अर्थात् जरासंध आपकी इच्छाके विरुद्ध हमको सता रहा है, अथवा हमलोग अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं सो हमको नहीं विदित है)। राजसुख विषयसाध्य और परतन्त्र होनेके कारण स्वप्नके सदृश है। हमलोग निरन्तर भयसमन्वित मृतकतुल्य शरीरसे भारस्वरूप उसका वहन करते हैं। निष्काम लोग आपसे जो स्वतःसिद्ध सुख पाते हैं उस सुखको आपकी मायामें भूलकर छोड़ देनेके कारण ही हमलोग सम्पूर्ण कष्टोंसे पीड़ित हो रहे हैं। आपके चरणकमल प्रणत जनोंके शोक-सन्तापको हरनेवाले हैं। इस मगधराजके दस हजार हाथियोंके इतना बल है। सिंहसदृश पराक्रमी यह निठुर राजाने हमको मेषपालकके समान अपने दुर्भेद्य दुर्गमें बन्द किये हुए हैं। भगवन्! आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि आप इस जरासंधरूप कर्मबन्धनसे हमको छुड़ाइये। हे उद्यत सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले! जरासंधने आपसे अठारह बार संग्राम किया है। सत्रह बार वह आपसे हारा, एवं केवल एकबार

अनन्तवीर्यशाली होकर भी मनुष्यचरित्रका अनुकरण करनेवाले जो आप हैं उनको अपनी समझमें जीतकर बड़े ही घमण्डके साथ आपके जन जो हमलोग हैं उनको पीड़ित कर रहा है। हे अजित! इस विषयमें आप जो कर्तव्य समझें सो करें'। इसप्रकार मगधराजके वन्दी राजोंने आपके दर्शनकी अभिलाषा करके आपके चरणकमलोंका आश्रय लिया है। आप दीनजनोंका मङ्गल करिये।" राजदूतके ये वचन पूर्ण भी नहींहुए थे, उसी समय परमतेजस्वी, पिङ्गलवर्ण जटाजूटधारी देवर्षि नारदजी सूर्यके समान आकाशमार्गसे सभामें आकर उपस्थित हुए। सब लोकेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुनिको देखते ही सभ्यगण और अनुचरगणसहित उठकर आनन्दपूर्वक उनको प्रणाम किया एवं पूजा, की उपरान्त जब नारदजी आसनपर सुखपूर्वक बैठे तब विधिपूर्वक श्रद्धापूर्ण व्यवहारसे उनको सन्तुष्ट करके भगवान्ने इसप्रकार मधुर वचन कहे। भगवान्ने कहा—मुनिवर! इससमय तीनो लोक निर्भय हैं न? किसीको किसीसे किसी प्रकारका भय तो नहीं है? आप सब लोकोंमें विचरते रहते हैं। हमको आपका दर्शन हुआ सो हम अपने लिये परम लाभ समझते हैं। ईश्वरके बनायेहुए इन सब लोकोंमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपका जाना हुआ न हो। अतएव मैं आपसे यह जानना चाहताहूँ कि इससमय पाण्डव क्या कर रहे हैं?। नारदजीने कहा कि—विभो! हे भूमन्! आप साक्षात् ब्रह्म हैं तथापि जिसका प्रकाश प्रच्छन्न है उस अग्निके समान अपनी शक्तियोंके द्वारा अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंमें वर्तमान रहकर अपनी दुरन्त मायासे सबको मोहमें डालेहुए हैं, जिससे वे अपनेहीमें स्थित आपको नहीं देख पाते। मैंने आपकी मायाको बहुत बार देखा है, इसलिये आपके ऐसे प्रश्नसे मुझको कुछ विस्मय नहीं है। यह जगत् वास्तवमें अविद्यमान अर्थात् असत् है, तथापि आपकी मायाके द्वारा विद्यमान अर्थात् सत् प्रतीत होता है। आप अपनी मायाके द्वारा इसकी सृष्टि और संहार करते हैं। अतएव आपकी चेष्टाको कौन जान सकता है? मैं आपको केवल प्रणाम करता हूँ; क्योंकि आपका स्वरूप अचिन्त्य है। अनर्थप्रवर्तक शरीरके बन्धनसे संसारमें प्रवृत्त, और इसीकारण मुक्तिके विषयमें अज्ञ, जीवकेलिये आपने अपने अनेक लीलावतारोंके द्वारा ज्ञान उपजानेवाला अपना सुयश संसारमें फैलाया है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ. भगवन्! आप ब्रह्म हैं, किन्तु इस-समय मनुष्यचरित्रका अनुकरण कर रहे हैं, अतएव मैं आपकी बुआके लड़के और भक्त पाण्डवोंके राजकाजका समाचार सुनाता हूँ। पाण्डुके पुत्र राजा युधि-ष्ठिर आपको सन्तुष्ट करनेके लिये श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ करेंगे। आप इस सुकार्यका अनुमोदन करिये। उस श्रेष्ठ यज्ञमें बड़े बड़े देवता और यशस्वी राजालोग भी आपके दर्शनकी कामना करके आवेंगे। भगवन्! जब महानीच चाण्डाल भी,

अखण्ड ब्रह्मरूप जो आप हैं उनके नाम और कर्मोंको सुनकर, कहकर और स्मरणकर पवित्र होजाते हैं, तब जो लोग साक्षात् आपका दर्शन व स्पर्श करके धन्य हो चुके हैं उनके लिये क्या कहना है। आपका यश दशो दिशाओंमें स्वर्गमें, मनुष्यलोकमें, पातालमें व्याप्त हो रहा है एवं आपके चरणोंका धोवन गङ्गा, भोगवती और मन्दाकिनी नामसे स्वर्गलोक, मनुष्यलोक और पाताल लोकको पवित्र कर रही हैं"। **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! नारदके वाक्यमें जरासन्धविजयकी बात गुप्तरूपसे रहनेपरभी सर्वसाधारण सभासद नहीं समझसके, अतएव उसे स्पष्ट करनेके लिये इस भावसे भगवान् वाक्य-कौशलपूर्वक अपने भृत्य उद्धवसे बोले, मानो वह यह निश्चय नहीं करसके कि क्या करना चाहिये। भगवान्ने कहा—"हे उद्धव! तुम हमारे प्रिय बन्धु और श्रेष्ठ मन्त्री हो, क्योंकि तुम बुद्धिमान् चतुर और प्रत्येक कर्तव्यके तत्त्वको भलीभाँति जानते हो। अतएव हम तुमको अपने दिव्य नेत्र समझते हैं। तुम्हारे वाक्यपर मैं श्रद्धा करताहूँ, अतएव अब प्रथम क्या करना चाहिये सो कहो" ॥ २२–४६ ॥

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥
निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥

सर्वज्ञ होकर भी अजानकीभाँति स्वामीने कर्तव्य पूछा; उद्धवने भी स्वामीकी आज्ञा शिरोधार्य समझकर यों उत्तर दिया ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितम अध्याय

श्रीकृष्णका हस्तिनापुर जाना

श्रीशुक उवाच—इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ॥
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! कृष्णके पूर्वोक्त वाक्य सुनकर एवं देवर्षि नारद, सभ्यगण और श्रीकृष्णके मनके भावको समझकर उद्धवने कहा कि देव! आपकी बुआके लड़के राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, इसलिये आपको वहाँ जाना चाहिये और शरणागत राजोंकी रक्षा करना भी कर्तव्य है। मेरी समझमें देवर्षिकी इच्छानुसार आप पहले हस्तिनापुर चलिये। क्योंकि हे विभो! राजा युधिष्ठिर सब दिशाओंको जीत लेंगे तभी राजसूय यज्ञ होगा। उसी दिग्विजयमें जरासंधभी जीता जायगा, इससे दोनो काम बन जायँगे। ऐसा करनेसे हमारा

महत् उद्देश्य भी सिद्ध हो जायगा, और राजालोग भी बन्धनसे छूटकर आपके सुयशको फैलावेंगे। राजसूययज्ञ भी पूर्ण होगा और शरणागतोंकी रक्षा भी हो जायगी। स्वामी! जरासंधके दस हजार हाथियोंके इतना बल है। समानवली भीमसेनके सिवा और और बलवान् योद्धा भी उसका सामना नहीं कर सकते। वह द्वन्द्वयुद्धमें हराया जा सकता है, अन्यथा सैकड़ों अक्षौहिणी सेनासे भी कभी नहीं जीता जा सकता। वह कभी ब्राह्मणको विमुख नहीं फेरता। भीमसेन ब्राह्मणके वेषसे जाकर उससे द्वन्द्वयुद्ध करनेकी प्रार्थना करेंगे और आपके आगे द्वन्द्वयुद्धमें उसको मारेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप अरूप कालस्वरूप हैं, जैसे वास्तवमें आप ही जगत्की सृष्टि और संहार करते हैं और ब्रह्मा व शिव सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं वैसेही जरासन्धके वधमें, सबकाम करनेवाले आप ही हैं, भीमसेन तो केवल निमित्तमात्र हैं। जैसे गोपियोंको चन्द्रचूड़ यक्षसे, गजराजको ग्राहसे, जानकीको रावणसे और वसुदेवको कंससे आपने छुड़ाया और उन्होने निजमोक्षरूप आपकी लीलाको गाया है, एवं जैसे मुनिगण और हमलोग आपके चरणोंकी शरणमें रहकर सर्वदा मोक्षगान करते हैं वैसे ही जब वे सब जरासंधके बन्दी राजालोग कारागारसे छुटकारा पावेंगे तब उनकी रानियाँ अपने अपने पतियोंके छुटकारेकी लीलाको अपने अपने घरमें आनन्दसे गावेंगी। कृष्णचन्द्र! जरासंधके वधसे अनेक प्रयोजन सिद्ध होंगे; राजोंसे पुण्यके फलसे इस यज्ञका आप भी अनुमोदन करें ॥१॥ ॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—राजन्! देवर्षि नारद, श्रीकृष्ण एवं सब यादवोंने उद्धवके इसप्रकार युक्तियुक्त और सबप्रकार मङ्गलकारी वाक्योंका आदर किया। तब सबप्रकार समर्थ भगवान् देवकीनन्दनने बड़े-बूढ़े गुरुजनोंको हस्तिनापुर चलनेकी सूचना देकर दारुक, जैत्र आदि अनुचरोंको चलनेकी आज्ञा दी। फिर शत्रुनाशन बलदेवकी आज्ञा लेकर भगवान्ने पहले रानियोंको अपने अपने पुत्र और अन्यान्य सामग्रीसहित आगे करके आप सारथीके द्वारा लायेगये गरुड़ध्वज रथपर चढ़कर हस्तिनापुरको प्रस्थान किया। रथी, हाथी, सवार, पैदल और घोड़ेसवार लोगोंकी भयानक चतुरङ्गिणी सेना भी भगवान्के साथ चली। मृदङ्ग, भेरी, ढोल, शङ्ख और गोमुख आदि बाजोंका शब्द आकाशमें गूँजनेलगा। श्रीकृष्ण भगवान् द्वारकापुरीसे बाहर निकले। पतिव्रता रानियाँ उत्तम वस्त्र, आभूषण, चन्दन, और माला आदिसे सुशोभित होकर अपने अपने पुत्रोंको लिये नरयान, अश्वयान और सुवर्णकी पालकियोंमें चढ़कर अपने पति गोविन्दके पीछे पीछे चलीं। चारो ओरसे ढाल-तर्वार लिये सिपाहीलोग उनकी रक्षाके लिये नियुक्त थे। भलीभाँति अलंकृत अनुचरोंकी स्त्रियाँ और वारवनिताएँ खस और फूस व सिर्की आदिके कृत्रिम भवन तथा कम्बल और वस्त्रादि गृह-सामग्रीको बैल गाड़ियोंपर रखकर चलीं। इसप्रकार कृष्णचन्द्रके साथ मनुष्य, ऊँट, बैल, भैंस, गर्दभ, खच्चर, छकड़े और

हथनी आदिसे व्याप्त सेना दूर दूर तक चारो ओरकी पृथ्वीको ढँकतीहुई चली। तुमुल कोलाहलसे व्याप्त वह सेना, बड़े बड़े विशाल ध्वजपट, छत्र, चामर, उत्तम अस्त्र-शस्त्र, किरीट मुकुट, अन्यान्य आभूषण और सुवर्णमण्डित रथोंपर, दिनके समय चमकीली सूर्यकी किरणें पड़नेसे, तिमिङ्गिल और तरङ्गोंसे क्षोभको प्राप्त महासागरके समान सुशोभित हुई। तदनन्तर देवर्षि नारद श्रीकृष्णके द्वारा पूजित एवं श्रीकृष्णके दर्शनसे प्रसन्न हो, उनके उक्त गमनोद्योगको देख, प्रणाम करके हृदयमें उन्ही इष्टदेवका ध्यान करतेहुए वहाँसे विमानमार्ग अर्थात् आकाशमें चलेगये ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर जरासंधपीड़ित राजोंके भेजे दूतको भगवान्ने मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट करतेहुए कहा कि "हे दूत ! तुम राजोंसे कहना कि डरो नहीं, तुम्हारा मङ्गल हो, मैं शीघ्र ही दुष्ट जरासंधको मारूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है"। यह सुनकर दूत वहाँसे राजोंके पास गया और जो कुछ कृष्णचन्द्रने कहाथा सो सब उसने उनसे कहा। राजालोग भी अपने छूटनेके लिये निपट उत्सुक होकर कृष्ण-चन्द्रके आनेकी प्रतीक्षा करनेलगे। हरि भगवान् भी आनर्त, सौवीर, मरुदेश और कुरुक्षेत्रको नाँघकर गिरि, नगर, ग्राम, व्रज और आकर आदिकी शोभा निहारतेहुए दृषद्वती और सरस्वती नदियोंके पार उतरे, और फिर पाञ्चाल व मत्स्य देश होकर हस्तिनापुरमें पहुँच गये। मनुष्योंके लिये जिनका दर्शन दुर्लभ है उन्ही श्रीकृष्णके आगमनका शुभसमाचार पाकर युधिष्ठिरजी परम प्रसन्न हुए और उसी समय उपाध्याय और बन्धुवर्ग सहित कृष्णचन्द्रको आगेसे लेनेके लिये पुरीके बाहर निकले। जैसे इन्द्रियाँ प्राणसे मिलें उस-प्रकार पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरजी गीत वाद्य आदि मङ्गल शब्द एवं वारंवार होरही वेदध्वनि सहित आदरपूर्वक कृष्ण भगवान्के निकट आये। श्रीकृष्णको देखतेही युधिष्ठिरके हृदयमें स्नेहसागर उमड़ आया। बहुत दिनोंके बाद अपने परम प्यारे कृष्णचन्द्रको देखकर और वारंवार गलेसे लगाकर युधिष्ठिरजी परम प्रसन्न हुए। लक्ष्मी जिसमें स्थिरभावसे रहती है उस सर्वमङ्गलमय हरिके पवित्र शरीरके आलिङ्गनसे राजा युधिष्ठिरके सब अशुभ नष्ट होगये एवं दोनो नेत्र आनन्दके आँसुओंसे परिपूर्ण हो आये और परमानन्दके कारण सब शरीरके रोम खड़े होगये। राजा युधिष्ठिर थोड़ी देरकेलिये सब लोकव्यवहार भूलकर परमानन्दमें मग्न होगये। भीमसेन भी मामाके पुत्र कृष्णको हँसकर हृदयसे लगालिया और नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाये एवं नकुल, सहदेव तथा अर्जुन भी सुहृत्तम अच्युतसे मिलकर परम प्रसन्न हुए और आनन्दके आँसु-ओंसे कृष्णचन्द्रके अङ्गोंको भिगानेलगे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ अर्जुन, कृष्णचन्द्रसे मिले और नकुल व सहदेवने मिलकर

कृष्णचन्द्रको प्रणाम किया एवं कृष्णचन्द्रने भी मिलकर युधिष्ठिर व भीमको प्रणाम किया। फिर कृष्णचन्द्रने ब्राह्मण और बड़े-बूढ़े लोगोंको यथायोग्य प्रणाम करके मान्य कुरु, केकय और संजय देशोंके नरपतियोंका सन्मान किया। ब्राह्मण-गण, वेदपाठके द्वारा एवं सूत, मागध, बन्दीजन और उपासकगण मृदङ्ग, वीणा, शङ्ख, पटह, पणव और वेणु आदि बाजे बजाकर नृत्य–गीतादिकेद्वारा कमललोचन कृष्णको सन्तुष्ट करनेलगे। जिनके नाम और गुणोंके कीर्तनसे शरीर और मन पवित्र होता है उनके शिरोमणि भगवान्‌के बन्धुओंके बीचमें सब दर्शकोंके मुखसे अपनी सुख्याति सुनतेहुए उस भलीभाँति अलंकृत इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश किया। छिड़काव करनेकी कोई आवश्यकता नहीं हुई, पुरीके सब मार्गोंमें गज-राजोंके मदजलसे आप-ही-आप छिड़काव सा होगया। विचित्र ध्वजा, कनकतोरण, पूर्ण कलश आदि माङ्गलिक चिन्होंसे सुशोभित हस्तिनापुरकी कृष्णचन्द्रके आनेसे और भी शोभा बढ़गई। स्थान स्थान पर नवीन वस्त्र, अलङ्कार और फूलमाला पहने तथा चन्दन लगाये विशुद्धचित्त स्त्री और पुरुषोंके झुण्ड कृष्ण–दर्शनके लिये उत्सुक देख पड़नेलगे। इसप्रकार कृष्णचन्द्र राजमार्गसे होकर राजभवनके निकट पहुँच गये। कृष्णचन्द्रने कुरुराजके निवासभवनको देखा। वहाँ प्रत्येक गृहमें श्रेणी-बद्ध रत्नदीपक जल रहे हैं और यथोचित स्थानोंपर पूजाकी सामग्रियाँ सजाईहुई रक्खी हैं। भवनके झरोंखो और जालियोंसे सुगन्धित धूपका धुआँ निकलकर आनेवालोंके चित्तको प्रसन्न कर रहा है एवं भवनके ऊपरी भागमें पताकाएँ फहरा रही हैं। ऊपरि खण्डमें सुवर्ण–कलशमण्डित, रत्नजटित अनेक रजतरचित गृहोंसे वह राजभवन एक बड़े विमानके समान शोभायमान होरहा है। दर्शनीय रूपवाले श्रीकृष्णके आनेका समाचार सुनतेही सब पुरकी सुन्दरियाँ, उत्सुकताके कारण शिथिल होगये केशबन्धन और नीवीको फिरसे बाँधतीहुई अपने अपने घरके कामोंको और शय्यापर पड़ेहुए पति व पुत्रोंको वैसे ही छोड़कर यदुपतिको देखनेके लिये राजमार्गमें अपने अपने घरके कोठोंपर आनेलगीं। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे परिपूर्ण राजमार्गमें जा रहे स्त्रीमण्डलीसहित कृष्णचन्द्रको देखकर भवनोंपर चढ़ीहुई स्त्रियाँ उनपर फूलोंकी वर्षा करतीहुई मन-ही-मन (कृष्णसे) मिलकर परम प्रसन्न हुईं। राजन्! पुरनारियोंने विस्मयपूर्ण दृष्टिके द्वारा हरिका स्वागत किया और चन्द्रमाके चारो ओर अवस्थित तारासमूहके समान प्रिय पति कृष्णचन्द्रके निकट विराजमान रुक्मिणी आदि रानियोंको देखकर परस्पर एकएकसे कहनेलगीं कि अहो! इन स्त्रियोंने कौन ऐसा पुण्य-कर्म किया है जो उदार हास्य, लीलाविलास एवं मनोहर दृष्टिके द्वारा यह पुरुषश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र नित्य इनको आनन्दित करतेरहते हैं? ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥३४॥३५॥ मुख्य मुख्य श्रेणीके पुरवासियोंने ठौर ठौर पर माङ्गलिक सामग्रियोंसे

कृष्णका पूजन–सत्कार किया। इसप्रकार प्रीतिसे जिनके नयनारविन्द प्रफुल्लित हो रहे हैं वे अन्तःपुरनिवासी जन अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कृष्णचन्द्रको घेरकर राज-मन्दिरके भीतर लेगये। कुन्तीजी, अपने भतीजे त्रिभुवनेश्वर कृष्णको देखकर परम प्रसन्न हुईं एवं पुत्रवधूसहित पलँगपरसे उठकर उन्होने कृष्णचन्द्रको हृदयसे लगालिया। देवदेवेश मुकुन्दको आदरसहित घरमें लाकर राजा युधिष्ठिर ऐसे आनन्दमें मग्न होगये कि उनको पूजाका क्रम भी भूलगया। राजन्! श्रीकृष्ण-चन्द्रने अपनी बुआ कुन्ती एवं गुरुपत्नियोंको प्रणाम किया एवं कृष्णचन्द्रकी छोटी वहन सुभद्रा व द्रौपदीने उनको प्रणाम किया। द्रौपदीने सासके उपदेशके अनु-सार रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, शैब्या और नाग्नजिती आदि सब कृष्णचन्द्रकी रानियोंका सादर सत्कार किया और उनके साथ जो अन्यान्य स्त्रियाँ आईं थीं उनका भी वस्त्र, माला और अलङ्कार आदि देकर सत्कार किया। इसी प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरजी, सेना, मन्त्रीगण और रानियों-सहित जनार्दन कृष्णचन्द्रको नित्य नवीन सुखभोगके द्वारा सन्तुष्ट करनेलगे। राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये श्रीकृष्णचन्द्र कई महीनेतक हस्तिनापुरमें रहे और अर्जुनके साथ रथपर चढ़कर अनेक स्थानोंका निरीक्षण किया ॥ ३६–४४ ॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥
मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥

कृष्णचन्द्रने उसी समयमें अर्जुनके द्वारा अग्निको जलानेके लिये खाण्डव नाम इन्द्रका वन दिलाकर प्रसन्न किया और मयासुरको अग्निमें जलनेसे वचाया। मयासुरने भी वदलेमें महाराज युधिष्ठिरको एक विचित्र और दिव्य सभा वना दी ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितम अध्याय

जरासंधका वध

श्रीशुक उवाच–एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! एक समय राजा युधिष्ठिरजी मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आचार्य, कुलके बड़े-बूढ़े, सम्बन्धी और बान्धवगणके साथ सभामें बैठेहुए थे। राजा युधिष्ठिर सबके आगे श्रीकृष्णसे कहनेलगे कि

हे कृष्ण! हे गोविन्द! सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञके द्वारा आपकी पवित्र विभूति जो देवगण हैं उनका पूजन करनेके लिये मैंने विचार किया है। प्रभो! अब उस विचारको पूर्ण करना आपके हाथ है। हे कमलनाभ! हे ईश्वर! जो पवित्र अन्तः-करणवाले लोग निरन्तर आपके चरणोंकी शरणमें रहते हैं—आपके चरणोंका ध्यान करते हैं अथवा अमङ्गल-नाशकेलिये शुद्ध भावसे आपके पवित्र नामोंका कीर्तन करते हैं वे ही संसारके बन्धनसे छूटकर सुखी होते हैं एवं अन्यान्य मङ्गल भी (कामना करनेसे) उनको प्राप्त होते हैं। किन्तु आपकी कृपाके विना चक्रवर्तियोंको भी संसारसे मुक्ति अथवा अन्यान्य सम्पूर्ण मङ्गल नहीं प्राप्त होते। अतएव हे देव! मैं चाहता हूँ कि ये सब उपस्थित लोग आपके चरणारविन्दोंकी सेवाकी महिमा देखें। हे विभो! कुरु और सृंजय वंशके लोगोंमें जो लोग आपको भजते हैं और जो नहीं भजते—उन दोनोकी स्थिति आप संसारको दिखलाइये। भगवन्! आप उपाधिहीन और सबके प्रिय आत्मा हैं, सुतराम् समदर्शी और आत्माराम हैं, अतएव आपमें यह अपना है और यह पराया है इसप्रकारकी भेद-भावना नहीं है। तथापि जो लोग आपके सेवक हैं उनपर आप कल्पवृक्षके समान प्रसन्न होते हैं। जो व्यक्ति जैसी आपकी सेवा करता है उसको आप भी उसीके अनुरूप फल देते हैं—इसमें कभी विपर्यय नहीं होता ॥१॥२॥३॥४॥५॥६॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे राजन्! हे शत्रुदलदलन! आपका विचार अत्यन्त उत्तम है, राजसूय यज्ञ करनेसे आपकी विमल कीर्ति दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो जायगी। महाराज! ऋषिगण, पितृगण, देवगण, आपके बन्धुगण एवं मैं—सब चाहते हैं कि यह महायज्ञ करिये। अतएव सब राजोंको जीतकर और समग्र पृथ्वीमण्डलको अपने वशमें करके आप इस महायज्ञके अनुष्ठानका आरम्भ करिये। इसीसमय यज्ञके योग्य समग्र उत्तम सामग्री एकत्रित करनेके लिये आज्ञा दीजिये। राजन्! आपके ये चारो भाई लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न हैं; ये सब राजोंको जीत लेंगे। राजन्! अजितेन्द्रिय लोगोंकेलिये मैं अजेय हूँ। आप जितेन्द्रिय हैं, इसकारण आपने मुझको अपने वशमें कर लिया है। आप निश्चिन्त रहिये, राजोंकी कौन कहे—देवतालोग भी मेरे भक्तको—प्रभाव, यश, लक्ष्मी अथवा सैन्य आदि सामग्रीसे नहीं हरा सकते" ॥७॥ ॥८॥९॥१०॥११॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! भगवान्के मुखसे ऐसे मधुर वाक्य सुनकर प्रसन्नताके कारण युधिष्ठिरका मुखकमल प्रफुल्लित होउठा। उन्होने विष्णुके तेजसे परिवर्धित अपने भाइयोंको इसप्रकार दिग्विजयके कार्यमें नियुक्त किया। सृंजयदेशके नरपतियोंसहित सहदेवको दक्षिण दिशा जीतनेके लिये, मत्स्य देशके नरपतियोंसहित नकुलको पश्चिम दिशा जीतनेके लिये, केकय देशके नरेशों-सहित अर्जुनको उत्तर दिशा जीतनेके लिये, एवं मद्रदेशके नरेशोंसहित पराक्रमी भीमसेनको पूर्व दिशा जितनेके लिये युधिष्ठिरजीने आज्ञा दी। राजन्! उक्त वीर

पाण्डव चारो दिशाओंके राजोंको बलपूर्वक वशमें करके बहुतसा धन लेकर महाराज युधिष्ठिरके निकट आगये। एक जरासंधको छोड़कर सभी राजे परास्त हो गये—यह सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत ही चिन्तित हुए। तब भगवानने उसी उपायका प्रस्ताव किया, जिसे उद्धवने यदुसभामें बताया था। राजन्! तदनन्तर उसी प्रस्तावके अनुसार भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्राह्मणके वेषसे जरासंधकी राजधानी गिरिव्रजको गये ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ अतिथिकी वेलामें ये तीनो ब्राह्मणवेषधारी क्षत्रिय गृहस्थ जरासंधके घरपर पहुँचे और इन्होने ब्रह्मण्य मगधराजसे इसप्रकार प्रार्थना की कि "हे राजन्! हम प्रार्थी अतिथि हैं, आपके पास बहुत दूरसे आये हैं। इसलिये जो कुछ हम माँगे सो आप दीजिये। आपका कल्याण हो। क्षमाशील व्यक्तियोंके लिये कुछ भी असह्य नहीं है, असत् जनोंके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे न कर सकते हों, दानी लोगोंके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे न दे सकते हों और समदर्शियोंके लिये कोई भी पर (गैर) नहीं है। जो कोई स्वयं समर्थ होकर भी इस अनित्य शरीरसे सज्जनोंके द्वारा गाने-योग्य अविनाशी यशका संचय नहीं करता वह निन्दनीय एवं शोचनीय है। देखिये, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, मुद्गल, महाराज शिवि, राजा बलि, व्याध, कपोत पक्षी एवं अन्यान्य अनेक उदारहृदय लोग अपने अनित्य शरीरसे नित्य लोकको प्राप्त हुए हैं"[1] ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! स्वर, आकार और कलाइयोंमें पड़ेहुए धनुषकी डोरीके चिन्हों (घट्टों) से जरासंधने जान लिया कि ये ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। जरासंधको यह भी जान पड़ा कि मैंने इनको

---

१ हरिश्चन्द्र विश्वामित्रसे उऋण होनेके लिये रानी और राजकुमारको बेंचकर स्वयं चाण्डाल बने। और सत्यका पालन किया—इसप्रकार राजा हरिश्चन्द्र अयोध्यावासी लोगोंसहित स्वर्गको गये। रन्तिदेव अड़तालीस दिनोंतक सहित कुटुम्बके भूखे प्यासे पड़े रहे और उनचासवें दिन मिला हुआ अन्न-जल भी अतिथियोंको देकर ब्रह्मलोकको गये। उंच्छवृत्तिवाले मुद्गल ऋषि छः महीनेतक सकुटुम्ब अन्नके बिना भूखे रहे और अन्न पानेभर फिर भी आप नहीं खाया, अतिथिको देदिया और उसीके फलसे ब्रह्मलोकको गये। राजा शिविने शरणागत कपोतकी रक्षाके लिये अपना मांस काटकर बाजको दिया और अन्तमें स्वर्गको गये। बलिने जान-बूझकर अपना सर्वस्व वामनरूप विष्णुको देदिया और भगवान्को प्रिय हुए। कपोतने अपने अतिथि व्याधको कबूतरीसहित अपना मांस खानेको दिया और आप विमानपर बैठकर तत्क्षण स्वर्गको सिधारा। व्याध भी उनके धार्मिक भावको देखकर विरक्त होगया और उसीसमय वनमें लगीहुई दावानलमें जलकर पापहीन हो स्वर्गको गया, इत्यादि। ये कथाएँ और और पुराणोंमें विस्तारसे कही गई हैं।

कहीं देखा है। मगधराज जरासंध मनमें सोचनेलगा कि अवश्य ही ये लोग क्षत्रिय हैं और मेरे पास ब्राह्मणका वेष बनाकर आये हैं। किन्तु ये ब्राह्मण बनके आये हैं, इसलिये मैं माँगनेपर इनको अपना परम प्रिय और दुस्त्यज आत्मा भी देदूँगा—नहीं न करूँगा। इन्द्रका राज्य, जिसे बलिने बलपूर्वक ले लिया था, फिर इन्द्रको देनेके लिये, वामनरूप धर ब्राह्मणवेषसे विष्णु राजा बलिके पास गये और छलपूर्वक बलिको राज्यैश्वर्यसे भ्रष्टकर दिया, तथापि बलिकी विमल कीर्ति तीनो लोकोंमें अबतक गाई जाती है। दैत्यराज बलिने जान लिया था कि यह वामनरूपी विष्णु छल करने आये हैं, और शुक्राचार्यने भी कहा था कि यह छली विष्णु हैं, इनको पृथ्वी न देना, तथापि उन्होने ब्राह्मणरूपी विष्णुको नहीं लौटाया किन्तु पृथ्वी दी। यह देह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होजायगा; तब क्षत्रिय यदि अपने अनित्य शरीरसे ब्राह्मणका काम बनाकर महायश पानेकी चेष्टा न करे तो उसका जीवन ही वृथा है" ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ उदारहृदय जरासंधने यों विचारकर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहा कि—"हे ब्राह्मणो! जो तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो। तुम यदि मेरा शिर भी माँगोगे तो मैं अपने हाथसे काटकर तुमको देदूँगा" ॥ २७ ॥ जरासंधके उदार वचन सुनकर भगवान् कृष्णचन्द्रने कहा कि "हे राजेन्द्र! हम ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। हम तुम्हारेपास युद्धयाञ्चाके लिये आये हैं—और कुछ नहीं माँगना चाहते। यदि इच्छा हो तो हम तीनोमें चाहे जिससे द्वन्द्वयुद्ध करो। यह कुन्तीके पुत्र भीमसेन हैं, यह इनके भाई अर्जुन हैं और मैं इनके मामाका लड़का और तुम्हारा शत्रु कृष्ण हूँ" ॥ २८ ॥ २९ ॥ मगधराज जरासंध कृष्णके वचन सुनकर ऊँचे स्वरसे हँसा और फिर कुछ कुपित होकर कहनेलगा कि "अरे मन्दमति क्षत्रियो! यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। किन्तु कृष्ण! तू कायर और भगोड़ा है, युद्ध-भूमिसे घबड़ाकर भाग जाता है; तू अपनी मथुरा पुरी छोड़, समुद्रकी शरणमें जाकर बसा है, तुझसे मैं नहीं युद्ध करूँगा। यह अर्जुन भी मुझसे अवस्थामें छोटा है और मेरे समान बल भी इसमें नहीं है, इसका शरीर भी मेरे तुल्य नहीं है; अतएव यह मुझसे युद्ध भी नहीं कर सकता। हाँ, भीमसेन बल आदिमें मेरे समान है, इसके साथ मैं युद्ध करूँगा" ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इतना कहकर राजा जरासन्धने एक बड़ी भारी गदा भीमसेनको दी और वैसी ही एक गदा आप लेकर पुरसे बाहर निकला ॥ ३३ ॥ तदनन्तर समस्थलपर वे दोनो रणदुर्मद वीर भिड़कर वज्रऐसी कठिन गदाओंसे परस्पर प्रहार करनेलगे। बाईं और दाहिनी ओर भाँति भाँति के पैंतरे बदलते हुए दोनो वीरोंका वह युद्ध रङ्गभूमिमें उतरेहुए हो नटवरोंके युद्धके समान सुशोभित हुआ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उससमय

परस्पर गदाओंके घात-प्रतिघातसे दो वज्रोंके टकरानेका ऐसा घोर कठोर चटचटा-शब्द होनेलगा, जैसे दो हाथी लड़ें और उनके दाँतोंकी टक्करोंका शब्द हो वैसेही गदाओंका शब्द सुन पड़ता था ॥३६॥ तदनन्तर बड़े वेगसे चलाई जारही दोनो गदाएँ दोनो वीरोंके कन्धे, कटि, हाथ, ऊरू और जत्रु आदि सुकठिन अङ्गोंकी वारंवार चोट खाकर उसीप्रकार चूर्ण होगईं जिसप्रकार क्रोधाकुल होकर युद्ध कर रहे दो गजराजोंके शुण्डादण्डमें पड़कर मन्दारके वृक्षकी शाखाएँ चूर चूर हो जायँ ॥ ३७ ॥ इसप्रकार जब दोनो गदाएँ चूर होगईं तब दोनो वीर पुरुष और भी कोप करके वज्रके समान कठोर मुष्टियोंसे (घूसों) से परस्पर प्रहार करनेलगे। दो गजराजोंके समान युद्ध कर रहे उन वीरोंके मुष्टिप्रहारसे वज्रपातसदृश कठोर शब्द होनेलगा ॥ ३८ ॥ राजन्! शिक्षा, बल और ओजमें समान दोनो वीर इसप्रकार समानभावसे सत्ताईस दिनोंतक लड़ते रहे। सत्ताईस दिनोंतक कोई भी कम नहीं पड़ा और किसीका वेग नहीं घटा। ये लोग दिनको युद्ध करते थे और रात्रिको पास ही पास सोते थे। एक दिन रातको भीमसेनने मामाके पुत्र कृष्णसे कहा कि "हे माधव! मैं जरासंधको युद्धमें नहीं जीत सकता"। भगवान् कृष्णचन्द्र जानते थे कि जरासंध मराहुआ उत्पन्न हुआथा, उसके शरीरके दो टुकड़े अलग अलग थे और उन टुकड़ोंको एकमें जोड़कर जरा राक्षसीने जीवित कर दिया था। अमोघदर्शन कृष्णके हाथ फेर भीमसेनको युद्ध-श्रम-रहित करके अपने तेजसे शक्तिशाली बना दिया। सवेरे जब फिर युद्ध होने लगा तब शत्रुके वधका उपाय विचार

कर, भीमसेनके सामने ही, उनको दिखा कर कृष्णचन्द्रने एक तिनका उठा लिया

हाथमें एक शाखाको लेकर उसको वीचसे फाड़ डाला। भगवान्‌के इस संकेतको महाबली वीरवर भीमसेन समझ गये। भीमसेनने उसी समय शत्रुको पृथ्वीपर पटक दिया और जिसप्रकार कोई गजराज किसी महावृक्षकी शाखाको सूँढ़से पकड़-कर फाड़ डाले उसप्रकार एक पैरसे एक पैर दबाकर दोनो हाथोंसे दूसरा पैर पकड़ जरासंधके शरीरको वीचसे फाड़ डाला। जरासंधका शरीर गुदासे फटकर दो खण्ड होगया। एक एक चरण, वृषण, कटि, स्तन, कन्धे, बाहु, नेत्र, भौंह और कान आदिसे युक्त जरासंधके शरीरके दोनो टुकड़े अलग अलग देखकर सब दर्शकोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मगधराजकी मृत्यु देखकर पुरवासी लोगोंमें हाहाकार मच गया। अच्युत और अर्जुनने गलेसे गला लगा लगाकर भीमसेनका सत्कार किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ॥
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥
मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४९ ॥

तदनन्तर भूतभावन अमोघरूप प्रभु भगवान्‌ने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधराज्यके सिंहासनपर बिठाकर उन जरासंधके बन्दीमें डालेहुए राजोंको कारा-गारसे मुक्त किया ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितम अध्याय

राजोंका कैदसे छूटना

श्रीशुक उवाच—अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥
ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! जरासंधने २० हजार ८ सौ राजोको युद्धमें जीतकर गिरिव्रजमें कैद कर रक्खाथा। बहुत कालतक कैद रहने और क्लेश सहनेसे जिनके शरीर शिथिल होगये हैं, मुख सूख गये हैं, ऐसे भूख प्याससे पीड़ित मलिनमुख और मैले कपड़े पहने राजोंने कारागारसे छुटकारा पाकर घनश्याम कृष्णचन्द्रको देखा। राजोंने देखा कि वह पीत पट पहनेहुए हैं, उनके हृदयमें श्रीवत्सका चिन्ह है, बड़ी बड़ी चार भुजाएँ शोभायमान हैं, दोनो नेत्र कमलपुष्पके भीतरी भागके समान अरुणवर्ण हैं,

मुखमण्डल सुन्दर और प्रसन्न है, कानोंमें मकराकार कुण्डल हैं, और करकमलमें कमलका चिन्ह है। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म विराजमान हैं और अङ्गोंमें किरीट मुकुट, हार, कटिसूत्र, कटक, अङ्गद आदि आभूषणोंकी निराली शोभा है। उनके वक्षःस्थलमें वनमाला पड़ी है और कण्ठमें पड़ीहुई कौस्तुभमणि अपनी प्रभासे दर्शकोंकी आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर रही है। कृष्णभगवान्‌के ऐसे अनूप रूपको देखकर राजोंको जो परमानन्द प्राप्त हुआ उसीसे उनका कारागारवासका सब कष्ट और जन्मजन्मान्तरके समग्र पाप नष्ट होगये। जान पड़ताथा कि वे नेत्रोंके द्वारा कृष्णके सुधामय रूपको पी लेंगे, जिह्वासे चाट लेंगे और नासिकासे सूँघ लेंगे एवं भुजासे लिपटा लेंगे। इसप्रकार प्रेमसे परिपूर्ण नरपतियोने चरणों-पर शिर रखकर हरिको प्रणाम किया और तदनन्तर हाथ जोड़कर स्तुति करने-लगे ॥ १–७ ॥ **राजालोग कहनेलगे**—हे देवदेवेश! हे अव्यय! आपको प्रणाम है। हे कृष्ण! हम आपके शरणागत भक्तजन हैं। हम अब राज्यभोग नहीं चाहते, क्योंकि हमारे हृदयमें वैराग्यका उदय हो आया है। बस, हमारी यही प्रार्थना है कि घोर संसारसे हमारा उद्धार करिये। हे नाथ! हे मधुसूदन! इस मगधराजके लिये हमारे हृदयमें अणुमात्र भी वैरभाव नहीं है। जो राजालोग राज्यसे भ्रष्ट हों उन्हे, ऐसा होना, अपने ऊपर आपकी परम कृपा समझना चाहिये ॥८॥९॥ जो राजा हैं वे राज्य और ऐश्वर्यके मदसे कुपथगामी होनेके कारण कल्याणको नहीं प्राप्त होते। वे आपकी मायामें मोहित होनेके कारण अनित्य सम्पत्तिको नित्य मान कर गर्वित होते हैं ॥ १० ॥ जैसे बालकगण मृगतृष्णाको जलाशय समझते हैं वैसे ही सब अविवेकी लोग वैकारिक मायाको सत् वस्तु समझते हैं ॥ ११ ॥ पहले ऐश्वर्यके गर्वसे हमारी बुद्धिको भी भ्रम हो गया था; पृथ्वी जीतनेकी इच्छासे हमलोग परस्पर स्पर्धा रखतेथे, एवं अत्यन्त दुर्मद होकर परस्पर निर्दयताका व्यवहार करनेमें भी नहीं सकुचते थे। कालरूप आप सदा शिरपर खड़े हैं, इसका ध्यान भी हमको न था और हम अपनी प्रजाको पीड़ा पहुँचाते थे। हे श्रीकृष्ण! वे ही हम अत्यन्त प्रबल व वेगशाली कालके दुरन्त वीर्यद्वारा आपकी कृपाके कारण राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट और गर्व-विहीन होकर आपके चरणकमलोंको स्मरण कर रहे हैं। अब हमको राज्यकी कामना नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥ सब रोगोंकी जन्मभूमि इस अनित्य शरीरके द्वारा जिस राज्यका भोग किया जाता है उस मृगतृष्णातुल्य राज्यकी चाह हमको नहीं है। और केवल कानोंको रुचनेवाले (और वास्तवमें कुछ नहीं) कर्मफलस्वरूप स्वर्गादि लोकोंकी भी अभिलाषा हमको नहीं है ॥ १४ ॥ अतएव आप हमको वह उपाय बताइये जिससे संसारमें वारंवार जन्म लेनेपर भी हम आपके चरण-कमलोंको न भूलें ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, प्रणतार्तिहारी,

गोविन्दको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे वत्स ! शरणागतपालक दयालु भगवान्‌ने बन्धनसे मुक्त राजोंके विनीत वचन सुनकर कहा कि "हे नरपतिगण ! तुम्हारी इच्छाके अनुसार आजसे अवश्य ही मुझ अखिलेश्वर आत्माकी दृढ़ भक्ति तुमको प्राप्त होगी । तुम्हारा संकल्प अत्यन्त उत्तम है और तुमने जो कुछ कहा सो सम्पूर्ण सत्य है । मैं देखता हूँ कि सौभाग्य-मदका बढ़ना ही मनुष्योंकी उन्मत्तताका कारण है । कार्तवीर्य, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर एवं अन्यान्य प्रतापशाली देवता, दैत्य, और राजा लोग ऐश्वर्यके गर्वसे अन्धे होकर अपने अपने पदसे भ्रष्ट हुए हैं । तुम लोग मनमें निश्चय कर लो कि उपजनेवाली देह आदि सब वस्तुओंका एक दिन अवश्य अन्त होगा । इसप्रकारका ज्ञान प्राप्तकर मेरा पूजन करो और सावधानतासे धर्मपूर्वक प्रजापालन करो ॥ १७–२१ ॥ केवल वंशवृद्धिके लिये गृहस्थाश्रममें रहकर स्त्री आदिका उपभोग करो और सुख, दुःख एवं शुभ, अशुभ–जो कुछ प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट रहो । मुझमें मन लगाकर सांसारिक सुख भोग करो । इसप्रकार देहादि-भोगकी सामग्रियोंके मिलने या न मिलनेमें समान भावसे अनासक्त रहकर एवं आत्मानन्दमें मग्न और व्रतपालनमें तत्पर रहकर सब प्रकारसे मुझमें ही मनको लगाओ । ऐसा करनेसे तुम परब्रह्मस्वरूप जो मैं हूँ उसको अन्तसमय प्राप्त होगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! भुवनेश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने राजोंको इसप्रकार कर्तव्यका उपदेश करके उनको अभ्यङ्गपूर्वक स्नान करानेके लिये असंख्य दासदासियोंको आज्ञा दी ॥ २४ ॥ हे भारत ! जब वे भलीभाँति स्नान करके उत्तम वस्त्र पहन चुके तब श्रीहरिकी आज्ञाके अनुसार जरासंधके पुत्र सहदेवने उनको उत्तम भोजन कराया और राजोंके योग्य श्रेष्ठ वस्त्र, भूषण, माला और चन्दन आदिसे उनका पूजन व सत्कार किया ॥२५॥२६॥ मुकुन्दकी कृपाके कारण बन्धनसे छूटेहुए राजालोग इसप्रकार स्नान और पूजन व सत्कार होनेपर रत्नजडित कुण्डलोंको पहनकर, वर्षाकाल बीतनेपर ग्रहगण जैसे स्वच्छ रूपसे प्रकाशित होते हैं उसप्रकार शोभायमान हुए । इसप्रकार पूजन होजानेपर भगवान्‌ने विविध मधुर वचनोंसे उन मणि-सुवर्ण-भूषित राजोंको प्रसन्न किया, एवं उत्तम रथ और घोड़ोंपर चढ़ाकर जो जिस देशका था उसको उस देशमें भेज दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे राजे, अत्यन्त महात्मा और दयालु कृष्णकी कृपासे इसप्रकार बन्धनमुक्त होकर उन्ही जगत्पतिका ध्यान एवं उनके मनोहर चरित्रोंका कीर्तन करतेहुए परम आनन्दसे अपने अपने देशको गये ॥२९॥ अपने अपने राज्यमें पहुँचकर उन्होने प्रजावृन्दके आगे महापुरुष कृष्णके जरासंध-वधरूप चरित्रको श्रद्धापूर्वक कहा और भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार प्रजापालन और ईश्वरभजनमें सावधान होकर दुष्टोंका दमन करनेलगे ॥ ३० ॥ शुकदेवजी

कहते हैं—राजन्! भगवान् केशव, इसप्रकार भीमसेनके द्वारा जरासंधका वध कराकर और सहदेवके द्वारा पूजित होकर कुन्तीके दोनो पुत्रोंसहित गिरिव्रजसे हस्तिनापुरकी ओर चले ॥ ३१ ॥ इसप्रकार शत्रुको मारकर विजय प्राप्त करनेवाले तीनो वीरवरोंने हस्तिनापुरके निकट पहुँचकर अपने बन्धुओंको सुखी और शत्रुओंको दुःखित करतेहुए विजय-प्रसन्नता-सूचक शङ्खनाद किया ॥ ३२ ॥ उस शङ्खनादको सुनकर हस्तिनापुरवासी समझ गये कि जरासंध मारागया और राजा युधिष्ठिरका मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर भीमसेन, अर्जुन और जनार्दनने जाकर राजा युधिष्ठिरको प्रणाम किया और अपने द्वारा कियेगये जरासंधके वधका वृत्तान्त कहा ॥ ३४ ॥

निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ॥
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥

केशवकी कृपाका वर्णन सुनकर राजा युधिष्ठिर प्रेमसे गद्गद हो आनन्दके आँसू बहानेलगे। गम्भीर आनन्दके उच्छ्वाससे उनका कण्ठ रुँधगया और वह कुछ न कहसके ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितम अध्याय

शिशुपाल-वध

श्रीशुक उवाच—एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः ॥
कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! राजा युधिष्ठिर, जरासंधके वध और श्रीकृष्णके प्रभावको सुनकर प्रसन्नतापूर्वक कृष्णचन्द्रसे कहनेलगे कि हे ब्रह्मन्! त्रैलोक्यके गुरु सनकादिक ऋषिगण एवं सम्पूर्ण लोक व लोकपालगण आपकी दुर्लभ आज्ञाको पाकर सादर शिरपर धारण करते हैं। हे कमलनयन! हे ईश्वर! हे भूमन्! वही भगवान् आप, दीन होकर भी अपनेको ईश अथवा समर्थ माननेवाले जो हमलोग हैं उनकी आज्ञाका पालन करते हैं, यह अत्यन्त विडम्बनाका विषय है। आप एक, अद्वितीय, ब्रह्म परमात्मा हैं; सूर्यके तेजके समान किसी भी कर्मसे आपकी महिमा घटती-बढ़ती नहीं। हे माधव! हे अजित! अज्ञानी पशुओंकी तरह, आपके भक्तजन, शरीर आदि विषयोंमें "मेरा-तुम्हारा" अथवा "मैं-तुम" इसप्रकारकी भेदभावना नहीं रखते। अतएव आपकेलिये क्या कहना है?" ॥ १–५ ॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने यों कहकर श्रीकृष्णके द्वारा

अनुमोदित हो, यज्ञ करनेयोग्य समयमें यज्ञ करानेयोग्य ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंको ऋत्विज आदि पदोंका 'वरण' दिया ॥ ६ ॥ राजन्! द्वैपायन, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, जैमिनि, सुमति, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, भार्गव, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दस, वीरसेन, अकृतव्रण और अन्यान्य ऋषिगण एवं द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र, महामति विदुर तथा ब्राह्मणगण, क्षत्रियगण, वैश्यगण, शूद्रगण तथा अपनी अपनी प्रजा व अनुचरगणसहित निमन्त्रित सब राजालोग यज्ञ देखनेके लिये आकर उपस्थित हुए। तदनन्तर सब ब्राह्मणोंने सुवर्णके हलसे शोधकर यज्ञभूमि प्रशस्त की, एवं वेदविधिके अनुसार राजा युधिष्ठिरको यज्ञकी दीक्षा दी। पहले लोकपाल वरुणके राजसूय यज्ञमें जिसप्रकार यज्ञसम्बन्धी पात्र आदि सब सामग्री सुवर्णकी बनाई गई थी उसीप्रकार युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भी सब सामग्री सुवर्णकी प्रस्तुत की गई ॥ ७–१२ ॥ निमन्त्रण पाकर इन्द्रादि लोकपालगण, अपने गणों-सहित शङ्कर, ब्रह्माजी, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, सम्पूर्ण महासर्प, मुनिगण, यक्षगण, राक्षसगण, पक्षीगण, किन्नरगण, चारणगण और रानियों व राजकुमारों-सहित सब देशोंके राजालोग वहाँ आये और कृष्णके भक्त पाण्डुतनय युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञको देखकर विशेष विस्मित नहीं हुए और उन्होने यज्ञको सुसम्पन्न माना। देवतोंके तुल्य तेजस्वी ब्राह्मणोंने, जिसप्रकार देवतोंने वरुणको यज्ञ कराया था उसीप्रकार विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरका यज्ञ कराया। यज्ञके उपरान्त सोमाभिषवके दिन राजा युधिष्ठिरने एकाग्रचित्त होकर महाभाग याजकों और सदस्योंकी विधिपूर्वक पूजा की। उस सभामें सबसे पहले पूजा पानेके योग्य अनेक महानुभाव उपस्थित थे,—यह देखकर सदस्यलोग इस विषयपर विचार करनेलगे कि पहले किसका पूजन किया जाय। बहुत देर हुई और पूर्वोक्त विषयका कुछ निर्णय न हुआ, तब जरासंधके पुत्र सहदेवने कहा कि– "आपलोग विचार क्या कर रहे हैं? यदुगणके अधिपति भगवान् अच्युत कृष्ण-चन्द्रजी सबसे प्रथम पूजनेयोग्य हैं। देश, काल और पात्र एवं संपूर्ण देवता यही हैं, इनकी पूजा करनेसे सब सुसम्पन्न होगा। यह सब विश्वके आत्मा हैं, सम्पूर्ण यज्ञ इन्हीका स्वरूप हैं। यह अग्नि हैं, यह आहुति हैं और यही सम्पूर्ण मन्त्र हैं। यही ज्ञान और योगकी चरम सीमा हैं। यह केशव एक अद्वितीय हैं, यह सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हैं। हे सभ्यगण! यह अनाश्रय, अजन्मा हैं। यह स्वयं इस जगत्की सृष्टि पालन और संहार करते हैं। ये सब लोग इन्हीकी कृपा-दृष्टिसे इसलोकमें विविध कर्म करतेहुए मङ्गलमय धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त होते हैं; अर्थात् सम्पूर्ण कर्म और उन कर्मोंके फल इन्हीके अधीन हैं।

अतएव सबसे पहले महात्मा कृष्णचन्द्रका पूजन उत्तम रीतिसे करो। ऐसा करनेसे सब प्राणियोंका और आत्माका भी पूजन होजायगा। यदि इच्छा हो कि हमारा किया हुआ दान और पूजन अक्षय व अनन्त हो तो सब प्राणियोंके आत्मा-स्वरूप, भेदभावरहित, शान्त और पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करो" ॥१३–२४॥ श्रीकृष्णके प्रभावको भलीभाँति जाननेवाले सहदेव इतना कहकर चुप होगये और सहदेवके सर्वसंमत श्रेष्ठ वचन सुनकर सब साधुजन 'वाह वाह' कर वारंवार उनकी प्रशंसा करनेलगे। राजा युधिष्ठिरने साधुओंके मुखसे साधुवाद सुनकर और सब सभासदोंके हृदयका भाव समझकर प्रेमानन्दसे विह्वल हो हृषीकेश कृष्णचन्द्रका अग्रपूजन किया। हरिके चरणोंको धोकर भार्या, अनुज, अमात्य, और सम्पूर्ण कुटुम्बसहित राजाने परम श्रद्धा, भक्ति और आनन्दसहित उस लोकपावन चरणोदकको अपने शिरपर डाला। रेशमी पीतपट एवं अमूल्य आभूषण आदिसे कृष्णकी पूजा करते करते आनन्द और प्रेमके वेगसे राजा युधिष्ठिरके नयन आँसुओंसे पूर्ण होगये और कुछ समयतक वह कृष्णचन्द्रके मनोहर रूपको भलीभाँति देख नहीं सके। श्रीकृष्णका इसप्रकार पूजन होते देखकर सभामें स्थित सब लोग प्रसन्न होकर जयजयकार करतेहुए हाथ जोड़कर हरिको प्रणाम करनेलगे। उससमय कृष्णचन्द्रके ऊपर चारो ओरसे फूलोंकी वर्षा होनेलगी ॥ २५–२९ ॥ राजन्! श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन होते देखकर दमघोषतनय शिशुपाल अत्यन्त कुपित हुआ; श्रीहरिके ऐसे सम्मानको वह देख नहीं सका। शिशुपाल क्रोधके कारण अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ और हाथ उठाकर क्रोधपूर्वक निर्भयचित्तसे इसप्रकार भरी सभामें भगवान्को सुनाकर कठोर और कटु वचन कहनेलगा ॥ ३० ॥ शिशुपालने कहा—सब करनेमें समर्थ, काल दुरत्यय है–इस जनश्रुतिकी सचाई यहाँ साक्षात् देखपड़ी। एक बालकके कहनेसे बड़े बड़े वृद्धोंकीभी बुद्धिको मोह होगया ! ॥ ३१ ॥ हे सम्पूर्ण सदस्यगण ! आपलोग 'पात्र' जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। "श्रीकृष्ण ही सबसे पहले पूजनेयोग्य हैं"–इस बालसुलभ वाक्यको आप यथार्थ न मानना ॥ ३२ ॥ तप, विद्या, व्रत और ज्ञानके द्वारा जिनके सब पातक नष्ट होगये हैं और अज्ञान मिटगया है, जो ब्रह्मनिष्ठ हैं, श्रेष्ठ लोकपाल-गण भी जिनका पूजन करते हैं उन सभापति महर्षियोंके आगे यह कुलकलङ्क गोपाल कैसे पूजनके योग्य हो सकता है? देवतोंके भाग पुरोडाशको कहीं अधम काक पा सकता है? ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह कृष्ण, वर्ण आश्रम और कुलसे हीन है, सब धर्मोंसे बहिष्कृत है, स्वेच्छाचारी और गुणशून्य है। यह कैसे पूजनीय हो सकता है? ॥ ३५ ॥ ययातिके शापसे श्रीभ्रष्ट, साधु-परित्यक्त एवं वृथा

१ यहां शिशुपालने यद्यपि निन्दा की है तथापि टीकाकार श्रीधरस्वामीने निन्दा-शब्दोंकाही अर्थ भगवान्की स्तुतिपर दिखाया है ॥

पाननिरत इनका कुल कैसे पूजनीय हो सकता है ? ॥ ३६ ॥ ये ब्रह्मर्षि-सेवित देशोंको छोड़कर समुद्रके मध्यस्थित दुर्गमें जाकर बसे हैं, और दस्युगणके समान प्रजापीड़न करते हैं ॥ ३७ ॥ जिसका मङ्गल नष्ट हो गया है उस शिशुपालने इसप्रकारके अनेक कटु वचन कहे, परन्तु जैसे शृगालके शब्दपर सिंह ध्यान नहीं देता उसप्रकार कृष्णचन्द्रजी चुपचाप सब सुनते रहे और कुछ भी नहीं बोले ॥ ३८ ॥ सभासदगण उस असह्य (भगवान्‌की) निन्दाको न सुनसके, और क्रोधपूर्वक शिशुपालको गालियाँ देतेहुए हाथोंसे कान बन्द करके वहाँसे उठकर चल दिये ॥ ३९ ॥ जो व्यक्ति भगवान् या भगवान्‌के भक्तकी निन्दाको बैठे सुना करता है और (उस दुष्ट निन्दकको दण्ड देनेमें असमर्थ होनेपर) वहाँसे उठकर चला नहीं जाता उसका सब पुण्य नष्ट हो जाता है और वह नरकको जाता है ॥ ४० ॥ शिशुपालके मुखसे भगवान्‌की निन्दा सुनकर चारो पाण्डव और मत्स्य, सृञ्जय, व केकय देशके राजालोग कुपित हो, अस्त्र शस्त्र ले शिशुपालको मारनेके लिये उठ खड़ेहुए ॥ ४१ ॥ हे भरतनन्दन ! उनको इसप्रकार आक्रमण करनेके लिये उद्यत देखकर शिशुपाल रत्तीभर नहीं घबड़ाया। श्रीकृष्णकी ओरसे मारनेके लिये उद्यत राजोंको डाँटकर शिशुपालनेभी अपनी ढाल और तर्वार उठा ली ॥ ४२ ॥ तब अपनी ओरसे लड़नेके लिये उद्यत पाण्डवों और राजोंको भगवान्‌ने रोक दिया और स्वयं कुपित हो अपनी ओर प्रहार करनेके लिये आ रहे शत्रु (शिशुपालका) का शिर तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे सबके देखते देखते धड़से अलग कर दिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मरनेपर सभामें बड़ाभारी कोलाहल मचगया। उससमय शिशुपालके साथी सब नरपति अपने अपने प्राण लेकर सभासे भाग गये ॥४४॥ राजन् ! जैसे कोई तारा आकाशसे गिरकर मार्गमें लीन हो जाता है वैसे ही शिशुपालके शरीरसे ज्योति निकलकर सबके आगे वासुदेवमें लीन होगई ॥४५॥ तीन जन्मतक वैरभावसे क्रोधपूर्वक दिन-रात कृष्णके ध्यानमें मग्न रहनेके कारण शिशुपालने श्रीहरिसे सारूप्यमुक्ति पाई। राजन् ! ध्यान ही ध्येय वस्तुके समान रूपके पानेका कारण है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सदस्यों और ऋत्विजोंको मुह-माँगी मन-भाई दक्षिणा देकर और पूजा करके सन्तुष्ट किया एवं तदुपरान्त अवभृथस्नान किया। इसप्रकार राजसूय यज्ञ करके राजा युधिष्ठिर पृथ्वीमण्डलके एकसम्राट् हुए ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरके यज्ञको भलीभाँति पूर्ण कराकर बान्धवोंकी प्रार्थना पूर्ण करतेहुए कई महीनेतक हस्तिनापुरमें रहे ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र, तदनन्तर राजा युधिष्ठिरकी इच्छा न होनेपर भी उनसे विदा होकर मन्त्रियों, अनुचरों और रानियोंसहित द्वारकापुरीको गये ॥ ४९ ॥ राजन् ! सनकादिकोंके शापसे वैकुण्ठवासी हरिसेवक जय और विजयके वारंवार पृथ्वीपर जन्म पानेका वृत्तान्त मैं तुमसे विस्तारपूर्वक पहले कह चुका हूँ ॥ ५० ॥ राजसूययज्ञके अन्तमें

अवभृथस्नान करके, राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके बीच सुरसमाजमें सुरराजके समान शोभायमान हुए ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरके द्वारा कियेगये पूजन और सत्कारसे सन्तुष्ट सम्पूर्ण देवता, मनुष्य और आकाशचारी लोग प्रसन्नतापूर्वक कृष्णकी और यज्ञकी बड़ाई करते अपने अपने लोकको गये ॥ ५२ ॥ उस यज्ञको देखकर यदि कोई प्रसन्न न था तो वह कुरु-कुल-कलङ्क साक्षात् कलिका अवतार पापी दुर्योधन था, क्योंकि पाण्डुपुत्रकी वह परम वृद्धिको प्राप्त राज्यलक्ष्मी दुर्योधनके लिये निपट असह्य थी ॥ ५३ ॥

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥
राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

जो कोई श्रीविष्णुके इन शिशुपालवध और नृपमोचन आदि चरित्रोंको एवं युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके पवित्र उपाख्यानको मन लगाकर पढ़ता या सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर सुखी होता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितम अध्याय

दुर्योधनका अपमान

राजोवाच–अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥
सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्‌ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके यज्ञका वैभव देखनेके लिये जो सब देवता, ऋषि और राजा आदि आये वे सब प्रसन्नहुए, परन्तु दुर्योधन अप्रसन्न रहा–इसका क्या कारण है ? ॥ १ ॥ २ ॥ शुकदेवजी बोले—राजन् ! तुम्हारे पितामह महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञमें प्रेमवश सब बान्धवोंने भिन्न भिन्न सेवाके कार्य अपने अपने हाथमें लिये थे । भीमसेन पाकशालाके और दुर्योधन धनके अध्यक्ष थे । सहदेव सब आयेहुए लोगोंका स्वागत करते थे और नकुल सब सामग्रीका संचय करते थे । अर्जुन अभ्यागत साधुओंकी सेवा करते थे और श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं उनके पैर धोते थे । द्रौपदीजी सबको भोजन देती थीं और महा उदार कर्णने दानका भार लिया था । हे राजेन्द्र ! इसीप्रकार सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य और विदुर आदिक और भूरिश्रवा आदि बाल्हीकके पुत्र एवं सन्तर्दन आदिक सब बान्धव राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये भिन्न भिन्न कार्योंमें लगेहुए थे ॥३–७॥ ऋत्विक्, सदस्य एवं बहुतसे ऋषिगण और श्रेष्ठ बन्धुगणका, भलीभाँति मीठे वचन अलङ्कार आदि सामग्री एवं दक्षिणासे सत्कार व पूजन कियागया । तदनन्तर शिशु-

पालने शरीर छोड़कर यदुपतिके चरणोंमें स्थान पाया। उसके बाद राजा युधिष्ठिर अवभृथस्नान करनेके लिये गङ्गातटपर गये। स्नान-सम्बन्धी महान् उत्सवमें मृदङ्ग, शङ्ख, पणव, ढोल, गोमुख, वीणा आदि अनेक प्रकारके बाजे बजनेलगे। वारवनिताएँ आनन्दपूर्वक नृत्य करनेलगीं और झुण्डके झुण्ड गवैये लोग गान करनेलगे। उनके वेणु, वीणा और करतालकी ध्वनि आकाशमण्डलमें गूँज उठी। सुवर्णकी मालाएँ पहने यदु, सृंजय, काम्बोज, कुरु, केकय और कोशल आदि वंशोंके नरेश, यजमान राजा युधिष्ठिरको आगे करके विविध वर्णवाली ध्वजा और पताकाओंसे सुशोभित एवं गज, अश्व, रथ और पैदलोंसे भलीभाँति अलंकृत चतुरङ्गिणी सेनासे पृथ्वीको कँपातेहुए बाहर निकले। सदस्य, ऋत्विक् एवं अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मण भी पवित्र वेदध्वनि करतेहुए आगे आगे चले। उससमय देवर्षि, पितृगण और गन्धर्वगण फूलोंकी वर्षा करतेहुए स्तुति करनेलगे। स्त्रियों और पुरुषोंके झुण्ड चन्दन, माला और श्रेष्ठ वस्त्र व आभूषणोंसे विभूषित होकर अनेक रङ्गके जलोंसे परस्पर भिगोते और गुलाल, केसर आदि मलतेहुए क्रीडा करनेलगे। वेश्याएँ और पुरुषगण तैल, गोरस, सुगन्धित जल, हल्दी एवं गाढ़े कुङ्कुमको एक-एकपर छिड़कते और लगातेहुए क्रीड़ा करनेलगे ॥ ८–१५ ॥ यह उत्सव देखनेके लिये परम सुन्दरी देवतोंकी स्त्रियाँ श्रेष्ठ विमानोंपर बैठ आकाश-मार्गमें आकर उपस्थित हुईं। इधर राजालोगोंकी रानियाँ भी रथ आदि यानोंपर सवार होकर बाहर निकलीं। चारो ओरसे रक्षक सिपाही अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर उन सवारियोंके साथ चले। उन सब रानियोंने गङ्गातटपर पहुँचकर सखियों-सहित जलमें प्रवेश किया। तब सखियाँ उनको जलके भीतर जलसे भिगोने-लगीं। उस समय लज्जापूर्ण हँसीसे उन रानियोंके मुखकमल मानो खिल उठे। वे रानियाँ अपनी अपनी दासियोंके द्वारा अपने अपने देवरों और सखियोंको जलसे भिगोने लगीं। उनके भीगेहुए वस्त्र शरीरमें चिपक गये और कुच, ऊरू एवं मध्य-भागआदि अङ्ग प्रकट हो पड़े। जलविहारकी उत्सुकताके कारण उनकी चोटियाँ खुलगईं और मालाएँ अपने स्थानसे खिसक गईं। इसभावसे उनके मनो-हर विहारको देखकर कामी पुरुषोंके चित्त चञ्चल हो उठे। उत्तम घोड़े जिसमें जुतेहुए हैं ऐसे रत्नमाला विभूषित रथपर सवार सपत्नीक राजा युधिष्ठिर, उस-समय क्रियासमूह-सहित साक्षात् श्रेष्ठ राजसूय यज्ञके समान सुशोभित हुए। तब ऋत्विक् लोगोंने पत्नीसंयाज एवं यज्ञान्त-स्नानसंबन्धी सम्पूर्ण कर्मोंके पूर्ण होनेपर आचमन कराकर द्रौपदीसहित राजा युधिष्ठिरको विधिपूर्वक गङ्गामें स्नान कराया। उससमय स्वर्गमें देवगण और पृथ्वीमें मनुष्यगण नगाड़े बजानेलगे एवं देवतागण, ऋषिगण, पितृगण और मनुष्यगण फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १६–२० ॥ फिर उसी स्थानपर आयेहुए चारो वर्ण और चारो आश्रमोंके लोगोंने स्नान

किया। राजन्! उस समय स्नान करनेसे तत्क्षण लोगोंके सब प्रकारके महापातक नष्ट हो जाते हैं। स्नान करके राजा युधिष्ठिरने नवीन रेशमी वस्त्र और अमूल्य उत्तम आभूषण पहने एवं वस्त्र व आभूषणोंसे ऋत्विजों और सदस्योंका पूजन किया। नारायणके भक्त राजा युधिष्ठिरने इसीप्रकार बन्धु, जातिवाले, निमन्त्रित नरपतिगण, सुहृद्गण एवं अन्यान्य सब लोगोंका सत्कार और पूजन किया। सबलोग देवतोंके समान कान्तियुक्त हो, मणिमय कुण्डल, पगड़ी, वस्त्र और महामूल्य हार पहनकर परम शोभायमान और प्रसन्न हुए। स्त्रियोंके मुखमण्डलभी कुण्डलोंकी झलकसे अपूर्व-शोभायुक्त देख पड़ते थे। वे स्त्रियाँ सुवर्णकी काञ्ची पहनेहुए देवी सी जान पड़ती थीं। तदनन्तर सुशील ऋत्विक्वृन्द, ब्रह्मवादी सदस्यगण एवं ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, राजगण, देवर्षि, पितृगण, भूतगण, अनुचरवृन्दसहित लोकपालगण और अन्यान्य जो लोग यज्ञ देखने आये थे वे सब, भलीभाँति पूजा और सत्कारसे संतुष्ट हो, राजासे अनुमति लेकर आनन्दपूर्वक अपने अपने भवनको गये। जैसे अमृत पीनेसे मनुष्योंका जी नहीं भरसकता वैसे ही वे सब लोग भगवद्भक्त राजर्षि युधिष्ठिरके यज्ञकी वारंवार प्रशंसा करके भी नहीं तृप्त हुए; राहभर प्रशंसा करते ही रहे। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सुहृद्, सम्बन्धी, बान्धव एवं श्रीकृष्णचन्द्रकोभी प्रेमपूर्वक विदा किया। उस समय वह वियोगके कष्टको न सहसकनेके कारण विह्वल होगये और उनका हृदय भर आया। राजन्! भगवान् कृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरको अपने वियोगके कष्टसे विह्वल देखकर और उनके कातर वचन सुनकर दयापूर्वक आप कुछ दिनके लिये और ठहर गये और वीर साम्ब आदि यादवोंको द्वारका जानेके लिये आज्ञा दी। स्वामीकी आज्ञाके अनुसार यादवगण द्वारकापुरीको गये। धर्मावतार राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी कृपा और संपूर्ण सहायतासे इसप्रकार मनोरथ-महासागरके पार पहुँचकर निश्चिन्त होगये ॥ २१-३० ॥ राजन्! इधर अच्युतके भक्त राजा युधिष्ठिरके ऐश्वर्यको देख और राजसूय यज्ञकी प्रशंसा सुनकर दुर्योधनको बड़ा ही सन्ताप हुआ। जिस मयासुर-रचित अन्तःपुरकी सभामें दैत्येन्द्र, सुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके सम्पूर्ण विभव सुशोभित थे और जहाँ अपने पतियोंके निकट उपस्थित द्रौपदीजी उनकी सेवा करती थीं उसको देखकर राजा दुर्योधनका हृदय दुस्सह डाहकी अग्निसे जलनेलगा। उस अन्तःपुरमें श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियाँ भी रहती थीं। श्रोणीभारसे मन्द मन्द गमन करनेवाली उन रानियोंके नूपुर आदि चरण-स्थित अलङ्कारोंकी झनकारसे वह भवन और भी शोभायमान था। उन रानियोंके कटितट अत्यन्त मनोहर थे। कुचमण्डलमें लगेहुए कुङ्कुमके लगनेसे ललाई लियेहुए उनके वक्षःस्थलमें विराजमान हार, उनकी सुन्दरताको बढ़ा रहे थे। उनके प्रफुल्लित कमलतुल्य मुखमण्डलोंमें हिल रही अलकोंकी और कनककलित

कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा देख पड़ती थी ॥ ३१–३४ ॥ राजन् ! उस मयासुरकी बनाई सभामें एक समय सम्राट् राजा युधिष्ठिर अपने नेत्र-स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र, बन्धुगण और भाइयोंसहित साम्राज्यलक्ष्मीसे सुसम्पन्न होकर साक्षात् इन्द्रके समान सुन्दर सुवर्णके सिंहासनपर बैठेहुए थे । और बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे । इसी अवसरमें माला और किरीटमुकुट एवं खड्ग आदिसे सुशोभित महामानी दुर्योधनने भाइयोंसहित उस सभामें प्रवेश किया । राहमें द्वारपाल आदिको डाँटता और झिड़कता हुआ दुर्योधन सभामें पहुँचा तो उसे मयासुरकी मायामयी रचनामें ऐसा मोह हो गया कि जहाँ सूखा स्थल था वहाँ तो जलके भ्रमसे उसने कपड़े समेट लिये और जलमें स्थलके भ्रमसे गिर पड़ा । राजन् ! दुर्योधनकी यह दशा देखकर, युधिष्ठिरके रोकनेपर भी, श्रीकृष्णका संकेत (इशारा) पाकर, भीमसेन, द्रौपदी आदि स्त्रियाँ एवं अन्यान्य उपस्थित राजालोग ऊँचे स्वरसे हँसनेलगे । दुर्योधन लज्जित हो गया और आन्तरिक क्रोधसे जल उठा एवं शिर झुकाकर चुपचाप वैसे ही अपने भवनको लौट गया । यह अनर्थ देखकर सब सज्जन हाहाकार करनेलगे और युधिष्ठिरभी कुछ उदास हो गये । किन्तु भगवान् कृष्णचन्द्रने भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा । कृष्णचन्द्र पृथ्वीका भार उतरना चाहते थे, उनकी ही इच्छासे दुर्योधनको ऐसा भ्रम हुआ ॥ ३५–३९ ॥

एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥
सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥

राजन् ! तुमने जो पूछा कि युधिष्ठिरके यज्ञमें सब लोग प्रसन्न हुए और दुर्योधन क्यों अप्रसन्न रहा ?—सो दुर्योधनकी अप्रसन्नताका यह वृत्तान्त मैंने तुमको सुना दिया ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितम अध्याय

शाल्वके साथ युद्धका आरम्भ

श्रीशुक उवाच—अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥
क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! सौभ नाम विमानका स्वामी शाल्व जैसे मारा गया—सो क्रीड़ा करनेके लिये नरतनुधारी कृष्णचन्द्रका एक और अद्भुत कर्म सुनो । रुक्मिणीके विवाहमें शिशुपालका मित्र शाल्व जरासन्ध आदि राजोंके

समान युद्धमें यादवोंसे हार गया था । उससमय शाल्वने अपने साथी सब राजोंके सन्मुख प्रतिज्ञापूर्वक कहा था कि-"मैं अपने पौरुषसे यादव वंशका विनाश करूँगा, तुम लोग देखोगे कि पृथ्वीपर एक भी यादव जीवित न बचेगा"। मूढ़ राजा शाल्व इसप्रकार प्रतिज्ञा करके वहाँसे चल दिया और नित्य एक मुट्ठी राख एक बार फाँक कर देवदेव प्रभु पशुपतिकी आराधना करनेलगा । इसप्रकार घोर तप करते जब एक वर्ष बीत गया तब भगवान् आशुतोष महादेव प्रसन्न होकर प्रकटहुए और शरणागत शाल्वसे बोले कि 'वर माँग'। शाल्वने शंकरसे एक ऐसा विमान माँगा जो यादवोंको डरानेवाला हो और जिसको देवगण भी न तोड़ सकें। भगवान् शङ्कर उसकी इच्छाके अनुसार 'तथास्तु' कहकर अपने लोकको चले गये । परपुरंजय शिवकी आज्ञासे मय दानवने शाल्वको एक दुर्भेद्य लौहमय सौभ-नामक विमान बना दिया । उस अन्धकारमय, दुष्प्राप्य, कामचारी विमानको पाकर यादवोंके किये वैरका स्मरण करता हुआ शाल्व, बदला लेनेकी इच्छासे उसी क्षण द्वारकापुरीको गया । शाल्वके साथ सेना भी बहुत थी । उसने आकर चारो ओरसे द्वारकापुरीको घेर लिया । उसकी सेना पुरीके उपवन, उद्यान आदिको उजाड़ने एवं गोपुर, द्वार, प्रासाद, अट्टालिका और तोलिका आदि स्थानोंको तोड़नेलगी । विमानसे पुरीके ऊपर अस्त्र शस्त्र, शिला, वृक्ष, बड़े बड़े पत्थर और भयंकर सर्प तथा वज्र गिरनेलगे । प्रचण्ड आँधी चलनेलगी और उड़ी हुई धूलसे दशो दिशाओंमें अन्धकार छागया ॥ १-११ ॥ राजन् ! पूर्वसमय जैसे त्रिपुरवासी दानवोंने पृथ्वीवासियोंको पीड़ित किया था उसीप्रकार विमानस्थित शाल्वके द्वारा पीड़ित श्रीकृष्णकी द्वारका पुरीके निवासीजन अत्यन्त पीड़ित हुए । अपनी प्रजाको इसप्रकार पीड़ित और व्याकुल देखकर महारथी वीर प्रद्युम्न भगवान्ने "डरना नहीं" कहकर सबको धैर्य दिया और आप रथपर चढ़कर शत्रुदमन करनेकेलिये उद्यत हुए । प्रद्युम्नजीके साथ सात्यकी, चारुदेष्ण, साम्ब, अक्रूर, भाइयोंसहित हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक, सारण एवं अन्यान्य महाधनुर्धारी यूथपतियोंकेभी यूथपति सुभट यादवगण, अभेद्य कवच पहनकर रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे अलङ्कृत अपरिमित चतुरङ्गिणी सेना साथ ले, युद्ध करनेके लिये पुरसे बाहर निकले । तदनन्तर देवतोंसे और दानवोंसे अमृतकेलिये जैसे घोर देवासुर संग्राम हुआ था उसीप्रकार शाल्वकी सेना और यादवोंसे महा भयानक युद्ध होनेलगा । राजन् ! उस महाभयानक युद्धकी कथा सुननेसे भी रोमाञ्च हो आता है । महाराज ! सूर्य देव जैसे रात्रिके घोर अन्धकारको दूरकर देते हैं उसीप्रकार रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने सौभपति शाल्वकी प्रसिद्ध मायाओंको दिव्य अस्त्रोंसे क्षणभरमें नष्ट कर दिया । प्रद्युम्नने पचीस लौहमुख, स्वर्णपुङ्ख, सन्नतपर्व सुतीक्ष्ण बाण मारकर शाल्वके

सेनापतिको घायल करडाला। फिर सौ बाण शाल्वके, एक एक बाण सब सैनिकोंके, दस दस बाण सब सेनानायकोंके एवं तीन तीन बाण सब वाहनोंके मारकर उनको घायल किया। महात्मा प्रद्युम्नके इस महाअद्भुत कर्मको देखकर शत्रु और मित्र सभी उनकी प्रशंसा करनेलगे। शाल्वका मयरचित मायामय विमान कभी बहुरूप और कभी एकरूप होजाता था। कभी देख पड़ता था और कभी अदृश्य हो जाता था। यादवगण उसकी गतिको नहीं देख पाते थे। शाल्वका विमान कभी पृथ्वी-पर, कभी आकाशमें, कभी समुद्रके जलपर और कभी पर्वतके शिखरपर अलात-चक्रसे समान घूमने लगा ॥ १२–२२ ॥ शाल्व और उसके सैनिकोंसहित सौभ विमान जहाँ जहाँ देख पड़ता था वहीं वहीं उसपर यदुयूथपति प्रद्युम्नजी बाणोंकी वर्षा करते थे। अग्नि और सूर्यके समान जिनका स्पर्श कष्टकारी है ऐसे विषधर सर्पके सदृश दुस्सह शत्रुपक्षके बाणोंसे सेनासहित, शाल्वका विमान छिन्न भिन्न होनेलगा और बाणोंकी चोटसे शाल्वको मूर्च्छा आगई। दोनो लोकोंमें जय पानेकी इच्छा रखनेवाले यादव-भट भी शाल्वके सेनानायकोंके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे पीड़ित होकर भी रणभूमिमें डँटे रहे। शाल्वके द्युमान् नाम मन्त्रीको पहले प्रद्युम्नने मूर्च्छित कर दिया था, इससमय उसकी मूर्च्छा जाती रही और उस बलिने प्रद्यु-म्नके निकट आकर उनके ऊपर वज्रलौहनिर्मित गदा चलाकर सिंहनाद किया। द्युमान्की गदाके प्रहारसे प्रद्युम्नका हृदय विदीर्ण हो गया और वह अचेत होकर रथपर गिर पड़े। कृष्णके सारथी दारुकका पुत्र अरिंदम प्रद्युम्नका सारथी था–वह सारथी और रथीके धर्मोंको भलीभाँति जानता था; अतएव मूर्च्छित प्रद्युम्नको रणभूमिसे हटाकर अन्यत्र सुरक्षित स्थानमें लेगया। मुहूर्त भरमें सचेत हो प्रद्युम्नजीने अपने रथको युद्धभूमिमें न देखकर सारथीसे कहा–"अरे सारथी! तू मुझको युद्धभूमिसे हटाकर यहाँ लेआया, यह तूने अच्छा नहीं किया। छिः! छिः! मैं मूर्च्छित अवस्थामें सारथीके कारण रणभूमिसे हट आया–यह बहुत ही अयोग्य हुआ। मेरे सिवा यदुवंशके और किसी योद्धाका रणभूमिसे भागना नहीं सुना जाता। धर्मयुद्धसे भागकर पिता कृष्णचन्द्र और चाचा बलभद्रको मैं कैसे मुख दिखाऊँगा? और उनसे क्या कहूँगा? उनसे मैं इस अपने अयोग्य कार्यका वर्णन कैसे करूँगा? मेरे भाइयोंकी स्त्रियाँ मुझको हँसेंगी और कहेंगी कि 'हे वीर! युद्धमें शत्रुने तुम्हारे वीर्यको कैसे नष्ट कर दिया? कहो तो सही'। यों हँसकर जब वे मेरे कायरपनका वर्णन करेंगी तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगा?"। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुनकर सारथीने कहा कि–"हे आयुष्मन्! हे बिभो! सारथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़ेहुए रथीकी रक्षा करे और रथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़ेहुए सारथीकी रक्षा करे। इसीधर्मके अनुसार मैंने ऐसा किया ॥ २३–३२ ॥

एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ॥
उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥

शत्रुकी गदाके प्रहारसे आप पीड़ित होकर अचेत हो गये थे, इसीसे मैं आपको युद्धभूमिसे हटा लाया" ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितम अध्याय

शाल्ववध

श्रीशुक उवाच—स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥
नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! प्रद्युम्नने जल लेकर मुख धोया और उत्तम अभेद्य कवच पहन, धनुष हाथमें ले, सारथीसे कहा कि—'मुझको वीर द्युमान्‌के निकट शीघ्र लेचल'। द्युमान् प्रद्युम्नकी सेनाको पीड़ित करके पीछे हटा रहा था, इसी अवसरपर वीर प्रद्युम्न वहाँ पहुँच गये और उन्होने उसके हृदयमें आठ नाराच बाण मारकर चार नाराचोंसे उसके घोड़ोंको और एक नाराचसे सारथीको मार डाला। तदनन्तर वीर प्रद्युम्नने एक नाराचसे उसके धनुषको और एक नाराचसे ध्वजाको काटकर एक नाराचसे उसका शिर धड़से अलग कर दिया। इधर गद, साम्ब, सात्यकी आदि वीर यादव सौभपति शाल्वकी सेनाका संहार करनेलगे। सौभ-विमानके ऊपरसे लड़ रहे सैनिकोंके शिर कट कट कर समुद्रके जलमें गिरनेलगे। राजन् ! परस्पर एक एकको मार रहे यादवों और शाल्वके सैनिकोंका उत्कट युद्ध सात दिन और सात राततक बराबर इसप्रकार होता रहा। यह तो हम कह ही चुके हैं कि धर्मराजके निमन्त्रणको पाकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरको गये। राजसूययज्ञ समाप्त हो गया और शिशुपाल भी मारा गया। तदनन्तर अत्यन्त भयानक, अशुभसूचक असगुन होते देख सर्वज्ञ अन्तर्यामी कृष्णचन्द्र, बड़े बूढ़े कुरुवंशी, मुनिगण, कुन्ती, और पाण्डवोंसे मिलकर तथा उनसे आज्ञा लेकर द्वारका पुरीको चले। मार्गमें भगवान् मन-ही-मन विचारनेलगे कि "मैं बलराम-सहित हस्तिनापुरमें था, अवश्य ही शिशुपालके मित्र राजालोग यह अवसर पाकर द्वारकापुरीमें जाकर किसी-न-किसी प्रकारका उत्पात कर रहे हैं" ॥ १–६ ॥ भगवान्‌ने द्वारका पुरीमें पहुँचकर देखा कि वास्तवमें उनकी आशङ्का ठीक थी। पूर्वोक्त प्रकारसे अपने सुभटोंका विनाश होते देखकर कृष्णचन्द्रने

बलभद्रजीको पुरकी रक्षाके लिये नियुक्त कर सामने ही सौभ-विमानसहित शाल्व राजाको देख दारुक सारथीसे कहा कि–"हे सूत! इस दुष्ट शाल्वके निकट शीघ्र मेरे रथको ले चल; यह सौभपति अत्यन्त मायावी है, तथापि तुम तनिकभी डरना या घबड़ाना नहीं" ॥ ७–१० ॥ भगवान्‌के वचन सुन दारुक सँभलकर बैठगया और रथको हाँकनेलगा। शत्रु और मित्र पक्षके सबलोगोंने गरुड़युक्त ध्वजाको देखकर जाना कि श्रीकृष्णचन्द्र आगये ॥ ११ ॥ उस समय शाल्वकी सेना हतप्राय होचुकी थी और वह शिथिल भी हो चला था। उसने युद्धस्थलमें कृष्णको आते देख दारुकके ऊपर एक महाभयानक शब्द करनेवाली शक्ति चलाई ॥ १२ ॥ वह प्रचण्ड शक्ति किसी बड़े भारी उल्कापिण्डके समान दशो दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित करती हुई बड़े वेगसे आकाशमार्ग होकर दारुककी ओर चली, किन्तु पास आने भी नहीं पाई और भगवान्‌ने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके सैकड़ों खण्ड कर डाले ॥१३॥ फिर भगवान् कृष्णचन्द्रने शाल्वके हृदयमें सोलह बाण मारकर, सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे आकाशके अन्धकारको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं उसप्रकार अपने असंख्य बाणोंसे आकाशमें घूम रहे सौभ विमानको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ १४ ॥ तब शाल्वने शार्ङ्ग-धनुष-धारी कृष्णके शार्ङ्ग-धनुषयुक्त वाम बाहुमें कई बाण मारे और भगवान्‌के हाथसे छूटकर शार्ङ्ग धनुष गिर पड़ा। हे राजन्! यह एक बहुतही अद्भुत बात हुई। यह देखकर सब दर्शक लोग हाहाकार करनेलगे। शाल्व भी सिंहनाद करता हुआ जनार्दनसे कहने लगा कि–"अरे मूढ़! हमारे सामने तू हमारे मित्र और भाई शिशुपालकी स्त्रीको हर लाया एवं उस हमारे असावधान मित्रको सभामें तूने मार डाला। तू अपनेको समझता है कि मैं किसीसे हारनेवाला नहीं हूँ। यदि थोड़ी देर मेरे सामने ठहरनेका साहस करेगा तो मैं अभी तुझको अपने तीक्ष्णबाणोंसे उस लोकको भेजदूँगा जहाँसे कोई फिर लौटकर नहीं आता" ॥ १५–१८ ॥ भगवान्‌ने कहा—"रे मन्द! तू वृथा अपनी बड़ाई हाँक रहा है, अपने पास ही अवस्थित अन्तकको नहीं देखता। वीर पुरुष अपना पराक्रम दिखलाते हैं–तेरी तरह वृथा बकबक नहीं करते" ॥ १९ ॥ इतना कह-कर भगवान्‌ने क्रोधपूर्वक महा-भयानक वेगवाली गदासे शाल्वपर प्रहार किया। उस गदाके प्रहारसे शाल्व काँप उठा और उसके मुखसे रुधिर बहनेलगा। जब गदाके प्रहारकी व्यथा कुछ निवृत्त हुई, तब शाल्व देखते ही देखते अदृश्य हो गया। घड़ी भरके बाद एक पुरुष कृष्णके समीप आया और प्रणाम करके रोते रोते कहनेलगा कि "ब्रह्मन्! देवी देवकीने मुझको आपके निकट भेजा है और कहा है कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाबाहु! हे पितृवत्सल! जैसे कोई हत्यारा वधिक किसी पशुको बाँधकर लेजाय उसप्रकार शाल्व आपके पिता वसुदेवको

बाँधकर ले गया है"। इस विप्रिय समाचारको सुनकर मनुष्यस्वभावका अनुकरण करके दयालु श्रीकृष्णचन्द्र स्नेहसे विवश हो साधारण मनुष्यके समान कहनेलगे कि "सब देवता और दैत्य भी मिलकर जिनको नहीं जीत सकते उन पुररक्षामें सावधान आर्य बलभद्रको जीतकर क्षुद्र शाल्व कैसे मेरे पिताको पकड़ ले गया? अथवा ऐसा भी हो सकता है, क्योंकि दैव बड़ा बलवान् है"। श्रीकृष्णचन्द्र इसप्रकार कहही रहे थे कि सौभराज शाल्व सामने प्रकट हुआ और वसुदेवके ऐसे आकारवाले एक व्यक्तिको दिखाकर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगा कि "देख, यही तुझको उत्पन्न करनेवाला तेरा पिता है, जिसके लिये तू इस पृथ्वीपर जीवित है। हे मूढ़! मैं तेरे ही आगे इसको मारता हूँ–यदि शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर"। यों झिड़ककर मायावी शाल्वने उस वसुदेवके अनुरूप व्यक्तिका शिर खड्गसे काट डाला और उस शिरको लेकर अपने विमानपर चला गया॥ २०–२७॥ श्रीकृष्णभगवान्‌का ज्ञान स्वतःसिद्ध और पूर्ण है, तथापि स्वजनस्नेहके कारण मुहूर्तभर मनुष्य-स्वभावका अनुकरणकर वह शोक करनेलगे। किन्तु महानुभाव कृष्णने बहुत शीघ्र जान लिया कि वह वास्तवमें शाल्वकी फैलाईहुई आसुरी मायाका प्रपञ्च है। अच्युतने क्षणभरमें देखा कि स्वप्न-प्रपञ्चके समान न वहाँ देवकीका दूत है और न पिताका शरीर है एवं शत्रु शाल्व अपने सौभ विमानपर बैठा हुआ आकाशमें उपस्थित है। यह देखकर शाल्वको मारनेके लिये भगवान् उद्यत हुए॥ २८॥ २९॥ हे राजेन्द्र! पूर्वापारका विचार न करनेवाले कुछ ऋषियोंका ऐसा कथन है। ऐसा माननेसे उन्हींके पूर्वोक्त वाक्योंमें विरोध होता है–इसका ध्यान वे नहीं करते। देवगण जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे अखण्ड ज्ञानविज्ञानसे पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रमें अज्ञ जनोंके शोक, मोह, स्नेह, भय आदि धर्मोंका होना निपट असंभव है। साधुजन जिनके चरणोंकी सेवासे बढ़ेहुए आत्मज्ञानके द्वारा अनादि अज्ञान(मैं दुबलाहूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि मिथ्या भावना)रूप ग्रहको मिटाकर अपने अनन्त ईश्वर–पदको प्राप्त होते हैं, उन साधुओंकी एकमात्र गति ईश्वर कृष्णचन्द्रको कैसे मोह होसकता है? अतएव उक्त मुनियोंका मत कुछ भी न होनेके कारण निपट अग्राह्य है। महाराज! शाल्व, बलपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा। अमोघ पराक्रमवाले कृष्णचन्द्रने शत्रुके शस्त्रोंको मार्गमें ही काट काट कर निष्फल कर दिया और अनेक सुतीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुको घायल करके उसके कवच, धनुष और शिरकी रक्षा करनेवाले लोहेके टोपको काट डाला। तदनन्तर भगवान्‌की गदाके प्रहारसे शाल्वका सौभ विमान चूर्ण होकर समुद्रके जलमें गिर पड़ा। तब शाल्व उस विमानको छोड़कर पृथ्वीपर खड़ा होगया और गदा उठाकर वेगसे कृष्णचन्द्रकी ओर झपटा। श्रीकृष्णने अपने सामने दौड़कर आरहे शाल्वके गदायुक्त बाहुको

एक भल्ल बाणसे काट डाला एवं उसको मारनेके लिये प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रकाशमान अद्भुत सुदर्शन चक्र हाथमें लेकर सूर्यसहित उदयाचलके समान सुशोभित हुए। राजन्! इन्द्रने वज्रसे जैसे वृत्रासुरका शिर काटा था वैसेही हरिने उस चक्रसे महामायावी शाल्वका किरीट मुकुट और कुण्डलोंसे सुशोभित शिर उसी क्षण धड़से अलग कर दिया। यह देखकर शाल्वके सब साथी हाहाकार करनेलगे ॥ ३०–३६ ॥

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥
नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥
सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्रो रुपाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥

राजन्! वह पापी मारागया और सौभ विमान गदाके आघातसे चूर्ण होगया–यह देखकर स्वर्गवासी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए और नगाड़े बजातेहुए कृष्णचन्द्रपर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करनेलगे। इधर दन्तवक्र अपने मित्र शिशुपाल और शाल्वके मरनेका समाचार पाकर उनका बदला चुकाने और उनके ऋणसे उऋण होनेके लिये कुपित होकर द्वारकापुरीको चला ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितम अध्याय

तीर्थयात्रामें बलदेवजीके हाथसे सूतका वध

श्रीशुक उवाच–शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥
परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! महाबली दुर्मति दन्तवक्र, परलोकगत अपने मित्र शिशुपाल, शाल्व एवं पौण्ड्रककी भी मित्रताका बदला चुकानेके लिये क्रोध करके अकेले ही पैदल झपटता हुआ कृष्णके समीप आया। उसकी गतिके वेगसे पग-पगपर पृथ्वी कम्पायमान होती थी। उसको इसप्रकार गदा तानकर अपनी ओर आते देख, श्रीकृष्णजी शीघ्र रथसे फाँदकर पृथ्वीपर खड़े हो गये एवं जैसे सीमा सागरके वेगको रोकती है वैसे ही झपटकर आरहे शत्रुकी गतिको वहींपर रोक लिया। महामदान्ध कारूषपति दन्तवक्रने गदा तानकर मुकुन्दसे कहा कि "बड़ी बात! बड़ी बात! जो इससमय मैं तुझको पागया। कृष्ण! तू मेरे मामाका पुत्र और मेरे मित्रोंको मारनेवाला है एवं इससमय मुझ-

को भी मारनेके लिये उद्यत है। अतएव रे मन्द! मैं इस वज्रऐसी गदासे आज तुझको मारूँगा। हे अज्ञ! मित्रवत्सल मैं अपनेही शरीरसें उत्पन्न रोगके समान अहितकारी तुझ बन्धुरूप शत्रुको मारकर अपने परलोकगत मित्रोंका ऋण चुकाऊँगा"। जैसे अङ्कुशके प्रहारसे गजराजको पीड़ा पहुँचाई जाती है उसप्रकार उक्त रूखे वाक्योंसे कृष्णको पीड़ित करके दुष्ट दन्तवक्रने अपनी गदा उनके मस्तकमें मारी एवं प्रहार करके सिंहके समान गर्जने लगा। युद्धस्थलमें गदाकी चोट खाकर भी यदुश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र तनिक नहीं विचलित हुए। कृष्णचन्द्रने भी अपनी कौमोदकी गदा शत्रुके वक्षःस्थलमें मारी। उस प्रचण्ड गदाकी चोटसे दन्तवक्रका हृदय फट गया और मुखसे रुधिर गिरनेलगा। उसके केश अस्तव्यस्त हो गये, हाथ–पैर फैल गये और उसका शरीर प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १–९ ॥ हे राजन्! जैसे शिशुपालके शरीरसे निकली हुई ज्योति कृष्णके चरणोंमें लीन हो गई थी वैसे ही दन्तवक्रके शरीरसे भी अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकलकर सब देखनेवालोंके सामने कृष्णचन्द्रमें लीन हो गई। दन्तवक्रका भाई विदूरथ भाईके शोकसे पीड़ित होकर कृष्णको मारनेकी अभिलाषासे ढाल तर्वार लेकर बड़ी बड़ी साँसें लेता दौड़ा हुआ आया। महाराज! श्रीकृष्णने तीक्ष्ण धारावाले चक्रसे, उस झपटकर आरहे विदूरथका भी किरीट-कुण्डल युक्त शिर काट डाला। इसप्रकार सौभविमानसहित शाल्व और अनुजसहित दन्तवक्र आदि दुर्जय वीरोंको नष्ट करके, यादवोंसे घिरेहुए कृष्णचन्द्रने भलीभाँति सजाई गई अपनी द्वारका पुरीसें प्रवेश किया। उस समय देवता और मनुष्यगण उनकी स्तुति करनेलगे। मुनिगण, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, अप्सरोंके झुण्ड, पितृगण, यक्ष, किन्नर और चारणगण उनके प्रशंसनीय चरित्रको गानेलगे एवं देवगण उनके ऊपर परम आनन्दसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे। हे राजेन्द्र! योगेश्वरोंके भी ईश्वर जगदीश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक इन दुर्जय और महाबली वीरोंको परास्त किया–यह कुछ आश्चर्य नहीं है। किन्तु कुछ पशुओंके समान अज्ञानसे अन्धे लोग कहते हैं कि वही कृष्णचन्द्र जरासंधसे हार गये थे ॥१०–१६॥ राजन्! एक समय बलभद्रजीने सुना कि कौरवों और पाण्डवोंमें परस्पर युद्ध होनेका उद्योग हो रहा है। यह जानकर भगवान् बलभद्रजी तीर्थयात्राके बहानेसे टलकर प्रभासक्षेत्रको चल गये। दुर्योधन उनका शिष्य था एवं पाण्डव भी अपने बन्धु थे, अतएव उन्होने किसी ओरसे युद्धमें सम्मिलित होना उचित नहीं समझा। बलभद्रजीने प्रभासमें जाकर स्नान किया और देव, ऋषि, पितर तथा मनुष्योंको तृप्त व सन्तुष्ट किया। वहाँसे वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसहित विपरीतवाहिनी सरस्वतीके तटपर गये। वहाँसे क्रमशः पृथूदक, बिन्दुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन नद, विशाला नदी, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, पूर्ववाहिनी सरस्वती

एवं यमुना व गङ्गाके परवर्ती सब तीर्थोंमें होतेहुए नैमिषारण्य क्षेत्रमें पहुँचे। सुदीर्घ समयके लिये दीक्षा लेकर महायज्ञमें प्रवृत्त मुनियोंने बलभद्रजीको देख उठकर विधिपूर्वक उनका अभिनन्दन और प्रणाम करके उचित रीतिसे पूजन किया ॥ १७—२१ ॥ ब्राह्मणगण-सहित भलीभाँति पूजित बलभद्रजीने मुनियोंके दिये आसनपर बैठकर देखा कि महर्षि वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षण व्यासासनपर बैठेहुए हैं। रोमहर्षणका जन्म सूतजातिमें हुआ था। बलभद्रजीने देखा कि वह उनको देखकर न खड़ेहुए, न प्रणाम किया, न हाथ जोड़े। ब्राह्मणोंसे भी ऊँचे आसनपर इसप्रकार ढिठाईके साथ बैठेहुए सूतको देखकर बलभद्रजीको अपार क्रोध हुआ। कुपित होकर बलभद्रने कहा—"यह व्यक्ति प्रतिलोमज होकर भी इन सब धर्मपालक ब्राह्मणोंसे और हमसे ऊँचे आसनपर कैसे बैठा हुआ है? यह दुर्मति मारडालने योग्य है। यह भगवान् वेदव्यासका शिष्य है, इसने उनसे अनेक इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र पढ़े हैं, तो भी इसमें शिष्टाचार और विनयका लेशमात्र नहीं है। यह अपनेको पण्डित मानकर वृथा घमण्डमें चूर हो रहा है। यह आत्मदमन नहीं करसका, अतएव नटोंके समान इसका बहुत पढ़ना गुण नहीं समझा जासकता, वह सब निष्फल है; क्योंकि यह शास्त्रोक्त मार्गपर स्वयं नहीं चलता। जो लोग केवल धर्मके चिह्नोंको धारण करते हैं, परन्तु धर्मका पालन नहीं करते वे अधिक पापी हैं। धर्मका ध्वंस करनेवाले ऐसे लोगोंको मारनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है" ॥ २२–२७ ॥ राजन्! भगवान् बलभद्र दुष्टोंके भी वध करनेका विचार छोड़ चुके थे, तथापि होनी तो टाले नहीं टलती! उन्होने पूर्वोक्त वाक्य कहकर हाथमें स्थित कुशके अग्रभागसे सूतका वध करडाला। यह देखकर मुनिगण हाहाकार करतेहुए अत्यन्त खिन्न हो संकर्षण देवसे बोले—"प्रभो! आपने यह अधर्म किया। हे यदुनन्दन! जबतक हमारा यह यज्ञका अनुष्ठान समाप्त न हो तबतकके लिये हमने इन सूतको ब्रह्मासन एवं शारीरिक कष्टसे रहित आयु भी दी थी। आपने अजानकीभाँति इनका वध करके ब्रह्मवधके समान पाप कर डाला। भगवन्! आप योगेश्वर हैं, वेद भी आपको अपने नियमके अनुकूल चलनेपर बाध्य नहीं कर सकते। तथापि हे लोकपावन! यदि आप अन्यके द्वारा प्रेरित न होकर, अन्य लोगोंको शिक्षा देनेके लिये स्वयं इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करें तो बहुत उत्तम होगा" ॥ २८–३२ ॥ भगवान् बलभद्रने कहा—"मैं लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये, अर्थात् उनको शिक्षा देनेके लिये इस हत्याका प्रायश्चित्त करूँगा। मुख्य पक्षमें प्रायश्चित्तके जो कुछ नियम हों उन्हे आप बतावें। हे मुनिवरो! इस सूतके लिये दीर्घ आयु, बल और इन्द्रियोंका शिथिल न होना आदि जो कुछ आप चाहें सो मैं अपनी योगमायाके बलसे सिद्ध कर दूँ" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

ऋषियोंने कहा—"हे राम ! हम यह चाहते हैं कि जिसमें आपका अस्त्र और विक्रम तथा मृत्युका पराक्रम वृथा न हो एवं हमारे वाक्य भी असत्य न हों वैसा ही आप करिये" ॥ ३५ ॥ बलभद्रजीने कहा—"वेदमें कहा है कि जीव आप ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। अतएव इसका पुत्र उग्रश्रवा नाम सूत इसके आसनपर बैठकर आप लोगोंको पुराण आदि धर्मग्रन्थ सुनावेगा एवं आप लोगोंके कथनानुसार बहुत आयु, बल एवं इन्द्रियसम्बन्धी स्वस्थता भी उसको प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥ हे श्रेष्ठ मुनिगण ! अब आप लोगोंकी और क्या कामना है, कहिये, मैं उसे पूर्ण करूँ। हे ज्ञानियो ! और मेरे अज्ञानकृत ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त क्या है, उसेभी विचार करके बतलाइये" ॥ ३७ ॥ ऋषियोंने कहा—"हे देव ! इल्वलका पुत्र बल्वल नाम एक घोर दानव प्रत्येक पर्वमें आकर हमारे यज्ञको दूषित करता है ॥३८॥ नाथ ! वह दानव पीव, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांस आदि अशुद्ध पदार्थोंकी वर्षा करके हमारे यज्ञमें विघ्न करता है। उसको आप मारिये। यही आप मानो हमारी परम सेवा की होगी ॥ ३९ ॥

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥
चरित्वा द्वादशान्मासाँस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ४० ॥

भगवन् ! तदनन्तर आप बारह महीनेतक काम-क्रोध आदिसे रहित हो, कष्ट सहतेहुए भारतवर्षमें घूमकर तीर्थोंमें स्नान-दान आदि करिये; यही आपके लिये ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त होगा ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितम अध्याय

बलदेवजीकी तीर्थयात्रा

श्रीशुक उवाच—ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः ॥
भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर पर्व-समयमें धूलकी वर्षा करतीहुई भयानक प्रचण्ड आँधी चलनेलगी और चारो ओर घोर दुर्गन्ध उठी। उसके उपरान्त यज्ञशालामें पीब आदि अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा होनेलगी और थोड़ी देरमें वही भयंकर बल्वल दानव त्रिशूल हाथमें लिये देख पड़ा ॥ १ ॥ २ ॥ उस दानवका सुदीर्घ शरीर अञ्जनराशिके समान अत्यन्त काला था, उसकी शिखा और श्मश्रुके बाल तपेहुए ताँबेके तुल्य लाल लाल थे, टेढ़ी टेढ़ी भौंहोंसे भयानक

उसका मुख बड़ी बड़ी दाढ़ोंसे और भी कराल हो रहा था ॥ ३ ॥ उसको देखकर बलरामने अपने शत्रुदलदलन मुसलको और दैत्यदलदमन हलको याद किया। याद करते ही वे दोनो शस्त्र तुरन्त आकर उपस्थित हुए ॥ ४ ॥ बलभद्रने क्रोध करके उस ब्राह्मणविरोधी आकाशचारी दैत्यको हलसे अपने समीप खींचकर उसके शिरपर मुसल मारा मुसलके प्रहारसे उसका मस्तक चूर्ण होगया और वह मुखसे रुधिर उगलता हुआ आर्त नाद करके प्राणहीन हो वज्राहत, धातुप्रवाहसे अरुणवर्ण पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥५॥६॥ यह देखकर वे सब महाभाग ऋषिगण परम प्रसन्न हो बलभद्रकी स्तुति व प्रशंसा करतेहुए उनको अमोघ आशीर्वाद देनेलगे। देवतोंने जैसे वृत्रासुरवधके उपरान्त इन्द्रका अभिषेक किया था उसी प्रकार ऋषियोंने दानववधके उपरान्त बलभद्रका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ एवं उनको कभी न मुरझानेवाले कमलके फूलोंकी बनीहुई, लक्ष्मीकी निवासभूमि वैजयन्ती माला दी, तथा दिव्य वस्त्र, उत्तरीय और सब दिव्य आभूषण दिये ॥८॥ तदनन्तर ऋषियोंसे आज्ञा लेकर बलभद्रजीने ब्राह्मणोंसहित कौशिकी नदीमें जाकर स्नान किया। वहाँसे चलकर उस सरोवरमें गये जहाँसे सरयू नदी निकली है ॥ ९ ॥ अनुलोमक्रमसे सरयूमें स्नानकर प्रयागराजमें पहुँचे। वहाँ स्नान तथा देवता आदिका तर्पण करके पुलह ऋषिके आश्रमको गये। वहाँसे क्रमशः गोमती, गण्डकी, विपाशा नदी और शोण नदमें स्नान करतेहुए गया क्षेत्रमें पहुँचे। गयामें पितृपूजन व पिण्डदान करके गङ्गासागर–सङ्गमको गये। वहाँ स्नान आदि करके महेन्द्राचलको गये। वहाँ परशुरामको देखकर व प्रणाम कर सप्तगोदावरी, वेणा, पम्पा, भीमरथी आदि तीर्थोंमें होतेहुए शिवके निवासस्थान श्रीशैल पर्वतपर गये। वहाँ शिवके और स्कन्ददेवके दर्शन करके द्राविड़ देशमें अवस्थित वेंकट पर्वतको गये। प्रभु बलभद्र वहाँसे कामकोष्टी, काञ्चीपुरी, श्रेष्ठ नदी कावेरी होतेहुए श्रीरङ्गनाथ महापवित्र स्थानमें पहुँचे; जहाँ हरिभगवान् नित्य निवास करते हैं। फिर वहाँसे हरिके क्षेत्र ऋषभपर्वत और दक्षिण–मथुराको देखतेहुए महापातकनाशन सेतुबन्ध तीर्थको गये। वहाँपर हलायुध बलभद्रने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दस हजार गौवें दीं। वहाँसे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदीमें स्नान करतेहुए मलय पर्वतको गये। बलभद्रजी, वहाँ बैठेहुए अगस्त्य मुनिको अभिवादन व नमस्कार करके और उनसे आशीर्वाद व जानेकी अनुमति लेकर दक्षिणसमुद्रको गये और वहाँ कन्या नाम दुर्गा देवीके दर्शन किये ॥१०–१७॥ हे राजेन्द्र ! वहाँसे फाल्गुन नाम पवित्र क्षेत्रमें पहुँचकर, जहाँ विष्णु भगवान् नित्य निवास करते हैं उस पंचाप्सरसनाम परम पवित्र उत्तम सरोवरमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको दस हजार गौवें दीं ॥१८॥ वहाँसे भगवान् बलभद्रजी केरल, त्रिगर्त आदि देशोंमें होतेहुए गोकर्ण नाम शिवके क्षेत्रमें पहुँचे; जहाँ शङ्करदेव सदा निवास करते हैं ॥१९॥

द्वीपनिवासिनी आर्या देवीके दर्शन करतेहुए बलभद्रजी सूर्यारक क्षेत्रको गये और वहाँसे तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या नाम नदियोंमें स्नान करतेहुए दण्डकारण्य होकर माहिष्मती पुरीके पास वह रही नर्मदा नदीके तटपर पहुँचे। वहाँसे मनु-तीर्थमें स्नान करतेहुए फिर लौटकर प्रभास क्षेत्रमें आये ॥ २० ॥ २१ ॥ प्रभास क्षेत्रमें ब्राह्मण लोगोंके मुखसे कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सब क्षत्रिय वीरोंके विनाशकी चर्चा सुनकर भगवान् बलभद्रने जाना कि पृथ्वीका भार उतर गया ॥२२॥ उस समय भीमसेन और दुर्योधन, दोनो वीर युद्धभूमिमें गदायुद्ध कर रहे थे। यदुनन्दन बलभद्र उनके युद्धको रोकनेकी इच्छासे उस स्थानपर गये ॥ २३ ॥ उनको देखकर युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, अर्जुन एवं श्रीकृष्णने प्रणाम किया, एवं 'यह क्या कहनेके लिये यहाँ आये हैं'–यह सोचकर वे सब चुपचाप उनके मुखको निहारनेलगे ॥ २४ ॥ बलभद्रजीने देखा कि भीमसेन और दुर्योधन, दोनो वीर गदा हाथमें लिये विजयकी इच्छासे भाँति भाँति के पैंतरे बदल रहे हैं ॥ २५ ॥ यह देखकर बलदेवने उनसे कहा कि "हे राजन्! और हे भीमसेन! तुम दोनो बल और वीरतामें समान हो। मेरी समझमें एक (दुर्योधन) शिक्षा (दावपेंच) में अधिक हैं और एक (भीमसेन) बल (दम) में अधिक है। तुम दोनो वीर्यमें समान हो, अतएव इस युद्धमें एककी जीत या एककी हार नहीं दिखाई देती। बस, तुम यह समझकर इस निष्फल युद्धको रोक दो" ॥ २६ ॥ २७ ॥ राजन्! भीमसेन और दुर्योधनमें चिरकालसे शत्रुता चली आरही थी, परस्पर कहेहुए कटुवचनों और कियेहुए अपकारोंको स्मरण करके वे दोनो एकएकके प्राण लेनेपर उतारू थे; अतएव उन्होने बलभद्रजीके यथार्थ वचनोंपर ध्यान नहीं दिया और लड़ते ही रहे ॥२८॥ तब 'अदृष्ट बड़ा ही प्रबल है'–यह समझकर बलभद्रजी वहाँसे चलदिये। बलराम भगवान् वहाँसे द्वारका पुरीको गये और सजातीय बन्धु उग्रसेन आदिसे मिलकर उनको प्रसन्न किया। प्रभु बलदेव द्वारकाधामसे चलकर फिर नैमिषारण्य क्षेत्रको गये। सम्पूर्ण प्रकारकी भेद-भावना छोड़कर शान्तस्वरूप हो रहे यज्ञके अङ्गस्वरूप बलभद्रजीको उस पुण्यभूमिमें ऋषियोंने आनन्दपूर्वक विधिसहित अनेक यज्ञ कराये ॥२९॥३०॥ भगवान् बलभद्रने भी उनको विशुद्ध ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे मुनिगण इस विश्वको आत्मामें एवं आत्माको विश्वमात्रमें अवस्थित जानकर कृतार्थ हुए ॥३१॥ बलभद्रजीने जातिवाले, बन्धु, और सम्पूर्ण सुहृद् जनोंके साथ अपनी पत्नियोंसहित यज्ञके अन्तमें अवभृथस्नान किया एवं सुन्दर वस्त्र व उत्तम माला पहनकर चाँदनीसहित पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए ॥ ३२ ॥ हे राजन्! मायामानवरूप, महाबली, अप्रमेय, अनन्त बलदेवजीने इसप्रकारके अनेकानेक पवित्र कर्म किये हैं ॥ ३३ ॥

योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥
सायंप्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३४ ॥

जो कोई प्रातःकाल और सन्ध्याके समय अद्भुत कर्म करनेवाले अनन्त बलरामके सब कार्योंको स्मरण करते हैं उनपर विष्णु भगवान् परम प्रसन्न होते हैं ॥३४॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितम अध्याय

सुदामाचरित्र

राजोवाच—भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ॥
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे भगवन्! हे प्रभो! महात्मा, अनन्तवीर्यशाली मुकुन्दके और और सब चरित्र भी मैं सुनना चाहता हूँ। ब्रह्मन्! उत्तमश्लोक भगवान्की सत्कथाओंको एक वार सुनकर कौन सार-असारके विवेकसे युक्त पुरुष फिर उनके सुननेकी इच्छा न करेगा? अवश्य ही अभिलापाके बाण उसके हृदयको उन कथाओंके सुननेके लिये वारंवार उत्कण्ठित करेंगे ॥ १ ॥ २ ॥ भगवन्! जिससे हरिके गुणोंका वर्णन किया जाय वही वाणी सफल है। जिनसे हरिकी सेवा और टहल की जाय वे ही हाथ सफल हैं। जिससे हरिको चराचर जगत्में व्याप्त समझकर उनका मनन किया जाय वही मन सफल है। जिनसे हरिकी पतितपावनी पवित्र कथाएँ सुनी जायँ वे ही कान सफल हैं ॥३॥ जिससे हरिके चर और अचर—दोनो रूपोंको प्रणाम किया जाय वही मस्तक सफल है। जिनसे हरिके चर और अचर—दोनो रूपोंका दर्शन किया जाय वे ही नेत्र सफल हैं और जिनसे विष्णुके एवं उनके भक्तोंके चरणोदकका सेवन किया जाय वे ही अङ्ग सफल हैं ॥४॥ सूतजी शौनक आदि ऋपियोंसे कहते हैं कि—विष्णुदत्त राजा परीक्षित्के यों पूछनेपर वेदव्यासतनय श्रीशुकदेवजी वासुदेव भगवान्में मन लगाकर बोले ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे राजेन्द्र! वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण कृष्णचन्द्रके लड़कपनके सखा थे। वह, इन्द्रियोंसे जिनका भोग किया जाता है उन विषयोंसे विरक्त, शान्त और जितेन्द्रिय थे। वह ब्राह्मण गृहस्थ थे। जो कुछ आपहीसे मिल जाता था उसीमें निर्वाह करते थे। वह स्वयं एक महामलिन फटेहुए वस्त्रका टुकड़ा पहने रहते थे और उनकी पतिव्रता स्त्री भी पतिके समान वैसा ही वस्त्र पहने रहती थी। नित्य भोजन न मिलनेके कारण

उनकी स्त्री भी उनके साथ भूखके असह्य कष्टको सहती थी। पति, सब भोगकी सामग्रीयोंको नहीं लासकता था, यहाँतक कि आवश्यक वस्त्र और भोजनका भी प्रबन्ध न करता था, अतएव वह पतिव्रता स्त्री सर्वदा अत्यन्त असह्य दुःख सहकर जीवनके दिन बिताती थी। भूखसे जिसका मुख सूख रहा है उस पतिव्रताने एक दिन डरसे काँपते काँपते पतिके निकट जाकर कहा कि "हे प्राणनाथ! मैंने सुना है की साक्षात् लक्ष्मीपति, ब्राह्मणहितकारी, शरणागतपालक, यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आपके सखा हैं। हे महाभाग! वह साधुओंकी परम गति हैं, आप उनके निकट जाइये। आप कुटुम्बी हैं, दरिद्र होनेके कारण कष्ट पा रहे हैं, यह देखकर वह आपको अवश्य ही बहुतसा धन देंगे। वह भोज-वृष्णि-अन्धकवंशी यादवोंके स्वामी इससमय द्वारका पुरीमें रहते हैं। नाथ! वह जगद्गुरु अपने चरणकमलोंको स्मरण करनेवालेको अपना शरीर भी दे डालनेमें संकोच नहीं करनेवाले हैं; तब अपने परमभक्त जो आप हैं उनको उनसे धन मिलनेमें क्या सन्देह है? प्रभो! यद्यपि आपको धनकी रत्तीभर भी चाह नहीं है, तथापि बिना धनके गृहस्थीका निर्वाह होना कठिन है; इसलिये मेरी समझमें आपका उनके पास जाना उचित और आवश्यक है"। इसप्रकार स्त्रीके वारंवार प्रार्थना करनेपर उन दरिद्र ब्राह्मणने भी सोचा कि वहाँ जानेमें और कुछ मिले या न मिले, परन्तु परमलाभ यही होगा कि श्रीकृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे। यह सोचकर विप्रवर सुदामाने कृष्णके निकट जानेका निश्चय कर लिया और फिर स्त्रीसे कहा कि "हे कल्याणी! यदि कुछ कृष्णचन्द्रको भेंट देनेयोग्य सामग्री घरमें हो तो लाओ, जिसको लेकर मैं प्रभुके निकट जाऊँ"। घरमें तो कुछ था नहीं, अतएव सुदामाकी स्त्री परोससे चार मुट्ठी चाँवल माँग लाई और उनको एक मैले और फटे कपड़ेके टुकड़ेमें बाँधकर कृष्णको भेंट देनेके लिये पतिको दिया। उस चाँवलोंकी पुटकियाको लेकर विप्रवर द्वारकापुरीको चले। "कृष्णभगवान्के दर्शन मुझको किसप्रकार प्राप्त होंगे?-राहमें यही सोचतेहुए सुदामाजी द्वारकापुरीमें पहुँचे ॥ ६-१५ ॥ हे राजेन्द्र! सुदामा ब्राह्मण तीन रक्षक सैनिकोंकी चौकियों और ड्यौढ़ियोंको बे-रोक-टोक नाँघकर भगवान्के अन्तःपुरमें पहुँचे। तदनन्तर जिनमें बिना आज्ञा वृष्णि और अन्धकवंशी यादव भी नहीं जासकते उन भगवान् कृष्णचन्द्रकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके महलोंमेंसे एक महलमें सुदामाजीने प्रवेश किया। वहाँ पहुँचतेही सुदामाजी ऐसे प्रसन्न हुए मानो उनको ब्रह्मानन्द प्राप्त हो गया। उससमय श्रीकृष्णचन्द्र उस महलमें प्रियाके पलँगपर लेटेहुए थे, सो विप्रवर सुदामाको दूरहीसे आते देखकर उठ बैठे और प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़, दोनो हाथ फैलाकर प्रियसखा सुदामाको हृदयसे लगा लिया। प्रियसखा ब्राह्मणके अङ्गसङ्गसे भगवान्को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई और आनन्दके

कारण उनके नेत्रकमलोंसे प्रेमके आँसू बहनेलगे । राजन् ! तदनन्तर अच्युतने प्रियबन्धु सुदामाको आदरसहित लेजाकर अपने पलँगपर बैठाया एवं आप ही पूजनकी सामग्री लाकर, अपने हाथसे उनके चरणोंको धोकर, उस जलको, स्वयं त्रिलोकपावन होकर भी, अपने शिरपर धारण किया । फिर प्रियमित्रके शरीरमें दिव्यगन्धयुक्त चन्दन, अगुरु और कुङ्कुम लगाया एवं सुगन्धित धूप, दीप, इत्यादिसे पूजन करके दिव्य भोजन कराये और तदनन्तर पान और एक दुधार गऊ देकर कुशल पूछी । ब्राह्मण सुदामाका शरीर अत्यन्त मलिन और क्षीण था, देहभरमें ठौर ठौर नसें देख पड़ती थीं और वह एक फटा और मैला वस्त्र पहने थे। राजन् ! साक्षात् लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणीदेवी सखियोंसहित रत्नदण्डयुक्त व्यजन हाथमें लिये उन्ही दरिद्रवेष ब्राह्मणकी सेवा करनेलगीं । पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक एक दरिद्र भिक्षुककी पूजा करते देख अन्तःपुरमें रहनेवाले सब लोग अत्यन्त विस्मित होकर परस्पर कहनेलगे कि "अहो ! लक्ष्मीहीन, जनसमाजमें मान न पानेवाले इस अधम, अवधूत, भिक्षुकने कौन ऐसा पुण्य किया है जो तीनो लोकोंके गुरु साक्षात् लक्ष्मीपतिने पलँगपर बैठीहुई लक्ष्मीको छोड़, बड़े भाईके समान आदरसहित गलेसे लगाकर इसका पूजन और सत्कार किया !" ॥ १६–२६ ॥

हे राजन् ! फिर भगवान् कृष्णचन्द्र ब्राह्मण सुदामाका हाथ हाथमें लेकर उस समयकी मनोहर बातें करनेलगे, जिससमय दोनो जने गुरुके यहाँ रहकर एकसाथ विद्याध्ययन करते थे । **भगवान्ने पूछा**—"हे धर्मज्ञ विप्रवर ! गुरुदक्षिणा देनेके उपरान्त गुरुके घरसे लौटकर तुमने अपने योग्य स्त्रीसे विवाह किया या नहीं ? मुझे विदित है कि सांसारिक भोगोंमें तुम्हारी रुचि नहीं है, अतएव तुम धनके उपार्जनकी चेष्टा भी नहीं करते । मित्र ! इस संसारमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो विषयभोगमें आसक्त न हो ईश्वरकी मायाके द्वारा रचित विषय-वासनाओंको तज देते हैं और जैसे मैं केवल अन्य लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये (ईश्वर होकर भी) कर्म करता हूँ उसप्रकार कर्म करते हैं । ब्रह्मन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जहाँ रहकर, गुरुसे सब जाननेयोग्य विषयोंको पढ़कर, अज्ञानरूप अन्धकारको नाँघकर, ज्ञानके प्रकाशमें पहुँचते हैं उस गुरुकुलमें हम और तुम साथ ही रहे थे । भला कभी उस समयको स्मरण करते हो ? मित्र ! जिसके वीर्यसे जन्म होता है वह पिता प्रथम गुरु है और उससे श्रेष्ठ दूसरा गुरु वह है जो यज्ञोपवीत-संस्कारमें गायत्रीका उपदेश करके वेद पढ़ाता है और वेदविहित वर्णाश्रमसम्बन्धी सत्कर्मोंकी शिक्षा देता है तथा सब वर्ण और आश्रम-वाले व्यक्तियोंका सबसे अधिक माननीय तीसरा गुरु मैं हूँ; अन्तःकरणमें अव-स्थित मैं सबको विशुद्ध ज्ञानका उपदेश करता हूँ । ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीपर चारो वर्ण और चारो आश्रमोंके लोगोंमें वे ही स्वार्थ समझनेमें प्रवीण हैं जो मुझ गुरुके

उपदेश द्वारा सहजमें सुखपूर्वक अपार संसारसागरके पार पहुँच जाते हैं। मैं, जितना गुरुकी सेवा करनेसे सन्तुष्ट होता हूँ उतना किसी भी वर्णाश्रमधर्मके पालनसे नहीं सन्तुष्ट होता ॥ २७–३४ ॥ मित्र! वह घटना तो तुमको न भूली होगी? जब हम तुम गुरुके यहाँ रहकर एक-साथ विद्या पढ़ते थे। एक दिन हम और तुम गुरुपत्नीकी आज्ञासे लकड़ी लेनेके लिये महावनको गये। उस-समय वर्षाऋतु नहीं थी, परन्तु अकस्मात् प्रचण्ड आँधी चलनेलगी, मेघोंने आकाशमण्डलको घेर लिया एवं बड़े वेगसे जल बरसनेलगा। बीच बीचमें वार वार होरही विजलीकी घोर कठोर कड़कड़ाहट मनमें भय उत्पन्न करनेलगी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इतनेमें सूर्य भी अस्त होगये और दशो दिशाओंमें महा अन्धकार छागया। जहाँ पृथ्वी नीची थी वहाँ जल भर गया, जिससे ऊँचा नीचा कुछ भी न जान पड़ता था। उससमय राह चलना अत्यन्त कठिन था। प्रचण्ड वायुके झोंके और जलकी बौछारसे हमको अत्यन्त कष्ट होनेलगा। हमको यह नहीं जान पड़ता था कि हम किस दिशाको जारहे हैं। हम और तुम शिरपर लकड़ीके गट्ठे धरे, एकएकका हाथ पकड़े, उस जलपूर्ण वनमें रातभर इधरसे उधर भटकते और क्लेश सहते रहे। सूर्योदय होनेमें कुछ ही देर थी, उससमय हमको ढूँढते ढूँढते हमारे आचार्य गुरु सान्दीपिनिजी वनमें पहुँचे–और हमको इसप्रकार वनमें भटकते और कष्ट सहते देखकर दयापूर्वक कहने लगे–"अहो! पुत्रो! यह आत्मा ही सब प्राणियोंको परम प्रिय होता है। तुम उस प्रिय आत्माको तुच्छ और मुझको श्रेष्ठ समझकर मेरेलिये ऐसे घोर कष्ट और दुःखको सह रहे हो! शुद्ध भावसे सर्वार्थसाधक शरीरतक अर्पण करदेनेसे बढ़कर और क्या गुरुकी सेवा होसकती है? सत्-शिष्य इससे बढ़कर गुरुकी सेवा नहीं कर सकते। हे मेरे प्रिय शिष्यो! मैं तुम्हारे इस कार्यसे तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सब सब मनोरथ मेरे आशीर्वादसे पूर्ण हों और जो तुमने वेद आदि शास्त्र मुझसे पढ़े हैं उनका सारांश (ज्ञान) इसलोक और परलोकमें भी कभी तुमको विस्मृत न होगा" ॥ ३७–४२ ॥ ब्रह्मन्! इसप्रकार गुरुकुलमें रहनेके समय उस हमारे विद्यार्थी-जीवनमें जो अनेक घटनाएँ हुई हैं उनको कदाचित् आप न भूले होंगे? मित्र! गुरुकी कृपासेही मनुष्य शान्तिको प्राप्त होकर पूर्णमनोरथ होते हैं" ॥ ४३ ॥ भगवान्‌के मधुर मनोहर वचन सुनकर सुदामाने कहा–"हे देवदेव! हे जगद्गुरो! आप सत्यसंकल्प हैं; भाग्यवश गुरुकुलमें आपके सहवासको प्राप्त होकर मैं कृतार्थ हुआ। नाथ! आपकी कृपासे मुझको कोई कामना नहीं है; सब सुसम्पन्न है ॥ ४४ ॥

यस्य च्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभोः ॥
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥ ४५ ॥

प्रभो ! सम्पूर्ण मङ्गलोंकी उत्पत्तिका आकर वेदमय ब्रह्म आपकी मूर्ति है। स्वामिन् ! आपका गुरुकुलमें रहकर विद्या पढ़ना अत्यन्त विडम्बनाकी बात अथवा लोकाचरणमात्र है" ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितम अध्याय

सुदामाको महाऐश्वर्य मिलना

श्रीशुक उवाच—स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः ॥
सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! विप्रवर सुदामासे इसप्रकार बातें करके सब प्राणियोंके अन्तर्यामी सर्वज्ञ हरिने मन्द मन्द मुसकाकर फिर उनसे यों कहा। ब्राह्मणहितकारी, साधुओंकी एकमात्र गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने प्रिय मित्रकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर हँसतेहुए कहा कि "ब्रह्मन् ! तुम घरसे मेरेलिये क्या उपायन (भेंटकी सामग्री) लाये हो ? भक्तोंकी प्रेमपूर्वक लाईगई अणुमात्र उपहारकी सामग्रीको मैं बहुत मानता हूँ; क्यों कि मैं प्रेमका भूखा हूँ। किन्तु अभक्तके द्वारा अर्पित बहुत सी सामग्री भी मुझको सन्तुष्ट नहींकर सकती। मित्र ! अवकाशके अनुसार शुद्धचित्त हो भक्तिपूर्वक अर्पित पत्र, पुष्प, फल और जलको भी मैं स्वीकृत करता हूँ और सन्तुष्ट होता हूँ"। राजन् ! भगवान्के इसप्रकार कहनेपर भी ब्राह्मण सुदामा साक्षात् लक्ष्मीके पतिको लज्जाके मारे वह थोड़ेसे चाँवलोंकी पुटकी न देसके। सुदामाने शिर झुका लिया और चाँवलोंकी पुटकी न दी, तब सब प्राणियोंके अन्तर्यामी हरि, अपने निकट ब्राह्मणके आनेका कारण समझकर विचारनेलगे कि यह मेरे निष्काम भक्त और प्रिय सखा हैं, इन्होने लक्ष्मीकी कामनासे अर्थात् धनकी अभिलाषासे कभी पहले मेरा भजन नहीं किया; किन्तु इससमय अपनी पतिव्रता प्रियाकी प्रार्थनासे मेरे पास आये हैं। अतएव मैं इनको वह सम्पत्ति दूँ जो देवतोंको भी दुर्लभ है"। यों विचार कृष्णचन्द्रने "यह क्या है ?" कहकर जल्दीसे ब्राह्मणकी बगलमें दबी हुई चाँवलोंकी पुटकी, सुदामाने लज्जाके मारे वस्त्रसे छिपा लिया था, तिसको पकड़कर खींच ली और "हे मित्र ! यही तो मुझको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाली भेंटकी सामग्री है। ये चाँवल मुझको और सम्पूर्ण जगत्को (क्यों कि मैं विश्वव्यापक हूँ) तृप्त करदेंगे"—यों कहतेहुए एक मुट्ठी चाँवल फाँककर और मुट्ठी भरी। तब पास ही बैठी हुई हरिके चरणकमलोंकी

किङ्करी, अनन्याश्रया लक्ष्मी रुक्मिणीने परब्रह्म यदुनन्दनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि "हे विश्वरूप! बस कीजिये। आपकी इतनी ही प्रसन्नता, मनुष्योंकी आत्यन्तिक श्रीवृद्धिके लिये यथेष्ट पर्याप्त है (अर्थात् मेरे कृपाकटाक्षसे लोगोंको मिलनेवाली इसलोक और परलोककी सब प्रकारकी सम्पत्ति अथवा ऐश्वर्य, इस ब्राह्मणको इतने ही चाँवलोंसे प्राप्त हो गया; अबकी और चाँवल फाँककर क्या आप मुझे भी दे डालोगे?)" ॥ १–११ ॥ राजन्! भोजन आदिके उपरान्त सुदामाजीने वह रात्रि अच्युतके ही मन्दिरमें सुखपूर्वक विताई। वहाँ सुदामाजीको ऐसा सुख मिला कि वह अपनेको स्वर्गमें बैठा हुआ समझनेलगे ॥ १२ ॥ प्रातःकाल होनेपर सुदामाजी अपने घरको चले। विश्वपिता, स्वानन्दपूर्ण श्रीकृष्णजी कुछ दूरतक साथ साथ गये और प्रणाम तथा विनीत वचनोंसे प्रसन्न करके प्रिय मित्रको विदा किया ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने आपसे कुछ भी धन नहीं दिया और सुदामाजीने भी उनसे नहीं माँगा। सुदामाजीको महात्मा कृष्णचन्द्रके दर्शन पाकर परम आनन्द हुआ और साथही अपनी कृपणता (धनकी लालसा) पर बड़ी लज्जा लगी ॥ १४ ॥ घर जातेसमय राहमें ब्रह्मण सुदामा मन-ही-मन कहनेलगे कि "अहो! मैंने ब्रह्मण्यदेव भगवान्‌की ब्राह्मणभक्ति भलीभाँति देखी। देखो, उनके वक्षःस्थलमें साक्षात् लक्ष्मी निवास करती हैं, तथापि उन्होने मुझ महादरिद्रको हृदयसे लगालिया। कहाँ मैं नीच दरिद्र! और कहाँ लक्ष्मीके पति श्रीकृष्णचन्द्र! तथापि मुझे ब्राह्मण समझकर उन्होने गलेसे लगालिया और जैसे बड़े भाईका आदर किया जाता है उसप्रकार अपनी प्रियाके पलँगपर ले जाकर बैठाया और मेरी राह चलनेकी थकावट दूर करनेके लिये राजरानी साक्षात् लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणीजी चँवर डुलानेलगीं। जैसे भक्तिपूर्वक इष्टदेवका पूजन किया जाता है वैसे विप्रदेव हरिने अपने हाथसे मेरा पूजन किया और पैर दवाये, परम सेवा की! ॥ १५—१८ ॥ उन हरिके चरणोंकी सेवा, मनुष्योंको स्वर्ग, अपवर्ग, ऐहलौकिक महासम्पत्ति एवं सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाली है। तथापि अवश्यही 'यह निर्धन ब्राह्मण धन पानेसे अत्यन्त प्रमत्त होकर मुझको भूलजायगा'–ऐसा विचारकर परम कृपालु प्रभुने मुझको यथेष्ट धन नहीं दिया" ॥ १९ ॥ २० ॥ राजन्! ब्राह्मण सुदामा यों विचारतेहुए अपने भवनके निकट पहुँच गये। सुदामाने वहाँ पहुँचकर देखा कि जहाँ इनकी टूटीसी झोपड़ी थी उस स्थानपर सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाके समान प्रभायुक्त बड़े बड़े ऊँचे महल बनेहुए हैं। महलोंके आस-पास विचित्र उद्यान और उपवन उनकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। उन उपवनोंमें वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठेहुए भाँतिभाँतिके अनेक पक्षी, सुखपूर्वक कलोल करतेहुए मधुर बोलियोंसे मनको मोहित कररहे

हैं। नीचे सुन्दर सरोवरोंमें, जिनमें स्वच्छ जल लहरा रहा है, कुमद, कल्हार, उत्पल, पद्म आदि भाँति भाँतिके कमलकुसुम फूल रहे हैं। सुन्दर वस्त्र और अमूल्य भूषण पहनेहुए मृगनयनी स्त्रियाँ और पुरुष महलोंकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। यह देखकर सुदामाजी आश्चर्यके मारे अवाक् रह गये। "यह क्या? यह किसका भवन है? यदि यह मेरे रहनेका स्थान है तो इसप्रकार इसकी दशाका परिवर्तन कैसे हो गया? मेरी तो टूटीसी छोटीसी एक झोपड़ी थी; यह ऐसा समृद्धि-सम्पन्न महल कैसे बन गया?"—इसप्रकार सुदामाजी अपने मनमें तर्क-वितर्क करनेलगे। इतनेमें देव-देवियोंके समान प्रभासम्पन्न सुदामापुरवासी नर-नारियोंने आनन्दसहित गाते बजातेहुए वहाँ आकर आदरपूर्वक सुदामाजीको लिया और कहा कि "आप सोच विचार क्या कर रहे हैं? यह आपहीकी पुरी है, आइये, चलिये" ॥ २१–२४ ॥ पतिके आनेका समाचार पाकर सुदामाकी स्त्रीको अत्यन्त आनन्द हुआ। वह अत्यन्त आदरके साथ पतिको लेनेके लिये शीघ्रता-सहित घरसे बाहर निकली। सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहनेहुए सुदामाकी स्त्री साक्षात् लक्ष्मी जान पड़ती थी। पतिको देखकर प्रेमकी उत्कण्ठाके कारण उस पतिव्रताके दोनो नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहनेलगे। सुदामाकी स्त्रीने नेत्र मूँदकर मन-ही-मन प्रणाम करके पतिको हृदयसे लगा लिया। कण्ठमें सुवर्णपदक आदि पहनेहुए सुन्दरी दासियोंके बीचमें, पत्नीको, विमानपर स्थित देवीके समान सुशोभित देखकर सुदामाजी बहुतही विस्मित हुए। फिर उन्होंने महेन्द्र–भवनकी भाँति अनेक मणिमय स्तम्भोंकी पाँतिसे सुशोभित और अलौकिक समृद्धिसम्पन्न अपने भवनमें धर्मपत्नीके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश किया ॥ २५–२८ ॥ सुदामाने भवनमें प्रवेश करके देखा कि वहाँ हाथीदाँतके बड़े बड़े पलँग पड़े हैं, पलँगोंके सब सामान सुवर्णके बनेहुए हैं और उनपर सुकोमल बिछौने बिछे हैं; जो दुग्धके फेन ऐसे उज्वल हैं। जिनकी सुवर्णकी डंडियाँ हैं ऐसे चामर और व्यजन रक्खेहुए हैं। कोमल आस्तरणोंसे आच्छादित सुवर्णके आसन (चौकी और कुर्सियाँ) बैठनेके लिये रक्खेहुए हैं। मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित कान्तिमान् वितान तनेहुए हैं। स्वच्छ स्फटिकनिर्मित और महामरकत-मणिमय कुड्योंमें धरेहुए रत्नदीप सुशोभित हैं और ठौर ठौरपर उपस्थित परमसुन्दरी दासियाँ, अपने रूप और अलङ्कारोंकी कान्तिसे उस भवनकी शोभाको और भी बढ़ा रही हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अपने भवनमें इसप्रकारके वैभवोंकी वृद्धि देख, एकाग्रतापूर्वक उस अकस्मात् प्राप्त वैभवके मिलनेका कारण सोचतेहुए सुदामाजी आप-ही-आप अपने मनमें कहनेलगे कि "अवश्य यह महाऐश्वर्य-शाली यदुपतिका प्रसाद है। मुझ महाहतभाग्य, आजन्मदरिद्रको उनके कृपा-कटाक्षके सिवा इस अतुल सम्पत्तिके मिलनेका और कोई कारण नहीं देख पड़ता।

मेघके समान कामवर्षासे याचकोंको तृप्त करनेवाले मेरे सखा लक्ष्मीपति यदुपति याचकको विना बताये ही गुप्त रीतिसे बहुत कुछ देकर पूर्णमनोरथ कर देते हैं। वह भक्तोंके दियेहुए अति तुच्छ उपहारको भी अत्यन्त अधिक मानते और अपने अत्यन्त अधिक 'दानको भी' स्वल्प ही समझते हैं। देखो, मैं एक मुट्ठी चाँवल भेंटके लिये लेगया था, महात्मा यदुपतिने उन थोड़ेसे चाँवलोंको प्रीतिपूर्वक आदरसहित लेकर यह अतुल सम्पत्ति मुझको दी। मेरी वारंवार यही प्रार्थना है कि वारंवार जन्मजन्मांतरमें वही मेरे सुहृद् (प्रेमपात्र), सखा (हितका उपदेश करनेवाले) और मित्र (उपकारकर्ता) हों और मैं उनका अनन्यसेवक रहूँ। मैं इससम्पत्तिको नहीं चाहता; मुझको प्रत्येक जन्ममें उन्ही सर्वगुणसम्पन्न, महानुभावकी विशुद्ध भक्ति और उनके भक्तोंका लोकपावन श्रेष्ठ सङ्ग प्राप्त हो। स्वयं विवेकसम्पन्न अजन्मा भगवान्, धनके गर्वसे धनवानोंका अधःपात होना देखकर, अविवेकी होनेके कारण अदूरदर्शी अपने जनको विविध सम्पत्ति और राज्य आदि वैभव नहीं देते" ॥ ३२–३७ ॥ श्रीमान् सुदामा ब्राह्मण इसप्रकार निश्चय करके अनासक्त-भावसे स्त्री-सहित ईश्वरदत्त विषयोंका भोग करतेहुए ईश्वरके भजनमें मनको लगाकर भोगके द्वारा धीरे धीरे विषयोंके त्यागका अभ्यास करनेलगे ॥ ३८ ॥ हे राजन्! उन देवदेव यज्ञपति प्रभु हरिके, प्रभु और इष्टदेव ब्राह्मण हैं; अतएव ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ महाराज! भगवान्के सखा सुदामा ब्राह्मणने अपने भक्तोंके अधीन, अजित, भगवान् कृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शन पाकर उन्हीके ध्यानसे अहं-भावको मिटा दिया एवं थोड़े ही समयमें ब्रह्मज्ञानियोंकी गति उसी विशुद्ध धाम(ब्रह्मपद)को प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

राजन्! जो कोई मनुष्य, ब्रह्मण्यदेव भगवान्के इस ब्राह्मण-भक्ति-युक्त परम पवित्र चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनता है वह भगवद्भक्तिको प्राप्त होकर शीघ्रही कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

द्व्यशीतितम अध्याय

कुरुक्षेत्रयात्रा

श्रीशुक उवाच—अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥
सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! श्रीकृष्ण और बलभद्र सुखपूर्वक द्वारकापुरीमें रहकर प्रजाका पालन करनेलगे। इसी अवसरमें एक समय, जैसा कल्पके अन्तमें सूर्यका सर्वग्रास होजाता है वैसाही पूर्ण-सूर्यग्रहण आकर पड़ा ॥ १ ॥ सब लोगोंको उस सूर्यग्रहणका वृत्तान्त (ज्योतिषकी गणनाके द्वारा) पहलेहीसे विदित होगया, अतएव अनेकानेक मनुष्य, अनेकानेक देशोंसे पुण्य-सञ्चयके द्वारा कल्याणप्राप्तिकी कामनासे उस दुर्लभ पवित्र पर्वमें स्नान दान आदि सत्कर्म करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें अवस्थित स्यमन्त-पञ्चक नाम तीर्थको गये ॥ २ ॥ हे राजन्! श्रेष्ठ योद्धा वीरवर परशुरामजीने पृथ्वीको एक प्रकार क्षत्रियोंसे शून्य करके राजोंके रुधिर-प्रवाहसे जिन पाँच महा-सरोवरोंको भर दिया था उन्हीका नाम स्यमन्तपञ्चक पड़ा। भगवान् ईश्वरावतार परशुरामने स्वयं कर्मबन्धनसे मुक्त होकर भी लोकशिक्षाके प्रयोजनसे साधारण मनुष्योंकीभाँति राजहत्याका प्रायश्चित्त करनेके लिये उस पवित्र स्थानमें महायज्ञके द्वारा विष्णुभगवान्की आराधना की थी ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे भारत! उस बड़ी भारी तीर्थयात्रामें प्रायः सब भारतवासी स्त्री-पुरुष कुरुक्षेत्रको गये। महाराज! अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि (वृष्णि आदि वंशोंके यादवलोग भी अपने पापोंके नाशकी कामनासे कुरुक्षेत्रको चले। राजन्! गद, प्रद्युम्न, साम्ब, सुचन्द्र, शुक, सारण, सेनापति कृतवर्मा और भगवान् अनिरुद्धजी रक्षा करनेके लिये द्वारकामें ही रहे। राजन्! विद्याधरोंके समान प्रभाशाली सैनिक मनुष्योंको साथ लिये, विमानऐसे रथोंपर, चंचल जलकी लहरोंके समान वेगपूर्वक चलनेवाले घोड़ोंपर और मदमत्त गर्जनकारी गजराजोंपर चढ़े दिव्य पुष्पमाला, सुवर्णमाला, वस्त्र, कवच आदिसे अलंकृत, महातेजस्वी, सपत्नीक यादवगण, मार्गमें परम प्रभापूर्ण देवतोंके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ उन महाभाग्यशाली यादवोंने कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर सूर्यग्रहणके समय स्यमन्तपञ्चकमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको विधिवत् पूजनके उपरान्त वस्त्र, सुवर्णकी माला तथा सुवर्णकी मालाओंसे अलंकृत दुधार गौवें दीं एवं उस दिन निर्जल–निराहार व्रत किया। सूर्यको ग्रहणसे मुक्त देखकर फिर यादवोंने स्यमन्त-पञ्चकमें विधिपूर्वक स्नान किया और 'श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें हमारी अटल भक्ति हो' यह कामना करके सुन्दर स्वादिष्ट अन्न खिलाकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया

॥ ९ ॥ १० ॥ फिर श्रीकृष्णको ही अपना इष्टदेव माननेवाले यादवोंने उनसे आज्ञा लेकर आप भी भोजन किया और सुशीतल घनी छाँहवाले वृक्षोंके नीचे इच्छानुसार अपना अपना डेरा डाला ॥ ११ ॥ राजन्! उस अवसरपर वहाँ मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, कम्बोज, केकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त और केरल देशके-श्रीकृष्णके सुहृद् और सम्बन्धी नरेश एवं और और अनेकों कृष्णके अनुगत नरनाथगण आये थे। कृष्णके परम सुहृद् नन्द आदि गोपगण और कृष्णके देखनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित गोपियाँ भी वहाँ आई थीं। ये सब लोग कृष्णचन्द्रके दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुए और कृष्णचन्द्रने भी इनसे मिलकर प्रसन्नता प्रकट की। सब परस्पर एकएकके प्रीतिपात्र और सुहृद् थे, अतएव परस्पर दर्शनके द्वारा उत्पन्न आनन्दके वेगसे उनके मुखकमल खिल उठे। वे, परस्पर एकएकके गले लगकर, नयनोंसे आनन्दके आँसू बहातेहुए असीम अनीर्वचनीय आनन्दका अनुभव करनेलगे। सब स्त्रियाँ, मिलकर, परस्पर सौजन्यजन्य मन्द हाससे सुशोभित प्रेमपूर्ण दृष्टि डालतीहुई और परस्पर कुङ्कुममण्डित कुचमण्डलोंसे कुङ्कुममण्डित कुचमण्डलोंको मलतीहुई बाँहें पसारकर एकएकको गले लगाने और आनन्दके आँसू बहाने लगीं। तदनन्तर बड़े बूढ़ोंको प्रणाम करने और छोटोंके द्वारा स्वयं वन्दित होनेके उपरान्त, परस्पर स्वागतसहित कुशलप्रश्न करके सब लोग कृष्णचन्द्रकी चर्चा करनेलगे। भाई, भौजाई, भतीजे, भगिनियाँ, भगिनियोंके पुत्र, पिता-माता और कृष्णचन्द्रको देखकर एवं उनसे वार्तालाप करके देवी कुन्ती परम प्रसन्न हुईं और उनका सब शोक शान्त होगया ॥ १२-१८ ॥ कुन्तीजीने अपने भाई वसुदेवसे कहा कि "हे आर्य भाई! मैं अपनेको कृतार्थ नहीं समझती, क्योंकि आप लोग ऐसे श्रेष्ठ सत्स्वभाववाले होकर विपत्कालमें भी कभी हमारी खबरतक नहीं लेते। दैव जिसके प्रतिकूल होता है उसको सुहृद्, सजातीय, पुत्र, पिता-माता और भाई आदि स्वजन भी भूल जाते हैं" ॥ १९ ॥ २० ॥ वसुदेवने कहा—"हे अंब! हमको दोष देना वृथा है। बहन! मनुष्य दैवके हाथके खिलौने हैं। मनुष्य ईश्वराधीन है, ईश्वरके वशवर्ती होकर सब काम करता है। या यों कहो कि ईश्वर जो कराता है, वही मनुष्य करता है ॥ २१ ॥ कंसके द्वारा अत्यन्त सताये जानेपर हम लोग इधर उधर चारो ओर भाग गये थे। बहन! फिर उसी कालरूप ईश्वरने हम सबको इस स्थानपर एकत्र कर दिया अर्थात् मिला दिया है" ॥ २२ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सबलोग वसुदेव और उग्रसेन आदि यादवोंके द्वारा पूजित होकर सत्कारसे परम प्रसन्न हुए और कृष्णके दर्शनसे प्राप्त परम आनन्दके कारण उनके शरीरोंमें रोमाञ्च हो आया। हे राजेन्द्र! भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, पुत्रोंसहित देवी गान्धारी, सपत्नीक पाण्डवगण, कुन्ती, सञ्जय, विदुर,

कृपाचार्य, राजा कुन्ति, भोज, विराट्, भीष्मक, नरश्रेष्ठ नग्नजित्, पुरजित्, द्रुपद, शैब्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिलापति, मद्रपति, केकयनरेश, युधामन्यु, सुशर्मा और पुत्रसहित बाल्हीक आदि एवं युधिष्ठिरके अनुगत अन्यान्य राजा लोग, सपत्नीक श्रीकृष्णके श्रीनिकेतन शरीरकी शोभा और वैभवको देखकर बहुतही विस्मित हुए ॥ २३–२७ ॥ श्रीकृष्ण-बलभद्रने आदर-सत्कारसहित विधिपूर्वक उक्त सज्जन स्वजनोंकी पूजा की एवं वे लोग परम प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर, कृष्णके स्वजन जो यादव लोग हैं उनकी इस-प्रकार प्रशंसा करनेलगे कि "अहो! हे भोजपति उग्रसेनजी! पृथ्वीतलवासी मनुष्यमात्रमें आप लोगोंका ही जन्म सफल है क्योंकि बड़े बड़े योगियोंको भी जिनके दर्शन दुर्लभ हैं उन्ही कृष्णचन्द्रको आप लोग सदैव वारंवार देखतेरहते हो। श्रुतियोंद्वारा की गई जिनकी कीर्तिकी स्तुति और जिनके चरणकमलोंके प्रक्षालनका जल गङ्गा एवं जिनके शास्त्ररूप वाक्य इस विश्वको भलीभाँति सम्पूर्ण रूपसे पवित्र कर रहे हैं एवं जिनके चरणकमलोंकी महिमाके प्रभावसे, यह पृथ्वी, कालवश शक्ति(प्रभाव)के क्षीण होनेपर भी, हम लोगोंको सब वाञ्छित पदार्थ दे रही है वही साक्षात् श्रीविष्णु स्वयं मायामानवरूपसे तुमारे साथ दैहिक और वैवाहिक सम्बन्धमें बँधकर तुमको कृतार्थ कर रहे हैं। तुम नित्य उनको देखते हो साथ बैठते, खाते, पीते, सोते, चलते और बातचीत करते हो। आवागमनके मूलकारण गृहमें रहकर भी तुमलोग कृष्णकी कृपासे स्वर्ग (भोग) और अपवर्ग (मोक्ष) दोनोंको पाकर पूर्णकाम हो रहे हो" ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—वसुदेव आदि यादवोंके आनेकी खबर पाकर गोपगणसहित व्रजपति नन्दजी, श्रीकृष्ण–वसुदेव आदि प्रेमपात्र इष्ट, मित्र, स्वजनोंसे मिलनेके लिये उत्सुक होकर छकड़ोंपर उपहारकी अनेकानेक सामग्रियाँ लादकर वसुदेवके डेरेको गये। नन्दको देखकर बहुत दिनोंसे देखनेके लिये उत्कण्ठित यादवलोग परम प्रसन्न हुए। प्रिय प्राणोंको पाकर जैसे शरीर उठ खड़ा हो उसप्रकार यादवगण शीघ्रतासे उठ खड़े हुए और सबसे मिलने–भेंटनेलगे। कंसके द्वारा प्राप्त अपने क्लेशोंको और नन्दके द्वारा कियेगये अपने पुत्रोंकी रक्षा–रूप परम उपकारको याद करतेहुए वसुदेवजी नन्दजीको गलेसे लगा कर अत्यन्त आनन्द व प्रेमसे विह्वल हो गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! कृष्ण और बलभद्रजी, पिता–माता (नन्द यशोदा) के गले लगकर और प्रणाम करके मुखसे कुछ भी न कह सके; प्रेमकी उमंगसे आँसू भर आये और उन आँसुओंसे कण्ठावरोध होगया। महाभागा यशोदाने पुत्रोंको गोदमें बिठालिया और दोनो हाथोंसे हृदयसे लगाकर चिरविरह-तापसे तपेहुए हृदयको शीतल किया। यशोदाके सब शोक मिटगये। इसके

उपरान्त देवी रोहिणी और देवकीजी व्रजरानीसे मिल–भेंटकर उनकी कीहुई मित्रताको याद करतीहुई गद्गद स्वरसे कहनेलगीं कि–"हे व्रजकी स्वामिनी! तुम्हारे कियेहुए मित्रता और स्नेहके व्यवहारको कौन स्त्री भूल सकती है? इन्द्रके तुल्य ऐश्वर्यको पाकर भी तुम्हारे व्यवहार और उपकारका बदला नहीं चुकाया जासकता। ये दोनो बालक तुमको ही अपना पिता और माता समझते थे। जैसे दोनो नेत्रोंकी पलकें सबप्रकार रक्षा करती हैं, वैसेही अपने पुत्रसे भी बढ़कर स्नेहसे, तुमने, इन अपने पिता-माताके द्वारा तुमको सौंपे गये बालकोंका भलीभाँति पालन और पोषण किया। तुम साधुजन हो; साधुजनोंको, यह अपना है यह पराया है, ऐसा भेदभाव नहीं होता। तुमने प्रीतिपूर्वक इनकी रक्षा की और ये अकुतोभय रहकर इस अभ्युदयको प्राप्त हुए–इतने बड़े हुए" ॥ ३५–३९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! बहुत दिनोंके बाद गोपियोंको श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए। गोपियाँ, अपने एकमात्र अभीष्ट कृष्णके दर्शनमें पलकोंको विघ्न डालते देख, उन पलकोंके बनानेवाले ब्रह्माको दोष देती हुई बुरा–भला कहनेलगीं, क्योंकि उनको उस समय पलकका झपकना भी असह्य कष्टदायक जान पड़ता था। गोपियाँ, बहुत दिनोंके बाद दुर्लभ कृष्णचन्द्रको नेत्रमार्गसे हृदयमें बिठलाकर, इसप्रकार मनके द्वारा मिलकर, प्रियके प्रेममें मग्न और गद्गद हो गईं। ऐसी दशाको प्राप्त गोपियोंसे, एकान्तमें मिलकर–हृदयसे लगाकर कृष्ण-चन्द्रने कुशल पूछी और मन्द मन्द मुसकाकर मधुर स्वरसे कहा कि "हे सब सखियो! भला कभी हमको याद करती हो? हम अपने बन्धु-बान्धवोंका कार्य सिद्ध करनेलिये तुमको छोड़कर चले आये और हमको, शत्रुओंके नाशकी चेष्टामें तत्पर रहनेके कारण, बहुत समय बीत गया, हम फिर तुमसे मिल नहीं सके। इसकारण तुम हमको अकृतज्ञ तो नहीं समझतीं? अकृतज्ञ या निठुर जान-कर मुझसे घृणा तो नहीं करती हो? निश्चय जानो कि वह अचिन्त्य सर्वशक्तिमान् भगवान् ही, सब प्राणियोंके परस्पर संयोग और वियोगका एकमात्र कारण है, मनुष्य अपनी इच्छासे कुछ नहीं कर सकता। देखो, जैसे वायु ही–मेघ, तृण, रुई, धूलिकण इत्यादिके संयोग और वियोगका कारण है वैसे ही सृष्टिकर्ता (कालरूप) ईश्वर भी, सब प्राणियोंको कभी एकत्र कर देता है और कभी उनमें परस्पर वियोग करा देता है। सुन्दरियो! प्राणीमात्रको मेरे भजनभावसे ही मुक्ति मिल सकती है। बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमको मेरा दुर्लभ परमप्रेम प्राप्त हुआ है, इसी प्रेमके प्रतापसे तुम मुझ (आत्मस्वरूप) को पाओगी। हे स्त्रियो! जैसे आकाश, जल, वायु, तेज और पृथ्वी, ये पञ्चतत्त्व भौतिक पदार्थोंके आदि, अन्त, मध्यमें और भीतर बाहर वर्तमान हैं, वैसे ही मैं भी सब प्राणियोंके आदि, अन्त, मध्यमें और भीतर, बाहर वर्तमान हूँ। इसप्रकार भौतिकतत्त्वके अविशेषसे चतु-

विध भूतसमूह, अपने कारण जो तत्त्व हैं उनमें (कार्यरूपसे) वर्तमान हैं (भोक्ता आत्मामें नहीं हैं) और आत्मा उनमें भोक्ताके रूपसे स्थित है (इसप्रकार उनमें आत्माकी व्याप्ति है, कारणस्वरूपसे नहीं है)। ऐसा समझकर भौतिकरूप भोग्य पदार्थ भूतोंको और उनके भोक्ता आत्माको मुझ परिपूर्ण, आधाररूप परमात्मामें प्रकाशमान देखो" ॥ ४०-४७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! इसप्रकार कृष्णके श्रीमुखसे श्रेष्ठ आत्मज्ञानकी शिक्षा मिलनेपर, परम प्रेमपात्र कृष्णके निरन्तर ध्यानद्वारा वासनामय लिङ्गशरीररूप उपाधिसे मुक्त गोपियाँ ब्रह्मस्वरूप कृष्णचन्द्रमें तन्मय होकर कहने लगीं कि—॥ ४८ ॥

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४९ ॥

'हे पद्मनाभ!' यद्यपि हम गृहस्थीके जालमें जकड़ी हैं तथापि यही माँगती हैं कि अगाधबोध योगीजन अपने हृदयमें जिनका ध्यान करते हैं एवं जो संसाररूप कूपमें पड़ेहुए व्यक्तिके लिये ऊपर पहुँचानेवाला अवलम्ब हैं उन आपके लोकपावन चरणोंको हम गृहमें रहकर भी न भूलें, आपके चरणकमल सदैव हमारे हृदयमें रहकर, अपने प्रकाशसे अज्ञानकृत अन्धकारको दूर करते रहें ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितम अध्याय

श्रीकृष्णकी रानियोंका द्रौपदीसे अपने अपने बिवाहका वृत्तान्त कहना

श्रीशुक उवाच–तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥
युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! प्राणीमात्रके गुरु और गति भगवान् कृष्णने उक्त प्रकारके उपदेशसे गोपियोंपर अनुग्रह की और फिर युधिष्ठिर आदि सब बन्धुओंसे मिलकर कुशल पूछी ॥ १ ॥ इसप्रकार भलीभाँति सत्कार करके लोकनाथके कुशल पूछनेपर, श्रीहरिके पतितपावन चरणोंके दर्शनसे जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं ऐसे युधिष्ठिर आदि समग्र बन्धु-बान्धवगणने परम प्रसन्न होकर कहा कि "हे प्रभो! आपके चरणकमलोंका रस, देहधारियोंके देहदायक

अज्ञानको नष्ट कर देता है। वह महत्जनोंके मनसे मुखके द्वारा निकलता है। जिन्होने कभी कानोंके द्वारा उस रसको पिया है उनके अमङ्गल कहीं रह सकते हैं? हम आप भक्तवत्सल भगवान्को भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। अपनेमें स्वयंकृत जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनो अवस्थाएँ, आपके तेजसे आपही आपसे दूर रहती हैं; अतएव आप सर्वानन्दमय सच्चिदानन्दघन हैं। आप अखण्ड अर्थात् पूर्ण हैं, क्योंकि आपकी शक्ति कभी कहीं भी कुण्ठित नहीं हो सकती। काल पाकर लुप्त हो गये वेदोंकी रक्षा करनेको योगमायाका अवलम्बन कर आप अरूप होकर भी अनेक रूप धरते हैं। आपही परमहंस जनोंकी एकमात्र गति है" ॥ २-४ ॥
शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! इधर युधिष्ठिर आदि सम्पूर्ण इष्ट मित्र बान्धवगण इसप्रकार उत्तमश्लोकशिखामणि भगवान्की स्तुति कर रहे थे, उधर यादवोंकी और कौरवोंकी स्त्रियाँ मिलकर, तीनो लोकोंमें जिनका गान होता है उन हरिचरित्रोंकी चर्चा करनेलगीं। यादवों और कौरवोंकी स्त्रियोंका वह सम्वाद मैं तुमसे कहता हूँ-सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदीजीने कृष्णचन्द्रकी स्त्रियोंसे पूछा कि—"हे रुक्मिणी, भद्रा, जाम्बवती, सत्या, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्र-विन्दा, रोहिणी, लक्ष्मणा एवं अन्यान्य सब कृष्णचन्द्रकी प्रिय पत्नियो! स्वयं भगवान् कृष्णने मायामानवशरीरसे मनुष्योंका अनुकरण करतेहुए, जिसप्रकार तुम्हारे साथ विवाह किया, सो कहो-मैं सुनना चाहती हूँ" ॥ ६ ॥ ७ ॥
रुक्मिणीजीने कहा—"बहन द्रौपदीजी! शिशुपालके साथ मेरा ब्याह करा-नेके लिये जरासन्ध आदि राजा लोगोंने धनुष धारण किया, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र, उन दुर्जय भट नरपतियोंके शिरपर पैर रखकर, जैसे सियारोंके झुण्डसे वीर सिंह अपने भागको ले आता है वैसे ही मुझको हर लाये। उन्ही श्रीनिवासके चरणपङ्कज मेरे पूजनीय हैं" ॥ ८ ॥ सत्यभामाने कहा—"भाई प्रसेनके मरनेसे मेरे पिताको बड़ा ही सन्ताप हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र, अपने मणिकी चोरीके कलङ्कको मिटानेके लिये वनमें जाकर जाम्बवान् नाम ऋक्षराजको युद्धमें परास्त करके खोईहुई मणिको उनसे ले आये। यह देखकर अपने किये अपराधके कारण भयभीत और चिन्तित मेरे पिताने, यद्यपि मैं अन्य किसीको वाग्दत्ता हो चुकी थी, तथापि, उस अमूल्यमणिसहित मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया" ॥ ९ ॥
जाम्बवतीने कहा—"श्रीकृष्णचन्द्रको न पहिचाननेके कारण पहले तो मेरे पिता जाम्बवान्ने उनसे सत्ताईस दिनोंतक घोर युद्ध किया, परन्तु पीछेसे उनके असीम पराक्रमको देखकर जान गये कि यह मेरे स्वामी ईश्वर सीतापति हैं। तब चरणोंपर गिरकर पिताने पूजोपहारस्वरूप मणिसहित मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया। इसप्रकार प्रभुकी दासी होनेका सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ" ॥ १० ॥ कालिन्दीने कहा—"अपने सखा अर्जुनके द्वारा मुझको अपने चरण-

कमलके स्पर्शकी आशासे तप करनेमें तत्पर जानकर, भगवान् कृष्णचन्द्र, मेरे निकट गये और वहाँसे लाकर पाणिग्रहण किया। मैं उनके भवनको बहारनेवाली एक दासी हूँ" ॥११॥ भद्राने कहा—"श्रीनिवास श्रीकृष्ण स्वयं मेरे स्वयंवरमें गये और कुत्तोंके झुण्डके बीचसे सिंह जैसे अपने भागको लेकर चला आता है वैसे विपक्ष राजोंको और विघ्न डालनेकेलिये उद्यत मेरे भाइयोंको जीतकर उनके बीचसे मुझको ले आये। मेरी यही अभिलाषा है कि मैं सदैव जन्मजन्मान्तरमें इसीप्रकार उनके चरणोंकी दासी हुआ करूँ" ॥ १२ ॥ सत्याने कहा—"मेरे पिताने राजोंके बलकी परीक्षा करनेके लिये सात तीक्ष्ण सींगोंवाले हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ठ बैल पाल कर उनको नाथनेवाले कुमारके साथ मुझे ब्याहनेकी प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। भगवान् कृष्णचन्द्रने जाकर, जैसे कोई बालक बकरियोंको वशमें करले वैसेही उन वीरोंके घमण्डको मिटानेवाले बली बैलोंको सहजही बलपूर्वक नाथ दिया एवं इसप्रकार वीर्यरूप मूल्य देकर और मार्गमें मेरेलिये लड़नेवाले राजोंको परास्त करके चतुरङ्गिणी सेना तथा दासीगणसहित मुझको ब्याह-लाये। मैं यही चाहती हूँ कि चिरकालतक उनकी दासी रहूँ" ॥ १३ ॥ १४ ॥ मित्रविन्दाने कहा—"द्रौपदीजी! मेरे चित्तको श्रीकृष्णपर अनुरक्त जानकर, पिताने आपही मातुलपुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाकर उनके साथ प्रीतिपूर्वक मेरा विवाह कर दिया और यौतकमें एक अक्षौहिणी सेना, दासियाँ एवं बहुतसा धन दिया। कर्मवश संसारके बीच अनेक योनियोंमें यह जीव घूमता रहता है; इस-कारण मिलनेवाले प्रत्येक जन्ममें, मैं, ऐसेही हरिचरणोंके मङ्गलकारी स्पर्शको पाऊँ—मेरी यही अभिलाषा है" ॥ १५ ॥ १६ ॥ लक्ष्मणाने कहा—"हे रानी! श्रीनारदके मुखसे हरिके जन्मकर्मविषयक चरित्रोंको वारंवार सुननेके कारण मेरा भी मन, अपने पानेकी लालसा रखनेवाले बड़े बड़े लोकपालोंको छोड़कर कृष्णके चरणकमलोंका भ्रमर बन गया। हे साध्वी! भलीभाँति देख भालकर और सोच समझकर देवी लक्ष्मीने जिनको अपना पति बनाया है उनकी दासी होनेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ। मेरे पिता बृहत्सेन मुझको बहुत चाहते थे, अतएव मेरे अभिमतको जान कर, उसके सिद्ध होनेके लिये उन्होने एक उपाय किया। रानी! जैसे तुम्हारे स्वयंवरमें 'अर्जुनही तुम्हारे पति हों' इस विचारसे मत्स्यरचना की गई थी, वैसीही मत्स्यरचना मेरे स्वयंवरमें भी की गई। परन्तु मेरे स्वयंवरमें इतना विशेष था कि जिस खम्भेपर मत्स्य था उसके नीचे एक कलशमें जल भरा रक्खा था। उस कलशके जलमें मत्स्यका प्रतिबिम्ब देख पड़ता था, अतएव दृष्टिको नीचे करके ऊपर मत्स्यको वेधना था। यह एकप्रकार असंभव कार्य कृष्णचन्द्रके सिवा अवश्य ही और सबकी शक्तिसे बाहर था। मेरे स्वयंवरके वृत्तान्तको सुनकर सब प्रकारकी अस्त्रशस्त्र-विद्याके तत्वको

भलीभाँति जाननेवाले हजारों राजकुमार अपने अपने आचार्योंसे साथ दूर दूरसे मेरे पिताके नगरमें आनेलगे। वीर्य और अवस्थाके अनुसार मेरे पिताने सबका यथोचित सत्कार और पूजन किया। नियत समयपर मेरे पानेकी लालसासे सब राजकुमारोंने सभास्थलमें आकर लक्ष्यभेदके लिये रक्खेहुए धनुष और बाणको क्रमशः हाथमें लिया। किसीने धनुष उठा लिया, परन्तु उसपर डोरी न चढ़ा सकनेके कारण वैसे ही रख दिया, कोई किनारेतक डोरीको ले गये परन्तु धनुषके खिँचावको सँभाल न सके और उस धनुषके ही आघातसे पृथ्वीपर गिरकर अचेत हो गये। इसीप्रकार मगध, अम्बष्ठ और चेदि देशके नरेश तथा अन्यान्य सब वीर एवं भीम, कर्ण और दुर्योधन भी धनुपपर डोरी चढ़ाकर मत्स्यकी स्थितिको न जान सके, अतएव धनुष रखकर बैठ गये। तब तुम्हारे पति वीरवर अर्जुनने जलमें मत्स्यकी छाया देख, मत्स्यकी स्थितिको जानकर सावधानतासे बाण चलाया, परन्तु बाण उस मत्स्यको काट न सका, केवल स्पर्श करता हुआ लौट आया। इसप्रकार जब सब क्षत्रियगण लक्ष्यभेदमें असमर्थ हुए और सब मानियोंके मान भग्न हो गये, तब भगवान् कृष्णचन्द्रने उठकर धनुप और बाण हाथमें लिया एवं लीलापूर्वक धनुषको तानकर उसमें बाण चढ़ाकर केवल एकवार जलमें मत्स्यके प्रतिविम्बको देखा और अभिजित् मुहूर्तमें बाणसे मत्स्यको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उस समय स्वर्गमें नगाड़े बजनेलगे, देवतालोग परम प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करनेलगे। तब श्रेष्ठ रेशमी नवीन वस्त्र और सुवर्णकी उज्ज्वल माला आदि अलङ्कारोंसे अलङ्कृत होकर, हाथमें जयमाला लिये, नूपुरोंकी मधुर ध्वनि करती हुई, मैं, अन्तःपुरसे निकलकर स्वयंवरकी सभामें गई। मेरी वेणीमें गूँथी गई सुगन्धित फूलोंकी माला और मुखमण्डलमें लज्जापूर्ण मन्द हँसी, अमल कपोलोंपर पड़ रही रत्नकुण्डलोंकी झलक, देखनेवालोंके चित्तको चञ्चल कर रही थी। मैंने मुख उठाकर एकवार चारो ओर देखा और हास्ययुक्त स्नेहपूर्ण अतृप्त दृष्टिसे अपने प्रेमपात्र हरिको देखकर उनके गलेमें जयमाला डाल दी ॥ १७—२९ ॥ उसी समय मृदङ्ग, पटह, शङ्ख, भेरी, ढोल आदि बाजे बजनेलगे, नट और नर्तकी और गानेवाले नाचने और गाने बजानेलगे। द्रौपदीजी! जब मैंने इसप्रकार कृष्ण भगवान्‌को अपना स्वामी बनाया तब कामपीड़ित बड़े बड़े राजयूथपति स्पर्धावश मुझे बलपूर्वक लेजानेका उद्योग करनेलगे। तब कवचधारी कृष्णने रथपर मुझको बिठालिया और चतुर्भुज होकर दो भुजाओंसे मुझको सँभाला एवं दो भुजाओंसे शार्ङ्ग धनुष लेकर उन राजोंको ललकारा। दारुक सारथी, काञ्चनभूषित रथको उन राजोंके वीचसे लेकर निकला। जैसे मृगोंके बीचसे मृगराज सिंह निकलता है वैसे ही कृष्णचन्द्र राजोंके बीचसे निकल गये और वे ताकते ही रह गये। रथ निकल जानेपर भी कुछ

राजोंने पीछा किया और कुत्ते जैसे सिंहको रोकना चाहें उस प्रकार कुछ नरपति-योंने आगे बढ़ कर–धनुष चढ़ा कर रोकना चाहा। उनमेंसे कुछ तो शार्ङ्ग धनु-षसे छूटेहुए बाणोंके प्रहारसे सदाके लिये युद्धभूमिमें सोगये और कुछके बाहु-पैर आदि अंग कट–फट गये और वे युद्धभूमिसे अपने प्राण ले ले कर भागे ॥ ३०—३५ ॥ तदुपरान्त जैसे सूर्यनारायण अस्ताचलमें पहुँचते हैं उसप्रकार कृष्णचन्द्रनेभी, विविध वर्णकी ध्वजा, पताका और कृत्रिम पुष्प–पटनिर्मित द्वारों (फाटकों) से भलीभाँति सजीगई और स्वर्गवासी तथा पृथ्वीवासी लोगोंके द्वारा प्रशंसाको प्राप्त अपनी द्वारका नगरीमें प्रवेश किया। मेरे विवाहमें मेरे पिताने आयेहुए सुहृद्, सम्बन्धी और बन्धु–बान्धवोंको महामूल्य वस्त्र, अलङ्कार, शय्या, आसन और अन्यान्य सामग्रियोंसे सन्तुष्ट किया एवं सब प्रकार परिपूर्ण भगवान् कृष्णको, भक्तिसहित यौतुकस्वरूप अनेको दासियाँ, सब प्रकारकी सम्पत्ति और सेना, हाथी, घोड़े एवं महामूल्य अस्त्र–शस्त्र दिये। रानी! इस प्रकार सबके संगको छोड़कर अर्थात् एकान्त अनुरागसे एवं अपने धर्मका पालन करनेसे हम सब, आत्माराम पूर्णकाम–घनश्यामकी साक्षात् गृहदासी हुई हैं" ॥ ३६—३९ ॥ अन्य सोलह सहस्र एक सौ रानीयोंने कहा—"रानी! कृष्ण-चन्द्रने दलबलसहित भौमासुरको मारकर जब जाना कि भौमासुर दुष्टने दिग्वि-जयमें अनेकानेक राजोंको जीत कर उनकी कन्याओंको बलपूर्वक लाकर विवाह-करनेके लिये अन्तःपुरमें बंद कर रक्खा है, तब अन्तःपुरमें जाकर हमको उस कष्टसे छुड़ाया एवं स्वयं पूर्णकाम होकर भी, संसारसे छुड़ानेवाले अपने चरण-कमलोंको पानेकी लालसा रखनेवाली हम सब कामिनोंको अपने चरणोंकी दासी बना लिया। रानी! हमको पृथ्वीमण्डलमात्रके साम्राज्य, इन्द्रके पद, भौज्यपद, अणिमादि सिद्धि, ब्रह्माके पद, मोक्ष और हरिके पद वैकुण्ठकी भी कामना नहीं है। हम केवल यही चाहती हैं कि इसीप्रकार सदा गदाधरके कमलाकुचकुंकुम-गन्धयुक्त चरणोंकी रजको मस्तकमें लगाती रहें। नदीतटपर गौवें चराते समय व्रजवनितावृन्द, वनके तृणनिचय और गोपगण, जिसको पाकर कृतार्थ हुए, हम उसी महात्मा कृष्णचन्द्रके कमला-कुच-कुङ्कुम-गन्धयुक्त चरणोंकी रजको मस्तकमें लगाकर कृतार्थ होती रहें ॥ ४०–४२ ॥

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ॥
गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥

नदीतटपर गौवें चराते समय उत्कण्ठित व्रजवनिताएँ, वनके तृणनिचय और साथी गोपगण जिसको पाकर कृतार्थ हुए—हम, महात्मा कृष्णचन्द्रके उसी चरण-स्पर्शकी कामना करती हैं" ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितम अध्याय

वसुदेवके यज्ञके महा उत्सवकी कथाका वर्णन

श्रीशुक उवाच—श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी
माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥
कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं
सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा एवं अन्यान्य राजा लोगोंकी स्त्रियोंको और कृष्णको अनन्य भावसे भजनेवाली गोपियोंको भी कृष्णपत्नियोंका कृष्णके प्रति ऐसा अपूर्व अनुराग देख-सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ; उनके नेत्रकमल आनन्दके आँसुओंसे पूर्ण होगये ॥ १ ॥ इसप्रकार स्त्रियाँ स्त्रियोंसे और पुरुष पुरुषोंसे मिलकर वार्तालाप कर रहे थे—इसी अवसरपर भगवान् कृष्ण और बलभद्रको देखनेके लिये द्वैपायन वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, परशुराम, शिष्य-गणसहित भगवान् वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्माके पुत्र सनकादिक, अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य एवं वामदेव आदि श्रेष्ठ श्रेष्ठ महर्षिगण वहाँ आकर उपस्थित हुए। पहलेसे बैठेहुए राजालोग, यादवलोग, पाण्डव कौरव और श्रीकृष्ण व बलरामजी, उन विश्ववंदित ऋषियोंको आते देखकर उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। सबने उन ऋषियोंका यथायोग्य आदर और सत्कार किया और कृष्ण व बलभद्रने कुशल पूछकर स्वागत करके पाद्य, अर्घ्य, माला चन्दन और धूप-दीप आदिसे पूजन किया। इसके उपरान्त जब सब ऋषिगण अपने अपने आसनोंपर सुखसे बैठे तब धर्म-रक्षक भगवान् उनसे यों कहनेलगे और उस सभामें बैठेहुए सब लोग चुपचाप कृष्णके कथनको सुनने लगे ॥ २-८ ॥ भगवान्ने कहा—"अहो! आज हमारा जन्म सफल हुआ; आज देवतोंको भी दुर्लभ आपके दर्शनोंको पाकर हमारा जीवन सफल होगया। केवल प्रतिमाको ही देवरूपसे देखनेवाले भेदभाव-पूर्ण, स्वल्प अर्थात् तुच्छ तपमें तत्पर मनुष्योंको आप ऐसे योगीश्वरोंके दर्शन, स्पर्श, पूजन, प्रणाम, चरण-सेवन आदि और आपसे बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, बरन् एक प्रकारसे असंभवसा है। वास्तवमें जलमय तीर्थ और मट्टी व पत्थरकी बनी प्रतिमाएँ तीर्थ या देवता नहीं हैं। और यदि उनको तीर्थ या देवता मान भी लें तो वे बहुत समयतक सेवा करनेपर कहीं पवित्र करते हैं, परन्तु साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और आत्मा शुद्ध हो जाता

है; अतएव सच्चे तीर्थ और देवता साधुलोग ही हैं । भेदभावनासे उपासित अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं वाक्य और मन आदिक अज्ञानको नहीं मिटासकते; किन्तु मुहूर्तभर भी साधुसेवा या सत्संग करनेसे तत्क्षण सब अज्ञान मिटजाता है । जो लोग साधुओंको आत्मा, आत्मीय, देवता और तीर्थ न समझकर वात, पित्त, श्लेष्मा इन तीन धातुओंसे रचित अर्थात् इन प्रकृतियोंसे परिपूर्ण स्वप्नसमान शरीरको आत्मा और भार्या आदिको आत्मीय तथा पार्थिव पदार्थोंसे निर्मित प्रतिमाओंको देवता एवं जलपूर्ण स्थानोंको तीर्थ समझते हैं वे पूरे बोझ ढोनेवाले गधे हैं, उनसे बढ़कर कोई बे-समझ नहीं है, उनको तनिक भी विवेक नहीं है" ॥९-१३॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! जिनकी बुद्धि किसी विषयमें, कहीं कुण्ठित नहीं है उन महापुरुष कृष्णके मुखसे ऐसे गूढ़ और अपूर्व वाक्य सुनकर कुछ देरतक तो वे ऋषिगण कुछ भी न कहसके; साधारण लोगोंके समान अपनेको भी धर्मके नियमोंको पालनेके लिये विवशसा जतानेवाले भगवान्‌के इन वाक्योंका अर्थ लगानेमें या यों कहो कि समझनेमें उन महाज्ञानी महामुनियोंकी सूक्ष्म बुद्धि भी चकितसी होगई! थोड़ी देरतक विचार करनेपर ऋषियोंने जाना कि भगवान् स्वयं परमेश्वर, धर्मके बनानेवाले होकर भी औरोंको धर्मका उपदेश करनेके लिये ऐसा कह रहे हैं । तब हँसकर ऋषियोंने जगद्गुरु कृष्णचन्द्रसे कहा कि—"हमलोग परमार्थके जाननेवाले अर्थात् तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, और जिन्होने विश्वकी सृष्टि की है उन प्रजापतियोंके भी अधीश्वर हैं, तथापि जिसकी मायासें मोहित हो रहे हैं वही परमेश्वर आप मायामानवरूपमें छिपेहुए साधारण मनुष्योंके ऐसे आचरण कर रहे हैं । अहो भगवन्! आपकी चेष्टा अचिन्त्य है, आप क्या करते हैं या क्या करना चाहते हैं, सो कोई नहीं समझ सकता । प्रभो! अपनेही विकार जो घड़ा, सकोरा, दीपक, कुल्हाड़ आदि हैं उनके द्वारा अनेक नाम और रूपोंको प्राप्त (किन्तु वास्तवमें एकही) पृथ्वीके समान आप भी स्वयं एकमात्र और अकर्मा होनेपर भी अनेक प्रकारसे इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और प्रलय करते रहते हैं किन्तु तब भी निर्लिप्त अर्थात् संसारके बन्धनसे मुक्त हैं । आप परिपूर्ण परमेश्वर हैं, आपके जन्म, कर्म केवल अनुकरणमात्र हैं । अपने जनोंकी रक्षाके साथ ही दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आप सर्वदा समय समयपर शुद्धसत्त्वमूर्तिसे प्रकट हुआ करते हैं । आप ही सनातन वर्णाश्रमधर्मके चलानेवाले परम पुरुष हैं, अतएव अपनी लीलाओंसे उस वर्णाश्रमधर्ममय वेदमार्गका पालन किया करते हैं । तप, स्वाध्याय और संयमके द्वारा जिसमें कार्य, कारण और उन दोनोसे परे सच्चिदानन्दघन ब्रह्मकी उपलब्धि होती है वही वेदनामक शब्दब्रह्म आपका शुद्ध हृदय अर्थात् अन्तरङ्गरूप है । ब्रह्मन्! इसकारण आप शास्त्रयोनि अर्थात् सब शास्त्रोंकी उत्प-

त्तिका आधार कहलाते हैं और इसीसे अपने सत्धाम अर्थात् उपलब्धिका स्थान जो ब्राह्मणगण हैं उनका इतना आदर सत्कार और पूजन करते हैं। आप ब्रह्मभक्त लोगोंमें अग्रगण्य ब्रह्मण्यदेव और परममङ्गलमय अर्थात् सब कल्याणोंकी अन्तिम अवधि एवं सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं; अतएव आज आपसे मिलनेसे हमारी विद्या, तपस्या, दृष्टि (ज्ञानदृष्टि व साधारण दृष्टि) और जन्म, सब सफल हो गया। अपनी ही योगमायासे जिनकी महिमा ढँकी हुई है, जिनकी मेधा (बुद्धि या ज्ञान) अकुण्ठित है, पासही रहनेवाले राजालोग और यादवलोग भी मायारूप यवनिकामें छिपेहुए होनेके कारण जिनके यथार्थ रूपको नहीं जानते उन्ही काल-स्वरूप (सृष्टि आदिके कारण) ईश्वर (नियन्ता) कृष्णचन्द्रको प्रणाम है। ब्रह्मन्! जैसे निद्रित होकर स्वप्न देख रहा पुरुष, स्वप्नमें दिखाई देनेवाले विषयोंको सत्य मानता हुआ, उससमय मन और इन्द्रियोंके द्वारा, स्वप्नदृष्ट अपने राजा रङ्क या सिंह, व्याघ्र आदि रूपोंको सत्य समझता है, और वास्तवमें जो उसका नाम या रूप है उसको भूल जाता है, वैसेही मायामें मोहित ये सब जीव, मायाके प्रभा-वसे विवेक अर्थात् अपने रूपकी स्मृति अस्त होजानेके कारण आपको नहीं जान-पाते। स्वप्नदृष्ट पदार्थोंके समान अनित्य विषयोंमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति या रुचि-होना ही माया है। भगवन्! आज हमको आपके उन्ही पापपुञ्जविनाशन चरण-कमलोंके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिनको सुनिपुण योगीजन चिर-कालके योगाभ्याससे विशुद्ध होरहे हृदयमें स्थापित करके भजते हैं और जिनसे पतितपावनी गङ्गा निकली हैं। नाथ! हमको अनुग्रह करके अपने चरणोंकी भक्ति दीजिये। क्योंकि निरन्तर बढ़रही आपके चरणोंकी भक्तिसे जिनका वासनामय जीवकोष अर्थात् लिङ्गशरीर नष्ट होगया है वे निष्काम भक्त-जन ही आपकी गतिको पाते हैं" ॥ १४–२६ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं—** महाराज! इसप्रकार स्तुति और प्रार्थना करनेके उपरान्त श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर सब ऋषिलोग अपने अपने आश्रमको जानेके लिये उद्यतहुए। ऋषियोंको जानेके लिये उद्यत देखकर महायशस्वी वसुदेवजी उठकर उनके निकट गये और विनयपूर्वक प्रणाम करनेके उपरान्त पैर पकड़कर कहनेलगे कि–"हे महात्मा ऋषिगण! श्रुतियोंमें कहा है कि वेदपाठी ब्राह्मणमें सब देवता रहते हैं, इसकारण आपलोग सर्व-देवमय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे महर्षियो! आप लोग कृपा करके ऐसा कोई कर्म बताइये जिसके करनेसे कर्मोंका क्षय हो (अर्थात् मोक्ष मिले)। इस विषयको सुनने और जाननेके लिये मैं बहुत ही उत्सुक हो रहा हूँ" ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णको छोड़कर अपनेसे इस प्रकारका प्रश्न करते वसुदेवको देखकर मुनियोंको विस्मय हुआ। तब नारदजीने कहा कि–"हे महानुभाव महर्षि-

गण! वसुदेवजी जो कृष्णभगवान्‌को बालक समझकर अपने कल्याणकी बात हमसे पूछते हैं सो कुछ आश्चर्य नहीं है। निकटकी उत्तम वस्तुका भी लोग उतना आदर नहीं करते। देखो गङ्गाके निकट रहनेवाले लोग, शुद्धिकी कामनासे, गङ्गाको छोड़कर दूरदेशके जलाशय अर्थात् तीर्थमें स्नान करनेजाते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहारसे या कालके प्रभावसे अथवा आपही या दूसरेके द्वारा या गुण आदिसे, किसी प्रकारसे इन परमेश्वररूप कृष्णका ज्ञान खण्डित वा नष्ट नहीं होता, सर्वदा अखण्ड, एकरूप रहता है, किन्तु जैसे, लोग, सूर्यके ही कार्य जो हिम, उपराग (ग्रहण), मेघ आदि हैं उनसे सूर्यको आच्छन्न (छिपाहुआ या ढँकाहुआ) समझते हैं, वैसेही ज्ञानहीन साधारण लोग, अप्रतिहत ज्ञानसम्पन्न अद्वितीय ईश्वरको, उसीके कार्य जो क्लेश (क्रोध, काम आदि), कर्म, कर्मोंके (सुख-दुःखरूप) फल, गुणप्रवाह और प्राण आदि हैं उनसे आवृत समझते हैं (अर्थात् अविवेकवश जो ये कृष्णके सम्बन्धी वसुदेव आदि, साक्षात् परमेश्वर कृष्णको अपनेही समान साधारण मनुष्य समझते हैं सो कोई विस्मयकी बात नहीं है, यह मायाकृत मोहकी महिमा है)" ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उन मुनियोंने सब राजोंके सुनतेहुए कृष्ण, बलभद्रके आगे वसुदेवजीसे कहा कि—"हे महाभाग! कर्मक्षय करनेवाला यही एक साधुजनोंका बताया हुआ उत्तम कर्म है कि निष्काम होकर श्रद्धापूर्वक सब यज्ञोंके ईश्वर यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुकी विविध यज्ञोंसे आराधना करे। कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला यही एक सर्वोपरि उत्तम उपाय है। शास्त्ररूप आँखोंसे देखनेवाले पण्डितोंने विचार करके यही एक चित्तको शान्ति और आत्माको आनन्द देनेवाला, मोक्षका सुगम उपाय और परम धर्म बतलाया है। गृहस्थ द्विजातिके लिये यही मार्ग मङ्गलकारी है कि वह शुद्धचित्तसे श्रद्धापूर्वक अर्थात् निष्काम होकर परम पुरुषका पूजन और भजन करे। हे वसुदेव! ज्ञानीको चाहिये कि यज्ञ और दानसे धनसम्पत्तिकी इच्छाको, गृहस्थाश्रमके भोगोंसे स्त्री-पुत्र आदिकी इच्छाको एवं कालके अनुसन्धानसे स्वर्गादि लोकोंके पानेकी इच्छाको छोड़ दे ॥ ३४–३८ ॥ सम्पूर्ण धीर लोगोंने पहले गृहस्थाश्रममें रहकर पूर्वोक्त रीतिसे विषयवासनाओंको छोड़ दिया और फिर तपोवनमें जाकर तप किया है। यही सनातन प्रथा है। वसुदेवजी! जन्मसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनो वर्ण, देवता, ऋषि और पितृगणके ऋणी होते हैं। जो द्विजाति—वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन और यज्ञके द्वारा इन तीनो ऋणोंको विना चुकाये मोक्षकी चेष्टा करता है वह पतित होता है। हे महाभाग! आप पुत्र उत्पन्न करके पितरोंके ऋणसे और वेदाध्ययन या ब्रह्मचर्य करके ऋषियोंके ऋणसे मुक्त हो चुके हैं; अब यज्ञके द्वारा देवतोंके ऋणसे मुक्त होकर गृहस्थाश्रमको छोड़िये। हे वसुदेव! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपने

परम भक्तिसे जगदीश्वर हरिकी आराधना की है, जिसके कारण साक्षात् भगवान् आपके पुत्र हुए हैं। अर्थात् यह क्रम तो जिनका चित्त शुद्ध नहीं हुआ उनके लिये है, और आप तो कृतार्थ हो चुके हैं, तथापि लोकाचारके लिये आपको यज्ञ-करना चाहिये" ॥ ३९–४१ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! महा-मनस्वी वसुदेवने मुनियोंके कथनको सुनकर चरणोंपर शिर रखकर उनको प्रणाम किया और इसप्रकार प्रसन्न करके यज्ञकी इच्छा प्रकट करतेहुए ऋत्विक् बननेके लिये उनसे प्रार्थना की। धर्मपूर्वक कियेगये वसुदेवके वरणको उन मुनियोंने स्वीकृत किया और उसी उत्तम क्षेत्रमें धार्मिक वसुदेवको यज्ञकी दीक्षा देकर उत्तम सामग्रीसे सम्पन्न यज्ञका आरम्भ कराया। राजन्! वसुदेवजीने इसप्रकार यज्ञकी दीक्षा ली। उससमय यादवलोग और अन्यान्य राजालोग स्नान किये सुन्दर वस्त्र, कमलोंकी माला और अनेक अमूल्य अलङ्कार पहने यज्ञमण्डपमें आकर उपस्थित हुए। कण्ठस्थित सुवर्णनिर्मित पदक आदि आभूषणोंसे सुशोभित और सुन्दर वस्त्र पहने एवं हाथमें पूजाकी सामग्री लिये उनकी रानियाँ भी यज्ञ देखनेके यज्ञमण्डपमें आईं ॥ ४२–४५ ॥ उससमय मृदङ्ग, पटह, शङ्ख, भेरी और ढोल आदि बाजे बजनेलगे, नटलोग अपनी कलाएँ दिखानेलगे, वेश्याएँ नाचनेलगीं, सूत मागध-बन्दीजन स्तुति करनेलगे और कोमल-मधुर कण्ठ-वाली गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ अपने पतियोंसहित गाने-बजानेलगीं। तदनन्तर वसु-देवजीने अट्ठारह पत्नियोंसहित देहमें उबटना लगवाया, और ऋत्विजोंने उनको विधिपूर्वक मन्त्र पढ़कर पवित्र जलसे स्नान कराया। उससमय दुकूल, बलय, हार, कुण्डल, नूपुर आदि पहने, भलीभाँति शृङ्गार किये अट्ठारहो पत्नियोंसहित यज्ञकी दीक्षा लेकर कृष्णाजिनपर बैठेहुए वसुदेवजी, तारागणके बीचमें विराजमान पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हुए। महाराज! वसुदेवके यज्ञमें नवीन रेशमी पीताम्बर पहनेहुए सदस्यगणसहित ऋत्विक्गण, इन्द्रके यज्ञके ऋत्विजोंके समान अपने अपने आसनपर विराजमान हुए। उस यज्ञमण्डपमें अपने इष्ट, मित्र, बन्धु बान्धव एवं सपत्नीक पुत्र और पौत्रोंसे परिवृत कृष्णचन्द्र तथा बलभद्रजी—अपनी विभूतियोंसे परिवृत जीवात्मा और परमात्माके समान शोभायमान हुए। ऋत्विजोंने वसुदेवसे प्रत्येक यज्ञमें अग्निहोत्र आदि लक्षणोंसे युक्त ज्योतिष्टोम, दर्श, पौर्णमास आदि प्राकृत और शौर्यसत्र आदि वैकृत यज्ञ-विधिसे द्रव्य (पुरोडाश आदि), ज्ञान (मन्त्र) और कर्मोंके ईश्वर विष्णुका पूजन कराया ॥ ४६—५१ ॥ तदनन्तर वसुदेवजीने उचित समयपर वेदोक्त विधिके अनुसार ब्राह्मणोंका पूजन किया और उनको दक्षिणामें गऊ, भूमि, सुन्दरी कन्या, वस्त्र, अलङ्कार और महामूल्य रत्न आदि धन देकर सन्तुष्ट किया। उन महर्षियोंने यज्ञके अन्तमें पत्नीसंयाज और अवभृथस्नानके

सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको पूर्ण करके यजमानसहित स्यमन्तपञ्चक नाम परशुरामके बनाये पवित्र सरोवरमें स्नान किया। इसप्रकार स्नान करके सुन्दर वस्त्र और अलंकारोंसे अलंकृत वसुदेवजीने सूत, मागध, बन्दीजनोंको अनेक वस्त्र, अलङ्कार और सुन्दरी स्त्रियाँ देकर एवं दीन, अन्धे, भूखे, नंगे मनुष्योंसे लेकर कुत्तोंतकको अन्न, वस्त्र आदि देकर तृप्त और सन्तुष्ट किया। फिर वसुदेवने हाथी, घोड़ा, रथ आदि सामग्री देकर प्रेमपूर्ण वार्तालाप करके स्त्री-पुत्र-सहित बन्धुबान्धवोंको प्रसन्न किया और अपने इष्ट मित्र संबन्धी विदर्भ, कोशल, कुरु, काशी, केकय और संजय आदि देशोंके नरेशोंको, सदस्य और ऋत्विजोंको एवं देवता, मनुष्य, भूतगण, पितृगण तथा चारण आदिको विधिपूर्वक पूजन करके सन्तुष्ट किया। ये सब लोग कृष्णसे आज्ञा लेकर यज्ञकी प्रशंसा करतेहुए अपने अपने घरको गये। वसुदेवके द्वारा भलीभाँति पूजित धृतराष्ट्र, विदुर, पाँचो पाण्डव, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नारद, भगवान् वेदव्यास और अन्यान्य सुहृद्, सम्बन्धी एवं बान्धवगण भी अपने बन्धु यादवोंसे मिल भेंटकर स्नेहवश बन्धुवियोगसे व्याकुल और खिन्न होकर अपने अपने देशको चले। और और लोग भी सब चले गये। किन्तु बन्धुवत्सल नन्दजी, श्रीकृष्ण, बलभद्र, उग्रसेन और वसुदेव आदि सुहृद्जनोंके आदरसहित पूजनको स्वीकृत करके उनके अनुरोधसे उनकी प्रसन्नताके लिये गोप-गोपियोंसहित कुछ समयतक वहीं टिके रहे ॥ ५२—५९ ॥ शीघ्र ही मनोरथरूप महासागरके पार पहुँचकर बन्धुगणसहित वसुदेवजीने प्रसन्नतापूर्वक हाथ पकड़कर नन्दजीसे कहा कि—"भाई! ईश्वरकृत स्नेहरूपी पाशसे छूटना मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। वीरलोग बलसे और योगीलोग ज्ञानसे भी इस सुदृढ़ स्नेहबन्धनको नहीं काट पाते। नन्दजी! आप परोपकारी साधुजनोंमें अग्रगण्य हैं और हम अत्यन्त अकृतज्ञ हैं। आपने जो हमारे साथ मित्रताका अनुपम व्यवहार किया है उसका बदला यद्यपि हम नहीं देसकते तथापि वह निष्फल न होगा (अर्थात् उसका बदला आपको ईश्वरसे मिलेगा)। भाई! पहले हम असमर्थ होनेके कारण आपको प्रसन्न नहीं करसके और इससमय भी सौभाग्यके मदसे विवेकरूप दृष्टिके नष्ट होनेके कारण आँखोंके आगे अवस्थित होनेपर भी आपऐसे उपकार करनेवाले साधुओंको नहीं देख पाते। हे व्रजराज! हमतो यही कहते हैं जिस राज्यलक्ष्मीके होनेसे मदान्ध होकर, लोग अपने बन्धु, बान्धव और स्वजनोंको भी भूल जाते हैं वह राज्यलक्ष्मी, मङ्गलकी कामना करनेवाले पुरुषको कभी न प्राप्त हो" ॥ ६०—६४ ॥ यों कहते कहते नन्दजीकी मित्रता अर्थात् उपकारका स्मरण होआनेसे वसुदेवजीका शरीर शिथिल हो गया और वह प्रेमसे विह्वल हो आँखोंमें आँसू भरकर रोनेलगे। नन्दजी, अपने मित्र वसुदेव और कृष्ण—बलदेवकी प्रसन्नताके लिये तीन महीनेतक वहाँ

रहे। यद्यपि नन्दजी, जानेके लिये 'आजकल' करतेही रहे, परन्तु जाने नहीं पाये। यादवोंने तीन महीनेतक अपने यहाँ रखकर नन्दजीका बहुत सत्कार किया। नन्दजीकी सब कामनाओंको कृष्ण, बलदेव और वसुदेवने पूर्ण किया और फिर महामूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र एवं अन्यान्य असूल्य सामग्रियाँ देकर और रक्षाकेलिये बहुतसी सेना साथ करके उनको विदा किया। अपने बन्धु-बान्धव गऊ गोप और गोपियोंसहित नन्दजी, कृष्ण बलभद्र उग्रसेन उद्धव और वसुदेव आदिसे मिलकर और अनुमति लेकर व्रजको चले ॥६५–६८॥ हे राजन्! नन्दजी, गोपगण और गोपियाँ, कृष्णचन्द्रके चरणोंसें समर्पित मनको नहीं फेरसके, अतएव मनको वहीं छोड़कर अत्यन्त कष्टसे व्रजको गये ॥ ६९ ॥ इसप्रकार बन्धु-बान्धवोंको विदा करनेके उपरान्त, श्रीकृष्णही जिनके इष्टदेव हैं उन यादवोंने देखा कि वर्षा ऋतु आगई, अतएव वे भी द्वारका पुरीको चले ॥ ७० ॥

जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥
यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥

द्वारकामें पहुँचकर यादवोंने, जिसप्रकार कुरुक्षेत्रमें नन्द आदि सुहृद्जनोंसे भेट हुई और वसुदेवजीके महायज्ञका उत्सव हुआ, सो सब वृत्तान्त द्वारकावासियोंके आगे विस्तारपूर्वक कहा ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितम अध्याय

श्रीकृष्ण और बलदेवकी कृपासे वसुदेवको ब्रह्मज्ञान और देवकीको मरेहुए
छः पुत्र मिलनेकी कथा

श्रीबादरायणिरुवाच–अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ॥
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥१॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! कुरुक्षेत्रमें मुनियोंके मुखसे अपने पुत्र कृष्ण-बलदेवके अप्रतिम प्रभावका विवरण सुनकर वसुदेवजीको विश्वास होगया कि ये साक्षात् ईश्वर सर्वशक्तिमान् हरि ही हैं। एक समय दोनो भाइयोंने पिता वसुदेवके निकट आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वसुदेवजीने भी प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देकर अभिनन्दन किया। इसप्रकार लोकाचार हो चुकनेपर वसुदेवने कृष्ण और बलरामसे कहा कि–"हे कृष्ण! हे महायोगी कृष्ण! हे सनातन सङ्कर्षण! मैं आप दोनोको इस विश्वका कारण जो प्रधान और पुरुष हैं उनका भी

कारण अर्थात् साक्षात् ईश्वर समझता हूँ। जहाँ, जिसके द्वारा, जहाँसे, जिसके लिये, जिसके प्रति, जैसे, जब, जो जो होता है सो सब, प्रधान और पुरुषके ईश्वर साक्षात् भगवान् आपही हैं ॥ १–४ ॥ हे अधोक्षज! हे भगवन्! आप अपने द्वारा उत्पन्न इस विविधविध विश्वमें चैतन्य आत्मरूपसे प्रवेश करके प्राण (क्रियाशक्ति) और जीव (ज्ञानशक्ति) रूपसे इसका धारण अर्थात् पालन और पोषण भी करते हैं ॥ ५ ॥ प्राण (क्रियाशक्ति) आदिक विश्वके कारणोंमें जो कुछ कार्यकारिणी शक्ति देखी जाती है वह ईश्वरकी ही है, वे केवल निमित्तमात्र हैं, क्योंकि परतन्त्र और परस्पर विसदृशभावसे युक्त हैं। जैसे लक्ष्य वेधनेकी शक्ति बाण चलानेवालेकी है, बाणकी नहीं है; बाण तो केवल निमित्तमात्र है; वैसेही प्राण आदिमें केवल चेष्टामात्र है; उनमें जो कार्य करनेकी शक्ति है सो चैतन्यरूप ईश्वरकी है ॥ ६ ॥ हे ईश्वर! चन्द्रमामें कान्ति, अग्निमें तेज, सूर्यमें ज्योति, नक्षत्रोंमें प्रभा, विजलियोंमें सत्ता (स्फुरणमात्रसे अस्तित्व) सब वास्तवमें आपही हैं। पर्वतोंमें स्थिरता भी आपही हैं। पृथ्वी, पृथ्वीमें धारण करनेकी शक्ति और गन्धगुण; जल, जलमें तृप्त करने और जीवित रखनेकी शक्ति और रसगुण; वायु, वायुमें चेष्टा, गति, इन्द्रियबल, मनोबल और देहबल; सब आपही हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ दिशाओंका अवकाश, दिशाएँ, आकाश, आकाशका गुण शब्द, नाद, ओंकार, वर्ण और जिससे सब पदार्थोंके नामोंका निरूपण होता है वह वर्णपदात्मक वैखरी-नामक स्थान या कोष भी आपही हैं ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंमें विषयप्रकाशनशक्ति, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंमें अधिष्ठानशक्ति, बुद्धिमें अध्यवसायशक्ति और जीवमें प्रतिसंधानशक्ति या स्मरणशक्ति आप ही हैं ॥ १० ॥ पञ्चतत्त्वोंमें उनका कारण तामस अहङ्कार, इन्द्रियोंमें उनका कारण राजस अहङ्कार, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंमें उनका कारण सात्त्विक अहङ्कार और जीवोंमें उनके आवागमनका कारण प्रकृति आपही हैं ॥ ११ ॥ जैसे मृत्तिका-सुवर्ण आदि द्रव्योंके अनित्य विकार या रूपान्तर घट-कुण्डल आदिमें उनके कारणरूप वे मृत्तिका सुवर्ण आदि द्रव्य नित्य हैं वैसेही उक्त सब नश्वर भावोंमें आपही एक अविनश्वर नित्य पदार्थ हैं ॥ १२ ॥ सत्त्व, रज, तम नामक मायाके तीनो गुण और उनकी वृत्तियाँ अर्थात् महत्तत्त्व आदिक परिणाम–ये सब साक्षात् परब्रह्म जो आप हैं उनमें योगमायाके द्वारा कल्पित हैं ॥ १३ ॥ अतएव वास्तवमें उक्त सब भावविकार आपमें नहीं हैं। जब ये सब भाव आपमें विशेष रूपसे कल्पित होते हैं तब आपमें केवल उनकी प्रतीति होती है और आप कारण-रूपसे उनका अनुसरण करते हैं। अन्य समयमें निर्विकल्परूपसे केवल आपही अवशिष्ट रहते हैं ॥ १४ ॥ इस गुणप्रवाहरूप संसारमें सर्वरूप आपकी सूक्ष्म अर्थात् निष्प्रपञ्च गतिको न जाननेके कारण देहाभिमानपूर्वक कर्म करतेहुए

जीव, वारंवार जन्म और मरणको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ हे ईश्वर! दैवसंयोगसे दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर—उसमें भी शरीरकी आरोग्यता और इन्द्रियोंकी स्वस्थता या कार्यक्षमता पाकर-जो कोई मुक्तिरूप सर्वोपरि स्वार्थके साधनेमें असावधानता या भूल करता है वह आपकी मायामें मोहित रहकर वृथा ही अपनी आयुको गँवा देता है ॥ १६ ॥ आपहीने इस सम्पूर्ण जगत्को देहमें एवं देहसे सम्बन्ध रखनेवाले स्त्री, पुत्र-पौत्रादिमें "मैं हूँ, यह मेरा है"—इस प्रकारके स्नेहमय मायापाशसे जकड़ रक्खा है ॥ १७ ॥ आप दोनो महानुभाव वास्तवमें मेरे पुत्र नहीं हैं, बरन् साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियन्ता परमेश्वर हैं। पृथ्वीके लिये भार हो रहे दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करनेको आपने पृथ्वीपर अवतार लिया है। हे आर्तजनोंके वन्धु! इससमय, मैं शरणागतजनोंको संसारके भयसे मुक्त करनेवाले आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। अबतक जो मैंने इन्द्रियभोग्य विषयोंमें लोलुप रहकर असत् शरीरको सत् आत्मा समझा और साक्षात् परमेश्वर जो आप हैं उनको अपना पुत्र समझा सो मायाकृत मोह-मात्र था। आपहीने प्रत्येक युगमें सूतिकागृहमें मुझसे कहा है कि—"मैं अजन्मा ईश्वर होकर भी निजनिर्मित सनातन धर्मकी रक्षाके लिये तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ"। आप आकाशके समान अनेक शरीरोंको लेते और त्यागदेते हैं, तथापि निर्लिप्त रहते हैं। हे उरुगाय! हे सर्वगत! आपकी विभूतिरूपिणी मायाको कौन जान सकता है?" ॥ १८–२० ॥ **शुकदेवजी कहते हैं—** महाराज! इसप्रकार पिताके तत्त्वज्ञानमय कथनको सुनकर यादवशिरोमणि भगवान् कृष्णने विनययुक्त हो, नम्रतापूर्वक हँसतेहुए मधुर वाणीसे कहा कि—"हे पिता! आपने हमारे उद्देशसे जो यह भलीभाँति तत्त्वोंका निरूपण किया उसको हम भी युक्तियुक्त मानते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे यदुनायक! मैं, आप लोग, आर्य बलदेव, ये द्वारकावासी लोग, यहाँतक कि सम्पूर्ण सचराचर जगत्, सब ब्रह्मस्वरूप हैं। जिज्ञासु व्यक्तिको चाहिये कि वह इसीप्रकार व्यापकरूपसे ब्रह्मका विचार करे ॥ २३ ॥ एकमात्र, स्वयं ज्योतिःस्वरूप, नित्य, अनन्य और निर्गुण ब्रह्म अपनेहीसे प्रकट गुणसमूहके द्वारा गुणकृत उपाधिस्वरूप तत्त्वोंमें अनेकरूप प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ जैसे एकरूप आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—उपाधिके अनुसार निजकर्तृककृत घट आदि पदार्थोंमें आविर्भाव, तिरोभाव, अल्पता, बहुलता और अनेकताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकट, नष्ट, अल्प, बहुल और अनेक प्रतीत होते हैं वैसेही ब्रह्मके विषयमें भी जानना चाहिये" ॥ २५ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं—**हे राजन्! भगवान्के उक्त वाक्योंको सुनकर वसुदेवके चित्तसे भेदभावना दूर हो गई और वह परम प्रसन्नता और शान्तिको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ हे गुरुश्रेष्ठ! कृष्ण-बलरामने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका

मराहुआ पुत्र परलोकसे लादिया; यह वृत्तान्त सुनकर देवी देवकीको बड़ा ही विस्मय हुआ। उस समय कंसके हाथों मारेगये अपने बालकोंका स्मरण होआनेसे स्नेहवश देवकीको बड़ाही दुःख हुआ और वह व्याकुलताके कारण रोतीहुई कृष्ण-बलरामके निकट जाकर इसप्रकार दीन वाणीसे कहने लगीं कि– "हे अप्रमेयप्रभावसम्पन्न बलराम! और हे योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्ण! मैं जानती हूँ कि आप ब्रह्मा आदि विश्वस्रष्टा देवतोंके भी ईश्वर आदिपुरुष हैं। हे आद्य! कालवश सत्त्व-बलसे हीन होकर शास्त्रविहित मर्यादाका उल्लंघन करने-वाले, अतएव पृथ्वीके लिये भार हो रहे राजोंका संहार करनेके लिये आपने मेरे गर्भसे जन्म लिया है। मैंने सुना है कि आपने अपने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका मराहुआ पुत्र यमलोकसे लादिया है। सो हे योगेश्वरोंके ईश्वर! यह सुनकर मुझको भी वैसी ही अभिलाषा हुई है–उसको आप पूर्ण करो, अर्थात् जिन मेरे पुत्रोंको कंसने मारडाला था उनको आप योगबलसे लाकर मुझे दिखा दो; मैं उनको देखना चाहती हूँ" ॥ २७–३३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे महाराज! इस-प्रकार माताकी आज्ञा पाकर कृष्ण और बलदेव दोनो भाई योगमायाके बलसे उसी समय सुतललोकको गये ॥ ३४ ॥ विश्वमात्रके और विशेषकर अपने पूजनीय इष्टदेव आत्मस्वरूप कृष्ण-बलरामको अपने लोकमें देखकर राजा बलिको अनिर्व-चनीय आनन्द प्राप्त हुआ–उस अनुपम आनन्दसे दैत्यराजका हृदय गद्गद होगया। झटपट अपने पुत्र-पौत्रोंसहित आसनसे उठकर राजा बलिने प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक बैठनेके लिये सुन्दर उत्तम आसन लाकर दिये। जब महात्मा दोनो भाई उन आसनोंपर सुखपूर्वक बैठे तब बलिने भक्तिपूर्वक उनके चरणकमल धोकर उस चरणोदकको, जो ब्रह्मासे लेकर सम्पूर्ण चराचर जगत्को गङ्गाके नामसे पवित्र कर रहा है, परिवारसहित अपने शिरपर छिड़का, और फिर महामूल्य वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला, धूप, दीप सुधासम मधुर अन्न, ताम्बूल और धन रत्न आदि महासामग्रियोंसे एवं अपने वंश, विभव और शरीरसहित आत्माके समर्पणसे उनका पूजन किया ॥ ३५–३७ ॥ इसप्रकार विधिपूर्वक पूजन करनेके उपरान्त राजा बलि प्रभुके चरणकमलोंको गोदमें रखकर दबानेलगे। उससमय आनन्दके वेगसे बलिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंसे आँसू बहनेलगे और चित्त प्रेमसे विह्वल होगया। इसके उपरान्त दैत्यराजने गद्गद वाणीसे कहा–"महान् अनन्तको प्रणाम है, विधाता कृष्णको प्रणाम है, सांख्यदर्शन और योगदर्शनका आविष्कार और प्रचार करनेवाले ब्रह्मस्वरूप परमात्माको प्रणाम है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे भगवन्! हम राजसी–तामसी प्रकृतिके जीव (असुर) हैं, किन्तु आपने आपहीसे आकर दर्शन दिया,—अतएव हमारी समझमें यद्यपि अज्ञानान्ध प्राणियोंके लिये आपका दर्शन दुष्प्राप्य और अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि जिनपर आप अनुग्रह

करते हैं उनके लिये सुलभ है ॥ ४० ॥ दैत्य, दानव, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ नायक आदि सम्पूर्ण राजसी और तामसी प्रकृतिके प्राणी,–विशुद्ध सत्त्वके धाम साक्षात् शास्त्रस्वरूप आपसे शत्रुता बाँधनेवाले हैं; हम और अन्यान्य असुर भी वैसे ही हैं। किन्तु गोपियाँ काम-भक्तिसे और कोई कोई दैत्य प्रचण्ड वैरभावसे जैसे आपको प्राप्त हुए हैं वैसे सत्त्वशील और नगीची देवतालोग भी आपको नहीं पासकते! इसीसे कहते हैं कि आपकी लीला अपरम्पार है ॥ ४१–४३ ॥ हे योगेश्वरोंके भी ईश्वर! जब योगेश्वरलोग भी आपकी योगमायाके स्वरूप और विशेषको पूर्णतया नहीं जान पाते तब हम क्या हैं ?। अतएव हे दीनबन्धो! हमपर प्रसन्न होकर ऐसी कृपा करिये कि निरपेक्ष मुनिगणके एकमात्र आश्रय जो आपके चरणकमल हैं उन्हीके भजनमें हम तत्पर रहें। आपके चरणोंकी सेवाही सार-वस्तु है, और गृहादिक विषय अन्धकूपके समान हैं। हमारी यही प्रार्थना है कि उक्त अन्धकारमय अन्धकूपसे निकलकर विश्वकी रक्षा करनेवाले जो आप हैं उनके चरणकमलोंमें हमारी प्रवृत्ति हो और हम सबके सङ्गको छोड़कर अथवा संसार भरके मित्र आपके भक्त महात्मा सज्जनोंके सङ्गमें शान्तिको पाकर विचरण करें। हे सब जीवोंके ईश्वर! हे प्रभो! हमको आज्ञा देकर निष्पाप करिये। आपकी आज्ञाका श्रद्धापूर्वक पालन करनेसे लोग विधि-निषेधके अनुशासनसे मुक्त हो जाते हैं" ॥ ४४–४६ ॥ भगवान‌्ने कहा—"हे दैत्यराज! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ऊर्णाके गर्भसे मरीचि ऋषिके छः पुत्र हुए थे। ब्रह्माजीको अपनी कन्यापर अनुरक्त देखकर वे देवसदृश ऋषिपुत्र हँसे थे। इसी पापसे वे उसी क्षण आसुरी योनिको प्राप्त हुए, अर्थात् उनको हिरण्यकशिपुके वीर्यसे जन्म लेना पड़ा। उस जन्मके बाद योगमायाके द्वारा लाये जाकर वे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हूए और उनको दुष्ट कंसने मार डाला। देवी देवकी प्रबल पुत्रस्नेहके कारण उनके लिये सोच कर रही हैं और उनको देखना चाहती हैं। वेही बालक ये तुम्हारे पास वर्तमान हैं, मैं माताका शोक दूर करनेके लिये इनको लेजाऊँगा। तदनन्तर वे शापसे मुक्त और विगतताप होकर फिर देवलोकको चले जायँगे। ये स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभुक् और घृणि नामक ऋषिकुमार, मेरी कृपासे उत्तम गति (मोक्ष) को प्राप्त होंगे" ॥ ४७–५१ ॥ यों कहकर, राजा बलिके द्वारा भलीभाँति पूजित कृष्ण-बलराम, उन बालकोंको लेकर द्वारकापुरीमें उपस्थित हुए। कृष्ण-बलभद्रद्वारा लायेगये पुत्रोंको देखते ही पुत्रस्नेहके कारण देवकीके स्तनसे आप-ही-आप दुग्ध बहनेलगा। देवकीने प्रेमपूर्वक पुत्रोंको हृद-यसे लगा लिया और गोदमें लेकर वारंवार मस्तक सूँघनेलगीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ संसारचक्रको चलानेवाली भगवान् विष्णुकी मायामें मोहित देवकीजी पुत्रस्पर्शके

कारण दुग्धपरिपूर्ण स्तन मुखमें देकर प्रीतिपूर्वक उन बालकोंको दुग्ध पिलानेलगीं ॥ ५४ ॥ कृष्ण भगवान्‌के पीनेसे बचा हुआ अमृतमय देवी देवकीका दुग्ध पीनेसे और नारायणरूप कृष्णके अङ्गस्पर्शसे उन बालकोंके शुद्ध अन्तःकरणमें आत्मज्ञानका उदय हुआ और वे सबके सामने ही गोविन्द, बलदेव, देवकी एवं वसुदेवको प्रणाम करके आकाशमार्गसे देवलोकको चलेगये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे राजन्! इस-प्रकार मरेहुए पुत्रोंका आना और जाना देखकर देवकीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होने समझ लिया कि यह सब योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णकी माया है ॥५७॥ हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ महाराज! अनन्तवीर्य परमात्मा श्रीकृष्णके ऐसे ऐसे अनेकानेक अद्भुत कर्म हैं—जिनका अन्तही नहीं है ॥ ५८ ॥

सूत उवाच—य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारे-
श्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं
भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

सूतजी कहते हैं—हे शौनकजी! पूजनीय व्यासतनय शुकदेवके द्वारा वर्णित, जगत्‌के पातकोंको नष्ट करनेवाला और भगवद्भक्तोंके लिये सुखदायी कर्णाभरणस्वरूप यह अमृतकीर्तिसम्पन्न मुरारिका अद्भुत चरित्र हैं। इसको जो लोग मन लगाकर सम्पूर्ण रूपसे प्रत्येक समय सुनते या सुनाते हैं उनका चित्त दृढ़रूपसे भगवान्‌में लग जाता है और वे अवश्य ही मङ्गलमय हरिधामको जाते हैं ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितम अध्याय

सुभद्राहरण और भगवान्‌की मिथिलायात्राका वर्णन

राजोवाच—ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥
यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! हमारी दादी सुभद्रा देवी, जो कृष्ण-बलभद्रकी बहन थीं, उनके साथ महातेजस्वी अर्जुनजीका विवाह किसप्रकार हुआ? मैं यह कथा सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्! एक समय महापराक्रमी अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये निकले। प्रभासक्षेत्रमें पहुँच

कर अर्जुनने सुना की—'बलभद्रजी मेरे मामाकी लड़की अर्थात् अपनी बहन सुभद्राका विवाह दुर्योधनसे करेंगे, किन्तु कृष्ण आदिकी यह इच्छा नहीं है'। अर्जुनने चाहा कि सुभद्रासे मैं विवाह करूँ। यह विचारकर त्रिदण्डधारण-पूर्वक संन्यासीके वेषसे–गुप्तरूपसे अर्जुनजी द्वारका पुरीको गये ॥ २ ॥ ३ ॥ अर्जुनजी स्वार्थ सिद्ध करनेके विचारसे चौमासेभर द्वारकापुरीमें रहे। पुरवासी-जन और स्वयं बलभद्रजी भी न पहचान सके कि यह अर्जुन हैं, अतएव उन्होने त्रिदण्डी यती जानकर इनका बहुत सत्कार और पूजन किया ॥ ४ ॥ एक दिन बलभद्रजी निमन्त्रण देकर भोजन करानेके लिये अर्जुनको घर लेगये। बलभद्र-जीने श्रद्धासे भिक्षा दी और अर्जुनजी भोजन करनेलगे। वहाँपर सुशीला और वीर पुरुषोंके मनको हरनेवाली कन्या (सुभद्रा) को देखकर अर्जुनका चित्त चंचल हो उठा और प्रसन्नताके कारण नेत्रकमल खिलउठे ॥ ५ ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मनको हरनेवाले अर्जुनको देखकर सुभद्राका भी मन वशमें नहीं रहा। वह सुकुमारी कुमारी मन्द मुसकानसे सरस और लज्जापूर्ण कटाक्षोंसे अर्जुनको देखने-लगी। सुभद्राने अपना हृदय अर्जुनको देदिया और एकटक उनकी वीर और मनोहर मूर्तिको निरन्तर निहारती रही ॥ ७ ॥ उस दिनसे वह मोहिनी मूर्ति अर्जुनके हृदयमें बस गई और प्रबल कामदेव अपने बाणोंकी चोटसे चित्तको अस्थिर करनेलगा। इसप्रकार कामपीड़ासे व्याकुल अर्जुन, उस कन्याको ले भाग-नेका अवसर देखनेलगे ॥ ८ ॥ इसी अवसरमें एक दिन बड़ी भारी देवयात्रामें रथपर चढ़ीहुई सुभद्रा द्वारकाके अन्तःपुरके दुर्गसे निकलकर देवदर्शनके लिये चलीं। इस सुअवसरमें कृष्णचन्द्र, वसुदेव, और देवकीकी इच्छाके अनुसार महारथी अर्जुनजी राहसे सुभद्राको हर लेगये। जो रक्षक सुभट शूर बाधा देनेके लिये उद्यत हुए उनको रथपर स्थित अर्जुनने धनुष चढ़ाकर असह्य बाणोंकी वर्षासे भगा दिया। आत्मीय यादवलोग चिल्लाते ही रहे, और अर्जुनजी, जैसे अपने भागको सिंह ले जाता है वैसे सुभद्राको ले गये ॥ ९ ॥ १० ॥ यह वृत्तान्त सुनकर, पर्वके दिन महासागरके समान, बलभद्रजी अत्यन्त कुपित और क्षुभित हुए, किन्तु कृष्णचन्द्रने पैर पकड़कर तथा अन्यान्य बन्धुओंने विनय और प्रार्थना करके शान्त करदिया ॥ ११ ॥ तब बलभद्रजीने प्रसन्न होकर पीछेसे वर–वधूके लिये यौतकस्वरूप महामूल्य गृहसामग्री, हाथी, रथ, घोड़े, रत्नालंकार, दासी और दास भेज दिये ॥ १२ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! श्रुतदेव नाम एक विप्रवर श्रीकृष्णचन्द्रके अनन्य उपासक भक्त थे। वह शान्त चतुर विवेकी सन्तुष्ट ब्राह्मण केवल कृष्णभक्तिके सिवा और कोई प्रयोजन न रखते थे ॥ १३ ॥ वह विदेह देशके अन्तर्गत मिथिला नाम पुरीमें रहते थे। श्रुतदेवजी गृहस्थ होकर भी जो कुछ आपहीसे मिल जाता था उसीसे सब काम निबाहते

थे। उनको जीवनरक्षामात्रके लिये आवश्यक अन्नादि नित्य मिल जाता था—इससे अधिक नहीं मिलता था। वह उतनेहीमें सन्तोष करके यथोचित रीतिसे अपने धर्मका पालन करते थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ राजन्! उससमय मैथिलवंशज बहुलाश्व नामक नरेश उस राज्यके शासक थे। वह निपट निरभिमान राजा भी श्रुतदेवके समान अत्यन्त भगवद्भक्त और कृष्णचन्द्रके प्रेमपात्र थे ॥ १६ ॥ उन दोनो भक्तोंपर प्रसन्न होकर अनुग्रह करनेके लिये प्रभु भगवान् कृष्णचन्द्र दारुक सारथीके लायेहुए दिव्य रथपर चढ़कर मिथिला पुरीको चले ॥ १७ ॥ भगवान्के साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, अरुणि, बृहस्पति, मैं, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदिक ऋषिलोग भी चले ॥ १८ ॥ राजन्! ग्रहमण्डलीमण्डित सूर्यके समान भगवान् जिस जिस देशमें पहुँचे वहाँ वहाँके पुरवासी और जनपदवासी लोग अर्घ्य आदि पूजनकी सामग्री हाथमें लिये उनके आगे आकर उपस्थित हुए ॥ १९ ॥ महाराज! आनर्त, मरु, कुरुजाङ्गल, कङ्क, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोशल और अर्ण एवं अन्यान्य मार्गमें पड़नेवाले देशोंके रहनेवाले नर नारीगणने, उदार हँसी और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मनोहर हरिके मुखारविन्दको निरन्तर निहारकर अपने नेत्रोंको सफल किया। त्रिलोकगुरुके दर्शनसे उन नर-नारियोंका अज्ञान नष्ट होगया और उन्हे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। श्रीकृष्णचन्द्र उन नरनारियोंको अभय और तत्त्वज्ञानका दान करते और उनके मुखसे दिग्दिगन्तको उज्ज्वल करनेवाला अशुभनाशक अपना सुयश सुनतेहुए क्रमशः विदेहनगरमें पहुँच गये ॥ २० ॥ २१ ॥ मिथिला प्रान्तके पुरवासी और जनपदवासी जन अच्युतके आगमनका समाचार पाकर आनन्दपूर्वक पूजनकी सामग्री हाथमें लिये उनकी अभ्यर्थना करनेको अग्रसर हुए। उत्तमश्लोकके दर्शनसे उनके मुख और अन्तःकरण प्रफुल्लित होगये। उन लोगोंने श्रीकृष्णको और जिनके नाम पहलेसे सुन रक्खे थे उन महर्षियोंको आदरसहित शिर झुका हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ 'हमपर अनुग्रह करनेके लिये जगद्गुरु कृष्णचन्द्र यहाँ आये हैं'—यह समझकर मिथिलानरेश और श्रुतदेवने एकसाथ ही चरणोंपर शिर रख, हाथ जोड़, यादवपति कृष्ण प्रभुसे प्रार्थना की कि 'आप ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋषियोंसहित हमारे आतिथ्य (मेहमानी) को स्वीकृत करके कृतार्थ कीजिये'। भक्तवत्सलने दोनो भक्तोंके आतिथ्यको स्वीकृत किया और दोनोकी प्रसन्नताके लिये दो रूप धरकर दोनोके घर गये। परन्तु श्रुतदेवने जाना कि भगवान् हमारेही यहाँ आये हैं और राजाने जाना कि भगवान् हमारेही यहाँ आये हैं ॥ २४-२६ ॥ राजन्! मिथिलानरेशने दूरसे आनेके कारण थकेहुए मुनियोंको और भगवान्को बैठनेके लिये उत्तम आसन दिये। उन आसनोंपर ब्राह्मणगण और भगवान् जब सुखपूर्वक बैठे तब

महामनस्वी नरेशने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर पैर धोकर उस त्रिलोकपावन चरणोदकको अपने और कुटुम्बभरके शिरपर छिड़का । आनन्द भक्तिसे राजाका हृदय गद्गद होआया और नेत्र आँसुओंके जलसे परिपूर्ण होगये फिर राजाने भक्तिपूर्वक चन्दन, माला, वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप, अर्घ्य और गोदानसे सबकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ २७-२९ ॥ तदनन्तर अन्न, जल और ताम्बूल आदिसे सबको तृप्त और सन्तुष्ट करके भगवान्के दुर्लभ चरणकमलोंको गोदमें लेकर दबातेहुए मिथिलानरेशने प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणीसे धीर स्वरसे कहा कि "हे विभो! हे नाथ! आप स्वयं प्रकाशमान हैं। सब जीवोंके चेतनदाता आत्मा और साक्षी अर्थात् प्रकाशक भी आप ही हैं। सदा अपने चरणकमलोंको भजनेवाले हमलोगोंको आज आपने दर्शन दिया। आपका कथन है कि 'मुझको अनन्त (बन्धु), श्रीलक्ष्मी (स्त्री) और ब्रह्मा (पुत्र) भी एकान्त भक्तोंसे बढ़कर प्यारे नहीं हैं'। इस अपने वाक्यको सार्थक करनेके लिये ही आज आपने हमको दर्शन दिया है ॥ ३०—३२ ॥ भगवन्! आप निष्किञ्चन, शान्त मुनियोंको आत्मज्ञानके देनेवाले हैं। यह जानकर भी कौन चतुर व्यक्ति आपके चरणकमलोंके भजनसे विमुख रहेगा ? ॥ ३३ ॥ आपने इस पृथ्वीपर संसारी मनुष्योंके बीच यदुवंशमें अवतार लेकर तीनो लोकोंके पापोंको नष्ट करनेवाला सुयश इसलिये फैलाया है कि लोग उसे कहकर और सुनकर संसारसे मुक्त हों ॥ ३४ ॥ भगवन्! आप अकुण्ठित अनुभवसे पूर्ण, शान्त, तपस्वी, नारायण ऋषि हैं—आपको प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे सर्वव्यापक! आप इन महर्षियोंसहित कुछ कालतक हमारे घरमें रहकर अपने चरणोंकी पवित्र रजसे इस निमिकुलको पवित्र कीजिये" ॥ ३६ ॥ राजाकी प्रार्थनाको स्वीकृत करके लोकभावन भगवान् मिथिलापुरवासियोंके कल्याणके लिये कुछ कालतक वहाँ ठहरे ॥ ३७ ॥ राजन्! जनकके समान श्रुतदेव ब्राह्मणने भी मुनियोंसहित अच्युतको आये देख उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिजनित आनन्दमें मग्न हो नाचनेलगे; उनको उससमय शरीरकी और वस्त्र आदिके गिरनेकी भी सुध-बुध नहीं रही ॥ ३८ ॥ उन्होने तृण, काष्ठ और कुशके आसन लाकर सबको बैठाया और प्रणाम स्वागत-प्रश्न करके भार्यासहित आनन्दपूर्वक सबके पैर धोये ॥ ३९ ॥ हे महाभाग! श्रुतदेवके सब मनोरथ पूर्ण होगये। उन्होने हर्षित होकर उस पवित्र चरणोदकसे सपरिवार स्वयं स्नान किया और घरभरमें छिड़ककर उस भूमिको पवित्र किया ॥ ४० ॥ फिर अनायास मिलीहुई फल, उशीर, सुवासित मधुर पत्ते, सुगन्धित मृत्तिका, तुलसीदल, कुश, कमल कुसुम और शान्ति देनेवाले सात्विक अन्न आदि सामग्रियोंसे पूजा करके वह अपने मनमें विचारनेलगे कि—"अहो! मैं तो गृहरूप अन्धकूपमें पड़ाहुआ एक अधम व्यक्ति हूँ; जिन

चरणोंकी रजमें सब तीर्थ हैं और जो साक्षात् हरिके निवासका स्थान हैं, उन, इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका और साक्षात् विष्णु कृष्णचन्द्रका संगम मुझको कैसे प्राप्त हुआ !" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महाराज ! तदनन्तर श्रीकृष्णजी जब सब ब्राह्मणोंसहित सुखपूर्वक आसनपर बैठे, तब स्त्री, पुत्र और स्वजनमण्डलीके साथ कृष्णचन्द्रके निकट बैठ उनके चरणोंको दबातेहुए श्रुतदेवने कहा कि–"हे परमपुरुष ! आप आज ही मुझको नहीं मिले हैं; जब अपनी शक्तियोंके द्वारा इस जगत्की सृष्टि करके निज सत्ता(चैतन्य)के द्वारा इसके अभ्यन्तरमें आपने प्रवेश किया था तभीसे आप मुझसे मिलेहुए हैं। किन्तु जैसे निद्रित पुरुष, आत्ममाया अपनी अविद्याके द्वारा मनसे ही केवल स्वप्नकल्पित लोकसृष्टि करके उसमें प्रवेश करता हुआ अवभासमान होता है वैसेही आप भी केवल अभी दृष्टिगोचर हुए हैं ॥ ४३–४५ ॥ जो सब निर्मल अन्तःकरणवाले पुरुष, निरन्तर आपके गुण और कर्मोंको सुनते और गाते हैं—आपकी पूजा और वन्दना करते हैं—आपसे चित्तद्वारा मिलते रहते हैं—उन्हींके हृदयके भीतर आप प्रकट होते हैं; किन्तु मेरे तो नेत्रोंके आगे उपस्थित हैं, इसकारण मेरा अहोभाग्य है ॥ ४६ ॥ जिन लोगोंका चित्त सकाम कर्मोंमें अनुरक्त है उनकेलिये आप हृदयमें रहकर भी अत्यन्त दूर हैं, और जो लोग निरभिमान हैं—जिनके अन्तःकरण आपके भजन, श्रवण और कीर्तनसे पवित्र हो गये हैं उनके लिये आप अत्यन्त निकट और सुलभ हैं ॥४७॥ भगवन् ! आप अध्यात्मज्ञानियोंके विचारमें परमात्मा अर्थात् मोक्षदाता हैं और देहाभिमानी जीवोंके लिये अप्रकाशमान हैं, अतएव अपनी मायाके आवरणसे उनकी ज्ञानदृष्टिको ढँककर जन्ममरणके भ्रमजालमें डालनेवाले हैं, सुतराम् सकारण (महत्तत्त्व आदिक कार्य) और अकारण (प्रकृति), दोनो प्रकारकी उपाधियोंको नियन्तारूपसे प्राप्त हैं। आप स्वयं उक्त उपाधियोंसे आवृत नहीं हैं और उक्त उपाधियोंके वशवर्ती जीवकी दृष्टिको अपनी वशवर्तिनी मायाके आवरणसे ढँकेहुए हैं। हे अलुप्त ऐश्वर्यसे सम्पन्न ! हे परमात्मा ! आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ हे देव ! हम आपके भृत्य हैं, कृपापूर्वक आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें ? भगवन् ! जबतक आपके दर्शन नहीं मिलते तभीतक लोगोंको सांसारिक क्लेश भोगने पड़ते हैं" ॥ ४९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन् ! मुनिके यथार्थ कथनको सुनकर प्रणत जनोंकी आर्तिको हरनेवाले भगवान् उनका हाथ पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक हँसकर बोले कि—"ब्रह्मन् ! त्रिभुवनको अपने चरणोंकी रजसे पवित्र करतेहुए विचरनेवाले ये सब मुनिगण मेरे साथ तुमपर अनुग्रह करनेके लिये तुम्हारे भवनमें पधारे हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ देखो–देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ—कुछ कालतक दर्शन, स्पर्श और सेवा करनेसे धीरे धीरे पवित्र करते हैं, किन्तु साधु-ब्राह्मणोंको एक बार देखने और प्रणाम करनेसे ही

तत्क्षण शरीर और मन शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण, जन्मसेही सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ और पूजनीय है और यदि वह तप, विद्या, सन्तोषसे युक्त तथा मेरी उपासना करनेवाला हो तो फिर उसके लिये क्या कहना है ? ॥ ५३ ॥ ब्राह्मण मेरी ही मूर्ति है; मुझको यह चतुर्भुज रूप भी ब्राह्मणसे बढ़कर प्रिय नहीं है । जितना मैं ब्राह्मणरूपकी सेवासे सन्तुष्ट होता हूँ उतना इस रूपकी पूजा और सेवासे नहीं सन्तुष्ट होता; क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्व देवमय हूँ ॥ ५४ ॥ ब्राह्मण, मुझको सर्वत्र व्यापक जानता और महत्तत्त्व, पञ्चतत्त्व आदि सहित सम्पूर्ण चराचर जगत्में मेरी ही भावना करता है एवं सबको मेरा ही स्वरूप मानता है ॥ ५५ ॥ मन्दमति (नासमझ) लोग ऐसा न जानकर (अर्थात् ब्राह्मणोंको भी अपनेही समान साधारण मनुष्यमात्र समझकर) ब्राह्मणोंको दोषदृष्टिसे देखते और उनका अनादर करते हैं; किन्तु जो लोग बुद्धिमान् हैं वे ब्राह्मणोंको मुझ आत्माका श्रेष्ठरूप मानते और अपना गुरु व पूज्य समझकर उनका आदर करते हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये हे विप्रवर ! इन सब ब्रह्मर्षियोंको मेरा ही स्वरूप समझो और श्रद्धापूर्वक इनका पूजन करो । इनकी पूजा करनेसे साक्षात् मेरी पूजा होगी और मैं प्रसन्न होऊँगा । अन्यथा और रूपोंमें बड़ी सामग्रियोंसे पूजा करनेपर भी मैं पूर्णरूपसे नहीं सन्तुष्ट होता" ॥ ५७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—इसप्रकार प्रभुकी आज्ञा पाकर मैथिल ब्राह्मण श्रुतदेवजी, कृष्णसहित सम्पूर्ण ब्रह्मर्षियोंकी एकभावसे आराधना करके अन्तसमय सद्गतिको प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान् भक्तवत्सलः ॥
उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥

राजन् ! भक्तवत्सल भगवान् दोनो भक्तोंको इसप्रकार श्रुतिसम्मत ब्रह्मपरतारूप मुक्तिका मार्ग बताकर द्वारकाको लौट गये ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्providedाशीतितम अध्याय

वेदस्तुति

परीक्षिदुवाच—ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! जिसका प्रत्यक्षरूपसे निरूपण नहीं किया जा सकता और जो निर्गुण एवं सत् (कारण) असत् (कार्य), दोनोसे

परे है—उस परब्रह्मके रूप (तत्त्व)का वर्णन या निरूपण, सगुण श्रुतियाँ किस-प्रकार करती हैं? ॥ १ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! ईश्वरने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके लिये लोगोंके (उक्त चतुर्वर्गके साधनस्वरूप) बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी सृष्टि की है ॥ २ ॥ पूर्वजोंके भी पूर्वज ब्रह्मा आदि आचार्योंने बुद्धि आदिके द्वारा इन परब्रह्मपरायण उपनिषद् वाक्योंका धारण (मनन) किया है (अर्थात् शिष्टपरम्परासे आरही इन श्रुतियोंमें सन्देह न करना चाहिये); जो कोई तर्क वितर्क न करके आदरसे मन लगाकर इन सनातन सत्य श्रुतियोंको पढ़ता, सुनता और भावार्थका मनन करता है वह अकिञ्चन अर्थात् देहादिक उपाधियोंसे मुक्त होकर क्षेमस्वरूप परम पदको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ मैं इसी विषयकी एक गाथा (इतिहास) तुमको सुनाता हूँ; जिसे नारदजीके पूछनेपर स्वयं भगवान् ऋषिवेषधारी नारायणने कहा है। इस कथाप्रसङ्गमें ब्रह्मतत्त्वकी मीमांसा हुई है ॥ ४ ॥ एकसमय भगवान्के प्रिय नारदजी अनेक लोकोंमें विचरतेहुए सनातन ऋषि नारायणके दर्शनकी इच्छासे बदरिकाश्रमको गये ॥ ५ ॥ भगवान् नारायण, भारतवासी लोगोंके शुभ और स्वस्तिके लिये उस स्थानमें कल्पके आरम्भसे धर्मपालनपूर्वक शान्त स्वभावसे ज्ञानचर्चा करतेहुए तप कर रहे हैं ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! नारदजीने वहाँ पहुँचकर कलापग्रामनिवासी योगी ऋषियोंकी मण्डलीमें बैठेहुए भगवान् नारायणको प्रणाम किया और उनसे यही प्रश्न किया ॥ ७ ॥ नारायणजीभी सब ऋषियोंके आगे नारदजीसे उनके प्रश्नका उत्तर देतेहुए, जनलोकनिवासी महर्षियोंमें जो पहले ब्रह्मविषयकी मीमांसा हुई थी उसे इसप्रकार कहनेलगे ॥ ८ ॥ नारायणने कहा—हे नारद! पहले एकसमय जनलोकमें वहाँके निवासी ब्रह्माके मानस पुत्र मुनियोंने ब्रह्मसत्रका आरम्भ किया। यद्यपि तुम भी जनलोकवासी हो, परन्तु उस समय तुम मेरी ही अनिरुद्धनामक मूर्तिके दर्शन करनेवास्ते श्वेतद्वीपको गयेथे; अतएव वहाँ उपस्थित न थे। उस ब्रह्मसत्रमें श्रुतियोंके अनुसार ब्रह्मके विचारका आरम्भ होनेपर यही प्रश्न उपस्थित हुआ, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो। वहाँपर उपस्थित सब महानुभावोंने शास्त्रके ज्ञानमें, तपमें और स्वभावमें समान एवं मित्र, शत्रु और उदासीन व्यक्तियोंमें समदर्शी होकर भी एकको वक्ता बनाकर सुननेकी इच्छासे यही प्रश्न किया ॥ ९-११ ॥ तब सनन्दन नाम महर्षिने इसप्रकार उक्त प्रश्नका उत्तर दिया। सनन्दनजीने कहा—कि जैसे

१ विद्या-ज्ञान आदिमें समान योग्यता रखनेवाले लोग जिसमें एकको यजमान बनाकर और सब ऋत्विक् व सदस्य बनकर कर्म करते हैं उस यज्ञको कर्मसत्र कहते हैं, और वैसेही सब बातोंमें समान योग्यता रखनेवाले व्यक्ति जिसमें एकको वक्ता बनाकर और अन्य सब श्रोता बनकर ब्रह्मका विचार करते हैं उसका नाम ब्रह्मसत्र है।

अनुगत बन्दीजन निद्रित चक्रवर्ती राजाको प्रातःकाल आकर उसके सुयशसे पूर्ण पराक्रमोंका वर्णन करतेहुए जगाते हैं वैसे ही प्रलयसमयमें निजरचित इस सम्पूर्ण विश्वको निज शक्तियोंसहित अपनेमें लीन करके योगनिद्राद्वारा निद्रित अर्थात् निश्चेष्ट परमेश्वरको श्रुतियाँ उसका प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंसे इस-प्रकार जगानेलगीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ ईश्वरप्रतिपादिका श्रुतियोंने यों कहा कि—"हे अजित! हे अच्युत! जय जय अर्थात् उत्कर्ष प्रकट करो। हे प्रभो! स्थावर और जंगम जीवोंकी अविद्यारूपिणी मायाको दूर करो। क्योंकि आपका स्वरूप सब ऐश्वर्योंका आधार है एवं अविद्या भी जीवोंको मोहित करनेहीके लिये गुण ग्रहण किये अवस्थित है। अतएव परप्रतारिणी स्वेच्छाचारिणी इस मायाको विनष्ट करनाही आपका आवश्यक 'कर्तव्य' है। हे प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी हैं, सकल जीवोंकी सब शक्तियोंके उद्बोधक हैं; आपके सिवा इस मोहमयी अवि-द्याको कौन मिटा सकता है? स्वामिन्! इस तत्त्वको हम (श्रुतियाँ) अवगत हैं! वेदोंमें ही आपके मायामय सृष्टि आदिके समय रक्खेगये सगुण रूप और सत्य-ज्ञानानन्दमय अखण्ड नित्य निर्गुण रूपका प्रतिपादन है ॥ १४ ॥ वेदमें इन्द्र, अग्नि आदि देवतोंका भी प्रतिपादन किया गया है सही, किन्तु वे इन्द्र आदिके प्रतिपादक वेदमन्त्र इन्द्र आदिको भी आपका ही रूप मानते हैं। जैसे घटकी उत्पत्ति और लय मृत्तिकामें ही है, अतएव मृत्तिका ही घटकी शेष अवस्था है और इसीकारण घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं है, ऐसा समझा जाता है, वैसेही अवि-कारी ब्रह्म जो आप हैं उन्हीसे सब (इन्द्र, अग्नि आदि) की उत्पत्ति और लय होता है; अतएव इनकी शेष अवस्था आप ही हैं; और इसीकारण इन्द्र आदि भी आपसे भिन्न नहीं हैं। इसीलिये वेदमन्त्र और ऋषियोंने कायिक, वाचिक और मानसिक, सब प्रकारके कर्मोंका मुख्य लक्ष्य आपहीको बताया है। कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे यह एक स्थिर सिद्धान्त है कि सब भूचर प्राणी पत्थर, ईंट, काष्ठ आदि जिसपर पैरका भार देकर खड़े हो सकें सो सब पृथ्वी है वैसेही यहभी अखण्डनीय सिद्धान्त है कि वेदका प्रत्येक मन्त्र और प्रत्येक पद आपका ही प्रतिपादन करता है ॥ १५ ॥ हे तीनो गुणोंके ईश्वर! आपही परमार्थ हैं, यह निश्चय करके विवेकी लोग जब सब लोगोंके पापपुंजको नष्ट करने-वाली आपकी अमृतमयी कथाके सागरमें केवल गोता लगाकर पाप–तापसे मुक्त हो जाते हैं तब हे परम! जो लोग आत्मतत्त्वके ज्ञानद्वारा राग, द्वेषादि अन्तःकरणके धर्म और जरा, मरण, यौवन आदि कालके धर्मोंसे मुक्त होकर अखण्ड आनन्दानुभवस्वरूप जो आपका रूप है उसको भजते हैं उनके पाप–तापसे मुक्त होनेमें क्या सन्देह है? ॥ १६ ॥ आपमें भक्ति होनेसेही मनुष्यजन्मकी सफलता होती है, नहीं तो जो आपसे विमुख हैं वे लोहारकी

धौंकनीके समान वृथा साँस लेते (जीते) हैं। आपहीके अनुग्रहसे महत्तत्त्व एवं अहंकार आदिक, समष्टि-व्यष्टिरूप शरीरोंको उत्पन्न करते हैं, आप अन्नमय आदि पाँच कोपोंमें मिलकर अन्नमय आदि पञ्चकोपसे प्रतीत होते हैं, आपही अन्नमय आदि पञ्चकोपका मूल हैं, तथापि स्थूल और सूक्ष्म-दोनो प्रकारके पञ्चकोपोंसे अतिरिक्त हैं, केवल उनके साक्षीमात्र हैं। आपही इन पञ्चकोपोंकी अन्तिम अवस्था हैं, अतएव सत्य हैं। इसकारण देह-अन्तःकरण आदिमें ओतप्रोत भावसे अवस्थित जो आप हैं उनसे विमुख होनेपर, मुक्तिकी कौन कहे, तुच्छ विषयसुख (भोग) भी नहीं मिल सकता॥ १७॥ ऋपिकृत सम्प्रदाय मार्गोंमें कूर्पदृक् (स्थूलदृष्टि) सम्प्रदायवाले मणिपूरकस्थ स्थूल ब्रह्मकी उपासना करते हैं और आरुणि सम्प्रदायवाले बहुनाड़ीसङ्कुल हृदयस्थलमें सूक्ष्म परब्रह्मकी उपासना करते हैं। हे अनन्त! आपकी उपलब्धि (प्राप्ति)का स्थल ज्योतिर्मय श्रेष्ठ सुषुम्णा नाम नाड़ी है; जोकि हृदयसे उठकर मस्तकको गई है। उस नाड़ीमें प्राप्त होकर यह जीव फिर संसारमें नहीं पड़ता॥ १८॥ हे भगवन्! आप अपनेहीसे उत्पन्न देह आदि विविध विचित्र स्थानोंका कारण है, अतएव पहलेहीसे उन सबसे आपका अलक्ष्य संबन्ध है; सुतराम् उनमें आपके प्रकृत प्रवेशकी सम्भावना न होनेपर भी आप प्रविष्ट ऐसे प्रतीत होकर, स्वरूपतः विशेपशून्य अग्नि जैसे ईंधनके आकारके अनुसार विशेप विशेप रूपसे प्रकाशित होता है वैसे ही आप भी न्यूनाधिक भावसे प्रकाशमान होते रहते हैं। निर्मलबुद्धियुक्त, इसीकारण ऐहिक और पारलौकिक कर्मफलकी वासनासे शून्य विवेकीजन, उक्त सम्पूर्ण देहादिको मिथ्या मानतेहुए, उनमें अवस्थित निर्विशेप, सन्मात्र, भगवत्स्वरूपको ही सत्य समझकर प्राप्त होते हैं॥१९॥ अपने कर्मोंसे उपार्जित इन मनुष्यादि शरीरोंमें वर्तमान कार्य और कारण(स्थूल और सूक्ष्म शरीर)के आवरणसे मुक्त पुरुप (आत्मा)को ही, पण्डित लोग, सर्वशक्तिमान् जो आप हैं उनका अंश मानते हैं। पृथ्वीमण्डलके सम्पूर्ण पण्डित (सदसद्विवेकी) लोग, इसीप्रकार मनुष्यतत्त्वको विचारपूर्वक अवगत होकर विश्वासपूर्वक संसारसे मुक्त करनेवाले आपके चरणोंको भजते हैं और उन्हीको सम्पूर्ण सांसारिक कर्मोंके अर्पणका एकमात्र स्थान समझते हैं॥ २०॥ हे ईश्वर! जिसका जानना सहज नहीं है उस आत्मतत्त्वको प्रकट करनेहीके लिये आप मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। आपके पवित्र चरित्ररूप सुधासागरमें गोता लगाकर जो लोग श्रमशून्य हो गये हैं और आपके कमलसम श्रीचरणोंमें हंसके समान रमनेवाले भक्तोंमें अग्रगण्य

---

१ श्रुति कहती है—शार्कराक्षा उपासते हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो ब्रह्म हैव ता इत ऊर्ध्वंत्वेनोदसर्पत्तच्छिरो श्रयते।

साधुओंके सङ्गमें जिन्होने गृहको छोड़ दिया है वे थोड़ेसे निष्किञ्चन पुरुष, मुक्तिकीभी कामना न कर, भक्तिमय परमानन्दमेंही मग्न रहते हैं ॥ २१ ॥ स्वामिन्! आपकी सेवाके उपयुक्त यह मनुष्यशरीर ही आत्मा, बन्धु और प्रियजनके समान आचरण करनेवाला, अर्थात् स्वाधीन है, किन्तु हाय! हाय! देहधारी जन इस साधनस्वरूप देहको पाकर भी, अनुग्रहकारी हितकारी और परम प्रिय आत्मा जो आप हैं उनको इस शरीरसे सखाभावद्वारा न भजकर, इस असत् शरीर(और शरीरसम्बन्धी परिवार)के ही लालन-पालनमें व्यग्र रहते, अतएव आत्मघात करतेहुए संसारचक्रमें घूमा करते हैं! कैसे खेद और शोककी बात है!! ॥ २२ ॥ मुनिलोग प्राण और मनको वशमें करनेके उपरान्त इन्द्रियसंयमपूर्वक दृढ़ योगके द्वारा हृदयमें जिस तत्त्वका ध्यान करते हैं, उसी तत्त्वको आपके स्मरणके प्रभावसे, आपसे शत्रुता रखनेवाले लोग भी प्राप्त हुए हैं। आपके भुजगेन्द्रभोगसम विशाल बाहुओंमें कामके आवेशसे जिनका चित्त निविष्ट होगया है वे परिच्छिन्न (अविद्यासे आच्छन्न) दृष्टिवाली स्त्रियाँ (गोपिका आदि) एवं आपके चरणकमलसुधारससे छकेहुए समदर्शी हम लोग, दोनो ही आपके निकट समान हैं ॥ २३ ॥ अहो! पीछेसे जिनकी उत्पत्ति और विनाश होता है उनमेंसे कौन ऐसा है जो सृष्टिके भी पूर्ववर्ती आप हैं उनका साक्षात् निरूपण कर सके अथवा साक्षात् अवगत हो सके? अर्थात् अनुभवयुक्त अनुमानसे ही सब आपका निरूपण करते हैं। आदिऋषि ब्रह्मा भी आपहीसे उत्पन्न हैं और आध्यात्मिक, आधिदैविक, दोनो प्रकारके देवता भी ब्रह्माके बाद आपहीसे उत्पन्न हुए हैं; आप प्रलयकालमें जब त्रैलोक्यको अपनेमें लीन करके शयन करते हैं तब सत् अर्थात् स्थूल (आकाशादि) और असत् अर्थात् सूक्ष्म (महत्तत्त्वादि) एवं (स्थूल-सूक्ष्मकृत) दोनो प्रकारके शरीर नहीं रहते, कालकृत वैषम्य और इन्द्रियादिक नहीं रहते, और शास्त्र भी नहीं रहता ॥ २४ ॥ असत् पदार्थ जगत्की उत्पत्तिका निरूपण करनेवाले, सत् आत्माके ब्रह्मतत्त्वकी उत्पत्तिका निरूपण करनेवाले, 'स्वरूपतः विद्यमान इक्कीस प्रकारके दुःखोंका दूर होनाही मुक्ति है'-ऐसा कहनेवाले, आत्माको जगत्से और कार्य व कारणसे भिन्न माननेवाले, और कर्मफलहीको सत्य माननेवाले, क्रमशः वैशेषिक, पातञ्जलि, सांख्य, न्याय और मीमांसा नामक दर्शनशास्त्रोंके उक्त उपदेश आपमें भ्रमकृत आरोपमात्र हैं। आपके रूपका ज्ञान न होनेसेही पुरुषके त्रिगुणात्मक भेद प्रतीत होते हैं। और आप तो सबसे परे अखण्डज्ञानरूप हैं। ब्रह्मज्ञानही आपका रूप है, इसलिये कभी आपमें उस ज्ञानका अभाव नहीं है ॥ २५ ॥ मानसिक विलासमात्र यह त्रिगुणात्मक जड़-जीवका प्रपञ्च, वास्तवमें असत्य होनेपर भी, आपमें अधिष्ठित होनेके कारण, आपकी सत्यतासे सत्य सा प्रतीत होता है। आत्म-

तत्त्वके जाननेवाले लोग, 'यह प्रपंच भी आत्मासे भिन्न नहीं है,–ऐसा समझकर आत्मस्वरूपसे ही इसको सत्य मानते हैं। जब कि आत्मा, निजरचित इस जगत्में कारणरूपसे प्रविष्ट है तब इसको आत्मस्वरूप समझना युक्ति-युक्तही है। देखो, सुवर्ण पानेकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति यदि सुवर्णके विकार कुण्डल आदिको पा जाता है तो सुवर्ण ही समझकर ले लेता है, छोड़ता नहीं है ॥ २६ ॥ सब प्राणियोंका आवास समझकर जो लोग आपकी सेवा करते हैं, हे ईश्वर! वे मृत्युको तुच्छातितुच्छ समझ उसके शिरपर पैर रखकर चले जाते हैं। और जो लोग आपके भक्त नहीं हैं वे चाहे महामहान् पण्डित क्यों न हों, उनको आप पशुओंकी भाँति वाणीके प्रपंचकी रस्सीसें बाँधकर इधरउधर भटकाते हैं। आपके प्रेमीजन अपनेको और औरोंको भी पवित्र और कृतार्थ करते हैं; केवल ज्ञानी आदिक और लोग वैसा नहीं कर सकते ॥ २७ ॥ आपके कोई इन्द्रिय नहीं है, तथापि आप सम्पूर्ण इन्द्रियशक्तिके प्रवर्तक हैं; क्योंकि आप निरपेक्ष भावसे स्वयं प्रकाशमान हैं। प्रजासे कर लेनेवाले छोटे छोटे मण्डलाधिपति नरपति लोग जैसे एक महाराजाधिराज चक्रवर्तीको कर देते हैं वैसेही अविद्याश्रित इन्द्रादि देवगण और ब्रह्मादि प्रजापतिगण भी आपको पूजोपहार देतेहुए आपहीके भयसे आपहीके दियेहुए अपने अपने अधिकारके अनुसार कर्तव्य-पालन करते रहते हैं ॥ २८ ॥ हे नित्ययुक्त! आप मायासे दूर हैं। उस मायाकी ओर निहारकर जब आप क्रीड़ा करना चाहते हैं तब इन स्थावर–जङ्गमरूप सम्पूर्ण जीवोंका आविर्भाव होता है। उक्त प्रकारसे जो आप मायाको देखते हैं उसीसे जीवके बन्धनस्वरूप कर्म अथवा वासनामय लिङ्गशरीरकी उत्पत्ति होती है। कर्म अथवा लिङ्गशरीरका यदि आविर्भाव न होता तो जीवसृष्टिमें ऐसा वैषम्य होना असम्भव था; क्योंकि आप तो करुणावरुणालय, आकाशकी भाँति सबके लिये समान और निर्लेप एवं वाक्य व मनके अगोचर हैं? आपके न कोई आत्मीय है और न कोई अनात्मीय (गैर) है ॥ २९ ॥ हे नित्य! यदि अन्य-मतानुसार जीवात्मागण वास्तवमें अनन्त हैं एवं नित्यस्वरूप हैं तो वे सभी समान हैं, अतएव उनमें शास्य–शासक भाव न होना चाहिये, सुतराम् आप भी उनके नियन्ता नहीं होसकते, ऐसा कहना पड़ेगा। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है? आप सब जीवोंके नियन्ता हैं। क्योंकि जिससे जीवमात्रका जन्म है वही जीव-मात्रका अपरित्याज्य कारण है और वही जीवमात्रका नियन्ता है। वह कौन है सो तो हम (श्रुतियाँ) ठीक बता नहीं सकतीं, किन्तु इतना अवश्य कह सकती हैं कि वह सर्वत्र विद्यमान है, ज्ञानी होनेका अभिमान रखनेवाले लोगोंको अज्ञात है। उसके अज्ञात होनेका एक कारण यह भी है कि सभी ज्ञात वस्तुओंमें एक-न-एक दोष अवश्य रहता है, किन्तु वह संपूर्ण निर्दोष है ॥३०॥ वास्तवमें प्रकृति या पुरुषकी

अथवा दोनोकी जीवरूपसे उत्पत्ति नहीं होती। क्योंकि वेदमें प्रकृति और पुरुष, दोनोंको अज अर्थात् जन्मरहित बताया है; इसके सिवा युक्तिसे भी यही सिद्ध होता है। प्रकृति और पुरुषके परस्पर सम्बन्धविशेषसे ही प्राणादिविशिष्ट जीवकी उत्पत्ति होती है। देखो, केवल जल या केवल वायुसे 'बुल्ला' (पानीका बुल्ला) नहीं उपजता, जब जल और वायु दोनोका संयोग होता है तभी बुल्लेकी उत्पत्ति होती है। हे परम! जीवका वास्तविक जन्म नहीं होता, अतएव नाना नाम और रूपोंसे युक्त जीव, आपमें ही लीन हो जाता है। कुसुमोंसे रस खींचनेवाली मधुमक्षिका(मधमाखी)के सञ्चित मधु(शहद)में जैसे कुसुमरस विशेषरूपसे उपलब्ध नहीं होता—एकरूप हो जाता है, वैसेही सुपुप्ति और प्रलयके समय आपमें जीवका लय होता है; और तत्त्वज्ञान हो जानेपर जो आपमें जीवका लय होता है वह समुद्रमें नदियोंके मिलनेके समान है ॥ ३१ ॥ आपकी मायासे चलायेगये इस संसारचक्रमें सभी जीव चक्कर खारहे हैं–यह देखकर विवेकी जन, इससे छुड़ानेवाले जो आप हैं उन्हीकी अत्यन्त अनुवृत्ति अर्थात् भक्ति करते हैं। आपकी भक्ति प्राप्त होनेपर फिर संसार(आवागमन)का भय नहीं रहता। क्योंकि कालस्वरूप आपकी सम्वत्सररूप भ्रुकुटी अभक्तजनोंके ही हृदयमें भयका सञ्चार करती रहती है ॥ ३२ ॥ यह अत्यन्त चञ्चल चित्तरूप घोड़ा, इन्द्रियों और प्राणोंको वशमें करलेनेपर भी, नहीं वशीभूत होता। जो कोई गुरु (यथार्थ गुरु ईश्वर)के चरणोंकी शरणमें न जाकर अन्य उपायसे चित्तको वशमें करना चाहते हैं, वे, किंकर्तव्यमूढ़ और लक्ष्यभ्रष्ट होकर, समुद्रके भीतर डगमगा रही बिना मल्लाहकी नावपर चढ़ेहुए वणिक्वृन्द(सौदागरोंके झुण्ड)के समान, बहुत विघ्नोंसे पूर्ण अवस्थामें पड़कर संसारसमुद्रमें गोते खाते हैं ॥ ३३ ॥ आपके सेवक जो सज्जन हैं वे सदैव सर्वानन्दमय साक्षात् परमात्मा जो आप हैं उन्हीके पानेका प्रयत्न किया करते हैं, फिर वे स्वजन, पुत्र, देह, पत्नी, धन, घर, पृथ्वी, प्राण और यान (सवारी) आदि तुच्छ वस्तुओंकी ओर भूल-कर भी नहीं दृष्टि डालते। इस सत्य सिद्धान्तको न जाननेके कारण स्त्रीसङ्गके सुखमेंही अपनेको धन्य माननेवाले असावधान पुरुषोंको, स्वभावतः नश्वर और सारशून्य इस संसारमें कोई भी सुखी नहीं कर सकता ॥ ३४ ॥ जिनके हृदयमें आपके चरणकमल निरन्तर वर्तमान रहते हैं, जिनके चरणोदकसे बड़े बड़े पापोंके पहाड़ बह जाते हैं वे निरहंकार ऋषिगण भी भगवद्भक्तोंमें अग्रगण्य गुरुओंके तीर्थरूप आश्रमोंमें अथवा (सत्सङ्गकी लालसासे) पुण्य तीर्थक्षेत्रोंमें जाकर रहते हैं और विवेक, धैर्य, क्षमा, शान्ति आदि अन्तःसारके मिटानेवाले गृहों(स्त्री-पुत्रादि परिवार)को छोड़ देते हैं। उनकेलिये तो कुछ कहना ही नहीं है, किन्तु नित्यानन्दमय परमात्मारूप आपतक एक बार भी जिनका मन पहुँच गया है वेभी

फिर पापपूर्ण गृहमें नहीं आसक्त होते ॥ ३५ ॥ यह जगत् सत् (ब्रह्म)से उत्पन्न है, अतएव यह भी सत् है–इसप्रकारकी व्याप्ति तर्कविरुद्ध है; क्योंकि इससे ब्रह्म और जगत्के कार्य-कारण प्रसङ्गमें परस्पर भेदभावकी सिद्धि होती है। यदि कोई कहे कि "इस व्याप्तिसे अभेदसिद्धि हमारा अभीष्ट नहीं है, किन्तु 'कार्य और कारणमें भेद नहीं रहता'–यही हम दिखाना चाहते हैं," तोभी हम कह सकती हैं कि इसस्थलमें 'व्यभिचार' है। सुतराम् 'व्याप्ति' रह नहीं सकती पुत्र, पितासे उत्पन्न होकर भी उससे भिन्न है (वैसेही ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी यह विश्वका प्रपञ्च उससे भिन्न है), इसीको 'व्यभिचार' कहते हैं; [यदि कोई कहे कि "ब्रह्म केवल निमित्त कारणही नहीं है जो व्यभिचार(पिता–पुत्रन्याय)से व्याप्तिका निषेध करते हो], उपादानकारण भी तो वही है; उपादानकारणसे (घटकुण्डलादिवत्) कार्य कभी भिन्न नहीं होता," तो इसका उत्तर यही है कि इसमें भी 'बाधा' है। मान लो, रस्सीमें साँपका भ्रम हुआ, सुतराम् सर्पका उपादानकारण वह रस्सी ही ठहरी, जो कि सत् है, तब क्या सर्प भी सत् है ? सर्प तो सत् नहीं है। यदि फिर भी कोई कहे कि "वहाँपर तो सर्पका उपादान केवल रस्सी ही नहीं, किन्तु अज्ञानयुक्त रस्सी है, अतएव सर्पमें सत्यता कैसे हो सकती है ?," तो हम कहती हैं कि विश्वका उपादान सत् भी अविद्यायुक्त है, सुतराम् भ्रमकृत सर्पके सदृश यह विश्व भी मिथ्या सिद्ध होता है। हाँ, यह अवश्य है कि वास्तवमें न होनेपर भी, हम लोग, केवल अन्धपरम्पराक्रमसे प्रचलित व्यवहारको निवाहनेवाले संस्कार-जनित भ्रम(माया)से ही ईश्वरका जगत्से सम्बन्ध मानते हैं। हे भगवन्! आपकी वेदरूप वाणी, गौणी लक्षणा आदि वृत्तियोंसे, जिनको केवल कर्मकाण्डमें ही श्रद्धा है उनको भ्रममें डालती है–मोहित करती है (अर्थात् वेदोक्त यज्ञादि कर्मोंके स्वर्गआदिक फल भी नित्य नहीं है। वेदमें जहाँपर कर्मफलको नित्य कहा है वहाँपर वास्तवमें वेदका अभिप्राय यह नहीं है कि कर्मफल नित्य हैं। वहाँपर लक्षणाके द्वारा यह मानना चाहिये कि ये फल प्रशस्त (उत्तम) हैं। ऐसा न समझकर जो कर्मफलको नित्य मान बैठते हैं वे कर्मफलमें आसक्त लोग भ्रममें पड़ेहुए हैं ॥ ३६ ॥ यह विश्व, सृष्टिके पहले नहीं था और प्रलय हो जानेपर नहीं रहेगा; इसीसे निश्चय होता है कि मध्यावस्थामें यह विश्व, अद्वितीय जो आप हैं, उनमें प्रकट रहता है। किन्तु वास्तवमें, आपमें विश्वकी मध्यस्थिति भी मिथ्या है। इसकारण वेदमें इस विश्वकी उपमा, मृत्तिका सुवर्ण आदिके विकार जो घट कुण्डल आदि हैं, उनसे दीगई है (अर्थात् जैसे केवल नाममात्रको घट आदिकी सत्ता है वैसेही नाममात्रको जगत्की भी सत्ता है। मनोरथके सदृश वासनामय मनके विलासमात्र इस विश्वको जो लोग सत्य समझते हैं, वे मूढ़ हैं) ॥ ३७ ॥ यह जीव, मायाके प्रभावसे अविद्याका अवलम्ब लेता हुआ, जड़ देह,

इन्द्रिय आदिको आत्मस्वरूप मानकर, देह इन्द्रिय आदिके सारूप्यको प्राप्त होता है, इसीसे इसका स्वाभाविक आनन्द-रूप आवृत रहता है और यह संसारचक्रमें चक्कर लगाया करता है। वही जीवस्वरूप आप, (जब अपने अपरिमेय ऐश्वर्यको अपनेमें देखते हैं, अपने नित्यप्राप्त परिपूर्ण ऐश्वर्यको विचारते हैं तब) सर्प अपनी केंचलीको जैसे छोड़ देता है वैसेही अपनी मायाको छोड़ देते हैं। माया आपहीका गुण या शक्ति है, परन्तु आपको उसकी अपेक्षा नहीं है। हे अपरिमित ऐश्वर्यसे सम्पन्न! अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंका ऐश्वर्य भी जिसको शिर झुकाता है उस परम ऐश्वर्यमें आप विराजमान हैं ॥ ३८ ॥ हे भगवन्! जितेन्द्रिय जन भी यदि हृदयस्थित विषयवासनाको दूर नहीं कर सके तो उन कच्चे योगियोंके लिये, हृदयमें रहनेपर भी आप वैसेही अप्राप्य हैं जैसे गलेमें पड़ीहुई मणिमाला भूल जानेपर ढूँढे नहीं मिलती। उन टट्टीकी ओटमें शिकार करनेवाले, अर्थात् तपस्वीवेषसे विषयसुखमें लिप्त योगियोंको दोनो प्रकारसे दुःख ही मिलता है। इसलोकमें तो धनसञ्चय आदिमें क्लेश ही मिलता है और 'कहीं भण्डा न फूट जाय'-यह खटका लगा रहनेसे सुख (चैन) नहीं मिलता, और परलोकमेंभी आपका स्वरूप न पाने और अपने धर्मका त्याग कर देनेके कारण आपके दिये दण्डके अनुसार नरक भोग करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ हे छहों ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न! जिन्होने आपको जान पाया है, वे, आपके सिरजेहुए शुभाशुभ कर्मोंके फलको अपना सुख या दुःख नहीं समझते और देहाभिमानी लोगोंके लिये कल्पित विधि-निषेधवाचक वाक्योंका भी अनुगमन नहीं करते। क्योंकि सत् सम्प्रदायके अनुसार, आप, निरन्तर मनुष्योंके कानोंमें पहुँचकरही उनको मुक्ति देते हैं। अतएव वे भी विधि-निषेधसे मुक्त हैं ॥ ४० ॥ आप अनन्त हैं, अतएव ब्रह्मादिक लोकपाल भी आपका अन्त नहीं पाते। यही नहीं, किन्तु आप भी आकाशके समान अपना अन्त नहीं पासकते। हे देव! सप्तावरणवेष्टित ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी, आकाशमें वायुद्वारा धूलिकणके समान, आपमें कालचक्रके द्वारा संचालित होकर एकसाथ ही भ्रमण किया करते हैं। आपमेंही समाप्त श्रुतियाँ, असत् (जो वह सत् ब्रह्म नहीं है) का त्याग करतीहुई, अपनी अवधि जो आप हैं उन्हीमें प्रतिफलित होती हैं अर्थात् प्रतिपादन करती हैं" ॥४१॥ **श्रीनारायण कहते हैं—** हे नारद! इसप्रकार आत्मानुशासनको सुनकर, आत्माकी गतिको अवगत होकर, सिद्धावस्थाको प्राप्त ब्रह्माके पुत्रोंने सनन्दनका पूजन किया। आकाशमें विचरनेवाले ब्रह्माके ज्येष्ठ पुत्र सनकादिकोंने यह सम्पूर्ण वेद शास्त्र और पुराणोंको मथकर उनके रहस्यका सारांश (तात्पर्य) निकाला है। हे नारद! तुम श्रद्धापूर्वक सात्त्विक दृढ भक्तोंकी सब कामनाओंको या वासनाओंको जीर्ण करनेवाले इस आत्मानुशासनपर ध्यान धर, अकुतोभय हो, सर्वत्र विचरो

॥ ४२–४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! नैष्ठिक ब्रह्मचारी देवर्षि नारदजीने गुरु नारायणसे प्राप्त आत्मानुशासनको श्रद्धापूर्वक हृदयमें स्थापित कर आत्मज्ञानसे कृतार्थ होकर कि, "सम्पूर्ण प्राणियोंको संसारपाशसे छुड़ानेके लिये अंशकलाधारी निर्मलकीर्तिसम्पन्न साक्षात् परब्रह्म नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ"। आद्य देवर्षि नारदजी, इसप्रकार नारायणरूप कृष्ण और उनके महात्मा शिष्योंको प्रणाम करके मेरे पिता वेदव्यासजीके आश्रमको गये। मेरे पिताने यथोचित पूजन और सत्कारके उपरान्त बैठनेके लिये आसन दिया। नारदजीने भी नारायणजीके मुखसे सुना हुआ यह आत्मतत्त्व मेरे पिताको सुनाया ॥ ४५–४८ ॥ हे राजन्! 'अनिर्देश्य निर्गुण परब्रह्ममें मन कैसे पहुँच सकता है' इस आपके प्रश्नका उत्तर मैंने भलीभाँति समझकर कह दिया ॥ ४९ ॥

योऽस्योत्प्रेक्ष्यक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनु प्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥
यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥

जो इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारका मूल कारण है; जो इस अपनी सृष्टिमें जीव (चेतन) रूपसे अनुप्रविष्ट है; जो प्रकृति और पुरुषका उपादान कारण है; जो भोगभवनके समान ब्रह्माण्डको रचकर इसका शासन करता है; जिसके चरणकमलोंको पाकर–जीव इस मोहमयी अविद्याके बन्धनसे मुक्त हो जाता है; उस कैवल्ययोनि अर्थात् अप्रच्युत स्वरूपके अवस्थानसे मायाका तिरस्कार करनेवाले अभयवरदाता हरिका ही निरन्तर ध्यान करना चाहिये। हे राजन्! जैसे निद्रित प्राणी, किसीको और अपने (शरीर) को भी नहीं देखता वैसेही जो लोग उस ईश्वरको प्राप्त हो गये हैं अर्थात् तन्मय हो गये हैं वे जीवन्मुक्त पुरुष, ब्रह्मसे भिन्न इस जगत्को और अपने (शरीर) को भी नहीं देखते। हाँ, अन्य लोगोंकी दृष्टिमें संस्कार जन्य शरीरसे उनका सम्बन्ध अवश्य रहता है ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितम अध्याय

शम्भु-मोचन

राजोवाच–देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ॥
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! देखा जाता है कि देवता, दैत्य और मनुष्योंमें जो कोई भोगाभिलाषशून्य शंभुको भजते हैं वेही धनी और भोग-सम्पन्न हैं और जो कोई सब भोगोंके भवनरूप साक्षात् लक्ष्मीपति विष्णुको भजते हैं वे प्रायः अकिञ्चन हैं। इस विरुद्ध फल मिलनेका कारण क्या है? हमको यह बड़ा सन्देह है। विरुद्धशील प्रभुओंके भक्तोंकी ऐसी विरुद्ध गतिका क्या कारण है, सो हम जानना चाहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! शिवदेव, निरन्तर शक्तियुक्त गुणमय और त्रिलिङ्ग अर्थात् वैकारिक तैजस और तामस भेदसे त्रिविध अहंकारके अधिष्ठाता हैं; उन्हीसे दश इन्द्रिय, पाँच तत्त्व और मन, ये सोलह विकार उत्पन्न हुए हैं। अतएव विकारोपाधियुक्त शिवको भजनेसे उपाधिके अनुरूप विभूतियोंका रूप (भोगादि धनादि) मिलता है। और हरि भगवान् साक्षात् निर्गुण अर्थात् प्रकृतिसे परे परम पुरुष हैं, वह सर्वदर्शी और सबके अन्तर्यामी हैं। उनको भजनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है ॥ ३–५ ॥ राजन्! अश्वमेध यज्ञ समाप्त होजानेपर तुम्हारे पितामह युधिष्ठिरने भागवत धर्मोंको सुनते समय अच्युत कृष्णसे यही प्रश्न किया था। मनुष्योंको आवागमनके भ्रमजालसे छुड़ानेके लिये यदुकुलमें प्रकट होनेवाले, छः ऐश्वर्य गुणोंसे सम्पन्न प्रभु कृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर उसका उत्तर यों दिया था ॥ ६ ॥ ७ ॥ भगवान्‌ने कहा—"हे युधिष्ठिर! मैं जिसपर अनुग्रह करनेवाला होता हूँ उसको क्रमशः निर्धन कर देता हूँ। दुःखपर दुःख पाते देखकर उसके स्वजन उसको आपही छोड़ देते हैं। तदनन्तर बार बार धन पानेकी चेष्टा विफल होनेसे, वह विरक्त होजाता है और फिर मेरे भक्तोंसे मित्रता करते है, अर्थात् उनकी मण्डलीसे मेल बढ़ाता है। उससमय मैं उसपर विशेष अनुग्रह करके उसके चित्तमें अपना अनुराग प्रकट करता हूँ। इसप्रकार मेरी भक्ति पाकर वह धीर व्यक्ति, परम सूक्ष्म ज्ञानमात्र सत् अमृत ब्रह्मको अपनाही स्वरूप जानकर संसारसे मुक्त हो जाता है। इसीसे लोग मुझ दुराराध्यको छोड़कर, थोड़ेही कालमें प्रसन्न होकर कामभोग देनेवाले (मेरेही गुणकृत रूप), सुलभ, अन्यान्य वरदानी देवतोंकी उपासना करते हैं। उन आशुतोष देवतोंसे राज्य लक्ष्मी आदि विभवोंको पाकर वे उद्धत मत्त और प्रमत्त हो उठते हैं और

अन्तमें उन देवतोंको भी भूलकर उनकी अवज्ञा (तिरस्कार) करते हैं" ॥८-११॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु और महेश, तीनो देव, शाप और प्रसादके अधीश्वर हैं। उनमें ब्रह्मा और शिव, शाप भी देते हैं और अनुग्रह भी करते हैं। परन्तु शान्तरूप भगवान् विष्णु वैसे नहीं हैं, वह भजनेवाले और न भजनेवाले, दोनोपर कृपा करनेवाले हैं। यहाँपर इसी विषयपर पुरा तत्त्ववेत्ता विद्वानोंका कहाहुआ एक इतिहास हम तुमको सुनाते हैं। जिसप्रकार वृकासुरको वर देकर शिव देव संकटमें पड़े, सो हम कहते हैं, सुनो ॥१२॥१३॥ शकुनि नाम असुरका पुत्र दुर्मति वृकासुर, तप करनेके विचारसे जारहाथा, राहमें उसको नारद मुनि मिले। असुरने प्रणाम करके नारदसे पूछा कि, "ब्रह्मा विष्णु, महेश, इन तीनमें कौन देव आशुतोष अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होनेवाला है?" ॥ १४ ॥ नारदने कहा, "तुम देवदेव महादेवकी आराधना करो तो तुम्हारा मनोरथ शीघ्रही सफल होगा। वह थोड़ेही दोषसे कुपित और थोड़ेही गुणसे प्रसन्न होते हैं। देखो, शङ्करने शीघ्र प्रसन्न होकर वन्दीके समान स्तुति करनेवाले बाणासुर और रावणको वाञ्छित वर देदिया और अन्तको आपही संकटमें पड़े (रावणने कैलास पर्वत उठालेना चाहा और बाणासुरके पुरका पहरेदार बनना पड़ा)" ॥ १५ ॥ १६ ॥ देवर्षि नारदके बतानेके अनुसार वृकासुरने केदारतीर्थमें जाकर अग्निमें अपने शरीरके माँसकी आहुति देकर शिवकी आराधना करना आरम्भ किया। सात दिनतक इसप्रकार आराधना करनेपर भी जब शङ्करका दर्शन न मिला तब वह दैत्य बहुतही खिन्न होकर केदार तीर्थमें स्नान करनेके उपरान्त खड्ग लेकर आहुतिके लिये अपना शिर काटनेको उद्यत हुआ। उसीसमय परम कृपालु शंकरजी साक्षात् मूर्तिमान् अग्निके समान (जैसे काष्ठसे अग्नि प्रकट होता है उसप्रकार) प्रतिमासे प्रकटहुए और हाथ पकड़कर दैत्यको अपना शिर काटनेसे निवृत्त किया। भगवान् शङ्करके सुधामय मङ्गलमय करकमलका स्पर्श पातेही वृकासुर प्रसन्नता व आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठा, अर्थात् उसका छिन्नभिन्न शरीर फिर साङ्गोपाङ्ग पुष्ट और बलिष्ठ होगया ॥ १७–१९ ॥ राजन्! शिवदेवने उससे कहा कि "बस, बस जो तेरी इच्छा है उसे पूर्ण करनेके लिये मैं प्रकट हुआ हूँ। मैं शरणागत मनुष्योंपर सदा सन्तुष्ट रहता हूँ। अहो वृथा आत्माको क्लेश न दे" ॥ २० ॥ यह सुनकर उस पापी असुरने महादेवसे सब प्राणियोंको भय देनेवाला यह वर माँगा कि 'मैं जिसके शिरपर अपना हाथ रख दूँ वह तत्क्षण भस्म हो जावे' ॥ २१ ॥ भगवान् रुद्रने उसके मनोरथको सुनकर उदास भावसे जैसे कोई सर्पको अमृत पिलादे वैसेही 'तथास्तु' कह दिया। वह असुर अपनी प्रकृतिके अनुसार शम्भुपर ही उनके दिये वरकी परीक्षा करनेके लिये उद्यत हुआ। उस दैत्यको अपनेही शिरपर हाथ रखनेके लिये अपनी ओर बढ़ते देखकर

शङ्कर बहुत घबड़ाये, और अपनी चूकपर पश्चात्ताप करतेहुए, भयभीत हो प्राण लेकर वहाँसे भागे। वेगपूर्वक उत्तर दिशासे भागकर दशोदिशा, स्वर्गलोक, सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल आदिमें, जहाँ जहाँ शिव गये वहाँ वहाँ पीछे पीछे वृकासुरभी दौड़ताहुआ पहुँचा ॥२२-२४॥ सब सुरेश्वरगण उक्त सङ्कटके प्रतीकारका उपाय न जाननेके कारण चुपचाप खड़े शिवकी दुर्दशा देखतेरहे, तब अन्यत्र रक्षा न देखकर भगवान् शंभु उस परमधाम वैकुण्ठ लोकमें पहुँचे जहाँ न्यस्तदण्ड (संन्यासी), शान्त, भावुक जनोंकी एकमात्र परमगति साक्षात् भगवान् नारायण निवास करते हैं और जहाँ पहुँचकर यह जीव फिर संसारमें नहीं आता। आर्तिभञ्जन हरिने हरको इसप्रकार संकटमें पड़ा हुआ देखकर आश्वास दिया और योगमायाद्वारा बौने ब्रह्मचारीका रूप धरकर दानवके सम्मुख देखपड़े। मेखला, कृष्णाजिन, कुशपुंज, दण्ड, कमण्डलु और अक्षमाला आदिसे सुशोभित, साक्षात् प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विप्रवेष हरिको सामने आते देखकर दानवने अत्यन्त नम्रतासे प्रणाम किया ॥ २५-२८ ॥ भगवान्ने कहा, "हे शकुनिके पुत्र! यह स्पष्ट जान पड़ता है कि बहुत दूर चलनेकी थकावटसे तुम शिथिल हो रहे हो। क्षणभर यहाँ ठहरकर विश्राम करलो, क्योंकि इस आत्मा(शरीर)से ही सब पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं; इसकारण इसको कष्ट देना उचित नहीं है। हे पुरुषसिंह! तुम किस कामके लिये दौड़तेहुए जा रहे हो? यदि कहनेयोग्य हो तो हमसे कहो। लोगोंके सभी काम दूसरेकी सहायतासे सहजमें सिद्ध हो सकते हैं, अतएव हमसे अपना प्रयोजन कहो; सम्भव है, हमभी तुम्हारी सहायता कर सकें" ॥ २९ ॥ ३० ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! भगवान्के इन सुधासम मधुर वचनोंको सुननेसे असुरकी सब थकन मिटगई और उसने सब वृत्तान्त आदिसे अन्ततक कह सुनाया ॥ ३१ ॥ तब भगवान्ने कहा कि, "यदि ऐसा है तो भाई हम शिवकी बातका विश्वास नहीं करते। वह दक्ष प्रजापतिके शापसे पिशाचवृत्तिको प्राप्तहुए हैं। जो प्रेत व पिशाचोंके अधिपति हैं, जिनकी बुद्धि विष खानेसे, भांग पीनेसे नष्ट भ्रष्ट होगई है उन शिवको हे दानवेन्द्र! यदि तुम जगद्गुरु मानते हो और उनके ऊपर श्रद्धा रखते हो तो शीघ्र अपने ही मस्तकपर हाथ रखकर परीक्षा क्यों नहीं करलेते? यदि हमारे विश्वासके अनुसार शम्भुका कथन (वर) मिथ्या निकले तो मिथ्या बोलनेवाले, प्रतारक शम्भुको वह दण्ड देना जो उन्हे कभी न भूले और फिर इसप्रकार वह कभी किसीसे मिथ्या बोलनेका साहस न करें" ॥ ३२-३४ ॥ भगवान्के ऐसे मधुर, कोमल, विचित्र और मोह उपजानेवाले वाक्योंसे दानवेन्द्रकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और उसने अपनेही ऊपर अपनी दुर्मतिका दुरुपयोग किया, अर्थात् अपनेही शिरपर हाथ रख लिया ॥ ३५ ॥ शिरपर हाथ रखते ही वज्राहत व्यक्तिके समान वह पापी असुर तत्क्षण प्राणहीन होकर पृथ्वीपर

गिरपड़ा। आकाशमें स्थित ऋषिगण, पितृगण, गन्धर्वगण आदि आकाशचारी और देवतालोग "जय जय!, नमो नमः!, साधु साधु" कहतेहुए फूलोंकी वर्षा करनेलगे। इसप्रकार हरिके बहँकानेसे वह महापापी असुर मरा और शङ्कर सङ्कटसे छूटे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सङ्कटमुक्त महादेवके निकट आकर पुरुषोत्तम हरिने कहा कि, "अहो! हे देवदेव महादेव! वह पापी असुर अपनेही पापसे नष्ट होगया। हे ईश्वर! महत् लोगोंका अपराध करके क्या कोई व्यक्ति कुशल मङ्गलसे रह सकता है? आप विश्वनाथ, साक्षात् जगत्के गुरु हैं, आपका अपराधी असुर कैसे बच सकता था?" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः
परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥
गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा
विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥

राजन्! वाणी और मनके अगोचर अर्थात् अतर्क्य और अचिन्त्य शक्तिके सागरस्वरूप साक्षात परमात्मा हरिके इस शम्भुमोचन चरित्रको जो कोई श्रद्धापूर्वक पढ़ता या सुनता है वह भी शम्भुके समान शत्रुकृत सङ्कटसे और संसारपाशसे छूटकर परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितम अध्याय

भृगुकृत त्रिदेवपरीक्षा

श्रीशुक उवाच—सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥
वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! एकसमय सरस्वती नदीके तटपर यज्ञ कर रहे ऋषियोंकी मण्डलीमें यह तर्क उपस्थित हुआ कि "ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनो देवोंमें कौन महान् या श्रेष्ठ है?" ॥ १ ॥ हे नृप! उन ऋषियोंने उक्त विषयकी परीक्षा करनेके लिये ब्रह्माके पुत्र महर्षि भृगुको भेजा। महात्मा भृगु पहले ब्रह्मलोकमें गये ॥ २ ॥ ब्रह्माके सत्त्व(महत्त्व)की

परीक्षा करनेके लिये भृगुने न उनको प्रणाम किया और न स्तुति की। यह देखकर कमलासन ब्रह्मा अपने तेजसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर भृगुपर कुपित हुए ॥ ३ ॥ किन्तु फिर प्रभु स्वयम्भू ब्रह्माने पुत्रपर उपजेहुए क्रोधको, जैसे कोई तेजतत्त्वसे ही उत्पन्न जलसे अग्निको शान्त करे वैसे ही स्वयं (अपने विवेकसे) शान्त किया ॥ ४ ॥ तब भृगु वहाँसे चलकर कैलास पर्वतपर पहुँचे। देवदेव महेश्वर आनन्दसहित भाईसे मिलनेके लिये उठे, परन्तु भृगुने "तुम कुमार्गगामी अर्थात् ठीक राहपर न चलनेवाले हो, मैं तुमसे मिलना नहीं चाहता" यह कहकर शङ्करका तिरस्कार किया। इससे अत्यन्त कुपित हो, लाल आँखें करके शिवने भृगुको मारनेके लिये त्रिशूल उठाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब देवी पार्वतीने पैरोंपर गिरकर विनयपूर्वक पतिको समझाकर शान्त किया। तब वहाँसे चलकर महर्षि भृगु वैकुण्ठ लोकमें पहुँचे। जनार्दन भगवान् दिव्य पर्यङ्कपर लक्ष्मीकी गोदमें शिर धरेहुए शयन कर रहे थे। भृगुने जाते ही लक्ष्मीपतिकी छातिमें एक लात मारी। साधुजनोंकी गति भगवान् उसी क्षण उठकर लक्ष्मीसहित पलँगसे उतर पड़े और शिर झुकाकर प्रणाम करके मधुर वाणीसे बोले—"ब्रह्मन्! आपको आनेमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? इस आसनमें क्षणभर वैठकर विश्राम कर लीजिये। हे प्रभो! हमने आपके आगमनको नहीं जाना, इसीसे यह अपराध हुआ, क्षमा करिये। हे भगवन्! ये आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं, मेरे कठिन वक्षःस्थलकी चोटसे कष्ट हुआ होगा"। यों कहकर भृगुके पैरोंको अपने हाथसे सहलातेहुए हरिने फिर कहा कि, "हे भगवन्! सम्पूर्ण तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाले अपने चरणोदकसे मुझको और मुझमें स्थित लोकपालगणसहित समस्त लोकोंको पवित्र करिये। भगवन्! शोभाका एकमात्र आश्रय यह आपके चरणका चिन्ह मुझको प्राप्त हुआ, इससे मेरे सब पातक नष्ट हो गये। इसको मैं आभूषणके समान हृदयमें रक्खूँगा। अब लक्ष्मी निश्चल होकर मेरे हृदयमें रहेगी" ॥७–११॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! ब्रह्मण्यदेवके ऐसे गम्भीर वचन सुनकर भृगु मुनि अत्यन्त तृप्त और सुखित हुए एवं अवाक् रहगये, कुछ भी न बोल सके। भक्ति और प्रेमसे भृगुजीका हृदय भर आया एवं नेत्रोंसे आनन्दके आँसू गिरनेलगे ॥ १२ ॥ राजन्! वैकुण्ठलोकसे लौटकर भृगुजी अपने यज्ञस्थलमें आये और ब्रह्मवादी मुनियोंके आगे, जो कुछ जहाँ हुआ था उसका आदिसे अन्ततक पूर्ण वर्णन किया ॥ १३ ॥ सुनकर सब मुनियोंको विस्मय हुआ और उनका सन्देह निवृत्त हो गया। सब महर्षिगण शान्ति और अभयकी साक्षात् मूर्ति विष्णु भगवान्को सर्वोत्तम, सर्वोपरि मानकर कहनेलगे कि, "जो साक्षात् धर्म

स्वरूप हैं, जिनसे चार प्रकारके वैराग्यसे सम्पन्न ज्ञान, आठ प्रकारका ऐश्वर्य और आत्माको निर्मल करनेवाला यश प्राप्त होता है; जो शान्त, न्यस्तपण (संन्यस्त), समदर्शी अकिञ्चन, परोपकारी मुनियोंकी एकमात्र गति हैं; सत्त्व जिनकी प्रिय मूर्ति है और ब्राह्मण जिनके इष्टदेव हैं; निपुणबुद्धिवाले, निष्काम, शान्त-स्वभाव महात्मा लोग जिनको भजते हैं, वही भगवान् नारायण, सर्वोत्तम देव हैं। यद्यपि (उन्हीकी) गुणमयी मायासे उत्पन्न सुर, असुर और राक्षस (अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश)—तीनो उन्हीकी आकृति अर्थात् मूर्तियाँ हैं, तथापि (उनका सत्त्वमय (सुर अथवा विष्णु) रूपही सब पुरुषार्थ, अर्थात् परमार्थका हेतु है" ॥ १४-१८ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—राजन्! स्वयं सर्वज्ञ होकर भी अन्य साधारण मनुष्योंका सन्देह मिटानेके लिये इसप्रकार निश्चय (सिद्धान्त) करके, वे सरस्वतीतटवासी महर्षि, परमपुरुषके पादपद्मको भजतेहुए भगवद्गति अर्थात् परम पदको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ **सूतजी कहते हैं**—हे शौनकजी! मुनितनय श्रीशुकदेवजीके मुखकमलसे निकलेहुए, अमृततुल्य, भवभयभञ्जन इस परम पुरुषके प्रशंसनीय यशको, जो कोई संसारपथिक प्राणी, कानोंके द्वारा वारंवार पीता है उसको फिर संसारमें भटनेका कष्ट नहीं उठाना पड़ता, अर्थात् वह आवागमनसे मुक्त हो जाता है ॥ २० ॥ **शुकदेवजीने कहा**—हे भारत-कुलतिलक! द्वारका पुरीमें एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और पृथ्वीमें गिरते ही मर गया ॥२१॥ वह ब्राह्मण उस मृत पुत्रके शरीरको राजद्वारपर लेकर आया और वहाँ उसे रखकर अत्यन्त दुःखपूर्वक कातर स्वरसे रोताहुआ कहनेलगा कि "ब्राह्मणद्रोही, शठबुद्धि, लोभी, विषयासक्त, क्षत्रियाधम राजाके ही कर्मदोषसे मेरा बालक मर गया। जब राजा हिंसामें रमनेवाला, दुष्टचरित्र और अजितेन्द्रिय होता है तभी प्रजाको दारिद्र्य, भाँति भाँतिके दुःख और कष्टोंसे पीड़ित होना पड़ता है"। यों कहकर मृत पुत्रको राजद्वारपर रखकर वह ब्राह्मण अपने घरको चला गया। इसीप्रकार

---

१ यतमान (विषयोंको पूर्ण रीतिसे न त्याग सकनेपर भी उनके मिलनेका आग्रह छोड़ देना), पहले प्रकारका वैराग्य है। व्यतिरेक (किसी किसी विषयको छोड़ देना, जैसे विना नोनकी भी दाल खा लेना), दूसरे प्रकारका वैराग्य है। एकेन्द्रिय (प्रवृत्ति रहनेपर भी मनमें विषयोंके अनुरागकी शिथिलता होनेके कारण केवल बाह्य इन्द्रियोंसेही विषयसेवन करना), तीसरे प्रकारका वैराग्य है और वशीकृत (उसका भी अभाव अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंसे भी विषयसेवनमें उदासीनता) चौथे प्रकारका पूर्ण वैराग्य है। यथा—

'वैराग्यमाद्यं यतमानसंज्ञं क्वचिद्विरागो व्यतिरेकसंज्ञम्।

एकेन्द्रियाख्यं हृदि [illegible] वशीकारसंज्ञम् ॥' इति।

क्रमशः उस ब्राह्मणका दूसरा, तीसरा और चौथा पुत्र भी उत्पन्न होते ही मर-गया। उनको भी वह ब्राह्मण, राजद्वारपर, पूर्वोक्त वाक्य कहकर, पहलेकी भाँति रख आया ॥ २२–२५ ॥ राजन्! इसीप्रकार उत्पन्न होतेही मरनेवाले नवम बालकको लेकर ब्राह्मण राजद्वारमें गया और वेही पूर्वोक्त वाक्य कहकर विलाप करनेलगा। इससमय वीर अर्जुन, कृष्णचन्द्रके पास बैठे थे। वह ब्राह्मणके विलापको सुनकर बाहर आये और ब्राह्मणसे बोले कि "हे विप्रदेव! आप क्यों वृथा विलाप कर रहे हैं? आपके निवासके इस स्थानमें वीर पराक्रमीकी कौन कहे, केवल धनुष धारण करनेवाला भी कोई क्षत्रिय नहीं देख पड़ता, जो आपके इन बालकोंको मृत्युसे बचावे। ये तो ब्राह्मण लोग यहाँपर मिलकर यज्ञ कर रहे हैं। जिनके जीवित रहते राज्यमें ब्राह्मण लोग धन, पत्नी, पुत्र आदिके वियोगसे शोकाकुल होते हैं वे क्षत्रिय नहीं हैं–उनको केवल पेट पालने और विषयभोग करनेके लिये क्षत्रियवेषधारी नट समझना चाहिये। भगवन्! पुत्रशोकसे आप स्त्री, पुरुष, दोनो अत्यन्त दीन और व्याकुल हो रहे हैं। आप विश्वास करिये, मैं अबकीबार आपके पुत्रकी रक्षा करूँगा। यदि मैं अपनी इस प्रतिज्ञाका पालन न कर सकूँगा तो उसी समय अपने (प्रतिज्ञा न पाल सकनेके) पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये अग्निमें जल जाऊँगा" ॥ २६–२९ ॥ यह सुनकर ब्राह्मणने कहा, "भगवान् सङ्कर्षण, भगवान् वासुदेव, धनुषधारियोंने श्रेष्ठ प्रद्युम्न और जिनका सामना करनेवाला कोई योद्धा नहीं है वह भगवान् अनिरुद्ध, जिसकी रक्षा नहीं कर सकते उसको तुम कैसे बचा सकते हो? जो कर्म जगदीश्वरोंके लिये भी दुष्कर है उसको तुम मूर्खतावश करना चाहते हो। अतएव हमको तुम्हारी प्रतिज्ञापर विश्वास नहीं होता" ॥३०॥३१॥ राजन्! तब फिर अर्जुनने घमण्डके साथ कहा कि "हे ब्रह्मन्! मैं सङ्कर्षण, कृष्ण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध नहीं हूँ! मैं अर्जुन हूँ! जिसका गाण्डीव धनुष है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मन्! मैंने जिस पराक्रमसे युद्धमें साक्षात् शिवको भी प्रसन्न कर दिया है उसका, इसप्रकार अश्रद्धा प्रकट करके, आप अनादर न करिये। हे प्रभो! मैं युद्धमें मृत्युको भी जीतकर आपके बालकको ले आऊँगा" ॥ ३३ ॥ हे शत्रुदमन! अर्जुनने यों कहकर उस ब्राह्मणको विश्वास दिलाया और वह अर्जुनके पराक्रमको सुनकर प्रसन्नचित्त हो अपने घरको गया ॥ ३४ ॥ जब विप्रपत्नीके बालक जननेका समय आगया तब वह ब्राह्मण घबड़ाहटके कारण दौड़ता हुआ अर्जुनके पास आया और कहनेलगा, "हे पार्थ! अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मृत्युसे मेरी सन्तानकी रक्षा करो, रक्षा करो" ॥ ३५ ॥ अर्जुन भी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणके साथ उसके घर गये। वहाँ जाकर अर्जु-नने हाथ पैर धोकर पवित्र जलसे आचमन किया और फिर महेश्वरको प्रणाम कर, गाण्डीव धनुप चढ़ाकर, अपने वशवर्ती दिव्य अस्त्रोंको स्मरण कर अनेक

अस्त्रयुक्त बाणोंसे सूतिकागृहको ढँक दिया। ऊर्ध्वमुख अधोमुख और आड़े तिछे बाणोंसे अर्जुनने उस सूतिकागृहको बाणनिर्मित पिंजड़ासा बना दिया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यथासमय विप्रपत्नीके बालक उत्पन्न हुआ और बारंबार रोताहुआ उसी क्षण आकाशमार्गमें जाकर अदृश्य हो गया। और बार तो बालकका मृत शरीर रह जाता था, परन्तु अब तो शरीरसहित बालक अदृश्य हो गया ॥ ३८ ॥ तब वह ब्राह्मण, कृष्णके निकट (जहाँ अर्जुन भी थे) जाकर इसप्रकार अर्जुनकी निन्दा करता हुआ कहने लगा कि, "अहो! मेरी मूर्खता तो देखो कि मैंने एक नपुंसकके आत्मप्रशंसापूर्ण कथनपर विश्वास कर लिया। मैंने तो पहले ही कहा था कि कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आदि जिसकी रक्षा नहीं करसकते उसकी और कोई कैसे रक्षा करसकता है? मिथ्यावादी और वृथा ही अपने मुखसे अपने पराक्रम और धनुषकी प्रशंसा करनेवाले अर्जुनको एवं उसके धनुषको धिःक्कार है" ॥ ३९–४१ ॥ ब्राह्मणको यों कहकर तिरस्कार करते देख, पराक्रमी अर्जुन, उसी समय योगविद्याके बलसे संयमिनी पुरीको गये; जहाँ भगवान् यमराज रहते हैं ॥ ४२ ॥ वहाँ ब्राह्मणके पुत्रको न देखकर शस्त्रधारी अर्जुन क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, चन्द्र, वायु, वरुण आदि लोकपालोंके पुरोंमें तथा अतल आदि सातो रसातल और स्वर्गके ऊपर महर्लोक आदि सातो लोकोंमें एवं अन्यान्य स्थानोंमें भी गये; परन्तु उनको कहीं भी ब्राह्मणका पुत्र न मिला। तब प्रतिज्ञा पूर्ण न होते देखकर अर्जुनने चिता लगाकर अग्निमें जलनेका विचार किया। उससमय श्रीकृष्णचन्द्रने आकर अर्जुनको रोका और कहा कि "मित्र! तुम क्यों अग्निमें जलने जाते हो? आपही अपनेको असमर्थ समझकर अपना अनादर न करो। चलो, मैं तुम्हे ब्राह्मणके सब पुत्रोंको दिखाऊँगा। इस कार्यसे मनुष्यलोकमें हमारी अक्षय कीर्ति स्थापित होगी" ॥ ४३–४५ ॥ हे राजन्! सर्वशक्तिमान् कृष्णचन्द्र यों कहकर, अर्जुनसहित अपने दिव्य रथपर चढ़कर पश्चिम दिशाको चले। सात सात पर्वतोंसे युक्त सात द्वीप और समुद्रोंको नाँघकर लोकालोक पर्वतके उस पार महाअन्धकार मार्गमें पहुँचनेपर शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम घोड़े इधरउधर भटकने लगे। यह देखकर महा योगेश्वरोंके भी ईश्वरने सहस्र सूर्यके समान तेजधारी अपना सुदर्शन चक्र आगे कर दिया ॥ ४६–४९ ॥ जैसे धनुषसे छूटकर अप्रतिहतगति रामबाण शत्रुसेनामें प्रवेश करे वैसेही मनके समान शीघ्रगामी वह चक्र अपने महा-तेजसे आकाशतक छायेहुए घोर अन्धकारको हटाता हुआ आगे आगे चला ॥ ५० ॥ चक्रके दिखायेहुए मार्गसे उस घोर अन्धकारके पार पहुँचकर अर्जुनने देखा कि अगणित अपार सूर्योंकी ऐसी अपार ज्योति चारो ओर फैली हुई है। उस श्रेष्ठ ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मतेजकी ओर अर्जुनकी दृष्टि नहीं ठहरसकी और उन्होने प्रकाशसे

प्रतिहत दोनो नेत्र बन्द कर लिये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर अर्जुन और कृष्णचन्द्रने रथके द्वारा आकाशमार्ग (स्थलमार्ग) से उतरकर, बड़े वेगसे चल रहे प्रचण्ड-वायुके झोंकोंसे जिसमें बड़ी बड़ी भय उत्पन्न करनेवाली ऊँची लहरें उठ रही हैं उस अपार जल (समुद्रमें) में प्रवेश करनेके उपरान्त देखा कि एक परम प्रकाश-सम्पन्न अति उत्तम अद्भुत भवन बना हुआ है। उस भवनमें, अत्यन्त चमकीली मणियाँ जिनमें जड़ीहुई हैं ऐसे हजारों सुवर्णके खम्भे सुशोभित हैं ॥ ५२ ॥ भवनके भीतर भीमरूप, श्वेत पर्वतके समान अद्भुत अनन्त शेपनाग विराजमान हैं। उनके मस्तकोंमें स्थित महामणियोंकी प्रभासे उज्वल सहस्र फल फैले हुए हैं और दो हजार भयानक नेत्र हैं एवं कण्ठ और जिह्वाओंका वर्ण नीला है ॥ ५३ ॥ और देखा कि शेपजीके शरीरकी शय्यापर सर्वव्यापक, महानुभाव, श्रेष्ठ पुरुपोंमेंभी श्रेष्ठ साक्षात् नारायण भगवान् सुखपूर्वक लेटेहुए हैं। उनके जलभरे मेघके समान श्याम शरीरपर विजलीके समान पीतपट शोभायमान है। उनका मुखमण्डल प्रसन्न है और नेत्र कमल-दलके सदृश विशाल, अरुण और दर्शनीय हैं ॥ ५४ ॥ उनके महामणियोंके गुच्छोंसे सुशोभित सहस्रशः किरीट मुकुट और कुण्डलोंकी अपरिमित प्रभा चारो ओर फैलीहुई है। सुन्दर, विशाल जानुओंतक लम्बी और मोटी मोटी आठ भुजाएँ हैं और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स तथा लक्ष्मी एवं कण्ठमें कौस्तुभमणि व वनमालाकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ ५५ ॥ सुनन्द, नन्द आदि पार्षदगण और मूर्तिमान् चक्र आदि आयुध एवं मूर्तिमती पुष्टि, श्री, कीर्ति, अजा (माया) तथा अणिमा आदि सम्पूर्ण सिद्धियाँ; इत्यादि सब वैभव, ब्रह्माआदि परमेष्ठी देवोंके भी स्वामी परमेश्वरकी सेवामें साक्षात् उपस्थित हैं ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनने देखते ही सादर शिर झुकाकर उन आत्मा (अपनेही पूर्णरूप) अच्युतको प्रणाम किया। तब ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर सर्वव्यापक प्रभुने हाथ जोड़े खड़ेहुए (अपनेही अंश) कृष्ण और अर्जुनसे मन्द मन्द मुसकाकर प्रसन्नता प्रकट करतेहुए इसप्रकार गम्भीर वाणीसे कहा कि "हे नर और नारायण! तुम्हे देखनेकी इच्छासे मैंने ही ब्राह्मणके बालकोंको यहाँ मँगा लिया है। सनातन धर्मकी रक्षाकेलिये तुम दोनो मेरेही अंशसे पृथ्वीतलपर प्रकट हुए हो। पृथ्वीके लिये भार हो रहे राजवेपधारी असुरोंका संहार करके तुम शीघ्र मेरे निकट आजाओ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ हे नर, नारायण! तुम श्रेष्ठ और पूर्णकाम हो, तथापि मर्यादापालनके लिये तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम धर्मका आचरण करो; जिसमें तुम्हारे आचरणसे अन्य

---

१ यह घटना महाभारतसे पहलेकी है। यहाँपर कृष्णके महत्त्ववर्णनके प्रसङ्गमें कही गई है।

साधारण जन धर्मकी शिक्षा पावें" ॥ ५९ ॥ हे राजन्! परमेष्ठी परमेश्वरकी इस आज्ञाको स्वीकार करतेहुए 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रणाम किया और फिर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणके बालकोंको लेकर जिस राहसे गये थे उसी राहसे द्वारका पुरीको लौटे। द्वारकामें आकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणको उसके सब बालक देदिये। जैसे थे वैसेही अपने पुत्रोंको पाकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुआ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ विष्णु भगवान्के पूर्वोक्त परम धाम अथवा प्रभावको देखकर अर्जुनको बड़ाही विस्मय हुआ और उन्होने समझ लिया कि पुरुषोंमें जो कुछ पौरुष है सो सब कृष्णचन्द्रकी कृपामात्र है ॥ ६२ ॥ हे राजन्! कृष्णचन्द्रने इसप्रकारके महत्त्वसूचक अनेकानेक कार्य करतेहुए पृथ्वीतलपर सम्पूर्ण सांसारिक विषयभोगोंका उपभोग किया और विधिपूर्वक महत्तम यज्ञ भी किये ॥ ६३ ॥ भगवान् कृष्ण अपनी श्रेष्ठता अर्थात् ऐश्वर्यके अनुसार उचित समयपर इन्द्रके समान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णके प्रजागणकी सब कामनाएँ पूर्ण करतेरहे ॥ ६४ ॥

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वार्जुनादिभिः ॥
अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६५ ॥

कृष्णचन्द्रने अपने हाथसे और अर्जुन आदिके द्वारा अधर्मी राजोंका संहार करतेहुए युधिष्ठिर आदिके द्वारा फिरसे सनातन सत्य धर्मको स्थापित किया ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितम अध्याय

संक्षेपसे कृष्णचन्द्रके लीलाविहारका वर्णन और द्वारकापुरीकी सम्पत्तिसमृद्धिका निदर्शन

श्रीशुक उवाच—सुखं स्वपुर्यां निवसद्वारकायां श्रियःपतिः ॥
सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सब प्रकारकी सम्पत्तिसे सुशोभित और वीर यादवोंसे परिपूर्ण अपनी द्वारकापुरीमें साक्षात् लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक अवस्थित थे ॥ १ ॥ दामिनीदाससम कान्तिसम्पन्न, उत्तम वेषवाली, नवयौवनसे परिपूर्ण सुन्दरी कामिनियाँ, द्वारकापुरीके ऊँचे ऊँचे महलोंमें आनन्दपूर्वक कन्दुकक्रीड़ा करती थीं। जिनके मस्तकसे मदजल बहरहा है ऐसे

हाथियोंके झुण्डोंसे, भलीभाँति अलङ्कृत वीरवेषधारी योद्धा लोगोंसे सुवर्ण-मण्डित रथों और अश्ववृन्दोंसे द्वारकापुरीके बड़े बड़े चौड़े मार्ग सब समय परिपूर्ण रहते थे। वह पुरी अनेक उद्यान और उपवनोंसे अत्यन्त सुशोभित थी। उपवनोंमें फूलेहुए वृक्षोंकी डालियोंपर बैठेहुए पक्षीगण और मत्त मधुकरोंके झुण्ड अपने मनोहर गानसे वहाँके निवासियोंको प्रसन्न करते थे ॥ २–४ ॥ सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके एकमात्र वल्लभ (अत्यन्त प्रिय) श्रीपति श्रीकृष्ण-चन्द्र, इसप्रकार सुसज्जित और सुसम्पन्न द्वारकापुरीमें निवास करतेहुए महा-वैभवपूर्ण उन ललनाओंके सोलह हजार भवनोंमें अलग अलग उतने ही रूप रखकर रमण करते थे ॥ ५ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र कभी फूलेहुए उत्पल, कल्हार, कुमुद और पद्म आदि भाँति भाँतिके कमलोंके मकरन्दसे सुवासित सरोवरोंके स्वच्छ जलमें घुसकर भ्रमरोंके मधुर गानको सुनतेहुए उन रानियोंके साथ विहार करते थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ उससमय किनारेके वृक्षोंकी डालियोंपर बैठेहुए पक्षियोंके झुण्ड विचित्र बोलियाँ बोल रहे थे। गन्धर्वलोग मृदङ्ग, पणव, ढोल आदि विविध बाजे बजाते और सूत, मागध, वन्दीजन गुण गाते थे। सब स्त्रियाँ हँसतीहुई पिचकारियोंसे प्रियतम कृष्णको भिगोती थीं और कृष्णचन्द्र भी उनको पिचकारीसे भिगोतेहुए यक्षिणीसमूहके साथ यक्षराजके समान जलविहार करते थे। इसप्रकार जलविहार करतेमें स्त्रियोंके वस्त्र हट जाते थे और कुचकलश खुल पड़ते थे, शिथिल वेणियोंसे फूल झड़ते जाते थे। स्त्रियाँ, जब पिचकारी छीननेके लिये कृष्णसे लिपट जाती थीं तब कामोद्दीपनकी सूचना देनेवाली लज्जायुक्त मुसकानकी प्रभासे उनके मुखमण्डल दमकने लगते थे ॥ ८–१० ॥ स्त्रियाँ कृष्णचन्द्रको भिगोती थीं और कृष्णचन्द्र उनको भिगोते थे। स्त्रियोंके स्तनोंसे, लिपटनेके कारण, छूटेहुए कुङ्कुमके द्वारा सुवासित पुष्पमालाएँ कृष्णके कण्ठसे टूट टूटकर गिर जाती थीं और क्रीड़ाकी आसक्तिसे घूँघरवाली अलकोंका बन्धन शिथिल होनेके कारण मुखमण्डलपर छूटीहुई अलकें लहरानेलगती थीं। उससमय हथनियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे गजराजके समान कृष्णचन्द्रकी शोभा होती थी ॥ ११ ॥ कृष्णचन्द्र और उनकी पत्नियाँ, क्रीड़ाके उपरान्त, नट नर्तकी गवैये बजैये आदि याचकोंको अलङ्कार वस्त्र आदि देकर प्रसन्न करते थे ॥ १२ ॥ कृष्णकी चाल, बातचीत, हँसी, चितवन, क्रीड़ा, आलिङ्गन आदिसे स्त्रियाँ ऐसी मोहित हो रही थीं कि उनकी आँखोंमें हृदयमें और मुखमें एकमात्र कृष्ण बस गये थे–वे सब भूलकर तन्मय हो गई थीं और कभी कभी इस-प्रकार पागलोंके समान मेघ आदि जड़वस्तुओंसे प्रिय-प्रेमपूर्ण वाक्य कहनेलगती थीं ॥ १३ ॥ १४ ॥ कभी कुररी (उन चिड़ियोंको कहते हैं जो प्रायः वर्षाकालमें आकाशमें काँव काँव करतीहुई कतार बाँधकर उड़ती हैं) को देखकर कोई रानी

कहने लगती कि, "हे कुररी! इससमय रातको कृष्णचन्द्र सुखपूर्वक सो रहे हैं और तू क्या विलाप करके उनके सोनेमें विघ्न कर रही है! तू क्यों नहीं सो रहती? क्या तुझे नींद नहीं आती? सखी! क्या हमारे ही समान कमलनयन कृष्णके हास्यपूर्ण उदारलीलाविलासयुक्त कटाक्षरूप बाणोंसे तेरा भी हृदय भलीभाँति बिन्धगया है?" ॥ १५ ॥ कभी कोई रानी चक्रवाक पक्षीकी स्त्रीको अर्धरात्रिके समय भी जागती देखकर कहनेलगती कि, "हे चक्रवाकी! तू पतिके वियोगसे व्याकुल होकर इससमय भी पलक नहीं लगाती और दीन स्वरसे विलाप कर रही है। अथवा क्या तू भी हमारेही समान कृष्णकी दासी होगई है और अच्युतकी चरणसेवित मालाको अपनी वेणीमें रखनेके लिये हो रही है?" ॥ १६ ॥ कभी कोई रानी मेघको गर्जता हुआ देखकर कहनेलगती कि, "हे मेघ! तुम सर्वदा शब्द किया करते हो; तुमको कभी नींद नहीं आती, इसीसे जागते रहते हो। अथवा जैसे हमारे कुचकुङ्कुमादि चिन्होंको हरकर मुकुन्दने हमारी यह दशा कर दी है वैसेही तुम्हारी बिजलीके समान प्रभाशाली कौस्तुभ आदि चिन्होंको लेकर तुम्हे भी इस दुरत्यय दशाको पहुँचाया है?" ॥ १७ ॥ कभी कोई रानी चन्द्रमाको देखकर कहनेलगती कि, "हे चन्द्र! तुमको प्रबल क्षयरोगने ग्रस लिया है, इसकारण क्षीण होते चले जाते हो और अपनी क्षीण किरणोंसे घोर अन्धकारको भलीभाँति दूर नहीं कर सकते। अथवा हमारे ही समान केवल मुकुन्दके मधुर वचनोंका ध्यान रहनेसे प्रतिदिन क्षीण होते जाते हो? तुम कुछ उत्तर नहीं देते, अतएव हमको ऐसाही लक्षित होता है" ॥ १८ ॥ कभी कोई कामपीड़ित रानी मलयानिलसे कहनेलगती कि, "हे मलयपवन! हमने तेरा क्या अप्रिय किया है जो तू गोविन्दके कटाक्षोंसे घायल हो रहे हमारे हृदयमें कामोद्दीपन करके और भी हमें व्यथित कर रहा है" ॥ १९ ॥ कभी कोई रानी श्याम घनको देखकर कहने लगती कि, "हे श्रीयुत श्यामघन! तुम अवश्यही यादवपतिके प्रीतिपात्र हो। तुम भी हमारे ही समान श्रीवत्सधारी प्रिय सखा कृष्णका ध्यान करते हो। तुम उसके प्रेममें मग्न हो रहे हो और अत्यन्त उत्कण्ठासे तुम्हारा हृदय भरा हुआ है। इसीकारण वारंवार प्रियतमका स्मरण करतेहुए रह कर आँसुओंकी धाराएँ (जलकी बूँदें) बहारहे हो। अजी! उनके प्रसङ्गमें ऐसेही दुःख झेलने पड़ते हैं!" ॥२०॥ कभी कोई रानी कोकिलका कूजन सुनकर कहने लगती कि—"हे कोकिल! तुम इस मृतसंजीविनी वाणीसे प्रियंवद श्रीकृष्णके समान सुललित वचन बोल रहे हो। हे कमनीयकण्ठ! कहो, हम तुम्हारी कौन प्रिय कामना पूरी करें?" ॥ २१ ॥ कभी कोई रानी निश्चल पर्वतको देखकर कहनेलगती कि—"हे भूधर! तुम बड़ेही उदारमति अर्थात् गम्भीर हो, न कुछ बोलते हो, और न डोलते हो; जान पड़ता है कि किसी गुरुतर विषयकी चिन्तामें

मग्न हो रहे हो। इससें जान पड़ता है कि हमारे ही समान वसुदेवनन्दनके चरण-कमलोंके पानेको कामनाही तुम्हारा चिन्तनीय विषय है" ॥ २२ ॥ कभी कोई रानी सागरसें मिलनेवाली नदियोंसे कहनेलगती कि–"हे समुद्रकी पत्नियो! तुम्हारे सब गम्भीर जलपूर्ण स्थल सूख गये हैं और कमलकुसुमसञ्चित शोभा नष्टप्राय हो गई है। तुम अत्यन्त क्षीण हो गई हो तथापि यह कठोर समुद्र मेघ-द्वारा अमृतकी वर्षा करके तुमको प्रसन्न और सुसम्पन्न नहीं करता। जैसी हमारी वैसी ही तुम्हारी भी दशा है, जैसे हम अपने परमप्रिय स्वामी यदुपतिके प्रणयावलोकनको न पाकर–उसीके ध्यानसे अत्यन्त क्षीण हो रही हैं और हमारा हृदय (चिन्तासे) शुष्क होगया है वैसेही तुम्हारी भी दशा शोचनीय है" ॥२३॥ कभी कोई रानी राजहंसको देखकर कहनेलगती कि—"हे हंस! भले आये, आओ, सुखपूर्वक बैठो और दुग्धपान करो। हे वंशावतंस! हम जानती हैं कि तुम प्रियतमके भेजेहुए दूत हो, हमारे पास उनका संदेश लेकर आये हो। अच्छा, यदुपतिका समाचार हमसे कहो। श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक कुशलसे हैं? वह अस्थिरसौहृद कृष्ण, क्या कभी हमारा भी स्मरण करते हैं? एकान्तमें बैठ-कर जो प्रेमालाप हमसे करते थे उसका भी कभी स्मरण करते हैं? हे कपटीके दूत! यदि कहो कि उन्होने स्मरण करके तुमको बुलाया है, तो हम क्यों अपनी सौत लक्ष्मीके निकट अवस्थित कृष्णके पास जावें? अतएव उनसे जाकर कहो कि वह चाहें तो हमको धोखा देकर जिससे रमण कर रहे हैं उस लक्ष्मीको छोड़कर अकेले हमारे पास चले आवें। यदि कहो कि लक्ष्मीके तो वह एक-मात्र प्रेमपात्र हैं, वह उनको कैसे छोड़ेगी? तो क्या हम सब स्त्रियोंमें लक्ष्मी ही ऐसी है?–हम भी तो उन्हीको अपना जीवनसर्वस्व समझती हैं" ॥ २४ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णचन्द्रपर ऐसा अनन्य भाव और ऐसी आसक्ति होनेके कारण पूर्वोक्त सब स्त्रियाँ सहजसें ही उस सद्गतिको प्राप्त हुईं, जो बड़े बड़े ऋषि और मुनियोंको भी दुर्लभ है ॥ २५ ॥ किसीके मुखसे वारंवार या एकवार भी जिनके गुण सुनलेनेपर स्त्रियोंका चित्त विवश होजाता है उन कृष्णको प्रतिक्षण देखने सुननेवाली स्त्रियाँ यदि इसप्रकार अपनेको भूलकर उन्हीके अपार प्रेमसागरमें मग्न होगईं तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २६ ॥ हे नरेश! जिन्होने पतिभावसे प्रेमपूर्वक चरणसेवा आदिके द्वारा साक्षात् जगद्गुरुको सन्तुष्ट किया। उन स्त्रियोंका तप वर्णनातीत है ॥ २७ ॥ साधुजनोंकी एकमात्र गति कृष्णचन्द्रने इसप्रकार वेदविहित धर्मका आचरण करके अन्यजनोंके लिये धर्म, अर्थ, कामसहित गृहस्थाश्रमका मार्ग स्पष्ट कर दिया ॥ २८ ॥ राजन्! गृहस्थोंको अपने आचरणोंसे उनके श्रेष्ठ धर्मकी शिक्षा देनेवाले कृष्णचन्द्रके सब मिलाकर सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं–यह

हम पहलेही कह आये हैं ॥२९॥ इन स्त्रीरत्नोंमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानी और उनके पुत्रोंका पूर्ण विवरण भी आपको सुना चुके हैं ॥ ३० ॥ अमोघरति कृष्ण-चन्द्रने अपनी सब स्त्रियोंमें प्रत्येकके दस दस पुत्र उत्पन्न किये[1] ॥ ३१ ॥ उन सब पराक्रमी पुत्रोंमें प्रद्युम्न, अनिरुद्ध (पौत्र अथवा कोई इसी नामका पुत्र), दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, भानुवृन्द, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबर्हि, वरूथ, कवि और न्यग्रोध–ये अठारह महायशस्वी महारथी थे। हे राजेन्द्र ! इन कृष्णके अठारह पुत्रोंमें भी सब बातोंमें पिताके अनुरूप रुक्मिणी-तनय प्रद्युम्नजी श्रेष्ठ थे ॥ ३२–३५ ॥ महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी कन्यासे व्याह किया, उसके गर्भसे प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धका जन्म हुआ। दसहजार हाथीका बल रखनेवाले अनिरुद्धने पुत्री–पुत्र होकर भी रुक्मीकी पौत्रीसे विवाह किया, उसके गर्भसे अनिरुद्धतनय वज्रका जन्म हुआ। मौसलयुद्धमें केवल यही वज्र बचे और सब यादवोंका विनाश हो गया। वज्रके प्रतिबाहु, उनके सुबाहु, उनके उग्रसेन और उनके भद्रसेन हुए ॥ ३६–३८ ॥ राजन् ! इस यदुकुलमें कभी कोई धनहीन, अल्पायु, अल्पवीर्य, अल्पसन्तान या ब्राह्मणविरोधी नहीं उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ यदुवंशमें उत्पन्न प्रसिद्ध यशस्वी पुरुषोंकी गिनती सौ हजार वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती ! सुना जाता है कि यदुबालकोंको शिक्षा देनेवाले गुरु केवल तीन करोड़ एक सौ अट्ठासी पण्डित विद्वान् थे ! तब महात्मा यादवोंकी गिनती कौन कर सकता है ? राजा उग्रसेनकी सभामें सर्वदा अयुतलक्ष अयुत (अर्थात् असंख्य) महावीर यादवलोग उपस्थित रहते थे। राजन् ! असंख्य दारुण दैत्य, देवासुर संग्राममें मरकर मनुष्यलोकमें, राजवंशमें उत्पन्न हुए थे और महामदान्ध होकर प्रजाको पीड़ा पहुँचाते थे। उनका दमन करनेके लिये साक्षात् हरिकी आज्ञासे सब देवगण यदुवंशमें उत्पन्न हुए थे। राजन् ! यादवोंमें एक सौ एक कुल थे। उन यादवोंकी प्रभुताका प्रमाण साक्षात् हरि हुए हैं, जिनके अनुगत होनेसे यादवोंका ऐसा अपूर्व अभ्युदय हुआ ॥४०–४५॥ कृष्णको अपना सर्वस्व समझनेवाले यादव, सर्वदा ऐसे तन्मय रहते थे कि शयन, उप-वेशन, भ्रमण, वार्तालाप, क्रीड़ा, स्नान और भोजन आदिके समय भी अपनेको भूले रहते थे ॥ ४६ ॥ महाराज ! जिनके यदुकुलमें प्रकट कीर्तिरूप तीर्थने उन्हींके चरणोदकरूप गङ्गातीर्थको नीचे कर दिया और जिनके शत्रु और मित्र, दोनोंको एक–समान सारूप्य मुक्ति मिली एवं जिनका नाम, कहने तथा सुननेसे भी सब अमङ्गलोंको दूर करता है और जिन्होने आर्यऋषिकुलमें गोत्र–धर्मकी स्थापना की है उन परम कारुणीक, परम पराक्रमी एवं कालचक्रधारी कृष्णके

---

१ इस हिसाबसे सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके एक लाख साठ हजार अस्सी पुत्र होते हैं।

द्वारा इस पृथ्वीके अनन्त भारका संहार होना, कोई विचित्र व्यापार नहीं है। देखो, जिस लक्ष्मीके लिये और और (ब्रह्मादिक) लोग अनेक प्रयत्न करते हैं वही दुर्लभा और परिपूर्ण लक्ष्मी, अपनी अपेक्षा न रखनेवाले कृष्णचन्द्रको आपही अनन्य भावसे भजती है ॥ ४७ ॥ जो सब जिवोंका आश्रय हैं, जिन्होने कहनेमात्रको देवकीके गर्भसे जन्म लिया, जिन्होने सेवकसमान आज्ञाकारी बड़े बड़े यदुश्रेष्ठोंके साथ अपने बाहुबलसे अधर्मका संहार किया, जो चराचर जगत्के दुःखको दूर करनेवाले हैं, जिनमें सुन्दर हास्यशोभित श्रीमुखको देखकर व्रजबालाओंके हृदयमें कामोद्दीपन हुआ करता था, उन कृष्णचन्द्रकी जय हो ॥४८॥ जिनको परमेश्वरके चरणोंकी अनन्य भक्ति पानेकी इच्छा हो उनको चाहिये कि वे निजकृत धर्मकी रक्षा करनेके लिये मायामानवरूप यदुश्रेष्ठ हरिके जो नरतनुके अनुरूप लीलाविडम्बनमात्र एवं कर्मनाशन चरित्र हैं उनको मन लगाकर नित्य सुना करें ॥ ४९ ॥

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द-
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ॥
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं
ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥

जिनके पानेके लिये राज्यसुखोंको तृणके समान छोड़कर बड़े बड़े महाराज तपोवनको गये हैं उन हरिकी वैसीही दृढ़ अनुवृत्तिको हरिकथाके कीर्तन, श्रवण और मननद्वारा बढ़ाकर, मनुष्य, उस अकुतोभय अविनाशी ब्रह्मधामको जाता है जहाँ मृत्युकी प्रबल गति नहीं है ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इति दशमस्कन्धः समाप्तः ।

शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

एकादशस्कन्ध—

जनमेजयका यज्ञ ।

श्रीः

शुकोक्तिसुधासागरः

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

एकादशस्कन्ध–

प्रथम अध्याय

यदुवंशको ऋषिशाप

श्रीवादरायणिरुवाच–कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥
भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! बलभद्रसहित यादवपरिवृत कृष्णचन्द्रने हिंसापर्यवसित (जिसका परिणाम मारना और मर जाना हो) महाकलहका सूत्रपात करके, उसीसे होनेवाले घोर संग्राममें राजवेषधारी दुष्ट दैत्योंका विनाश किया और इसप्रकार पृथ्वीका भार उतारा ॥१॥ जिन्हे शत्रुता करनेवाले कौरवोंने कपटद्यूत, तिरस्कार, भरी सभामें केश पकड़कर द्रौपदीको लेआना–इत्यादि अनेकानेक अत्याचारोंसे अत्यन्त कोपितकर रक्खा था उन पाण्डवोंको निमित्तमात्र बनाकर, ईश्वर कृष्णचन्द्रने इधरउधरसे लड़नेके लिये आयेहुए

राजोंको मारकर पृथ्वीका भार उतारा ॥ २ ॥ राजन् ! इसप्रकार निजबाहुबलसे सुरक्षित अनुगृहीत पाण्डव और यादवोंके द्वारा, पृथ्वीकेलिये भार होरहे राजोंको और उनकी असंख्य सेनाको मारकर, अप्रमेय कृष्णचन्द्रने विचारा कि "यद्यपि इन सेनासहित दुष्ट राजोंके विनाशसे पृथ्वी बहुत कुछ हलकी होगई है, परन्तु मैं समझताहूँ कि अभी पूर्णरूपसे सब भार नहीं उतरा, क्योंकि यह अविपह्य और प्रबल यादवकुल तो विद्यमान ही है ॥ ३ ॥ यह यादववंश मेरे आश्रित है एवं नित्य बढ़नेवाले हाथी, घोड़े, धनसम्पत्ति आदि वैभवोंसे सुसम्पन्न होकर उनके मदसे उद्दण्ड हो उठा है, अर्थात् किसीको नहीं दबता; अतएव मेरे परम-धामगमनके उपरान्त अन्य कोई इसको नहीं दबा सकेगा—यह यथेच्छाचारसे संसारको पीड़ा पहुँचावेगा। अच्छा, बाँसके झुंडमें परस्परकी रगड़से उत्पन्न अग्नि, जैसे प्रज्वलित होकर उसको जड़मूलसे भस्म कर देता है, वैसेही मैं इस यदुकुलमें परस्पर कलह कराकर उसीकी आगसे इन सबका संहार कराऊँगा; और इसप्रकार पृथ्वीपर शान्ति स्थापन करनेके उपरान्त अपने वैकुण्ठ धामको जाऊँगा" ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार कर्तव्य स्थिरकर सत्यसङ्कल्प सर्वव्यापक ईश्वरने विप्र-शापके मिससे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ जिसकी अपूर्व सुन्दरताके आगे त्रिभुवनकी लुनाई और सुन्दरता तृणसी तुच्छ जँचती है उस भुवनमोहन रूपसे, देखनेवालोंके नयनोंको वशकर और अपने सुधासम मधुर महामनोहर वचनोंसे, जिनको उनके सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनके चित्तको हरकर तथा अनेक स्थानोंमें अङ्कित अपने चरणचिन्होंसे, उन्हे देखनेवालोंकी गति शिथिलकर एवं 'इसके द्वारा अवश्य ही अनायास सब लोग अज्ञान-सागरके पार पहुँच जायँगे', इस अभिप्रायसे कविलोग सुन्दर छन्दोंमें जिसका भली-भाँति कीर्तन करते हैं वह अपनी परम पवित्र कीर्ति पृथ्वीपर फैलाकर साक्षात् ईश्वर कृष्णचन्द्र परम धामको पधार गये ॥६॥७॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि–हे भगवन् ! यादवलोग तो ब्राह्मणोंके परम भक्त, दानी, उदार, नित्य बड़े बूढ़ोंकी उपासना करनेवाले और हरघड़ी कृष्णके ध्यानमें मग्न रहते थे, फिर उनको विप्र-शाप क्यों और कैसे प्राप्त हुआ ? हे द्विजवर ! ब्राह्मणोंने क्या शाप दिया ? उस शापका कारण क्या था ? इसके सिवा यादवोंमें तो बड़ा ही एका था, फिर उनमें ऐसी सर्वसंहार करानेवाली फूट कैसे हुई ? कृपापूर्वक इन मेरे संशयोंको मिटाइये ॥ ८ ॥ ९ ॥ शुकदेवजीने कहा—महाराज ! मन लगाकर सुनिये। सब प्रकारकी सुन्दरतासे सम्पन्न होनेके कारण त्रिभुवनमोहन मनोहर रूप धारण करनेवाले और परम ऐश्वर्यसे पूर्णकाम एवं अपने मङ्गलकारी पवित्र

आचरणोंसे पृथ्वीतलमें उदार अर्थात् बहुफलदायिनी कीर्तिको फैलानेवाले कृष्णचन्द्रने गृहसुखभोगपूर्वक रमतेहुए कुछ अवशिष्ट पृथ्वीके भारको उतारनेके लिये और कुछ समयतक द्वारका धाममें रहकर किसी बहानेसे यादववंशका विनाश करानेकी इच्छा की ॥ १० ॥ इसी अवसरमें वसुदेवके भवनमें उत्पन्न कालरूप कृष्णचन्द्रने, जिनके केवल कीर्तनसे जगत्के कलिमल मिट जाते हैं वे पुण्यदायक पवित्र मङ्गलमय और दोनो लोकोंमें सुख देनेवाले अनेकों पुण्य कर्म किये। विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदिक ऋषिगण, जो कृष्णचन्द्रको उक्त पुण्यकर्म कराने आये थे, कृष्णचन्द्रसे विदा होकर द्वारकाके समीप ही पिण्डारक नाम पवित्र तीर्थमें कुछ कालतक रहकर तप करनेके विचारसे गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ राजन्! वहाँ यादवोंके सब ढीठ बालक खेल रहे थे, सो वे जाम्बवतीके पुत्र साम्बको स्त्रियोंके कपड़े पहनाकर उन ऋषियोंके पास मसखरी करनेके लिये ले गये और बनावटी नम्रता दिखातेहुए ऋषियोंके चरण छूकर कहनेलगे कि—"हे विप्रगण! यह श्यामलोचना सुन्दरी गर्भवती है, इसके प्रसवका समय निकट आगया है, परन्तु लज्जाके कारण अपने मुखसे आप लोगोंसे कुछ पूछ नहीं सकती, इसकारण हमलोगोंके द्वारा पूछती है कि मेरे पुत्र होगा या कन्या? सो कृपा करके बताइये कि इसके क्या होगा? आप लोग सब जानते हैं" ॥ १३–१५ ॥ हे राजन्! इसप्रकार बालकोंको मसखरी करते देख ऋषियोंको क्रोध आगया और उन्होने कुपित होकर कहा कि—"अरे मन्दमति बालको! यह एक लोहेका मुसल जनेगी, जिससे तुम्हारे कुलका विनाश होगा" ॥ १६ ॥ यह घोर शाप सुनकर वे बालक बहुतही डरे। उन्होने साम्बका बनावटी पेट खोलकर देखा तो वास्तवमें एक लोहेका मुसल निकला। तब वे अत्यन्त चिन्तित होकर कहनेलगे कि "हाय! हम अभागोंने यह क्या अनर्थ कर डाला! हमारे बड़े बूढ़े हमको क्या कहेंगे?"। इस प्रकारकी चिन्तासे विह्वल वे बालक उस मूसलको लेकर घरको गये ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ भय और चिन्तासे मुरझायेहुए मुख लटकाये उन बालकोंने यादवोंसे भरी सभामें लेजाकर वह मुसल रख दिया और राजा उग्रसेनसे सब वृत्तान्त कहा ॥ १९ ॥ हे राजन्! न टलनेवाले विप्रशापको सुनकर और उस मुसलको देखकर सब द्वारकावासी जन बहुत ही विस्मित और भयभीत हुए ॥ २० ॥ राजा उग्रसेनने सबकी सम्मतिसे उस मुसलको महीन महीन चूर्ण करके समुद्रके जलमें फिकवा दिया। मुसलका एक छोटासा टुकडा नहीं चूर्ण होसका, उसको वैसेही फिकवा दिया ॥ २१ ॥ उस छोटेसे टुकड़ेको तो एक मछली निगल गई और वह चूर्ण समुद्रकी तरङ्गोंसे बहकर किनारे लग गया। उसी चूर्णसे समुद्रके किनारे बहुतसे सेंठे उत्पन्न होगये ॥ २२ ॥ मछली पकड़नेवालोंने समुद्रमें

जाल डाला, उसमें और मछलियोंके साथ वह मछली भी आगई, जिसने बचेहुए लोहेके टुकड़ेको निगल लिया था। मछलीके पेट फाड़नेसे वह लोहा निकला और एक बधिकने उस लोहेसे बाणकी दो गाँसी (जो बाणके आगे लगाई जाती है) बना लीं ॥ २३ ॥

भगवान् ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥
कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

सर्वज्ञ भगवान् सब जानते थे और विप्रशापको मेटनेमें समर्थ थे, तथापि उन्होने वैसा नहीं किया। क्योंकि यह सब तो उन्ही कालरूप कृष्णकी इच्छा या प्रेरणासे हुआ था ॥ २४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय

वसुदेव और नारदका संवाद

श्रीशुक उवाच-गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! हे कुरुकुलतिलक! नारद मुनि कृष्णचन्द्रकी उपासनाकी लालसासे प्रायः गोविन्दके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारकाधाममें रहा करते थे ॥ १ ॥ सो ठीक ही है, जिसको सर्वदा और सर्वत्र मृत्युका भय है, ऐसा कौन इन्द्रियसम्पन्न अर्थात् देहधारी होगा जो विवेकी (समझदार) होकर भी हरिके अकुतोभय चरणकमलोंको न भजेगा? बड़े बड़े ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता भी उन चरणोंकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥ एक वार देवर्षि नारद वसुदेवके घर गये और पूजनके उपरान्त सुखपूर्वक आसनपर बैठे। तब वसुदेवजीने प्रणाम किया और कहा कि "हे भगवन्! जैसे पिता, माताका आगमन सन्तानके लिये सुख देनेवाला होता है अथवा भगवद्भक्त महात्मोंका आगमन दीन दुःखी जनोंके लिये कल्याणकारी होता है वैसेही आपका आगमन सब देहधारियोंके लिये मङ्गलकारी है; क्योंकि आप साक्षात् हरिकी मूर्ति अर्थात् कला हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ब्रह्मन्! देवतोंके कामोंसे प्राणियोंको सुख और दुःख दोनो मिलते हैं, परन्तु आपऐसे अच्युतमय साधुओंके आचरणोंसे सर्वदा सुखही मिलता है ॥ ५ ॥ देवतालोग शरीरकी छायाके तुल्य कर्मानुसार फल देनेवाले हैं, अतएव जो जिस भावसे जिस प्रकार देवतोंको भजता है वे भी उसको वैसा ही फल देते

हैं। परन्तु दीनोंपर दया करनेवाले साधुलोग निरपेक्ष-भावसे सब लोगोंका कल्याण करते हैं; चाहे कोई उनको भजे या न भजे ॥ ६ ॥ इसलिये यद्यपि आपके आगमनसे ही हम कृतार्थ होगये, तथापि हे ब्रह्मन्! जिनको श्रद्धापूर्वक सुननेसे मनुष्य सब प्रकारके भयसे मुक्त होकर शान्ति पाता है उन भगवत्सम्बन्धी धर्मोंको हम आपके मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ७ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें मोक्ष पानेके लिये नहीं, वरन् पुत्रके लिये मुक्तिदायक अनन्त हरिकी आराधना की! अहो! मुझे अवश्य ही ईश्वरकी मायाने मोहित कर लियाथा ॥ ८ ॥ हे सुव्रत! अब आप कृपापूर्वक ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मैं इस अनेक प्रकारके दुःख और भयसे भरे-हुए संसारसे सहजमें मुक्त होसकूँ" ॥ ९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! बुद्धिमान् वसुदेवने इसप्रकारका प्रश्न करके गुण वर्णनके लिये हरिका स्मरण कराया, अतएव अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजी बोले कि हे यादवश्रेष्ठ! जो तुम जगत्को पवित्र करनेवाले भगवत्सम्बन्धी धर्म पूछ रहे हो सो यह तुम्हारा उद्योग या विचार बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे वसुदेव! भागवत धर्मका श्रवण, पठन, चिन्तन, आदर और अनुमोदन करनेसे देवद्रोही और विश्व-विरोधी भी शीघ्र ही पवित्र होजाते हैं-इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ इस-समय तुमने, जिनका श्रवण और कीर्तन करनेसे पुण्य होता है उन्ही परम कल्याण-कारी भगवान् नारायणका मुझे स्मरण कराया है। अतएव तुमने अपना ही नहीं, वरन् मेरा भी परम उपकार किया ॥ १३ ॥ मैं तुमको एक प्राचीन और प्रसिद्ध इतिहास सुनाता हूँ। उसमें ऋषभदेवके पुत्र महायोगी ऋषियोंके साथ महात्मा जनक राजाका संवाद है, जिसमें भागवतधर्मोंका पूर्ण रूपसे निर्णय हुआ है ॥१४॥ स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत नाम पुत्र हुए, प्रियव्रतके अग्नीध्र और अग्नीध्रके नाभिराजा हुए। नाभिके परम प्रसिद्ध ऋषभदेवजी उत्पन्न हुए। कहा जाता है कि मोक्षधर्मका उपदेश देनेके लिये साक्षात् वासुदेव हरिके अंशसे ऋषभदेवका अवतार हुआथा। परमहंस ऋषभदेवके सौ पुत्र हुए। वे सब ब्रह्मविद्याके पूर्ण ज्ञाता हुए। सबमें बड़े भरतजी नारायणके परम भक्त थे, यह अद्भुत भूखण्ड उन्हींके नामसे भारतवर्ष कहकर प्रसिद्ध हुआ है। सब प्रकारके ऐश्वर्य भोगनेके उपरान्त इस पृथ्वीमण्डलके शासनको छोड़ हरिकी आराधना करनेके लिये राजा भरत तपोवनको गये और क्रमशः तीन जन्मतक ईश्वरभजन कर परम पदको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे वसुदेव! ऋषभजीके उक्त सौ पुत्रोंमें नव तो इस भारतवर्षके अन्तर्गत ब्रह्मावर्तआदि नव द्वीपों अर्थात् भूखण्डोंके राजा हुए और इक्यासी कर्मतन्त्रके प्रणेता (अपने कर्मोंसे) ब्राह्मण होगये ॥ १९ ॥ शेष नव पुत्र परमार्थका निरूपण करनेवाले, आत्मविद्याके अभ्यासमें श्रम करनेवाले, दिगम्बर, आत्मविद्याविचक्षण महाभाग मुनि अर्थात् परमहंस हुए ॥ २० ॥ उनके

नाम ये हैं—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड, चमस और करभाजन ॥ २१ ॥ ये मुनिगण समग्र स्थूल और सूक्ष्म चराचर जगत्को अपनेसे अभिन्न जानकर, अतएव ब्रह्ममय देखतेहुए, पृथ्वीमें विचरते रहते हैं ॥ २२ ॥ इनकी अभीष्टगति अप्रतिहत है, अर्थात् चाहे जहाँ जा सकते हैं। अतएव ये जीवन्मुक्त मुनि अपनी इच्छाके अनुसार देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग आदिके लोकोंमें और मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज, गऊ आदिके भवनोंमें घूमते रहते हैं ॥ २३ ॥ एक समय भारतवर्षमें ऋषिलोग महात्मा राजा जनकको विधिपूर्वक यज्ञ करा रहे थे, ये मुनिगण इच्छानुसार विचरतेहुए वहाँ पहुँचे ॥ २४ ॥ हे राजन्! इन सूर्यके समान तेजस्वी और महाभगवद्भक्त मुनियोंको देखतेही यजमान, मूर्तिमान् अग्नि और सब ब्राह्मण उठ खड़ेहुए ॥ २५ ॥ राजा जनकने उन मुनियोंको नारायणपरायण जानकर अत्यन्त आनन्दसे आदरसहित विधिपूर्वक पूजन किया और वे सुखपूर्वक अपने अपने आसनपर विराजमान हुए ॥ २६ ॥ तब राजा जनकने अत्यन्त प्रसन्न और विनयसे नम्र होकर ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंके समान अपनी प्रभासे प्रकाशमान उन नव ऋषियोंसे कहा—"मैं जानता हूँ कि आप लोग साक्षात् भगवान् मधुसूदनके पार्षद हैं। विष्णुके जन लोकोंको पवित्र करतेहुए सर्वत्र घूमते रहते हैं ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ यह मनुष्यदेह अत्यन्त दुर्लभ और क्षणभङ्गुर है, इस शरीरमें विष्णुके प्रिय भक्तोंका दर्शन होना मेरी समझमें और भी दुर्लभ है ॥ २९ ॥ अतएव हे निष्पाप महात्मागण! मैं आपसे सबसे बढ़कर कुशलकर्म पूछता हूँ; इस संसारमें, आधे क्षणके लिये भी, साधुसङ्ग मिलना मनुष्योंके लिये निधिके समान है ॥३०॥ हरि भगवान् जिस धर्मसे प्रसन्न होकर शरणागत व्यक्तिको आत्मसमर्पण करदेते हैं वही भागवतधर्म, यदि हमारे सुनने योग्य हो, तो आपलोग कृपा करके कहिये ॥ ३१ ॥ नारदजी कहते हैं—हे वसुदेव! इसप्रकार राजाजनकके पूछनेपर महामहात्मा मुनिगण पहले राजाकी बड़ाईकर फिर सदस्य और ऋत्विक्गणके आगे इसप्रकार उनसे कहनेलगे ॥३२॥ कविने कहा—"हे राजन्! मेरी समझमें इस संसारके बीच नित्य अच्युत हरिके चरणकमलोंकी उपासना करना ही अकुतोभय और परमार्थ है; क्योंकि असत् देहादिको आत्मा माननेके कारण जिनके चित्त उद्विग्न होरहे हैं उनका वह मृत्युभय इसीसे निवृत्त होजाता है ॥३३॥ राजन्! भगवान्ने अज्ञ पुरुषोंके लिये भी अनायास ही आत्मतत्त्वके जाननेके जो उपाय अपने मुखसे कहे हैं वेही भागवतधर्म हैं ॥३४॥ उन भागवतधर्मोंमें प्रवृत्त होनेपर किसी प्रकारके विघ्नका खटका नहीं होता। इस सीधे भागवतधर्म-मार्गमें आँख बन्दकर (अर्थात् अज्ञानावृत होनेपर भी) मनुष्य दौड़ता हुआ जासकता है, कहींपर पैर न फिसलेगा; गिरनेका खटका ही नहीं है ॥३५॥ इस मार्गमें चलनेवाले मनुष्यको

चाहिये कि मन, वाणी, काया, सम्पूर्ण इन्द्रिय, बुद्धि और अहंकारके द्वारा अनुगत स्वभावसे जीव जो जो कर्म करता है उन सबको परमेश्वर नारायणको अर्पण करता रहे ॥३६॥ भेदभावमयी मायासे ही भयकी उत्पत्ति है। जो लोग ईश्वरसे विमुख हैं वे ईश्वरकी मायासें मोहित रहते हैं, अतएव उनके हृदयमें भगवान्‌के रूपकी स्फूर्ति नहीं होती; जिससे देहको आत्मा माननेमें बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और भयदायक भेदभाव उत्पन्न होता है। इसकारण पण्डितको चाहिये कि ईश्वरको ही गुरु, इष्टदेव और आत्मा मानकर दृढ़ व अनन्य भक्तिसे भजे ॥ ३७ ॥ द्वैतप्रपञ्च (भेदभावना) वास्तवमें असत् है, (उसका) ध्यान करनेवाले पुरुषका मन ही, मनोरथसे स्वप्नके सदृश, उसका प्रकाशक है। अतएव पण्डितको चाहिये कि पहले उस संकल्प-विकल्परूप कर्मवासनामय मनका दमन करके ईश्वरका भजन करे। मन दमन करलेनेपर मनुष्य निर्भय होजाता है ॥ ३८ ॥ चक्रपाणि विष्णुके मङ्गलमय जन्म और कर्म, जो लोकसमाजमें गाये जाते हैं, उनको और उनकेद्वारा रक्खे गये हरिके नामोंको, लज्जाहीन हो, और सबका सङ्ग छोड़, गाताहुआ स्वच्छन्दतासे घूमता रहे ॥३९॥ जो लोग ऐसे हैं वे जब अपने परम प्रिय हरिके गुण और नामोंका कीर्तन करते हैं तब बढ़ेहुए प्रेमके रसमें उनका हृदय मग्न होजाता है। वे विवश होकर अर्थात् इस जगत्‌को भूलकर उन्मत्तोंकी भाँति कभी उच्च स्वरसे हँसते हैं, कभी रोने लगते हैं, कभी अत्यन्त उच्च स्वरसे हरिके नाम लेते हैं, कभी गाते हैं, और कभी नाचने-लगते हैं ॥४०॥ वे आकाश, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, ज्योतिश्चक्र, चराचर प्राणी, दशो दिशा, वृक्ष आदिक, नदियाँ और समुद्र, यहाँतक कि सम्पूर्ण प्राणिमात्र, सबको विराट् पुरुष हरिका शरीर मानकर प्रणाम करते हैं; वे हरिसे भिन्न कुछ भी नहीं देखते ॥४१॥ जैसे भोजन करनेवाले पुरुषके हरेक कौर खानेपर एकसाथ ही सुख मिलता है, पेट भरता है और भूख मिटती है; वैसेही प्रत्येक पलमें हरिकीर्तनसे भक्तकी भक्ति बढ़ती है, हृदयमें प्रेमपात्र भगवान्‌के रूपका उदय होता है और अन्य वस्तुओंमें विरक्ति होती है ॥४२॥ राजन्! जो लोग इसप्रकार अनुवृत्तिपूर्वक हरिके चरणोंकी सेवा करते रहते हैं उनके हृदयमें भक्ति, विरक्ति और भगवान्‌के रूपकी स्फूर्ति होती है, और वे भागवत पुरुष उसके उपरान्त साक्षात् परम शान्तिको प्राप्त होते हैं" ॥४३॥ **राजा जनकने कहा**–अब आप लोग कृपा करके यह कहिये कि किस मनुष्यको भागवत कहना चाहिये? और उसके धर्म, स्वभाव, आचरण, और उक्ति बताइये। तथा जिन चिन्होंसे वह भगवान्‌को प्रिय होताहै उन्हे कहिये ॥ ४४ ॥ **हरि नामक मुनिने कहा**–"जो कोई अपनेमें भगवान्‌की भावना रखकर सब प्राणियोंमें अपनेको और अपने भगवत्स्वरूप आत्मामें सब प्राणियोंको देखता है, वही उत्तम भागवत भक्त है ॥ ४५ ॥ और जो कोई ईश्वरसे प्रेम, ईश्वरके जनोंसे मित्रता, अज्ञानी जनोंपर कृपा और द्वेष करनेवालोंके

प्रति उपेक्षा रखता है वह (भेदभावके रहनेसे) मध्यम है ॥४६॥ और जो कोई प्रतिमामेंही श्रद्धापूर्वक हरिकी पूजा-उपासना करता है, भगवद्भक्त या अन्य किसी वस्तुमें हरिकी भावना और आराधना नहीं करता, वह साधारण है ॥४७॥ जो कोई वासुदेवमें मन लगाकर इन्द्रियोंके द्वारा विषयभोग करते रहकर भी इस समग्र विश्वको विष्णुकी ही माया मानता हुआ किसीसे द्वेष नहीं रखता और न कोई काङ्क्षा करता है वही उत्तम भागवत है ॥ ४८ ॥ जो कोई हरिके स्मरणमें मग्न रहकर शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके क्रमशः सांसारिक धर्म जन्म-मरण, भूख, भय, तृष्णा और काम(भावों या धर्मों)से मोहित नहीं होता वही श्रेष्ठ भागवत भक्त है ॥ ४९ ॥ जिसके चित्तमें कर्मबीजरूप कामना नहीं उत्पन्न होती और जिसका एकमात्र अवलम्ब वासुदेवही हैं वही श्रेष्ठ भागवत है ॥ ५० ॥ जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जातिसे जिसको शरीरमें अहंभाव न हो वही हरिको प्रिय है ॥ ५१ ॥ जिसके हृदयमें धन और देहके लिये अपने परायेका भेदभाव न हो वह सब प्राणियोंको एक दृष्टिसे देखनेवाला और शान्त पुरुष ही श्रेष्ठ भागवत है ॥ ५२ ॥ ब्रह्माआदि देवगण जिन हरिचरणोंको नित्यप्रति ध्यान-पूर्वक खोजकर भी नहीं पाते उन्हीको सर्वोत्तम सारतत्त्व समझकर जो कोई त्रिभुवनका साम्राज्यविभव भी मिलनेपर आधे लव(बहुत ही सूक्ष्म समय) और आधे पलके लिये भी नहीं विचलित होता अर्थात् हरिचरणसेवाको नहीं छोड़ता वही श्रेष्ठ भक्त है ॥५३॥ जैसे चन्द्रमाका उदय होनेपर सूर्यका ताप अपने प्रभावको नहीं फैला सकता वैसेही भगवान्के परमपराक्रमी चरणोंकी अङ्गुलियोंके नखमणियोंकी शीतलकान्तिसे सेवकोंके हृदयका सब ताप मिट जाता है और वह फिर अपना अधिकार नहीं फैलासकता ॥ ५४ ॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥

विवश अवस्थामें अचानक जिनका पवित्र नाम मुखसे निकलनेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं वही हरि प्रेमपाशमें बँधकर जिसके हृदयमें निरन्तर विराजते हैं वही श्रेष्ठ भागवत भक्त है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

जनकके अन्य प्रश्नोंका उत्तर

राजोवाच–परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥
मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

राजा जनकने पूछा कि—"हे ऋषिवरो ! परम पुरुष परमेश्वरकी माया बड़े बड़े मायावी लोगोंको भी मोहित करनेवाली है, मैं उसी मायाको जानना चाहता हूँ । आप लोग कृपापूर्वक उसका वर्णन कीजिये । हे परमऐश्वर्यसम्पन्न महर्षियो ! हम मनुष्य संसारतापसे अत्यन्त तपरहे हैं; उसी तापकी एकमात्र औषध जो सुधामयी हरिकथा है उससे सुशोभित आपके मधुर वचन सुननेसे मेरा जी नहीं भरता" ॥१॥२॥ तब अन्तरिक्षनामक मुनिने कहा कि "हे राजन् ! हे महाबाहो ! सर्वभूतमय सर्वव्यापक आदिपुरुपने अपने ही अंश जो सम्पूर्ण जीव हैं उनके विषय-भोग और मुक्तिके लिये निजनिर्मित महाभूतोंसे (पञ्चतत्त्वोंसे) इन उत्कृष्ट और निकृष्ट प्राणियोंकी (अर्थात् शरीरोंकी) सृष्टि की है ॥ ३ ॥ इसप्रकार अपनेही द्वारा उत्पन्न किये गये पञ्चतत्त्वोंसे रचित सब प्राणियोंमें अन्तर्यामी-रूपसे प्रवेश करके, वह ईश्वर, मन रूपसे एक और इन्द्रियसमूह रूपसे अपने दश विभाग करके सब विषयोंका भोग करता है ॥ ४ ॥ वही (जीवरूप) प्रभु अपने ही द्वारा परिचालित गुणोंके द्वारा सब विषयोंका भोग करतेहुए निजसृष्ट शरीरको आत्मा मानकर इसीमें आसक्त होता है ॥ ५ ॥ देहधारी जीव, सब इन्द्रियोंके द्वारा वासनाघटित कर्म करनेके कारण दुःखमय कर्मफल भोगताहुआ इस संसारमें एक योनिसे दूसरी योनिमें घूमता रहता है ॥ ६ ॥ यह पुरुष (जीव) अनेक अमङ्गलोंसे परिपूर्ण अर्थात् कष्टकारिणी कर्मगतियोंको पाकर अवशभावसे प्रलयकालपर्यन्त जन्म और मृत्युके दुःखोंको भोगता रहता है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जब उपादानरूप पञ्चतत्त्वोंके नाशका समय निकट आजाता है तब अनादि और अनन्त 'काल', स्थूल–सूक्ष्मरूप कार्यको, अव्यक्त जो कारण है उसकी ओर (लीन करनेके लिये) खींचता है ॥ ८ ॥ महाराज ! इसप्रकार जब प्रलय होनेवाला होगा तब पहले पृथ्वीपर सौ वर्षतक अत्यन्त भयानक अनावृष्टि होगी और प्रचण्ड सूर्य अपने तेजको अपरिमित करके अत्यन्त तापपूर्ण किरणोंसे तीनो लोकोंको तपावेंगे ॥ ९ ॥ उससमय पाताल-तलमें अवस्थित अनन्त शेषनागके मुखसे आग निकलनेलगेगी और क्रमशः चलरही प्रचण्ड आँधीसे ऊपरको बढ़कर चारो ओर फैलेगी; जिससे सातो पातालोंसहित ये तीनो लोक भस्म हो जावेंगे ॥ १० ॥ फिर संवर्तक नाम प्रलयकालके मेघ हाथीकी सूँडके समान मोटी धाराओंसे सौ वर्षतक निरन्तर पानीकी वर्षा करेंगे और यह ब्रह्माण्डरूप स्थूल विराट् शरीर

जलमें लीन होजायगा ॥ ११ ॥ तब उपाधि लय होनेसे वैराज (विराट् शरीरका अधिष्ठाता) पुरुष विना इंधनकी आगके समान सूक्ष्म कारण 'अव्यक्त'में लीन हो जायगा ॥ १२ ॥ पृथ्वीके गन्धगुणको वायु हरलेगा, तब पृथ्वी जलरूप होजायगी और वह जल उसी वायुके द्वारा रसगुणके न रहनेसे तेजरूप होजायगा ॥ १३ ॥ तेज भी अन्धकारके प्रभावसे रूपगुण न रहनेपर वायुमें, और वायुभी अवकाशके द्वारा स्पर्शगुण न रहनेसे अपने कारण आकाशमें लीन होजावेगा ॥१४॥ तदनन्तर आकाश भी कालरूप ईश्वरके द्वारा अपने गुण शब्दका नाश होने-पर तामस अहंकारमें लीन होजायगा । हे नरनाथ! इन्द्रियोंसहित बुद्धि राजस अहंकारमें, और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंसहित मन सात्त्विक अहंकारमें एवं त्रिविध अहंकार अपने गुणोंसहित महत्तत्त्वमें लीन होजावेगा । महत्तत्त्व भी अव्यक्त प्रकृतिमें लीन होजावेगा ॥ १५ ॥ महाराज, हमने आपके प्रश्नके अनुसार भगवान्की सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाली त्रिगुणमयी मायाका वर्णन करदिया । अब कहो, और क्या सुनना चाहतेहो ?" ॥ १६ ॥ राजा जनकने कहा—"हे महर्षिगण! जो लोग अन्तःकरणको वशमें नहीं करसकते उनके लिये अत्यन्त दुस्तर इस ईश्वरकी मायासे स्थूल बुद्धिके लोग भी जिस उपायसे अनायास ही मुक्त होसकें उसी उपायको कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम मुनिने कहा—"हे नरेश! मनुष्यलोग स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके बन्धनमें बँधकर दुःख दूर होने और सुख मिलनेके लिये कर्म करते हैं, परन्तु फल उलटा होता है। देखो, नित्य पीड़ा पहुँचानेवाला और आत्माके अधःपतनका कारण होनेपर भी कष्टसे मिलनेवाला धन एवं गृह, पुत्र, बन्धु और पशु आदि सभी चञ्चल अर्थात् अनित्य हैं । अतएव अनर्थकारी इन धन आदिको पा लेनेसे भी क्या प्रसन्नता प्राप्त होसकती है? ॥ १८ ॥ १९ ॥ ऐसा जानकर समझना चाहिये कि ये सब स्वर्गादिक लोक भी कर्मनिर्मित हैं, अतएव कर्मोंके समान अनित्य हैं । इसके सिवा मण्डलाधिपति राजा लोगोंको जैसे समानके प्रति लागडाँट और प्रधान (श्रेष्ठ)के प्रति ईर्षा (डाह) होती है एवं ध्वंसकी शङ्कासे भय लगा रहता है वैसे ही सब (अज्ञानी) लोगोंको समानके प्रति स्पर्धा और श्रेष्ठके प्रति ईर्षा एवं ध्वंसकी शङ्कासे भय बना रहता है ॥ २० ॥ जिस पुरुषको अपने परम मङ्गलके जाननेकी इच्छा हो उसे चाहिये कि शब्दब्रह्म(वेद)के पारगामी और परब्रह्ममें मग्न शान्तशील (परमहंस) गुरुकी शरण ले ॥ २१ ॥ गुरुको ही आत्मा और इष्टदेव समझकर निष्कपट भावसे सेवा करे और परमात्मा एवं आत्मप्रद हरि जिनसे प्रसन्न होते हैं उन सब भागवत धर्मोंको सीखे ॥ २२ ॥ सब विषयोंसे मनको हटाकर एकाग्र होना, साधुओंका सङ्ग करना, यथोचित रूपसे सब प्राणियोंसे दया मित्रता और विनयका व्यवहार करना, शौचसे रहना, अपने धर्मको पालन करना,

क्षमा, वृथा बातचीत न करना, स्वाध्याय, सरलताका व्यवहार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा-व्रत, सुख-दुःख आदि विपरीत धर्मोंको समानभावसे भोगना, सर्वत्र सब जीवोंमें ईश्वरको देखना और उनको अपनाही रूप जानना, एकान्तमें रहना, गृह आदिमें स्वत्वाभिमान रखना, पवित्र वस्त्र पहनना, जो कुछ मिले उसीमें सन्तोष करना, हरिचर्चापूर्ण शास्त्रोंमें श्रद्धा करना, अन्य शास्त्रोंकी निन्दा न करना, मन वाणी और कर्मोंका संयम, सत्य बोलना, शम और दमका अभ्यास करना, अद्भुत कर्म करनेवाले हरिके जन्म कर्म और गुणोंका कीर्तन, श्रवण और ध्यान करना, हरिकी प्रसन्नताके लियेही सब कर्म करना, योग दान तप जप आत्माको प्रसन्न करनेवाले सदाचार एवं स्त्री, गृह, पुत्र, और शरीरको भी परमेश्वरके अर्पण करदेना—क्रमशः इन सब बातोंकी शिक्षा, गुरुके निकट रहकर, प्राप्त करनी चाहिये ॥ २३–२८ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ही जिनके आत्मा और नाथ हैं उन मनुष्योंसे मित्रता, स्थावर और जङ्गम जीव एवं मनुष्य, विशेष-कर साधुजन, उनमेंभी भगवद्भक्त जनोंकी पूजा, कहने और सुननेवालोंको पवित्र करनेवाले भगवान्‌के यशका कीर्तन, परस्पर प्रेम, परस्पर तुष्टि, और परस्पर सब देहधारियोंके आत्माके दुःखकी निवृत्ति जिससे हो, सो सब सीख ॥ २९ ॥ ३० ॥ पाप-पुञ्ज-पावक हरिका स्वयं स्मरण करे और औरोंको भी स्मरण करावे एवं उससमय साधनस्वरूप भक्तिसे उत्पन्न प्रेमभक्तिसे आनन्दित हो, तब शरीरमें रोमाञ्च होगा ॥ ३१ ॥ अच्युतकी चिन्तामें तन्मय होकर कभी रोवे, कभी हँसे, कभी नाचे, कभी गावे और कभी आनन्दपूर्वक अलौकिक (उन्मत्तोंके ऐसे) वचन कहनेलगे एवं कभी हरिकी लीलाओंका अभिनय अर्थात् अनुशीलन करे। इसप्रकार परमेश्वरको पाकर परम सुखसे चुपचाप उसीमें मग्न होरहे ॥३२॥ हे महात्मा जनक ! इसप्रकार पूर्वोक्त भागवतधर्मोंको सीखते सीखते, उनसे उत्पन्न भक्तिसे नारायणपरायण होकर, स्थूलबुद्धि मनुष्य भी अनायास ही बलपूर्वक इन दुस्तर मायासे मुक्त हो सकता है” ॥३३॥ राजानिमि (जनक) ने कहा—“हे ऋषिगण ! आप लोग ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतएव अब यह बतलाइये कि नारा-यण नामक परब्रह्म परमात्मामें किस उपायसे किस प्रकार निष्ठा होती है ?” ॥ ३४ ॥ पिप्पलायनने कहा—“हे नृप ! जो इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहारका कारण हैं, परन्तु स्वयं कारणसे शून्य हैं; जो स्वप्न, जागरण और सुषुप्तिसंज्ञक आन्तरिक दशाओंमें एवं समाधि आदि बाह्य दशाओंमें सत् रूपसे वर्तमान हैं; देह, इन्द्रिय, प्राण और मन आदि जिनसे सचेत होकर अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं; वही परमतत्त्व नारायण हैं ॥ ३५ ॥ जैसे चिनगारियाँ अग्निको प्रकाशित नहीं करसकतीं, या जला नहीं सकतीं, वैसेही मन, वाक्य, चक्षु, बुद्धि, प्राण और सब इन्द्रियाँ उनके ग्रहणमें असमर्थ हैं, अर्थात् वहाँतक पहुँच न होनेके कारण

निरूपण नहीं करसकतीं। शब्द भी (वेद भी) अपने मूल अर्थात् प्रमाण–उस सत् ईश्वरका साक्षात् निरूपण नहीं करसकता, केवल अपने अर्थसे उसके अस्तित्वको प्रमाणित करता है। क्योंकि वह ब्रह्म, जिसका यह बोध कराता है, उस असत्का निषेध अथवा अन्तिम अवधि है। उस ब्रह्मके विना असत्के निषेधकी सिद्धि नहीं होसकती, क्योंकि सब वस्तुओंका निषेध असीम है, परन्तु ब्रह्म असीम है (कहनेका तात्पर्य यह है कि वेद भी "यह वस्तु ब्रह्म नहीं है, यह वस्तु ब्रह्म नहीं है" यों कहकर उसी–वाणी मनसे अतीत ब्रह्मको परम सीमा बताताहुआ उसका प्रतिपादन करता है, परन्तु साक्षात् निरूपण नहीं कर सकता कि 'यह ब्रह्म है') ॥३६॥ सब कार्य और कारण उसी ब्रह्मरूपमें प्रकाशित होते हैं, क्योंकि विविधशक्तिशाली ब्रह्म ही इन दोनोका कारण है। सृष्टिके पहले जो एकमात्र अवशिष्ट अचिन्त्य ब्रह्म 'प्रधान' नामसे कथित होता है वही सत्त्व, रज, तम–इन तीन गुणोंकी सृष्टि करके त्रिगुणात्मक होता है, और फिर क्रियाशक्तिके कारण 'सूत्र' और ज्ञानशक्तिके कारण 'महत्तत्त्व' नामसे प्रसिद्ध होता है। उसीको फिर अहंभावनामय 'अहंकार' कहते हैं। अन्तमें वही इन्द्रियाधिष्ठाता देवता, इन्द्रियसमूह, इन्द्रियविषयसमूह और विषयसुखके रूपसे प्रकट देखपड़ता है। इसकारण वही महाशक्तिशाली ब्रह्म, कार्य और कारण–दोनोका मूलकारण है ॥ ३७ ॥ वह परमात्मा जन्म मरण, और क्षय व वृद्धिसे रहित हैं, क्योंकि जन्म मरण आदिसे युक्त सब वस्तुओंका साक्षी है एवं सर्वत्र निरन्तर अविनाशी रूपसे विद्यमान और ज्ञानमात्र हैं। जैसे एक ही प्राण, एक होनेपर भी इन्द्रियबलसे विकल्पको प्राप्त हैं अर्थात् अनेक–कल्पनाविशिष्ट है वैसे ही वह ज्ञानरूप निर्विकार साक्षीरूप ब्रह्म एकमात्र 'सत्' होनेपर भी अज्ञानसे 'विविध' कल्पित है ॥ ३८ ॥ जैसे प्राण, विशेष विशेष रूपोंसे अण्डज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज योनियोंमें जीवका अनुसरण करता हुआ निर्विकार ही रहता है वैसे ही आत्मा भी साक्षीरूप निर्विकार हैं। और भी देखो, जब सुपुप्त अवस्थामें इन्द्रियगणसहित अहंभाव लीन होजाता है और स्थूल-उपाधिका कारण आश्रयरूप लिङ्गशरीर भी नहीं रहजाता तब निर्विकार साक्षी आत्मा ही अवशिष्ट रहता है, इसीसे उसका निर्विकार (साक्षी) होना सिद्ध है। यदि कहो कि 'अहंकार पर्यन्तका लय हो जानेपर तो शून्य ही रह जाता है, अतएव तब साक्षी आत्माके रहनेका क्या प्रमाण है?' तो उसका उत्तर यह है कि–जगनेपर जो मनुष्यको स्वप्नमें देखेहुए विषयोंका स्मरण रहता है वही उस आत्माकी साक्षीरूपसे अवस्थितिका प्रमाण है[1] (अर्थात् उस समय भी देखनेवाले अर्थात् साक्षी आत्माकी दृष्टि अर्थात् ज्ञानका लोप नहीं होता) ॥३९॥ तदनन्तर पुरुष, जब सब विषयोंकी वासना छोड़कर केवल हरिचर-

१ श्रुतिभी कहती है–'यद्वैतं न पश्यति पश्यन्वैतं न पश्यति'।

णोंके पानेकी इच्छासे बढ़ीहुई विशुद्ध भक्तिके द्वारा, गुणकर्मसम्भूत चित्तके सम्पूर्ण मलोंको नष्ट करलेता है तब निर्मल नेत्रोंसे जैसे सूर्यमण्डल स्पष्ट देख पड़ता है वैसेही विशुद्ध चित्तसे साक्षात् आत्मतत्त्वको देख पाता है" ॥४०॥ राजा निमिने कहा–"हे महर्षिगण! पुरुष, जिसके द्वारा विशुद्ध होकर, इसलोकमें शीघ्रही सब कर्मोंको छोड़कर उस निवृत्तिसे उत्पन्न परम ज्ञानको पाता है वह 'कर्मयोग' भी कृपाकरके कहिये। इसके सिवा मैंने पहले अपने पिता इक्ष्वाकुके सामने ब्रह्माके पुत्र सर्वज्ञ सनकादिकोंसे यही विषय पूछा था, परन्तु उन्होने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसका भी कारण बतलाइये" ॥४१॥४२॥ तब आविर्होत्र नाम मुनिने कहा—"हे नरेश! कर्म, अकर्म और विकर्म (अर्थात् विहित कर्मका न करना)–ये सब वेदवाक्य हैं, पुरुषवाक्य नहीं हैं, वेद भी ईश्वरसंभूत है, इसलिये विवेकी पुरुष उसके कर्मकाण्डमें मोहित होते हैं (तात्पर्य यह है कि पुरुषवाक्यमें तो वक्ताके अभिप्रायसे उसका अर्थ जानाजासकता है, किन्तु जो अपौरुषेय है उसमें केवल वाक्यके पूर्वापरसे ही तात्पर्य निकालना पड़ता है और यह दुष्कर है–इसीकारण सनकादिकोंने तुमसे उस समय कुछ नहीं कहाथा) ॥ ४३ ॥ वेदका तात्पर्य दुर्ज्ञेय है, क्योंकि उसमें सब परोक्षवाद है (यथार्थ तात्पर्य छिपानेके लिये अन्य प्रकारसे वक्तव्य विषयका वर्णन करना परोक्षवाद है)। जैसे बालकको अनेक प्रकारकी प्रिय बातोंसे बहलाकर कडुई औषध पिलाई जाती है वैसे ही वेद भी बालकसदृश अज्ञानियोंको परोक्षवादसे स्वर्गादि फल दिखाकर कर्मोंसे मुक्तिके लिये यज्ञादिकर्म करनेका उपदेश करता है, अर्थात् प्रकटमें जो 'स्वर्गादि फल मिलेंगे' ऐसा कहकर वेद यज्ञादिकर्म करनेका उपदेश करता है उसका यथार्थ तात्पर्य कर्मकी निवृत्तिही है ॥ ४४ ॥ यदि कोई कहे कि 'कर्मत्यागका ही यदि पुरुषार्थ है तो पहलेहीसे कर्मत्याग करना योग्य है,' तो ऐसा समझना भूल है, जबतक जितेन्द्रिय होकर कर्मत्यागका अधिकारी न हो ले तबतक वेदविहित कर्म न छोड़ने चाहिये। जो अजितेन्द्रिय अज्ञ व्यक्ति स्वयं वेदविहित कर्म नहीं करता वह कर्तव्य न करनेके कारण होनेवाले अधर्मसे वारंवार जन्म और मरणको प्राप्त होता है; इसकारण मृत्युपाशमें बँधा ही रहता है ॥४५॥ मनुष्यको चाहिये कि निर्लिप्त होकर ईश्वरार्पण करताहुआ वर्णाश्रमानुसार वेदविहित कर्मोंको करे, इसीसे नैष्कर्म्यसिद्धि मिलती है। यह स्वर्गादि लोकोंके मिलनेकी फलश्रुति केवल रुचि दिलानेके लिये है ॥ ४६ ॥ जो कोई जीवात्माके अहङ्काररूप बन्धनको शीघ्र काटनेकी अभिलाषा रखता हो उसे उचित है कि वेदोक्त विधिके अनुसार तन्त्रोक्त विधिसे केशवकी पूजा करे ॥ ४७ ॥ सेवासे गुरुका अनुग्रह प्राप्तकर उसकी बताईहुई पूजाप्रणालीके अनुसार अपनी इच्छाके अनुरूप हरिमूर्तिकी कल्पना करके उसमें भक्तिपूर्वक महापुरुषकी पूजा करे ॥ ४८ ॥ शरीर और अन्तःकरणको शुद्ध करनेके उपरान्त

प्रतिमाके आगे बैठकर प्राणायाम और भूतशुद्धि आदिसे शरीरके भीतरी भागकी शुद्धि एवं रक्षा करे और फिर इसप्रकार प्रतिमामें हरिकी पूजा करे ॥ ४९ ॥ प्रतिमा आदिमें अथवा अपने हृदयमेंही, जो पूजनसामग्री मिल सके उससे पूजा करे। पूजासे पहले पुष्पआदिको, उनके जीवजन्तु निकालकर, पृथ्वीको वहारकर और छिड़ककर, अन्तःकरणको एकाग्रकर और प्रतिमाको जलसे धोकर पूजनके योग्य करे ॥ ५० ॥ फिर पाद्य, अर्घ्यआदिके पात्रोंको यथास्थान रखकर हृदयमें चिन्तित हरिकी श्रीमूर्तिमें भावना करके अङ्गन्यास करन्यास आदि 'न्यास' करनेके उपरान्त मूलमन्त्रसे पूजा करे ॥ ५१ ॥ पार्षदगणसहित साङ्गोपाङ्ग हरिमूर्तिको स्थापितकर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय जल, स्नान, वस्त्र, आभूषण, चन्दन आदि सुगन्ध, माला, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य आदिसे उन उन सामग्रियोंके चढ़ानेके मन्त्र पढ़ताहुआ पूजन करे। इसप्रकार विधिपूर्वक षोड़शोपचारसे हरिकी पूजा करनेके उपरान्त स्तुति, प्रदक्षिणा और प्रणाम करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अपनेको तन्मय विचारताहुआ हरिकी मूर्तिका पूजन करे और फिर सत्कारपूर्वक निर्माल्यको मस्तकसे लगाकर उस पूजित मूर्तिको यथास्थान रख दे। इसप्रकार विसर्जन करनेके उपरान्त पूजाको समाप्त करे ॥ ५४ ॥

एवमभ्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥
यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

हे नरनाथ! जो कोई इस प्रकार तन्त्रोक्त कर्मयोगके अनुसार, प्रतिमामें, अग्निमें, सूर्यमें, जलआदिमें अथवा अपने हृदयमें ही आत्मारूप ईश्वर हरीकी पूजा करता रहता है वह शीघ्र ही कर्मबन्धनसे मुक्त होजाताहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

नारायणके अवतारोंका वर्णन

राजोवाच—यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ॥
चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

राजा जनकने पूछा—ब्रह्मर्षिगण! भगवान् हरिने पृथ्वीतलपर जिस जिस अवतारमें जो जो कर्म किये हैं, कर रहे हैं और करेंगे, वे सब मुझसे कहिये ॥१॥ द्रविड़ नाम मुनिने कहा "हे नरेश! जो व्यक्ति अनन्त हरिके सम्पूर्ण अनन्त कर्मों-की गिनती करना चाहता है वह अत्यन्त अदूरदर्शी और बालकोंकी ऐसी बुद्धि

रखता है। बहुकालमें किसीप्रकार चाहे पृथ्वीके रजःकण गिने भी जासकते हों परन्तु सर्वशक्तिधाम भगवान्‌के गुण-कर्मोंकी गणना नहीं की जासकती ॥ २ ॥ अपने उत्पन्न किये पंचतत्त्वोंसे इस ब्रह्माण्डरूप विराट्शरीर पुरकी रचना करके अपने अंश चेतनरूप जीवात्माके द्वारा उसमें प्रवेश करनेसे आदिदेव नारायणको 'पुरुष' कहते हैं ॥ ३ ॥ यह त्रिभुवन स्थान उनका विराट् शरीर है। उनकी इन्द्रियोंसे देहधारियोंकी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां, उनके स्वरूप सत्त्वसे देहधारियोंको स्वयंसिद्ध ज्ञान और उनके प्राणसे देहधारियोंकी देहशक्ति, इन्द्रिय-शक्ति और क्रियाशक्तिकी उत्पत्ति हुई है। वही सत्त्व, रज, तमसे सृष्टि स्थिति और प्रलय कार्योंके आदिकर्ता हैं ॥ ४ ॥ पहले उन्हींके रजोगुणसे सृष्टि कार्यके लिये ब्रह्मा और सतोगुणसे पालन कार्यके लिये यज्ञपति और द्विजधर्मकी मर्यादारूप विष्णु एवं तमोगुणसे संहार कार्यके लिये रुद्र उत्पन्न हुए हैं। जिनसे प्रजागणकी सृष्टि, पालन और संहार सर्वदा इसीप्रकार होता रहता है वही आदिपुरुष नारायण हैं ॥ ५ ॥ दक्ष प्रजापतिकी कन्या और धर्मकी पत्नी 'मूर्ति'के गर्भसे शान्तशील श्रेष्ठ ऋषि हरिके अंशावतार नर और नारायणने जन्म लिया। उन्होने कर्मत्यागरूप धर्मका उपदेश और स्वयं आचरण भी किया। वे इससमय भी बद्रिकाश्रममें विद्यमान हैं, प्रधान प्रधान ऋषिगण उनके चरणकम-लोंकी सेवा करतेहुए ज्ञानका अभ्यास करते हैं ॥ ६ ॥ उनके उग्र तपको देखकर इन्द्रको शङ्का हुई। इन्द्रने विचारा कि 'ये तपोवलसे मेरा पद लेना चाहते हैं'। इस आशङ्कासे इन्द्रने उनके तपमें विघ्न करनेके लिये अप्सरा, वसन्त आदि अनु-चरोंसहित कामदेवको भेजा। उनकी महिमाके महत्त्वको न जाननेके कारण काम-देव अपने अनुचरोंसहित बद्रिकाश्रमको गया और अप्सरागण, वसन्त एवं मन्द वायुकी सहायता लेकर कामिनीकटाक्षरूप बाणोंसे बेधताहुआ उन्हे विचलित करनेकी चेष्टा करनेलगा ॥ ७ ॥ गर्वरहित, विस्मयशून्य और शान्तमूर्ति आदिदेव नारायणने इन्द्रके अपराधको जानकर भी कोप नहीं किया और शापके भयसे कांपरहे कामदेव आदिकोंसे इसप्रकार हँसकर कहा कि—"हे शक्तिशाली मदन! हे वसन्तपवन! और हे सुरसुन्दरीवृन्द! डरो नहीं, हमारे आतिथ्य सत्कारको स्वीकृत करो। मेरे आतिथ्यका स्वीकार कियेबिना इस आश्रमको शून्य न कर जाना" ॥ ८ ॥ हे राजन्! इसप्रकार कहकर अभय देनेवाले दयालु नारायणके आगे लज्जासे शिर झुकाकर देवगण कहनेलगे कि "हे विभो! आप मायासे अतीत, अतएव विकारविहीन हैं। आत्मामें रमनेवाले आत्मज्ञानी लोग आपके चरणकमलोंमें शिर झुकाते हैं। इसकारण इसप्रकार विचलित न होकर उलटे अपराधियोंपर दया दिखाना आपके लिये कुछ विचित्र नहीं है ॥ ९ ॥ हे नाथ! जो लोग आपके चरणोंकी सेवामें तत्पर हैं उन्हे पराये उत्कर्षके न देख

सकनेवाले ईर्षापरवश देवतोंके किये अनेक विघ्नोंका सामना करना पड़ता है, क्योंकि वे देवधाम—स्वर्गको नाँवकर आपके परमपदको जाते हैं। और जो लोग आपसे विमुख हो, कर्मकाण्डमें ही लिप्त रहकर इन्द्र आदि देवतोंको भाग-बलि देनेवाले हैं उन्हे देवकृत विघ्नोंका सामना नहीं करना पड़ता। तथापि आप स्वयं जिनकी रक्षा करनेवाले हैं वे भक्तजन लक्ष्यभ्रष्ट नहीं होते और सब विघ्न बाधाओंके शिरपर पैर रखकर आपतक पहुँच जाते हैं ॥१०॥ और जो लोग हमारे उपासक हैं उनमें तो कोई कोई अपार सागरके समान भूख, प्यास, जाड़ा, गर्मी, वर्षा, वायुके कष्टोंको सहकर और रसास्वाद आदि विशेष विशेष इन्द्रियोंके विशेष विशेष भोगोंकी प्रवृत्तियोंको जीतकर भी, व्यर्थ क्रोध, जो गऊके पैरके गढ़ेके समान तुच्छ है, उसे न जीत सकनेसे बीचहीमें डूब जाते हैं और दुष्कर तपको छोड़ देते हैं, अर्थात् निष्फल कर देते हैं" ॥ ११ ॥ देवगणके इसप्रकार स्तुति करनेके उपरान्त विभु नारायणने कन्दर्प आदिका दर्प दूर करनेके लिये, सेवा करनेवाली अद्भुतरूप-सम्पन्ना भलीभाँति शृङ्गार किये अनेकानेक श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्रियां, अपने आश्रममें, उनको दिखलाईं ॥ १२ ॥ साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती रमणियोंको देखकर वे सब इन्द्रके अनुचर, बहुतही विस्मित हुए और उनके शरीरकी सुगन्धसे मोहित होगये। उन स्त्रियोंके रूपके महत्त्वको देखकर इन्द्रके अनुचरोंकी श्री (कान्ति) फीकी पड़गई ॥ १३ ॥ तब देवतोंके देवता जो ब्रह्मादिक हैं उनके भी ईश्वर भगवान् नारायणने उन नम्रतापूर्वक खड़े हुए इन्द्रके अनुचरोंसे हंसकर कहा कि "इनमेंसे किसी एक अपने अनुरूप रूपवती स्त्रीको लेजाओ, वह स्वर्ग लोकका आभूषण होगी" ॥ १४ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर नारायणकी आज्ञाके अनुसार उन इन्द्रके अनुचरोंने अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको अपने आगे करलिया और प्रभुको प्रणाम करके स्वर्गलोकको गये। स्वर्गमें जाकर प्रणाम करनेके उपरान्त उन्होने देवसभामें बैठेहुए अपने स्वामी इन्द्रके आगे आद्योपान्त सब वृत्तान्त सुनाया और नारायणके प्रभावका वर्णन किया। नारायण भगवान्के विचित्र योगबलकी महिमा सुनकर इन्द्रको विस्मय और (अपराधके ध्यानसे) भय हुआ ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे नरेश! इसके सिवा अच्युतने हंसरूपसे आत्मज्ञानका वर्णन किया है। दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, हमारे पिता भगवान् ऋषभदेव—ये सब निष्काम धर्मका प्रचार करनेवाले परमहंस भगवान् विष्णुके ही अंशावतार हैं। जगत्के हितके लिये इन रूपोंसे भगवान् प्रकट हुए हैं। मधु दैत्यके मारनेवाले हरिने हयग्रीव अवतार लेकर दानवद्वारा हरेगये वेदोंका उद्धार किया है ॥ १७ ॥ प्रलयकालमें मत्स्य अवतार लेकर मनु, पृथ्वी और समग्र औषधियोंको विपत्तिसे बचाया है। कच्छप अवतारमें अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र मथते समय नीचे चले जारहे

मन्दराचलको पीठपर रखकर ऊपरको उभारा है। वाराह अवतारमें रसातलसे पृथ्वीको ऊपर लातेसमय दितिके पुत्र हिरण्याक्षका वध किया है और (हरि अवतारमें) ग्राहद्वारा ग्रसेगए आर्त गजराजको संकटसे छुड़ाया है ॥ १८ ॥ वालखिल्य ऋषिगण एक समय कश्यप मुनिके लिये लकड़ियां लेने गयेथे सो बीचमें गऊके पैरके गढ़ेमें पड़कर गोतेखानेलगे (क्योंकि वे अँगूठेकी पोरके बराबर ऊँचे थे), उनकी यह दशा देखकर इन्द्रको हँसी आई। उससमय उद्धारके लिये स्तुति कर रहे उन ऋषियोंको भगवान्ने उबारा है। वृत्रासुरके वधसे लगीहुई ब्रह्महत्याके कष्टसे इन्द्रका उद्धार किया है। असुरभवनमें बन्दी भावसे बन्द कीगई अनाथ देव-नारियोंको विपत्तिसे छुड़ाया है और सज्जनोंको निर्भय करनेके लिये नृसिंह अवतार लेकर असुरेन्द्र हिरण्यकशिपुका वध किया है ॥ १९ ॥ एवं सब मन्वन्तरोंमें विविध अवतार लेकर तीनो लोकोंकी रक्षा की है। देवासुरसंग्राममें प्रकट होकर देवतोंकी ओरसे दैत्यपतियोंका विनाश किया है। वामन अवतारमें बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगनेके मिससे त्रिलोक-राज्य लेकर इन्द्रको दिया और देवतोंको सुखी किया है ॥२०॥ भृगुकुलमें, हैहय वंशको भस्म करनेके लिये पावकरूप परशुराम अवतार लेकर इक्कीसवार पृथ्वीको क्षत्रिय-शून्य कर दिया है! श्रीरामचन्द्ररूपसे प्रकट होकर समुद्रमें सेतु बांधा और लङ्कासहित सपरिवार रावणको मारा है। जिन सीतापतिकी कीर्ति लोगोंके पापपुञ्ज नष्ट करतीहुई त्रिभुवनमें व्याप्त है; उन रामरूप हरिकी जय हो ॥ २१ ॥ वही अजन्मा श्रीहरि इससमय पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यादववंशमें उत्पन्न हुए हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन अद्भुत कर्मोंको करेंगे जिन्हें देवगण भी नहीं कर सकते। आगे बुद्ध अवतार लेकर यज्ञके अधिकारसे रहित शूद्रप्राय लोगोंको अहिंसावादसे मोहित करेंगे और फिर कलियुगके अन्तमें पिशाचतुल्य निष्ठुर कुकर्मी शूद्र पृथ्वीपतियोंको कल्की अवतार लेकर विनष्ट करेंगे ॥ २२ ॥

एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ॥
भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

हे महाबाहो! महायशस्वी विश्वनाथ हरिके ऐसेही ऐसे अनेकों अवतार और चरित्र हैं, जिनकी गणना नहीं होसकती। ये मुख्य मुख्य अवतार और चरित्र कहेगये हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय

भगवान्‌की भक्तिसे विमुख लोगोंकी गति और पूजाविधिका वर्णन

**राजोवाच–भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥
तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥**

राजाजनकने पूछा—हे आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ऋषिगण! प्रायः अनेक लोग ऐसे देखेजाते हैं जिनका चित्त वशमें नहीं है, विषयवासना शान्त नहीं हुई है और वे भगवान् हरिके भजनसे विमुख हैं। उन लोगोंकी अन्तमें क्या गति होती है? ॥ १ ॥ **चमस नाम मुनिने कहा**–"हे नरवर! भगवान् आदिपुरुषके मुखसे सतोगुणद्वारा ब्राह्मणवर्ण, भुजाओंसे सतोगुणमिलित रजोगुणद्वारा क्षत्रियवर्ण, ऊरुओंसे रजोगुणमिलित तमोगुणद्वारा वैश्यवर्ण, और पैरोंसे केवल तमोगुणद्वारा शूद्रवर्णकी उत्पत्ति हुई है ॥ २ ॥ इन वर्णोंमें उत्पन्न जो कोई व्यक्ति अपनी उत्पत्तिके स्थान (परमपिता) आदिपुरुष ईश्वरको नहीं भजता अथवा अनादर करता है वह गुरुद्रोहके कारण स्थानसे भ्रष्ट होकर दुर्गतिको प्राप्त होता है, उसका अधःपतन अनिवार्य है ॥ ३ ॥ हाँ, जो लोग अज्ञतावश हरिकथा और हरिकीर्तनसे विमुख–दूरवर्ती हैं वे और मूढ शूद्रगण एवं स्त्रियां ये दयाके पात्र हैं–इनपर आप-ऐसे ज्ञानी भगवद्भक्तोंको दया करनी चाहिये ॥४॥ बहुतसे ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य ऐसे हैं जो जन्म, यज्ञोपवीत आदि संस्कार और वेदाध्ययन आदिसे हरिचरणोंके भजनका उत्तम अधिकार पाकर भी वेदके अर्थवादयुक्त कर्मकाण्डमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ कर्तव्य कर्ममें अचतुर, घमण्डी, मूढ़ होनेपर भी अपनेको पण्डित माननेवाले वे अज्ञजन वेदके श्रवणमधुर फलवादयुक्त वचनोंमें मोहित होकर "हम यज्ञ करके स्वर्ग लोकको जायँगे, वहाँ अप्सराओंके साथ विहार करेंगे" इत्यादि प्रिय वाक्य कहकर प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ रजोगुणकी अधिकतासे उनके (जादू टोना, मारण, मोहन आदि) संकल्प घोर होते हैं। वे कामी, सर्पोंके समान क्रोधी, दम्भपूर्ण, अभिमानी और पापी जन अच्युतके प्रियभक्त निष्काम लोगोंको हँसते हैं ॥ ७ ॥ वे स्त्रीसेवक व्यक्ति, मैथुन ही जिसका मुख्य सुख है, उस गृहस्थाश्रममें रहकर इसप्रकारके मनोरथ किया करते हैं कि 'आज मैंने यह पाया है, कल इसके लिये चेष्टा करूंगा, यह मेरे है, अब इसकेलिये चेष्टा करनी चाहिये'। वे अन्नदान और दक्षिणासे रहित यजन करते हैं और उसमें केवल पेट पालनेके लिये या जिह्वाके स्वादके लिये बलिके बहाने पशुहिंसा करते हैं। हिंसाके महापातकका क्या घोर फल मिलेगा–इसका ध्यान नहीं करते ॥ ८ ॥ वे दुष्ट जन इस जन्ममें प्राप्त सम्पत्ति, ऐश्वर्य, कुल, कुटुम्ब, विद्या, बल, रूप, गुण, दान, कर्म आदिके मदसे अन्धे होजाते हैं (अर्थात् उनकी बुद्धि भ्रष्ट

होजाती है) और ईश्वर तथा ईश्वर हरिके प्यारे भक्तोंका अनादर करते हैं ॥ ९ ॥ वेद पुकार पुकारकर कह रहा है कि वह परमप्रिय इष्टदेव ईश्वर आत्मारूपसे सब देहधारियोंमें आकाशके समान अवस्थित है, तथापि वे मूढ़ व्यक्ति वेदके इस कथनको नहीं सुनते और सर्वत्र व्याप्त ईश्वरको नहीं देखते। इसका कारण यही है कि वे मनोरथद्वारा कल्पित सांसारिक विषयोंकी वार्ताके कहने सुननेमें लिप्त रहते हैं ॥ १० ॥ जगत्में साधारणतः स्त्रीसङ्ग, मद्यपान और मांसभोजनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति या रुचि देखी जाती है। इन कार्योंके लिये वेदमें विशेष विधि नहीं है कि ये काम करनेही चाहिये, इनका करना न करना हरेक व्यक्तिकी इच्छा और विवेकपर निर्भर है। हाँ, विशेष विशेष समयपर (विवाहमें स्त्रीसङ्गकी, यज्ञमें मांसभोजनकी और सुराग्रह नामक यज्ञकार्यमें मद्यपानकी) इन कार्योंके करनेकी वेदमें व्यवस्था अवश्य दी गई है, किन्तु उसका तात्पर्य यह है कि जिनकी इन कर्मोंमें रुचि है वे इन्हे नित्य न करके विशेष समयपर करलिया करें, जो लोग इन कर्मोंमें रुचि नहीं रखते उनके लिये उक्त व्यवस्था नहीं है। वस्तुतः इन सब कर्मोंसे विमुख होनेहीमें परम श्रेय है, और यही उक्त व्यवस्था कहनेवाले वेद-वाक्योंका इष्ट है ॥ ११ ॥ इसलोक और परलोकका ज्ञान, जिससे निर्वाणरूप परम शान्ति मिलती है उस परमज्ञानको उत्पन्न करनेवाला परमधर्म (ईश्वरकी आराधना, दीनोंकी सहायता आदि) ही धनका एकमात्र फल है। किन्तु हाय! उपर कहेहुए क्रमसे परमात्मातक पहुंचादेनेवाले उसी धनको पाकर, मूढ़लोग देह गेह आदिके सुखमें (ऐप, आराम, वेश्यागमन, मद्यपान, मांसभोजन आदिमें) उसका दुरुपयोग करतेहुए उल्टे अपनी हानि करते हैं—अपने हाथों अर्थ(धन)को अनर्थकारी बनाते हैं, और शिरपर खड़ेहुए किसी प्रकार न टलनेवाले मृत्युको नहीं देखते!! ॥ १२ ॥ वेदमें जहां स्त्रीसङ्ग, मद्यपान, मांसभोजनकी (विशेष समयपर) व्यवस्था दी गई है उसका भाव ही और है। सुराग्रह कर्ममें मदिराको सूँघ लेनाही यथेष्ट है—पीना नहीं उचित है। इसीप्रकार यज्ञमें देवताके उद्देशसे पशुवध करना विहित है—किन्तु हिंसा अभीष्ट नहीं है; उसके मांसको केवल जिह्वा-पर रखलेना चाहिये—पेटभर खानेकी अनुमति नहीं है। वैसेही इन्द्रियसुखके लिये रतिका विधान नहीं है, बरन् सन्तान उत्पन्न करना ही अभीष्ट है। किन्तु मनोरथवादी अजितेन्द्रिय विषयीलोग इस अपने विशुद्ध धर्मको नहीं समझते ॥ १३ ॥ वेदके इस यथार्थ तात्पर्यको न जाननेवाले, घमण्डी, अपने पण्डित होनेका अभिमान रखनेवाले जो असाधु लोग 'इन कर्मोंसे अवश्य हमारा मनोरथ पूर्ण होगा'—इस मिथ्याविश्वाससे निःशङ्क होकर पशुहिंसा करते हैं वे जब मरते हैं तब जिनकी उन्होने हत्या की है वे पशु वैसे ही उनके मांसको नोच नोचकर खाते हैं ॥ १४ ॥ अवश्य नष्ट होनेवाले अपने देह और अवश्य छूटनेवाले धन-

परिवार आदिमें ममता बांधकर जो लोग, दूसरोंके शरीरमें आत्मा रूपसे स्थित अपने आत्मा ईश्वर हरिसे द्रोह करते हैं वे आत्मद्रोही अवश्य नरकमें गिरते हैं ॥ १५ ॥ (जो लोग निपट अज्ञ हैं वे तत्त्वज्ञ साधुओंकी कृपासे तर जाते हैं और जो लोग तत्त्वज्ञ हैं उनके तरनेमें कोई सन्देह नहीं है, किन्तु पूर्वोक्त प्रकारके कर्ममूढ़ लोग, जो न अत्यन्त अज्ञ हैं और न पूर्ण तत्त्वज्ञ हैं, वे अवश्य ही लक्ष्यभ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं। यथा जो निपट मूढ नहीं हैं, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)-को ही मुख्य पुरुषार्थ या परमार्थ मानेहुए हैं, मोक्षदायक कैवल्य (तत्त्व) ज्ञान-तक नहीं पहुँचे हैं, अतएव शान्तिके सुखको नहीं पासके हैं, अथवा क्षणभरका भी जिसका भरोसा नहीं है उस शरीरको ही सब कुछ समझकर उसीके सुखकी कामनासे कर्मकाण्डमें निरत हैं, इसीकारण स्वयं (अपने हाथों) अपने आत्माका सर्वनाश करनेवाले हैं, वे आत्मघाती, अशान्त और अज्ञानको ज्ञान माननेवाले लोग दुःख और कष्ट ही पाते हैं। प्रबल काल, उनके (पूर्ण अथवा अपूर्ण ही) तुच्छ मनोरथोंको नष्ट कर देता है और वे कृतकृत्य न होकर कहींके नहीं रहते ! ॥१६॥१७॥ वासुदेवसे विमुख उक्त प्रकारके लोग, इच्छा न होनेपर भी, कालसे विवश होकर, अत्यन्त परिश्रमसे प्राप्त देह, गेह, पुत्र, परिवार, इष्टमित्र, सम्पत्ति आदिको यहीं छोड़कर नरकगामी होते हैं ॥१८॥ **राजा जनकने पूछा**—"हे महानुभावगण ! अब आप अनुग्रहपूर्वक यह बतलाइये कि भक्तजन किस समय, किस आकार, किस वर्ण और किस नामसे एवं किस विधिसे भक्तवत्सल भगवान्‌की पूजा करते हैं ?" ॥ १९ ॥ **करभाजन नामक मुनिने कहा**—"हे नरनाथ ! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, इन चारो युगोंमें भिन्न भिन्न वर्ण, भिन्न भिन्न नाम, भिन्न भिन्न आकार और भिन्न भिन्न विधियोंसे भगवान् नारायणकी पूजा की जाती है ॥२०॥ सत्ययुगमें शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी, एवं वल्कल, कृष्णाजिन, उपवीत, अक्षमाला, दण्ड और कमण्डलुसे सुशोभित भगवान् नारायण देवको, उस समयके शान्तस्वभाव, वैररहित, सबसे मित्रता करनेवाले, समदर्शी मनुष्यगण, तप (ध्यान), शम, दम आदि (सात्विक विधि)के द्वारा हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा आदि नामोंसे भजते और पूजते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ त्रेतायुगमें रक्तवर्ण, चतुर्भुज, त्रिमेखला (त्रिविध दीक्षा)-धारी, सुवर्णके सदृश, चमकीले वर्णके केशोंसे सुशोभित, वेदत्रयीरूप और स्रुक्, स्रुवा आदि चिन्होंसे युक्त, सर्वदेवमय, यज्ञपुरुप, परमदेव हरिको उससमयके धर्मनिष्ठ, ब्रह्मवादी मनुष्यगण त्रिवेदविहित कर्म (यज्ञादि)के द्वारा विष्णु, यज्ञ, पृश्निपुत्र, सर्वदेव, उरुक्रम (परम पराक्रमी), वृषाकपि (कामवर्षाकारी और क्लेशोंको भयवश कम्पित करनेवाले), जयन्त (सर्वदा जयशाली), उरुगाय (जगत् भरमें जिनके अनन्त गुण गाये जाते हैं) आदि नामोंसे भजते

और पूजते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे नृप ! द्वापर युगमें श्यामवर्ण, पीताम्बर-भूषित, हाथोंमें शङ्ख, पद्म और चक्रादि आयुध लिये, श्रीवत्स (वक्षःस्थलके दक्षिणभागमें रोमावलीका दक्षिणावर्त चिन्ह) कौस्तुभ आदि तथा करचरणस्थित पद्मादिरेखा आदि महाविभवसूचक लक्षणों एवं छत्र, चामर आदि महाराजोंके उपलक्षणोंसे युक्त आदिपुरुषको उस समयके परमतत्त्व परमेश्वरके जिज्ञासु (जाननेकी इच्छा रखनेवाले) जन वेदोक्त और तन्त्रोक्त विधिके द्वारा भजते और पूजते हैं । एवं "हे वासुदेव ! हे सङ्कर्षण ! हे प्रद्युम्न ! हे अनिरुद्ध ! हे छः प्रकारके परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न ! आपको प्रणाम है । हे नारायण ऋषि ! हे महात्मा नर ! हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! हे सर्वव्यापक ! हे सर्वरूप ! आपको प्रणाम है" कहते हैं । हे राजन् ! अब कलियुगमें जिस प्रकार अनेक तन्त्रोक्त विधियोंसे हरिकी पूजा होती है, वह भी सुनो ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कलियुगमें विवेकी लोग कृष्णवर्ण, कृष्णकान्तियुक्त और अङ्ग-उपाङ्ग, अस्त्र-शस्त्र तथा पार्षदोंसे युक्त कृष्ण भगवान्‌को कीर्तनमय यज्ञोंसे भजते और पूजते हैं ॥ ३२ ॥ एवं इसप्रकार स्तुति करते हैं कि—"हे प्रणतपालक ! हे महापुरुष ! सर्वदा चिन्तनीय, माया-कृत पराभव (मोह)को हरनेवाले, अभीष्ट पूर्ण करनेवाले, गङ्गा आदि लोकपावन तीर्थोंकी उत्पत्तिका स्थान—अतएव परमपावन, शरणमें आयेहुए भक्तोंकी रक्षा कर आर्ति हरनेवाले एवं भवसागरकी तरणी (नौका) जो आपके चरणारविन्द हैं उन्हे हम प्रणाम करते हैं । हे मर्यादापुरुषोत्तम ! आप अत्यन्त धर्मनिष्ठ हैं । पूजनीय पिताके वचनको सत्य करनेके लिये महादुस्त्यज सुरवाञ्छित राज्य-लक्ष्मीको छोड़कर प्रीतिपूर्वक वन-गमन करनेवाले और वहाँ प्रियाके अभिलषित (पसंद) मायामय कनकमृगका पीछा करनेवाले जो आप हैं उनके चरणारवि-न्दोंको हम प्रणाम करते हैं" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे नृप ! इसप्रकार भिन्न भिन्न युगके लोग भिन्न भिन्न युगमें उस उस युगके अनुरूप नामोंसे उस उस युगकी मूर्तिमें सब श्रेयोंके ईश्वर हरिको भजते और पूजते हैं ॥ ३५ ॥ हे नरनाथ ! गुणके जाननेवाले गुणग्राहक गुणी श्रेष्ठजन सब युगोंकी अपेक्षा कलियुगको ही आदरकी दृष्टिसे देखते हैं । क्योंकि इसमें केवल कीर्तन और मननसे सहजहीमें सब पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं; यह बात और युगोंमें नहीं है ॥ ३६ ॥ संसारके बीच जन्म मरणके चक्रमें पड़कर कष्ट पारहे मनुष्योंके लिये इस कलियुगमें हरि-कीर्तनसे बढ़कर और लाभ नहीं है, क्योंकि इससे संसारका बन्धन छूट जाता है और परमशान्ति मिलती है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! कलियुग, कर्मयुग है । इसीसे अन्य तीन युगोंके लोग कलियुगमें जन्म होनेकी कामना करते हैं । हे नृप ! इस कलियुगके बीच किसी किसी प्रदेशमें नारायणपरायण लोग जन्म लेंगे, अधिक-तर द्रविड़ देशमें बहुतसे भगवद्भक्तजन उत्पन्न होंगे । द्रविड़ देशमें ताम्रपर्णी,

कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी और महापवित्र प्रतीची आदि नदियाँ बहती हैं! हे नरेश! जो लोग उनके पवित्र जलका स्पर्शमात्र करते हैं उनका हृदय शुद्ध हो जाता है और वे सज्जन भगवान् वासुदेवके दृढ़ भक्त होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥४०॥ राजन्! भेदभावनाहीन होकर जो बुद्धिमान् व्यक्ति, मन वाणी और कायासे शरणागतपालक हरिके चरणोंकी शरणमें रहता है वह देव, ऋषि, पितृगण, कुटुम्ब या अन्यान्य मनुष्योंका ऋणी या किङ्कर कभी नहीं है ॥ ४१ ॥ अन्य विषयोंकी चिन्ता छोड़कर अपने चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले प्रिय भक्तसे यदि भूलेसे असावधानतावश कभी कोई निषिद्ध कर्म हो भी जाता है तो परमेश्वर हरि उसके हृदयमें प्रकट होकर उस कर्मके दोषको मिटा देते हैं" ॥४२॥

नारदजी वसुदेवसे कहते हैं कि—उपाध्यायसहित महात्मा जनकराजा इस-प्रकार भागवतधर्म सुनकर परम प्रसन्न हुए और उन्होने ऋषभके पुत्र जयन्ती-सुत नव मुनियोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ उक्त भागवतधर्मोंको सुनकर परम प्रसन्न उपाध्यायसहित महात्मा राजा जनकने उन जयन्तीके गर्भसे उत्पन्न ऋषभदेवके पुत्र सिद्ध मुनियोंकी पूजा की और वे सबके आगेसे अदृश्य होगये। राजा-जनक भी मुनियोंके कहे भागवतधर्मोंका पालन करतेहुए उत्तम गतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ हे महाभाग वसुदेव! तुमभी श्रद्धापूर्वक संसारका सङ्ग छोड़कर उक्त भागवतधर्मके परम मङ्गलमय मार्गमें चलनेसे परमपद पाओगे ॥ ४५ ॥ यह हमने शास्त्रोक्त प्रक्रिया कह दी, किन्तु तुम तो यों ही कृतार्थ हो। तुम दोनो स्त्री पुरुष धन्य हो; साक्षात् ईश्वर हरि भगवान् तुम्हारे पुत्र होकर तुमको कृतकृत्य कर चुके हैं, क्योंकि तुम्हारी निर्मल कीर्ति जगत्भरमें व्याप रही है ॥ ४६ ॥ तुम्हारा पुत्रस्नेहमय हृदय पुत्ररूप हरिके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप एवं एकत्र सोने, बैठने और भोजन करनेसे पहले ही पवित्र होचुका है ॥ ४७ ॥ जब शिशुपाल, पौण्ड्रक, और शाल्व आदि नरपतिगण वैरभावसे खाते, पीते, सोते, उठते, बैठते समय हर घड़ी हरिकी चाल, चितवन आदि चेष्टाओंका चिन्तन कर मुक्त होगये, तब जिनका चित्त हरिमें एकान्त अनुरक्त होरहा है उन विरक्त भक्तोंके मुक्त होनेमें क्या सन्देह है ? ॥ ४८ ॥ सबके हृदयमें स्थित ईश्वर श्रीकृ-ष्णको तुम केवल पुत्र न समझो; यह मायामय मानवरूपमें अपने ऐश्वर्यको छिपायेहुए अव्यय परमपुरुष हैं! पृथ्वीके लिये भार होरहे राजवेषधारी असुरोंका संहार और साधु भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये इन्होने अवतार लिया है। परम शान्ति मुक्तिके लिये जगत्में इनका सुयश फैला हुआ है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! महाभाग्यशाली वसुदेव और भाग्यवती देवी देवकी यह सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए, उनके हृदयसे ममता मोह दूर होगया ॥ ५१ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥
स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

जो कोई एकाग्र होकर इस पवित्र इतिहासका अनुशीलन करता है वह अलौकिक मोहसे रहित होकर ब्रह्ममय ऐसा मुक्तिपद पाता है ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

भगवान् कृष्ण और उद्धवका सम्वाद

श्रीशुक उवाच–अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥
भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महाराज! एकसमय अपने पुत्रोंसहित ब्रह्माजी, देवगण, प्रजाओकेपति, भगवान् भूतंभावन ईश्वर शंकर और उनके भूतगणकी मण्डली, मरुद्गणसहित भगवान् इन्द्रदेव, बारहो सूर्य, आठो वसु, अश्विनीकुमार, ऋभुगण, आङ्गिरसगण, ग्यारहो रुद्र, विश्वेदेवा, साध्यगण, सिद्धगण, गन्धर्व, अप्सरा और विद्याधरगण, नागगण, यक्षगण, ऋषिगण, पितृगण, किन्नरगण और चारण लोग–सब भगवान् कृष्णके उस नरलोकमनोरञ्जन परम सुन्दर शरीरको देखनेके लिये द्वारकापुरीमें आये, जिससे उन्होने त्रिलोकमलहारी अपना सुयश जगत्में फैलाया है। सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न हो भलीभाँति शोभित होरही द्वारकापुरीके ऊपर आकाशमार्गमें विमानोंपर बैठेहुए उक्त देवगण अतृप्त दृष्टिसे अद्भुतरूपधारी कृष्णचन्द्रकी छवि निहारतेहुए धन्य होकर स्वर्गलोकके बागोंके विचित्र फूलोंकी लड़ियां वर्सानेलगे। देवतोंने इतनी पुष्पवर्षा की कि कृष्णचन्द्र फूलोंसे ढक गये। तदनन्तर वे लोग इसप्रकार विचित्र पदों और भावोंसे ललित वाक्यावलीद्वारा जगदीश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥१॥२॥३॥४॥५॥६॥ देवगणने कहा—"हे नाथ! कर्ममय दृढ़ पाशोंसे छूटनेकी इच्छासे भक्त ऋषिगण निरन्तर हृदयमें जिनका ध्यान करते हैं उन्ही आपके चरणकमलोंको बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वाणीसे हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ हे अजित ! आप सगुण भाव धारणकर त्रिगुणमयी मायाके द्वारा अपनेमें इस अचिन्त्य विश्वप्रपञ्चकी सृष्टि, पालन और संहार किया करते हैं, किन्तु इन गुणमय मायाके कर्मोंमें लेशमात्र भी लिप्त नहीं हैं, क्योंकि आपमें काम, क्रोध, आदि सांसारिक दोष नहीं हैं, आप निश्चेष्ट हैं, क्योंकि अनावृत आत्मानन्दमें मग्न–इसीसे निरपेक्ष हैं ॥८॥ हे पूज्य ! हे श्रेष्ठ ! जैसे आपका सुयश

सुननेपर परिपुष्ट श्रद्धा(भक्ति)से विवेकी जनोंका हृदय निर्मल होजाता है वैसे विद्यासे, शास्त्र सुननेसे, वेदाध्ययनसे, दानकरनेसे अथवा जप-तपसे उन लोगोंका हृदय, जिनका मन विषयवासनासे मलिन होरहा है, सो कभी नहीं शुद्ध होसकता ॥ ९ ॥ हे ईश्वर ! विवेकी मुनिलोग मुक्तिकी कामनासे स्वर्गलाभके लोभको छोड़कर वैकुण्ठधाम और सदृश-ऐश्वर्य लेनेके लिये प्रेमसे निर्मल हो रहे हृदयमें स्थापित कर वासुदेव आदि मूर्तियोंमें जिनका त्रिकालपूजन करते हैं, और संयतहस्त याज्ञिक जन यज्ञिय अग्निमें वेदविहित विधिके अनुसार आहुति देकर जिनका ध्यान करते हैं, एवं आत्ममायाके जिज्ञासु योगीलोग अध्यात्मयोगका अभ्यास बढ़ाकर जिनका ध्यान किया करते हैं, और परम भागवत लोग सर्वत्र सर्वतोभावसे जिनकी आराधना करते हैं, उन आपके चरणकमलोंका भजन और कीर्तन हमारी दूषित वासनाओंको अग्निके समान भस्म करता रहे ॥ १० ॥ ११ ॥ किन्तु प्रेमी भक्तजन इन सबसे बढ़कर कृतकृत्य हैं। देखिये, ज्ञानमय वेदशास्त्रके सारग्राही भ्रमर भक्तोंके द्वारा प्रशंसित कीर्तिमयी वनमालाको परम पूजा मानकर आदरसहित आप सर्वाङ्गमें शोभायमान किये हैं। जो सौभाग्य सर्वाङ्गव्यापिनी वनमालाको श्रद्धाके कारण प्राप्त है वह सौभाग्य न पासकनेके कारण, उसको, एक अङ्गको रहनेवाली अनपेक्षित लक्ष्मी अपनी सौत समझकर, उससे स्पर्धा रखती है। हम प्रार्थना करते हैं कि आपके वे साधुवन्दित चरणकमल अग्निके समान हमारी दूषित वासनाओंको भस्म करते रहें ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! हे परमेश्वर ! आपके जो चरणकमल, बलि-बन्धनके समय, तीन धारा होकर गिरनेवाली त्रिपथगामिनी गङ्गाकी पताकासे युक्त त्रिभुवनव्यापी पराक्रमपताकादण्डके समान शोभायमान हुए थे, जिनसे सुरसेनाको अभय और असुरसेनाको भय प्राप्त हुआथा, जो साधु जनोंके ऊर्ध्वगमन और असाधु जनोंकी अधोगतिका निमित्त हैं, उन्हीको हम भजते हैं। उनके प्रतापसे हमारे अन्तःकरणकी दूषित वासनाएँ दूर होती रहें ॥ १३ ॥ आप प्रकृति और पुरुषसे परे कालरूप परमेश्वर हैं। काम-क्रोधके होनेसे होनेवाले युद्ध आदिमें परस्पर पीड़ित ब्रह्मा आदि सब देहधारी लोग रस्सीमें नथेहुए बैलोंके समान, आपके वशमें हैं; अर्थात् जैसा आप कराते हैं वैसा ही करनेके लिये विवश हैं। आपके सर्वशक्तिमान् चरणकमल हमारा कल्याण करें ॥ १४ ॥ आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण (आधार) हैं, एवं प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्वके नियन्ता कहकर प्रसिद्ध हैं। त्रिनाभि(तीनो चौमासे)युक्त सम्वत्सर ही जिसका रूप है, वह सब पदार्थोंको नष्ट करनेमें प्रवृत्त, गम्भीर(अनिवार्य)गतिवाला प्रबल काल आपहीकी मूर्ति है, इसीलिये आपको पुरुषोत्तम कहते हैं ॥१५॥ हे अमोघवीर्य ! यह पुरुष आपहीसे शक्ति (चेतन) पाकर इस विश्वको प्रकट करनेवाले 'गर्भ'के

सदृश महत्तत्त्वको प्रकृति या मायासे मिलकर धारण करता है और वह महत्तत्त्व गुणमयी मायाका अनुसरण करता हुआ बाहरी सातो आवरणोंसहित इस सुवर्ण-वर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है ॥ १६ ॥ अतएव आप चराचर जगत् भरके अधीश्वर हैं; क्योंकि, हे हृषीकेश ! मायासे प्रकाशित इन्द्रियोंकी वृत्तियोंद्वारा निकट लायेगये सब विषयोंका भोग करतेहुए भी आप निर्लिप्त ही रहते हैं ! किन्तु और सब लोग या योगी जन, त्यागेहुए भी विषयभोगसे भयभीत रहते हैं; अन्य यावत् जीव विषयवासनामात्रसे बन्धनको प्राप्त होते हैं, और आप भोग करके भी निर्लिप्त ही रहते हैं। इसीसे आप सर्वोपरि हैं ॥ १७ ॥ मन्दहासविलासपूर्ण कटाक्ष–दृष्टिके द्वारा भाव–प्रकाश करतीहुई सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियाँ भी सुरत–मन्त्रीकी सूचनासे, मनोहर भ्रूभङ्ग और कामके बाणोंके समान मनको मोहनेवाली केलिकलाओंसे, आपके अन्तःकरणको आसक्त नहीं करसकीं । आपके निर्लिप्त होनेका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ १८ ॥ भवदीय-कथामय अमृत–जलसे परिपूर्ण कीर्ति–नदी और पादप्रक्षालनके जलसे उत्पन्न गङ्गानदी—ये दोनो परम तीर्थ त्रिलोकीके पापपुञ्जको धोनेवाले हैं । अपने अपने वर्ण और आश्रमके धर्मको पालनेवाले विवेकी लोग, आन्तरिक मल धोनेके लिये, कानोंसे आपकी कीर्तिकी नदीमें मग्न रहते हैं और शरीरकी पवित्रताके लिये, गङ्गामें गोता लगाते हैं" ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! आकाशमें स्थित देवमण्डलीमण्डित शङ्करसहित भगवान् ब्रह्मा इसप्रकार स्तुति करनेके उपरान्त प्रणाम करके साक्षात् हरि कृष्णचन्द्रसे कहनेलगे कि—"हे सर्व-व्यापक प्रभो ! पहले हम लोगोंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये प्रार्थना की थी । इससमय हमारी प्रार्थनाके अनुसार आपके द्वारा सब काम पूरे हो चुके हैं। आप सत्यसंकल्प साधु सज्जनोंमें सनातनधर्मको स्थापित कर चुके और सब लोकोंके पापोंको हरनेवाली निर्मल कीर्ति भी दिग्दिगन्तमें फैलाचुके एवं इस सर्वोत्तम रूपसे यदुकुलमें प्रकट होकर जगत्के मङ्गलके लिये परमपराक्रमपूर्ण अनेक अलौकिक कार्य भी कर चुके। हे ईश्वर ! आपके उन चरित्रोंके श्रवण और कीर्तनसे कलियुगमें सब साधु मनुष्य अनायास ही अज्ञानसे मुक्त होसकेंगे। हे पुरुषोत्तम ! हे विभो ! आपको यदुवंशमें प्रकट हुए एकसो पचीस वर्ष बीत चुके हैं। हे सर्वाधार ! यह यदुवंश भी विप्रशापसे इससमय नष्टप्राय होगया है, हमारी समझमें अब कोई आपके करनेका देव–कार्य नहीं रहगया है; अतएव यदि उचित समझिये तो अपने परमधाममें चलकर हम वैकुण्ठसेवक लोकपालों और सब लोकोंकी रक्षा करिये" ॥२०–२७॥ श्रीभगवान्ने कहा—"हे देवेश ! आपने जो कहा, सो ठीक है। मैं पहलेही ऐसा विचार कर चुका हूं। मैं आप लोगोंके सब कार्य पूर्ण कर चुका और पृथ्वीका भार भी उतार चुका है। शौर्य, वीर्य, श्री आदिसे उद्धत होकर

जगत्को ग्रसनेके लिये उद्यत यादवकुलको, जैसे बढ़रहे सागरको 'सीमा' रोक रखती है वैसेही, मैंने रोक दिया है। यदि इस मदोन्मत्त यादववंशका विनाश विना किये मैं परम धामको चलदूंगा तो अवश्यही यह सागरकी भांति उमड़कर लोकोंका नाश कर देगा। हे निष्पाप प्रजापति! अब विप्रशापसे शीघ्रही वंशका विनाश होनेवाला है। इसका अन्त हो जानेपर मैं शीघ्रही वैकुण्ठगमन करूंगा" ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! देवमण्डलीसहित देवदेव स्वयम्भू ब्रह्माजी जगदीश्वरके कथनको सुनकर प्रणाम करके अपने लोकको गये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर द्वारका पुरीमें अशुभसूचक महा उत्पात होते देख, अपने निकट आयेहुए यदुकुलके बड़े बूढ़े लोगोंसे भगवान्ने कहा कि "हे आर्यगण! इस नगरीमें चारो ओर ये घोर उत्पात होते देखपड़ते हैं और हमारे कुलको ब्राह्मणोंका दुरत्यय शाप भी हो चुका है। इसलिये मेरी समझमें तो यह आता है कि यदि प्राणोंकी रक्षा करनी है तो हम लोगोंको यहाँ रहना उचित नहीं है। आओ, अभी, विना विलम्ब किये परम पवित्र प्रभास तीर्थको चलें। दक्षके शापसे होनेवाले क्षय रोगसे क्षीण होरहे चन्द्रमाकी रोगपीड़ा, जिसमें स्नान करनेसे तुरन्त नष्ट होगई और फिर कलाएं बढ़नेलगीं उसी महामहिमा—सम्पन्न प्रभास तीर्थमें जाकर हम लोग स्नान करेंगे, देव-पितृतर्पण करेंगे और अनेकगुणयुक्त सुस्वादु उत्तम अन्न ब्राह्मणोंको खिलावेंगे। जैसे उत्तम खेतमें बीज बोनेसे बहुफल—प्राप्ति होती है वैसेही वहां सत्पात्र ब्राह्मणोंको श्रद्धासहित अनेक महादान देनेसे महाफल मिलेगा और जैसे नौकाद्वारा अपार महासागरके पार पहुंच जाते हैं वैसेही हमलोग आनेवाले संकट और कष्टोंके पार पहुंच जायँगे" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे कुरुकुलतिलक! इसप्रकार भगवान्की आज्ञा पाकर सब यादव प्रभास तीर्थको जानेका निश्चय कर अपने अपने रथ आदि यानों (सवा-रियों) को जोतनेलगे ॥ ३९ ॥ भगवान्के वचन सुनकर और सबको प्रभास क्षेत्रकी यात्राके लिये उद्यत देखकर एवं घोर अरिष्टसूचक उत्पातोंको निहारकर—सदैव कृष्णके अनुगत सेवक उद्धवजी एकान्तमें जगदीश्वरोंके भी ईश्वर प्रभु कृष्णके पास पहुंचे और चरणोंमें शिर नवाकर हाथ जोड़कर कहनेलगे कि—"हे देव-देवेश! हे योगेश्वर! आपकी चर्चा करने और सुननेसे पुण्य होता है। आप इस वंशका विनाश करनेके उपरान्त इस लोकको अवश्य छोड़ जायँगे। हे ईश्वर! आपने समर्थ होकर भी विप्रशापको व्यर्थ नहीं किया—इसीसे मैं ऐसा निश्चय करता हूं ॥ ४०—४२ ॥ हे केशव! मैं आधे क्षणके लिये भी आपके चरणकमलोंसे अलग रहनेका साहस नहीं करसकता! इसलिये हे नाथ! मुझको भी अपने साथ ही अपने धामको ले चलिये ॥४३॥ हे कृष्ण! मनुष्योंके लिये परममङ्गलरूप और सुननेमें

अमृततुल्य मधुर आपके लीलाललित चरित्रोंका अपूर्व स्वाद जिसको मिलगया है वह अन्य सब कामनाओंको छोड़ देता है; तब सोते, बैठते, घूमते, घरमें रहते, नहाते, खेलते, खातेमें, अर्थात् सभी समय, सेवामें रहनेवाले हम अनन्य भक्त, अपने प्रिय आत्मा आपको कैसे छोड़ सकते हैं ? ॥४४॥४५॥ आपके जूठे वस्त्र, आभूषण, चन्दन माला आदिसे विभूषित और आपकी जूठन खानेवाले हम दास अवश्य ही आपकी दुस्तर मायाको तर जायँगे। दिगम्बर, ऊर्ध्वरेता, श्रमण, शान्त, शुद्ध, संन्यासी, परमहंस मुनिलोग महाकष्टसे कहीं आपकी मायाके मोहसे मुक्त होते हैं, किन्तु हे महायोगीश्वर! हम इस संसारके बीच कर्मकी गतियोंमें भ्रमतेहुए भी आपके भक्तोंके सङ्गमें आपकी चर्चा करतेहुए और आपके इस मायामानवरूपकी चाल, चितवन, मुसकान, हँसी, बातचीत और कर्मोंका स्वयं स्मरण करते और औरोंको करातेहुए दुस्तर अन्धकाररूप मायाके पार पहुँच जायँगे" ॥४६॥४७॥४८॥४९॥

श्रीशुक उवाच—एवं विज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः ॥
एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे नरनाथ! इसप्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् देवकीनन्दन कृष्णचन्द्र अपने एकाग्रचित्त प्रिय भृत्य उद्धवसे बोले ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

अवधूतका इतिहास

श्रीभगवानुवाच—यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥
ब्रह्मा भवो लोकपालः स्वर्वासं मेऽभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

भगवान्ने कहा—हे महाभाग! तुम्हारा अनुमान ठीक है; मैं वही करना चाहताहूं। ब्रह्मा, शंकर और सब लोकपालगण आदि मुझसे परमपदगमनकी प्रार्थना करचुके हैं ॥१॥ जिसलिये ब्रह्माकी प्रार्थनासे मैंने पृथ्वीपर अंशावतार लिया था वह सब देवकार्य पूर्णतया संपन्न कर चुका हूं ॥ २ ॥ विप्रशापसे पहलेही भस्म होचुका यह यादववंश भी परस्परके युद्धमें नष्ट होजायगा और आजके सातवें दिन मुझसे हीन इस द्वारकानगरीको सागर अपने जलमें मग्न कर देगा ॥ ३ ॥ हे साधु उद्धव! मेरे छोड़तेही यह मनुष्य लोक मङ्गलहीन होजायगा और शीघ्रही इसपर कलिकालका प्रभाव फैल जायगा ॥ ४ ॥ हे भद्र! मेरे परमधामगमनके उपरान्त तुम इस कलिदूषित पृथ्वीतलपर न बसना। कलियुगमें सब लोगोंकी अधर्ममें

अधिक रुचि होगी। तुम सब स्वजन और बन्धु-बान्धवोंके स्नेहको छोड़कर पूर्णतया मुझमें मन लगाओ और फिर समदर्शी होकर सुखपूर्वक पृथ्वीपर इच्छानुसार घूमो; उस दशामें तुम्हारे ऊपर कलिकालका प्रभाव नहीं पड़सकेगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ जो कुछ मन, वाणी, नेत्र और कान आदिके सांसारिक विषय हैं वे मनोमय मायाके असत् प्रपञ्च हैं—ऐसा समझो ॥ ७ ॥ व्यग्रचित्त पुरुषका भेदभावरूप भ्रम ही गुणदोषभागी है। गुणदोषबुद्धिसे पुरुषको कर्म, अकर्म, विकर्मरूप त्रिविध भ्रम होता है। इसलिये इन्द्रियवृत्तिसहित चित्तको एकाग्रकर इस जगत्को अपनेमें और अपनेको मुझ परमात्मामें देखो ॥ ८ ॥ ९ ॥ जब तुम ज्ञान (वेदके तात्पर्यका निश्चय) और विज्ञान (वेदके अर्थका अनुभव) से भलीभांति युक्त होकर सब देहधारियोंके आत्मा बन जाओगे, अर्थात् लीन अवस्थामें ब्रह्मानन्दके अनुभवसे सन्तुष्ट रहोगे, तब कोई भी विघ्न-बाधा न डाल सकेगा ॥ १० ॥ इस-प्रकार जो गुण-दोषबुद्धि अथवा भेदभावसे हीन होचुके हैं, अर्थात् परमहंस हैं, वे बालकोंकी भांति पूर्वसंस्कारवश कर्म करते हैं; विशेष बुद्धिसे बुरा विचारकर किसी कर्मसे निवृत्त नहीं होते; और वैसेही भला समझकर किसी कर्मके करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। ऐसे विधि और निषेधसे अतीत परमहंसलोग बालकके समान समदर्शी और शान्त होते हैं; वे सब प्राणियोंके हितकारी और ज्ञान-विज्ञानके निश्चयसे सम्पन्न होकर इस समग्र जगत्में मेरे रूपसे अपनेको देखते हैं, अतएव उन्हे फिर किसी विपत्तिका सामना नहीं करना पड़ता ॥११॥१२॥ श्रीशुक-देवजीने कहा—हे नृप! महाभागवत भक्त उद्धवजी भगवान्से उक्त आदेश पाकर तत्त्व जाननेकी कामनासे फिर प्रणाम करके अच्युतसे बोले कि—हे योगका फल देनेवाले ईश्वर! हे योगका आधार! हे योगरूप! हे योगके परमफल! अथवा योगकी उत्पत्तिका स्थान! आपने मोक्षके लिये मुझको इस संन्यासरूप कर्मत्यागका उपदेश दिया। किन्तु हे सर्वमय! मैं समझता हूँ कि जिनका मन विषयोंमें आसक्त है उन अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये यह वासना-त्याग दुष्कर है; विशेषकर सबके आत्मा जो आप हैं उनकी भक्ति जिनमें नहीं हैं, वैसे पुरुषोंके लिये तो यह त्याग अतीव दुष्कर है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे नाथ! मैं भी, मूढ़ मतिमन्द मनुष्य हूं, आपकी मायासे कल्पित शरीर और उसके साथी पुत्र आदिमें 'मैं हूं-मेरा है'-इस ममतासे मेरा हृदय आसक्त हो रहा है। अतएव, जिसमें मैं क्रमशः योगसाधन करताहुआ शनैः शनैः आपके उपदेशानुसार चल सकूं ऐसी सुगम रीतिसे विस्तारपूर्वक समझाकर संन्यास सिखाइये। मैं आपका अनुगत भृत्य और इसी कारण प्रीतिपात्र जन हूँ ॥ १६ ॥ हे ईश्वर! आप स्वयंप्रकाशमान सत्य आत्मा हैं। आपके सिवा आत्मज्ञानकी सम्यक् शिक्षा देने-

वाला दूसरा कोई देवतोंमें भी नहीं देख पड़ता। ये ब्रह्मासे लेकर सभी देहधारी लोग आपकी मायामें मोहित हो रहे हैं और इसी कारण बाह्य विषयोंको परम लाभ मानकर उन्हीके पानेका प्रयास करते हैं ॥ १७ ॥ इसकारण भांति भांतिके अनन्त दुःखोंकी ज्वालाओंसे जल रहा अतएव संसारसे विरक्त मैं, परमात्मा, परमानन्दमय, अनन्तपार, सर्वज्ञ, ईश्वर, अविनाशी, वैकुण्ठधाममें रहनेवाले और नर(जीव)के सखा साक्षात् नारायण (परमात्मा) जो आप हैं उनकी शरणमें आया हूं ॥ १८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—लोकतत्त्वका मनन करनेवाले विचार-शील विवेकी मनुष्य प्रायः अपने आप आत्माको विषयवासनाओंसे निवृत्त करके उनका उद्धार करते हैं। पशुआदिके शरीरमें (भी) और विशेषकर मनुष्यशरीरमें हित और अहित जाननेके लिये जीवका गुरु आत्मा ही है, क्योंकि यह आत्मा ही प्रत्यक्ष और अनुमान(अनुभव)से मुक्तिफलको पाता या भोगता है ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ सत् और असत्का विवेक रखनेवाले सांख्ययोगमें निपुण धीर पुरुषगण सब शक्तियोंसे परिवर्धित पुरुष(जीव)रूपसे मुझको भिन्न भिन्न प्रकाश्य वस्तुओंमें देखते हैं। एक चरण, दो चरण, तीन चरण, चार चरण अनेक चरण और चरणहीन अनेकानेक पूर्व सृष्ट शरीरोंमें सबसे बढ़कर मनुष्य शरीरही मुझे प्यारा है। मैं अन्य देहधारीयोंके निकट अज्ञेय हूं, तथापि सावधान विवेकी मनुष्यगण सब जड़तत्त्वोंके प्रवर्तक चैतन्यरूप एवं इसी शरीरमें निगूढ़ मुझ अचिन्त्य आत्माको प्रत्यक्ष गुण और चिन्होंके द्वारा अनुमानपूर्वक प्रत्यक्ष खोजते, भजते और पूजते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ हम तुमको इस प्रसङ्गमें एक पुरातन इतिहास सुनाते हैं, जिसमें महा-तेजस्वी यदुका एक महात्मा अवधूतसे संवाद वर्णित है ॥ २४ ॥ धर्मके ज्ञाता राजा यदुने एक समय एक स्थानपर निर्भयभावसे विचर रहे एक सत्-असत्का विवेक रखनेवाले युवा अवधूत (दत्तात्रेयजी) को देखकर उनसे पूछा कि—"हे ब्रह्मन्! हे अवधूत! जिससे आप विद्वान् होकर भी इसप्रकार एक छोटे बालककी भांति कर्मासक्तिसे शून्य रहकर विचरते फिरते हैं वह निर्मल बुद्धि आपको कहांसे और कैसे मिली है? प्रायः देखा जाता है कि मनुष्यलोग आयु, यश और मङ्गलकी कामनासे ही धर्म, अर्थ, काम और आत्मविचारमें प्रवृत्त होते हैं। किन्तु मैं देखता हूं कि आप समर्थ, पण्डित, निपुण, सौभाग्यशाली और मित भाषण करने-वाले होकर भी जड़, उन्मत्त एवं पिशाचग्रस्त मनुष्योंकी भांति निष्कर्मा और निस्पृह हैं। सब लोग कामना और लोभरूप दावानलकी ज्वालाओंसे जल रहे हैं; परन्तु आप उस अग्निसे बचेहुए हैं; गङ्गाजलके भीतर अवस्थित गजके समान आप विषयतापमुक्त, शान्त हैं। आप स्त्रीपुत्रादिरहित अकेले और इसीकारण विषयभोगरहित हैं। आपके इस आत्मामें परमानन्दलाभका कारण क्या है?—सो कृपापूर्वक कहिये ॥ २५–३० ॥ श्रीभगवान् उद्धवसे कहते हैं कि—

इसप्रकार प्रशंसापूर्वक सादर प्रश्न करनेपर वह महाभाग महात्मा ब्राह्मण, ब्रह्मण्य सुबुद्धि और विनयसे नम्र राजा यदुसे बोले कि–"हे राजन्! मैंने अपनी बुद्धिसे आपही शिक्षा लेकर अनेक गुरु किये हैं। मैंने जिनको गुरु माना है उन्होने मुझे प्रत्यक्ष उपदेश नहीं दिया है, किन्तु मैंने ही उनके व्यवहारसे अपने बुद्धिके अनुसार हेय और उपादेयकी शिक्षा ली है। जिनसे विवेकबुद्धि पाकर मुक्त अवस्थाका सुख भोगता हुआ मैं इसप्रकार विचरता हूँ, वे मेरे गुरु ये हैं–सुनो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत (कबूतर) अजगर, सागर, पतङ्ग, मधुकर[1], गज, मधुहारी, हरिण, मीन, पिङ्गला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, ऊर्णनाभ (मकड़ा) और पेशस्कृत् (तितली)। हे नरनाथ! इन्ही चौबीस गुरुओंके व्यवहार या आचरणोंसे मैंने अपने ग्राह्य और अग्राह्य विषयोंको सीखा है ॥३३॥३४॥३५॥ हे नहुप राजाके पुत्र पुरुपसिंह महाराज यदु! इन गुरुओंमें मैंने जिससे जो सीखा है सो सब क्रमशः कहताहूँ, मन लगाकर सुनो ॥३६॥ मैंने पृथ्वीसे क्षमा और स्थिरता सीखी है। जैसे पृथ्वीको लोग खोदते हैं, उसपर थूकते हैं–मल-मूत्र त्याग करते हैं परन्तु वह तनिक भी विचलित न होकर उन्हे अपनी गोदमें रखती है, वैसे साधु, विवेकी पुरुपको चाहिये कि उन दुष्ट अपकारी लोगोंको दैवके अनुगत समझकर सब उपद्रवोंको सहता रहे, और अपनी स्थिति (मार्ग) से विचलित न होकर उनसे पृथ्वीके समान क्षमाका बर्ताव करे। (पर्वतरूप और वृक्षरूप पृथ्वीसे जो सीखा है सो सुनो) मैंने पर्वतोंसे परोपकारवृत्ति सीखी है। पर्वत जैसे वृक्ष, तृण, झरने और फल फूल आदिके द्वारा सर्वथा अपने जीवनकी सब चेष्टाओंको परोपकारमें लगा देते हैं, वैसेही साधुको चाहिये कि अपने शरीर और मनकी सब चेष्टाओंको तथा जीवनको और लोगोंके लिये अर्पण कर दे। मैंने वृक्षोंसे यह सीखा है कि जैसे वृक्षको लोग काटते हैं, जलाते हैं, उखाड़ डालते हैं, परन्तु वह बुरा न मानकर उन पीड़ा देनेवालोंको अपने पत्ते, गोंद, छाल, जड़, फूल, फल, लकड़ी, कोयला और राख तकसे लाभ पहुंचाता है, वैसेही साधुको चाहिये कि बुराई करनेवालों सतानेवालोंकी भी भलाई करे और समझे कि ये पराधीन हैं, इनका इसमें कोई दोष नहीं है; मैं अपने कर्मोंके अनुसार इनके द्वारा सताया जा रहा हूँ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मैंने वायुसे जो सीखा है, सो सुनो—

---

१ मधुको फूलोंसे निकालनेके कारण भ्रमरका नाम मधुकर है। किन्तु मधुको बनाने और जमा करनेके कारण मधुमक्षिकाको भी मधुकर कहते हैं। यहां मधुकर शब्द भ्रमर और मधुमक्षिका दोनोंका बोधक है।

(वायु दो प्रकारका होता है एक शरीरके भीतरका प्राणवायु और दूसरा बाहरी वायु), जैसे प्राणवायु केवल आहारमात्रकी अपेक्षा रखकर रूप-रस आदि इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा नहीं रखता, वैसेही मुनिको चाहिये कि जिसमें ज्ञान नष्ट न हो और वाणी व मन व्यग्र न हो इसलिये मित आहारमात्र करे और उसीमें सन्तुष्ट रहे; इन्द्रियप्रीतिके लिये रूप आदि विषयोंमें आसक्त न हो। जैसे बाह्य वायु गन्ध आदि गुणों और शीत उष्ण आदि धर्मोंसे युक्त (प्रतीत) होकर भी वास्तवमें निर्लिप्त ही रहता है, वैसे ही आत्मज्ञानी योगी अहं-भावनाके कारण विविध शारीरिक धर्मोंसे युक्त प्रतीत होकर भी अपने(आत्मा)को शरीरके गुण और दोषोंसे अतीत समझे और पूर्वसंस्कारवश विषयभोग करता हुआ भी निर्लिप्त रहे। जैसे वायु विविध गन्धोंका आश्रय होकर भी वास्तवमें उनसे अलग रहता है, वैसे ही उक्त प्रकारके आत्मज्ञानको प्राप्त योगी भी, संसारके बीच पार्थिव शरीरोंमें प्रविष्ट और उन शरीरोंके गुणोंका अवलम्ब होकर भी अपनेको शरीर और शरीरके गुणोंसे भिन्न ब्रह्मरूप समझनेसे निर्लिप्त ही रहता है ॥३९–४१॥ हे राजन्! मैंने आन्तरिक तथा बाह्य आकाशसे जो सीखा है, सो सुनो—आन्तरिक आकाश जैसे घट आदिके भीतर होकर भी अखण्ड, निर्लिप्त और समन्वयरूपसे व्यापक है, वैसे ही योगीको भी चाहिये कि देहके भीतर स्थित होकर भी अपने (आत्मा) को ब्रह्मरूप और इसीकारण अखण्ड, एवं स्थावर–जङ्गमादि सब शरीरोंमें समन्वयरूपसे व्याप्त व विस्तृत, तथापि निर्लिप्त देखे। इसप्रकार योगीको विचारना चाहिये कि बाह्य आकाश जैसे वायुसञ्चालित मेघ और रज आदिसे अलग रहता है वैसेही आत्मा भी कालकृत तेज-जल-अन्न-मय शरीरोंसे अलग है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मैंने जलसे जो शिक्षा पाई है सो सुनो—योगीको चाहिये कि जलके समान निर्मल, स्वाभाविक स्निग्ध (मिलनसार) मधुर और तीर्थतुल्य होकर दर्शन, स्पर्श और कीर्तनसे दर्शन, स्पर्श और कीर्तन करनेवालोंको पवित्र करता रहे ॥ ४४ ॥ मैंने अग्निसे जो सीखा है सो सुनो—योगीको चाहिये कि अग्निके समान तेजस्वी (अत्यन्त ज्ञानी), तप (ईश्वरचिन्तन) से दुरन्त दीप्तिशाली और दुर्धर्ष (किसी मनोविकारसे विचलित न होनेवाला) होकर जो कुछ प्राप्त हो उसे पेटके पात्रमें रख ले, अर्थात् आहारसे अधिक सञ्चय न करे एवं सर्वभक्षी होकर भी निर्मल रहे। जितेन्द्रिय मुनिको उचित है कि अग्निके समान कभी प्रच्छन्न रहे और कभी व्यक्त होकर मङ्गलकी अभिलाषासे उपासना करनेवालोंके भूत और भविष्य पातकोंको भस्म करता रहे, एवं अग्नि जैसे दूसरेके देनेसे हव्यकी आहुति लेता है, किन्तु स्वयं उसके लिये कुछ उद्योग नहीं करता, वैसे ही अनायास जो प्राप्त हो वही भोजन करे। योगीको विचारना चाहिये कि अग्नि जैसे भाँति भाँतिके काष्ठोंके भीतर रहकर उपाधिके अनुरूप प्रतीत होताहै वैसेही आत्मा-

भी अपनी मायासे विरचित इस विविध विश्वमें प्रवेशकर ऊँची, नीची योनि अथवा वर्णकी उपाधियोंके अनुरूप वैसा ही प्रतीत होता है ॥ ४५-४७ ॥ मैंने चन्द्रमासे जो सीखा है सो सुनो—जैसे अव्यक्तगति कालके द्वारा चन्द्रमाकी कलाएँ घटती बढती रहती हैं, चन्द्रमण्डल नहीं घटता बढ़ता, वैसे ही योगीको विचारना चाहिये कि जन्मसे लेकर श्मशानमें जानेतककी सब कालकृत अवस्थाएँ देहकी हैं, आत्माकी नहीं हैं। जैसे अग्निकी शिखाएँ ही उत्पन्न और नष्ट होती हैं, अग्निकी उत्पत्ति या नाश नहीं होता, वैसेही जलप्रवाहके तुल्य अप्रतिहत-वेगस-म्पन्न कालकी गतिसे नित्यप्रति शरीरही उपजते और नष्ट होते हैं, आत्मा न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है ॥४८॥४९॥ मैंने सूर्यसे जो सीखा है, सो सुनो—सूर्य जैसे किरणोके द्वारा पृथ्वीसे जलको खींचता है और समयानुसार वर्षा करता है वैसे योगीको चाहिये कि इन्द्रियोंके द्वारा विषय-ग्रहण करता हुआ समयपर आगत अर्थी जनको वेही विषय देकर सन्तुष्ट करे, किन्तु सूर्यके समान निर्लिप्त रहे अर्थात् 'मैं भोगनेवाला या भोग करानेवाला हूँ'-ऐसी भावना न करे। योगीको विचारना चाहिये कि जैसे एकमात्र सूर्यमण्डल जलपात्ररूप उपाधिके भेदसे भिन्न भिन्न रूपोंमें अनेक प्रतीत होता है, वैसेही स्थूल बुद्धिके लोग, स्वरूपतः एक आत्माको शरीरादि उपाधियोंके भेदसे भिन्न भिन्न रूपोंमें अनेक देखते हैं ॥५०॥ ॥ ५१ ॥ मैंने कपोत (कबूतर)से जो शिक्षा पाई है सो सुनो—योगीको किसीके प्रति अति स्नेह न करना चाहिये और न किसीके प्रसङ्गमें आसक्त होना चाहिये। यदि अत्यन्त स्नेह या प्रसङ्ग करता है तो दीनबुद्धि कपोतके समान सन्तापको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ हे राजन्! एक वनवासी कपोत वृक्षपर झोंझ-लगाकर उसीमें अपनी स्त्रीके साथ कई वर्षतक रहाकिया ॥ ५३ ॥ गृहस्थ कबूतर और कबूतरीको परस्पर अत्यन्त स्नेह था। दोनोंकी बुद्धि और हृदय एक था। दोनो सर्वदा अङ्गसे अङ्ग और दृष्टिसे दृष्टि मिलाये रहतेथे ॥ ५४ ॥ दोनो वेखटके उस विशालवनमें एकसाथ सोते, उठते, बैठते, खाते, पीते, खेलते, घूमते, टहलते और बातचीत करतेथे ॥ ५५ ॥ सबप्रकार प्रसन्न रखनेवाली और इसीकारण एक-मात्र प्रेमपात्र वह कबूतरी जो जो कामना करती थी उसे वह अजितेन्द्रिय कामी कबूतर कष्ट उठाकर भी पूर्ण करता था ॥ ५६ ॥ इसी अवसरमें कबूतरीके पहले-पहल गर्भ रहा और समय पाकर उसने स्वामीके निकट झोंझमें कईएक अण्डे दिये ॥ ५७ ॥ नारायण हरिकी अचिन्त्य शक्तियोंके द्वारा कुछ कालमें वे अण्डे फूटकर सब अङ्गोंसे सम्पन्न छोटे छोटे बच्चे बनगये। उन बच्चोंके अङ्ग और रोमपुञ्ज अत्यन्त कोमल थे ॥ ५८ ॥ वे पुत्रवत्सल दोनो स्त्री पुरुष उन बच्चोंकी मधुर बोली और कलकूजितको सुनकर प्रसन्न होतेहुए उन्हे पालनेलगे ॥ ५९ ॥ दोनो पिता माता हृष्ट-पुष्ट बच्चोंके कोमल पंखोंके सुखदायक स्पर्शसे महाआनन्दित होतेथे और उनके कलरवको सुनकर, भोले भोले मुखको और प्रत्युद्गमनको देखकर सुखी

होतेथे ॥ ६० ॥ इसप्रकार हरिकी मायासे परस्पर स्नेहके सुदृढ बन्धनमें बद्ध हृदयसे वे दोनो दीनबुद्धि कबूतर—कबूतरी विमोहित भावसे बच्चोंका पालन करनेलगे ॥ ६१ ॥ एक दिन आहार खोजनेके लिये झोंझमें बच्चोंको अकेला छोड़ वे कुटुम्बी दोनो पक्षी वनमें इधरउधर दूर दूर बहुत देरतक घूमते रहे। इसी बीचमें एक चिड़ीमार घूमताहुआ उधर आ निकला और कबूतरके बच्चोंको वहाँ विचरते देखकर जाल डालकर बैठगया। इधर बच्चे जालमें फँसे और उधर पुत्रोंके पालनमें सदा उत्सुक रहनेवाले वे दोनो कबूतर कबूतरी चारा लेकर आगये ॥६२॥६३॥६४॥ बच्चे माता पिताको देखकर और भी चिल्लानेलगे, कबूतरी भी अत्यन्त दुःखित होकर चिल्लातीहुई बच्चोंके पास दौड़गई। इसप्रकार पुत्रस्नेहमें जकड़ीहुई और ईश्वरकी मायाके मोहमें बेसुध वह कबूतरी आपहीसे उस जालमें जाकर फँसगई ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ प्राणसे प्यारे पुत्र पकड़ेगये और जीवनप्राणसी स्त्री भी फँस गई, यह देखकर अत्यन्त दुःखित कबूतर उससमय यों पश्चात्ताप और विलाप करनेलगा कि "अहो मैं अत्यन्त अभागी और मन्दमति हूँ, मेरी इस दुर्गतिको तो कोई देखे कि मैं अभी तृप्त नहीं हुआथा, कृतार्थ भी नहीं हुआथा, और धर्म अर्थ तथा कामनाओंका साधनस्वरूप मेरा बनाहुआ घर बिगड़ गया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मेरी स्त्री ऐसी अनुरूप और अनुकूल थी कि एकमात्र मुझ पतिको ही अपना इष्टदेव मानती थी। विधिकी कठिनाईसे वह भी इस शून्य घरमें मुझे अकेला छोड़कर अपने साधु पुत्रोंके साथ स्वर्गको जारही है ॥ ६९ ॥ पुत्र और स्त्रीके वियोगसे व्याकुल और दीन मैं अब शून्य घरमें कैसे इस दुःखमय जीवनको बिताऊँगा" ॥ ७० ॥ मूर्ख और दुःखित वह कबूतर जालमें फँसकर सामनेही मृत्युपाशमें छूटनेके लिये छटपटातेहुए परिवारकी दुर्दशा देखकर भी नहीं चेता और आप भी जालमें फँसगया ॥७१॥ वह क्रूर चिड़ीमार उस सपरिवार कबूतरके जोड़ेको पाकर एवं अपनेको कृतार्थ समझकर बहुतही प्रसन्न हुआ और सबको लेगया ॥ ७२ ॥ जो व्यक्ति इसप्रकार गृहस्थ, अशान्तहृदय और कुटुम्बके पालनपोषणमें अत्यन्त आसक्त हैं वे उस कबूतरके समान दुःखित होकर शरीरके द्वारा कष्ट पाते हैं ॥ ७३ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥
गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

यह मनुष्यजन्म खुला हुआ मुक्तिका द्वार है, इसको पाकर भी जो कोई, उक्त पक्षीकी भाँति आसक्त होता है, वह मूढ़ है, उसको शास्त्रमें 'आरूढच्युत कहते हैं ॥ ७४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय

पिङ्गला वेश्याकी कथा

ब्राह्मण उवाच—सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥
देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥

दत्तात्रेयने कहा—राजन्, मैंने अजगरसे जो सीखा है, सो सुनो—जैसे दुःख स्वयं प्राप्त होता है वैसेही इन्द्रियजनित विषयसुख भी स्वर्ग और नरकमें समान भावसे प्राणियोंको प्राप्त होता है इसलिये समझनेवाले विद्वान्को उसकी इच्छा न करनी चाहिये ॥ १ ॥ खानेका पदार्थ सरस हो या नीरस हो, बहुत हो या थोड़ा हो, जो कुछ आपहीसे मिलजाय उसे अजगरकी भाँति उदासीन भावसे खालेना चाहिये ॥ २ ॥ यदि खानेको आपहीसे न मिले तो 'दैवही देनेवाला है' ऐसा समझकर धैर्य-धारणपूर्वक अजगरकी भाँति निराहार और निरुद्यम रहकर बहुकालतक पड़ा रहे ॥ ३ ॥ इन्द्रियबल, मनोबल और दैहिक बलसे सम्पन्न होनेपर भी चेष्टाहीन शरीरसे पड़ा रहे। अपने स्वार्थ अर्थात् परमार्थमें दृष्टि रखकर इन्द्रिययुक्त होकर भी कोई चेष्टा या उद्योग न करे ॥ ४ ॥ मैंने सागरसे जो सीखा है, सो सुनो—जिसका प्रवाह रुका हुआ है उस सागरकी भाँति मुनिको प्रशान्त, गम्भीर, दुरवगाह्य, अनतिक्रमणीय, अनन्तपार और अक्षोभ्य होकर रहना चाहिये। सागर जैसे वर्षाऋतुमें बढ़ीहुई नदियोंके जलको पाकर भी अपनी मर्यादाको नहीं छोड़ता और ग्रीष्मऋतुमें नदियोंके सूख जानेपर भी नहीं सूखता, या घटता, वैसेही नारायणपरायण योगीको भी चाहिये कि समृद्ध कामनाओंको पाकर न प्रसन्न हो और कामनाओंके न मिलनेपर न शोक करे ॥ ५ ॥ ६ ॥ मैंने पतङ्गसे जो सीखा है, सो सुनो—जो लोग इन्द्रियोंके वशमें हैं वे देवमायारूपिणी स्त्रीको देखकर उसके हाव-भावमें प्रलोभित हो उसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट (अर्थात् अन्धकारमयी अधोगतिको प्राप्त) होते हैं जैसे अग्निमें गिरकर पतङ्गकी दुर्गति होती है ॥७॥ स्त्री, स्वर्णालङ्कार और वस्त्रादि मायाकल्पित वस्तुओंमें उपभोगबुद्धिसे जिसका चित्त प्रलोभित हो रहा है वह मूर्ख नष्टदृष्टि पतङ्गकी भाँति नष्ट होकर कष्ट पाता है ॥८॥ मैंने भ्रमरसे जो सीखा है, सो सुनो—शरीरकी शक्ति शिथिल न हो-इसलिये मुनिको उतना ही आवश्यक मित आहार करना चाहिये। मधुकरकी भाँति थोड़ा थोड़ा अन्न कई एक घरोंसे लेकर खाना चाहिये। एक ही गृहस्थके यहाँसे भिक्षा करके उसे सताना न चाहिये (दूसरेऐसा करनेसे अपनी भी बड़ी भारी हानि है, क्योंकि जैसे विशिष्ट गन्धके लोभसे एकही कमलमें रहनेवाला भ्रमर सूर्यास्त होतेसमय कमलके सम्पुटमें फँसकर प्राण दे देता है, वैसेही मुनि भी

स्वादके लोभसे एकही घरमें आश्रय लेनेसे उसके सांसर्गिक मोहमें फँसकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है) जैसे मधुकर सब फूलोंसे सारांशमात्र ले लेता है, वैसेही चतुर मनुष्यको, छोटे या बड़े सभी शास्त्रोंसे सारांशमात्र ले-लेना चाहिये ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ दूसरे प्रकारके मधुकर अर्थात् मधुमक्षिकासे जो मैंने सीखा है, सो सुनो—जो कुछ भिक्षामें मिले उसे सायंकाल या दूसरे दिनके लिये न रख छोड़े। हाथ और पेटकोही पात्र बनावे। मधुमक्षिकाकी भाँति संचय न करे। जो कोई भिक्षुक सायंकाल या दूसरे दिनके लिये संचय करता है वह मधुमक्षिकाकी भाँति संचित द्रव्यसहित नष्ट होता है ॥११॥१२॥ हे राजन्! मैंने गजसे जो शिक्षा पाई है, सो सुनो—भिक्षुकको पैरसे भी, लकड़ीकी भी स्त्रीको स्पर्श न करना चाहिये। और जो कोई करता है वह उसीप्रकार पतित होजाता है, जैसे हथनीके अङ्गसङ्गके लिये हाथी गढ़ेमें गिरता और फसता है[1] ॥१३॥ प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि कभी भूलेसे भी स्त्रीके निकट न गमन करे, क्योंकि वह उसकी साक्षात् मौत है! जो कोई स्त्रीसङ्ग करता है उसे उससे सबल लोग उसीप्रकार मारते हैं जैसे हथनीके लिये निर्बल हाथीको सबल हाथी मारते हैं ॥१४॥ मैंने मधुहारीसे जो सीखा है, सो सुनो—जैसे मधुहारी (कंजड़) मक्षिकाओंके सञ्चित मधुका पता लगाकर उसे हर ले जाता है और आप खाता है तथा उससे लेकर और लोग खाते हैं, वैसेही कृपण लोगोंके दुःखसञ्चित, दानभोगविवर्जित धनको, पता पा कर, और लोग उड़ा ले जाते हैं, और वह हाथ मलकर रहजाता है। इससे मैंने यह तात्पर्य निकाला है कि, जो लोग धनका दान या भोग नहीं करते उनके धनको दूसरेही लोग भोगते हैं ॥१५॥ मधुहारी जैसे सञ्चय करनेवाली मक्षिकाओंके आगेही मधुको खाता है वैसेही यति (संन्यासी) भी अत्यन्त कष्टसे उपार्जित और अनेक मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये सञ्चित गृहस्थोंके धनको उनके आगेही भोगता है, उसकेलिये उद्योग अनावश्यक है ॥ १६ ॥ मैंने हरिणसे जो सीखा है, सो सुनो—वनवासी यती कभी ग्राम्य गीतोंको न सुने। देखो, व्याधके मधुर गीतमें मोहित होकर हरिण उसके जालमें फसकर परवश हो जाता है ॥ १७ ॥ हरिणीपुत्र ऋष्यशृङ्ग मुनि स्त्रियोंके ग्राम्य गीत गाने बजाने और नाचनेको देखकर उनके वशवर्ती बने एवं उनके हाथकी पुतली हो गये ॥ १८ ॥ मैंने मीनसे जो सीखा है, सो सुनो—जैसे मीन चंचल जिह्वाके वश होकर मांसके टुकड़ेमें छिपेहुए लोहेके काँटेमें बिधकर प्राण गँवा देता है, वैसेही रसके स्वादमें मोहित मन्दमति मनुष्य

---

१ हाथी पकड़नेवाले लोग पहले एक बाड़ेमें हथनीको बाँध देते हैं और उसके भीतर जानेकी एकही राह रखते हैं, उस राहमें बड़ाभारी गढ़ा खोदकर उसे घासफूससे पाट देतेहैं। हथनीको देखकर कामान्ध हाथी, वहाँ जाकर गढ़ेमें गिरकर फसजाता है।

दुर्दमनीय जिह्वाके कारण मृत्युको प्राप्त होता है। इसलिये सबसे पहले जिह्वाको वशमें करना चाहिये ॥ १९ ॥ विद्वान् विवेकी लोग रसनाके सिवा अन्य सब इन्द्रियोंको शीघ्र वशमें कर सकते हैं। निराहार रहनेसे और भी रसना प्रबल होती है और भोजन करनेपर रसकी आसक्तिसे और इन्द्रियाँ भी चलायमान होती हैं। इसीसे चाहिये कि केवल शरीरधारणके प्रयोजनसे स्वादकी आसक्तिको छोड़-कर, जो कुछ मिलजाय, वही खाकर सन्तुष्ट रहे। अन्य इन्द्रियोंको जीत लेनेपर भी जबतक जिह्वा नहीं जीती जाती तबतक कोई जितेन्द्रिय नहीं कहा जासकता। रसनाको वशमें कर लेनेसे सब इन्द्रियाँ सहजमें जीती जासकती हैं ॥ २० ॥ ॥२१॥ विदेह राजा जनकके नगरमें पहले एक पिङ्गला नाम वेश्या रहती थी। हे नृपनन्दन! उससे जो कुछ मैंने सीखा है सो सुनो ॥२२॥ वह वेश्या एक दिन किसी नगरनिवासीको अपने शयनगृहमें लानेके लिये भलीभाँति सुन्दर शृङ्गार करके सायङ्कालके समय घरके बाहर द्वारपर आकर खड़ी हुई ॥ २३ ॥ हे पुरुष-श्रेष्ठ! वह धनकी लालसा रखनेवाली वेश्या जिस मनुष्यको राहमें आता हुआ देखती थी उसीको धन देकर रति करनेवाला धनी नागर समझती थी, किन्तु जब वह पुरुष निकटसे निकलकर चला जाता था तब वह संकेतोपजीविनी वेश्या विचारती थी कि 'और कोई बहुत धन देनेवाला धनी पुरुष मेरे पास आता होगा' ॥ २४ ॥ २५ ॥ इसीप्रकारकी दुराशा करके वह सोई नहीं और उसी द्वारके सहारे वहींपर खड़ी रही। वह कभी हताश होकर भीतर चली जाती थी और कभी फिर आशा करके बाहर आती थी। इसीप्रकार आधी रात बीतगई, और कोई भी न आया ॥ २६ ॥ धनकी आशासे यों खड़े खड़े उसका मुख सूखने लगा और चित्तमें बड़ाही दुःख होनेलगा। इस अवस्थामें धनकी चिन्ता करते करते उसके हृदयमें परम सुखदायक निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ इसप्रकार चित्तमें निर्वेद उपजनेपर उस वेश्याने जो कुछ कहा सो मैं वैसा ही तुमको सुनाये देता हूँ—सुनो। हे राजन्! पुरुषके सुदृढ़ आशापाशको काटनेवाला खड्ग एकमात्र वैराग्य ही है। जिसके हृदयमें वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ उसके लिये देहबन्धन काटनेका कोई और उपाय ही नहीं है ॥ २८ ॥ २९ ॥ पिङ्गलाने कहा—"अहो! मुझको कुछ भी विवेक नहीं है, मेरा चित्त तनिक भी मेरे वशमें नहीं है। मेरे मोहके पसारको तो देखो, मेरी बुद्धि अत्यन्त मन्द है, क्योंकि मैं अत्यन्त तुच्छ असमर्थ लोगोंको कान्त मानकर उनसे काम्य वस्तु पानेकी कामना करती हूँ ॥ ३० ॥ मैं बड़ी ही बेसमझ हूँ! अपने हृदयके भीतरही रमनेवाले, अतएव समीपही वर्तमान और नित्य रति तथा धन देनेवाले इस परम पुरुष(आत्मारूप परमेश्वर)को छोड़कर कामना पूर्ण करनेमें असमर्थ और दुःख, शोक, भय, चिन्ता, मोह आदि देनेवाले तुच्छ पुरुषोंका भजन कर

रही हूँ ! ॥३१॥ अहो, मैंने अबतक अत्यन्त निन्दित वेश्यावृत्तिसे अपने आत्माको व्यर्थ सन्तप्त किया ! हाय-हाय ! मैं इस अर्थलुब्ध, अनुशोचनीय और धन देनेवालेके हाथ विकनेवाले शरीरके द्वारा लम्पट कामी पुरुषोंसे रति और धन पानेकी इच्छा करतीथी ! ॥३२॥ यह शरीर एक मल-मूत्रसे भराहुआ घर है । सीधे, तिर्छे बाँस और थूनीके स्थानपर हड्डियाँ लगी हुई हैं । यह त्वचा, रोम और नखोंसे आवृत है । इसके नव द्वारोंसे मलविकार बहा करता है, मेरे सिवा और कौन नासमझ स्त्री होगी जो इसको कान्त समझकर सेवैगी ! इस विदेहनगरीमें मैंही एक ऐसी मूढ़ बुद्धिवाली हूँ जो इन आत्मारूपसे हृदयमें स्थित आत्मप्रद अच्युतको छोड़कर और मनुष्योंसे काम-कामना करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह शरीरधारियोंके प्रिय सुहृत् आत्मा हैं । आत्मसमर्पणसे इन्हे मोल लेकर या इन्हीके हाथों विककर लक्ष्मीके समान इनसे रमण करूँगी ॥ ३५ ॥ आदि–अन्तवाली अनित्य कामनाएँ और उन्हे देनेवाले नश्वर मनुष्य, अथवा कालके भयसे भीत देवगण अपनी पत्नियों (या उपासकों)का कितना प्रिय साधन कर सकते हैं ? या करते हैं ? ॥ ३६ ॥ मुझ दुराशामें मोहित होरही वेश्याके हृदयमें ऐसे सुखदायक वैराग्यके उपजनेसे निश्चय होता है कि भगवान् विष्णु अवश्यही किसी पूर्व-पुण्यसे प्रसन्न हुए हैं ॥३७॥ यदि मैं वास्तवमें मन्दभाग्यवाली होती तो कभी इतने क्लेश मुझको न मिलते । इन्ही क्लेशोंहीसे मुझको आज वह वैराग्य प्राप्त हुआ है, जिससे गृह आदि बन्धनोंको काटकर मनुष्यगण परम सुख या शान्ति पाते हैं ॥ ३८ ॥ अब मैं श्रीविष्णुके उस उपकार (वैराग्य) को सादर शिरपर लेकर विषयसंगत दुराशाको छोड़कर उसी अधीश्वरकी शरणमें जाती हूँ ॥ ३९ ॥ इस अनायास मिलेहुए वैराग्यपर श्रद्धा स्थापन करके जो कुछ मिलेगा उसीसे जीविकानिर्वाह करूँगी और इसप्रकार सन्तोषपूर्वक अपने आत्माको रमण मानकर इसीके साथ सुखसे विहार करूँगी ॥ ४० ॥ संसारकूपमें पतित और विषयोंकी प्रबल वासनासे नष्टदृष्टि एवं कालसर्पके मुखमें अवस्थित इस आत्माकी रक्षा (सिवा परमात्माके) और कौन करसकता है ? ॥ ४१ ॥ जब इस जगत्को कालसर्पकवलित देखकर यह आत्मा सावधान होता है और इसलोक तथा परलोकके सब प्रकारके भोगोंसे विरक्त होजाता है तब आपही अपनी रक्षा करता है" ॥ ४२ ॥ अवधूत ब्राह्मणने कहा–हे राजन् ! पिङ्गला वेश्याने इसप्रकार निश्चय कर किसी नागरके आनेकी और उससे धन पानेकी दुराशा छोड़ परम शान्ति पाई और अपनी शय्यापर जाकर सुखसे सोई ॥ ४३ ॥

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥ ४४ ॥

आशा ही परम दुःख है और निराशा (वैराग्य) ही परम सुख है। क्योंकि देखो, कान्तकी आशा छोड़ देनेपर पिङ्गला सुखसे सोगई ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

अवधूतके सम्वादकी समाप्ति

ब्राह्मण उवाच—परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥
अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ १ ॥

अवधूत ब्राह्मणने कहा—मैंने कुरर पक्षीसे जो सीखा है, सो सुनो—मनुष्योंको जो जो वस्तु अत्यन्त प्यारी है उस उस वस्तुकी आसक्ति या सञ्चय ही दुःखका मूल कारण है। इस सत्य सिद्धान्तको जाननेवाला अकिञ्चन पुरुष अनन्त सुखको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ मांसयुक्त कुररपक्षीको अन्य निरामिष सबल पक्षी मांसके लिये मारते हैं। उस मांसको छोड़कर वह सुखसे रहता है ॥ २ ॥ मैंने बालकसे जो सीखा है, सो सुनो—मेरे निकट मान या अपमान कुछ भी नहीं है, पुत्र-परिवारसंपन्न गृहस्थ लोगोंकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। मैं बालककी भाँति आपही अपने साथ क्रीड़ा करता हूँ और आपही आप अपनेमें मग्न रहता हूँ। इसप्रकार परम प्रसन्नतापूर्वक संसारमें विचरता हूँ ॥ ३ ॥ एक तो भोलाभाला, निरुद्यम बालक और दूसरा मायासे अतीत अर्थात् ईश्वरको प्राप्त ज्ञानी पुरुष—ये ही दोनो निश्चिन्त और परमानन्दमें मग्न रहते हैं ॥ ४ ॥ मैंने कुमारीसे जो सीखा है, सो सुनो—एक कुमारी कन्याके 'वरण'के लिये कुछ लोग उसके घरमें आये। उससमय कन्याके पिता, माता, बन्धु आदि सब कहीं कामसे गये थे, इसकारण उसने आपही आगत लोगोंकी अभ्यर्थना की ॥ ५ ॥ तदनन्तर अतिथियोंको भोजन बनाकर खिलानेके लिये वह कन्या एकान्तमें बैठकर धान कूटनेलगी। हे राजन्! धान कूटतेसमय उसके हाथकी चूड़ियोंमें बड़ा शब्द होनेलगा। तब दरिद्रतासूचक उस शब्दको लज्जाजनक जानकर उस बुद्धिमती कन्याने एक एक करके सब चूड़ियाँ तोड़ डालीं; केवल दो दो चूड़ियाँ दोनो हाथोंमें रख छोड़ीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ फिर भी धान कूटनेपर शब्द होता ही रहा, वह दोष नहीं मिटा। तब उस कन्याने एक एक चूड़ी और तोड़कर एकही एक रहने दी, जिससे शब्द होना बन्द होगया ॥ ८ ॥ हे शत्रुदमन! लोकतत्त्व जाननेकी इच्छासे पृथ्वीपर्यटन करते करते मैंने उस कुमारीकी बुद्धिसे यह शिक्षा पाई है कि बहुत लोगोंका एकत्र रहना या दो जनोंका एकत्र रहना कलह और अनिष्टका मूलकारण है। इसकारण उस कुमारीके कङ्कण (चूड़ी) के समान सबसे अलग अकेले ही रहना चाहिये। क्योंकि

फिर किसी प्रकारकी खटपटका खटका नहीं होता ॥९॥१०॥ मैंने बाण बनानेवालेसे चित्तको एकाग्र करना सीखा है—आसन और श्वासको वशमें कर वैराग्यसे वशीभूत और अभ्यासयोगसे स्थिर मनको निरालस्यभावसे अपने लक्ष्य (परमात्मा)में लगाना चाहिये ॥११॥ यह संकल्प–विकल्पात्मक मन उस परमानन्दरूप भगवान्‌में स्थित होकर धीरे धीरे विषयवासनामय मैलको छोड़कर निर्मल होता है और फिर शान्तिस्वरूप सतोगुणके बढ़नेसे जब रजोगुण–तमोगुणका नाश हो जाता है तब इन्धनहीन अग्निके समान निर्गुण निश्चेष्ट निर्वाण पदको प्राप्त होता है (इसी अवस्थाको समाधि कहते हैं) ॥ १२ ॥ जैसे बाणको सीधाकर बनानेमें दत्तचित्त एक बाण बनानेवाला, बाजेगाजे और धूमधामके साथ निकटहीसे निकल गई राजाकी सवारीको नहीं जान सका, वैसेही चित्तको एकाग्र कर लेनेपर अर्थात् परमात्मामें लगा देनेपर बाहर और भीतर किसी वस्तु या विषयका ज्ञान नहीं रहता; यहाँतक कि इस अवस्थामें ईश्वरसे भिन्न अपना अस्तित्व भी भूल जाता है ॥ १३ ॥ मैंने सर्पसे जो सीखा है, सो सुनो—मुनिको चाहिये कि सर्पकी भाँति अकेले विचरण करे, अपने रहनेका स्थान न नियत करे, सावधान रहे, गुहा आदिमें पड़ रहे, आचारोंसे अलक्षित और असहाय एवं अल्पभाषी होकर इच्छानुसार घूमता रहे ॥ १४ ॥ यह शरीर अनित्य है, इसलिये निष्फल गृहका आरम्भही मनुष्यके अत्यन्त दुःखका कारण है। सर्पको देखो, दूसरेके बनाये घर (बिल)में घुसकर सुखसे रहता है, या वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ मैंने ऊर्णनाभिसे जो सीखा है, सो सुनो—एकमात्र नारायण देव, इस विश्वको, कल्पके आदिमें पहले अपनी मायासे प्रकट करते हैं और फिर प्रलयकाल आनेपर अपनी कालशक्तिके द्वारा सब शक्तियोंको अपनेमें लीनकर, आत्माधार और सर्वाधार रूपसे एक–अद्वितीय अवशिष्ट रहते हैं, अपनी श्रेष्ठ शक्ति कालके द्वारा जब सत्व आदि शक्तियाँ क्रमशः अपने अपने कारणमें लीन होती हुई अन्तमें परम कारण अपनेमें लीन हो जाती हैं तब प्रधान और पुरुषके नियन्ता भगवान् नारायण ब्रह्मादिक और अन्यान्य मुक्त जीवोंके भी प्राप्य अर्थात् लयका स्थान होकर, अपने परमानन्दमय कैवल्यमोक्षरूपसे स्थित होते हैं। भगवान्‌की यही विशुद्ध स्थिति कैवल्यमोक्ष कहकर वेदोंमें प्रतिपादित हुई है। हे कामक्रोधादि शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ महाराज! वह निरुपाधि, निर्विषय, स्वप्रकाश, परमानन्द, मोक्षरूप परमेश्वर अखण्ड आत्मानुभवरूप कालके द्वारा त्रिगुणमयी अपनी मायाको सचेष्ट करके उससे पहले सृष्टिके सूत्रस्वरूप महत्तत्त्वको प्रकट करते हैं ॥ १६–१९ ॥ महत्तत्त्वहीसे तीनो गुणोंकी व्यक्ति होती है, अर्थात् विविध विश्वकी सृष्टि करनेवाला त्रिविध अहंकार प्रकट होता है। सूत्रस्वरूप महत्तत्त्वहीमें यह विश्व ओतप्रोत है। अध्यात्मप्राणवायुरूप महत्तत्त्वहीसे पुरुष (जीवात्मा) संसारमें प्रवृत्त

होता है ॥ २० ॥ जैसे ऊर्णनाभि हृदयसे मुखके द्वारा जाला फैलाकर फिर उसे लील लेता है, वैसेही परमेश्वर इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ मैंने पेशस्कृत्से जो सीखा है, सो सुनो—देहधारी जीव जहाँ जहाँ, जिस जिसमें, स्नेह द्वेष या भयसे सम्पूर्ण रूपसे मनको लगाता है–अन्तसमय उसीके रूपको पाता है ॥२२॥ पेशस्कृत् एक कीड़ेको लेजाकर अपने रहनेके बिलमें अपने आगे बन्दी बनाकर रखता है और वह कीड़ा भयसे सब समय उसीका ध्यान करते करते उसी शरीरसे वही (पेशस्कृत्) हो जाता है। इसीप्रकार ईश्वर-चिन्तन करनेवाले भक्तजन भी सारूप्य मोक्षको पाते हैं ॥ २३ ॥ हे राजन्! इसप्रकार इन सब गुरुओंसे ये बातें मैंने सीखी हैं। हे समर्थ! अब मैंने अपने शरीरसे जो सीखा है, सो कहता हूँ–सुनो ॥ २४ ॥ यह शरीर भी मेरा गुरु है, क्योंकि इसीसे विवेक और वैराग्य मुझे मिला है। निरन्तर मानसिक चिन्ता ही जिसका मुख्य फल है वह उत्पत्ति और विनाश ही इसका धर्म है, इसकारण इसीसे यह सत्य तत्त्व मैंने पाया है कि सभी सांसारिक विषय इसी शरीरके समान अनित्य हैं और इसी विवेकसे मुझे वैराग्य हुआ है; मैं इसीके द्वारा यथार्थ तत्त्वोंका विचार या अनुसन्धान करता हूँ। तथापि इसको पराया (कुत्ते, सियारों आदिका भक्ष्य) समझकर निःसङ्ग, निर्लिप्त भावसे विचरता रहता हूँ ॥ २५ ॥ जिस शरीरको भोगसुख पहुँचानेके लिये कष्टसे धनसञ्चय करनेवाला यह पुरुष—स्त्री, पुत्र, अर्थ, पशु, भृत्य, गृह और आत्मीय लोगोंको एकत्र कर उनके पालन पोषणकी चिन्तामें लिप्त रहता है वह देह अन्तसमय छोड़ देता है। देह छूट जानेपर भी दुःखका अन्त नहीं होता, क्योंकि यह देह वृक्षके समान नष्ट होनेसे पहले अन्य देहके कर्मरूप बीजको बोजाता है ॥ २६ ॥ जैसे अनेक सपत्नियाँ अपने एकमात्र स्वामीको अपनी अपनी ओर घसीटकर शिथिल कर डालती हैं, वैसे ही इस पुरुषको रसना, तृषा, शिश्न, त्वचा, उदर, कान, नासिका, चञ्चल नेत्र और कर्मशक्ति आदिक इन्द्रियाँ अपनी अपनी ओर खींचती हैं ॥२७॥ अपनी शक्ति मायाके द्वारा वृक्ष, सरीसृप, पशु, पक्षी, मच्छड़ आदि काटनेवाले जन्तु और मत्स्य आदि अनेक शरीरोंको उत्पन्न कर और सन्तुष्ट न होकर भगवान् नारायण देवने ब्रह्मदर्शनदायिनी बुद्धिसे सम्पन्न मनुष्यशरीरको उत्पन्न किया और इससे परम प्रसन्न हुए। इसलिये मनुष्यशरीर सबसे श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ यद्यपि यह नरतनु अनित्य है, तथापि दुर्लभ है, बहुत जन्मोंके उपरान्त बड़े पुण्योंसे कहीं मिलता है। यह पुरुषार्थ (मुक्ति) का साधन है। जिसके लिये सदैव मृत्युका मुख निकट है ऐसे क्षणभङ्गुर नरतनुको पाकर, उसके छूटनेके पहलेही शीघ्र मुक्ति मिलनेके लिये प्रयत्न करना ही विवेकी व्यक्तिका कर्तव्य है। विषयभोग तो पशु आदि सभी योनियोंमें मिलते हैं, उनकेलिये प्रयत्न करनेमें इस अलभ्य

अवसरको गँवादेना महामूर्खता है । मनुष्यशरीरका मुख्य और श्रेष्ठ फल ब्रह्मज्ञान या मुक्ति ही है ॥ २९ ॥ इसप्रकार वैराग्यसम्पन्न मैं अहङ्कार और सङ्गको छोड़ आत्मनिष्ठ होकर विज्ञानदीपकके प्रकाशमें सुखपूर्वक पृथ्वीपर्यटन करता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि एक ही गुरुसे सुस्थिर और सुपुष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त होता; क्योंकि यद्यपि ब्रह्म एक अद्वितीय है, तथापि ऋषिलोग अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार भिन्न भिन्न रीति और भावसे उसका निरूपण या वर्णन करते हैं ॥३०॥ ॥३१॥ श्रीभगवान् कहते हैं—हे उद्धव! गम्भीरबुद्धि ब्राह्मण इसप्रकार यदुको ज्ञानोपदेश कर चुप होरहे। यदुने सादर पूजन करके उनको प्रणाम किया और वह प्रसन्नतापूर्वक यदुसे विदा होकर इच्छानुसार चलदिये ॥ ३२ ॥

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज राजा यदु इसप्रकार अवधूतके उपदेशको सुनकर उसी समयसे सङ्गहीन और समदर्शी होकर ईश्वरकी आराधनामें लगगये ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय

उद्धवके और प्रश्न

श्रीभगवानुवाच—मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! मेरे कहेहुए अपने अपने धर्ममें अवस्थित और मेरे आश्रित होकर निष्काम चित्तसे अपने वर्ण आश्रम और कुलके सदाचारका भलीभाँति पालन करना चाहिये ॥ १ ॥ अपने धर्मके अनुशीलन और अनुसरणसे चित्तको विशुद्ध करके देखना चाहिये कि विषयासक्त मनुष्य सब विषयोंको यथार्थ तत्त्व या नित्य-सत् समझकर जो जो कर्म करते हैं उनसे विपरीत ही फल होता है, अर्थात् सुखके बदले दुःखही मिलता है ॥ २ ॥ निद्रित व्यक्तिका स्वप्नावस्थामें विषयदर्शन या चिन्ताकारीका मनोरथ जैसे नानारूप होनेके कारण निष्फल होता है वैसेही विषयोंमें इन्द्रियजनित आत्मबुद्धि भी भेदपरायण होनेके कारण विफल है ॥ ३ ॥ पूर्णरूपसे मेरे आश्रित होकर निवृत्तिके लिये केवल नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये और प्रवृत्तिप्रवर्तक काम्य कर्म न करने चाहिये। जिससमय पूर्ण रूपसे आत्माके विचारमें प्रवृत्त हो उस समय नित्य

नैमित्तिक कर्मोंकीभी विशेष आस्था त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥ मत्परायण मनुष्य अहिंसा आदि संयमोंका सादर सेवन करे और यथाशक्ति शौच आदि नियमोंका भी पालन करे। किन्तु यम, नियमकी अपेक्षा अधिक आदरसे भलीभाँति मुझे जाननेवाले, शान्त, साक्षात् मेरे ही रूप गुरुकी उपासना करे ॥ ५ ॥ अभिमान, मत्सर, आलस्य और ममताको छोड़कर दृढ़ प्रेम और श्रद्धासे गुरुकी सेवा करनी चाहिये। तत्त्वजिज्ञासु शिष्यको असूया, व्यग्रता और व्यर्थ वार्तालाप छोड़कर गुरुकी सेवामें उपस्थित रहना चाहिये ॥ ६ ॥ अपने प्रयोजन (परमसुखरूप आत्मा)को सर्वत्र समान देखता हुआ अर्थात् सर्वत्र समदर्शी होकर और अतएव स्त्री, पुत्र, देह, गेह, पृथ्वी, स्वजन, धन आदिमें उदासीन—ममताहीन होकर केवल गुरुकी सेवा करनी चाहिये ॥ ७ ॥ जैसे दाहक और प्रकाशक अग्नि दाह्य और प्रकाश्य काष्ठसे भिन्न पदार्थ हैं, वैसे ही साक्षीमात्र स्वप्रकाश आत्मा भी स्थूल और सूक्ष्म, दोनो प्रकारके शरीरसे पृथक् है ॥ ८ ॥ जैसे ध्वंस, जन्म, सूक्ष्मत्व, महत्त्व और अनेकत्व आदिक गुण वास्तवमें अग्निके नहीं हैं, काष्ठसे संश्लिष्ट होनेके कारण काष्ठके उक्त गुणोंको अग्नि धारण करता है, वैसेही आत्मा भी देहके जन्म–मरणादि गुणोंको धारण करता है, किन्तु वास्तवमें वे गुण आत्माके नहीं हैं–शरीरके हैं ॥ ९ ॥ ईश्वरके गुणसमूहद्वारा यह पुरुषका देह विरचित है। इसी देहके निबन्धसे जीवका जन्म–मरण होता रहता है। यह माया मोहमय जीवका देहबन्धन आत्मज्ञानसे छिन्न होता है। अतएव कार्य-कारणसमूह(शरीर)में अवस्थित केवल परम आत्माको विचारके द्वारा भलीभाँति जानकर क्रमशः असत् देहादिमें होनेवाली वस्तु-बुद्धिको त्याग देना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥ आचार्य नीचेका काष्ठ है और शिष्य ऊपरका काष्ठ है एवं उपदेश मध्यस्थ मध्यमकाष्ठ है। इन तीनो काष्ठोंकी रगड़से उत्पन्न विद्या(आत्मज्ञान)रूप अग्नि परम सुख-(मोक्ष)दायक है ॥ १२ ॥ अति निपुण शिष्यको प्राप्त वही विद्यारूप अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि, गुणसम्भूत माया (अहंभाव) को निवृत्तकर एवं संसारके कारण गुणोंको भस्मकर निरिन्धन अग्निके समान आप भी शान्त हो जाती है ॥ १३ ॥ हे उद्धव! यदि (जैमिनी आदि मुनियोंके मतानुसार) कर्म-कर्ता और सुख-दुःख भोगी जीवात्माको अनेक मानते हो; यदि स्वर्गादि लोक, काल, कर्मबोधक शास्त्र और आत्मा (शरीर) की नित्यता स्वीकार करते हो; यदि सम्पूर्ण भोग्य पदार्थोंकी स्थितिको धारावाहिकरूपसे नित्य मानते हो और यदि समझते हो कि उन उन घटपटादि आकृतियोंके भेदसे बुद्धि उत्पन्न होती है और भेदभावको प्राप्त होती है, अतएव अनित्य होनेके कारण नाशको प्राप्त होती है—तो, ऐसा होनेपरभी, देह-सम्बन्ध और संवत्सरादि कालके अवयवोंसे सम्पूर्ण देहधारियोंकी जन्मआदि अवस्थाओंका होना सिद्ध होता है एवं सम्पूर्ण कर्मोंके कर्ता और सुख दुःखोंके

भोक्ता जीवकी पराधीनता लक्षित होती है, तब ऐसे अस्वतन्त्रके भजनेसे कौन पुरुषार्थ सिद्ध होसकता है? ॥ १४—१७ ॥ अतएव पण्डित देहधारियोंकोभी सम्यक् ज्ञानके विना कुछ सुख नहीं है, वैसेही मूढ़ लोगोंको भी कुछ दुःख नहीं है। तात्पर्य यह है कि–जो लोग सम्यक् प्रकारके कर्म करना जानते हैं वे ही यथार्थ सुखी हैं और जो नहीं जानते वे विद्वान् होनेपर भी मूढ़ोंके समान दुःखी हैं, क्योंकि मृत्युका भय उनको लगा रहता है। इसकारण 'हम कर्मकुशल होनेके कारण सुखी हैं'—ऐसा कर्मवादियोंका अहंकार व्यर्थ है ॥१८॥ वे यदि सुखकी प्राप्ति और दुःखके नाशको जानते भी हैं, तथापि साक्षात् मृत्युके प्रभावके प्रतिबन्धक उपायको नहीं जानसकते ॥ १९ ॥ जिसप्रकार जिसको वधिक वध करनेके लिये वध्यस्थानमें लिये जा रहा है उसे कोई भी सुखभोग सुखी नहीं करसकता उसीप्रकार निकट ही मृत्युके उपस्थित रहनेपर पुरुपको कौन विषयभोग या पुरुषार्थ सुखी कर सकता है? ॥ २० ॥ दृष्ट सुखभोगकी भाँति श्रुत सुख (स्वर्गादि लोग) भी स्पर्धा, असूया, नाश और नित्य क्षयके द्वारा दूषित है एवं उसका सुख भी विघ्नबहुल है; अतएव बहुविघ्नपूर्ण खेतीके समान निष्फल है, अर्थात् अनित्य है ॥ २१ ॥ भलीभाँति अनुष्ठित धर्म कर्म यदि विघ्नोंसे अविहत रहकर पूर्ण होता है तो उससे मिलनेवाले स्थानमें जिसप्रकार जीव जाता है–सो सुनो ॥ २२ ॥ यज्ञ करनेवाले कर्मकाण्डी लोग इसलोकमें यज्ञोंके द्वारा देवतोंका यजन कर स्वर्ग लोकको जाते हैं और वहाँ देवतोंके समान अपने पुण्यसे उपार्जित दिव्य सुख भोग करते हैं ॥२३॥ मनोहरवेषधारणपूर्वक निज पुण्यके द्वारा सर्वभोगसम्पन्न शुभ्र विमानपर चढ़कर अप्सराओंके साथ विहार करते हैं और गन्धर्वगण गुणगान करते हैं ॥ २४ ॥ देवतोंकी क्रीड़ाके स्थान नन्दन आदि उपवनोंमें जाकर किंकिणीजालमालामण्डित और इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर बैठेहुए सुखपूर्वक स्वर्गकी सुन्दरियोंके साथ विहार करते रहते हैं और एक दिन अवश्य होनेवाले पतनको नहीं जानते ॥ २५ ॥ हे उद्धव! जबतक पुण्य समाप्त नहीं होता, तभीतक वे इसप्रकार आनन्दपूर्वक स्वर्गमें सुखभोग करते हैं। जब पुण्य क्षीण हो जाता है, तब इच्छा न होनेपर भी, कालचालित होकर, वे अधःपतित होते हैं ॥ २६ ॥ यदि जीव, असत् व्यक्तियोंके सङ्गमें पड़कर अधर्मनिरत, अजितेन्द्रिय, नीचाशय, लोभी, लम्पट और प्राणिहिंसामें निरत रहकर विधिविहीन पशुवध करता हुआ प्रेत भूत आदिका यजन करता है तो वह अवश्यही विवश हो नरकयातना भोगनेके उपरान्त घोर अज्ञान अर्थात् जड़ योनियोंमें प्रवेश करता है ॥२७॥२८॥ कर्मोंका उत्तरकाल दुःखदायक है। इस दुर्लभ नरदेहके द्वारा उन कर्मोंको करके उन्हीके द्वारा यह जीव फिर शरीरको पाता है। अतएव मर्त्यधर्मयुक्त जीवोंको उन

कर्मोंसे क्या सुख हो सकता है ? ॥ २९ ॥ केवल साधारण मनुष्योंहीको नहीं' बरन् लोक, कल्पजीवि लोकपाल एवं द्विपरार्धपरिमित-परमायुसम्पन्न ब्रह्माको भी मुझ कालरूपसे विनाशका भय है ॥ ३० ॥ गुणोंसे कर्मोंकी और मुख्य गुण प्रकृतिसे गुणोंकी सृष्टि होती है एवं यह जीव उन गुणोंसें अहं-भाव करनेके कारण कर्मफलोंको भोगता है । अर्थात् वास्तवमें जीवात्मा कर्ता या भोक्ता नहीं है ॥ ३१ ॥ जबतक गुणोंकी विषमता (अहंकारादि) रहती है तबतक आत्माका अनेकत्व (भेदभाव) रहता है, और जबतक अनेकत्व रहता है तबतक परतन्त्रता रहती है ॥ ३२ ॥ और जबतक पराधीनता रहती है, तबतक ईश्वररूप कालसे भय लगा रहता है । अतएव जो लोग विषय-भोग और कर्मके सेवक हैं वे शोकाकुल होकर मोहित होते हैं ॥३३॥ हे उद्धव ! माया क्षोभ (सृष्टि) होनेपर काल, आत्मा, आगम, स्वभाव और धर्म इत्यादि अनेक नामोंसे मेरा ही निरूपण किया जाता है ॥ ३४ ॥ उद्धवने कहा—हे विभो ! गुणोंसे सम्बन्ध रहनेपर भी देहधारी जीव, देहके कर्म और उन कर्मोंके फल सुख-दुःख आदिसे मुक्त कैसे रहता है ? और यदि आकाशके समान अनावृत होनेके कारण उसका गुणोंसे सम्बन्ध नहीं है तो फिर वह गुणोंसें कैसे बँधता है ? कृपाकर मेरे इस संशयको निवृत्त करिये ॥ ३५ ॥ बद्ध और मुक्त व्यक्तियोंका व्यवहार और विहारका क्रम क्या है ? उनके लक्षण क्या है ? वे क्या खाते पीते हैं ? क्या छोड़ देते हैं ? कैसे सोते, बैठते, चलते और रहते हैं ॥ ३६ ॥

एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥
नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥

हे प्रश्नको समझकर उसका यथार्थ उत्तर देनेवालेसें श्रेष्ठ ! मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर देकर इस भ्रमको निवृत्त करिये कि 'क्या एक ही आत्मा नित्यबद्ध और नित्यमुक्त है ?' ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय

बद्ध और मुक्तके लक्षण

श्रीभगवानुवाच—बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव ! मेरे उपाधिरूप सत्त्वादिगुणोंके कारण आत्माके बन्धन और मोक्षकी व्यवस्था होती है, वास्तवमें आत्मास्वरूपमें मायामूलक बन्धन

और मोक्ष, दोनोसे अतीत हूँ। मैंने ऐसा ही निर्णय किया है ॥ १ ॥ शोक, मोह, सुख, दुःख और देहकी उत्पत्ति आदि सब कार्य मायाके हैं। इसकारण स्वप्नकी-भाँति उक्तधर्मयुक्त संसार (आवागमन) भी बुद्धिविकारमात्र होनेके कारण अवास्तविक है ॥ २ ॥ हे उद्धव! निश्चय जानो कि देहधारियोंके बन्धन और मोक्षका कारणरूप विद्या और अविद्या ये दोनो मेरी मायासे रचित मेरी ही आद्य शक्तियाँ हैं ॥ ३ ॥ हे महामते! मेरे अंशस्वरूप एकही जीवको अविद्यासे अनादि बन्धन और विद्यासे मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे उद्धव! अब एकही धर्मी (शरीर) में स्थित अथच विरुद्धधर्मसम्पन्न (शोक और आनन्दसे परिपूर्ण) बद्ध और मुक्त, दोनोकी विलक्षणता तुम्हारे आगे कहता हूँ ॥ ५ ॥ ये दोनो पक्षी (जीव और ईश्वर) एकही वृक्ष (देह) में इच्छानुसार नीड़निर्माण कर अवस्थित हैं। ये दोनोही सदृश (चित्स्वरूप) और सखा (अवियुक्त और एकमत) हैं, इनमेंसे एक (जीव) पिप्पलान्न अर्थात् वृक्षके फलों (सुखदुःखादि कर्मफलों) को खाता है और दूसरा (परमात्मा) निरन्न (केवल साक्षीमात्र) रहनेपर भी बलमें (अपने आनन्दमें तृप्त रहकर, ज्ञानरूप बलमें) अधिक है ॥ ६ ॥ जो निराहार है वह विवेकी अपनेको और अपनेसे भिन्न (माया) को जानता है, और जो पिप्पलान्न खाता है वह वैसा नहीं है। जो अविद्यायुक्त है वह नित्यबद्ध है, और जो विद्यायुक्त है वह नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ स्वप्नावस्थासे उत्थित व्यक्तिके समान विवेकी आत्मा देहस्थ होनेपर भी देहस्थ नहीं है, क्योंकि देहजनित सुखदुःखादिसे अतीत है, और दूसरा अविवेकी स्वप्न देखनेवाले व्यक्तिके समान (वास्तवमें) देहस्थ न होकरभी देहस्थ है, क्योंकि देहाभिमानी होकर देहजनित सुख-दुःखोंको भोगता है ॥ ८ ॥ अतएव निर्विकार विवेकीको चाहिये कि 'इन्द्रियाँ अपने विषयोंकी और गुण अपने गुणोंको ग्रहण करते हैं'-ऐसा समझकर 'मैं यह करताहूँ'-इसप्रकारकी अहंभावना न करे ॥ ९ ॥ जो अविद्वान्—अविवेकी है वह इन्द्रियग्राह्य विषयों-द्वारा इस दैवाधीन शरीरमें ममता स्थापितकर, 'मैं करताहूँ'-इस भावनाके कारण बन्धनको प्राप्त होता है ॥१०॥ विवेकी जन इसप्रकार विरक्त रहकर शयन, उपवेशन, पर्यटन, स्नान, दर्शन, स्पर्श, भोजन, श्रवण और घ्राण आदि विषय-विशेषोंको तत्तद्विषयग्राहिणी इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करता हुआभी उक्त विषयोंमें आसक्त नहीं होता-प्रकृतिमें अवस्थित रहकर भी आकाश, सूर्य और अग्निके समान निर्लिप्त रहता है और वैराग्याभ्याससे तीक्ष्ण हुई तथा विवेकबुद्धिको बढ़ाने-वाली निर्मल दृष्टिके द्वारा सब संशयों (मायामोह) को छिन्न कर सोकर जागेहुए व्यक्तिके समान देहादिके प्रपञ्चसे निवृत्त होता है ॥ ११-१३ ॥ जिसके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके सब आचरण सङ्कल्पशून्य होते हैं वह पूर्वसंस्कारवश शरीरमें स्थित होकर देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥ १४ ॥ शरीरको यदि हिंसक लोग

कुछ पीड़ा पहुँचाते हैं तब जो दुःखित नहीं होता, और यदि कोई व्यक्ति आदर पूजा करता है तब जो सुखी नहीं होता, वही विकारशून्य व्यक्ति विवेकी है ॥१५॥ समदर्शी और गुणदोषभावनारहित मुनिको चाहिये कि प्रियकारी या अप्रियकारी, प्रियवादी या अप्रियवादीकी न स्तुति करे—न निन्दा करे ॥ १६ ॥ किसी उद्देश्यसे कुछ भला या बुरा कर्म न करे, न कुछ भला या बुरा कहे और न कुछ भला या बुरा ध्यावै। आत्माराम होकर उक्त वृत्तिका अवलम्बनकर जड़ोंकी भाँति विचरै ॥१७॥ वेदपारगामी होकर भी जो कोई ध्यान आदि उपायोंसे परब्रह्ममें चित्तको नहीं लगाता तो बहुत कालकी ब्याई गऊको पालनेवाले पुरुषकीभाँति केवल परिश्रम ही उसके हाथ लगता है ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! दूध देनेमें असमर्थ गऊ, असती स्त्री, पराधीन शरीर, असत् पुत्र, सुपात्रको न दियागया धन और मुझसे शून्य वाक्यकी रक्षा करनेका प्रयासी पुरुष दुःखके उपरान्त दुःख पाता है, अर्थात् उसे कभी सुख नहीं मिलता ॥ १९ ॥ संसारसृष्टि-स्थिति-संहार-सम्पन्न मेरे पावन कर्म और लीला-वतारकृत जगत्प्रिय मेरे कर्म, जिसमें नहीं हैं वह वाणी निष्फल है; ऐसी व्यर्थ वाणीसे विवेकी लोगोंको दूर रहना चाहिये ॥ २० ॥ इसप्रकार तत्त्वविचारके द्वारा भेदभ्रमको मनसे निकालकर विशुद्ध चित्तको मुझ सर्वव्यापीमें लगावे और निवृत्त–निश्चेष्ट होरहे ॥ २१ ॥ यदि इसप्रकार मनको निश्चल कर मुझमें लगानेमें असमर्थ हो, तो निरपेक्षभावसे मेरे उद्देश्यसे सब कर्मोंको करे, अर्थात् मेरी ही आराधनाके विचारसे कर्मोंको करे ॥ २२ ॥ हे उद्धव ! वह श्रद्धापूर्वक लोकपावनी मङ्गलमयी मेरी कथाओंका पठन, श्रवण, गान और स्मरण करे एवं वारंवार मेरे जन्मकर्मोंका अभिनय करता हुआ मेरे ही उद्देश्यसे अर्थात् निष्काम होकर धर्म, अर्थ, काम आदिका अनुष्ठान करे। ऐसा करनेसे वह मेरे आश्रित व्यक्ति मुझ सनातन ईश्वरमें निश्चल भक्तिको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ सत्सङ्गसे प्राप्त मेरी भक्तिसे जो मुझे भजता है वह साधुओंके दिखाए मेरे पदको अवश्य अनायास ही अन्त–समय पाता है ॥२५॥ उद्धवने कहा—हे उत्तमश्लोक प्रभो ! आपके मतमें साधु किसको कहना चाहिये, अर्थात् साधुके लक्षण क्या हैं ? और साधुजन जिसका आदर करते हैं उस आपमें उपयुक्त भक्तिका लक्षण क्या हैं ? ॥ २६ ॥ हे पुरुषाध्यक्ष ! हे लोकाध्यक्ष ! हे जगत्के प्रभो ! मैं प्रणत और अनुरक्त भक्त एवं शरणागत हूँ, कृपाकर यह वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ आप आकाशके सदृश सङ्गहीन और प्रकृतिसे परे पुरुष परब्रह्म हैं। हे भगवन् ! अपनी इच्छाके अनुसार आप इस परिमेय शरीरसे पृथ्वीपर प्रकट हुए हैं ॥ २८ ॥ भगवान्ने कहा—हे उद्धव ! जो सब देहधारियोंपर कृपा करता है, सबसे सहानुभूति रखता है, हिंसा और द्रोहसे विमुख है, क्षमाशील है, सत्यव्रत है, काम-क्रोध आदि दोषोंसे शून्य है, समदर्शी है, सबके उपकारकी चेष्टा करता है, जिसका चित्त कामनाओंसे

अभिभूत नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, कोमलहृदय है, सदाचारी है, सङ्गहीन अर्थात् उदासीन है, अकिञ्चन है, निरीह अथवा निरपेक्ष है, मित भोजन करनेवाला है, शान्त (जितचित्त) है, स्थिर (अपने धर्ममें निरत) है, एकमात्र मेरे ही आश्रित है, मुनि (मननशील) सावधान है, निर्विकार है, धीर (विपत्तिमें भी अदीन) है, देहके छः धर्मों (भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु) को जीत चुका है, मानकी इच्छा नहीं रखता, औरोंका मान करता है, औरोंको ज्ञानोपदेश करनेमें प्रवीण है, सरल है, कारुणिक और सम्यक्ज्ञानसम्पन्न है–वही श्रेष्ठ साधु है, अर्थात् मेरे मतमें श्रेष्ठ साधुके ये लक्षण हैं ॥ २९–३१ ॥ जो वेदोक्त गुण और दोष दोनोको जानकर वेदरूपसे मेरे आदिष्ट अपने वर्णाश्रम कर्मोंको छोड़कर (भक्तिही पर दृढ़ विश्वासकर) मेरी आराधना करते हैं वे भी मेरे मतमें श्रेष्ठ साधु हैं ॥ ३२ ॥ मैं जो, जितना, और जैसा हूँ सो वारंवार जानकर अर्थात् इसीकारण मनन करते-हुए जो लोग अनन्य भावसे मुझे भजते हैं वे मेरे मतमें अत्यन्त श्रेष्ठ (साधु) हैं । हे उद्धव ! प्रतिमा आदि मेरे चिन्हों और मेरे भक्तोंके दर्शन, स्पर्श, पूजन, परिचर्या, स्तुति और मनोहर गुणकर्मोंके कीर्तनमें तत्पर रहना; मेरी कथा सुननेमें श्रद्धा और मेरा ध्यान करना; जो कुछ मिले सो मेरे अर्पण कर देना और दास्यभावसे आत्मसमर्पण कर देना; मेरे जन्मों और कर्मोंको कहना–सुनना और मत्सम्बन्धी पर्वदिनमें उत्सव करना; सम्प्रदायके अनुसार मेरे मन्दिरमें गाना, बजाना, नाचना और भक्तोंकी गोष्ठीमें उत्सव मनाना; सब वार्षिक पर्वोंमें मेरे स्थानोंमें जाकर पुष्पादिसे मेरा पूजन करना और वैदिक या तान्त्रिक अथवा दोनो दीक्षा लेना; मेरे "व्रत" रखना और मेरी प्रतिमाकी प्रतिष्ठामें श्रद्धा, उद्यान, उपवन, क्रीड़ागृह, पुर और मन्दिर आदिके निर्माणमें शक्तिके अनुसार अकेले ही या और लोगोंको सम्मिलित कर प्रयत्न करना; मेरे मन्दिरमें मार्जन, लेपन, छिड़काव, मण्डलावर्तन आदि करके दासकी भाँति निष्कपटभावसे मेरी सेवा करना; अभिमान और दम्भसे दूर रहना; और कियेहुए धर्म कर्मको किसीके आगे न कहना; येही सब भक्तिके लक्षण हैं । इसी भक्तिसे मुझमें मन मिल-जाता है ॥ ३३–४० ॥ इसके अतिरिक्त मुझे अर्पित दीपक या निवेदित वस्तुको अपने व्यवहारमें न लाना भी भक्तके लिये आवश्यक है । जो जो वस्तु उत्तम होनेके कारण लोगोंको अत्यन्त प्रिय और अभिलषित हो, तथा जो जो वस्तु अपनेको बहुत प्रिय और रुचती हो–सो सो सब मेरे अर्पण करना चाहिये; ऐसा करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है । हे भद्र ! सूर्य, अग्नि, विप्र, गऊ, वैष्णव, अपना हृदय, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और सब प्राणी, इनमें मेरी पूजा करनी चाहिये । वेदविद्याके द्वारा सूर्यमें, घृत आदि हवनद्वारा अग्निमें, आतिथ्य–सेवाद्वारा ब्राह्मणमें, तृण जल आदिके द्वारा गऊमें, मित्रोंके समान संमानद्वारा वैष्णवोंमें, ध्यानके

द्वारा अपने हृदयमें, प्राणबुद्धिके द्वारा वायुमें, जलआदि सामग्रियोंसे जलमें, गोपनीय मन्त्रन्यासके द्वारा पृथ्वीमें, अनेक भोगोंके द्वारा आत्मामें और समदृष्टिके द्वारा सब प्राणियोंमें, क्षेत्रज्ञ आत्मारूप मेरी पूजा करनी चाहिये। समाधिके द्वारा शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी शान्तरूप मुझ चतुर्भुजका ध्यान करतेहुए उक्त स्थानोंमें श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त होकर मेरी पूजा करना उचित है। जो कोई एकाग्र हो मुझे सर्वत्र व्याप्त देखकर इसप्रकार भजता है उसे मेरी दृढ़ भक्ति अवश्य प्राप्त होती है और साधुसेवासे मेरा सम्यक् ज्ञान मिलता है॥ ४१–४८॥ हे उद्धव! सत्सङ्गजनित भक्तियोगके अतिरिक्त संसार-पार होनेका और कोई उत्तम (सहज) उपाय नहीं है; क्योंकि मैं साधुजनोंका एकमात्र श्रेष्ठ 'आश्रय' हूँ॥ ४९॥

अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन॥
सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा॥ ५०॥

हे यदुनन्दन! तुम श्रद्धापूर्वक इस परम गुप्त विषयको सुनना चाहते हो और मेरे एकान्त अनुगत, सुहृद् और सखा हो, अतएव अत्यन्त गोप्य होनेपर भी मैं यह (वर्णनीय) विषय तुम्हारे आगे कहता हूँ॥ ५०॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

द्वादश अध्याय

साधुसंगकी महिमा और कर्मानुष्ठान व कर्मत्यागकी विधिका वर्णन

श्रीभगवानुवाच—न राधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च॥
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥ १॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! हे मित्र! सर्वसङ्गनिवारक सत्सङ्गद्वारा जिसप्रकार पूर्णरूपसे मैं वशीभूत होता हूँ उसप्रकार योगाभ्यास, तत्त्वविवेक, अहिंसादि सदाचारधर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, संन्यास, अग्निहोत्र, कुआँ-बावली खुदवाना और बाग लगवाना, दानदक्षिणा, व्रत, यज्ञ, गोपनीय मन्त्रजप, तीर्थयात्रा, नियम और यम आदिक अन्यान्य सब साधनोंसे नहीं होता॥ १॥ २॥ भिन्न भिन्न युगोंमें दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनुष्योंमें राजसी-तामसी प्रकृतिके वैश्य-शूद्र-स्त्री एवं अन्त्यज आदि जातियोंके अनेकों जन, केवल सत्सङ्गके प्रभावसे मेरे परमपदको प्राप्त हुए हैं। वृत्रासुर-प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयासुर, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गज, जटायु, तुलाधार वैश्य, व्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ और यज्ञ करनेमें

तत्पर माथुर ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ एवं ऐसेही अन्यान्य अनेक जन, केवल सत्सङ्गके प्रभावसे अनायास ही मेरे दुर्लभ पदको प्राप्त हुए हैं। देखो, गोपिका, यमलार्जुन, गोगण, कालीनाग एवं व्रजके अन्यान्य मृग, पक्षी और जड़ तृण, तरु, लता, गुल्म आदि सब, केवल सत्सङ्गसे प्राप्त मेरे भक्तिभावसे अनायास ही मुझे पाकर कृतार्थ हुए हैं। उक्त अज्ञानी और जड़ोंमेंसे किसीने वेद नहीं पढ़े, महा महात्मा-मुनियोंकी उपासना नहीं की, कोई व्रत नहीं रक्खा और तप भी नहीं किया। हे उद्धव! इसीसे कहते हैं कि योग, ज्ञान, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्या, स्वाध्याय आदिके द्वारा यत्न करनेपर भी मैं दुर्लभ हूँ; केवल भक्ति और सत्सङ्गही ऐसा साधन है जिससे मैं सुलभ हूँ॥ ३—९॥ गोपियोंको मुझपर ऐसा अनन्य प्रेम था कि जब अक्रूर जाकर बलभद्रसहित मुझे मथुराको ले आये उससमय अत्यन्त दृढ़ प्रेमके द्वारा मुझमें जिनका चित्त अनुरक्त था उन गोपियोंको मेरे वियोगसे अत्यन्त दुस्सह दुःख हुआ और उनको समग्र जगत् सुखसे शून्य दिखाई देनेलगा॥ १०॥ वृन्दावनमें गौवें चरानेवाले मुझ प्रियतमके साथ रहकर जिन रात्रियोंको उन्होने एक क्षणके समान विता दिया था वेही रात्रियाँ मेरे वियोगमें उन्हे 'कल्प'के समान जान पड़ती थीं॥ ११॥ हे उद्धव! जैसे मुनिलोग समाधिके समय अपने नाम और रूप(अस्तित्व)को भूलकर तन्मय हो जाते हैं, वैसेही आसक्तिवश मुझमें मन लगानेके कारण पति-पुत्र आदि स्वजन, शरीर, इसलोक और परलोकको भूलकर गोपिकाएँ भी, नदियाँ जैसे समुद्रमें मिल जातीहैं वैसे, मुझमें लीन होगईं थीं॥ १२॥ इसप्रकार केवल मेरी कामनासे, रमण और जार समझकर, उन सैकड़ों-हजारों गोपियोंने मुझे भजा, उन्हे मेरे रूप (ब्रह्मत्व) का कुछ भी ज्ञान न था, तथापि सत्सङ्गके प्रभावसे, परब्रह्मरूपहीसे मैं उनको प्राप्त हुआ॥ १३॥ इसकारण, हे उद्धव! तुम श्रुति, स्मृति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रोतव्य और श्रुत–सब छोड़कर, सब शरीरधारियोंके आत्मारूप एकमात्र मुझको भक्तिपूर्वक अपना आश्रय अथवा अवलम्ब बनाओ। मेरी शरणमें आनेसे तुम अकुतोभय हो जाओगे॥ १४॥ १५॥ उद्धवने पूछा—हे योगेश्वरोंके ईश्वर! मेरे मनको भ्रमानेवाला मेरा संशय आपके इस कथनको सुनकरभी अभी भलीभाँति निवृत्त नहीं हुआ। कृपाकर पूर्णतया समझाकर उसे दूर करिये॥ १६॥ श्रीभगवान्ने कहा—चक्रसमूहके मध्यमें जिसका प्रकाश होताहै वही अपरोक्ष परमेश्वर (जीव), नादसम्पन्न प्राणसहित गुहा (आधारचक्र) में प्रविष्ट हो, मनोमय सूक्ष्मरूपको प्राप्त होकर अर्थात् पश्यन्तीसे मध्यमा और उससे मणिपूरक चक्रमें होताहुआ विशुद्धि चक्रमें पहुँच कर, मात्रा, स्वर और वर्णरूपसे अत्यन्त स्थूल (वेदशाखात्मक) होता है॥ १७॥ जैसे आकाशमें ऊष्मारूपसे—अव्यक्तभावसे स्थित अग्नि, काष्ठमें

बलपूर्वक मथनेपर वायुकी सहायता पाकर अणुरूपसे उत्पन्न (व्यक्त) होता और फिर घृत पाकर बढ़ता है वैसेही इस वाणीरूपसे मेरी (शब्दब्रह्मकी) अभिव्यक्ति होती है ॥ १८ ॥ इसीप्रकार वचन, कर्म; गति, विसर्जन, घ्राण, रसास्वाद, दर्शन, स्पर्श, श्रवण, सङ्कल्प, विज्ञान, स्वभाव और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणके विकार अर्थात् इन्द्रियादि त्रिविध प्रपञ्च–ये मेरी अभिव्यक्ति हैं ॥ १९ ॥ यह परमेश्वर (मैं) आदिमें अव्यक्त एवं एकमात्र था, और फिर बीज जैसे खेतको पाकर बढ़ता है वैसेही शक्तियोंके विभक्त होनेपर बहुधा प्रतीत होता है। यह त्रिगुणाश्रय और पद्मयोनि, अर्थात् ब्रह्माण्डरूप पद्मका कारण है ॥ २० ॥ पटमें सूत्रोंकी भाँति समग्र विश्व इसमें ओतप्रोतभावसे व्याप्त है। यही प्रवृत्तिशील, सनातन संसारतरु है। भुक्ति इसका पुष्प है और मुक्ति इसका फल है ॥ २१ ॥ पुण्य और पाप–ये दो इसके बीज हैं, अपरिमित वासनाएँ इसकी जड़ें हैं, तीनो गुण इसके प्रकाण्ड हैं, पञ्चभूत इसके स्कन्ध हैं, शब्दादि पाँच विषय इससे उत्पन्न रस हैं, ग्यारह इन्द्रियाँ इसकी शाखाएँ हैं, जीवात्मा और परमात्मा–ये दोनो पक्षी नीड़ निर्माणकर इसमें अवस्थित हैं, वात–पित्त–श्लेष्मा—ये तीन इसके बल्कल हैं, सुख और दुःख ये दो इसके परिपक्व फल हैं। इसप्रकारका यह वृक्ष सूर्यमण्डलतक व्याप्त है ॥ २२ ॥ कामी गृहस्थलोग इसके दुःखरूप फलको खाते हैं, और वनवासी परमहंसलोग इसके सुखरूप फलको पाते हैं। जो कोई पूज्य गुरुकी सहायतासे एकमात्र निर्गुण परमात्माको इसप्रकार सगुणरूपसे बहुरूप जानता है वही वेदके यथार्थ तत्त्वको जानता है ॥ २३ ॥

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥२४॥

हे उद्धव! इसकारण तुम अनन्यभक्तिपूर्वक गुरुकी उपासनासे प्राप्त भक्तियोगके द्वारा तीक्ष्ण किये गये विद्यारूप कुठारसे सावधानतासहित जीवोपाधि लिङ्गशरीरको काटनेके उपरान्त परमात्मामें लीन होकर विद्यारूप अस्त्रको भी त्याग दो ॥ २४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

हंसोपाख्यान

श्रीभगवानुवाच—सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—उद्धव! सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये गुण बुद्धिके हैं, आत्माके नहीं हैं; सतोगुणके द्वारा अन्य दो गुणोंको जीतकर सत्त्वकी वृत्तियोंको सत्वही (शान्ति) से जीतना चाहिये ॥ १ ॥ सत्वके बढ़नेसे पुरुषको मेरी भक्तिरूप धर्म प्राप्त होता है। सात्विक वस्तुओंके सेवनसे सत्त्वकी वृद्धि होती है और उससे धर्ममें (मेरी भक्तिमें) प्रवृत्ति होती है। सत्वकी वृद्धिसे उत्पन्न परमोत्तम धर्मके द्वारा रजोगुण-तमोगुणकी वासनाएँ विनष्ट होती हैं। इन दोनो गुणोंके मिटनेपर इन्हीसे होनेवाला अधर्म भी शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल, परिजन, देश, काल, कर्म, जन्म (दीक्षारूप), ध्यान, मन्त्र और संस्कार, ये दस गुणोंकी वृद्धिके कारण हैं ॥ ४ ॥ इनमेंसे वृद्ध अनुभवी लोग जिनकी प्रशंसा करते हैं वे ही सात्विक हैं, और जिनकी निन्दा करते हैं वे ही तामस हैं, और जिनकी न प्रशंसा करते हैं और न निन्दा ही करते हैं वे ही राजस हैं ॥ ५ ॥ सत्ववृत्तिके लिये सात्विक शास्त्रादिका सेवन करना चाहिये। उसीसे धर्म होता है और गुणनाशपर्यन्त ज्ञान होता है ॥ ६ ॥ बाँसोंकी परस्परकी रगड़से उत्पन्न अग्नि जैसे अपनी ज्वालाओंसे बाँसोंके वनको भस्मकर शान्त होता है, वैसेही गुणसमष्टिसम्भूत शरीर भी अपनेसे उत्पन्न ज्ञान या विद्यासे अपने 'कारण' अविद्याको भस्मकर निवृत्त होता है ॥ ७ ॥ उद्धवने पूछा—हे कृष्ण! प्रायः सभी मनुष्य जानते हैं कि सब सांसारिक विषय आपदाओंका आकर हैं, तथापि क्यों कुत्ते, गधे और बकरोंकी भाँति उनके भोगमें प्रवृत्त होते हैं? ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! अविवेकी व्यक्तिके हृदयमें जो 'मैं' यह अन्यथाबुद्धि उत्पन्न होती है उसीके द्वारा सत्त्वप्रधान मन घोर रजोगुणमें लिप्त होता है ॥ ९ ॥ दुर्मति (अविवेकी) के रजोयुक्त मनसे संकल्प-विकल्पकी उत्पत्ति होती है और संकल्प-विकल्प होनेपर विषय-चिन्तनके कारण प्रबल वासना होती है ॥ १० ॥ तब रजोगुणके वेगसे विमोहित अजितेन्द्रिय पुरुष विषयवासनासे विवश होकर, अन्तमें दुःखदायक जानकर भी, कर्मोंको करता है ॥ ११ ॥ रजोगुण, तमोगुणमें बुद्धिके बहँकनेपर भी विवेकी लोग सावधानतापूर्वक दोषदृष्टिके द्वारा वारंवार मनको रोकतेहुए, उनमें आसक्त नहीं होते ॥ १२ ॥ सावधान और आलस्यरहित रहकर यथासमय श्वासा और

आसनको स्थिरकर धीरे धीरे मनको मुझमें लगाकर योगसाधनमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ १३ ॥ मेरे शिष्य सनकादिकोंने इसीको 'योग' कहा है कि 'मनको सब विषयोंसे हटाकर पूर्णरूपसे साक्षात् मुझमें स्थापित करे' ॥ १४ ॥ उद्धवने पूछा—हे केशव! आपने जिससमय जिस रूपसे सनकादिकोंको इस योगका उपदेश किया सो सब सुनकर जाननेकी मुझे बड़ी अभिलाषा है ॥ १५ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादिकोंने एक समय पितासे योगका परम सूक्ष्म परम तत्त्व पूछा। उन्होने कहा कि—'हे प्रभो! स्वभावतः चित्त सब विषयोंमें और सब विषय चित्तमें प्रविष्ट होते हैं। इसकारण सब विषयोंको छोड़कर मोक्षकी इच्छा रखनेवाला पुरुष चित्त और विषयोंको परस्पर अलग कैसे कर सकता है?'। भूतभावन स्वयम्भू ब्रह्मा, पुत्रोंके इसप्रकार पूछनेपर, बुद्धिके कर्मोंमें विक्षिप्त होनेके कारण, बहुत सोचनेपरभी इस प्रश्नके बीज या कारणको न जानसके। तब उक्त प्रश्नका अभिप्राय या उत्तर जाननेकी अभिलाषासे देव ब्रह्माने मेरा ध्यान किया और मैं उस समय हंसरूपसे उनके निकट उपस्थित हुआ ॥ १६–१९ ॥ मुझको देखकर ब्रह्मासहित सनकादिक मुनि उठ खड़े हुए और ब्रह्माको आगे कर मेरे निकट पहुँचकर प्रणाम करनेके उपरान्त पूछा कि–'तुम कौन हो?' ॥२०॥ हे उद्धव! तत्त्वजिज्ञासु मुनियोंके इसप्रकार पूछनेपर मैंने उस समय उनसे जो कहा, सो सुनो ॥२१॥ मैंने कहा कि–"हे विप्रगण! तुम्हारा यह प्रश्न यदि आत्माके सम्बन्धमें है तो जब परमात्मारूप सत्पदार्थ एकही है, तब तुम्हारा यह प्रश्न व्यर्थ है। अतएव उस निर्विशेष आत्मामें किस जाति-गुण-रूप-विशेषके आश्रयसे उत्तर दूं? और यदि तुम्हारा यह प्रश्न पञ्चभूतसमष्टि–शरीरके सम्बन्धमें है, तो उस दशामें भी, जब सब पञ्चतत्त्व वास्तवमें अभिन्न हैं तब 'तुम कौन हो?'–यह तुम्हारा प्रश्न केवल वाणीका विलासमात्र है। तत्त्वविचारके द्वारा तुमको जानना चाहिये कि मन, वाक्य, दृष्टि एवं अन्यान्य इन्द्रियोंके ग्राह्य विषय सब मैंही हूँ। हे पुत्रगण! यह सत्य है कि चित्त विषयोंमें और विषय चित्तमें परस्पर संश्लिष्ट हैं। सम्पूर्ण विषय और चित्त ही मेरे अंशरूप जीवकी उपाधि या आवरण हैं। वारंवार विषयसेवन करनेसे चित्त विषयमय होजाता है और वासना-रूपसे विषयोंकी उत्पत्ति चित्तहीसे होती है। मेरे सारूप्यको प्राप्त होकर इन दोनोको त्याग देना चाहिये। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति–ये स्वाभाविक नहीं, किन्तु गुणकृत बुद्धिकी वृत्तियाँ या अवस्थाएँ हैं। वक्ष्यमाण क्रमानुसार जीव इनसे विलक्षण, अर्थात् इन अवस्थाओंसे रहित ही निश्चित है; क्योंकि इनका साक्षी है। बुद्धिबन्धनही आत्मामें इन वृत्तियोंको संक्रान्त करनेवाला है; अतएव मुझ 'तुरीय'–रूपमें अवस्थित होकर इस बुद्धिबन्धनको त्याग देना चाहिये। उस समय गुणगण (विषयवासना) और चित्तका विश्लेष होजायगा। उक्त प्रकारका

अहंकारकृत बन्धन आत्माके लिये जन्ममरणरूप अनर्थकी जड़ है—ऐसा समझ-कर निर्वेदपूर्वक तुरीयरूप मुझ परमात्मामें अवस्थित हो अहंज्ञानको त्यागना चाहिये। व्यक्तिके द्वारा जबतक जीवकी भेदभावना निवृत्त नहीं होती तबतक वह अज्ञ जीव स्वप्नमें 'जागरण'की भाँति जागनेपर भी निद्रित ही रहता है। स्वप्न देखनेवाले व्यक्तिकी भाँति 'आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है'—इस सम-झसे, इसके लिये देहादि पदार्थोंकी वर्णाश्रमादि गतियाँ, स्वर्गादिक फलरूप हेतु और कर्म एवं तत्कृत भेदभाव, सब मिथ्या हो जाते हैं। जो जाग्रत् अवस्थामें बाहर सब इन्द्रियोंके द्वारा क्षणभङ्गुर विषयोंको भोगता है एवं स्वप्नावस्थामें हृदयके भीतर वासनारूप—तदनुरूप विषयोंको अनुभवके द्वारा भोगता है और सुषुप्ति अवस्थामें सम्पूर्ण विषयभोगसे शून्य रहता है वह चेतन आत्मा एक है; वह स्मृति-सम्पन्न, तीनो अवस्थाओंका साक्षी, अतएव उनसे अतीत और सब इन्द्रियोंका ईश्वर (नियन्ता) है ॥ २२–३२ ॥ मन (बुद्धि) की उक्त तीनो अवस्थाएँ मेरे मायाके गुणोंद्वारा मुझमें कल्पित हैं—ऐसा विचारते हुए, इस आत्मतत्त्वका निश्चयकर तुम लोग अनुमान और सदुक्तियोंसे तीक्ष्ण किये गये ज्ञानरूप खड्गके द्वारा सम्पूर्ण संशयोंके आश्रयरूप अहंकारको छिन्नकर हृदयमें अवस्थित मुझ आत्माको भजते रहो ॥ ३३ ॥ मनके द्वारा प्रकाशित, दृश्यमान, नश्वर, अलातचक्रतुल्य अत्यन्त अस्थिर इस विश्वप्रपञ्चको विभ्रमस्वरूप देखो। एक 'विज्ञान' बहुधा भासित होता है, अतएव गुणपरिणामसम्भूत त्रिविध विकल्प ही माया-स्वप्न है ॥ ३४ ॥ दृश्य विश्वसे दृष्टि हटाकर, तृष्णाको शान्तकर और निरीह (मन, वाणी, कायाके व्यापारोंसे रहित) होकर निजसुख(परमानन्द)के अनुभवमें मग्न रहो। यद्यपि कभी कभी (आहारादिमें) विश्वप्रपञ्च देख भी पड़ेगा, तथापि अवस्तु समझकर पूर्व ही परित्यक्त होनेके कारण, फिर भ्रमका उत्पादक नहीं हो सकेगा; शरीरपातपर्यन्त स्मृति (विवेक) रहेगी ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्व जाननेका उपादान यह नश्वर शरीर चाहे उपविष्ट हो, चाहे उत्थित हो, चाहे पूर्वसंस्कारवश स्थानभ्रष्ट हो और चाहे प्रतिनिवृत्तही हो, किन्तु जैसे मदिराके मदसे अन्धा हो रहा मनुष्य अपने वस्त्रके गिरने–पड़नेकी सुधि नहीं रखता वैसेही सिद्ध व्यक्ति शरीरकी भी सुधि नहीं रखते ॥ ३६ ॥ दैवाधीन शरीर भी, अपने कारणरूप प्रारब्ध अदृष्ट(पूर्वसञ्चित कर्म)की स्थितितक प्राण और इन्द्रियोंसे सम्पन्न अर्थात् जीवित रहता है। जो समाधियोगमें अधिरूढ़ और परमार्थ वस्तुको जान गया है वह फिर स्वप्नतुल्य उस सप्रपञ्च शरीरमें आसक्त नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे विप्रगण! मैंने सांख्य और योगका रहस्य यह तुमसे कह दिया। मैं साक्षात् विष्णु हूँ, तुमको 'धर्म' बतानेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ ३८ ॥ हे श्रेष्ठ विप्रगण! मैं योग, सांख्यज्ञान, सत्य (निश्चत धर्म), ऋत (अनुष्ठीयमान

धर्म), तेज, श्री, कीर्ति और दमकी परम गति या परमार्थ हूँ ॥ ३९ ॥ समता और असङ्ग आदि सब नित्य गुण, मुझ निर्गुण निरपेक्ष सुहृद् और प्रिय आत्माको निरन्तर भजते हैं" ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं—हे उद्धव! मेरे वचनोंसे सनकादिकोंका सब सन्देह दूर होगया, उन्होने अत्यन्त भक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥ ४१ ॥

तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः ॥
प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

उन श्रेष्ठ ऋषियोंके द्वारा भलीभाँति पूजित और स्तुत होकर मैं ब्रह्माके देखते देखते अदृश्य होकर अपने धामको लौट गया ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय

साधनविधिसहित ध्यानयोगवर्णन

उद्धव उवाच—वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे कृष्ण! ब्रह्मवादी ऋषिगण मुक्तिके अनेक साधन बताते हैं, उनमेंसे कौन साधन प्रधान हैं? या वे सभी अपने अपने ढंगके एक हैं? ॥१॥ हे स्वामी! आपने अनपेक्षित अर्थात् निष्काम भक्तियोगको उत्तम बताया है; क्योंकि मन उससे सब सङ्गोंको छोड़, एकाग्रभावसे आपमें लगता है ॥ २ ॥ भगवान्ने कहा—हे उद्धव! जिसमें मेरे वचन उक्त हैं वह वेदवाणी काल-क्रमसे प्रलयके समय लुप्त होगई थी। सृष्टिके आदिमें फिर मैंने वही वेदवाणी ब्रह्माके हृदयाकाशमें प्रकाशित की। जिसके द्वारा भलीभाँति मुझमें मन लगता है वही विशुद्ध धर्म उस वेदमें वर्णित है। ब्रह्माने अपने ज्येष्ठ पुत्र मनुको और मनुने अपने छोटे भाई भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु—इन सात महर्षि प्रजापतियोंको उस वेदका उपदेश किया। इन अपने जनक मह-र्षियोंसे इनके पुत्र सम्पूर्ण देवता, दानव, यक्ष, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किंदेव, किन्नर, नाग, राक्षस और किम्पुरुष आदिने वेदविद्या प्राप्त की। इन लोगोंकी वासनाएँ राजसी, तामसी और सात्त्विकी होनेके कारण भिन्न भिन्न प्रकारकी हैं। त्रिगुणात्मक वासनाओंके अनुसार भूत (देवासुरमनुष्यादि) और भूत-पति भी भिन्न भिन्न प्रकृतिके हैं। प्रकृतिके अनुसार वे वेदकी भिन्न भिन्न व्याख्या

करते हैं। प्रकृतिकी विभिन्नताके कारण सबकी बुद्धियाँ भी भिन्न भिन्न प्रकारकी हैं; परम्परागत उपदेशके अनुसार कुछ लोगोंकी समझ भिन्न प्रकारकी है और कुछ लोगोंकी बुद्धि पाखण्डपूर्ण अर्थात् वेदविरुद्ध भी है ॥ ३–८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरी मायासे मोहितमति लोगोंमें कामना और रुचिके अनुसार श्रेयके विषयमें मतभेद है। कोई धर्म (सदाचार) को, कोई यशको, कोई इष्टकामको, कोई सत्य शम दम आदिको, कोई ऐश्वर्यको, कोई दान और भोगको, कोई यज्ञ तप दान व्रत यम नियम आदिको स्वार्थ अर्थात् परमार्थ कहते हैं ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ किन्तु इनके कर्मकल्पित सब लोक अवश्यही उत्पत्ति–विनाशशील, परिणाममें नीरस, मोहपर्यवसित, क्षुद्र, मन्द और शोकपूर्ण हैं ॥ ११ ॥ हे सभ्य! मुझमें आत्माको अर्पित करनेवाले लोगोंको सब विषयोंकी अपेक्षा छोड़कर आत्मारूप मुझसे जो नित्य सुख प्राप्त होता है वह सुख, विषयासक्तचित्त व्यक्तियोंको कहाँ मिल सकता है? अकिञ्चन, जितेन्द्रिय, शान्त, समदर्शी और मेरी प्राप्तिसे सन्तुष्टचित्त व्यक्तिके लिये दशो दिशाएँ सुखसे पूर्ण हैं। जिसने आत्माको मुझमें अर्पित कर दिया है वह मुझे छोड़कर ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्तीका पद, पाताल आदि विवरोंका आधिपत्य, योगकी सिद्धियाँ अथवा मोक्ष, कुछ भी नहीं चाहता ॥ १२–१४ ॥ हे उद्धव! मुझे ब्रह्मा, सङ्कर्षण, लक्ष्मी एवं अपनी मूर्ति भी वैसी प्रिय नहीं है जैसे तुमऐसे अनन्यभक्त प्रिय हैं। मैं अपने अन्तर्वर्ती ब्रह्माण्डोंको चरणरजसे पवित्र करनेकेलिये निरपेक्ष, मुनि, शान्त, द्रोहशून्य, समदर्शी व्यक्तिका अनुगमन करता रहता हूँ ॥ १५ ॥ १६ ॥ निष्किञ्चन, मुझमें अनुरक्तचित्त, शान्त, निरभिमान, अशेषजीववत्सल, निष्काम मेरे अनन्य भक्तलोग जिस सुखको भोगते हैं उसे वेही जानते हैं, अन्य कोई नहीं जान सकता; क्योंकि जो लोग कुछ भी नहीं चाहते वेही उस परमानन्दको पाते हैं ॥ १७ ॥ मेरे अजितेन्द्रिय भक्त भी, विषयोंकी ओर चित्तके चलायमान होनेपर भी, क्षमताशालिनी भक्तिके प्रभावसे प्रायः विषयोंमें आसक्त नहीं होते ॥ १८ ॥ जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि काष्ठोंके ढेरको भस्म कर देता है वैसेही मेरी भक्ति सब पातकोंके पुंजको भस्म कर देती है। हे उद्धव! मेरी दृढ़ भक्तिके समान योग, विज्ञान, वेदाध्ययन, तप और दान आदि साधनोंसे मैं नहीं मिल सकता। साधुजनोंका प्रिय आत्मा मैं श्रद्धासम्पन्न भक्तिसे ही सुलभ हूँ। मेरी भक्ति चाण्डाल आदि अन्त्यजोंको भी जातीयदोष (नीचता) से पवित्र कर देती है। निश्चय जानो कि सत्य-दयायुक्त धर्म या तपसम्पन्न ज्ञान, मेरी भक्तिसे शून्य जीवको पूर्णतया पवित्र नहीं कर सकते ॥ १९–२२ ॥ विना रोमाञ्च हुए, विना प्रेमसेहृदय गद्गद हुए, विना नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहे कैसे भक्तिका ज्ञान हो सकता है? विना भक्तिके चित्त ही कैसे शुद्ध हो सकता है? ॥२३॥ मेरी भक्तिसे

जिसकी वाणी और हृदय गद्गद हो जाता है, जो वारंवार ऊँचे स्वरसे नाम लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़कर नाचता है–उच्च स्वरसे मेरे गुण गाता है वह मेरा पूर्ण भक्त त्रिलोकपावन है। जैसे अग्निमें तपनेसे सुवर्ण मैलको त्यागकर अपने रूपको प्राप्त होता है वैसेही मेरे भक्तियोगसे आत्मा भी कर्मवासना छोड़कर अपने रूप अर्थात् मेरे रूपको प्राप्त होता है ॥२४॥२५॥ अञ्जनरञ्जित चक्षुकी भाँति आत्मा मेरी पुण्य कथाओंके श्रवण और कीर्तनके द्वारा जैसे जैसे निर्मल होता जाता है वैसे वैसे सूक्ष्मवस्तु (ब्रह्मतत्त्व)को देख पाता है ॥ २६ ॥ हे उद्धव! जो कोई विषयचिन्ता किया करता है उसका चित्त विषयकर्मोंमें आसक्त होता है और जो कोई निरन्तर मेरा स्मरण किया करता है उसका चित्त पूर्णरूपसे मुझमेंही लीन हो जाता है ॥ २७ ॥ अतएव स्वप्न और मनोरथके समान मिथ्या विषय–चिन्ताको छोड़कर मेरी भक्तिसे पूर्ण मनको मुझमेंही लगाओ ॥ २८ ॥ विवेकी व्यक्तिको चाहिये कि स्त्री और स्त्रीसङ्गनिरत व्यक्तियोंके सङ्गको दूरहीसे छोड़कर भयशून्य निर्जन स्थानमें बैठकर सावधानतासहित मेरा ही ध्यान करे। स्त्रीसङ्ग और स्त्रीसङ्ग करनेवालोंके सङ्गसे जैसा क्लेश और बन्धन होता है वैसा अन्य सङ्गसे नहीं होता ॥२९॥३०॥ उद्धवने पूछा—हे कमलनयन! मुमुक्षु व्यक्तिको जिसप्रकार जिस रूपसे आपका ध्यान करना चाहिये सो आप कृपाकर मुझसे कहिये ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! सम आसनमें सीधा होकर सुखपूर्वक बैठकर दोनो हाथोंको उत्तान भावसे गोदीमें तर-ऊपर रखना चाहिये। फिर दृष्टिको नासिकाके अग्रभागमें स्थापितकर जितेन्द्रिय होकर पूरक, कुम्भक और रेचक क्रमके द्वारा प्राणवायुके मार्गको शुद्ध करना चाहिये। इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींचकर विपरीत क्रम (रेचक, पूरक, कुम्भक, क्रमसे अथवा वामनाड़ीसे पूरित वायुको दक्षिण नाड़ीसे और दक्षिण नाड़ीसे पूरित वायुको वामनाड़ीसे छोड़-कर)से धीरे धीरे प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अविच्छिन्न घण्टानादके सदृश, हृदयमें अवस्थित, मृणालसूत्रतुल्य ॐकारको प्राणवायुके द्वारा ऊपर ले जाकर, वहाँ उसके मस्तकमें विन्दु स्थापन करना चाहिये, अर्थात् उसे स्थिर करना चाहिये। इसप्रकार ॐकारसंयुक्त प्राणायामका त्रिकाल दस दस बार करके अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे योगी एकही महीनेमें प्राणवायुको जीत सकता है ॥३४॥३५॥ प्राणवायुको वश करनेके उपरान्त योगीको चाहिये कि अधोमुख, ऊर्ध्वनाल अन्तःस्थ हृत्पद्मको ऊर्ध्वमुख, प्रफुल्लित, अष्टदल एवं कर्णिकायुक्त ध्यावै ॥३६॥ उस पद्मकी कर्णिकाओंमें उत्तरोत्तर सूर्य चन्द्र और अग्निकी भावना करे। अग्निके मध्यमें आये कहे अनुसार मेरे रूपका ध्यान करे–यही मङ्गलरूप ध्यानकी विधि है। हृदयपद्ममें देखे कि अनुरूप अवयवोंसे सम्पन्न, प्रशान्त,

सुमुख, विशाल और मनोहर चार भुजाओंसे सुशोभित मैं विराजमान हूँ। ग्रीवा अत्यन्त रमणीय और सुन्दर है, कपोल परम सुन्दर हैं, मुखमण्डल मनोहर मन्दमुसकानसे सुशोभित है, दोनो कानोंमें मकराकृति कुण्डल विराजमान हैं, श्याम शरीरपर सुवर्णवर्ण पीतपट शोभायमान है, श्रीनिकेतन वक्षःस्थलमें श्रीवत्स चिन्ह है। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म, हृदयमें वनमाला और कौस्तुभ, चरणोंमें नूपुर, शिरमें कान्तिशाली किरीट मुकुट, और और अङ्गोंमें कटक, अङ्गद, कटिसूत्र आदि अलंकार सुशोभित हैं। ऐसी मेरी सर्वाङ्गसुन्दर मनोहर मूर्तिका मुख और नयन प्रसन्नताको प्रकट कर रहे हैं। सब अङ्गोंमें मन (क्रमशः) स्थापित कर मेरे इस सुकुमार रूपका ध्यान करना चाहिये ॥३७-४१॥ हे उद्धव! विवेकी व्यक्तिको चाहिये कि इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे मनके द्वारा खींचकर बुद्धिरूप सारथीकी सहायतासे उस मनको पूर्णतया मुझमें लगावे। सर्वव्यापक चञ्चल मनको खींचकर एक एक अङ्गमें दृढ़रूपसे स्थापित करना चाहिये; एकसाथ ही सब अङ्गोंमें मनको न लगाना चाहिये। सुन्दर हास्यशोभित मुखमेंही सबसे पहले मनको लगाना चाहिये। जब मेरे उक्त रूपमें भलीभाँति मन स्थित हो जाय तब उससे भी हटाकर सबके कारण आकाश(शून्य)में मनको लगाना चाहिये। तदनन्तर उसे भी छोड़कर शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मुझको आश्रय बनाकर ध्याता और ध्येय-इस अलगावको भी चित्तसे दूर कर देना चाहिये; अर्थात् 'अहंब्रह्म' यह भावना करनी चाहिये। इसप्रकार चित्तके वश होनेपर, जैसे ज्योतिमें ज्योतिको संयुक्त देखते हैं वैसे ही अपनेमें मुझको और सर्वमय मुझमें अपनेको देखे ॥ ४२-४५ ॥

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ॥
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥

इसप्रकार सुदृढ़ ध्यानके द्वारा मुझमें निविष्टचित्त योगीके लिये फिर पदार्थ, ज्ञान और क्रियाका भ्रम (भेद) शीघ्रही निवृत्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय

अणिमादि अष्टसिद्धिवर्णन

श्रीभगवानुवाच-जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! जितेन्द्रिय, जितप्राण, स्थिरचित्त और मुझमें धृतचित्त योगीके निकट सब सिद्धियाँ आकर उपस्थित होती हैं ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे अच्युत! किस धारणासे किस प्रकारकी कौन सिद्धि होती है? योगियोंकी कितनी सिद्धियाँ हैं? सो आप कहिये। आप ही योगियोंको सिद्धि देनेवाले हैं ॥ २ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! धारणयोगके पारगामी जनोंने अट्ठारह सिद्धियाँ कही हैं। उनमें आठ प्रधान हैं, उनका स्वभावतः मैं ही आश्रय हूँ। अवशिष्ट दस सिद्धियाँ सत्त्वगुणने उत्कर्षसे प्राप्त होती हैं, इसलिये सामान्य हैं ॥३॥ 'अणिमा', 'महिमा' और 'लघिमा'—ये तीन सिद्धियाँ देहसे सम्बन्ध रखती हैं। 'प्राप्ति' नाम सिद्धिका सम्बन्ध सब प्राणियोंके इन्द्रियों और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंसे है। श्रुत और दृष्ट विषयोंमें भोग–दर्शन–सामर्थ्य-ही 'प्राकाम्य' नाम सिद्धि है। शक्तियोंका इच्छानुसार प्रेरणही 'ईशता' नाम सिद्धि है। विविध विषयभोगोंमें अनासक्ति ही 'वशिता' नाम सिद्धि है। जिसके द्वारा सब वाञ्छित विषयोंकी सीमा प्राप्त हो वही आठवीं 'कामावसायिता' नाम सिद्धि है। हे सौम्य! ये प्रधान आठ सिद्धियाँ मेरी स्वाभाविक सिद्धियाँ हैं। मुझे प्राप्त होनेपर योगिको ये सिद्धियाँ मिलती हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस शरीरमें भूख-प्यासका न होना, दूरकी बात सुनना एवं दूरकी घटना देखना, मनकीसी द्रुतगति, अभिलषित रूप-लाभ, दूसरे शरीरमें प्रवेशकर जाना, स्वेच्छामृत्यु, देवरूपसे अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करना, संकल्पसिद्धि, अप्रतिहत आज्ञा और गति, ये दस सामान्य सिद्धियाँ, सत्त्वके उत्कर्षसे होती हैं। इनके अतिरिक्त त्रिकालज्ञता, शीतोष्णादिक द्वन्द्वधर्मोंसे अभिभूत न होना, पराये मनकी बात जानलेना एवं अग्नि, सूर्य, जल और विष आदिको बाँध देना एवं वशमें कर लेना—ये योगकी उद्देश्यजनित पाँच क्षुद्र सिद्धियाँ हैं। अब योगकी जिस धारणासे जो सिद्धि होती है सो मुझसे सुनो ॥ ६–९ ॥ भूतसूक्ष्मोपाधिक मुझमें तन्मात्रभूत सूक्ष्माकार मनकी धारणा करनेसे भूतसूक्ष्मके उपासक योगीको 'अणिमा' सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १० ॥ महत्तत्त्वोपाधिक मुझमें महत्तत्त्वाकार मनकी धारणा करनेसे 'महिमा' सिद्धि प्राप्त होती है। आकाशादि महाभूत स्वरूप मुझमें पृथक् पृथक् मनकी धारणा करनेसे योगीको पृथक् पृथक् उपासित भूतकी 'महिमा' प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ सब तत्त्वोंके परमाणुस्वरूप मुझमें चित्तकी धारणा करनेसे योगीको कालसूक्ष्मात्मक 'लघिमा' नाम सिद्धि मिलती है ॥ १२ ॥ वैकारिक अहंकाररूप मुझमें एकाग्र चित्तकी धारणासे मुझमें अभिनिविष्टचित्त व्यक्तिको इन्द्रियाधिष्ठाता देवतारूपसे सर्वेन्द्रियसम्बन्धरूप 'प्राप्ति' नाम सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ अव्यक्तजन्मा सूत्रस्वरूप मुझ महत्‌में जो कोई चित्त लगाता है वह मेरी सर्वोत्कृष्ट 'प्राकाम्य' सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जो कोई त्रिगुणात्मक मायाके नियन्ता कालमूर्ति मुझ विष्णु (व्यापक)में चित्त लगाता है वह जीव और जीवकी उपाधि(शरीर)की प्रेरणारूप 'ईशता' नाम सिद्धिको

प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ भगवत् शब्दसे निरूपित नारायण नामक मुझ 'तुरीय'में जो मन लगाता है वह योगी मेरे धर्मसे सम्पन्न होकर 'वशिता' नाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो योगी निर्गुण ब्रह्मरूप मुझमें विशुद्ध चित्तको स्थापित करता है वह परमानन्दमयी 'कामावसायिता' नाम सिद्धिको प्राप्त होता है। इस सिद्धिके मिलनेपर सब कामनाओंका अन्त हो जाता है ॥ १७ ॥ हे उद्धव! सत्त्वमूर्ति, धर्ममय, श्वेतद्वीपवासी मुझमें चित्त स्थापित करनेसे, मनुष्य, क्षुधा–तृष्णा–शोक–मोह–जरा–मरण–शून्य होकर शुद्धरूप हो जाता है ॥ १८ ॥ आकाशात्मा समष्टिरूप प्राणमय मुझमें मनके द्वारा नादकी भावना करनेसे यह जीव विविध प्राणियोंके (दूरवर्ती होनेपर भी) उसी आकाशमें अभिव्यक्त वाक्योंको सुनता है ॥ १९ ॥ चक्षुको सूर्यमें और सूर्यको चक्षुमें संलग्नकर उस उभयसम्बन्धके मध्यमें मन-ही-मन मेरा चिन्तन करनेसे मनुष्यको दूरहीसे सब विश्व देख पड़ता है ॥ २० ॥ मनके द्वारा प्राणवायुसहित शरीरको मुझमें स्थापित करनेपर उस धारणाके प्रभावसे जहाँ मन जाता है वहीं शरीर उपस्थित होता है, अर्थात् मनोजव सिद्धि मिलती है ॥ २१ ॥ सर्वरूप मुझमें मन लगानेसे, मेरे योगबलरूप आश्रयके प्रभावसे योगी जिस रूपको चाहता है वही रूप धर सकता है ॥ २२ ॥ सब शरीरोंमें मुझ आत्मारूपका चिन्तन करनेसे योगीको परकायप्रवेश नाम सिद्धि प्राप्त होती है। उस अवस्थामें योगी अपने शरीरको छोड़कर प्राणवायुरूपसे भ्रमरकी भाँति परकायामें प्रवेश कर सकता है ॥ २३ ॥ एँड़ीसे गुह्य द्वारको दबाकर प्राणोपाधिक आत्माको क्रमशः हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तकमें ले जाकर ब्रह्मरन्ध्रसे निकालकर योगी ब्रह्ममें लीन हो सकता है। इस सिद्धिको स्वच्छन्दमृत्यु कहते हैं। इसी क्रमसे शरीर त्याग कर योगी परकायामें भी प्रवेश करता है ॥ २४ ॥ देवतोंकी विहारभूमिमें जाकर क्रीड़ा करनेकी इच्छा हो, तो योगीको चाहिये कि शुद्धसत्त्वरूप मेरी मूर्तिका मनमें ध्यान करे। ऐसा करनेसे सत्त्वांशरूपिणी सुरसुन्दरिया विमान लेकर निकट उपस्थित होती ॥ २५ ॥ मुझ सत्यसंकल्प सर्वशक्तिमान्‌में मन लगानेसे योगी भी सत्यसंकल्प हो सकता है। मुझ सर्वनियन्ता, स्वाधीनमें मन लगानेसे मेरेही समान योगीकी भी आज्ञा कहीं नहीं निष्फल होती। मेरी भक्तिसे चित्त शुद्ध होजानेपर धारणायोगमें प्रवीण योगीको तीनो कालका ज्ञान प्राप्त होता है और पराये मनकी बात भी ज्ञात होती है। वह योगी इस सिद्धिके प्रभावसे जन्म–मरणका हाल भी बता सकता है ॥ २६–२८ ॥ जैसे जल जलजन्तुओंका घातक नहीं है उसी प्रकार मेरे योग(ध्यान)द्वारा युक्तचित्त योगीका भी शरीर अग्नि आदिसे नष्ट नहीं होता। इस दशामें योगी द्वंद्वसहन भी कर सकता है ॥ २९ ॥ जो कोई श्रीवत्स, ध्वजा, अस्त्र, अलंकार, छत्र, व्यजन आदिसे युक्त

मेरे अवतारोंके ध्यानमें मनको लीन करता है वह अपराजित होता है और अग्नि आदिको अपने वशमें रख सकता है ॥ ३० ॥ मेरे उपासक योगीके निकट पूर्वोक्त धारणाओंके समय उक्त सब सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं ॥ ३१ ॥ इन्द्रिय, प्राण-वायु, चित्तको वशीभूत कर मुझ तुरीयरूप नारायणके भावनामें मग्नमन दान्त मुनिको कोई भी सिद्धि दुर्लभ नही है ॥ ३२ ॥ किन्तु ये सब सिद्धियाँ उत्तम योगाभ्यासमें निरत मत्परायण योगीके लिये विघ्नस्वरूप कही गई हैं। इन्हे व्यर्थ कालक्षेपका कारण समझकर इनकी कामना न करनी चाहिये । हे उद्धव ! जन्म, औषधि, तप, मन्त्र आदिसे सिद्ध होनेवाली सब सिद्धियाँ योगीको योगसे मिल सकती हैं, किन्तु योगकी गति (सालोक्य, सारूप्य आदि चार प्रकारकी मुक्ति) अन्य उपायोंसे नहीं मिल सकती । इस कारण योगीको चाहिये कि इन सिद्धियोंमें न फँस कर अपने मुख्य उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये अहैतुकी धारणा करता रहे ॥३३॥३४॥ मैं सब सिद्धियोंका और मोक्ष एवं मोक्षके साधन विज्ञानयुक्त ज्ञान, योग, धर्म और धर्मका उपदेश करनेवाले ब्रह्मवादियोंकाभी हेतु, पति और प्रभु हूँ ॥ ३५ ॥

अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥
यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

मैं आवरणशून्य, सब देहधारियोंमें व्याप्त, अन्तर्यामी आत्मा हूँ । जैसे पाँचो तत्त्व सब प्राणियोंके भीतर और बाहर अवस्थित हैं वैसेही मैं भी सबके भीतर और बाहर व्यापक हूँ ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय

महाविभूतिवर्णन

उद्धव उवाच—त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ॥
सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे नाथ ! आप साक्षात् परब्रह्म, अनादि, अनन्त, स्वाधीन हैं। सब पदार्थोंका पालन, स्थिति, नाश और उद्भव आपहीसे होता है ॥ १ ॥ आप सब उच्च, नीच मतोंमें अवस्थित होनेपर भी अकृतपुण्य असदाचारी लोगोंके लिये दुर्ज्ञेय हैं । वेदके तात्पर्यंको भलीभाँति जाननेवाले ब्राह्मण ही यथार्थ रूपसे आपकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥ भगवन् ! श्रेष्ठ ऋषिगण भक्ति-

पूर्वक जिन जिन भावोंमें आपकी उपासनाकर पूर्ण सिद्धिको प्राप्त होते हैं वह प्रणाली आप कृपाकर मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ हे भूतभावन! आप सब प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं। आप गूढ़ रूपसे सब प्राणियोंमें अवस्थित हैं, आप सबको देखते हैं, तथापि आपकी मायासे मोहित हो रहे प्राणी आपको नहीं देख पाते ॥ ४ ॥ हे महाविभूतिसम्पन्न! स्वर्ग पृथ्वी पाताल एवं दश दिशाओंमें आपकी विशेष शक्तिसे युक्त जो जो विभूतियाँ हैं उन्हे मुझे बताइये। गङ्गातीर्थकी उत्पत्तिके स्थान आपके चरणारविन्दोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥ श्रीभगवान्‌ने कहा— हे उद्धव! हे प्रश्नवित् लोगोंमें श्रेष्ठ! कुरुक्षेत्रके बीच युद्धभूमिमें शत्रुता करनेवाले जातिभाइयोंसे युद्ध करनेके समय अर्जुनने भी मुझसे यही प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ 'मैं मारूँगा–ये मरेंगे'—इस प्रकारकी लौकिक बुद्धिके कारण राज्यके लिये ज्ञातिवधको निन्दित मानकर अर्जुन जब युद्धके विचारसे निवृत्त हो गये तब मैंने उनको युक्तिपूर्ण वाक्योंसे समझाया और युद्ध करनेके लिये उद्यत किया। उससमय युद्धभूमिमें पुरुषसिंह अर्जुनने भी तुम्हारे समान यही प्रश्न मुझसे किया था ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे उद्धव! मैं इन सब प्राणियोंका आत्मा, सुहृद्, और ईश्वर हूँ। ये सब प्राणी मैं ही हूँ, और इनकी सृष्टि, स्थिति एवं ध्वंसका कारण हूँ ॥ ९ ॥ गमनशील व्यक्ति और वस्तुओंमें मैं गति हूँ। हे सौम्य! वशकर्ता प्रेरकों और गुणोंमें मैं काल और प्रकृति हूँ। गुणी व्यक्तियोंमें मैं औत्पत्तिक गुण हूँ ॥ १० ॥ गुणसम्पन्न वस्तुओंमें मैं सूत्र (सृष्टिका प्रथम कार्य) हूँ। महान् वस्तुओंमें मैं महत्तत्त्व हूँ। सूक्ष्मवस्तुओंमें मैं जीव हूँ। दुर्जयोंमें मैं मन हूँ ॥ ११ ॥ वेदोंमें मैं हिरण्यगर्भ हूँ। मन्त्रोंमें मैं त्रिवृत् प्रणव हूँ। अक्षरोंमें मैं अकार हूँ। छन्दोंमें मैं गायत्री हूँ ॥ १२ ॥ सब देवतोंमें इन्द्र, वसुओंमें अग्नि नाम वसु, आदित्योंमें विष्णु नाम आदित्य और रुद्रोंमें नीललोहित नाम रुद्र मैं हूँ ॥ १३ ॥ महर्षियोंमें भृगु, राजर्षियोंमें मनु, देवर्षियोंमें नारद और धेनुओंमें कामधेनु मैं हूँ ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव, पक्षिवृन्दमें गरुड़, प्रजापतियोंमें दक्ष और पितृगणमें अर्यमा मैं हूँ ॥ १५ ॥ हे उद्धव! दैत्योंमें असुरपति प्रल्हाद, नक्षत्र और औषधियोंमें सोम एवं यक्ष-राक्षसोंमें धनेश (कुबेर) मैं हूँ ॥ १६ ॥ गजराजोंमें ऐरावत, जलवासियोंमें जलजन्तुओंके प्रभु वरुण, प्रतापशाली और दीप्तिशाली वस्तुओंमें सूर्य एवं मनुष्योंमें राजा मैं हूँ ॥ १७ ॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, धातुओंमें सुवर्ण, दण्डधारी जनोंमें यम और सर्पोंमें वासुकी मैं हूँ ॥ १८ ॥ नागराजोंमें अनन्त (शेषनाग), शृङ्ग–दंष्ट्राधारी पशुओंमें मृगराज (सिंह), आश्रमोंमें संन्यास और हे निष्पाप! वर्णोंमें ब्राह्मण मैं हूँ ॥ १९ ॥ तीर्थ और नदियोंमें गङ्गा, स्थिरोदक जलाशयोंमें समुद्र, आयुधोंमें धनुष और धनुषधारियोंमें त्रिपुरारि (शिव) मैं हूँ ॥ २० ॥ निवासस्थानोंमें सुमेरु, दुर्गम-

स्थानोंमें हिमालय, वनस्पतियोंमें अश्वत्थ और औषधियोंमें 'यव' मैं हूँ ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ, ब्रह्मिष्ठों(वेदज्ञों)में बृहस्पति, सेनापतियोंमें कार्तिकेय एवं अग्रगण्य व्यक्तियोंमें भगवान् ब्रह्मा मैं हूँ ॥ २२ ॥ यज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ और व्रतोंमें अहिंसा मैं हूँ। शोधक वस्तुओंमें सर्वथा शुद्ध वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाक्य और आत्मा मैं हूँ ॥ २३ ॥ योगोंमें समाधियोग, जय-साधनोंमें नीति, कौशलोंमें आन्वीक्षिकी (आत्मानात्मविवेक) विद्या और ख्यातिवादीगणमें दुरन्त विकल्प मैं हूँ ॥ २४ ॥ स्त्रियोंमें मनु-पत्नीशतरूपा, पुरुषोंमें स्वायम्भुव मनु, मुनियोंमें नारायण और ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूँ ॥ २५ ॥ धर्मोंमें सब प्राणियोंको अभय-दान, अभय स्थानोंमें अन्तर्निष्ठा, गुह्य पदार्थोंमें प्रिय वचन और मौन मैं हूँ। मिथुनोंमें अज (ब्रह्मा) मैं हूँ। अपने कर्तव्यमें सावधानोंमें संवत्सर, ऋतुओंमें वसन्त, महीनोंमें मार्गशीर्ष (अगहन) और नक्षत्रोंमें अभिजित् मैं हूँ ॥ २६ ॥ २७ ॥ युगोंमें सत्ययुग, विवेकियोंमें देवल और असित मुनि, वेद-विभागकर्ता व्यासोंमें द्वैपायन और कवियोंमें सहृदय शुक्राचार्य मैं हूँ ॥ २८ ॥ भगवानोंमें[1] वासुदेव, वैष्णवोंमें तुम (उद्धव), किम्पुरुषोंमें हनुमान् और विद्या-धरोंमें सुदर्शन नाम विद्याधर मैं हूँ ॥ २९ ॥ रत्नोंमें पद्मराग, सुन्दरोंमें पद्मकोष, दर्भजातियों (काश, दूर्वा आदि तृणजातियों)में कुश, और हविमात्रमें गोघृत मैं हूँ ॥ ३० ॥ व्यवसाय करनेवालोंमें लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति), धूर्तोंमें छल-विद्या, क्षमाशील व्यक्तियोंमें क्षमा या सहनशीलता और सत्त्वशाली लोगोंमें सत्त्व मैं हूँ ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें इन्द्रियबल, देहबल मैं हूँ । वैष्णव भक्तोंमें भक्तिकृत निष्काम कर्म मैं हूँ । सात्त्वत भक्तोंकी पूज्य नवे[2] मूर्तियोंमें श्रेष्ठ आदिमूर्ति (वासुदेव) मैं हूँ ॥ ३२ ॥ गन्धर्वोंमें विश्वावसु और अप्सराओंमें पूर्वचित्ति मैं हूँ। पर्वतोंमें स्थिरता मैं हूँ। पृथ्वीमें अविकृत गन्ध (गुण) और जलमें मधुर रस (गुण) मैं हूँ। सूर्य, चन्द्र और तारागणोंमें प्रभा मैं हूँ। आकाशमें परम नाद (गुण) मैं हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण-भक्तोंमें राजा बलि और वीरोंमें कुन्तीपुत्र अर्जुन मैं हूँ। प्राणियोंमें उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय मैं हूँ ॥ ३५ ॥ गति, वाक्य, उत्सर्ग, ग्रहण, आनन्द एवं स्पर्श, दर्शन, आस्वादन, सुनना और सूँघना—ये इन्द्रियोंके कर्म मैं हूँ; अर्थात् हरएक इन्द्रियमें अपने विषयके ग्रह-

---

१ उत्पत्ति, लय, प्राणियोंकी अगति, गति, विद्या और अविद्या जाननेवालेको भगवान् कहते हैं। यथा—

'उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥'

२ 'वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह और ब्रह्मा, ये नव मूर्तियाँ हैं।

णकी शक्ति मैं हूँ ॥ ३६ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और ज्योति–ये पञ्चतत्त्व मैं ही हूँ। अहंकार, महत्तत्त्व, जीव, प्रकृति, सत्त्व, रज, तम एवं ब्रह्म, सब मैं ही हूँ। इन सबका परिगणन, लक्षणके द्वारा ज्ञान एवं फल-स्वरूप तत्त्व-निश्चय भी मैं ही हूँ। जीव ईश्वर, गुण गुणी, सर्वव्यापक सर्वरूप, सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न कहीं भी कोई भी भाव नहीं हैं, अर्थात् मैं ही सब कुछ हूँ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ काल-क्रमसे कभी मैं पृथ्वीके परमाणुओंको गिन सकता हूँ, परन्तु अपनी अनन्त विभूति-योंको नहीं गिन सकता। मैं करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेवाला हूँ (जब मेरे उत्पन्न किये ब्रह्माण्डोंकी गणना नहीं होसकती, तब उन ब्रह्माण्डोंमें स्थित अपार विभूतियोंकी गणना कैसे होसकती है?) ॥ ३९ ॥ जिस जिसमें तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, सौभाग्य, सुन्दरता, बल, क्षमा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हैं, वही वही मेरी विभूति (अंश) है ॥ ४० ॥ हे उद्धव! मैंने तुमसे बहुतही संक्षेपमें अपनी विभूतियाँ कही हैं। किन्तु ये परमार्थ-वस्तु नहीं हैं, अतएव इनमें अत्यन्त अभिनिवेश न करना चाहिये। इनसे केवल मेरा बोध होता है। ये मनोविकार और वाक्य कल्पनामात्र हैं ॥ ४१ ॥ वाणी, मन, प्राण-वायु और इन्द्रियोंको जीतकर आत्माको परमात्मामें लीन करो। ऐसा करनेसे फिर तुम्हें संसारमार्गमें न घूमना पड़ेगा ॥ ४२ ॥ जो यती योगी बुद्धिद्वारा वाणी और मनको भली-भाँति संयत नहीं करता उसका व्रत, तप और ज्ञान, कच्चे घड़ेके पानीके समान नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥

तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥
मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

इसलिये मत्परायण मुनिको चाहिये कि मेरी भक्तिसे युक्त विशुद्ध बुद्धिके द्वारा वाणी, मन और प्राणों(प्राणवायुसहित इन्द्रियों)को भलीभाँति वशमें करे। ऐसा करनेसे निर्वाण-पदको पाकर कृतकृत्य होजाता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय

वर्णाश्रमधर्म-वर्णन

उद्धव उवाच–यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥
वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे प्रभो! वर्णाश्रमाचारी और वर्णाश्रमाचारहीन, सब मनुष्य

जिस आपकी भक्तिरूप अपने धर्मसे आपको पाते हैं उसे आप पहले बता चुके हैं। अब, हे कमललोचन! जिस प्रकारसे उस स्व-धर्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्योंको आपके प्रति भक्ति होती है, सो मुझसे कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ हे महाबाहो! हे प्रभो! हे माधव! पूर्वसमयमें आपने हंसरूपसे ब्रह्माको जिस परमसुखरूप धर्मका उपदेश किया था वह आपका अनुशासनरूप धर्म, चिरकाल व्यतीत होजानेसे, हे शत्रुदमन! अब पृथ्वीतलपर प्रायः प्रचलित नहीं है, अर्थात् लुप्तप्राय होगया है। हे अच्युत! केवल पृथ्वीपर ही नहीं, वरन् जहाँ आपकी वेदादिक कलाएँ साक्षात् विद्यमान हैं उस ब्रह्माकी सभामें भी आपके सिवा दूसरा कोई उस धर्मका कहनेवाला, करनेवाला और रक्षक नहीं है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे मधुसूदन देव! परम धर्मके वक्ता, कर्ता और रक्षक आप जब पृथ्वीतलको छोड़ जायँगे तब कौन उस नष्टप्राय धर्मको बतावेगा? अतएव हे सर्वधर्मज्ञ! हे प्रभो! तुम्हारे प्रति भक्ति करना ही जिसका लक्षण है उस धर्मका पालन, मनुष्योंमें, जिसको जिसप्रकार करना चाहिये सो कृपा करके मुझसे कहिये ॥ ५–७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! अपने अनन्य सेवकके इसप्रकार पूछनेपर भगवान् हरि अत्यन्त प्रसन्न होकर मनुष्योंके हितके लिये सनातन धर्म कहनेलगे ॥ ८ ॥ भगवान्ने कहा—"हे उद्धव! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मको बढ़ानेवाला है। वर्णाश्रमाचारी मनुष्योंको इससे परमश्रेय-रूप मुक्ति मिलेगी। जो धर्म तुम पूछते हो, सो मैं कहता हूँ—सुनो ॥ ९ ॥ पहले सत्ययुगमें मनुष्योंमें ब्राह्मणादि चार वर्ण नहीं थे, केवल हंस नाम एक ही वर्ण था। उस समय जन्मसे ही, मेरी उपासनामें तत्पर रहनेके कारण लोग कृतकृत्य होतेथे, इसीसे सत्ययुगको कृतयुग भी कहते हैं। तब ॐकार ही एक-मात्र वेद था, और सत्य-तप आदि चार चरणवाला वृषरूपधारी मैं ही धर्म था, एवं उस समयके तप-तत्पर पाप-शून्य मनुष्यलोग मनसहित इन्द्रियोंको एकाग्र कर विशुद्धरूप मुझ हंसकी उपासना अर्थात् ध्यान करते थे ॥ १० ॥ ११ ॥ हे महाभाग! त्रेतायुगके आरंभमें मेरे हृदयसे प्राणद्वारा वेदत्रयी (ऋक्, यजुः और साम) उत्पन्न हुई। उस वेदत्रयीरूप विद्यासे तीन (होता, अध्वर्यु और उद्गाता)-रूपवाला यज्ञपुरुष मैं प्रकट हुआ। विराट् पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरुओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। अलग अलग अपने धर्मका पालन ही इन चारो वर्णोंका लक्षण अर्थात् बोधक है ॥ १२ ॥ १३ ॥ मुझ विराट् पुरुषकी जङ्घाओंसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ और मस्तकसे संन्यास—ये चारो आश्रम प्रकट हुए हैं ॥ १४ ॥ इन चारो वर्ण और चारो आश्रमोंके लोगोंकी प्रकृतियाँ भी जन्मस्थानकी उत्तमता और नीचताके अनुसार अपेक्षाकृत उत्तम और नीच हुई हैं ॥ १५ ॥ शम (वासनाशमन),

दम (इन्द्रियदमन), तप (तत्त्वकी आलोचना), शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, मेरी भक्ति, दया और सत्यव्यवहार, ये ब्राह्मण वर्णके स्वभाव हैं ॥ १६ ॥ तेज (प्रताप) बल, धैर्य, शूरता, सहनशीलता, उदारता, उद्यम, दृढ़ता, ब्रह्मण्यता और ऐश्वर्य, ये क्षत्रिय वर्णके स्वभाव हैं ॥ १७ ॥ आस्तिकता, दानमें निष्ठा, दम्भ न करना, तन मन धनसे ब्राह्मणोंकी सेवा करना, धनसञ्चयसे कभी तृप्त न होना, ये वैश्यवर्णके स्वभाव हैं ॥ १८ ॥ निष्कपट भावसे गऊ, देवता और द्विजवर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य) की सेवा करना और जो उसमें मिले उसीमें सन्तुष्ट रहना, ये शूद्रवर्णके स्वभाव हैं ॥ १९ ॥ अशौच, मिथ्या बोलना, चोरी करना, नास्तिकता, अकारण कलह करना, काम, क्रोध और तृष्णा या लोभ, ये चाण्डाल श्वपच आदि अन्त्यज, वर्णसङ्कर जातियोंके स्वभाव हैं ॥ २० ॥ अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, काम और लोभके वश न होना, चोरी न करना, प्राणियोंका प्रिय और हित करनेकी चेष्टामें लगे रहना, ये सब वर्णोंके साधारण (एवं अवश्य कर्तव्य) धर्म हैं ॥ २१ ॥ (अब आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारीके धर्म कहते हैं) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णके बालकोंको चाहिये कि गर्भाधान, जातकर्म आदि संस्कारोंके उपरान्त, क्रमशः यज्ञोपवीतसंस्कार नाम दूसरा जन्म होनेपर, जितेन्द्रिय और नम्र होकर गुरुकुलमें वास करें। यथासमय गुरुके बुलानेपर निकट जाकर उससे वेदाध्ययन करें और मनमें मननपूर्वक वेदके अर्थको विचारें ॥ २२ ॥ ऐसे विद्यार्थी ब्रह्मचारीको चाहिये कि मौञ्जी मेखला, कृष्णाजिन, दण्ड, रुद्राक्षकी जपमाला, ब्रह्मसूत्र और कमण्डलुको धारण करे। शिर न मलनेके कारण स्वयं होगई जटाओंको धारण करे। दन्तधावन न करे, पहननेके वस्त्र न धुलावे, रंगीन आसनपर न बैठे, कुशधारण करे ॥ २३ ॥ स्नान, भोजन, हवन, जप और मल-मूत्र-त्यागके समय मौन रहे। नखोंको न काटे और कच्छ व उपस्थके ऊपरके भी रोम न बनावे—वैसेही बढ़े रहने दे ॥ २४ ॥ ब्रह्मचारीको भूलकर भी कभी वीर्यपात न करना चाहिये। यदि स्वप्नावस्थामें असावधानतावश कभी आप-ही-आप वीर्यपात हो भी जाय तो जलमें स्नान करके प्राणायामपूर्वक गायत्रीजप करना चाहिये ॥ २५ ॥ पवित्र और एकाग्र होकर प्रातःकाल और सायंकाल, दोनो सन्ध्याओंमें, मौनावलम्बनपूर्वक गायत्री जपता हुआ अग्नि, सूर्य, आचार्य, गऊ, ब्राह्मण, गुरु, बड़े-बूढ़े और देवतोंकी उपासना एवं सन्ध्यावन्दन करे ॥ २६ ॥ आचार्यको साक्षात् मेरा रूप समझे। साधारण मनुष्य मानकर गुरुकी उपेक्षा या अपमान न करे और न उसकी किसी बात या व्यवहारको बुरा माने। क्यों कि गुरु सर्वदेवमय है ॥ २७ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल जो कुछ भिक्षा मिले एवं और भी जो कुछ मिले सो लाकर गुरुके आगे धर दे और गुरुके भोजन कर चुकनेपर गुरुकी

आज्ञा पाकर संयत भावसे उसमेंसे आप भी भोजन करे ॥ २८ ॥ नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ेहुए निकट ही रहकर सब समय गुरुकी सेवा करे । गुरु चले तो आप पीछे पीछे चले, गुरु सोवे तो आप पासही लेटे और गुरु लेटे तो आप पास बैठकर पैर दबाता रहे ॥ २९ ॥ जबतक पढ़ना समाप्त न हो तबतक अस्खलित ब्रह्मचर्य व्रतको पालता हुआ इसप्रकार भोग-त्यागपूर्वक गुरुकुलमें रहे ॥३०॥ यदि महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, अथवा जहाँ सब वेद मूर्तिमान् होकर रहते हैं उस ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा हो तो बृहद्व्रत (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य)–धारणपूर्वक शरीरको गुरुके अर्पण कर दे, अर्थात् जबतक जीवित रहे तबतक गुरुकी सेवामें रहकर अधिक अध्ययन करे और ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करे ॥ ३१ ॥ उस ब्रह्मतेज-सम्पन्न निष्पाप बालब्रह्मचारीको चाहिये कि अग्नि, गुरु, अपने आत्मा और सब प्राणियोंमें मुझ परमेश्वरकी उपासना करे और भेदभावनाको छोड़ दे ॥ ३२ ॥ गृहस्थाश्रममें न जानेवाले ब्रह्मचारीको उचित है कि स्त्रियोंको न देखे, न उनका स्पर्श करे, न उनसे बातचीत करे और न हँसी मसखरी करे, न एकान्तमें एकत्रित स्त्रीपुरुषोंको देखे ॥ ३३ ॥ हे कुरुनन्दन ! शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, तीर्थसेवा, जप (मेरा पूजन और ध्यान) एवं अभक्ष्य पदार्थ न खाना, तथा जिनसे बात न करना चाहिये और जिनको छूना न चाहिये उनसे न मिलना, न बोलना और न उनको छूना, सब प्राणियोंमें मुझे देखना और मन, वाणी, कायाका संयम,—ये धर्म सभी आश्रमोंके हैं; विशेषकर ब्रह्मचारीको अवश्य इनका पालन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण (या क्षत्रिय और वैश्य) प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी होता है । ऐसे निष्काम नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी कर्म-वासनाएँ तीव्र तपसे भस्म हो जाती हैं और अन्तमें वह मेरा भक्त होकर मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ यदि आवश्यक विद्या पढ़ चुकनेपर गृहस्थाश्रममें जानेकी इच्छा हो, तो वेदके तात्पर्यको यथार्थ जान लेनेपर, गुरुको दक्षिणा देकर और गुरुकी आज्ञा लेकर स्नान आदि करे, अर्थात् समावर्तन-संस्कार-पूर्वक ब्रह्मचर्यको समाप्त करे ॥ ३७ ॥ यदि सकाम हो, तो ब्रह्मचर्यके उपरान्त गृहस्थ बने और यदि अन्तःकरण शुद्ध होनेके कारण निष्काम हो तो वानप्रस्थ होकर वनमें बसे । यदि शुद्धचित्त, विरक्त ब्राह्मण चाहे, तो ब्रह्मचर्य छोड़कर संन्यास ले सकता है । यदि मेरा भक्त हो, तो उसके लिये अवश्य आश्रमी होनेका कोई विशेष नियम नहीं है; किन्तु यदि मेरा अनन्य भक्त न हो, तो उसे अवश्य किसी-न-किसी आश्रमका अवलम्ब लेना चाहिये । किसी आश्रममें न रहनेसे, अथवा पहले वानप्रस्थ फिर गृहस्थ, या पहले गृहस्थ फिर ब्रह्मचर्य–इसप्रकार विपरीत आचरणसे भ्रष्ट होजाता है कहींका नहीं रहता ॥ ३८ ॥ जो गृहस्थ होना चाहे उसके उचित है

कि ब्रह्मचर्य समाप्त करके अपने समान रूप, गुण और विद्यावाली, निष्कलङ्क कुलकी, उत्तम लक्षणोंसे युक्त, अवस्थामें छोटी और अपने ही वर्णकी कन्यासे विवाह करे। तदनन्तर कामवश अन्य वर्णकी कन्यासे भी विवाह कर सकता है[1] ॥ ३९ ॥ यज्ञ करना, दान देना और पढ़ना ये तीनो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये आवश्यक और साधारण धर्म हैं। और दान लेना, पढ़ाना और यज्ञकराना ये तीन धर्म (वृत्तियाँ) केवल ब्राह्मणहीके लिये विहित हैं ॥ ४० ॥ किन्तु दान लेनेसे तप, तेज और यश क्षीण होता है और पढ़ाने व यज्ञ करानेमें दीनता दिखाना पड़ता है—यह दोष है। इसलिये ब्राह्मणको उचित है कि जहाँ-तक हो सके दान लेनेकी वृत्ति न करे, केवल पढ़ाने और यज्ञ करानेकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह करे और यदि हो सके तो इन दोनो वृत्तियोंको भी छोड़कर शिलोंच्छवृत्ति (खेत काट लेनेपर जो अन्नके कण पड़े रह जाते हैं उनको बीन लाकर या बाजार उठ जानेपर जो अन्न बिखरा हुआ पड़ा रह जाता है उसे बीन-लाकर—उस)से जीविकानिर्वाह करे ॥ ४१ ॥ यह अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणशरीर क्षुद्र सांसारिक सुखके लिये नहीं है। इससे इसलोकमें कष्ट उठाकर तप करना चाहिये, क्यों कि ऐसा करनेसे परलोकमें अनन्त सुख मिलता है। जो ब्राह्मण-शरीर पाकर ऐसा नहीं करता वह अपने ब्राह्मण-जन्मको वृथा नष्ट कर देता है! ॥४२॥ इसप्रकार जो ब्राह्मण शिलोंच्छवृत्तिमें सन्तुष्टचित्त होकर निष्काम महत् धर्म (अतिथिसेवा आदि सनातन सदाचार)का सेवन करता हुआ सर्वतोभावसे मुझे आत्मसमर्पण कर देता है वह अनासक्तभावसे गृहस्थाश्रमहीमें रहकर मेरे भजनसे परमशान्तिको—मोक्षके अधिकार अथवा योग्यताको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जो कोई मेरे भक्त ब्राह्मण(अथवा अन्य किसी)को धन, भोजन, वस्त्र आदिकी सहायता करके दारिद्र्य आदि कष्टोंसे उबारते हैं, उनको, जैसे समुद्रमें डूब रहे व्यक्तिको नौका उबार लेती है वैसेही मैं आनेवाली आपत्तियोंसे शीघ्र ही उबार लेता हूँ ॥ ४४ ॥ धीर अर्थात् विवेकी राजाको चाहिये कि जैसे गजपति अन्य गजोंको (दलदलमें फस जाने आदि अनेक) आपत्तियों या कष्टोंसे उबा-रता है और अपना उद्धार आप ही अपनी शक्तिसे करता है वैसेही दारिद्र्य, अन्न-कष्ट आदि सङ्कटोंमें पिताकी भाँति सहानुभूतिसहित सब प्रजाकी सहायता करे (यह राजाका मुख्य धर्म है, क्योंकि प्रजारंजनसे ही राजा कहलाता है) और सब

१ ब्राह्मण, चारो वर्णोंकी कन्या ले सकता है; क्षत्रिय, ब्राह्मणको छोड़कर शेष तीनो वर्णोंकी कन्या ले सकता है; वैश्य, अपने वर्णकी और शूद्रकी कन्या ले सकता है, एवं शूद्र अपने ही वर्णकी कन्यासे विवाह कर सकता है। किन्तु कलियुगमें द्विजोंके लिये ऐसा करना निषिद्ध है, अन्य युगोंमें कर सकते हैं।

समय अपनी बुद्धि और शक्तिसे अपनी रक्षा करता रहे, अर्थात् विपत्तियोंसे और अधर्मसे एवं असावधानतासे बचता रहे ॥ ४५ ॥ ऐसा नरपति इस लोकमें सब अशुभोंसे रहित होकर अन्तसमय सूर्यसदृश प्रकाशमान विमानपर बैठकर स्वर्गलोकको जाता है, और वहाँ इन्द्रके साथ उन्हीके समान ऐश्वर्य-सुखको भोगता है ॥ ४६ ॥ हे उद्धव! ब्राह्मण यदि दारिद्र्यसे पीड़ित हो, तो वह वैश्य वृत्तिसे अर्थात् बेचनेयोग्य वस्तुओंके व्यापारसे आपत्कालको बितावे (उस समय भी मदिरा और लवणादिका बेचना निषिद्ध है), अथवा खड्गधारणपूर्वक क्षत्रिय-वृत्तिसे निर्वाह करे, किन्तु श्व-वृत्ति अर्थात् नीच-सेवा न करे; श्ववृत्ति सर्वथा निषिद्ध है ॥ ४७ ॥ इसीप्रकार क्षत्रिय यदि दारिद्र्यसे पीड़ित हो, तो वह वैश्य-वृत्तिसे या मृगया(शिकार)के द्वारा अथवा ब्राह्मणके समान विद्या पढ़ाकर आपत्कालको बितावे, परन्तु अपनेसे नीचकी सेवा कभी न करे ॥ ४८ ॥ ऐसे ही दारिद्र्यसे पीड़ित वैश्यको चाहिये कि शूद्रोंकी (सेवा) वृत्तिसे, और दारिद्र्यसे पीड़ित शूद्रको चाहिये कि प्रतिलोम, अर्थात् उच्च वर्णकी स्त्रीमें नीचवर्ण पुरुषसे उत्पन्न 'कारु' (धुनिये) आदिकी चटाई आदि बुननेकी वृत्तिसे निर्वाह करे। चारो वर्णोंके लिये केवल आपत्कालमें इन क्रमशः नीच वृत्तियोंकी व्यवस्था की गई है; आपत्काल निकल जानेपर किसी वर्णको अधम वृत्तिसे जीविका–निर्वाहकी इच्छा न करनी चाहिये ॥ ४९ ॥ गृहस्थ मनुष्यको चाहिये कि यथाशक्ति वेदाध्ययन, स्वधा (पितृयज्ञ), स्वाहा (देवयज्ञ), बलिवैश्वदेव और अन्नदान करताहुआ नित्य देवता, पितर, ऋषि और सब प्राणियोंको मेरा ही रूप समझकर पूजे ॥ ५० ॥ स्वयं प्राप्त और अपनी विहित वृत्तिके द्वारा उपार्जित धनसे न्याय-पूर्वक अपने द्वारा जिनका भरण पोषण होता है उन लोगोंको पीड़ा न पहुँचाकर यज्ञ आदि धर्म कर्म करे ॥ ५१ ॥ अपने कुटुम्बकी चिन्तामें ही आसक्त न रहे और कुटुम्बी होकर भी ईश्वरके भजनको न भूले; ईश्वरपर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास करे। विद्वान्‌को चाहिये कि प्रत्यक्ष संसारके प्रपञ्चकी भाँति अप्रत्यक्ष स्वर्ग आदिको भी अनित्य समझे ॥ ५२ ॥ जैसे पथिक लोग जलशालामें जल पीनेके लिये आकर घड़ीभर के लिये मिल जाते हैं और पानी पीकर अपनी अपनी राह लेते हैं वैसेही इस संसारमें पुत्र, स्त्री, स्वजन और बन्धु-बान्धवोंका समागम समझना चाहिये। निद्राके साथ जैसे स्वप्न देख पड़ता है और नींद उचटनेपर नहीं देख पड़ता, वैसे ही प्रत्येक शरीर मिलने और छूटनेपर स्त्री-पुत्रादिका समागम और वियोग होता है ॥ ५३ ॥ ऐसा समझकर साधक योगीको चाहिये कि गृहस्थाश्रममें अतिथिकी भाँति ममता और अहंकारसे हीन होकर रहे और लिप्त न हो ॥ ५४ ॥ मेरी भक्ति करता हुआ अपने धर्म अर्थात् कर्तव्यके पालनसे मेरी आराधनामें तत्पर रहकर चाहे गृहस्थाश्रममें ही रहे और चाहे बुढ़ापेके

पहले ही वानप्रस्थ होकर वनको चला जाय, अथवा पुत्र हो, तो संन्यास-ग्रहण करे ॥ ५५ ॥ किन्तु जिसकी बुद्धि घरमें-परिवारमें आसक्त है, जो पुत्रोंके लिये या धनके लिये व्याकुल है, जो स्त्रीसङ्गमें लिप्त और मन्दमति है वह मूढ़ मनुष्य 'मैं हूँ-मेरा है'-इस भ्रमजालमें पड़कर अनेक जन्मतक जन्म-मरणके कठिन कष्ट भोगता रहता है ॥ ५६ ॥

एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥
अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

जो कोई इसप्रकार गृहस्थीकी और परिवारकी चिन्तामें चूर रहता है कि "अहो! मेरे मा बाप बूढ़े हैं! स्त्रीके छोटे छोटे बालक हैं! ये दीन लड़की लड़के मेरे विना अनाथ होकर कैसे जियेंगे? मेरे वियोगसे इनको महादुःख होगा," वह मन्दमति मूढ़ गृहस्थ कभी तृप्त नहीं होता, और ऐसे ही सोचता सोचता एक दिन मर जाता है और फिर तामसी नीच योनिमें जन्म लेता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय

संन्यासधर्म-निरूपण

श्रीभगवानुवाच—वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ॥
वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

भगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! जो गृहस्थ वानप्रस्थ होना चाहे वह पत्नीको समर्थ पुत्रोंके हाथमें सौंप कर, अथवा अपने साथही रखकर, शान्त चित्तसे आयुके तीसरे भागको वनवासमें वितावे ॥ १ ॥ वहाँ विशुद्ध कन्दमूल और वनके फल खाकर रहे और वस्त्रके स्थानपर वल्कल धारण करे। या तृण, पत्ते अथवा मृगचर्मसे कपड़ेका काम निकाले ॥ २ ॥ सिरके बाल, दाढ़ी, मूछ, शरीरके रोम और नख बढ़ाता रहे। मैल न छुड़ावे, दन्तधावन न करे। तीनो काल जलमें घुसकर शिरसे स्नान करे और पृथ्वीपर सोवे। ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तापे, वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें रहे और जाड़ेभर गलेतक पानीमें बैठे। इसप्रकार घोर तप करना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ अग्निमें पकेहुए अथवा समय पाकर पकेहुए फल आदिको खाना चाहिये। ओखलीमें या पत्थलसे कूटकर कन्द-मूल आदि खाना चाहिये, अथवा दाँत पुष्ट हों, तो उन्हीसे चबा लेना चाहिये ॥ ५ ॥ अपने खाने-पीनेकी सब सामग्री अपने ही हाथों खोज लाना चाहिये।

देश, काल और शक्तिको विशेष रूपसे जाननेवाले मुनिको चाहिये कि कालान्तरमें लायेहुए पदार्थको कालान्तरमें दूसरेसे न ले। तात्पर्य यह है कि–नित्यप्रति खानेभरको ताजे कन्द-मूल-फल लाना चाहिये; बासी खाना मना है ॥ ६ ॥ समयानुसार मिलेहुए वनके फलोंसे ही देवता और पितरोंके लिये चरु, पुरोडाश आदि निकालने चाहिये। किन्तु वेदविहित पशु-बलिसे मेरा यजन करना वानप्रस्थके लिये मना है ॥ ७ ॥ हाँ, वेदवादी ऋषियोंकी आज्ञानुसार पहलेहीकी भाँति चातुर्मास्य, दर्श पौर्णमास और अग्निहोत्रका करना उसकेलिये आवश्यक है ॥ ८ ॥ इसप्रकार घोर तप करनेके कारण मांस सूख जानेसे जिसके शरीरमें शिराजाल (नसोंका जाल) केवल रह जाता है वह मुनि यदि शुद्ध अन्तःकरणसे अर्थात् निष्काम होकर भक्तिपूर्वक मुझे भजता है तो यहीं मुक्त होजाता है, और यदि बहुतसी विघ्न-बाधाएँ होती हैं अर्थात् विषय-वासनाएँ निर्मूल नहीं होतीं, तो भी मुझ तपोमयकी आराधनाके बलसे महर्लोक आदि ऋषियोंके लोकोंको जाता है, और फिर समयानुसार वहाँसे मुझमें मिल जाता है ॥ ९ ॥ जो कोई इतने कष्टसे कियेगये इस मोक्षफलदायक तपको अत्यन्त तुच्छ (ब्रह्मलोकसे लेकर स्वर्गतक सब अनित्य होनेके कारण तुच्छ ही हैं) उद्देश्यमें लगावे तो उससे बढ़कर और कौन मूर्ख होगा? ॥ १० ॥ जिसे वैराग्य न हो वह, जब जराजर्जर होनेके कारण शिर और शरीर हिलनेलगे और नियमपालनकी शक्ति न रहे तब अग्नियोंको अपनेमें आरोपित करके मुझमें मन लगायेहुए अग्निमें प्रवेश कर जाय, अथवा उसी आरोपित अग्निको (शरीरसे) प्रकटकर शरीरको जला दे ॥ ११ ॥ और जो कोई धर्मके फलस्वरूप इन निरयसम असत् लोकोंको परिणाममें दुःखदायक देखकर भलीभाँति विरक्त हो उठे उस वानप्रस्थको चाहिये कि (७५ वर्षकी अवस्था हो चुकनेपर) आहवनीय अग्नियोंको अपनेमें लीन कर संन्यास-ग्रहण करले ॥ १२ ॥ ऐसे विरक्त वानप्रस्थको चाहिये कि पहले वेदके उपदेशानुसार अष्टकाश्राद्ध और प्राजापत्य यज्ञसे मेरा पूजनयजन करे, फिर सर्वस्व ऋत्विक्को देकर अग्नियोंको अपनेमें स्थापित कर संन्यास आश्रममें गमन करे ॥ १३ ॥ 'यह हमको नाँघकर ब्रह्मको प्राप्त होगा'–ऐसा सोचकर स्त्री आदिके रूपसे देवतालोग ब्राह्मणके संन्यास लेतेसमय विघ्न डालनेकी चेष्टा करते हैं; इसलिये सब विघ्नोंके हटानेमें सतर्क रहकर अवश्य संन्यास लेना उचित है ॥ १४ ॥ संन्यासीको केवल एक लँगोटी पहनना चाहिये, और यदि ऊपरसे कुछ ओढ़ना चाहे तो केवल उतना ही वस्त्र ओढ़े जिससे नीचेका शरीर ढका रहे। संन्यासीको आपत्कालके अतिरिक्त सर्वदा केवल दण्ड कमण्डलु पास रखना चाहिये, और कुछ भी नहीं। क्योंकि वह संन्यास लेतेसमय सर्वत्याग कर चुकता है ॥ १५ ॥ पहले जीव जन्तुओंको देखकर तब पृथ्वीपर पैर रखना चाहिये

और वस्त्रमें छानकर जल पीना चाहिये। सत्य वाक्य कहना चाहिये और भली-भाँति विचार कर काम करना चाहिये ॥ १६ ॥ मौनरूप वाणीका दण्ड अर्थात् दमन और अनीहा(कामकर्मत्याग)रूप शरीरका दण्ड एवं प्राणायामरूप मनका दण्ड—ये तीनो दण्ड होनेसे ही वह त्रिदण्डी कहलाता है। हे उद्धव ! दिखावेके लिये केवल बाँसके तीन दण्ड लिये रहनेसे यति नहीं होता ॥ १७ ॥ संन्यासीको चारो वर्णोंमें भिक्षा करनेका अधिकार है, किन्तु पतित हत्यारे और जातिच्युत लोगोंके यहाँ भिक्षा करना निषिद्ध है। संन्यासीको सबेरे बस्तीके बीच जाकर अनिश्चित सात घरोंमें भिक्षा माँगना, और उनमें जो कुछ मिले उतनेहीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये ॥ १८ ॥ भिक्षा कर चुकनेपर गाँवके बाहर एकान्तमें किसी जलाशयके किनारे जाकर, पहले उस स्थानको जल छिड़ककर पवित्र करना चाहिये, और फिर अपने हाथ पैर धोकर कुल्ला करके चुपचाप सब अन्न खा लेना चाहिये, अर्थात् और समयके लिये बचाकर न रखना चाहिये। भोजन करनेके अवसरपर यदि कोई आकर भोजन माँगे तो उसे बाँटकर भोजन करना उचित है ॥ १९ ॥ संन्यासीको एक स्थानपर न रहना चाहिये। सङ्गहीन, जितेन्द्रिय, आत्माराम, आत्मलीन, धीर और समदर्शी होकर अकेले इच्छानुसार पृथ्वीपर्यटन करते रहना चाहिये ॥ २० ॥ संन्यासी मुनिको चाहिये कि निर्जन व निर्भय स्थानमें बैठकर मेरी विशुद्ध भक्तिसे निर्मल हो रहे हृदयमें मुझे अपने (आत्मा) से अभिन्न देखे और विचारे ॥ २१ ॥ संन्यासीको सर्वदा ज्ञाननिष्ठ रहकर इसप्रकार आत्माके बन्धन और मोक्षका विचार रखना चाहिये कि इन्द्रियोंके चञ्चल होनेहीसे आत्माका बन्धन है और इन्द्रियोंके वशमें होनेहीसे मोक्ष है ॥ २२ ॥ इसलिये मुनिको, मेरी भक्तिके द्वारा मन-सहित छः इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीत कर, इच्छानुसार विचरना चाहिये। सब क्षुद्र कामनाओंसे विरक्त होकर आत्मचिन्तनमें परमानन्दका अनुभव करना चाहिये ॥ २३ ॥ भिक्षाके लिये केवल नगर, ग्राम, व्रज और यात्री जनोंके बीच जाना चाहिये, और फिर पृथ्वीमण्डलके पवित्र देश, पर्वत, नदी, वन और आश्रमोंमें घूमना चाहिये ॥२४॥ संन्यासीको प्रायः वानप्रस्थ लोगोंके ही आश्रमोंमें भिक्षा माँगनी चाहिये, क्यों कि उनके शिलोंच्छ वृत्तिसे प्राप्त अन्नके खानेसे अन्तःकरण शुद्ध रहता है और फिर शीघ्र ही माया-मोह मिटनेके कारण वह जीवन्मुक्त सिद्ध होजाता है ॥ २५ ॥ (यदि कोई कहे कि मिष्टान्न आदि छोड़कर रूखे-सूखे शिलोंच्छ-वृत्ति-संचित अन्नके खानेमें प्रवृत्ति क्यों होनेलगी ? तो इसीके लिये कहते हैं कि—) ये जो संसारके विषय-सुख देख पड़ते हैं सो सब अनित्य हैं, इसकारण इनको तुच्छ समझना चाहिये, और परलोकके लिये जो विहित काम्य कर्म हैं उनसे निवृत्त होना एवं अनन्य-भावसे मुझे भजना चाहिये ॥ २६ ॥ अन्तःकरण, वाणी और प्राणसहित इस

ममताके घर जगत्को, अहंकारके घर शरीरको और शरीरसम्बन्धी परिवार तथा सुखको, आत्मामें मायामात्र, अतएव स्वप्नके समान मिथ्या, समझकर छोड़ दे। फिर स्वस्थ अर्थात् मुझ आत्मारूप ईश्वरके ध्यानमें मग्न होकर उक्त संसार-प्रपंचकी चिन्ता भी न करे ॥ २७ ॥ मोक्षकी इच्छासे जिसकी निष्ठा ज्ञानसञ्चयमें हो अथवा मोक्षके लिये भी निरपेक्ष रहकर जो मेरी भक्ति करता हो, दोनो प्रकारके साधकोंको चाहिये चिन्हसहित आश्रमोंको त्याग दें और वेदविहित विधि-निषेधके बन्धनसे छूटकर निरपेक्षभावसे शारीरिक कर्म करते रहें ॥ २८ ॥ अर्थात् विवेकी होकर भी बालकोंकी भाँति खेलें और निपुण होकर भी जड़ोंकी भाँति घूमें। विद्वान् होकर भी उन्मत्तोंकीसी बातें करें और वेदके भावार्थको भलीभाँति जानने और माननेपर भी गऊ आदि पशुओंकी भाँति आचारका विचार न करें ॥ २९ ॥ कर्मकाण्ड आदि वेदवादमें निरत न हों, पाखण्ड अर्थात् श्रुति-स्मृतिके विरुद्ध कार्य न करें, केवल तर्कमें ही न लगे रहें और वेप्रयोजन वादविवाद न करें एवं वादविवादमें किसीका पक्ष भी न लें ॥ ३० ॥ धीर पुरुषको लोगोंसे उद्विग्न न होना चाहिये और अन्य लोगोंको उद्विग्न भी न करना चाहिये। कोई कटु वचन कहे तो सुन लेना चाहिये तथा किसीका अनादर या अपमान न करना चाहिये ॥ ३१ ॥ पशुओंकी भाँति इस शरीरसे लिये किसीसे वैर न करना चाहिये। समझना चाहिये कि वही एक परमात्मा सब प्राणियोंमें और अपनेमें भी अवस्थित है। जैसे एक ही चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब अनेक जलपात्रोंमें देख पड़ते हैं, वैसेही सब प्राणियोंका आत्मा वही एक परमात्मा है ॥ ३२ ॥ किसी किसी समय आहार न मिलनेसे विषाद न करना चाहिये और आहार मिलनेपर प्रसन्न न होना चाहिये, क्योंकि दोनो ही बातें दैवके अधीन हैं। और यदि आहारके विना शरीर अशक्त होता देख पड़े तो केवल आहार (पेट भरने)के लिये चेष्टा भी करनी चाहिये, अर्थात् भिक्षासे पेट भरना चाहिये। क्योंकि प्राण रहेंगे अथवा शरीर शिथिल न होगा तभी तो वह तत्त्वका विचार कर सकेगा और तत्त्व जाननेसे मुक्ति मिलेगी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ परमहंस मुनिको अच्छा बुरा जैसा अन्न मिले वैसा खा लेना, जैसा कपड़ा मिले वैसा पहन लेना और जैसी शय्या (या पृथ्वी) सोनेको मिले उसपर पड़ रहना चाहिये ॥ ३५ ॥ ज्ञाननिष्ठ पुरुष विहित-विधिके बन्धनमें न रहकर मुझ ईश्वरकी भाँति लीलापूर्वक शौच, आचमन, स्नान आदि अन्यान्य कर्म करता रहे ॥ ३६ ॥ ऐसोंके भेद-भाव नहीं रहता, जो होता है वह भी तत्त्वज्ञानसे मिट जाता है। जबतक पूर्वसंस्कारवश स्थूल शरीर रहता है तबतक कभी कभी कुछ कुछ भेदभाव भासित भी होता है, परन्तु देह छूटनेपर वह मुझमें मिल जाता है। (यहाँतक तो, विरक्त तत्त्वज्ञानीके लिये संन्यासधर्म कहे; अब, विरक्त जिज्ञासुके लिये क्या कर्तव्य है?-

सो कहते हैं)—जो बुद्धिमान् पुरुष दुःखदायक परिणामवाले अनित्य विषयोंसे विरक्त होगया है, किन्तु भागवतधर्मको नहीं जानता, उसे चाहिये कि किसी ज्ञानी मुनिको गुरु मानकर उसका आश्रय ले। जबतक ब्रह्मज्ञान न हो, तबतक मेरी ही भावना रखकर आदरपूर्वक भक्ति और श्रद्धासे गुरुकी सेवा करे। कभी गुरुकी किसी बातका बुरा न माने ॥ ३७–३९ ॥ जिसने काम-क्रोध-रूप छः शत्रुओंके दलको नहीं शान्त किया और प्रचण्ड इन्द्रियरूप घोड़े जिसके बुद्धिरूप सारथीको इधरउधर घसीटते फिरते हैं, जिसके हृदयमें ज्ञान विज्ञानका लेश नहीं है ऐसा जो मनुष्य केवल जीविकाके लिये दण्ड कमण्डलु लेकर संन्यासीके वेषसे पेट पालता फिरता है वह धर्मघातक है। उसका मनोरथ पूर्ण नहीं होता। वह देवतोंको, अपनेको और अपनेमें स्थित मुझको ठगता है, इसीसे वह अशुद्धहृदय दम्भी दोनो लोकोंसे भ्रष्ट होजाता है, कहींका नहीं रहता ॥४०॥ ॥ ४१ ॥ शान्ति और अहिंसा संन्यासीका मुख्य धर्म है, ईश्वरचिन्तन और तप वानप्रस्थका मुख्य धर्म है, प्राणियोंका पालन और पूजन गृहस्थका मुख्य धर्म है और गुरुकी सेवा करना ब्रह्मचारीका परम धर्म है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य (वीर्यको रोकना. इन्द्रियोंके वेगको सँभालना), तप (मेरा ध्यान), शौच, सन्तोष, सब प्राणियोंसे प्रेम और ऋतु-समयमें वंश बढ़ानेके विचारसे स्त्रीसङ्ग करना, ये गृहस्थके लिये भी आवश्यक धर्म हैं। मेरी उपासना करना या मुझे भजना-प्राणिमात्रका धर्म है ॥ ४३ ॥ अनन्य भावसे इसप्रकार अपने धर्मके द्वारा जो कोई मुझे भजता है और सर्वत्र सबमें मुझे देखता है वह शीघ्रही मेरी विशुद्ध भक्तिरूप मुक्ति-शक्तिको प्राप्त होकर कृतार्थ हो जाता है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव! सुदृढ़ भक्तिके द्वारा वह सब लोकोंके महान् ईश्वर और सबकी उत्पत्ति स्थिति और नाशके आदिकारण मुझ वैकुण्ठवासी ब्रह्ममें मिल जाता है। इसप्रकार स्वधर्मपालनसे जिसका सत्त्व अर्थात् आत्मा शुद्ध होगया है और जो मेरी गतिको जान गया है वह ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न विरक्त पुरुष मुझको प्राप्त होता है ॥४५॥ ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमाचारी लोगोंका यही धर्म है, यही आचार है, यही लक्षण है। साधारणतः इसका पालन करनेसे पितृलोक प्राप्त होते हैं और मेरी अनन्य भक्तिके साथ इन्हीके करनेसे परम मुक्ति मिलती है ॥ ४७ ॥

एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् ॥
यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥ ४८ ॥

साधु उद्धव! जिसप्रकार स्वधर्मसंयुक्त मेरा भक्त मुझ परमेश्वरको प्राप्त होता है सो सब यह मैंने तुम्हारे प्रश्नके अनुसार तुमको सुना दिया ॥ ४८ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय

गुण-दोषकी व्यवस्थाके लिये यम आदिका निर्णय

श्रीभगवानुवाच—यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव ! जो व्यक्ति अनुभवपर्यन्त शास्त्रसे सम्पन्न होकर आत्मतत्त्वको पा गया है, अतएव केवल अनुमानकृत परोक्ष-ज्ञान-शाली नहीं है, वह, "यह द्वैत प्रपञ्च और इस द्वैतकी निवृत्तिका साधन मुझमें माया-मात्र है"—ऐसा जानकर ज्ञानको और ज्ञानके साधनको मुझमें स्थापित करे ॥ १ ॥ मैं ही ज्ञानीका अभिमत और अपेक्षित स्वार्थ, उस स्वार्थका हेतु अर्थात् साधन, स्वर्ग (अभ्युदय) और अपवर्ग अर्थात् मुक्ति हूँ। मेरे सिवा उसको और कुछ भी प्रिय नहीं है ॥ २ ॥ ज्ञान और विज्ञानसे भलीभाँति सिद्ध पुरुष मेरे श्रेष्ठ पदको जानते हैं। ज्ञानी लोग मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, क्यों कि वे ज्ञानके द्वारा मुझे हृदयमें रखते हैं ॥ ३ ॥ पूर्ण ज्ञानके लेशमात्रसे जैसी शुद्धि होती है वैसी संपूर्ण शुद्धि, तप तीर्थसेवा जप दान एवं अन्यान्य पवित्र कर्मोंसे नहीं होती। इसकारण हे उद्धव, जितना तुममें ज्ञान हो उसीके अनुसार मुझ अपने आत्माको जानकर, ज्ञानविज्ञानसे सम्पन्न तुम, भक्तिभावसे केवल मुझको भजो और सब तजो ॥ ४ ॥ ५ ॥ मुनिलोग सब यज्ञोंके पति मुझ आत्माकी, ज्ञान-विज्ञान-मय यज्ञके द्वारा, आत्मामें आराधना कर पूर्णसिद्धिस्वरूप मुझ ब्रह्मको प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धव ! आध्यात्मिक आदि तीन प्रकारके विकारोंकी समष्टि शरीर जो 'तुम'में आश्रित है सो मायामात्र मिथ्या है। क्योंकि केवल मध्यमेंही उपस्थित रहता है, आदि और अन्तमें नहीं होता। अतएव ये जन्मादिक धर्म शरीरके हैं, तुम्हारे नहीं हैं, क्योंकि तुम तो उसका अधिष्ठानमात्र हो। असत् वस्तुके आदि, अन्तमें जो होता है, वही मध्यमें भी होता है, इस न्यायसे तुम निर्विकार ब्रह्म हो ॥७॥ **उद्धवने पूछा**—हे विश्वमूर्ति ! यह ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न सनातन विशुद्ध ज्ञान मुझे स्पष्ट करके समझाइये, जिससे निश्चित हो जाय। और हे विश्वेश्वर ! ब्रह्मादि महत् लोग जिसे खोजते रहते हैं वह निज-भक्ति-योग भी कृपा करके कहिये ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! घोर संसारमार्गमें जो व्यक्ति त्रिविध तापसे व्यथित, पीड़ित और सन्तप्त हो रहा है उसके लिये शान्ति देनेवाला, सिवा आपके चरणरूप अमृतकी वर्षा-करनेवाले छत्रके, और कोई मुझे नहीं देख पड़ता ॥९॥ हे महानुभाव ! संसाररूप अन्धकूपमें पड़े और कालसर्पके डसे एवं क्षुद्र सुखोंकी भारी तृष्णासे पीड़ित इस-जनपर परम अनुग्रह करके इसका उद्धार करिये और मोक्षबोधक वाक्य-सुधाकी वर्षासे शान्ति दीजिये ॥ १० ॥ **श्रीभगवान्‌ने कहा**—हे उद्धव ! राजा युधि-

ष्ठिरने भी पहले श्रेष्ठ धार्मिक भीष्म पितामहसे हम सब लोगोंके आगे यही पूछा था ॥ ११ ॥ भारतयुद्ध निवृत्त होनेपर बन्धुविनाशसे व्याकुल युधिष्ठिरने शर-शय्याशायी भीष्मके निकट और और बहुतसे धर्म सुन चुकनेपर इसीप्रकार मोक्षसाधक धर्मोंको पूछा था ॥ १२ ॥ भीष्मके मुखसे विद्वानोंकी भरी सभामें कहे और सुनेगये वे ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा और भक्तिसे परिवर्धित मोक्ष-धर्म मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १३ ॥ जिससे ब्रह्मादि-स्थावरपर्यन्त सब प्राणियोंमें प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तन्मात्रा, मन-सहित ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच तत्त्व और तीनो गुण—ये अट्ठइसो तत्त्व प्रत्यक्ष अनुगत जान पड़ें एवं इन तत्त्वोंमें एक आत्मतत्त्वका अनुभव किया जाय वही मुझ सत् ब्रह्मका निश्चित 'ज्ञान' है ॥ १४ ॥ और जब जिससे एकके अनुगत अनेक भावोंको न देखकर केवल उसी एक परमकारण "ब्रह्म"को देखता है वही "विज्ञान" है। त्रिगुणात्मक सब साव-यव भावोंकी स्थिति, उत्पत्ति और नाशके विचारनेपर जो आदि, अन्त और मध्यमें परम्पराक्रमसे एक कार्यसे दूसरे कार्यमें अनुगत देखपड़े और उन कार्योंके प्रलयमें अवशिष्ट रह जाय वही "ब्रह्म" सत् है ॥ १५ ॥ १६ ॥ वेद, प्रत्यक्ष, अनुभवी महान् लोगोंका 'यह है'–ऐसा मत, और अनुमान—ये चार प्रमाण हैं। पुरुष इन प्रमाणोंसे सबमें अनुगत सत्य आत्मतत्त्वके बोधको प्राप्त होकर विकल्पसे विरक्त होता है ॥ १७ ॥ सब कर्म विकारयुक्त अर्थात् नश्वर हैं, अतएव उन्ही कर्मोंके ब्रह्मलोकपर्यन्त सब फल भी परमश्रेय नहीं हैं, क्योंकि अनित्य हैं। ब्रह्म-लोकपर्यन्त सब लोकोंके अदृष्ट सुखको भी दृष्ट सुखकी भाँति क्षणभङ्गुर और इसीसे दुःखरूप देखना हरएक विवेकीका कर्तव्य है ॥ १८ ॥ हे निष्पाप! मैं तुमसे पहलेही भक्तियोग कह चुका हूँ, परन्तु फिर प्रीतिपूर्वक श्रद्धासे तुम उसे सुनना चाहते हो, इसलिये अब मैं फिर अपनी भक्तिके कारणरूप साधनको विशेष रूपसे कहता हूँ ॥ १९ ॥ मेरी मुक्तिदायिनी सुधासमान मधुर कथा सुन-नेमें श्रद्धा, मेरी कीर्तिका कीर्तन, मेरी पूजामें पूर्ण निष्ठा, प्रशंसास्तोत्रोंसे मेरी स्तुति, आदरसहित मेरी सेवा, दण्डप्रणाम तथा मेरे भक्तोंकी विशेष रूपसे पूजा करना एवं सब प्राणियोंमें मुझे देखना, सब साधारण कार्य भी मेरे उद्देशसे करना, साधारण बातचीतमें भी मेरे गुणोंहीकी चर्चा करते रहना, सर्वतोभावसे मुझमें मन लगाना, सब कामनाओंको छोड़देना, मेरेलिये अन्य 'मेरे भजनके विरोधी' प्रयोजन भोग और सुखोंको तजना एवं मेरी ही प्रसन्नताके लिये वेदविहित कर्म, यज्ञ, दान, होम, जप, तप और व्रत करना—येही धर्मकर्म मेरी प्रेमरूपिणी भक्तिके साधन हैं। हे उद्धव! आत्मसमर्पणपूर्वक उक्त धर्मोंसे मेरी आराधना करनेमें मनुष्योंको मेरी प्रेमरूपिणी भक्ति प्राप्त होती है और वे पूर्ण-काम हो जाते हैं ॥ २०–२४ ॥ जब इसप्रकार शान्त और सत्त्वपूर्ण चित्त

आत्मामें अर्पित होता है तब स्वयं धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ एवं जब वही चित्त विकल्पवासनामें लिप्त होकर इन्द्रियोंके पीछे इधर-उधर विषयोंमें दौड़ता रहता है तब अधिक मलिन और असत् निष्ठासे दूषित होता है; यही धर्मका विपर्यय अर्थात् अधर्म है ॥ २६ ॥ जिससे मेरी भक्ति हो वही 'धर्म' है। सबमें एकमात्र आत्माको देखना 'ज्ञान' है। विषयोंके सङ्गको छोड़ देना 'वैराग्य' है और अणिमा आदि सिद्धियोंको 'ऐश्वर्य' समझना चाहिये ॥ २७ ॥ उद्धवने पूछा—हे शत्रुनाशन! यम कितने प्रकारके होते हैं? और नियम कौन कौन हैं? हे कृष्ण! हे प्रभो! शम, दम, धैर्य और तितिक्षा किसको कहते हैं? ॥ २८ ॥ दान, तप और शूरता किसे कहते हैं? सत्य एवं ऋत किसे कहते हैं? त्याग क्या है? इष्ट अर्थात् प्रशंसनीय उत्तम धन कौन है? यज्ञ और दक्षिणा किसे कहते हैं? ॥ २९ ॥ हे श्रीयुक्त केशव! पुरुषका बल क्या है? भग अर्थात् श्रेष्ठ ऐश्वर्य क्या है? लाभ क्या है? परम विद्या, ह्री (लज्जा) और श्री क्या है? सुख और दुःख क्या है? ॥ ३० ॥ पण्डित कौन है? मूर्ख कौन है? मार्ग क्या है? कुमार्ग क्या है? स्वर्ग क्या है? नरक क्या है? बन्धु कौन है? गृह क्या है? ॥ ३१ ॥ आढ्य अर्थात् सम्पन्न कौन है? दरिद्र कौन है? कृपण अर्थात् शोचनीय कौन है? ईश्वर अर्थात् स्वतन्त्र या समर्थ कौन है? हे सज्जनोंके स्वामी! मेरे इन प्रश्नोंकी व्याख्या करिये और इन शम आदिके विपरीत अशम आदिके लक्षण भी बताइये ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! प्रवृत्ति और निवृत्ति-दोनो मार्गोंको ग्रहण करनेवाले लोगोंके लिये बारह यम और बारह नियम कहे गये हैं। जैसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना और दूसरेकी वस्तुपर चित्त भी न चलाना), असङ्ग, ह्री (बुरे कर्ममें लज्जा या घृणा) असञ्चय, आस्तिक्य (धर्ममें विश्वास), ब्रह्मचर्य, मौन (वृथा बात न करना), स्थिरता (धैर्य), क्षमा और भय (अर्थात् अधर्मसे डरना)-ये बारह यम हैं। शौच, (भीतर हृदयकी शुद्धि और बाहर शरीरकी शुद्धि), जप, तप, हवन, श्रद्धा (धर्ममें निष्ठा या आदर), अतिथिसेवा, मेरी पूजा, तीर्थपर्यटन, परोपकार, सन्तोष, और आचार्य (गुरु) की सेवा—ये बारह नियम हैं। हे तात! इनका पालन करनेसे मनुष्योंको वाञ्छित फल प्राप्त होते हैं ॥ ३३-३५ ॥ केवल शान्ति नहीं, बरन् मुझमें बुद्धिकी निष्ठा ही शम है। चोर आदि दुष्टोंका दमन नहीं, बरन् इन्द्रियोंका संयम ही दम है। भार आदि सहना नहीं, बरन् प्राप्त दुःखका सहना ही तितिक्षा है। उद्विग्न न होना ही नहीं, बरन् जिह्वा और उपस्थ इन्द्रियको रोकना या वशमें रखना ही धैर्य है ॥ ३६ ॥ किसीको धन देना ही नहीं, बरन् प्राणियोंको पीड़ा न पहुँचाना ही परम दान है। पंचाग्नि तापना आदि ही नहीं, बरन् भोगकामनाका त्याग ही परम-

तप है। विक्रम दिखाना नहीं, वरन् स्वभाव अर्थात् वासनाको रोकना ही शूरता है। यथार्थ बोलनाही नहीं, वरन् सत् ब्रह्मकी आलोचना या समदृष्टि ही सत्य है ॥ ३७ ॥ प्रिय और मीठी वाणीको विवेकी प्रवीण लोगोंने ऋत बताया है। केवल स्नान आदिही नहीं, वरन् कर्मोंमें आसक्त न होना ही शौच है। कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास ही त्याग है ॥ ३८ ॥ सम्पत्ति नहीं, वरन् धर्मही मनुष्योंका इष्ट अर्थात् प्रशंसनीय धन है। कर्मबुद्धिसे देवयजन करना नहीं, वरन् मेरी आराधनाके उद्देशसे यज्ञ करना ही यज्ञ है; क्योंकि साक्षात् मैं परमेश्वर ही यज्ञ–पुरुप हूँ। धन आदि देना नहीं, वरन् ज्ञानशिक्षा ही दक्षिणा है; क्योंकि ज्ञानसेही यज्ञरूप विष्णु मैं मिलता हूँ। शारीरिक बल नहीं, वरन् दुर्दमनीय मनका दमन करनेवाला प्राणायाम ही परम बल है ॥ ३९ ॥ लौकिक ऐश्वर्य नहीं, वरन् मेरा छः प्रकारका अलौकिक ऐश्वर्य ही भग (या भाग्य) है। पुत्र आदि मिलना नहीं, वरन् मेरी भक्ति मिलना ही परम लाभ है। पुस्तकें पढ़कर प्राप्त ज्ञान ही नहीं, वरन् आत्मा व परमात्मामें भेदभाव भासित करानेवाली मायाको समझना और जानना अर्थात् आत्मज्ञान ही विद्या है। केवल लज्जा ही नहीं, वरन् न करनेयोग्य कामोंमें हेय बुद्धि होनाही ह्री है ॥ ४० ॥ किरीट–कुण्डल आदि आभूषणोंको नहीं, वरन् निरपेक्षता आदि गुणोंको श्री (शोभा) कहते हैं। ऐश्वर्यभोग नहीं, वरन् सुख और दुःख दोनोका अनुसन्धान न करनाही परम सुख है। लौकिक पुत्रवियोगादि नहीं, वरन् विपयसुखकी अपेक्षाही परम दुःख है। पढ़ा लिखा नहीं, वरन् आत्माके बन्धन और मोक्ष–दोनोको जाननेवाला ही पण्डित है। अपढ़ नहीं, वरन् देह–गेहादि पदार्थोंमें "मैं हूँ–मेरा है"–ऐसी बुद्धि रखनेवाला ही मूर्ख है। मुझतक पहुँचानेवाला निवृत्तिमार्गही श्रेष्ठ मार्ग है। चित्तको व्यस्त करनेवाला प्रवृत्तिमार्गही कुमार्ग है। इन्द्रलोक नहीं, वरन् चित्तमें सत्त्वगुणका उदय होना ही स्वर्ग है। रौरव, कुंभीपाक आदि नहीं, वरन् तमोगुणकी वृद्धिही नरक है। हे सखा उद्धव! भाई आदि नहीं, वरन् गुरुही बन्धु है, और वह जगद्गुरु मैं हूँ। मनुष्यशरीर ही गृह है और धनाढ्य नहीं, वरन् गुणाढ्यही आढ्य है ॥ ४१–४३ ॥ निर्धन नहीं, वरन् असन्तुष्ट ही दरिद्र है। दीन दुःखी नहीं, वरन् अजितेन्द्रिय ही कृपण अर्थात् शोचनीय है। राजा आदि नहीं, वरन् मायाके विकारोंमें निर्लिप्त या अनासक्त पुरुपही ईश्वर (समर्थ या स्वतंत्र) है और मायाके विकारोंमें आसक्त पुरुपही परतन्त्र है ॥ ४४ ॥

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥
किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥

हे उद्धव! मैंने तुम्हारे इन सब प्रश्नोंका निरूपण भलीभाँति कर दिया। इन शम आदिके उक्त लक्षणोंके विपरीत लक्षणोंसे अशम आदि विपरीत भावोंको समझना। गुण और दोषके लक्षणोंको और अधिक बतानेकी आवश्यकता नहीं है, इतनेहीमें समझ लेना कि गुण–दोषका देखनाही दोष है और गुणदोष–दृष्टिका त्यागही गुण है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय

भक्तियोग, ज्ञानयोग और क्रियायोग

उद्धव उवाच–विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥
अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे कमललोचन! वेद आपकी आज्ञा है, वह वेद भी विधि-निषेध-बोधक है और करनेयोग्य तथा न करनेयोग्य कर्मोंके गुण(पुण्य)और दोष(पाप)को देखता या बताता है ॥१॥ उत्तमाधम भावसे वर्णों और आश्रमोंका भेद भी गुण और दोषके अनुरूप है। प्रतिलोम नीच (वर्णके पुरुषसे उच्च वर्णकी स्त्रीमें उत्पन्न सूत आदि) और अनुलोम (उत्तम वर्णके पुरुषसे नीच वर्णकी स्त्रीमें उत्पन्न रजपूत आदि) जातियाँ भी गुण-दोष की अपेक्षा करती हैं। द्रव्य, देश, काल और अवस्थाएँ भी गुण दोषके अनुसार उत्तम या अधम होती हैं। ऐसेही स्वर्ग और नरकभी गुण-दोषकी अपेक्षा करते हैं ॥ २ ॥ गुण-दोष-भेदयुक्त दृष्टिके बिना विधि-निषेधरूप आपका वाक्य वेद कैसे सम्भवपर होसकता है! और बिना गुणका ग्रहण और दोषका त्याग किये मनुष्योंकी मुक्ति ही कैसे होसकती है? ॥ ॥ ३ ॥ आपका वचन वेदही पितृगण, देवता और मनुष्योंका श्रेष्ठ चक्षु है। अनुपलब्ध विषय जो स्वर्ग, अपवर्ग आदि हैं उनकी उपलब्धि वेदहीसे होती है। साध्य विषय और उनके साधन भी वेदरूप नेत्रसे देखे जाते हैं ॥ ४ ॥ स्वयं नहीं, किन्तु आपकी आज्ञा वेदसेही गुण-दोष दिखानेवाली भेददृष्टि प्राप्त होती है और आपही भेददृष्टिको दोष बताकर उसका निराकरण कररहे हैं। इससे मुझे भ्रम होता है, कृपापूर्वक इस मेरे भ्रमको दूर करिये ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! मनुष्योंके लिये मोक्ष प्राप्त करनेके तीन योग अर्थात् उपाय मैंने कहे हैं–ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इनके सिवा मोक्ष मिलनेका चौथा उपाय और कहीं नहीं है ॥ ६ ॥ कर्मोंके फलोंको दुःखरूप जानकर उनसे विरक्त और इसी कारण कर्मोंका त्याग करनेवाले निष्काम जनोंके लिये ज्ञानयोग सिद्धिदायक है। और

जो लोग कर्मोंके फलोंको सुखरूप समझकर उनसे विरक्त नहीं हुए हैं, और इसीकारण सकाम हैं, उन लोगोंके लिये कर्मयोग सिद्धिदायक है ॥ ७ ॥ इनके अतिरिक्त, अकस्मात् किसी भाग्यके उदयसे जिसे मेरी कथा आदिके कहने-सुननेमें श्रद्धा हो जाती है और जो कर्मोंके फलोंमें न अत्यन्त आसक्त है, न अत्यन्त विरक्त हैं, उन उदासीन जनके लिये भक्तियोग सिद्धिदायक है ॥ ८ ॥ जबतक कर्मफलके प्रति विरक्ति न हो, अथवा जबतक मेरी कथा कहने–सुननेकी श्रद्धा न उत्पन्न हो, तबतक कर्मोंको अवश्य करना चाहिये ॥ ९ ॥ हे उद्धव! यदि फलकी अभिलाषा न कर स्वधर्मपालनपूर्वक समग्र यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करता रहे और निषिद्ध कर्म न करे तो न स्वर्गको जाता है और न नरकको जाता है। ऐसा स्वधर्ममें स्थित और निषिद्धत्यागी पवित्रहृदय पुरुष इसी लोक (मनुष्य-शरीर) में रहकर विशुद्ध आत्मज्ञानको अथवा किसी भाग्योदयसे मेरी भक्तिको पाता है ॥ १० ॥ ११ ॥ नरक (अधमयोनि)में पड़ेहुए लोगोंके समान स्वर्गवासी देवगण भी यह मनुष्यशरीर पानेकी अभिलाषा करते हैं, क्योंकि यही शरीर ज्ञान और भक्तिका साधक है; स्वर्गलोक या नरकके शरीरोंसे ज्ञान और भक्तिका साधन नहीं हो सकता ॥ १२ ॥ विवेकी व्यक्तिको चाहिये कि नरकगतिके समान स्वर्गगतिकी भी कामना न करे, और न फिर इस मनुष्य शरीरहीकी कामना करे, क्योंकि शरीरमें आसक्त होकर फिर स्वार्थसाधनमें असावधान हो जाता है ॥ १३ ॥ यह जानकर एवं इस शरीरको परमार्थका साधन होनेपर भी, अनित्य समझकर अनासक्त भावसे मृत्युसे पहलेही मुक्तिका प्रयत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥ जैसे अनासक्त पक्षी यमसदृश निर्दय पुरुषोंको अपने निवासस्थानका आधार वृक्ष कांटते देख उसे छोड़ अवश्यही क्षेमको प्राप्त होता है वैसेही दिन और रात्रियोंको अपनी आयु क्षीण करते देख भयकम्पित-हृदय पुरुष आसक्ति छोड़कर, परमेश्वरको जानकर, निश्चेष्ट होकर परम शान्तिको पाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ सब फलोंका मूल, अभागोंके लिये सुदुर्लभ और भाग्य-वानोंके लिये सुलभ, परमपटु, गुरुरूप-कर्णधारविशिष्ट एवं मुझ अनुकूल वायुरूप सहायकके द्वारा संचालित इस नौकारूप मनुष्य-शरीरको पाकर भी जो कोई संसारसागरके पार जानेका प्रयत्न न करके भोगविलासमें लिप्त रहे वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥ जब कर्मोंके आरम्भमें निर्वेद हो और कर्मफलोंमें विरक्ति हो तब योगीको चाहिये कि इन्द्रियसंयमपूर्वक आत्माके अभ्याससे स्थिर हुए मनको मुझ परमात्मामें लगावे ॥ १८ ॥ धारणाके समय यदि मन शीघ्रतापूर्वक विषयोंमें भ्रमता हुआ चंचल होनेलगे तो आलस्यहीन होकर अर्थात् आसक्तिसे बचकर मनोभिलषित विषयभोगके द्वारा किंचित् किंचित् वासनाओंको पूर्ण करता हुआ क्रमशः मनको वश करे अर्थात् लक्ष्यमें लगावे। मनकी गतिकी उपेक्षा न करे, किन्तु प्राणवायु और इन्द्रियोंको जीतकर सत्त्वसम्पन्न बुद्धिसे

धीरे धीरे अभ्यासपूर्वक मनको एकाग्र कर लक्ष्यसें लगावे ॥१९॥२०॥ जैसे सवार नवीन घोड़ेको वश करतेसमय कुछ दूरतक उसे इच्छानुसार जानेदेता है और फिर क्रमशः लगाम कसकर अपने वशसें करलेता है एवं चाहे जहाँ ले जाता है, वैसेही किंचित् अनुसरणके द्वारा क्रमशः मनको अपने वशसें लाना चाहिये। इस-प्रकार मनको एकाग्र करना ही परमयोग है ॥ २१ ॥ इसभाँति एकाग्र कियेहुए मनको, पूर्णतया निश्चलभावसे ईश्वरसें लगानेके लिये, जबतक निश्चल न हो तबतक तत्त्वविवेकके द्वारा महत्तत्त्वसे लेकर देहपर्यंत सब भावोंके अनुलोम क्रमसे भव (उत्पत्ति) और प्रतिलोम क्रमसे लयका चिन्तन या मनन करना चाहिये। इसक्रमसे क्रमशः मन निश्चल होजाता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार निर्वेद और वैराग्य होनेपर गुरुके बतायेहुए आत्मतत्त्वको आलोचनाके द्वारा जानकर उसी चिन्तित (गुरुके) उपदेशका वारंवार अनुचिन्तन अर्थात् मनन करनेसे मनुष्यका मन दौरात्म्य (देहादिके अभिमानसे उत्पन्न चंचलता) को छोड़कर निश्चल-शान्त हो जाता है ॥ २३ ॥ मनुष्यको चाहिये कि यम आदिक योगके मार्गोंसे या आन्वी-क्षिकी(वेदान्त)विद्यासे अथवा मेरे पूजन और उपासनासे शुद्धहुए चित्तके द्वारा परमेश्वरका चिन्तन करे। इन तीन मार्गोंके सिवा अन्य किसी मार्गसें मनको न बहँकाना चाहिये ॥ २४ ॥ यदि असावधानतावश कोई निन्दित निषिद्ध काम बन पड़े तो या योगीको योग ही (ज्ञानाभ्यास अथवा नामकीर्तन आदिही)से उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये—कृच्छ्र, चान्द्रायण व्रत-आदि अन्य प्रायश्चित्त कर्म कभी न करने चाहिये, क्योंकि अपने अपने अधिकारकी निष्ठा ही गुण है (और तद्विरुद्ध निष्ठा ही दोष है)। वेदमें साधारण अर्थात् कर्मा-धिकारी लोगोंके उद्देशसे सङ्ग छुड़ाने अर्थात् कर्मप्रवृत्तिकी निवृत्तिहीके लिये गुण-दोषका निरूपणकर स्वाभाविक अशुद्ध (मलिन)कर्मोंको संकुचित किया है। अर्थात् वेदमें गुण-दोष या कर्तव्याकर्तव्यके निरूपणका तात्पर्य यही है कि इसके द्वारा स्वभावतः मलिन या प्रवृत्तिनिष्ठ सर्वसाधारण जन क्रमशः राजस-तामस कर्मोंको छोड़कर हृदयशोधक सात्त्विक कर्म करतेहुए अन्तको सब प्रकारके कर्मोंसे निवृत्त हों, क्योंकि एकाएक सब कर्मोंसे निवृत्त नहीं हो सकती। इसीकारण स्वाभाविक प्रवृत्तिहीन योगीके लिये वेदविहित प्रायश्चित्तादि विधिका बन्धन नहीं है ॥२५॥२६॥ मेरी कथा-वार्तामें जिसको श्रद्धा होगई और सब कर्मोंसें निर्वेद होगया है वह सब भोगोंको दुःखदायक जान-कर भी यदि छोड़नेसें असमर्थ हो, तो दृढ़ निश्चय और श्रद्धासे पूर्ण होकर सब कर्मोंका भोग करताहुआ भी उनमें अनासक्त रहे और दुःखदायक मानकर उनको निन्दित या तुच्छ जानता हुआ प्रसन्न मनसे मेरा भजन करे। इसप्रकार सब कर्मोंसे विरक्त होकर पूर्वोक्त भक्तियोगसे निरन्तर भजनेवालेके हृदयमें

में विराजमान होता हूँ और क्रमशः उसके हृदयकी सब कामवासनाएँ नष्ट होजाती हैं। मुझ सर्वात्माका साक्षात्कार होनेसे उसके हृदयकी वासनामयी ग्रन्थि छिन्न होजाती है और सब संशय निवृत्त एवं सब कर्म निर्बीज होजाते हैं ॥ २७–३० ॥ इसलिये मेरी भक्तिसे युक्त और मुझमें आत्माको युक्त करनेवाले योगीके लिये ज्ञान और वैराग्य प्रायः श्रेयके साधन नहीं होते ॥ ३१ ॥ कर्मकाण्ड, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान एवं अन्यान्य श्रेयके साधनोंद्वारा जो जो सिद्ध होता है वह सब मेरे भक्तको भक्तियोगसे अनायास ही मिलजाता है, और यदि वह चाहे तो स्वर्ग, अपवर्ग और मेरे वैकुण्ठ धामको अवश्य ही पा सकता है ॥३२॥३३॥ किन्तु मुझमें अनन्य प्रेम रखनेवाले विवेकी साधु भक्तजन मेरे देने-पर भी अपुनर्भव कैवल्य मोक्षकी भी कभी कामना नहीं करते ॥३४॥ निरपेक्षता अर्थात् कामनात्याग ही महान् उत्कृष्ट निःश्रेयस फल और उसका साधन कहा गया है। इसलिये जो कामनाशून्य और निरपेक्ष है उसीको मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ बुद्धिरूप प्रकृतिसे अतीत होकर परमपार परमेश्वरको प्राप्त मेरे अनन्य भक्त और इसीसे रागद्वेषादिरहित–समदर्शी साधुजनोंको गुणदोपजनित पुण्य पाप नहीं होते ॥ ३६ ॥

एवमेतन्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मत्पथः ॥
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

हे उद्धव! जो लोग मेरे कहेहुए इन मेरे पानेके मार्गोंपर चलते हैं वे काल-मायादिसे रहित अकुतोभय क्षेममय मेरे परमपदको प्राप्त होते हैं और परब्रह्मको जानपाते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय

सकाम लोगोंके लिये द्रव्य देशआदिके गुण दोषोंका वर्णन

श्रीभगवानुवाच–य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥
क्षुद्रान्कामाँश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! जो लोग मेरे पानेके इन कर्म ज्ञान और भक्ति नामक तीनो मार्गोंको छोड़कर चंचल प्राणों या इन्द्रियोंके द्वारा क्षुद्र विषयोंका सेवन करते हैं, वे वारंवार अनेक योनियोंमें जन्मते मरते रहते हैं ॥१॥ अपने अपने अधिकारकी निष्ठा ही गुण है और विपर्यय ही दोष है। गुण और दोषका यह निश्चित

निर्णय है ॥२॥ हे उद्धव, विशेषरूपसे अन्तःकरणको शोधनेके लिये अर्थात् "यह योग्य है या अयोग्य ?"—इसप्रकारके संशयके द्वारा स्वाभाविक विषयप्रवृत्ति रोकनेके लिये वस्तुओंके एकसमान होनेपर भी उनके धर्माधर्मके निमित्त शुद्धि और अशुद्धि-लोकव्यवहारके लिये गुण और दोष एवं जीविकाके लिये शुभ और अशुभकी कल्पना की गई है। धर्मधुरन्धर अर्थात् ज्ञान अथवा भक्तिके अनधिकारी कर्मासक्त लोगोंके लिये मैंने ही मनुआदि भिन्न भिन्न रूपोंसे यह आचार दिखलाया है ॥३॥४॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत, ब्रह्मासे लेकर सामान्य स्थावरपर्यन्त सब प्राणियोंके शरीरोंकी धातुएँ या आरम्भक (उपादान) हैं ॥५॥ हे उद्धव! इन सब प्राणियोंकी स्वार्थसिद्धि (प्रवृत्तिनियमके द्वारा धर्मआदि पुरुषार्थोंकी सिद्धि)के लिये एकही उपादानसे गठित देहोंमें विविध नामों और रूपों-(वर्णाश्रमादि)की कल्पना की गई है ॥६॥ हे सत्तम! कर्मोंको संकुचित करनेके लिये मैंने देश, काल आदि भावों और वस्तुओंमें गुण-दोषका विधान किया है ॥ ७ ॥ देशोंमें कृष्णसारमृगहीन और उससे भी अधिक अब्रह्मण्य देश अपवित्र हैं, और सब पवित्र हैं। कृष्णसार मृगके द्वारा श्रेष्ठ होनेपर भी सत्पात्रविहिन कीकट देश और असंस्कृत म्लेच्छबहुल अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गादि देश एवं ऊसर भूमि अपवित्र है ॥ ८ ॥ द्रव्यसङ्गवश अथवा स्वभावतः कर्मयोग्य काल गुणवान् है और जिसमें कर्म नहीं किये जाते वह काल कर्म करनेके अयोग्य होनेके कारण दूषित अर्थात् अशुद्ध है ॥ ९ ॥ द्रव्य, वचन, संस्कार, काल और महत्त्व-अल्पत्वके परिमाणसे पदार्थोंकी शुद्धि या अशुद्धि होती है। जैसे पात्र आदि, जलसे शुद्ध और मूत्रसे अशुद्ध होते हैं, ब्राह्मणोंके वचनानुसार बहुतसे पदार्थोंकी शुद्धि या अशुद्धि मानी जाती है, फूलआदि जल छिड़कनेसे शुद्ध और सूँघ लेनेसे अशुद्ध होजाते हैं, दशाह आदिसे नवोदकादिकी शुद्धि होती है और बासी होजानेसे अन्न अशुद्ध होजाता है, बड़े तालाव शुद्ध समझे जाते हैं और छोटी गढ़ैया आदि (म्लेच्छ और अन्त्यजोंके स्नान आदिसे) अशुद्ध समझी जाती हैं। ये क्रमशः द्रव्य, वचन आदिके द्वारा पदार्थोंकी शुद्धि और अशुद्धिके उदाहरण हैं ॥ १० ॥ शक्ति और अशक्तिके अनुसार भी शुद्धि या अशुद्धि होती है। जैसे चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके समय अशक्त लोगोंके अन्नादि पदार्थ सूतकसे अशुद्ध नहीं होते और समर्थ लोगोंके लिये अशुद्ध होते हैं। ज्ञानके अनुसार भी शुद्धि या अशुद्धि होती है। समृद्धिके अनुसार भी शुद्धि या अशुद्धि होती है। जैसे धनाढ्य लोगोंके लिये जीर्ण मलिन वस्त्र अशुद्ध हैं और वे ही दरिद्र लोगोंके लिये शुद्ध हैं। देश और दशाके अनुसार ही ये द्रव्य व वचनआदिक निमित्त, वस्तुओंकी अशुद्धिके द्वारा आत्माको पापभागी करते हैं। अर्थात् निर्भय देश और नीरोग-तरुण अवस्थामें उक्त नैमित्तिक अशुद्धिके द्वारा आत्माको पाप लगता है; संकटपूर्ण

देश और अशक्त अवस्थामें पाप नहीं होता ॥ ११ ॥ धान्य, काष्ठ, हड्डी (हाथीदाँत आदि), सूत, रस (घी, तेलआदि) तैजस (सुवर्ण आदि) चर्म (कृष्णाजिन आदि) और सम्पूर्ण पार्थिव पदार्थोंकी शुद्धि काल, वायु, अग्नि, मट्टी और जलसे होती है। काल वायु आदि एकसाथ और अलग अलग भी—दोनो भाँति इन वस्तुओंके शोधक हैं ॥ १२ ॥ यदि पीठ, पात्र, वस्त्र आदिमें कोई अशुद्ध पदार्थ लिप्त हो जाय तो छीलनेसे खार–खटाईके पानीसे और छाँटनेसे जब उस अशुद्ध वस्तुका लेप और गन्ध मिट जाय और पीठ, पात्र, वस्त्रादि पदार्थ पूर्वरूपको प्राप्त होजायँ तब उनको शुद्ध समझना चाहिये ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, संस्कार, कर्म (सन्ध्योपासन, दीक्षा आदि) और मेरे स्मरणसे शरीरसहित आत्माका शौच (पवित्रता) होता है, अर्थात् इन कर्मोंसे देहाभिमानयुक्त कर्ताको विहित कर्म करनेकी योग्यता प्राप्त होती है। इसप्रकार शुद्ध होकर द्विज वर्णोंको हरएक विहित कर्म करना चाहिये ॥ १४ ॥ गुरुके मुखसे सुनना और भलीभाँति भाव समझना ही मन्त्रकी शुद्धि है। मेरे अर्पण कर देनाही कर्मकी शुद्धि है। इसप्रकारसे देश, काल, पदार्थ, कर्ता, मन्त्र और कर्म–इन छःकी शुद्धिसे धर्म और अशुद्धिसे अधर्म होता है ॥ १५ ॥ कहीं कहीं विधिके बलसे दोष भी गुण माना जाता है और कहीं कहीं गुण भी दोष हो जाता है। ऐसे ऐसे स्थलोंपर गुण–दोषका नियामक शास्त्र ही अधिकारके अनुसार गुणदोष–भेदका बाधक है। जैसे मदिरा पीना उच्च वर्णके लिये पातक है, परन्तु जो पहलेहीसे जाति या कर्मसे पतित है उसके लिये पुनः पातक (भ्रष्ट करनेवाला) नहीं हो सकता। यहाँ पतितोंके लिये दोष भी गुण है। ऐसेही 'संग' जो अन्य आश्रमोंके लिये दोष कहा गया है, वही गृहस्थाश्रमीका औत्पत्तिक (पैदायशी) होनेके कारण उसके लिये गुण है; वेदमें उसके लिये ऋतुकालका स्त्रीगमन आवश्यक कहा गया है। हे उद्धव! जैसे पृथ्वीपर लेटेहुए मनुष्यको नीचे गिरनेका भय नहीं होता वैसेही पतित भी पातक करनेसे और अधःपतित नहीं हो सकते ॥१६॥१७॥ कर्माधिकारियोंकी क्रमोन्नति और अन्तमें निवृत्तिके अभिप्रायसे वेदमें यह गुण–दोषकी व्यवस्था की गई है। इसकारण अधिकारकी क्रमोन्नतिके अनुसार जिस जिससे निवृत्त (विरक्त) होता जाय उस उसको छोड़ते जाना चाहिये। इसप्रकार प्रवृत्तिसे क्रमशः निवृत्ति ही मनुष्यके शोक, मोह और भयको नष्ट कर परम मङ्गल देनेवाला श्रेष्ठ धर्म है। जबतक ज्ञान या भक्ति न उत्पन्न हो तबतक गुणदोषबुद्धि आवश्यक है; और जब क्रमशः ज्ञान या भक्तिका अधिकारी हो जाय तब गुणदोष-

१ स्मृति भी कहती है—'देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम्। उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत्' ॥

बुद्धि और कर्म दोनोंको छोड़देना चाहिये। किन्तु वेदके निगूढ़ भावको न समझकर जो लोग वेदको प्रवृत्तिपर मानते हैं वे विषयोंमें गुण विवेचना करनेसे उनमें आसक्त हो पड़ते हैं। विषयासक्तिसे पानेकी इच्छा प्रबल होती है। विषयलाभके लोभकी प्रबलतासे मनुष्योंमें परस्पर कलह होता है। कलहसे दुर्विषह क्रोध उत्पन्न होता है, और क्रोध होनेपर विवेक नष्ट हो जाता है। अविवेकके आवरणसे पुरुषकी चेतना (अर्थात् कार्य-अकार्यका स्मरण) शीघ्र ही आच्छन्न हो जाती है। हे साधु उद्धव! चेतनाशून्य जीव असत्तुल्य और स्वार्थसे भ्रष्ट होकर मूर्च्छित (किंकर्तव्यविमूढ़) और मृतप्राय होजाता है। जो विषयचिन्तामें लिप्त रहकर आत्मा और परमात्माके जाननेका प्रयत्न नहीं करता वह इह–सर्वस्ववादी विमूढ़ व्यक्ति वृक्षोंके तुल्य जड़ जीव है और धौंकनीके समान श्वास लेते रहनेपर भी मृततुल्य व्यर्थ है। अर्थात् वह कुछ भी स्वार्थसाधन नहीं करता, इसलिये उसका जीवन वृथा है॥ १८–२२॥ वेदकी फलश्रुति केवल विषयासक्त लोगोंको मोक्ष–धर्ममें रुचि दिलानेके लिये है। वेद कहता है कि– यह कर्म करनेसे स्वर्ग मिलेगा, यह कहनेसे वेदका अभिप्राय यह नहीं है कि स्वर्गलाभ पुरुषार्थ या श्रेय है। वेदका ऐसा कहना वैसा ही है जैसे कोई पिता लड़केसे कहे कि यह नीमका काढ़ा पी लो तो तुमको मिठाई मिलेगी। बालकोंके समान अपना श्रेय न जाननेवाले विषयासक्त बहिर्मुख लोगोंको श्रेयमें रुचि उपजानेके लिये अर्थात् निवृत्तिमार्गमें लानेके लिये ही वेदने फलश्रुति कही है॥ २३॥ हे उद्धव! आत्माके लिये अनर्थकारी सम्पूर्ण विषय, शरीर और पुत्रादि स्वजनोंमें मनुष्योंका मन उत्पत्तिहीसे आसक्त होता है। अतएव वे परम सुखको नहीं जानते और न स्वतः जाननेकी चेष्टा करते हैं एवं 'वेद जो बतलाता है वही श्रेय है'–ऐसा विश्वास रखते हैं। इसप्रकार काम्यकर्मानुसार देवादि योनियोंमें जाकर, भोगके द्वारा पुण्य क्षीण होनेपर, वृक्षादि योनियोंमें जानेवाले संसारमार्गमें घूम रहे अज्ञ लोगोंको, विज्ञ वेद भला फिर कैसे उन्ही विषयोंके साधनमें प्रवृत्त कर सकता है? तात्पर्य यह है कि वेद निवृत्तिपर है, जो लोग वेदके निगूढ़ तात्पर्यको न समझकर उसे प्रवृत्तिपर मानते हैं वे भ्रान्त हैं॥ २४॥ २५॥ वेदके पूर्वोक्त अभिप्रायको न जाननेवाले कर्मकाण्डी लोग अवान्तर फल दिखाकर रुचि उपजानेवाली वेदकी फलश्रुतिमें मोहित होनेके कारण कुबुद्धि हैं। वेदके यथार्थ भावको जाननेवाले वेदान्ती लोग उनके समान फलश्रुतिमें मोहित नहीं होते॥ २६॥ उक्त कामी, कृपण और लोभी लोग फूलों (स्वर्गादि अवान्तर फलों) को ही फल (परम पुरुषार्थ) समझते हैं। अग्निसाध्य (यज्ञादि) कर्मोंमें अभिनिवृत्त रहनेके कारण उनका विवेक लुप्त होजाता है। अन्तसमय धूममार्गी होकर पितृलोकको जानेवाले वे अपने लोक (परमात्मा) को

नहीं जानते। हे उद्धव! कर्मवादी और शारीरिक सुखको ही परमार्थ मानकर उसीमें तत्पर और सन्तुष्ट एवं मोहान्धकारमें नष्टदृष्टि (नष्टविवेक) लोग हृदयमें ही स्थित विश्वोत्पादक विश्वरूप मुझ अन्तर्यामी परमात्माको नहीं जानते ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ वे विषयी पुरुष मेरे पूर्वोक्त गूढ़ मतको न जानकर वृथा पशुओंकी हिंसा करते हैं; वेही पशु उनके मरनेपर दूसरे जन्ममें उनको मारते हैं ॥ २९ ॥ 'यदि हिंसामें अर्थात् मांसभक्षण अथवा यज्ञफलरूप स्वर्गादि लोकोंमें अनुराग हो तो यज्ञमें ही हिंसा करनी चाहिये'–यह वेदवाक्य परिसंख्यामात्र है–प्रेरणा नहीं है। किन्तु इस यथार्थ भावको न समझकर और कर्मोंको हेय न जानकर हिंसामें रमनेवाले खल लोग अपने इन्द्रियसुखकी इच्छासे पशुबलिके द्वारा देवतागण, पितृगण और भूतपतियोंका यजन करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे कोई व्यापारी बनिया दुस्तर समुद्रको नाँघकर बहुत धन कमानेकी इच्छासे मूलधनको भी हाथसे गँवाकर कहींका नहीं रहता, वैसे ही उक्त अज्ञ लोग, स्वप्नतुल्य अनित्य और केवल श्रवणप्रिय स्वर्गादि परलोकमें अनेक प्रकारके सुखोंकी कल्पना करके, उनके लिये, धर्मादि चतुर्वर्गरूप श्रेष्ठ पुरुषार्थोंकोभी गँवा देते हैं और फिर कहींके नहीं रहते; इसकारण वे अत्यन्त मन्दमति हैं ॥ ३२ ॥ रजःसत्त्व-तमोनिष्ठ लोग भेदभावनायुक्त होकर रजः-सत्त्व-तमःसेवी इन्द्रादि देवोंकी उपासना करते हैं; मेरी यथावत् पूजा नहीं करके ॥ ३३ ॥ "इसलोकमें यज्ञादिके द्वारा देवतोंकी आराधना कर स्वर्गलोकको जायँगे और वहाँ अप्सराओंके साथ अमृत पीकर सुखसे विहार करेंगे! फिर पुण्य क्षीण होनेपर इसलोकमें उच्च कुलमें जन्म लेकर महागृहस्थ होंगे"–इसप्रकारके सुननेमें मनोहर वाक्योंमें जिनका चित्त मोहित होरहा है उन देहाभिमानी–अतएव अत्यन्त विषयलोलुप लोगोंको मेरी वार्ता भी नहीं रुचती ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वेदके तीनो (कर्मकाण्ड, देवताकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड) काण्ड ब्रह्म और आत्माकी एकता सिद्ध करते हैं; अतएव वास्तवमें निवृत्तिपर हैं। वेदके मन्त्र (या मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण) सब अतीन्द्रिय (ब्रह्म) विषयका प्रतिपादन करते हैं; क्योंकि परोक्षप्रतिपादन मुझे भी प्रिय है। ज्ञानके अधिकारी श्रद्धावान् शुद्ध अन्तःकरणके लोग जिसमें इसे जान सकें, किन्तु जो अधिकारी नहीं हैं वे अयोग्य लोग इसको साध न सकेंगे और वृथा कर्मत्याग करनेके कारण उभयतोभ्रष्ट होजायँगे, अतएव वे न जान सकें, यही मेरा अभीष्ट है, और इसीकारण वेदमें गूढ़ उपदेश है ॥३६॥ सूक्ष्म और स्थूल भेदसे द्विविध यह शब्द-ब्रह्म अत्यन्त दुर्बोध है। इसके स्वरूप और अर्थको ठीक ठीक जानना अत्यन्त कठिन है। प्राणमय (परा नाड़ी) इन्द्रियमय (पश्यन्ती नाड़ी) मनोमय (मध्यमा नाड़ी) सूक्ष्म शब्दब्रह्म समुद्रके समान अनन्तपार, गम्भीर और दुरवगाह्य

है[1] ॥ ३७ ॥ वह मुझ व्यापक और अनन्तशक्ति ब्रह्मके द्वारा अधिष्ठित या परि-वर्धित होकर कमलनालमें सूक्ष्म तन्तुओंके समान प्राणियोंमें नादरूपसे लक्षित होता है ॥ ३८ ॥ जैसे ऊर्णनाभि (मकड़ा) मुखसे जालेको उगलता है वैसेही प्राणरूपसे वेदमूर्ति, स्वयं अमृतमय, प्राणोपाधि हिरण्यगर्भरूप भगवान्, नादरूप उपादानसे सम्पन्न होकर, स्पर्शादिवर्ण–सङ्कल्पकारी अतएव निमित्तरूप मनकेद्वारा हृदयाकाशसे, जिसका अन्त और पार नहीं है उस बृहतीका सृजन और संहार करते हैं। इस बृहतीके मार्ग अनेक हैं; अतएव विविधवर्णमयी है। यह बृहती (वाणी) वक्षःस्थल और कण्ठादिके सम्बन्धसे व्यञ्जित स्पर्श (कवर्गादि पंचवर्ग) वर्ण, स्वर (अकारादि) वर्ण, ऊष्म (श, ष, स, ह) वर्ण और अन्तःस्थ (य, र, ल, व) वर्णोंसे विभूषित है और विविध विचित्र (लौकिक–वैदिक) भाषाओंके द्वारा विस्तृत है एवं उत्तरोत्तर चार चार अक्षरोंसे परिवर्धित छन्दोंके द्वारा चिह्नित है ॥३९–४१॥ वेदराशिमयी बृहतीमें गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिच्छन्दस्, अत्युष्णिक्, अतिजगती और अतिविराट् इत्यादि छन्द विद्य-मान हैं ॥४२॥ वह बृहती कर्मकाण्डमें विधिवाक्योंसे क्या विधान करती है, देवता-काण्डमें मन्त्रवाक्योंसे क्या प्रकाशित करती है, और ज्ञानकाण्डमें किसका आश्रय लेकर तर्क करती है, सो सब उसका यथार्थ भाव इसलोकमें मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। वह बृहती यज्ञरूपसे मेराही विधान करती है, देवतारूपसे मुझेही प्रकाशित करती है और मुझीको वादीके तर्कित अर्थ–रूपसे कहकर प्रतिवादीके दूसरे प्रकारके तर्कसे निरस्त करती है ॥ ४३ ॥

एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४४ ॥

बृहती या वेद, परमात्मारूप मुझको आश्रय बनाकर 'सब भेद मायामात्र है'– यह प्रतिपादित करता है और सबका निषेधकर अन्तमें आप भी निवृत्त हो जाता है। यही सम्पूर्ण वेदका तात्पर्य है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

१ श्रुति कहती है—'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति' ॥

अर्थात् शब्दब्रह्मके परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, ये चार पद हैं। इन्हे आत्मज्ञानी मनीषी ब्राह्मण ही जानते है। इनमेंसे तीन तो शरीरके भीतर निहित रहकर स्वरूपको प्रकाशित करते हैं और चौथे वैखरीनामक भागको लोग बाहर व्यक्त करते हैं, अर्थात् बोलते हैं। उसे भी केवल बोलते हैं—तत्त्वतः जानते नहीं हैं।

द्वाविंश अध्याय

तत्त्वके सम्बन्धमें अनेक भिन्न भिन्न मतोंका विरोध मिटाना

उद्धव उवाच—कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥
नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे देवेश ! हे प्रभो ! ऋषियोंने कै प्रकारसे तत्त्वगणना की है ? सुनते हैं कि आपने अट्ठाइस तत्त्व कहे हैं। किन्तु और ऋषिगण कोई छब्बीस, कोई पचीस, कोई सात, कोई नव, कोई छः, कोई चार, कोई ग्यारह, कोई सत्रह कोई सोलह, और कोई तेरह तत्त्व बताते हैं। हे नित्यरूप ! ऋषिलोग जिस अभिप्रायसे तत्त्वोंकी भिन्न भिन्न संख्या करते हैं, सो आप मुझसे कहिये ॥१-४॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—सब तत्त्व सब तत्त्वोंके अन्तर्गत हैं, इसलिये ब्राह्मणोंकी कीहुई सब तत्त्वसंख्या ठीक हैं। इसके सिवा आत्माकी अपार मायाका आश्रय लेकर संख्याएँ करनेवालोंके लिये दुर्घट क्या है ? 'तुम जैसा कहते हो वैसा नहीं है, मैं जैसा कहता हूँ वैसा है'-इसप्रकार मायाका आश्रय लेकर विवाद करनेवालोंके लिये विवादका हेतु जो मेरी सत्त्व आदि शक्तियाँ हैं, सो दुरत्यय हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इन्हींके क्षोभसे वादी लोगोंके विवादका आश्रय 'विकल्प' उत्पन्न हुआ है। शम-दम प्राप्त होनेपर विकल्प लीन होजाता है और उसके साथही विवाद भी शान्त होजाता है ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! सब तत्त्व परस्पर अनुप्रविष्ट हैं, अतएव वक्ताकी विवक्षाके अनुसार कार्य-कारण भावसे तत्त्वोंकी अधिक और अल्प संख्या, दोनो ही ठीक हैं ॥ ८ ॥ कारणतत्त्वमें या कार्यतत्त्वमें क्रमशः और और तत्त्व प्रविष्ट देख पड़ते हैं। इसकारण तत्त्वोंकी कार्य-कारणता और न्यूनाधिकता जिसको अभीप्सित है उन वादी जनोंमें जो जितनी संख्या करता है सो सब युक्तियुक्त होसकती है-अतएव ग्राह्य है ॥ ९ ॥ १० ॥ अनादि अविद्यासे आवृत पुरुषको आपहीसे आत्मज्ञान होना असम्भव है; अतएव अन्य तत्त्वज्ञ व्यक्तिको अवश्य ही उसे ज्ञानोपदेश करना होगा। इसप्रकार आत्माका ज्ञान देनेवाले परमात्माको आत्मासे अलग मानकर छब्बीस तत्त्व कहना अयोग्य नहीं है ॥ ११ ॥ किन्तु इस विषयमें पुरुष और ईश्वरमें अणुमात्र भी विलक्षणता नहीं है, क्योंकि दोनोही चिद्रूप हैं (इसकारण उनमें भेदकल्पना व्यर्थ है। इसलिये पचीस तत्त्व कहना भी ठीक है)। ज्ञान प्रकृतिहीका गुण है और गुणोंकी समता ही प्रकृति है। सृष्टि, स्थिति, प्रलयके कारणस्वरूप रजः सत्त्व और तमः—तीनो प्रकृतिहीके गुण हैं-आत्माके नहीं हैं ॥१२॥१३॥ इस संसारमें ज्ञान ही सतोगुण है, कर्म ही रजोगुण है और अज्ञान ही तमोगुण है। गुणोंका क्षोभ ही काल है और स्वभाव ही महत्तत्त्व है ॥ १४ ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पृथ्वी, जल, वायु, तेज,

आकाश–ये मुख्य नव तत्त्व मैंने कहे हैं ॥ १५ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका और रसना–ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं; वाक्, हस्त, उपस्थ, पायु और पाद ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं; मन उभयात्मक है ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं और गति, उक्ति, मैथुन, मलत्याग एवं शिल्प—ये कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं ॥ १७ ॥ कार्यकारणरूपिणी प्रकृति सृष्टिके आदिमें सत्त्वादि गुणोंके द्वारा विशेष विशेष अवस्थाओंको ग्रहण करती है। यह अव्यक्त पुरुष प्रकृतिकी उन अवस्थाओंका साक्षी है ॥ १८ ॥ महत् आदि सब कारणतत्त्व विकारको प्राप्त होतेसमय पुरुषके देखनेसे शक्तिमान् होकर परस्पर मिलनेके उपरान्त प्रकृतिके आश्रयसे एक अण्डकी सृष्टि करते हैं ॥ १९ ॥ सात ही कारणतत्त्व माननेवाले मतके अनुसार पञ्चतत्त्व जीव और इन छःका आश्रय सातवाँ परमात्मा समझना चाहिये। कारणरूपसे प्रकृति, पञ्चतत्त्वोंके अन्तर्गत हैं और देह, इन्द्रिय तथा प्राण इन्हींसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २० ॥ छः कारणतत्त्व कहनेवालोंके मतमें पञ्चतत्त्व और छठा परम पुरुष है। ईश्वर अपनेसे उत्पन्न उक्त तत्त्वोंसहित विश्वकी सृष्टि करके उसमें प्रविष्ट हैं ॥ २१ ॥ चार कारण तत्त्व कहनेवालोंके मतमें तेज, जल, पृथ्वी और आत्मा ये चार मूलतत्त्व हैं, इन्ही चार तत्त्वोंसे अन्यान्य तत्त्वोंकी उत्पत्ति कहकर वे सब तत्त्वोंको इन्हीके अन्तर्गत स्वीकार करते हैं ॥ २२ ॥ सप्तदशगणनामें पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन और आत्मा—ये सत्रह तत्त्व मानते हैं ॥ २३ ॥ वैसे सोलह तत्त्व बतानेवाले, मनको आत्मासे अभिन्न मानते हैं। तेरह तत्त्व कहनेवाले पञ्चतत्त्व, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, आत्मा और परमात्मा एवं मन–ये तेरह तत्त्व मानते हैं ॥ २४ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने कई प्रकारसे तत्त्वोंकी संख्या की है। युक्तियुक्त होनेके कारण सभी न्याय्य हैं। पण्डित विद्वानोंको क्या नहीं सोहता? अर्थात् सभी सोहता है ॥ २५ ॥ उद्धवने पूछा—हे कृष्ण! पुरुष और प्रकृति यदि स्वभावसे भिन्न हैं तो परस्पर एकसे भिन्न दूसरेकी प्रतीति क्यों नहीं होती? प्रकृति पुरुषमें और पुरुष प्रकृतिमें अभिन्न रूपसे अवस्थित जान पड़ते हैं। हे कमलनयन! हे सर्वज्ञ! मेरे इस महान् संशयको युक्तियुक्त वचनोंसे निवृत्त करिये। इसमें कोई संशय नहीं है कि आपहीकी कृपासे जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है और आपहीकी मायारूप शक्तिसे मोह होता है। अतएव आपही अपनी मायाकी गतिको भलीभाँति जानते हैं, और कोई नहीं जानसकता ॥२६–२८॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे नरवर उद्धव! प्रकृति और पुरुषमें बड़ा भारी भेद है। यह सर्ग (गुणसमष्टिरूप देह) गुण–क्षोभकृत होनेके कारण वैकारिक अर्थात् विकारसम्पन्न है ॥ २९ ॥ हे मित्र! मेरी अनेकरूपिणी गुणमयी माया गुणगणके द्वारा विविध भेद और भेदभावोंको उपजाती है। विविधविकारसम्पन्न होनेपर भी स्थूलरूपसे यह कारणसृष्टि तीन प्रकारकी है, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव ॥ ३० ॥ जैसे, चक्षु इन्द्रिय अध्यात्म है, रूप

अधिभूत है, और चक्षुगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदैव हैं। चक्षु, रूप और चक्षुगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश–ये तीनो परस्परसापेक्ष भावसे प्रकाशित होते हैं; किन्तु आकाशमें जो स्वयं सूर्यदेव हैं वह निरपेक्ष भावसे स्वयंप्रकाशित हैं। अतएव इन अध्यात्म आदिका कारण, एकमात्र आत्मा (प्रकाशक होनेके कारण) अभिन्न होनेपर भी (स्वप्रकाश होनेके कारण) सबसे भिन्न है। वह अपने स्वयंसिद्ध प्रकाशसे उक्त परस्पर प्रकाशकोंका भी प्रकाशक है, इसीसे उसके प्रकाशका स्वतःसिद्ध होना सिद्ध होता है। इसीप्रकार चक्षु, रूप और सूर्यांशकी भाँति त्वचा, स्पर्श, वायु, श्रवण, शब्द, दिशा, रसना, रस, वरुण, नासिका, गन्ध, अश्विनीकुमार, चित्त, चेतयितव्य, वासुदेव, मन, मन्तव्य, चन्द्र, बुद्धि, बोद्धव्य, ब्रह्म और अहंकार, अहंकर्तव्य, रुद्र, ये अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव हैं। गुणोंको क्षोभित करनेवाले कालरूप परमेश्वरको निमित्त करके प्रकृतिसम्भूत महत्तत्त्वसे विकाररूप जो अहंकार उत्पन्न होता है। वह वैकारिक, तामस और राजस भेदसे त्रिविध है। वही मोहमय विकार (उपाधि) का हेतु है–और नहीं है–इसप्रकारके भेदसे घटित विवाद भी आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न है। भेदभाव निरर्थक होनेपर भी, अपने रूप मुझसे जिनका मन विमुख है उन पुरुषोंके हृदयमें बनाही रहता है, कभी किसी प्रकार निवृत्त नहीं होता ॥३१–३४॥ उद्धवने पूछा—प्रभो! हे गोविन्द! जिनका मन आपसे विमुख है वे निजकृत कर्मोंके द्वारा जिसप्रकार उत्तम और अधम शरीरोंका ग्रहण और परित्याग करते हैं जो कृपापूर्वक मुझसे कहिये। जिनका आत्मा अज्ञानसे आवृत है वे लोग इस विषयको विचार भी नहीं कर सकते। इससंसारमें विवेकी जन बहुतही थोड़े हैं; क्योंकि प्रायः सभी मायामें मोहित हो रहे हैं ॥३५॥३६॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! मनुष्योंका कर्ममय मन पाँचो ज्ञानेन्द्रियोंके साथ इसलोकसे अन्य लोकमें और वहाँसे अन्य लोकमें–इसीप्रकार एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है; अहंकारके कारण आत्माभी उसका अनुसरण करता है ॥ ३७ ॥ (इसलोकके) देखेहुए और (स्वर्गादि लोकोंके) वेदमें सुनेहुए विषयोंका ध्यान करता हुआ यह कर्मतन्त्र मन ध्यायमान विषयोंमें आविर्भूत और पूर्व विषयोंमें लीन होता है; साथ ही स्मृति (पूर्वापरविचार)भी नष्ट होजाती है ॥ ३८ ॥ कर्मानुसार प्राप्त देवादि देहोंमें अत्यन्त अभिनिवेशसे मन पूर्वदेहको भूल जाता है; वही किसी कारणसे (यातनादेहके अभिनिवेशमें शोकादिसे अथवा देवादि देहोंमेंसे किसीके अभिनिवेशमें हर्ष, अमर्ष, आदिसे) देहकी अत्यन्त विस्मृति ही जीवकी मृत्यु है। देहकी भाँति जीव नष्ट नहीं होता ॥ ३९ ॥ हे उदार! अभिन्न–भावद्वारा देहको आत्मारूपसे स्वीकृत करना अर्थात् देहाभिमान ही जीवका जन्म है। देहकी भाँति आत्मा उत्पन्न नहीं होता। जीवका जन्म और मरण क्रमशः मनोरथ और स्वप्नके समान है ॥ ४० ॥

ठीक इसीप्रकार स्वप्न और मनोरथ भी हैं। स्वप्न आदिमें भी यह पूर्वसिद्ध अपनेको, उसी समय उत्पन्नसा देखता या मानता है; पूर्व अस्तित्वको भूल जाता है ॥ ४१ ॥ जैसे जीव स्वप्नमें बहुरूपदर्शनसे बहुरूप भासित होता है वैसे ही इन्द्रियोंके भयन मनकी सृष्टि (कल्पना)से ये तीनो प्रकार (अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत अथवा उत्तमता, मध्यमता, नीचता) आत्मामें असत्रूपसे ही प्रकाशित होते हैं। आत्माही बाहरी और आन्तरिक भेदका हेतु है ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यवेग कालके द्वारा नित्य ही शरीरोंकी उत्पत्ति और नाश (अवस्थान्तर) होता है; परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अविवेकियोंको लक्षित नहीं होता ॥ ४३ ॥ जैसे कालक्रमसे परिमाणके द्वारा ज्योतियोंकी, और गति आदिसे जलकी, एवं परिपक्वता आदिसे वृक्षफलकी अवस्था पलटती रहती है, परन्तु उन विशेष विशेष अवस्थाओंको सब कोई नहीं देख पाते, वैसे ही कालके द्वारा शरीरोंकी अवस्था और वयस बदलती रहती है ॥ ४४ ॥ तथापि जैसे "यह वही दीपक है," "यह वही जल है"–ऐसा कहते और मानते हैं वैसेही अविवेकी लोग "यह वही शरीर है"–ऐसा कहते और समझते हैं। किन्तु उनका ऐसा कहना और समझना भ्रान्तिमात्र है ॥ ४५ ॥ आत्मा अजर, अमर है; निजकर्मके द्वारा यह जन्मता या मरता नहीं, किन्तु भ्रान्तिवश अपनेमें जन्म-मरणका आरोप करता है। जैसे महाभूतरूप अग्नि कल्पान्त-पर्यन्त अवस्थित रहनेपर भी काष्ठके संयोगसे जन्म-और वियोगसे नाशको प्राप्त होता है वैसेही अज और अमर होनेपर भी यह आत्मा भ्रान्तिवश शरीरसंयोगसे जात और शरीरके वियोगसे मृतकी भाँति प्रतीत होता है। गर्भमें प्रवेश, गर्भमें वृद्धि, जन्म, बाल्य, कौमार, यौवन, मध्यवयस, जरा एवं मृत्यु–ये नव अवस्थाएँ शरीरकी हैं, किन्तु प्राकृतिक अविवेकके कारण शरीरकी इन मनोरथमयी उच्च-नीच अवस्थाओंको गुणसंग द्वारा जीव स्वयं स्वीकार करता है। कहीं कोई पुरुष (ईश्वरकी कृपासे विवेक प्राप्त कर) त्याग भी देता है ॥४६–४८॥ पिताको पुत्रके जन्मसे और पुत्रको पितासे मरणसे अपने शरीरके जन्म–मरणका अनुमान करना चाहिये, और समझना चाहिये कि उत्पत्ति-विनाशशाली शरीरोंका साक्षी आत्मा जन्म-मरणसे रहित है ॥ ४९ ॥ बीज और विपाकसे वृक्षादिक उद्भिजोंके जन्म मरणको जाननेवाला द्रष्टा जैसे उनसे भिन्न है वैसे ही शरीरकी उत्पत्ति और नाशको जाननेवाला द्रष्टा आत्मा उससे भिन्न है ॥ ५० ॥ इसप्रकारके विवेकसे विहीन पुरुष, आत्माको वास्तवमें प्रकृतिसे भिन्न न विचारनेके कारण देहाभिमानमें मोहित होकर आवागमनरूप संसारको प्राप्त होता है ॥५१॥ अविवेकसे मूढ़ जीव सतोगुणके संसर्गसे ऋषि और देव एवं रजोगुणके संसर्गसे नर और असुर तथा तमोगुणके संसर्गसे भूत और पशु-पक्षी प्रभृति योनियोंमें कर्मानुसार भ्रमण करता रहता है ॥५२॥ जैसे नाचते गाते-

हुए लोगोंको देखकर मनुष्य मन-ही-मन उनका अनुकरण करते हैं वैसेही जीव अनीह होनेपर भी बुद्धिके गुणों(विषयों)को देखकर उनके द्वारा अनुकरण करनेके लिये विवश होता है। जैसे जल हिलनेसे उसमें प्रतिविम्बित किनारेके वृक्ष भी हिलतेहुए जान पड़ते हैं या चक्षुके चकरानेसे पृथ्वी भी घूमतीहुई देख पड़ती है वैसेही मनःकृत आत्माका संसार (आवागमन) है; एवं जैसे कामनासक्तचित्त व्यक्तिका कल्पित विषयानुभव और स्वमदृष्ट विषयोंका अनुभव मिथ्या हैं वैसेही विषयभोग मनकी कल्पनामात्र है; अतएव मिथ्या है ॥ ५३–५५ ॥ इसीकारण विषयोंके न विद्यमान होनेपर भी उन सांसारिक विषयोंका ध्यान करते रहनेके कारण आत्माके जन्म-मरणकी निवृत्ति नहीं होती! जैसे वास्तवमें कोई विपत्ति न होनेपर भी ध्यानके अनुसार स्वममें अनर्थका अनुभव होता है वैसेही स्थूलशरीर न रहनेपर भी लिङ्ग-शरीरके द्वारा विषयचिन्ता करते रहनेके कारण आत्माका संसार नहीं निवृत्त होता ॥ ५६ ॥ इसकारण हे उद्धव! भ्रान्त इन्द्रियोंद्वारा विषयभोग न करो। विकल्प-जनित भ्रमको आत्माके अविवेकहीसे अवभासित समझो या देखो ॥ ५७ ॥ असाधु जन तिरस्कार या अपमान करें, या हँसें, या ईर्षा करें, या ताड़ना दें, या बाँधें, या पकड़ रक्खें, या जीविकाके उपायको बंद करदें, या ऊपर मूतें, इसी भाँति अनेक प्रकारके और और कष्ट पहुँचाकर चलायमान करें, तथापि मोक्षकी इच्छा रखने-वाले व्यक्तिको विचलित न होना चाहिये। इसप्रकार कष्टोंमें पड़कर भी परमेश्वरके ध्यानमें लवलीन रहकर विवेकके द्वारा आत्माको उबारना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ उद्धवने कहा—हे वक्ता लोगोंमें श्रेष्ठ! आपका यह उपदेश कि 'असज्जन चाहे जितना कष्ट पहुँचावें परन्तु अपनी स्थितिसे विचलित न होना' अत्यन्त दुर्ज्ञेय और दुष्कर है। मैं जिसमें सहजमें समझ सकूँ, उस रीतिसे फिर इसे कहिये ॥ ६० ॥

विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥
ऋते त्वद्धर्मनिरतान् शान्तांस्ते चरणालयान् ॥ ६१ ॥

हे विश्वरूप! आपके धर्ममें निरत, आपके चरणोंके आश्रित, शान्तचित्त साधु-ओंके सिवा ज्ञानी विवेकी जन भी मेरी समझमें इस असज्जनकृत अपने अपमानको नहीं सहसकते, क्योंकि मानव प्रकृति बड़ी ही प्रबल है ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय

तिरस्कार सहनेके उपाय बतानेके प्रसंगमें एक अवधूतकी कथा

बादरायणिरुवाच—स एवमाशंसित उद्धवेन
भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥
सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्द-
स्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! श्रेष्ठ वैष्णव उद्धवके इसप्रकार पूछनेपर श्रवणीयचरित्र यादवश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र अपने भृत्यके प्रश्नकी प्रशंसा करते-हुए कहनेलगे कि हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव! ऐसे साधु इस संसारमें बहुत ही विरले हैं जो दुर्जनोंकी दुरुक्तियोंसे विचलित मनको शान्त रख सकते हैं। सदैव मर्मस्थलमें व्यथा न पहुँचानेवाले अन्य बाणोंके लगनेसे मनुष्यके वैसी व्यथा नहीं होती, जैसी सदा हृदयमें खटकनेवाले दुर्जन–दुरुक्तिरूप बाणोंसे पीड़ा होती है ॥ १–३ ॥ हे उद्धव! इसविषयमें एक महापवित्र प्राचीन-कथित इतिहास मैं कहता हूँ, उसे एकाग्र होकर सुनो ॥ ४ ॥ दुर्जनोंके द्वारा सतायेगये एक भिक्षुकने धैर्य धारण कर उसको अपने कर्मोंका फल समझ-कर जो कुछ कहा है वह इस इतिहासमें वर्णित है ॥ ५ ॥ मालव देशमें एक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था। वाणिज्यवृत्तिसे उसने बहुत धन जोड़ा था। वह बहुत ही क्रोधी, कामी और लोभी होनेके सिवा कृपण भी बड़ा था। जातिवाले और अतिथियोंका आदर और सत्कार तो दूर रहा, कभी सीधे बोलता भी न था। धर्म और कामसे हीन भवनमें रहनेवाला वह ब्राह्मण अपने शरीरको भी सामायिक भोग–सुखसे वञ्चित रखता था ॥६॥७॥ उस दुःशील और कृपणके पुत्र और अन्यान्य बान्धवगण सदा बुरा चेततेथे एवं स्त्री, कन्या तथा नौकर–चाकर जलनके मारे उसका कहा नहीं करते थे। इसप्रकार यक्षके समान दान-भोग-रहित धनकी रखवाली करनेवाले, धर्म-काम-शून्य और इसीकारण दोनो लोकोंसे भ्रष्ट उस ब्राह्मणपर पञ्चयज्ञभागी देवतोंने भी क्रोध किया ॥८॥९॥ आत्मीय पोष्यवर्ग और कर्तव्यका अनादर करनेके कारण पुण्यपथ (धर्म) से भ्रष्ट उस ब्राह्मणका वह बहुत परिश्रम और प्रयाससे प्राप्त सञ्चित सब धन धीरे धीरे नष्ट होनेलगा। कुछ जातिवाले, कुछ चोरलोग, कुछ और और मनुष्य, कुछ राजा, कुछ दैव और कुछ कालने उस ब्राह्मणका धन हरलिया ॥ १० ॥ ११ ॥ इसप्रकार सब धन नष्ट हो जानेपर धर्म-काम-विवर्जित एवं स्वजनोंके द्वारा उपेक्षित अपमानित उस ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई ॥ १२ ॥ बहुत कालतक वह ब्राह्मण सन्ताप और खेदसे

हतबुद्धि होकर चिन्ता करता रहा, उसकी आँखोंमें आँसू भरआये। इसप्रकार पश्चात्ताप करते करते एकाएक उसके चित्तमें महानिर्वेद उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वैराग्य हो जानेपर वह ब्राह्मण आप-ही-आप कहनेलगा कि अहो! कैसे कष्टकी बात है! मैं वृथा ही इतने दिनोंतक आत्माको सन्ताप पहुँचाता रहा। मैंने वृथाही धनसंचयके प्रयासमें पड़कर अपने जन्मको नष्ट कर दिया। धर्म-भोग-शून्य शरीर भी मेरा वृथा हो गया ॥ १४ ॥ कदर्य कृपणोंको कभी धनसे सुख नहीं मिलता। इसलोकमें तो धनकी रक्षा और बढ़ानेकी चिन्तामें पड़े रहनेसे उनके शरीरको क्लेशही पहुँचता है और मरनेपर (शक्ति होनेपर भी धर्म न करनेके कारण) नरकमें गिरना होता है ॥ १५ ॥ जैसे तनिकसा कुष्ठ सर्वाङ्गसुन्दर रूपको विगाड़ देता है वैसेही थोड़ासा भी लोभ यशस्वी जनोंके यशको और गुणी-जनोंके प्रशंसनीय गुणोंको दूषित या कलंकित कर देता है ॥ १६ ॥ प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि धनलाभके लोभसे या स्नेह, क्रोध, मत्सर, काम, भय आदिके वशीभूत होकर धर्मको कभी न छोड़े ॥ १७ ॥ जो कोई लोभमें पड़कर धर्मको छोड़ देता है और धनसञ्चयमें तत्पर रहता है वह मानो सुवर्णराशिको छोड़कर मुट्ठीभर राख लेनेके लिये लपकता है ॥१८॥ जबतक गृहस्थके पास धन रहता है तभीतक माता, पिता, स्त्री, पुत्र, स्वजन और आत्मीय सुहृद्‌गण सभी साथ देते हैं; जब धन नहीं रहता तब सभी साथ छोड़ देते हैं—बात भी नहीं करते ॥ १९ ॥ अन्तसमय धन नहीं काम आता, उसे औरही लोग लेजाते हैं। किया गया धर्म ही एक ऐसा सहायक है जो मरनेपर भी साथ जाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य धर्मका अनादर कर धनके लिये श्रम करता है वह उसी मृगके समान है जो प्यास लगनेपर उसे शान्त करनेके लिये मृगमरीचिकाके पीछे दौड़ता है ॥ २१ ॥ उद्धव! मनुष्योंको धनके सञ्चयमें और सञ्चित धनके उत्कर्ष-साधनमें प्रयास करना पड़ता है, फिर उसकी रखवाली करनेमें भी चिन्ता बनी रहती है की कहीं कोई चुरा न ले जाय, फिर नाशका डर लगा रहता है एवं उपभोगमें बुद्धिभ्रम घटित होता है ॥ २२ ॥ चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ (ठगी), काम, क्रोध, घमण्ड, मद, फूट, वैर, अविश्वास, स्पर्धा (लागडाँट) और (स्त्रीसङ्ग, द्यूत, मद्य आदि) दुर्व्यसन इन पन्द्रह अनर्थोंकी जड़ अर्थ (धन)ही है। इसलिये मनुष्योंमेंसे जो अपनी भलाई चाहता हो उसे अनर्थमय अर्थसे दूरही रहना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस धनके कारण भाई, स्त्री, पिता–माता, बन्धु–बान्धव-गण आदि आत्मीय अलग फूट जाते हैं एवं दमड़ीकी कौड़ीके कारण 'एक प्राण–दो देह' कहाये जानेवाले अत्यन्त प्रिय मित्र भी चट शत्रु हो जाते हैं ॥२५॥ थोड़ेसे धनके लिये ये सब इष्टमित्र विचलित और कुपित होकर सहसा सब स्नेह भूलजाते हैं और परस्पर स्पर्धापूर्वक एक एकको छोड़ देते हैं और मार भी

डालते हैं ! ॥ २६ ॥ देवतोंके प्रार्थित मनुष्य शरीरको पाकर, और उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मणवर्णमें जन्म लेकर जो कोई प्रमादवश उसे वृथाही नष्ट कर देते हैं और कुछ भी स्वार्थ नहीं साधते उनकी बुरी गति होती है ॥ २७ ॥ यह मनुष्य-शरीर स्वर्ग और मोक्षका द्वार है, इसे पाकर कौन समझदार मनुष्य अनर्थमय धनमें आसक्त होगा ? ॥ २८ ॥ जो धन होनेपर भी भागाधिकारी देव, ऋषि, पितर, अन्यान्य प्राणी, जातिवाले और बन्धु बान्धवोंको नहीं भाग देता और न आपही भोग करता है वह यक्षवृत्तिधारी कृपण मनुष्य अवश्य ही अधःपतित होता है ॥ २९ ॥ मेरी आयु व्यर्थ धन जोड़नेकी चेष्टामें बीत गई ! चतुर विवेकी लोग इसी धनसे दोनो लोक बनालेते हैं । अब मैं वृद्ध हो चुका, इस अवस्थामें शक्ति और धनसे हीन मैं क्या साध सकता हूँ ? ॥ ३० ॥ अहो ! जानबूझकर भी यह सब संसार क्यों व्यर्थ धनसञ्चयकी चेष्टामें वारंवार क्लेश भोगता है ? अवश्यही किसीकी मायामें यह जगत् मोहित हो रहा है ॥ ३१ ॥ मृत्युके मुखमें पड़ेहुए मनुष्यका धनसे, कामनासे, जन्मदायक काम्य कर्मोंसे या धन और कामना देनेवाले देवतोंसे क्या हित हो सकता है ? ये कोई भी मृत्युभयभीत प्राणियोंको सुखी नहीं कर सकते ! ॥ ३२ ॥ अवश्यही सर्वदेवमय भगवान् हरि मुझपर प्रसन्न हुए हैं, उन्हीके अनुग्रहसे मेरी यह दशा हुई है और मुझे संसारसागरके पार लगानेवाली नौकाके समान निर्वेद प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ सो मैं यदि कुछ आयु अवशिष्ट होगी तो उसमें सावधानतासहित धर्मादि साधता हुआ आत्मलाभमें सन्तुष्ट रहकर तपके द्वारा अपने शरीरको सुखा डालूँगा (या ज्ञानद्वारा ब्रह्ममें लीन कर दूँगा) ॥ ३४ ॥ मैं त्रिभुवनेश्वर देवतोंसे इस अपने विचारके अनुमोदनकी प्रार्थना करता हूँ । राजा खट्वाङ्गने एकही मुहूर्त अवशिष्ट आयुमें ईश्वरको भजकर ब्रह्मलोक प्राप्त किया था, [तब मेरी आयुतो संभव है अभी उससे अधिकही योगी-इसलिये मैं भी अवश्य अपना जन्म सफल कर सकूँगा] ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव ! उस मालवीय ब्राह्मणने मनमें यों निश्चयकर अहंकारादि हृदयग्रन्थियोंको खोलकर ईश्वरमें मनको लगा दिया और शान्त, भिक्षुक, मुनि होकर मन, इन्द्रिय और प्राणवायुको जीतकर इस पृथ्वीपर विचरने लगा । वह अनासक्त भिक्षुक नगरों और गाँवोंमें अलक्षित भावसे भिक्षाके लिये जाता था । उस समय देखनेमें उन्मत्तसे उस मलिन, वृद्ध, भिक्षुकको बहुतसे मदान्ध दुष्ट लोग अनेक कटुवचन कहतेहुए पीड़ित करनेलगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ कोई त्रिवेणु, कोई कमण्डलु, कोई भोजनपात्र, कोई पीठ, कोई अक्षसूत्र, कोई कन्था और कोई चीरखण्ड ले भागते थे । मुनिकी इन छीनी हुई वस्तुओंको दूरसे दिखाकर देकर फिर लेलेते और खिझाते थे । नदीतटपर भिक्षालब्ध अन्नको खानेके लिये बैठनेपर, कोई महानष्ट पापी उस अन्नमें मूतदेता

था और कोई शिरपर थूकदेता था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इतने उपद्रवपर भी जब वह साधु कुछ न बोलता था तब बलपूर्वक कुछ कहलानेके लिये उसे सताते थे; यदि वह इतनेपर भी न बोलता तो मारते थे। कोई कोई 'यह दुष्ट चोर है'—इत्यादि कुवाक्य कहकर डाँटते और धमकाते थे ॥ ४० ॥ कोई 'बाँधो, बाँधो' कहकर रस्सीसे उसे बाँधते थे और कोई इसप्रकार निरादरपूर्वक कुवाक्य कहकर निन्दा करते थे कि 'यह वंचक है, ठगनेके लिये इसने यह पाखण्ड रचा है। जब धन नहीं रहा और स्वजनोंने त्याग दिया तब इसने इस वृत्तिको ग्रहण किया है। अहो! यह बड़ा बली है, पर्वतसे समान अविचल है, मौन रहकर दृढ़ निश्चयपूर्वक वकतुल्य अपना प्रयोजन साधता है'। इसप्रकार कहकर कोई उसे हँसते थे, कोई उसके ऊपर अधोवायु छोड़ते थे, कोई तोता, मैना, आदि पक्षियोंकी भाँति पकड़कर शृङ्खलामें जकड़कर कोठरी आदिमें डालकर बन्द कर रखते थे ॥ ४१–४३ ॥ किन्तु वह विरक्त ब्राह्मण इस अपने दैविक, दैहिक, भौतिक त्रिविध दुःखको दैवके द्वारा प्राप्त और अवश्य भोक्तव्य जानकर चुपचाप सहता था और किसीको कुछ न कहता था ॥ ४४ ॥ हे उद्धव! इसप्रकार अनेक प्रकारके कष्ट पहुँचाकर अधम मनुष्योंने उसको धर्मसे च्युत करना चाहा, परन्तु वह सात्त्विक धैर्यधारणपूर्वक अपने धर्मसे तनिक भी नहीं विचलित हुआ। हे उद्धव! दुष्टोंद्वारा सताये जानेपर वह भिक्षुक कहनेलगा कि–"ये लोग, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म या काल–कोई भी मेरे सुख अथवा दुःखका कारण नहीं है। सुख या दुःखका कारण एकमात्र मनही माना गया है। इसी मनके द्वारा संसारचक्र चलता है। प्रबल मनसे ही गुणवृत्तियोंकी सृष्टि होती है और उन वृत्तियोंसे सात्त्विकादि त्रिविध कर्मोंका उदय होता है एवं उन शुक्ल, कृष्ण, लोहित (सात्त्विक, तामस, राजस) कर्मोंसे ही तदनुरूप गतियाँ होती हैं ॥ ४५–४७ ॥ यह आत्मा निरीह है, मेरे सखा जीवका नियन्ता और विद्याशक्ति-प्रधान है एवं इसीकारण अ-तिरोहित ज्ञानसे केवल देखनेवाला अर्थात् साक्षीमात्र है। किन्तु यह चेष्टाद्वारा संसार-प्रकाशक मनको आत्मरूपसे स्वीकृत कर गुणसङ्गवश विषयसेवन करनेके कारण बन्धनको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ दान, स्वधर्म, नियम, यम, वेदाध्ययन, सम्पूर्ण सत्कर्म और सत्व्रत आदिका अन्तिम फल मनका दमन है, अर्थात् विना मनका दमन किये ये सब निष्फल हैं। मनको वशमें कर एकाग्र करना ही परम योग है ॥४९॥ जिसका मन शान्तिपूर्वक सावधान हो चुका है उसे दान आदि करके क्या करना है? जिसका मन असंयत और असावधानतावश विषयोंमें लीन हो रहा है उसका दान आदिसे क्या उपकार हो सकता है? ॥ ५० ॥ अन्यान्य देवगण भी मनके वशीभूत हैं, मन (सहजमें) किसीके वश नहीं होता। यह मनरूप देव बड़े बड़े बलवानोंसे भी बढ़कर बली

है, अतएव योगी जनोंको भी सदा इससे भय बना रहता है। इसको जो वश कर-सके वही देवदेव (सब इन्द्रियोंको जीतनेवाला) है ॥ ५१ ॥ यह दुर्जय शत्रु मर्मभेदी है, इसका वेग असह्य है। जो लोग इसे नहीं जीत सकते और मित्र, शत्रु, उदासीनकी कल्पना कर मनुष्योंसे वृथा कलह करते हैं वे अत्यन्त मूढ़ हैं ॥५२॥ केवल मनके द्वारा परिकल्पित इस शरीरपर अहंभाव स्थापित कर 'मैं हूँ, मेरा है'—इस प्रकारकी भेदभावनासे मोहित मनुष्यगण 'यह मैं हूँ, यह अन्य है' इस भ्रमके कारण दुरन्तपार संसारमें भ्रमते हैं ॥ ५३ ॥ मान लीजिये, यदि मनुष्यगण ही सुख दुःखका कारण है तो उसमें भौतिक शरीरके सिवा आत्माका कर्तृत्व नहीं हो सकता, अर्थात् सुख और दुःख आत्माके कर्म नहीं हो सकते; इस-प्रकार भी यही सिद्ध होता है कि सुख या दुःख मिलनेपर किसीके प्रति अनुराग या कोप न करना चाहिये। जब दोनो शरीरमें आत्मा एक ही है तब दुःख मिलने-पर किसपर कोप किया जाय? यदि कहीं जिह्वा दाँत तले दब जाय तो उस वेदनाके लिये कोई किसपर कोप करेगा? ॥ ५४ ॥ यदि देवतोंको ही सुख-दुःखका कारण मान लें तो उसमें आत्माका क्या सम्पर्क है? वह तो विकाररूप देवतों (इन्द्रियाधिष्ठातादेवतों) हीमें सम्भव है। वे देवगण सब देहोंके लिये एक ही हैं, इसलिये इस मतमें भी दुःखके लिये कौन कोपपात्र हो सकता है? अपने एक अङ्गसे दूसरे अङ्गको चोट पहुँचनेपर कौन पुरुष उस चोट पहुँचानेवाले अङ्गके अधिष्ठाता देवतापर कुपित होता है? ॥ ५५ ॥ यदि आत्मा ही सुख और दुःखका कारण है तो उसमें 'अन्य' कौन है?—जिसका दोष है वह तो अपना ही स्वभाव है। आत्मासे भिन्न कुछ है ही नहीं, यदि है तो मिथ्या है। जब सर्वत्र आत्मा एक ही है तब किसप्रकार किसपर कोप किया जाय? इसलिये न सुख है, न दुःख है; यह सब भ्रान्तिमात्र है ॥ ५६ ॥ यदि सूर्यादि नवग्रह ही सुख, दुःखका कारण हैं तो भी आत्माका क्या बनता बिगड़ता है? आत्मा तो जन्महीन है, जन्मसम्पन्न देहहीको उनके द्वारा सुख दुःख होना सम्भव है; दैवज्ञगण उन ग्रहोंद्वारा देहहीके लिये सुख दुःखका होता बतलाते हैं। अतएव पुरुष किस-पर क्रोध करेगा? वह (आत्मारूप) तो उस (शरीर) से भिन्न है ॥ ५७ ॥ यदि कर्म ही सुख दुःखका कारण है, तो भी आत्माका उससे क्या सम्बन्ध है। विकारिता या हितानुसन्धानसे ही कर्मका होना सम्भव है। किन्तु शरीर विकारी होनेपर भी जड़ है, वह कर्म कर ही नहीं सकता, और आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। इसकारण (मनके सिवा) देह या आत्मासे कर्मकी प्रवृत्ति होही नहीं सकती। सुख दुःखके मूल कर्म ही मिथ्या हैं। तब सुख दुःखके लिये किसपर कोप किया जाय? ॥ ५८ ॥ काल ही यदि सुख या दुःखका कारण है तो भी उसमें आत्माका क्या है? काल परमात्मारूप आत्माका ही अंश है, इसकारण

जैसे अग्निको अग्निका अंश जो ज्वाला है उससे ताप नहीं होता अथवा हिमसे हिमके अंश करका (ओले) समूहको शीतकष्ट नहीं होता वैसेही कालके द्वारा आत्माको भी सुख या दुःख नहीं हो सकता। अतएव किसलिये किसपर कोप किया जाय? ॥ ५९ ॥ अविद्यमान संसृतिका प्रकाशक अहंकार ही इस जीवात्माके सुख दुःख (के भ्रम) का कारण है, वास्तवमें प्रकृतिसे परे आत्माको किसीके द्वारा, कहीं, किसीप्रकार, सुख-दुःखादि द्वन्द्व असम्भव हैं। यों समझकर जो 'प्रबुद्ध' हो गया है वह प्राणियोंसे नहीं डरता, अर्थात् अकुतोभय हो जाता है ॥ ६० ॥ सो मैं इसी पूर्वतम महर्षियोंद्वारा आश्रित परमात्मनिष्ठाका आश्रय लेकर मुकुन्दचरणसेवाद्वारा दुरन्तपार संसारको जाऊँगा" ॥ ६१ ॥ **श्रीभगवान् कहते हैं**—हे उद्धव! असाधुजनोंके पीड़न और तिरस्कारसे वह नष्टधन, गतभ्रम, विरक्त, मननशील, ज्ञानी भिक्षुक उक्त सिद्धान्तको स्थिरकर अपने धर्म-अपनी स्थितिसे नहीं विचलित हुआ और संन्यस्त हो यही (उक्त) गाथा गाता हुआ पृथ्वीपर विचरता रहा ॥ ६२ ॥ हे उद्धव! पुरुषको सुख या दुःख देनेवाला अन्य कोई नहीं है। मित्र, शत्रु, उदासीन एवं समग्र संसारकी कल्पना अवास्तविक और मनका भ्रममात्र है ॥ ६३ ॥ अतएव हे वत्स! मुझमें आसक्त बुद्धिके द्वारा युक्तिपूर्वक (अर्थात् भावनाद्वारा मुझमें लगाकर) मनको वशमें करो; यही योगमात्रका सार-संग्रह है ॥ ६४ ॥

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥
धारयन् श्रावयन् शृण्वन्द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६५ ॥

जो कोई ब्रह्मनिष्ठामय इस भिक्षुगीतको एकाग्रचित्त होकर श्रद्धासहित सुनता सुनाता है और मनन करता है वह सुख दुःख आदि द्वन्द्वधर्मोंसे अभिभूत नहीं होता ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय

सांख्ययोग

श्रीभगवानुवाच-अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥
यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! कपिलदेव आदि प्राचीन आचार्योंद्वारा विशेषरूपसे निश्चित सांख्ययोग अब मैं तुमसे कहता हूँ। सांख्ययोगके द्वारा तत्क्षण

पञ्चविंश अध्याय

गुणवृत्तिनिरूपण

**श्रीभगवानुवाच—गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥
तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥**

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धव ! भिन्न भिन्न प्रकारके सत्त्वादि गुणोंमेंसे जिस गुणसे युक्त पुरुष जैसा होता है—सो मैं कहता हूँ, सुनो ॥ १ ॥ शम, दम, सहनशीलता, विवेक, स्वधर्मपालनरूप तप, सत्य, दया, पूर्वापरका विचार, सन्तोष, उदारता, अनासक्ति, श्रद्धा (आस्तिकता), अनुचित काम करनेमें लज्जा, दीन दरिद्र दुःखी जनोंको अन्न-धन-वस्त्र देना, सरलता, नम्रता आदिक और आत्मरति—ये सतोगुणकी वृत्तियाँ हैं ॥ २ ॥ अभिलाषा, अभिलाषा सिद्ध करनेकी चेष्टा, मद, तृष्णा, गर्व, धन आदिके लिये देवप्रार्थना, भेदभाव, विषयभोग, सुखलालसा, मदजनित हरएकसे भिड़नेका उत्साह, अपनी बड़ाई चाहना, हरएकको हँसना, प्रभाव प्रकाश करना, बलपूर्वक उद्यम करना (न्यायपूर्वक उद्यम सात्त्विक वृत्तियोंके अन्तर्गत है)—ये रजोगुणकी वृत्तियाँ हैं ॥ ३ ॥ क्रोध, लोभ, झूठ, हिंसा, याचना, दम्भ, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, आलस्य, आशा, भय, जड़ता—ये तमोगणकी वृत्तियाँ है । क्रमशः अलग अलग तीनो गुणोंकी वृत्तियाँ लगभग सब कह दी गईं । अब तीनो गुणोंके 'मेल' की मिश्रित वृत्ति कहते हैं, सुनो । 'मैं हूँ, मेरा है' इसप्रकारकी अहंबुद्धिमें तीनो वृत्तियोंका समान अधिकार (मैं शान्त हूँ, मैं कामी हूँ, मैं क्रोधी हूँ) देख पड़ता है, अतएव अहंबुद्धि तीनो गुणोंका सन्निपात या मेल है । अहंबुद्धिपूर्वक मन, द्रव्य (वस्तु) और इन्द्रियोंके सब व्यवहार सन्निपातकी वृत्तियाँ हैं । पुरुष जब धर्म, अर्थ और काममें निरत होता है वही सन्निपात धर्म है; क्योंकि ये सब त्रिगुणात्मक त्रिविध हैं । श्रद्धा, आसक्ति और धन—ये इस सन्निपातके त्रिविध त्रिगुणात्मक फल हैं ॥ ४—७ ॥ जिससमय पुरुषकी सकाम धर्ममें निष्ठा होती है, जब पुरुष गृहस्थाश्रममें आसक्त रहकर अपने नित्य और नैमित्तिक धर्ममें लगा रहता है वही गुणसंसृष्टिका कार्य है, क्योंकि काम्यधर्म, गृहासक्ति और स्वधर्म—सब त्रिगुणात्मक हैं ॥ ८ ॥ (मिश्रित, अमिश्रित गुणवृत्तियाँ दिखाकर 'पुरुष, जिससे जैसा होता है' सो कहते हैं—)शमआदि गुणोंसे युक्त पुरुषको सात्त्विक और कामआदि व्यसनोंसे युक्त पुरुषको राजस एवं क्रोधआदि दोषोंसे युक्त पुरुषको तामस समझना चाहिये ॥९॥ सात्त्विकी प्रकृतिके स्त्री—पुरुष मुझे निरपेक्ष भावसे अपने कर्मोंको मेरी तुष्टिके लिये करताहुआ मुझे भजता है । राजसी प्रकृतिके स्त्री—पुरुष सकाम भावसे मेरा भजन पूजन करते हैं । तामसी प्रकृतिके स्त्री या पुरुष हिंसा (शत्रुमरणादि)की

वासनासे मेरा भजन पूजन करते हैं। सत्त्व, रज, तम—ये गुण जीवके हैं, मेरे नहीं हैं। जीवकी उपाधि जो चित्त है उसीमें ये प्रकट होते हैं; इन्हीमें आसक्त होकर जीव बन्धनको प्राप्त होता है। (मिश्र अमिश्र गुणकार्य दिखाकर अब प्रत्येक गुणकी वृद्धिके कार्य दिखाते हैं) जब प्रकाशक, स्वच्छ और शान्त सतोगुण बढ़कर रजोगुण और तमोगुणको लेता है तब पुरुषको ज्ञान होता है, वह धर्म करता है और सुख पाता है ॥ १०–१३ ॥ जब आसक्ति, भेद और प्रवृत्तिका प्रकाशक रजोगुण बढ़कर अन्य दो गुणोंको दबा लेता है तब जीव कर्मसें प्रवृत्त होता है, यश और लक्ष्मीकी कामना करता है और दुःख पाता है ॥ १४ ॥ जब विवेकको मिटानेवाला, आवरणरूप, आलस्यमय तमोगुण बढ़कर अन्य दो गुणोंको दबा लेता है, तब पुरुष केवल आशा किया करता है, हिंसामें प्रवृत्त होता है, मोहित होता है और शोकपीड़ित होता है, अचेत रहता है ॥ १५ ॥ जब मनमें अत्यन्त शान्ति हो, इन्द्रियोंको तुष्टि हो, देह निर्भय हो और हृदय सङ्गशून्य हो तब मेरी प्राप्तिके स्थानस्वरूप सत्त्वगुणका आविर्भाव समझना चाहिये ॥ १६ ॥ जब क्रियाके द्वारा विकारको प्राप्त पुरुषका चित्त चञ्चल हो, बुद्धि और इन्द्रियोंको सन्तोष न हो और शरीर अस्वस्थ रहे एवं मन भ्रान्त हो तब इन लक्षणोंसे रजोगुणका आविर्भाव जानना चाहिये ॥ १७ ॥ जब चित्त, तिरोहित होतेसमय चिदाकाररूप 'परिणाम'के ग्रहणमें असमर्थ होकर लयको प्राप्त हो, संकल्पात्मक मन भी लीन होजाय, ज्ञान न रहे, ग्लानि हो, तब इन लक्षणोंसे तमोगुणका आविर्भाव समझना चाहिये ॥ १८ ॥ हे उद्धव! सत्त्वगुणके अभ्युदयमें देवतोंका बल बढ़ता है, रजोगुणकी वृद्धिमें असुरोंका और तमोगुणकी वृद्धिमें राक्षसोंका बल बढ़ता है। निवृत्ति, प्रवृत्ति और मोह—स्वभावसम्पन्न इन्द्रियाँ ही क्रमशः देवता, असुर और राक्षस हैं ॥१९॥ सत्त्वसे जागरण, रजसे स्वप्न और तमसे सुषुप्ति अवस्था होती है। तुरीय अवस्था इन तीनोंमें विस्तृत है, अर्थात् निर्गुण, एकरूप, आत्मतत्त्व है ॥ २० ॥ वेदार्थानुष्ठानतत्पर ब्राह्मणजन सत्त्वके द्वारा क्रमशः ब्रह्मलोकपर्यन्त उच्चगतिको प्राप्त होते हैं। तमोगुणके द्वारा स्थावरपर्यन्त अधोगति होती है और रजोगुणके द्वारा मनुष्यशरीर ही मिलता है ॥ २१ ॥ सत्त्वमें लीन जीव स्वर्गको, रजोगुणमें लीन जीव नरलोकको और तमोगुणमें लीन जीव नरकको प्राप्त होता है। जीवन्मुक्त निर्गुण जन मुझको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ मेरी प्रसन्नताके लिये या दासभावसे किया गया निजकर्म सात्त्विक है, फलसंकल्पसे कृत कर्म राजस है, हिंसाके उद्देशसे कृत कर्म तामस है ॥ २३ ॥ देहादिको असत् और आत्माको सत् जानना सात्त्विक ज्ञान है, 'मैं हूँ—मेरा है'—यह समझना राजस ज्ञान है, साधारण सांसारिक ज्ञान तामस है। और मुझमें अपनेको देखना निर्गुण ज्ञान है ॥ २४ ॥

वनमें बसना सात्त्विक है, ग्राम (बस्ती)में रहना राजस है, जहाँ जुआँ आदि कुकर्म हों उस स्थानमें रहना तामस है। और मुझमें अवस्थिति निर्गुण है ॥ २५ ॥ अनासक्त कर्ता सात्त्विक है, अनुरागमूढ़ कर्ता राजस है, अनुसन्धानशून्य कर्ता तामस है। निरहंकार, केवल मेरेही आश्रित कर्ता निर्गुण है। आत्मज्ञानकी श्रद्धा सात्त्विकी है, कर्मकी श्रद्धा राजसी है, अधर्मकी श्रद्धा तामसी है। एवं मेरी सेवाकी श्रद्धा निर्गुण है ॥ २६ ॥ २७ ॥ पथ्य, पवित्र और अनायास प्राप्त आहार सात्त्विक है, इन्द्रियप्रिय आहार राजस है एवं पीड़ाकारी अशुद्ध आहार तामस है ॥ २८ ॥ आत्माका सुख सात्त्विक है, विषयसुख राजस है, मोह और दीनतासे प्राप्त सुखाभास तामस है एवं मुझसे प्राप्त सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ हे उद्धव! द्रव्य, देश, फल, ज्ञान, कर्म, कर्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति और निष्ठा–सभी त्रिगुणात्मक त्रिविध हैं। पुरुष और प्रकृतिके अधिष्ठित सब देखे, सुने और चिन्तित भाव (पदार्थ) त्रिगुणात्मक त्रिविध हैं ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! गुण–कर्मविवश पुरुषको इस त्रिविध संसारका बन्धन प्राप्त होता है। जिस जीवने इन चित्तजनित गुणोंको जीत लिया है और भक्तियोगपूर्वक मेरी निष्ठा प्राप्त कर ली है, वह मेरे भाव(मोक्ष)को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ अतएव ज्ञान–विज्ञानके उपादान इस नर–शरीरको पाकर विचक्षण लोग गुणसङ्गको त्यागकर मुझे भजते हैं ॥ ३३ ॥ विद्वान् और मननशीलको सङ्ग और प्रमाद त्याग कर इन्द्रियजयपूर्वक मुझे भजना और सत्त्व–सेवाद्वारा रजोगुण और तमोगुणको जीतना चाहिये एवं शान्त–बुद्धि तथा निरपेक्ष भावसे उपशमात्मक सत्त्वके द्वारा शुद्ध सत्त्वगुणको भी जीतना चाहिये। इसप्रकार गुणोंसे मुक्त जीव अपनी उपाधि(लिङ्ग–शरीर)को छोड़ मुझे प्राप्त होता ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥
जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ ३६ ॥

लिङ्गशरीर और अन्तःकरणजनित गुणोंसे मुक्त जीव मुझ ब्रह्मकी प्राप्तिसे परिपूर्ण होकर विषयभोग या विषयचिन्ता नहीं करता; अतएव फिर वह नहीं संसारमें आता ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय

ऐल-गीत-वर्णन

श्रीभगवानुवाच—मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥
आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! यह जीव मेरा स्वरूप जाननेके साधन-रूप इस नरतनुको पाकर भक्तिरूप मेरे धर्मका अवलम्ब लेनेसे अपनेमें अवस्थित परमानन्दमय मुझ आत्माको प्राप्त होता है। ज्ञाननिष्ठाके द्वारा गुणमय जीवोपाधिसे मुक्ति प्राप्तकर यह पुरुष अवस्तु—स्वरूप देख-पड़ रहे मायामात्र गुणोंमें वर्तमान होनेपर भी गुण-बन्धनको नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥ २ ॥ केवल स्त्रीसङ्ग और पेट पालनेमें निरत असत् जनोंका सङ्ग कभी भूलकर भी न करना चाहिये। ऐसे विषयी पुरुषके अनुगत पुरुष, जैसे अन्धेके पीछे चलनेवाला अन्धा गिरता है वैसे ही पतित होता है ॥ ३ ॥ राजचक्रवर्ती, महाकीर्तियुक्त महाराज पुरूरवाने उर्वशीविरहजनित मोहमें पड़कर उसे फिर पानेके लिये शोक करते करते अन्तमें निर्वेदको प्राप्त होकर जो कहा है सो मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४ ॥ अपनेको छोड़-कर जा रही उर्वशीके पीछे उन्मत्तके समान नंगे नंगे विलाप करतेहुए "हे निष्ठुर कामिनी! ठहर जा" कहते व्याकुल पुरूरवा दौड़े। तुच्छ काम सेवन करते अनेक वर्ष बीत गये, तब भी वह तृप्त नहीं हुए। उर्वशीने उनके चित्तको ऐसा मोहित कर लिया था कि उन्हे अनेक रात्रियोंका आना जाना नहीं जान पड़ा ॥ ५-६ ॥ निर्वेद होनेपर पुरूरवाने कहा कि—"अहो! कामने मेरे चित्तको महामूढ़ कर दिया था, मुझे अपार मोहने घेर लिया था। उर्वशीका हाथ गलेमें पड़े रहनेसे मुझे यह भी न जान पड़ा कि मेरी आयुके कितने वर्ष बीत गये! ॥ ७ ॥ बड़े खेदकी बात है, इस उर्वशीने मुझे ऐसा मोहित कर लिया कि असंख्य वर्ष—दिवस बीत गये; किन्तु मैंने नहीं जाना कि नित्य कब सूर्योदय होता था और कब सूर्य अस्त होते थे! ॥ ८ ॥ अहो! मेरे आत्माके महामोहको देखो कि राजशिरोमणि चक्रवर्ती होकर मैंने अपनेको स्त्रीका क्रीड़ामृग बना डाला ॥ ९ ॥ राज्यसामग्री-सहित अपने ऐश्वर्यको तृणतुल्य त्यागकर नंगे नंगे उन्मत्तोंकी भाँति रोता हुआ मैं उसके पीछे दौड़ा गया ॥ १० ॥ जो व्यक्ति पादप्रहार सह कर भी पीछा करने-वाले गधेके समान छोड़कर जा रही स्त्रीके पीछे अनुनय करता जाय उसके प्रभाव, तेज और बल कहाँ है? स्त्रियोंने जिसका मन हर लिया है उसकी विद्या, तप, संन्यास, एकान्तवास, वाक्यसंयम आदि सब निष्फल हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ मैं चक्रवर्तीपदको पाकर बैल और गधेके समान स्त्रीके वशमें हो गया। मैं

स्वार्थको नहीं जानता, मुझे धिक्कार है। मैं मूर्ख होकर भी अपनेको पण्डित मानता हूँ ॥ १३ ॥ अनेक वर्षतक उर्वशीके अधरामृतको पीकर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई, वरन् घीकी आहुति पाकर जिसप्रकार अग्नि प्रचण्ड होता है उसी-प्रकार और भी वारंवार कामवृद्धि होती रही ॥ १४ ॥ आत्माराम जनोंके ईश्वर अधोक्षज भगवान् ईश्वरके सिवा और कौन कुलटाके द्वारा अपहृतचित्त मुझको मुक्त करसकता है? ॥ १५ ॥ मैं अत्यन्त अजितेन्द्रिय और कुमति हूँ; उर्वशीने वारंवार उचित सत्य वचन कहकर मुझे समझाया, परन्तु फिर भी मेरे मनका महामोह नहीं जाता ॥ १६ ॥ उर्वशीने मेरा क्या अपकार किया? मुझको रस्सीमें सर्पका भ्रम हो गया, मैं साक्षीरूप आत्माके रूपको अबतक नहीं जान सका। मैं अजितेन्द्रिय होनेके कारण स्वयं अपना अपराधी हूँ ॥ १७ ॥ कहाँ यह मलिन, दुर्गन्धिपूर्ण, अपवित्र शरीर! और कहाँ सुमनसम्बन्धी सुकुमारता, सुवाससदृश सम्पूर्ण गुण! अविद्यावश ऐसे शरीरमें ऐसे गुणोंका आरोपकर मैंने आप अपनेको नष्ट किया ॥ १८ ॥ नहीं जान पड़ता कि इस शरीरपर पिता माताका स्वत्व है, या भार्याका स्वत्व है, या स्वामीका स्वत्व है, या अग्निका स्वत्व है, या कुत्ते और गिद्धोंका स्वत्व है, या बन्धु-बान्धवोंका स्वत्व है? ॥ १९ ॥ ऐसे क्षणभङ्गुर, तुच्छ और अपवित्र कलेवरमें 'अहो इस स्त्रीका कैसा सुन्दर मुख है! नासिकाकी कैसी उत्तम गठन है! कैसी मनोहर मन्द मुसकान है'—ऐसी भावना कर आसक्त होनेवालेसे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा? ॥ २० ॥ त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा और अस्थिके बनेहुए इस विष्ठा-मूत्र-पीव आदि अपवित्र पदार्थोंसे परिपूर्ण शरीरमें रमनेवालोंमें और कीड़ोंमें कितना अन्तर है? विवेकी लोग यों विचार कर स्त्री और स्त्रीसङ्ग करनेवालोंका सङ्ग कदापि न करें। विषय और इन्द्रियका संयोग होनेसे मन चलायमान होता है; अन्यथा नहीं होता ॥२१॥२२॥ विषयको देखे, और सुने विना मनमें वासनाका उदय नहीं होता। अतएव जो लोग इन्द्रियसंयम करते हैं उनका मन स्थिर और शान्त रहता है। इसकारण इन्द्रियोंके द्वारा भी स्त्री और स्त्रीसङ्गी पुरुषोंसे संसर्ग न रखना चाहिये। मुझऐसे अविवेकी जनोंकी कौन कहे, बड़े बड़े विवेकी जनोंको भी मनसहित पाँचो ज्ञानेन्द्रियोंका विश्वास नहीं करना चाहिये कि 'हमने इनको वशमें कर लिया है' ॥ २३ ॥ २४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! राजचक्रवर्ती पुरूरवा यों कहते हुए उर्वशीलोकको छोड़ अपनेमें आत्मारूपसे अवस्थित मुझको जान-कर मुक्त होगये। उनका सब मोह ज्ञानके द्वारा नष्ट हो गया ॥ २५ ॥ हे उद्धव! इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि कुसङ्गको त्यागकर सज्जनोंका सङ्ग करे। साधुजन हितोपदेशके द्वारा उसके मनकी आसक्तिको दूर कर देते हैं ॥ २६ ॥ निरपेक्ष भावसे मुझमें चित्त लगानेवाले, प्रशान्त, समदर्शी, ममताशून्य, अहं-

काररहित, निर्द्वन्द्व और अकिञ्चन जन ही यथार्थ साधु हैं ॥ २७ ॥ हे महाभाग! उन महाभाग्यशाली साधुजनोंमें सर्वदा हितकारिणी मेरी कथाओंकी चर्चा होती रहती है। उन कथाओंके सुननेसे सब प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और हृदय निर्मल होता है ॥ २८ ॥ उन कथाओंको जो लोग श्रद्धापूर्वक कहते, सुनते और गाते हैं तथा अनुमोदन करते हैं उन्हे मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ हे साधुप्रवर! मुझ अनन्तगुणशाली, आनन्दानुभवरूप ब्रह्ममें अनन्य भक्ति होने-पर फिर और कौन वाञ्छनीय विषय अवशिष्ट रह जाता है? जैसे भगवान् अग्निका आश्रय लेनेसे शीत, अन्धकार और भय नहीं निकट आता वैसे ही सत्सङ्ग करनेवालेके निकट पाप, अज्ञान और संसारभय नहीं आता ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे जलमें डूबने उतरानेवालेके लिये दृढ़ नौका परम आश्रय है वैसेही भवसागरमें नीचे ऊपर आने-जानेवाले जीवोंके लिये ब्रह्मज्ञ साधुगण एकमात्र अवलम्ब हैं ॥ ३२ ॥ जैसे अन्न प्राणियोंका प्राण है, जैसे मैं आर्तजनोंका आश्रय हूँ, जैसे धर्म परलोकमें साथ जानेवाला मनुष्योंका धन है, वैसेही साधुजन, संसार-पतनभीत पुरुषके रक्षक हैं ॥ ३३ ॥ हृदयके भीतर साधुजन ज्ञानरूप नेत्रोंको प्रकाशित करते हैं और सूर्य बाहरी नेत्रोंको प्रकाशित करते हैं। साधुगणही यथार्थ देवता और बान्धव हैं। साधुगणही आत्मा और मेरा रूप हैं ॥ ३४ ॥

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्यालोकनिःस्पृहः ॥
मुक्तसङ्गो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥

हे उद्धव! तदनन्तर महाराज पुरूरवा, इसप्रकार उर्वशी-लोककी लालसा छोड़ सङ्गत्यागपूर्वक आत्माराम होकर इस पृथ्वीमें विचरते रहे और अन्तमें मुझको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय

क्रियायोग वर्णन

उद्धव उवाच–क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥
यस्मार्च्चां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ् ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे सात्त्वतश्रेष्ठ प्रभो! भक्तजन जिसके द्वारा जिसप्रकार आपकी आराधना करते हैं वह क्रियायोग आप कृपा कर कहिये ॥ १ ॥ नारद, भगवान् व्यास, अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पति आदि महर्षियोंने इस क्रियायोगको

वारंवार मुक्तिका साधन बताया है ॥ २ ॥ आपके मुखारविन्दसे निकलेहुए क्रियायोगको भगवान् ब्रह्माने अपने भृगु आदि पुत्रोंसे और भगवान् शंकरने पार्वतीसे कहा है ॥ ३ ॥ हे मानद ! यह क्रियायोग तीनो वर्ण और चारो आश्रमोंका सम्मत विषय है और मैं समझता हूँ कि स्त्री और शूद्रोंके लिये यही परम-श्रेय है ॥ ४ ॥ हे कमलनयन ! हे विश्वेश्वरोंके भी ईश्वर ! मैं आपका अनुरक्त भक्त हूँ, मुझसे कृपापूर्वक यह कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला क्रियायोग कहिये ॥ ५ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा**—हे उद्धव ! कर्मकाण्ड असीम और अपार है, इसका अन्त नहीं है । अतएव आनुपूर्विक क्रमसे यथावत् संक्षेप वर्णन करता हूँ । वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र ये तीन प्रकार मेरी 'पूजा'के हैं । इन तीनो विधियोंमेंसे चाहे जिस विधिसे मेरी पूजा करे, इनका पूजकको अधिकार है । अपने अधिकारके अनुसार यथासमय यज्ञोपवीतसंस्कारके द्वारा द्विज-पदवी पाकर जब जिसप्रकार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करना चाहिये सो मैं कहता हूँ, एकाग्र होकर सुनो ॥ ६–८ ॥ द्विज वर्णोंको चाहिये कि निष्कपट शुद्ध चित्तसे प्रतिमामें, पृथ्वीमें, अग्निमें, सूर्यमें, जलमें, हृदयमें, ब्राह्मणमें अपने परम गुरु मुझको सादर पूजें और भजें ॥ ९ ॥ दन्तधावनके उपरान्त अङ्गशुद्धिके लिये प्रथम स्नान करना चाहिये । स्नानमें मृद्ग्रहण आदिमें समय वैदिक या तान्त्रिक मन्त्र पढ़ने चाहिये ॥ १० ॥ वेद–तन्त्रविहित संध्योपासन आदि नित्य-कर्मोंसहित मेरीही प्रसन्नताके लिये कर्मपावनी मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ११ ॥ मेरी आठ प्रकारकी प्रतिमा कही गई है–शिलाकी, काठकी, धातुकी, चन्दनादि-लेपकी, लिखी हुई, वालूकी, मणिकी और मनोमयी प्रतिमा मेरा मन्दिर है; प्रतिमा चल और अचल दो प्रकारकी होती है । हे उद्धव ! स्थिर प्रतिमामें पूजा करनी हो तो आवाहन और विसर्जन करनेकी आवश्यकता नहीं है, अस्थिर प्रतिमामें चाहे करे और चाहे न करे; किन्तु वालुकामयी प्रतिमामें आवाहन तथा विसर्जन अवश्य कर्तव्य है । लेखमयी, लेपमयीमें केवल जल छिड़क देना चाहिये और अन्यत्र स्नान कराना चाहिये । निष्काम भक्तोंको चाहिये जो मिल सकें उन उत्तम सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक प्रतिमामें अथवा हृदयमेंही मेरी मानसी पूजा करें । इसप्रकार प्रतिमामें स्नान, चन्दन, आभूषणादिसे; वालुका-वेदीमें विशेष विशेष मन्त्रोंके द्वारा प्रधानदेवताकी स्थापनासे; अग्निमें घृत-मिली हवन-सामग्रीसे; सूर्यमें नमस्कार, अर्घ्यदानसे एवं जलमें जल आदि (तर्पण) से मेरी पूजा करना आवश्यक है; अर्थात् इन इन प्रतिमाओंमें ये ये उपचार मुख्य हैं । भक्तका श्रद्धापूर्वक दिया हुआ थोड़ासा जल भी मुझे प्रसन्न कर सकता है । बिना भक्ति अर्पित अपार अमूल्य सामग्री भी मुझे नहीं प्रसन्न कर सकती; तब तब बिना भक्तिके अर्पित चन्दन, फूल, धूप, दीप, नैवेद्यकी तो कोई बातही नहीं है ॥ १२–१८ ॥ पवित्रतापूर्वक सब

सामग्रीका संग्रह कर कुशासनपर पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठ कर, एवं यदि स्थिर प्रतिमा हो तो प्रतिमाके सम्मुख बैठकर मेरा आराधन करना चाहिये। तदनन्तर गुरु आदिको प्रणाम कर, गुरुके उपदेशके अनुसार स्वयं अङ्गन्यास, करन्यास आदि न्यास कर प्रतिमामें मूलमन्त्रन्यास करे और फिर निर्माल्य आदि हटाकर प्रतिमाका संस्कार करे। तदनन्तर कलश और प्रोक्षणीपात्रको यथावत् चन्दन पुष्पादिसे अलंकृतकर प्रोक्षणीपात्रके जलसे उस स्थानको, अपनेको और पूजाकी सामग्रीको शुद्धकर एवं पाद्य अर्घ्य आचमनीयके तीन पात्रोंको प्रथम जल भरकर क्रमशः श्यामाक, दूब, विष्णुक्रान्ता आदिसे और गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों और दूबसे एवं जायफल, लवङ्ग आदिसे सम्पन्न करना चाहिये। पूजकको चाहिये कि फिर उक्त तीनो पात्रोंको हृन्मन्त्र, शिरोमन्त्र और शिखामन्त्रसे अथवा केवल गायत्रीसे अभिमन्त्रित करे॥ १९–२२॥ प्राणवायु, और शारीरिक अग्निके द्वारा संशोधित पिण्डमें, हृदयकमलमें नादरूप ओंकारके अन्तमें विन्दुरूपसे सिद्ध लोग जिसकी भावना करते हैं उस मेरी सूक्ष्म और श्रेष्ठ जीवकला(नारायणमूर्ति)का ध्यान करना चाहिये॥ २३॥ जैसे दीपककी प्रभासे गृह व्याप्त होजाता है उस प्रकार उस मूर्तिसे ध्यानके द्वारा हृदय व्याप्त होनेपर तन्मयभावसे प्रथम मानसी पूजा कर प्रतिमामें आवाहनपूर्वक स्थापित करनेके उपरान्त साङ्गोपाङ्ग न्यास कर मेरा पूजन करना चाहिये॥ २४॥ धर्मादिक और नव शक्तियोंके द्वारा मेरे आसनकी कल्पनाकर और उसमें सूर्यादिमण्डलरूप कर्णिका और केसरोंसे प्रकाशमान अष्टदल कमलकी कल्पना कर वेद और तन्त्रके द्वारा भोग और मोक्षके लिये पाद्य, आचमनीय, अर्घ्य आदि उपचार अर्पित करने चाहिये॥ २५॥ २६॥ फिर सुदर्शन, पाञ्चजन्य, गदा, असि, बाण, धनुष, हल, मुसल, कौस्तुभ, माला और श्रीवत्सकी यथास्थान स्थापना तथा पूजा करे॥ २७॥ तदनन्तर नन्द, सुनन्द, गरुड़, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण, दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरुगण और सुरगणको ईश्वरके सम्मुख यथास्थान स्थापित कर प्रोक्षण आदिसे पूजे॥ २८॥ २९॥ शक्ति हो तो कपूर, कुङ्कुम, और अगुरुसे सुवासित जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक मुझे स्नान करावे। फिर स्वर्णघर्मआदि मन्त्रसे, पुरुषसूक्त और सामगानसे, राजनपाठसे मेरी स्तुति करनी चाहिये। वस्त्र, उपवीत, अलङ्कार, पत्ररचना, माला, सुगन्ध लेपन आदि अलंकारोंसे यथोचित रीतिसे मेरा भक्त मुझे अलंकृत करे। पूजकको चाहिये कि श्रद्धापूर्वक पाद्य, आचमनीय, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप एवं अन्यान्य उपहारोंसे मुझे सन्तुष्ट करे। जैसा विभव हो तदनुसार गुड़, पायस, घृत, पूरी, पिष्टक, मोदक, जमाया हुआ दही, व्यञ्जन आदिका भोग लगाना चाहिये॥ ३०–३३॥ शक्ति हो तो नित्य, नहीं तो एका-

दशी आदि पर्वोंके दिन अभिषेक, उबटना, शीशा दिखाना, दंतून कराना, पञ्चामृतसे स्नान कराना, भाँति भाँतिके नैवेद्य और गाना, बजाना आदि करना चाहिये ॥ ३५ ॥ गृह्यसूत्रमें उक्त विधिसे मेखला, गर्त और वेदीयुक्त कुण्डकी रचना कर उसमें चारो ओर अग्न्याधानकर हाथकी हवासे अग्निको प्रज्वलित कर एकत्र मेखलाकार करे ॥ ३६ ॥ फिर चारो ओर क्रमशः कुशविन्यास कर व्याहृतियोंके द्वारा यथाविधि समित्–हवन आदि अन्वाधान कर्म करे। तदनन्तर अग्निके उत्तर ओर हवनमें आवश्यक सामग्री धरकर, उसे प्रोक्षणीपात्रका जल छिड़क कर शुद्ध करे। तदनन्तर अग्निमें इस रूपसे मेरा ध्यान करे कि शरीरकी आभा तपायेहुए सुवर्णके सदृश है, चारो भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं, शान्त आकृति है, पद्मपराग-वर्ण वस्त्र शरीरपर शोभायमान है, शरीरमें प्रकाशमान किरीट, मुकुट, कटक, कटिसूत्र और श्रेष्ठ अङ्गदआदि अलङ्कार सुशोभित हैं। वक्षःस्थलमें श्रीवत्स, वनमाला और कौस्तुभ विराजमान हैं। इसप्रकार ध्यान और पूजा करनेके उपरान्त पहले घृतसिक्त सूखी लकड़ियोंके टुकड़ोंकी आहुति देकर 'आर', 'वार' नामक दो घृताहुति छोड़ कर और तत्सम्बन्धी साकल्यकी आहुतियाँ डालकर पुरुषसूक्त और मूलमन्त्रके द्वारा घृत-मिली साकल्यसे प्रतिमन्त्र आहुति देनी चाहिये। फिर विद्वान् पूजक पूजाक्रमके अनुसार विशेष विशेष मन्त्रोंके द्वारा धर्मादिके उद्देशसे 'स्विष्टकृत्' हवनकर अग्नि-मध्यस्थ भगवान्की पूजाके उपरान्त प्रणाम कर पार्षदोंके उद्देशसे बलिप्रदान करे। फिर नारायणात्मक ब्रह्मका स्मरण कर मूलमन्त्रको जपे। तदनन्तर आचमन करानेके उपरान्त विष्वक्सेनको नारायणका प्रसाद अर्पित करे (और पूजा समाप्त कर उस बचेहुए प्रसादको सादर ग्रहण करे)। फिर सुगन्धित मुखवास-सहित ताम्बूल आदिके बाद पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। मेरे गुण गावे, मेरी चर्चा करे, मेरे चरित्रोंका कीर्तन करे, मेरे नामोंका उच्चारण करे, मेरी कथा सुने और सुनावे, मेरी लीलाओंका अभिनय करे; इसप्रकार मुहूर्तभर तन्मय होकर प्रार्थना करे। पुराणोक्त और सर्वसाधारणकृत विविध छोटे बड़े स्तोत्रोंसे स्तुति कर 'हे भगवन्! प्रसन्न होइये' कहता हुआ दण्डवत् प्रणाम करे। चरणोंपर शिर धरकर अपने दोनो हाथोंसे प्रतिमाके दोनो चरण पकड़कर कहे कि "हे ईश्वर! मैं शरणागत हूँ, संसारसागरके मृत्युरूप ग्राहसे भीत हूँ; मेरी रक्षा करिये" ॥ ३७–४६ ॥ इसप्रकार प्रार्थना करनेके उपरान्त मेरे निर्माल्यको सादर मस्तकसे लगाकर यदि विसर्जनयोग्य प्रतिमा हो तो प्रतिमामें स्थापित ज्योतिको हृदयकमलकी ज्योतिमें विसर्जनपूर्वक लीन करे ॥ ४७ ॥ जब जिस प्रतिमा आदिमें श्रद्धा हो तब उसीमें मेरी पूजा करे, क्योंकि सब प्राणियोंमें और आत्मामें सर्वव्यापक सर्वात्मा मैं अवस्थित हूँ ॥ ४८ ॥ हे उद्धव! पुरुष इसप्रकार वैदिक और

तान्त्रिक क्रियायोगके मार्गोंद्वारा पूजाकर मुझसे भोग और मोक्ष, दोनो प्रकारकी अभीष्ट-सिद्धि पाता है ॥ ४९ ॥ पूजकको चाहिये कि शक्ति हो तो दृढ़ मन्दिर बनवा कर उसमें मेरी प्रतिमाकी स्थापना करे। नित्य पूजा-यात्रा (विशेष पर्वके दिन बहुजन-समागम) और उत्सव (वसन्तादि)के बराबर होते रहनेके लिये फूलबाग क्षेत्र हाट ग्राम आदि देनेसे मेरे समान ऐश्वर्य मिलता है ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ मूर्तिप्रतिष्ठा करनेसे चक्रवर्ती राज्य, मन्दिर बनवानेसे इन्द्रपद, पूजा करनेसे ब्रह्मलोक एवं उक्त तीनो काम करनेसे मेरी समता प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ हे उद्धव! निष्काम भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे मैं मिलता हूँ। इसप्रकार जो कोई मेरी पूजा करता है उसे भक्तियोग प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ जो कोई अपनी या दूसरेकी दी हुई देववृत्ति या ब्राह्मणवृत्तिको हरलेता है वह एक लाख वर्षतक विष्ठाका कीड़ा होकर रहता है ॥ ५४ ॥

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥

कर्ता सहकारी प्रेरक और अनुमोदन करनेवाला—ये चारो समान फलभागी हैं। अधिक कर्मका फल भी अधिक है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय

परमार्थनिर्णय

श्रीभगवानुवाच—परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥
विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव! ज्ञानीको चाहिये कि प्रकृति और पुरुष दोनोसे विश्वको एकात्मक देखता हुआ किसीके भले बुरे स्वभाव या भले बुरे कर्मोंकी प्रशंसा अथवा निन्दा न करे ॥ १ ॥ जो कोई दूसरेके स्वभाव या कर्मोंकी प्रशंसा या निन्दा करता है वह असत् द्वैतके अभिनिवेश द्वारा शीघ्रही ज्ञाननिष्ठारूप स्वार्थसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ राजस अहङ्कारका कार्य जो इन्द्रियाँ हैं उनके निद्राभिभूत होनेपर जैसे देहस्थ जीव स्वप्नरूप माया अथवा चेतनाशून्य होकर सुषुप्तिरूप मृत्युको प्राप्त होता है वैसे ही द्वैतविषयमें अभिनिवेश करनेवाला पुरुष भी विक्षेप (चञ्चलता) और लयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ द्वैत मिथ्या है, उसमें भला या बुरा क्या और कितना है? जो केवल वाक्यके द्वारा कथित और

मनके द्वारा चिन्तित है वह सब मिथ्या है ॥ ४ ॥ जैसे प्रतिबिम्ब प्रतिध्वनि और भ्रम, अवस्तु होकर भी वस्तुबोधवश अनर्थका कारण होते हैं वैसे ही देहादि असत् पदार्थभी मृत्युपर्यन्त भयदायक हैं ॥ ५ ॥ यह प्रभु ईश्वर आत्माही इस विश्वरूपसे सृष्ट होता है और स्रष्टा रूपसे सृष्टि करता है, स्वयं पालित होता है और पालन करता है एवं स्वयंलीन होता है और लय करता है, अतएव आत्मासे भिन्न कोई भी भाव नहीं निरूपित है। आत्मामें यह (अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव) त्रिविध प्रतीति अमूलक अलीक है ॥६॥७॥ उक्त त्रिविध गुणमयी प्रतीति मायाकृत है। मेरी कही हुई ज्ञान-विज्ञान-निष्ठाको भलीभाँति समझनेवाला प्रवीण पुरुष न किसीकी स्तुति करता है और न किसीकी निन्दा करता है; सूर्यके समान सर्वत्र सम-भावसे सदा विचरता है ॥ ८ ॥ प्रत्यक्ष अनुमान निगम (अप्रत्यक्ष) और अपने अनुभवके द्वारा आत्मासे भिन्न पदार्थको आदि-अन्त-युक्त अतएव असत् जानकर सङ्गत्यागपूर्वक इस लोकमें विचरा करे ॥९॥ उद्धवने पूछा—हे ईश्वर! यह दृश्यमान संसार, यदि चेतन साक्षीस्वरूप आत्माको नहीं है और अचेतन दृश्यरूप देहको भी नहीं है, तो फिर इसकी उपलब्धि किसको होती है? आत्मा तो अविनाशी, निर्गुण, विशुद्ध, ज्योतिःस्वरूप, आवरणशून्य, अग्नितुल्य है और देह अचेतन काष्ठसदृश है; तब संसार किसको होता है? यह कृपा कर कहिये ॥ १० ॥ ११ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! जबतक शरीर, इन्द्रिय और प्राणोंसे आत्माका सम्बन्ध रहता है तबतक यह संसार वास्तवमें असत् होनेपर भी अविवेकीको सत्यसा प्रतीत होता है। जैसे स्वप्नावस्थामें अर्थ न होनेपर भी अनर्थकी प्राप्ति होती है, वैसेही सांसारिक विषयोंका ध्यान करनेवाले जीवका संसार, असत् होनेपर भी नहीं निवृत्त होता ॥ १२ ॥ १३ ॥ जैसे निद्रित व्यक्तिको स्वप्नसे अनेक अनर्थ जान पड़ते हैं, किन्तु जागनेपर वह स्वप्न फिर मोह नहीं उत्पन्न कर सकता ॥१४॥ शोक; हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा, जन्म और मरण आदिक सब सांसारिक भाव देहाभिमानजनित हैं; शुद्ध आत्माके नहीं हैं ॥ १५ ॥ देह, इन्द्रिय, प्राण और मनसे संसृष्ट अभिमानशाली आत्मा ही अन्तःस्थ जीव है, अतएव गुण-कर्म-मूर्ति है; उसीको सूत्र और महत्तत्त्व आदि अनेक नामोंसे अभिहित करते हैं। वही कालके अनुगत होकर संसारको प्राप्त और संसारसे मुक्त होता है ॥१६॥ मुनिको चाहिये कि इस अमूलक होनेपर भी बहुत रूपोंसे निरूपित मन, वाक्य, प्राण, शरीर और कर्म-रूप उपाधिबन्धनको गुरुकी उपासनासे तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्गके द्वारा काटकर निष्काम-निरपेक्षभावसे पृथ्वीमण्डलमें विचरै ॥१७॥ 'इस विश्वके आदिमें जो प्रकाशक वस्तु थी वही अन्तमें भी रहेगी और मध्यमें भी केवल वही वर्तमान है'—वेद, स्वधर्म, प्रत्यक्ष, उपदेश और तर्कके द्वारा इसप्रकारका जो विवेक उत्पन्न होता है उसीको 'ज्ञान' कहते हैं। जैसे जो सुवर्ण सम्पूर्ण सुवर्णनिर्मित पदार्थोंके पूर्वमें था एवं अन्तमें भी

रहेगा, वह सुन्दररूपसे गठित और नाना नामोंसे व्यवहृत होनेपर भी अपने ही रूपमें अवस्थित रहता है वैसे ही मैं भी इस विश्वका हेतु हूँ,-इसके पूर्व और परमें समभावसे अवस्थित हूँ ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे उद्धव! अवस्थात्रयसम्पन्न मन, तीनो गुण एवं कार्य, कारण और कर्ता (अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत)-ये सब जिस शुद्ध निर्गुण ब्रह्मके साथ अन्वय-व्यतिरेकद्वारा सिद्ध होते हैं वही ब्रह्म सत् है ॥ २० ॥ जो कार्य और प्रकाश्य, पहले नहीं था, अन्तमें भी न रहेगा, वह मध्यमें भी नहीं है;-केवल नाममात्र है। क्योंकि जो जो अन्यसे उत्पन्न और प्रकाशित है सो सब वही उत्पादक और प्रकाशक है-यह मेरी धारणा है ॥ २१ ॥ यह वैकारिक प्रपञ्च पहले नहीं था, ब्रह्मकर्तृ रजोगुणके द्वारा सृष्ट और प्रकाशित हुआ है। ब्रह्म स्वतःसिद्ध और स्वप्रकाश है; अतएव ब्रह्म ही इन्द्रिय, तन्मात्रा, मन और पञ्चतत्त्व इत्यादि अनेक रूपोंसे प्रकाशमान है ॥ २२ ॥ हे उद्धव! इसप्रकार ब्रह्मविवेकके हेतु ब्रह्मको प्रत्यक्ष, अनुमान आदि उपायोंसे व्यक्त जानकर एवं निपुण गुरुसे प्राप्त अतन्निरसनके द्वारा देहाभिमानजनित भेदभावरूप आत्मसन्देहको नष्ट कर, विषयग्राहिणि इन्द्रियोंको विषयसंगसे निवृत्त करे और आत्मानन्दमें सन्तुष्ट रहे ॥ २३ ॥ यह पार्थिव शरीर आत्मा नहीं है और इन्द्रियसमूह, इन्द्रियाधिष्ठाता देवता, प्राण, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि, चित्त एवं अहङ्कार भी आत्मा नहीं हैं। कारणरूप अन्नमात्र आकाश, पृथ्वी, शब्दादि विषय एवं प्रकृति भी आत्मा नहीं हैं; क्योंकि जड़ हैं। जिसके निकट मेरा रूप भलीभाँति प्रकाशित हो गया है उसके लिये गुणमय इन्द्रियोंके समाहित होनेसे कोई गुण और इन्द्रियोंके चंचल होनेसे कोई दोष नहीं घटित हो सकता। मेघोंके आने जानेसे प्रकाशक सूर्यको क्या लाभ हानि है? ॥ २४ ॥ २५ ॥ जैसे आकाश-वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीके गुणोंमें अथवा आने-जानेवाली ऋतुओंके गुणोंमें नहीं लिप्त होता वैसे ही अहंकारसे अतीत अविनाशी आत्मा, संसारके हेतु जो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणके मल हैं उनमें नहीं लिप्त होता ॥२६॥ तथापि जबतक मेरे दृढ़ भक्तियोगके द्वारा पूर्णतया राग-रोषादि मनके मैल न मिट जायँ तबतक मायारचित गुणोंका सङ्ग न करना ही कर्तव्य है ॥ २७ ॥ जैसे पूर्णतया जिसकी चिकित्सा नहीं हुई वह रोग वारंवार प्रकट होकर मनुष्योंको विशेष पीड़ा पहुँचाता है वैसे ही मन भी पूर्णतया रागादि मल और रागादिजनित कर्मोंसे शून्य हुए विना सर्वसंगासक्त कुयोगीको वारंवार चलायमान करता है ॥ २८ ॥ जो कच्चे योगी देवप्रेरित नराकार विघ्नोंके द्वारा अपने मार्गसे स्खलित होते हैं वे जन्मान्तरमें प्राक्तन अभ्यासके कारण योगमें ही निरत होते हैं; कर्मकाण्डमें नहीं प्रवृत्त होते ॥ २९ ॥ यह अविद्वान् जीव किसी संस्कार आदिकी प्रेरणासे मृत्युपर्यन्त कर्म करता है और विकारको

प्राप्त होता है। किन्तु विद्वान् जीव शरीरसें अवस्थित होकर भी आत्मानन्द-सम्भोगके द्वारा तृष्णाशून्य होकर शरीर और शरीरसम्बन्धी विषयोंसें नहीं आसक्त होता ॥ ३० ॥ जिसकीबुद्धि आत्मासें अवस्थित है वह बैठे, चलते, सोते, मूत्र-त्याग करते, अन्न-भोजन करते और स्वभावसिद्ध दर्शन, श्रवण, स्पर्शादि करते शरीरको और शरीरके उक्त कर्मोंको, शरीरमें अवस्थित होकर भी नहीं जानता ॥ ३१ ॥ विवेकी व्यक्ति, यद्यपि बहिर्मुख इन्द्रियोंके विषयोंको देखता है, तथापि अनुमानके विरुद्ध आत्मासे भिन्न अन्य पदार्थोंको सत् नहीं मानता; जैसे निद्रित व्यक्ति जाननेपर विलीयमान स्वप्नदृष्ट वस्तुको असत् जानता है ॥ ३२ ॥ हे उद्धव! पहले सब गुण और कर्मोंके द्वारा विविधरूप आत्मामें अभिन्न भावसे गृहीत देह-इन्द्रियादिरूप अज्ञान-कार्य ज्ञानोदय होनेपर निवृत्त हो जाते हैं; आत्मा न गृहीत ही होता है और न व्यक्त ही होता है ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्यका उदय,-मनुष्यदृष्टिके आवरणरूप अन्धकारको दूर कर देता है, किसी पदार्थकी सृष्टि नहीं करता वैसे ही साध्वी, निपुणा, आत्मविद्या पुरुषबुद्धिके अन्धकार (अज्ञान) को नष्ट कर देती है ॥ ३४ ॥ यह आत्मा—ज्योतिःस्वरूप, अज, अप्रमेय, समग्र-अनुभूतिस्वरूप है, अतएव महाअनुभूति एवं एक, अद्वितीय और अनिर्वचनीय है; इसीके द्वारा परिचालित होकर वाक्य और प्राण अपना अपना कार्य करते हैं ॥ ३५ ॥ अभिन्न आत्मामें विकल्प-कल्पनाही मनका भ्रम है; क्योंकि निज-आत्मोपाधि मनके सिवा अन्य इसका अवलम्ब नहीं है ॥३६॥ 'नाम-रूपके द्वारा उपलक्षित यह पञ्चभूतात्मक द्वैत अबाधित है'—इस समझसे इस विषयमें अपनेको जो पण्डित मानते हैं उनको ही ऐसी प्रतीति होती है कि "वेदान्तसें जो यह कथित है कि 'द्वैत केवल नाममात्रको है' सो केवल अर्थवादमात्र है"। जो तत्त्वज्ञानी हैं उनको ऐसी प्रतीति नहीं होती, क्योंकि उनकी दृष्टिमें तो आत्माके सिवा सब असत् है ॥३७॥ योगाभ्यास करनेवाले अपक्वयोग योगीका शरीर—अभ्यन्तरसे उठनेवाले रोगादि उपद्रवोंके द्वारा विघ्नविहत होता है। उन विघ्नरूप आन्तरिक उपद्रवोंके दूर करनेकी यह विधि है ॥ ३८ ॥ कुछ उपद्रवोंको योगधारणाके द्वारा और कुछ उपद्रवोंको धारणायुक्त दृढ़ आसनके द्वारा एवं कुछ उपद्रवोंको तप, मन्त्र और औषधके द्वारा शान्त करना चाहिये ॥ ३९ ॥ कुछ उपद्रवोंको मेरे ध्यानसे, मेरे नामकीर्तन आदिसे और कुछ विघ्नोंको योगेश्वरोंकी उपासनासे क्रमशः शान्त करना चाहिये। इसप्रकार शुभ उपायोंसे अशुभकारी विघ्नोंका विनाश करना चाहिये ॥ ४० ॥ कुछ योगीजन पहले अनेक प्रकारके उपायोंसे इस शरीरको जरा-रोगादिरहित एवं युवावस्थामें स्थापित कर फिर विशेष विशेष सिद्धियोंके लिये योगधारणा करते हैं ॥४१॥ किन्तु प्राज्ञलोग इसका आदर नहीं करते, सिद्धियोंके लिये योगधारणाका प्रयास निरर्थक है; क्योंकि वनस्पतिके फलकी भाँति शरीरका नाश अवश्य होना

है, और उक्त सिद्धियाँ शरीरपर्यन्त हैं ॥ ४२ ॥ नित्य योगाभ्यास करते करते योगीका शरीर यदि जरा-रोगादिरहित हो जाय तो मत्परायण बुद्धिमान् योगीको चाहिये कि उक्त सिद्धियोंको ही पुरुषार्थ न समझे और मेरी प्राप्तिके लिये योगमें तत्पर रहे ॥ ४३ ॥

योगचर्यामिमां योगी विचरन्मद्व्यपाश्रयः ॥
नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

जो योगी मेरी शरण लेकर इसप्रकार योग करता है वह विघ्नोंसे भ्रष्ट नहीं होता और निःस्पृह होनेसे प्राप्त परमानन्दमें मग्न रहता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश अध्याय

उद्धवका बदरिकाश्रमगमन

उद्धव उवाच—सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥
यथाञ्जसा पुमान्सिध्येत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत ॥ १ ॥

उद्धवने पूछा—हे अच्युत ! जिसका चित्त वशमें नहीं है उसके लिये मेरी समझमें यह योगचर्या अत्यन्त दुष्कर है। अतएव लोग जिसप्रकार अनायासही सिद्धि प्राप्त कर सकें वह उपाय कृपाकर मुझसे कहिये ॥ १ ॥ हे कमलनयन ! प्रायः मनोनिवेशमें उद्यत योगीजन ध्येय वस्तुमें पूर्णतया मन न लगनेपर चित्त-निग्रहमें असमर्थ और श्रान्त होकर विषादको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ हे अरविन्द-लोचन ! हे विश्वेश्वर ! इसीकारण जो लोग सार-असारके विचारमें चतुर हैं वे समस्त आनन्दपरिपूरक आपके चरणकमलोंको भजते हैं; वे आपकी मायामें मोहित नहीं होते, और इसीकारण अपनेको योग करनेवाला प्रवीण मानकर गर्व नहीं करते ॥ ३ ॥ हे अच्युत ! हे सबके हितचिन्तक एवं आत्मीय ! ऐसे अनन्य-शरण दासोंको आप अपने तुल्य कर लेते हैं,—अथवा आत्मसमर्पण करदेते हैं,—सो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है; ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके सुन्दर मुकुट आपके चरणपीठमें लोटा करते हैं तथापि आपने वानरोंके साथ प्रीतिपूर्वक मित्रता की। ऐसे आप दयालु और भक्तवत्सल हैं ॥ ४ ॥ हे जगत्को चेतन देनेवाले ईश्वर ! हे आश्रित जनोंकी सब कामना पूर्ण करनेवाले ! हे प्रियतम ! बलि प्रल्हाद आदि भक्तोंके प्रति आपके कियेहुए अनुग्रहको जानकर भी (अथवा अपनेमें अन्त-र्यामी रूपसे अपने प्रति आपके किये उपकारको जानकर भी) कौन

व्यक्ति आपसे विमुख होसकता है ? कौन विवेकी व्यक्ति भोग या मोक्षके उद्देश्यसे आपको भजेगा ? आपके चरणकमलोंकी रजका सेवन करनेवाले हमलोगोंको किस बातकी कमी होसकती है ? इसलिये किसी कामनासे आपको भजना भी महामूर्खता है ॥ ५ ॥ हे ईश्वर ! आप बाहर गुरुरूप और हृदयके भीतर अन्तर्यामीरूपसे शरीरधारियोंकी विषयवासनाको दूर कर अपना रूप प्रकाशित करते हैं; अतएव ब्रह्माके बराबर आयुवाले—दीर्घजीवी ब्रह्मज्ञानी भी आपके किये उपकारका बदला नहीं चुकासकते ! आपके किये परम अनुग्रहरूप उपकारका स्मरण करनेसे उनको परम आनन्द प्राप्त होता है और वे उसीमें मग्न रहते हैं ॥ ६ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—हे राजन् ! अनुरक्त भक्त उद्धवके इसप्रकार प्रार्थनापूर्वक प्रश्न करनेपर, जगत् जिनकी क्रीड़ाकी सामग्री है वह सत्त्व-रज-तम-नामक शक्तियोंके द्वारा त्रिमूर्तिधारी, ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमपूर्ण मनोहर मुसकानसहित मधुरवाणीसे बोले कि—हे उद्धव ! श्रद्धापूर्वक जिनका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य दुर्जय मृत्युको जीत लेता है उन अपने मङ्गलमय धर्मोंको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ७ ॥ ८ ॥ बुद्धि और मनको मुझमें स्थापित करनेसे मेरेही धर्ममें जिसका आत्मा और मन निरत होगया है वह व्यक्ति धीरे धीरे मेरा स्मरण करताहुआ मेरेही उद्देश्यसे सब कर्म करे ॥ ९ ॥ मेरे भक्त साधुजन जहाँ रहतेहो उन पवित्र स्थानों (देशों) में रहकर देवता दैत्य या मनुष्योंमें जो मेरे अनन्य भक्त हों उन्हीके आचरणोंका अनुकरण करे ॥ १० ॥ पृथक् सत्रके द्वारा या प्रचलित पर्व, यात्रा आदिमें महान् उत्सव करावे । महाराजोंकीसी सामग्रीसे यथाशक्ति धन-व्ययकर नाच, गाना, बजाना आदि करना कराना चाहिये ॥ ११ ॥ निर्मलचित्त होकर भीतर और बाहर आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त आत्मारूप मुझको सब प्राणियोंमें और अपनेमें अवस्थित देखे ॥ १२ ॥ हे अतिप्राज्ञ ! इसप्रकार केवल ज्ञानके आश्रित होकर जो कोई सब प्राणियोंको मेरा रूप मानकर सादर पूजता है एवं ब्राह्मण और चाण्डाल, ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक दानदेनेवाले और ब्रह्मस्वापहारी, सूर्य और एक सामान्य स्फुलिङ्ग (चिनगारी), अक्रूर और क्रूर,—सबको समान दृष्टिसे देखता है वही पूर्ण पण्डित है ॥ १३ ॥ १४ ॥ जो पुरुष नित्य वारंवार प्राणियोंमें मेरी भावना करता है उसके चित्तसे शीघ्रही स्पर्धा, असूया, तिरस्कार और अहङ्कार आदि (भेदभाव) दूर होजाते हैं ॥१५॥ अपनेको हँसनेवाले आत्मीयोंको, 'मैं उत्तम हूँ, यह नीच है'—इसप्रकारकी दैहिक दृष्टिको, एवं इस दृष्टिसे उत्पन्न होनेवाली लज्जाको त्यागकर कुत्ते, चाण्डाल, बैल और गधेतकको पृथ्वीपर गिरकर दण्ड प्रणाम करना चाहिये ॥ १६ ॥ जबतक 'सब प्राणियोंमें मेरी भावना' नहीं उत्पन्न होती तबतक उक्त प्रकारसे मन, वाणी और कायाके व्यवहारोंद्वारा मेरी उपासना करनी चाहिये ॥ १७ ॥ सर्वत्र आत्मारूप

ईश्वरको देखनेके प्रभावसे उत्पन्न विद्याके प्रभावसे उसके लिये सब ब्रह्ममय होजाता है। इसप्रकार सर्वत्र ब्रह्मको देखनेके कारण सब प्रकारके संशयोंसे मुक्त होकर निश्चेष्ट होजाना चाहिये ॥ १८ ॥ हे उद्धव! सब प्राणियोंमें मुझे देखकर मन, वाणी कायाके कर्मोंसे मेरी आराधना करना ही मेरे मतमें सब प्रकारके मेरे मिलनेके उपायोंसे श्रेष्ठ और सहज उपाय है ॥ १९ ॥ हे उद्धव! आरम्भके उपरान्त किसी प्रकारके विघ्न या विधि-विकलता आदिके द्वारा इस धर्मका अणुमात्र भी ध्वंस नहीं होता, क्योंकि मैंने ही पूर्णरूपसे इस निष्काम धर्मको निश्चित किया है ॥ २० ॥ हे सत्तम! भय, शोक आदिसे कारण भागने और चिल्लानेके समान व्यर्थ लौकिक आयास भी यदि फलकामना विना मेरे अर्पण किया जाय तो वह भी अक्षय धर्म ही होता है ॥ २१ ॥ असत् एवं नश्वर मानव देहके द्वारा इसी जन्ममें मुझ सत्य और अविनाशीको प्राप्त कर लेनाही बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरों (पण्डितों)की चतुरता है ॥ २२ ॥ संक्षेप और विस्तारसे यह समग्र ब्रह्मवादका संग्रह मैंने तुमसे कह दिया। यह देवतोंके लिये भी दुर्गम है ॥ २३ ॥ हे उद्धव! विशेषरूपसे स्पष्ट युक्तियोंसे प्रतिपन्न यह ज्ञान मैंने वारंवार तुमसे कहा है। इसको जानकर पुरुष संशयशून्य और मुक्त हो जाता है–इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ मेरे द्वारा भलीभाँति विवेचनापूर्वक दिये गये उत्तरसे युक्त इस तुम्हारे प्रश्न (अर्थात् मेरे और तुम्हारे इस संवाद)को जो कोई नित्य मननपूर्वक वारंवार पढ़ता है वह भी वेदरहस्यरूप सनातन, सत्य, परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो लोग यह ज्ञान मेरे भक्तोंको भलीभाँति स्पष्ट कर समझाते हैं उन ब्रह्मज्ञानका उपदेश करनेवालोंको मैं प्रसन्नतापूर्वक आत्मसर्पण कर देता हूँ ॥ २६ ॥ जो कोई इस परमपवित्र और औरोंको पवित्र करनेवाले उपाख्यान (कृष्ण-उद्धव-संवाद)को नित्यप्रति पढ़ता है वह ज्ञानदीपकके प्रकाशद्वारा मुझको देख पाता है ॥ २७ ॥ जो कोई एकाग्र होकर श्रद्धापूर्वक नित्य इसे सुनते हैं और मुझमें अनन्य भक्ति करते हैं वे कर्मबन्धनमें नहीं बँधते ॥ २८ ॥ हे मित्र उद्धव! तुमने भलीभाँति इस ब्रह्मविषयक ज्ञानको समझ लिया? और तुम्हारा मोह और मनोविकार शोक भलीभाँति मिट गया? ॥ २९ ॥ देखो,–दाम्भिक, नास्तिक, वञ्चक, सुननेकी इच्छा न रखनेवाले और मेरी भक्तिसे विमुख एवं दुष्ट घमण्डीको कभी इस ज्ञानका उपदेश न करना ॥ ३० ॥ उक्त दोषोंसे शून्य, ब्रह्मभक्त, सब प्राणियोंके हितचिन्तक अतएव प्रिय पवित्र साधु-(परोपकारी) को और भक्तिश्रद्धासम्पन्न शूद्र एवं स्त्रियोंको भी इस ज्ञानका उपदेश करना ॥ ३१ ॥ इसके जान लेनेपर जिज्ञासुको जाननेके लिये और कुछ नहीं रह जाता। स्वादिष्ट सुधा पी लेनेपर और कुछ पीनेको नहीं अवशिष्ट रहता ॥ ३२ ॥ हे उद्धव! तुम ऐसे अनन्य भक्तोंके लिये

ज्ञान, कर्म, योग, कृषि, राज्यैश्वर्यआदि साधनोंसे सिद्ध होनेवाले धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारो पदार्थ और अणिमा आदि सिद्धियाँ तथा ऐश्वर्य–सब कुछ मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥ मनुष्य, जब सब कर्मोंको छोड़कर मुझहीमें आत्माको अर्पित कर मेरे ही आराधनकी इच्छासे सब कुछ करता है तब जीवन्मुक्त होकर मेरे सदृश ऐश्वर्यका अधिकारी होता है ॥ ३४ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**— हे राजन्! योगमार्गका पूर्ण उपदेश पानेके उपरान्त, इस प्रकारके उत्तम उत्तम-श्लोक (कृष्ण)के वचन सुनकर उत्पन्न होनेवाले आनन्दसे उद्धवके नेत्रोंमें जल भर आया, प्रीतिके कारण कण्ठ रुँध गया। उन्होने स्तुति करनेकी इच्छासे हाथ जोड़े, परन्तु कुछ न कह सके; केवल हाथ जोड़कर रह गये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर प्रणयवेगसे चंचल चित्तको धैर्यद्वारा थाम कर अपनेको प्रभुकी कृपासे कृतार्थ मानतेहुए उद्धवने यदुश्रेष्ठके चरणोंमें शिर रखकर प्रणाम किया और कहा कि–हे अजजनक! हे सनातन! मेरे हृदयमें जो घोर मोहमय अन्धकार परिपूर्ण था वह आपके निकट आश्रय ग्रहण करनेसे नष्ट हो गया, सो ठीक ही है, सूर्यके समीप जानेवालेको कहीं अन्धकार या शीतका भय रह सकता है? ॥३६॥३७॥ आपने अपनी मायाके द्वारा अपहृत ज्ञानदीपक फिर दिया, जिससे मैं अपने रूपको देखकर जान गया। कौन ऐसा कृतघ्न होगा जो आपके चरणोंकी शरण छोड़कर अन्य किसीकी शरणमें जायगा? ॥ ३८ ॥ सृष्टि-वृद्धिके लिये अपनी मायाके द्वारा दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्त्वतवंशके प्रति निर्मित मेरे सुदृढ़ स्नेहपाशको आत्म-ज्ञानरूप पैने खड्गसे आपने काट दिया। हे महायोगेश्वर! आपको नमस्कार है! मुझ शरणागतको वह आज्ञा दीजिये जिसके द्वारा आपके चरणकमलोंमें अनन्त भक्ति प्राप्त हो ॥३९॥४०॥ **श्रीभगवान्ने कहा**—हे उद्धव! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे आश्रम बदरीनारायण क्षेत्रमें जाकर निवास करो। उस स्थानमें मेरे चरण-कमलसे उत्पन्न अलकनन्दा गङ्गाके जलमें स्नानकर और गङ्गातटकी पवित्रशोभा निहारकर तुम परम पवित्र होजाओगे, तुम्हारे हृदयके मल (काम, क्रोधादि) नष्ट होजायँगे। वहाँ मुनिवृत्तिसे रहना, वल्कलवस्त्रविभूषित, वन्य मूल-फलाहारी, सुखनिरपेक्ष रहकर शीतोष्णादि द्वन्द्व धर्मोंको सहना। इसप्रकार सुशील जितेन्द्रिय शान्त होकर एकाग्र बुद्धिसे ज्ञान विज्ञानका अनुशी-लन करना। तुमने जो कुछ मुझसे शिक्षा पाई है उसे एकान्तमें बैठकर विचारना, इसप्रकार मेरे धर्ममें निरत होनेपर तुम त्रिगुणमयी प्रवृत्ति-गतिको नाँघकर परमगतिस्वरूप मुझे सहजमें पाओगे ॥ ४१–४४ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं**—महाराज! जिनके ज्ञानसे संसारपाश कट जाता है उन उष्णके ये अन्तिम उपदेश पाकर उद्धवने उनकी प्रदक्षिणा की। यद्यपि उद्धवजी सुख-दुःख-सृष्टि-शून्य होगयेथे तथापि चलनेके समय प्रेमपूर्णहृदय होकर प्रभुके चरणोंमें शिर धर

उन्हे आँसुओंसे भिगोने लगे ॥४५॥ दुस्त्यज स्नेहके पात्र प्रभुके वियोगसे अत्यन्त कातर उद्धवजी, उन्हे न छोड़ सकनेके कारण अत्यन्त आतुर होकर, बड़े कष्टसे धैर्यधारणपूर्वक, अनुग्रहचिन्ह-स्वरूप स्वामीकी दी हुई, चरणपादुका शिरपर रखकर वारंवार प्रणाम कर फिर फिरकर देखतेहुए, वहाँसे चले ॥ ४६ ॥ महाभगवद्भक्त उद्धवजी, जगत्के प्रधानगुरु इष्टदेवकी मूर्तिको हृदयमन्दिरमें स्थापित कर उनकी आज्ञाके अनुसार बद्रिकाश्रमको गये एवं वहाँ दुष्कर तप कर हरिके पदको प्राप्त-हुए ॥ ४७ ॥ जो कोई श्रद्धासहित योगेश्वरसेवितचरण कृष्णचन्द्रकर्तृक अपने परमभक्त उद्धवके प्रति कथित इस आनन्दसमुद्ररूप भक्तिमार्गमें सम्मिलित ज्ञान-सुधाका थोड़ासा भी सेवन करता है वह मुक्त हो जाता है एवं उसके सङ्गसे विश्वभर मुक्त हो सकता है ॥ ४८ ॥

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥
अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥

जैसे भ्रमर फूलोंसे साररूप मधुको निकाल लेता है वैसेही ज्ञान-विज्ञानसागरसे सारांशरूप यह जन्म, मरण, जरा, आधि, व्याधि आदिके भयको हरनेवाला अमृत निकालकर भक्तवर्गोंको पिलानेवाले, वेदप्रकाशक, कृष्णनाम सनातन पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय

यदुवंशविनाश

राजोवाच—ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥
द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्ने पूछा—हे मुनिवर! महाभागवत उद्धवके वनगमनके उपरान्त भूतभावन भगवान्ने द्वारकापुरीमें क्या किया? अपने वंशको ब्रह्मशाप होने-पर यादवश्रेष्ठ कृष्णने सब इन्द्रियोंको परमप्रिय अपना शरीर किसप्रकार त्यागकर परमधामगमन किया? ॥ १ ॥ २ ॥ जिसमें लगीहुई दृष्टिको स्त्रियाँ नहीं हटा सकती थीं, जो कर्णमार्गसे प्रवेश कर सज्जनोंके हृदयसे नहीं हटता, जिसकी अपूर्व शोभा वर्णन करतेसमय कवियोंकी वाणी उत्तेजित और उत्साहित होती है एवं कवियोंको मान मिलता है, जिसको युद्धभूमिमें अर्जुनके रथपर अवस्थित देख संग्राममें मरनेवाले सुभटोंको सारूप्य-मुक्ति मिली, उस अपनी मनोहर तनुको

ज्ञान, कर्म, योग, कृषि, राज्यैश्वर्यआदि साधनोंसे सिद्ध होनेवाले धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारो पदार्थ और अणिमा आदि सिद्धियाँ तथा ऐश्वर्य–सब कुछ मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥ मनुष्य, जब सब कर्मोंको छोड़कर मुझहीमें आत्माको अर्पित कर मेरे ही आराधनकी इच्छासे सब कुछ करता है तब जीवन्मुक्त होकर मेरे सदृश ऐश्वर्यका अधिकारी होता है ॥ ३४ ॥ शुकदेवजी कहते हैं— हे राजन्! योगमार्गका पूर्ण उपदेश पानेके उपरान्त, इस प्रकारके उत्तम उत्तमश्लोक (कृष्ण)के वचन सुनकर उत्पन्न होनेवाले आनन्दसे उद्धवके नेत्रोंमें जल भर आया, प्रीतिके कारण कण्ठ रुँध गया। उन्होने स्तुति करनेकी इच्छासे हाथ जोड़े, परन्तु कुछ न कह सके; केवल हाथ जोड़कर रह गये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर प्रणयवेगसे चंचल चित्तको धैर्यद्वारा थाम कर अपनेको प्रभुकी कृपासे कृतार्थ मानतेहुए उद्धवने यदुश्रेष्ठके चरणोंमें शिर रखकर प्रणाम किया और कहा कि– हे अजजनक! हे सनातन! मेरे हृदयमें जो घोर मोहमय अन्धकार परिपूर्ण था वह आपके निकट आश्रय ग्रहण करनेसे नष्ट हो गया, सो ठीक ही है, सूर्यके समीप जानेवालेको कहीं अन्धकार या शीतका भय रह सकता है? ॥३६॥३७॥ आपने अपनी मायाके द्वारा अपहृत ज्ञानदीपक फिर दिया, जिससे मैं अपने रूपको देखकर जान गया। कौन ऐसा कृतघ्न होगा जो आपके चरणोंकी शरण छोड़कर अन्य किसीकी शरणमें जायगा? ॥ ३८ ॥ सृष्टि-वृद्धिके लिये अपनी मायाके द्वारा दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्त्वतवंशके प्रति निर्मित मेरे सुदृढ़ स्नेहपाशको आत्मज्ञानरूप पैने खड्गसे आपने काट दिया। हे महायोगेश्वर! आपको नमस्कार है! मुझ शरणागतको वह आज्ञा दीजिये जिसके द्वारा आपके चरणकमलोंमें अनन्त भक्ति प्राप्त हो ॥३९॥४०॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे आश्रम बदरीनारायण क्षेत्रमें जाकर निवास करो। उस स्थानमें मेरे चरणकमलसे उत्पन्न अलकनन्दा गङ्गाके जलमें स्नानकर और गङ्गातटकी पवित्रशोभा निहारकर तुम परम पवित्र होजाओगे, तुम्हारे हृदयके मल (काम, क्रोधादि) नष्ट होजायँगे। वहाँ मुनिवृत्तिसे रहना, वल्कलवस्त्रविभूषित, वन्य मूलफलाहारी, सुखनिरपेक्ष रहकर शीतोष्णादि द्वन्द्व धर्मोंको सहना। इसप्रकार सुशील जितेन्द्रिय शान्त होकर एकाग्र बुद्धिसे ज्ञान विज्ञानका अनुशीलन करना। तुमने जो कुछ मुझसे शिक्षा पाई है उसे एकान्तमें बैठकर विचारना, इसप्रकार मेरे धर्ममें निरत होनेपर तुम त्रिगुणमयी प्रवृत्ति-गतिको नाँघकर परमगतिस्वरूप मुझे सहजमें पाओगे ॥ ४१–४४ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—महाराज! जिनके ज्ञानसे संसारपाश कट जाता है उन उष्णके ये अन्तिम उपदेश पाकर उद्धवने उनकी प्रदक्षिणा की। यद्यपि उद्धवजी सुख-दुःख-सृष्टिशून्य होगयेथे तथापि चलनेके समय प्रेमपूर्णहृदय होकर प्रभुके चरणोंमें शिर धर

उन्हे आँसुओंसे भिगोने लगे ॥४५॥ दुस्त्यज स्नेहके पात्र प्रभुके वियोगसे अत्यन्त कातर उद्धवजी, उन्हे न छोड़ सकनेके कारण अत्यन्त आतुर होकर, बड़े कष्टसे धैर्यधारणपूर्वक, अनुग्रहचिन्ह-स्वरूप स्वामीकी दी हुई, चरणपादुका शिरपर रखकर वारंवार प्रणाम कर फिर फिरकर देखतेहुए, वहाँसे चले ॥ ४६ ॥ महाभगवद्भक्त उद्धवजी, जगत्के प्रधानगुरु इष्टदेवकी मूर्तिको हृदयमन्दिरमें स्थापित कर उनकी आज्ञाके अनुसार बद्रिकाश्रमको गये एवं वहाँ दुष्कर तप कर हरिके पदको प्राप्त-हुए ॥ ४७ ॥ जो कोई श्रद्धासहित योगेश्वरसेवितचरण कृष्णचन्द्रकर्तृक अपने परमभक्त उद्धवके प्रति कथित इस आनन्दसमुद्ररूप भक्तिमार्गमें सम्मिलित ज्ञान-सुधाका थोड़ासा भी सेवन करता है वह मुक्त हो जाता है एवं उसके सङ्गसे विश्वभर मुक्त हो सकता है ॥ ४८ ॥

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥
अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥

जैसे भ्रमर फूलोंसे साररूप मधुको निकाल लेता है वैसेही ज्ञान-विज्ञानसागरसे सारांशरूप यह जन्म, मरण, जरा, आधि, व्याधि आदिके भयको हरनेवाला अमृत निकालकर भक्तवर्गोंको पिलानेवाले, वेदप्रकाशक, कृष्णनाम सनातन पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय

यदुवंशविनाश

राजोवाच—ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥
द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्ने पूछा—हे मुनिवर! महाभागवत उद्धवके वनगमनके उपरान्त भूतभावन भगवान्ने द्वारकापुरीमें क्या किया? अपने वंशको ब्रह्मशाप होने-पर यादवश्रेष्ठ कृष्णने सब इन्द्रियोंको परमप्रिय अपना शरीर किसप्रकार त्यागकर परमधामगमन किया? ॥ १ ॥ २ ॥ जिसमें लगीहुई दृष्टिको स्त्रियाँ नहीं हटा सकती थीं, जो कर्णमार्गसे प्रवेश कर सज्जनोंके हृदयसे नहीं हटता, जिसकी अपूर्व शोभा वर्णन करतेसमय कवियोंकी वाणी उत्तेजित और उत्साहित होती है एवं कवियोंको मान मिलता है, जिसको युद्धभूमिमें अर्जुनके रथपर अवस्थित देख संग्राममें मरनेवाले सुभटोंको सारूप्य-मुक्ति मिली, उस अपनी मनोहर तनुको

कृष्णचन्द्रने कैसे छोड़ा ? सो कृपाकर कहिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा— महाराज ! आकाश, स्वर्ग और पृथ्वीमें महान् उत्पात उठते देख सुधर्मा सभामें बैठेहुए यादवोंसे कृष्णचन्द्रने कहा कि—"हे यादवगण ! देखो, द्वारकामें यमकेतु-रूप (मृत्युसूचक) ये अनेकानेक घोर उत्पात होनेलगे हैं। अब हमको यहाँ मुहूर्तभर भी न ठहरना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ स्त्री, बालक और बूढ़ोंको शङ्खोद्धार नामक क्षेत्रमें भेजकर हम लोग प्रभास क्षेत्रको चलेंगे, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी है ॥ ६ ॥ वहाँ सरस्वतीमें स्नानकर पवित्रतापूर्वक उपवास कर एकाग्र चित्तसे स्नान, चन्दन आदि सामग्रियोंसे देवपूजन करेंगे ॥ ७ ॥ शान्ति स्वस्त्ययनवाचनके उपरान्त हम लोग वहाँ गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, गज, रथ, अश्व, गृह आदि देकर महाभाग ब्राह्मणोंकी पूजा करेंगे ॥ ८ ॥ इसी उपायसे हमारे अरिष्टका नाश और मङ्गललाभ होगा। देवता, ब्राह्मण और गोगणकी पूजा करनेसे ही प्राणियोंके जन्मकी परम सफलता होती है" ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सब बड़े बूढ़े यादवोंने मधुसूदनके इस कथनका अनुमोदन किया और उसी समय नौकाके द्वारा समुद्र पार होकर रथोंपर चढ़कर वे प्रभास क्षेत्रको चलदिये ॥ १० ॥ प्रभासमें पहुँचकर यदुदेव भगवान् कृष्णकी आज्ञाके अनुसार यादवोंने परम भक्तिसे सम्पूर्ण मङ्गल कृत्य किये ॥११॥ तदनन्तर प्रबल होनीसे बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारण, जिसके मदसे उचित और अनुचितका विचार नहीं रहता उस सुरस मैरेयक नाम मदिराको पिया ॥ १२ ॥ फिर कृष्णकी मायासे मूढ़ और महामद-पानसे मत्त होकर कर्तव्याकर्तव्यज्ञानशून्य वीर यादवोंमें परस्पर कहा-सुनी होनेलगी ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त सब महाक्रोधसे वधोद्यत होकर समुद्रके किनारे धनुष, बाण, खड्ग, भाले, गदा, तोमर, ऋष्टि आदि शस्त्र लेकर लड़ने लगे ॥ १४ ॥ फहरा रही पताकाओंसे युक्त रथ, हाथी, खच्चर, ऊँट, खर, बैल, भैंसे, मनुष्य आदिसे युक्त वे दुर्मद वीरगण, जैसे वनमें गजगण परस्पर दन्तप्रहार करतेहुए लड़ते हैं वैसेही परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ १५ ॥ भावीवश परस्पर कुपित प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर और भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित्, दारुण और गद एवं सुमित्र और सुरथ द्वन्द्वयुद्ध करनेलगे ॥ १६ ॥ इनके अतिरिक्त निशठ, उल्मुक, सहस्रजित् और भानुआदिक सभी यादव मुकुन्दकी मायासे मोहित और मदिराके मदसे ज्ञानशून्य होकर परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकुर, कुन्ति आदि वंशोंके वीरगण परस्पर स्नेह त्यागकर मारने–मरनेलगे ॥ १८ ॥ विमोहित होकर पुत्रगण अपने बापोंसे, भाई भाइयोंसे, भागिनेय मातुलोंसे, भतीजे पितृव्योंसे, नाती मातामहोंसे, मित्र मित्रोंसे, सुहृद् सुहृदोंसे, सजातीयगण सजातीयगणसे युद्धकर एक एकका वध करनेलगे ॥ १९ ॥ क्रमशः बाण चुक

गये और अन्यान्य अस्त्र शस्त्र भी टूटगये, तब उन्ही मुशलचूर्णसे उत्पन्न एरकाओंको समुद्रके किनारेसे उखाड़कर परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ २० ॥ उन परिघसदृश वज्र-तुल्य एरकामुष्टियोंसे परस्पर प्रहार कररहे यादवोंको कृष्णचन्द्रने रोका तो वे कृष्णचन्द्रपर भी प्रहार करनेलगे ॥ २१ ॥ वे महामोहित यादवगण बलभद्रजीको शत्रु मानकर उनपर भी प्रहार करनेलगे । हे कुरुनन्दन! तब कृष्ण-बलभद्र भी अत्यन्त कुपित होकर उन्ही एरकामुष्टिरूप लौहदण्डोंको उठाकर उनसे सबका वध करतेहुए युद्धभूमिमें विचरनेलगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ जैसे बाँसके वनमें परस्परकी रगड़से उत्पन्न प्रचण्ड अग्निसे सम्पूर्ण बाँसोंका वन भस्म होजाता है वैसेही स्पर्धाजनित क्रोधसे कृष्णमायामोहित ब्रह्मशापग्रस्त यादववंशका विनाश हो गया ॥ २४ ॥ इसप्रकार अपने सब कुलोंका अन्त हो जानेपर अन्तमें अवशिष्ट भगवान्ने विचारा कि–"हाँ अब पृथ्वीका भार निःशेष होगया" ॥२५॥ बलभद्रजीने समुद्रतटपर परमपुरुषचिन्तनरूप योगधारणाके द्वारा आत्माको आत्मामें लीनकर मनुष्यलोक (मनुष्य शरीर) को त्याग दिया ॥२६॥ बलभद्रकी परम गतीको देखकर देवकीनन्दन भगवान् कृष्णचन्द्रभी मौनावलम्बनपूर्वक पीपलकी जड़में पृथ्वीपर अवस्थित हुए एवं चतुर्भुज-रूप-धारणपूर्वक धूमरहित अग्निके समान प्रज्वलित अपनी प्रभाके द्वारा दिशाओंके अन्धकारको दूर कर दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीवत्सचिन्हशोभित, घनश्याम, तप्तकाञ्चनकान्तिसम्पन्न, रेशमी युगल पीतपटधारी हरिका नील अलकावलीसे सुशोभित मुखारविन्द मन्द मुसकानसे महामनोहर हो रहा था। दोनो विशाल नयन कमलतुल्य अभिराम थे, कानोंमें कान्तिशाली मकराकृत कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा थी। शरीरमें यथा-स्थान कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र, किरीट, मुकुट, कटक, अङ्गद, हार, नुपूर, मुद्रा और कौस्तुभ आदि अलङ्कार विराजमान थे। सर्वाङ्गमें वनमालाकी शोभा देखने ही योग्य थी। उससमय भगवान्के शङ्खचक्रादि आयुध मूर्तिमान् होकर सेवामें उपस्थित थे। भगवान् अरुणकमलसदृश अरुणवर्ण वाम चरणको दाहिनी जङ्घापर धरेहुए प्रसन्न शान्तभावसे बैठे थे ॥ २९–३२ ॥ मुशलसे बचेहुए लौहखण्डको मछलीके पेटसे पाकर जरा नाम व्याधने उसीकी गाँसी बनाकर एक बाण प्रस्तुत किया था। जरा व्याधने उससमय दूरसे भगवान्के मृगाकार चरणको मृग जानकर उसी बाणका लक्ष्य बनाया। किन्तु निकट आकर जब उसने चतुर्भुज महापुरुषको देखा तब कियेहुए अपराधके भयसे असुरारि कृष्णके चरणोंमें गिर पड़ा और कहनेलगा कि–"हे निष्पाप उत्तमश्लोक मधुसूदन! मैं महापापी हूँ, मैंने विनाजाने यह अपराध किया है, हे प्रभो! क्षमा करिये। जिनके स्मरणसे ही मनुष्योंके हृदयका अज्ञानरूप अन्धकार मिट जाता है वही साक्षात् विष्णु आप हैं। हे नाथ! मैंने महा-अपराध किया है ॥ ३३–३६ ॥ हे वैकुण्ठ! मैं निरीह मृगोंको मांसके लोभसे

मारनेवाला महापातकी हूँ। मुझे आप शीघ्रही मार डालिये, जिससें मुझे फिर इसप्रकार महानुभाव जनोंका अपराध करनेका अवसर न प्राप्त हो ॥ ३७ ॥ आपके आत्मज ब्रह्मा, रुद्र आदिक और अन्यान्य वेदके पूर्ण ज्ञाता ब्रह्मर्षिगण भी आपकी मायाके द्वारा दृष्टिके आवृत होनेसे आपकी स्वाधीन मायारचित गतिको नहीं जानपाते! तब हम तो महा नीच जाति हैं—हम कैसे आपकी इच्छा-गतिका निरूपण कर सकते हैं?" ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—"हे व्याध! तू भय न कर, ऊठ। तेरा यह काम मेरीही इच्छासे हुआ है, अतएव इसमें तेरा कुछ अपराध नहीं है। मेरी आज्ञासे तू सुकृती जनोंके रहनेके स्थान स्वर्गलोकको जा" ॥ ३९ ॥ इच्छा-शरीरी कृष्णचन्द्रके इसप्रकार आज्ञा देनेपर तीन वार प्रदक्षिणा और प्रणाम कर, उसी समय आगत विमानपर चढ़कर वह लुब्धक स्वर्गको सिधारा ॥ ४० ॥ महाराज! इधर दारुक सारथी कृष्णचन्द्रको खोजता हुआ उसी स्थानके निकट पहुँचा और तुलसीकी उत्तम गन्धसे युक्त वायुकी झकोरोंसे कृष्णको निकटस्थ जानकर उसी ओर चला ॥ ४१ ॥ दारुकने आगे बढ़कर देखा कि दीप्तद्युतिसम्पन्न अपने स्वामी कृष्णचन्द्र पीपलके तले बैठेहुए हैं और मूर्तिमान् अस्त्र शस्त्र चारो ओर सेवामें उपस्थित हैं। देखतेही प्रेमसे उसका हृदय परिपूर्ण हो आया और नेत्रोंमें आँसू भर आये। दारुक उसी समय रथसे कूदकर स्वामीके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा—"हे प्रभो! आपके चरणारविन्दोंको न देख पानेके कारण मुझे कुछ नहीं सूझता, चारो ओर अन्धकारही अन्धकार जान पड़ता है। जैसे सूर्यास्त होनेपर अँधेरी रातमें किसी दिशाका ज्ञान नहीं होता वैसेही मुझे नहीं जान पड़ता कि मैं कहाँ हूँ—किस दिशाको जारहा हूँ? हे नाथ! मेरे चित्तको चैन नहीं है" ॥४२॥ ॥४३॥ हे राजेन्द्र! सारथी इसप्रकार कहही रहा था कि सहसा वह गरुड़चिन्हित रथ देखते-ही-देखते अश्व-ध्वजा आदि सामग्रीसहित आकाशमें जाकर अदृश्य हो गया ॥ ४४ ॥ रथके साथही विष्णुके दिव्य शस्त्र भी चलेगये। वह देखकर सारथीको बड़ाही विस्मय हुआ। जनार्दन कृष्णने सारथीसे कहा कि—"हे दारुक! तुम द्वारकामें जाकर परस्पर युद्धमें यदुवंशका विनाश सङ्कर्षणकी परमगति और मेरी दशा आदि वृत्तान्त बन्धुओंसे कहो। और कहना कि तुमलोग बन्धुगणसहित द्वारकापुरीमें न रहना, क्योंकि मेरी त्यागी हुई यदुपुरी समुद्रमें डूब जायगी। अपने अपने परिवारको मेरे माता पिता सहित लेकर अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ (हस्तिनापुर) को चलेजाना। हे सारथी! मेरे धर्मका अवलम्बन कर ज्ञाननिष्ठ और निरपेक्ष भावसे इस विश्वप्रपञ्चको मेरी मायाकी रचना जानो; अन्तमें तुमको मुक्ति प्राप्त होगी" ॥ ४५–४९ ॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥
तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥

हे राजन्! भगवान्‌के कथनको सुनकर वारंवार प्रदक्षिणा और स्वामीके चरणोंमें शिरधर प्रणाम करनेके उपरान्त उदास भावसे दारुक सारथी द्वारकापुरीको गया ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय

श्रीकृष्ण भगवान्‌का परमधामगमन

श्रीशुक उवाच—अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥
महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! तदनन्तर ब्रह्मा, भवानीसहित भगवान् शंकर, देवगण, मुनिगण, प्रजापतिगण, पितृगण, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरागण एवं द्विजगण आदि सब प्राणी भगवान्‌की गति देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर वासुदेवके जन्म-कर्म-सम्बन्धी गुण गातेहुए उस स्थानमें आकाशपर आकर उपस्थित हुए। उनके असंख्य विमानोंसे आकाशमण्डल व्याप्त होगया और वे परम भक्तिपूर्वक हरिपर फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १–४ ॥ प्रभु भगवान्‌ने एकवार ब्रह्मा, इन्द्र आदि अपनी विभूतियोंकी ओर देखकर आत्माको आत्मामें लगाकर नेत्रकमल बन्द करलिये ॥ ५ ॥ भगवान् योग-धारणा-जनित अग्निके द्वारा अपनी त्रिभुवनमोहिनी मूर्तिको भस्म किये बिनाही अपने धामको सशरीर चलेगये। उससमय आकाशमें नगड़े बजनेलगे और पुष्पवर्षा होनेलगी। हे राजन्! हरिके साथही सत्य, धर्म, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी आदि भी पृथ्वीको छोड़कर चलेगये। अविज्ञेयगति कृष्णचन्द्रको अपने धाममें प्रवेश करते, ब्रह्माआदि आगत देवोंमेंसे किसीने देखा और किसीने नहीं देखा। इसकारण सबको बड़ाही विस्मय हुआ ॥ ६–८ ॥ जैसे आकाशमें मेघमण्डलको छोड़कर जारही बिजलीकी गतिको मनुष्यगण नहीं देख पाते वैसेही कृष्णचन्द्रकी गति देवतोंको नहीं देख पड़ी ॥ ९ ॥ उस समय ब्रह्मा, रुद्र आदि सब हरिकी योगगतिको देखकर विस्मित भावसे प्रशंसा करतेहुए अपने अपने लोकको गये ॥ १० ॥ राजन्! नटलीलाके समान परमेश्वरके देहधारण और यादवादि शरीरधारियोंमें जन्मलेने व मरण आदि कार्योंको केवल मायाविडम्बनामात्र समझना। वह इस जगत्‌की सृष्टि कर और इसमें प्रवेशपूर्वक विहार कर अन्तमें इसे अपनेमें लीनकर अपनी महिमामें अवस्थित (निर्गुण, निश्चेष्ट) होते हैं ॥ ११ ॥ जो इसी नरतनुद्वारा यमलोकसे मरेहुए गुरुपुत्रको लेआये, जिन शरणागतरक्षकने

विकट ब्रह्मास्त्रसे तुमको बचालिया, जलने नहीं दिया, जिन्होने अन्तककेभी अन्तक शंकरको संग्राममें जीतलिया, जिनकी कृपासे दुराचारी व्याध स्वर्गको गया वह परमपुरुष कृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे? चाहते तो कालको टाल सकतेथे, तथापि सर्वशक्तिमान् और विश्वकी उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलयके एकमात्र हेतु कृष्णने 'इस मर्त्यशरीरका अब कुछ प्रयोजन नहीं है,' यों विचारकर आत्मनिष्ठ साधु जनोंको अपनी गति दिखानेके लिये इस लोकमें अपने लीलामानव शरीरको नहीं रक्खा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे राजन्! जो कोई प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक इस कृष्णके परमधामगमनको एकाग्र चित्तसे पढ़ता है वह भी इसी सर्वोत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ महाराज! कृष्णवियोगसे विह्वल दारुक सारथी द्वारका पुरीमें आकर वसुदेव और उग्रसेनके चरणोंमें गिर पड़ा और नेत्रजलसे उनके चरणोंको भिगोतेहुए यदुवंशमात्रके विनाशका वृत्तान्त कहा। इस कुसमाचारको सुनते ही सब लोग उद्विग्नतासहित दुरन्त शोकसे मूर्छित होगये। जिस स्थानपर सब सम्बन्धी बन्धु बान्धव मरेहुए पड़े थे वहाँ कृष्णके वियोगसे विह्वल सब लोग छाती पीटते हाहाकार करते उपस्थित हुए। शोकसे अत्यन्त आकुल वसुदेव, उग्रसेन, देवकी और रोहिणीने कृष्ण और बलदेवको न देखकर उनके असह्य विरहसे आतुर होकर उसी समय प्राण त्याग दिये ॥ १५–१८ ॥ हे राजन्! अपने पतियोंके शरीर लेकर सब स्त्रियाँ सती होगईं। बलभद्रजीकी स्त्रियाँ भी स्वामीके शरीरको लेकर प्रज्वलित चित्तापर चढ़गईं। वसुदेवकी शेष स्त्रियाँ और प्रद्युम्न आदिकी स्त्रियाँ भी अपने अपने पतियोंके शरीर लेकर भस्म होगईं। कृष्णकी रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ कृष्णमें मन लगाकर चितामें भस्म होगईं ॥ १९ ॥ २० ॥ अपने परमप्रिय सखा कृष्णके विरहसे आतुर अर्जुनने कृष्णकी बताई हुई सत् उक्तियों (गीताकथित ज्ञान) से अपने चित्तको शान्त किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर अर्जुनने सब निहत बन्धुओंका अन्तिम सत्कार किया, क्योंकि किसीके गोत्रमें कोई पिण्ड और जल देनेवाला नहीं बचा था ॥ २२ ॥ महाराज! भगवान्के श्रीसम्पन्न निवासमन्दिरको छोड़कर उसी समय हरिविहीन समग्र द्वारकापुरीको समुद्रने जलमग्न कर दिया ॥ २३ ॥ उस अपने निवासमन्दिरमें, स्मरण करनेसे समस्त अशुभोंको नष्ट करनेवाले सर्वमङ्गलनिलय भगवान् मधुसूदन सर्वदा अवस्थित रहते हैं ॥ २४ ॥ मरनेसे बचेहुए स्त्री, बालक और बूढ़ोंको लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थको गये और वहाँका राजा वज्रको बनाया ॥ २५ ॥ तुम्हारे युधिष्ठिरादि पितामह अर्जुनके मुखसे सुहृद्वधका वृत्तान्त सुनकर तुमको वंशधर कर आप उस महापथको चलदिये, जिधर जाकर फिर कोई नहीं लौटता ॥ २६ ॥ जो कोई देवदेव साक्षात् विष्णु कृष्णचन्द्रके इन जन्मकर्मोंको श्रद्धापूर्वक कहता, सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २७ ॥ निष्काम भावसे या सकाम

भावसे एकाग्र होकर जो कोई इसे सुनता है वह महापापी, दुराचारी होनेपर भी सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २८ ॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ॥
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २९ ॥

भगवान् हरिके इस परममङ्गलमय मनोहर अवतारकी कथा, विक्रम और बाललीलाओंका कीर्तन करनेसे मनुष्योंको परमहंसोंकी गति जो श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनकी सुदृढ़ अनन्य भक्ति प्राप्त होती है और इसलोक और परलोकमें उनका कल्याण होता है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ इति एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥
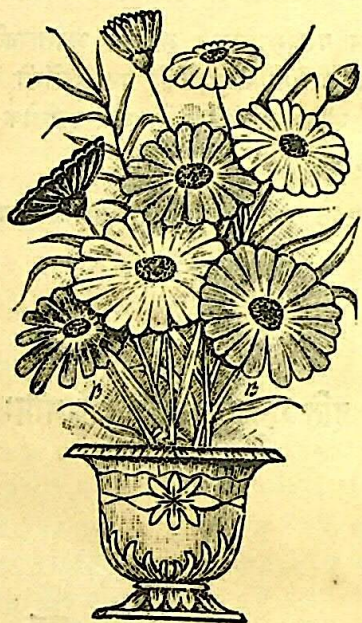
शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

द्वादशस्कन्धः ।

वालमुकुन्द.

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

द्वादशस्कन्धः।

प्रथम अध्याय

भविष्य राजोंके वंशका वर्णन

राजोवाच--स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥
कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्ने पूछा कि—हे मुनिवर! यदुवंशको विभूषित करनेवाले कृष्णचन्द्र जब अपने परमधामको चलेगये तब पृथ्वीपर किस राजाके वंशने राज्य किया, सो मुझसे कहिये ॥१॥ शुकदेवजीने कहा—हम पहले (नवमस्कन्धमें) जरासंधके पुत्र सहदेवसे लेकर रिपुंजय-(जिसका दूसरा नाम पुरंजय भी है)–तक बीस भविष्य राजोंका वर्णन कर आये हैं। उस बृहद्रथ वंशके अन्तिम-राजा पुरंजयका मन्त्री शुनक अपने स्वामी पुरंजयको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतको राजगद्दीपर बैठावेगा। प्रद्योतके पुत्रका नाम पालक होगा। पालकके विशाखयूप, उसके राजक और राजकके नन्दिवर्धन नाम पुत्र होगा। ये प्रद्योतवंशीय पाँच

तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥
अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४४ ॥

इनके वशवर्ती प्रजागण भी चरित्र और स्वभावमें इन्हीके तुल्य होकर पीड़ित होते होते क्रमशः क्षीण होकर नष्ट हो जायँगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय

कलिधर्मनिरूपण

श्रीशुक उवाच—ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥
कालेन बलिना राजन्नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! तदनन्तर प्रबल कालके प्रभावसे प्रतिदिन धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, बल और आयु आदि क्षीण होते जायँगे ॥ १ ॥ कलियुगमें धन होनेसेही मनुष्य कुलीन, आचारवान् और गुणी कहावेंगे एवं प्रबल मनुष्य जो कहे या करेगा वही न्याय्य और धर्म माना जायगा, अर्थात् बलही धर्म व न्यायकी व्यवस्थाका मूलकारण होगा ॥ २ ॥ विवाहसम्बन्धमें रुचि ही मुख्य होगी—कुल और गोत्रका विचार नहीं किया जायगा। क्रय—विक्रय आदि व्यवहारोंमें ठगी रह जायगी। स्त्री और पुरुषकी श्रेष्ठता रतिकौशलसेही समझी जायगी। केवल जनेऊ ब्राह्मणत्वका चिन्ह रह जायगा ॥ ३ ॥ दिखानेके लिये दण्ड, कमण्डलु, मृगचर्म धारण करनेवाले ब्रह्मचारी, संन्यासी होंगे; वे ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंके आचार कुछ भी न करेंगे। उनके अयथार्थ आचरणोंको न देखकर वेषको सब पूजेंगे। जो कोई न्यायालयमें कर्मचारियोंको धन न दे सकेगा उसीकी हार होगी। जो ढिठाईके साथ बहुत बोल सकेगा वही पण्डित कहावेगा ॥ ४ ॥ जो दरिद्र (गरीब) होगा वही असाधु (बदमाश) समझा जायगा और जो पाखण्डी होगा वही साधु समझा जायगा। केवल स्वीकारही विवाह समझा जायगा। स्नानही अलंकार होगा ॥ ५ ॥ दूरका जलाशय तीर्थ कहावेगा। बाल रखाना सुन्दरताका साधन (सामान) समझा जायगा। अपना पेट भर लेनाही बड़ा भारी पुरुषार्थ समझा जायगा। जो ढिठाईसे बात कहेगा उसीकी बात सत्य समझी जायगी ॥ ६ ॥ अपने कुटुम्बका भरण पोषण करसकनाही चतुरता समझी जायगी। यदि कोई कुछ धर्म—कार्य करेगा तो यश और प्रशंसाकी आशासे। इसी प्रकारके दूषित लोगोंसे पृथ्वीमण्डल परिपूर्ण होजायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो प्रबल होगा वही राजा बन

बैठेगा। लोभी, निर्दय और ठग लुटेरोंके तुल्य राजालोग प्रजाके धन और स्त्रियोंको छीनेंगे तब प्रजागण पर्वतोंपर और वनोंमें जाकर बसेंगे। प्रजागण साग, मूल, फल, मांस, मधु, पुष्प, गुठली आदि खाकर जीवन धारण करेंगे। वारंवार अनावृष्टि होनेके कारण अनेक अकाल पड़ेंगे, राजा लोग अपना कर लेनेमें बड़ी कठोरता दिखावेंगे। इन आपत्तियोंसे बहुतसे लोग मरेंगे। इसके सिवा शीत, वात, घाम, वर्षा और पालेसे, परस्परके झगड़ेसे, भूख–प्यास और अनेकानेक रोगोंसे एवं चिन्तासे अत्यन्त पीड़ित होकर बहुतसे लोग मरेंगे। कलियुगमें मनुष्य अधिकसे अधिक बीस या तीस वर्ष जीयेंगे ॥ ७–११ ॥ जब कलियुगके दोषसे सब देहधारियोंके शरीर क्षीण होजायँगे, सब वर्ण और आश्रमोंके धर्म नष्ट होजायँगे, वेदविहित मार्ग मिट जायगा ॥ १२ ॥ धर्मके नामसे पाखण्डका अधिक प्रचार होगा, राजालोग लुटेरोंके समान हो जायँगे, लोग चोरी और व्यर्थ हत्या करेंगे, झूठ बोलेंगे, सब वर्ण शूद्रतुल्य होजायँगे, गौवें बकरियोंके समान होजायँगी, चारो आश्रम गृहस्थ हो जायँगे, अर्थात् गृहस्थोंके समान स्त्रीसङ्ग आदि करेंगे, साले ससुर आदि बन्धु समझे जायँगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ औषधियाँ अपने गुणोंसे हीन होजायँगी, शमीवृक्षके समान वृक्ष छोटे होजायँगे, बिजलीके समान मेघ इधर देख पड़ेंगे उधर लुप्त होजायँगे, सब घर धर्मसे और मनुष्योंसे शून्य होजायँगे और लोग गधेके समान भार ढोनेवाले, रतिरत देख पड़ेंगे तब कलियुगके अन्तमें धर्मकी रक्षा करनेके लिये सत्त्वमय भगवान्‌का अंशावतार होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ साधुओंको कर्मबन्धनसे मुक्त करनेके लिये और सनातन धर्मके उद्धारके लिये, सम्भलग्राममें रहनेवाले श्रेष्ठ महात्मा विष्णुयशा ब्राह्मणके घरमें चराचर जगत्‌के गुरु, सर्वव्यापक ईश्वर कल्कि नाम भगवान्‌का जन्म होगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ अणिमा आदि आठो ऐश्वर्य और सत्य आदि गुणोंसे युक्त, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, अतुलप्रभासम्पन्न, विश्वपति कल्कि भगवान् स्वयं आकर उपस्थित शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़कर पृथ्वीमण्डलमें घूमेंगे और सुतीक्ष्ण तर्वारके प्रहारद्वारा राजोंके वेषसे प्रजाको लूटनेवाले करोड़ों दुष्टोंका संहार करेंगे। हे राजेन्द्र! इसप्रकार दस्युदलका संहार हो जानेपर वासुदेवके अङ्गमें लगेहुए चन्दनके सुगन्धसे युक्त वायुके स्पर्शसे पुरवासी और जनपदवासी लोगोंके मन पवित्र होजायँगे। सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव जब हृदयमें स्थित होंगे तब उन लोगोंके वंशकी वृद्धि होगी। धर्मपालक भगवान् कल्किनाम हरिके प्रकट होतेही सत्ययुगका आविर्भाव होगा और प्रजागणके सात्त्विकस्वभावसम्पन्न सन्तान उत्पन्न होंगे। महाराज! जब ऐसा योग आकर पड़ेगा कि चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्य-नक्षत्रयुक्त कर्कराशिमें एकसाथ आजायँगे तब सत्ययुगका आरम्भ होगा। हे राजन्! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार चन्द्रवंश और सूर्यवंशके

भूत, भविष्य और वर्तमान राजोंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मैंने तुमको सुना दिया। महाराज! तुम्हारे जन्मसे लेकर नन्द राजाके अभिषेक तकके समयका परिमाण एक हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष है ॥ १९–२६ ॥ आकाशमण्डलके बीच उदयकालमें सप्तर्षियोंके मण्डलमें जो पुलह और क्रतु नाम दो ऋषि प्रथम प्रकट होते देख पड़ते हैं उन दोनो ऋषियोंके मध्यमें रात्रिके समय दक्षिण ओरसे समदेशमें अवस्थित जो अश्विनी आदि नक्षत्रोंमेंसे एक नक्षत्र देखते हो उस नक्षत्रमें मनुष्योंकी वर्षगणनाके अनुसार सौ वर्षतक सप्तर्षिगण रहते हैं। वे सप्तर्षि अब तुम्हारे समयमें मघा नक्षत्रमें अवस्थित हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र शुद्धसत्त्वात्मक शरीरसे जिस समय परम धामको गये उसी समयसे कलियुगने–जिसमें मनुष्य पापमें प्रवृत्त होते हैं–इस पृथ्वीपर पूर्णरीतिसे अपना अधिकार कर लिया ॥ २९ ॥ राजन्! यद्यपि कलियुगका प्रारम्भ पहलेहीसे होगया था तथापि जबतक लक्ष्मीपति कृष्णचन्द्रके पवित्र चरण इस पृथ्वीपर रहे तबतक कलियुग अपने पराक्रमको नहीं प्रकट कर सका ॥ ३० ॥ राजन्! जिससमय सप्तऋषि मघा नक्षत्रमें आये उससमय युगसन्धिके अतिरिक्त कलियुगके बारह सौ वर्ष बीत चुके थे ॥ ३१ ॥ जब सप्तऋषि मघासे पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें जायँगे उससमय नन्दराजाका राज्य होगा, उसी समयसे कलियुगका विक्रम बढ़ेगा ॥ ३२ ॥ प्राचीन विद्वानोंका कथन है कि जिस दिन कृष्ण भगवान् परम धामको गये उसी दिन पृथ्वीपर कलियुगका आगमन हुआ ॥ ३३ ॥ दिव्य सहस्र वर्षतक पृथ्वीपर चौथा युग कलियुग रहेगा, उसके बाद फिर सत्ययुगका आरम्भ होगा। सत्ययुगके आनेपर मनुष्योंके मन और आत्मा निर्मल एवं प्रसन्न होंगे ॥ ३४ ॥ वर्तमान युगकी, क्षत्रिय मानववंशकी जैसी अवस्था या स्थिति कही गई और व्याख्या की गई उसीके अनुसार या वैसीही हरएक युगमें पृथ्वीपर रहनेवाले ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रोंके वंशोंकी भी स्थिति जानना ॥ ३५ ॥ पूर्वोक्त महापुरुषोंका न अब राज्य है और न पुत्र–पौत्रादिक हैं। उनकी कीर्ति

---

१ आकाशमण्डलके उत्तरभागमें ध्रुवनक्षत्रके निकटवर्ती स्थानमें पूर्वाग्र शकटाकार जो सात प्रधान नक्षत्र एकत्र देख पड़ते हैं वेही सप्तर्षि हैं। उस सप्तर्षिमण्डलमें कुछ ऊँची रेखाके अग्रभागमें जो नक्षत्र है वह मरीचि ऋषि हैं। उनके बाद झुकेहुए कंधेके आकारके जो दो (एक छोटा और एक बड़ा) नक्षत्र हैं उनमें बड़ा नक्षत्र वसिष्ठ ऋषि हैं और छोटा नक्षत्र उनकी स्त्री अरुन्धती हैं। उनके बाद कुछ ऊँची रेखाके मूलमें अवस्थित नक्षत्र अङ्गिरा ऋषि हैं। उनके ईशान कोणमें अवस्थित जो चौकोर चार तारा देख पड़ते हैं वह अत्रि ऋषि हैं। उनके दक्षिण ओर पुलस्त्य ऋषि हैं, पुलस्त्यके पश्चिम ओर पुलह ऋषि और उनके उत्तर ओर क्रतु ऋषि हैं।

केवल पृथ्वीपर बनीहुई है। उनका शरीर नष्ट होगया, परन्तु नाम अमर है। वे नहीं रहे, परन्तु उनकी कथाएँ अबभी कही सुनी जाती हैं ॥ ३६ ॥ राजन्! शन्तनु राजाके भाई चन्द्रवंशी देवापि और इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न सूर्यवंशी राजा मरु–ये दोनो योगबलसे जीवित हैं। उक्त दोनो महायोगी कलापग्राममें योगाभ्यास करते हैं ॥ ३७ ॥ राजन्! ये दोनो राजा हरिकी शिक्षाके अनुसार कलियुगके अन्तमें आकर पहलेकीभाँति फिर चारो वर्ण और आश्रमोंके लुप्त होगये धर्मका प्रचार करेंगे एवं विनष्ट चन्द्रवंश और सूर्यवंशको स्थापित करेंगे ॥ ३८ ॥ राजन्! इसीक्रमसे पृथ्वीपर सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग–ये चारो युग आते जाते रहते हैं और प्रत्येक युगमें युग–धर्मके अनुसार प्राणियोंके कर्म होते हैं ॥ ३९ ॥ राजन्! जिन क्षत्रिय राजों एवं अन्यान्य वर्णके राजोंका मैंने तुम्हारे आगे वर्णन किया ये सब जीवनभर इस पृथ्वीको अपनी समझते रहे, परन्तु अन्तमें इसको छोड़कर यमपुरीको चलेगये और यह इनमेंसे किसीकी भी नहीं हुई ॥ ४० ॥ जो शरीर राजा कहलाता है उसकी भी अन्तमें तीनही गतियाँ होंगी–कृमि, विष्ठा या भस्म। इस देहके सुखके अर्थ जो प्राणियोंसे द्रोह करता है वह वास्तवमें स्वार्थको नहीं जानता; क्योंकि प्राणियोंसे द्रोह करनेसे नरकमें जाना होता है ॥ ४१ ॥ पृथ्वीको अपनी पैतृक सम्पत्ति समझनेवाले अज्ञ राजालोग यों सोचते हैं कि "हमारे पूर्वजोंने इस अखण्ड पृथ्वीका भोग किया है और इससमय हम भी इसका भोग कर रहे हैं एवं ऐसा कुछ उपाय करना चाहिये कि आगे भी यह हमारी पृथ्वी हमारे पुत्र, पौत्र और वंशजोंकी ही बनी रहे" ॥ ४२ ॥ राजन्! इसप्रकार अन्नजलमय शरीरको आत्मा और किसीकी भी न होनेवाली पृथ्वीको अपनी सम्पत्ति समझनेवाले ममत्वमूढ़ अज्ञानी जन शरीर और पृथ्वीको यहीं छोड़कर अदृश्य होगये हैं ॥ ४३ ॥

ये ये भूपतयो राजन्भुञ्जते भुवमोजसा ॥
कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

महाराज! जिन जिन नरपतियोंने पराक्रमपूर्वक औरोंसे छीनकर पृथ्वीका भोग किया वे सब काल बलीके गालमें चलेगये। अब कथाओंमें केवल उनके उपाख्यान सुने जाते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

राज्यदोष, युगधर्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेके उपायोंका वर्णन

**श्रीशुक उवाच—दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥
अहो मां विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥१॥**

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! यह पृथ्वी, राजोंको अपने जीतनेके लिये उद्योग करते देखकर हँसती है कि "अहो! ये मृत्युके खिलौने नरपतिगण मुझको जीतनेकी अभिलाषा करते हैं! ॥ १ ॥ ये विद्वान् होकर भी जलफेन-तुल्य अस्थिर शरीरको समझते हैं कि सदा बना रहेगा। इनकी यह कामना व्यर्थ है ॥ २ ॥ ये अपने मनमें सोचते हैं कि 'हम प्रथम काम, क्रोध आदि छः शत्रुओंको जीतकर राजमन्त्रियोंको अपने वशमें कर लेंगे। फिर अमात्य, पुर-वासी और गज आदि अङ्गोंसे युक्त सेनाको अपने अधीन करके शत्रुओंको जीतेंगे। इसप्रकार क्रमशः स-सागरा पृथ्वीके अधीश्वर हो जायँगे;' परन्तु अपने शिरपर उपस्थित कालको नहीं देखते! ॥ ३ ॥ ४ ॥ कोई कोई विक्रमी राजा सागरपर्यन्त मुझको जीतकर भी सागरमें प्रवेश कर जाते हैं, अर्थात् नष्ट हो जाते हैं। किन्तु इन्द्रियदमनका यह फल कुछ भी नहीं है; इन्द्रियदमनका मुख्य और यथार्थ फल मोक्ष ही है ॥ ५ ॥ (हे कुरुश्रेष्ठ! पृथ्वी कहती है कि–) महात्मा मनु महाराज और उनके पुत्रगण मुझको छोड़कर जैसे आये थे वैसे ही चले गये, सो ये मूढ़ नृपतिगण युद्ध करके मुझको जीतना चाहते हैं! ॥ ६ ॥ राज्यकी लालसासे मेरेलिये असत्प्रकृतिके पिता और पुत्र एवं भाई भाई परस्पर लड़ते झगड़ते हैं ॥ ७ ॥ मेरे ही लिये परस्पर लागडाँटके साथ, 'अरे मूढ़! यह सब पृथ्वी मेरी ही है, तेरी कहाँसे आई'–यों कहकर मूढ़ मनुष्य मारते और मर-जाते हैं ॥ ८ ॥ सर्वज्ञ, वीर और दिग्विजयी पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, सहस्रबाहु, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वाङ्ग, धुन्धुहा, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नल आदि राजालोग एवं हिरण्यकशिपु, वृत्र, लोकरावण रावण, नमुचि, शम्बर, भौम, हिरण्याक्ष और तारक आदि दुर्मद दानवगण तथा और और बहुतसे क्षत्रिय एवं दानवगण जो मेरे स्वामी हो गये हैं वे सब मुझको अपनी ही समझते रहे, परन्तु परमप्रबल कालके आगे उनमेंसे किसीकी नहीं चली। कालने सबके मनोरथ विफल कर दिये। सब मर गये अब केवल उनकी कथाएँ रह गई हैं। जब वे कालसे हार गये और उनकी कामना नहीं पूर्ण हुई तब ये तुच्छ किस गिनतीमें हैं" ॥ ९–१३ ॥ शुक-देवजी कहते हैं—हे राजन्! मैंने तीनो लोकमें अपने सुयशको फैलानेवाले–

इसी कारण मरनेपर भी अमर हो रहे महत् व्यक्तियोंकी कथाएँ आपके आगे कहीं। इन कथाओंके पढ़नेसुननेसे जान पड़ता है कि सम्पूर्ण विषय असार हैं और इस ज्ञानके होनेपर वैराग्य उत्पन्न होता है, किन्तु परमार्थकी प्राप्ति नहीं होती ॥ १४ ॥ कृष्णचन्द्रकी विशुद्ध (निष्काम) भक्ति ही यथार्थ परमार्थ है। यदि भक्तिरूप परमार्थ पानेकी लालसा हो तो चाहिये कि एकाग्र होकर, शुद्ध चित्तसे हरिके अमङ्गलहारी पवित्र चरित्रोंको वारंवार कहे एवं नित्य निरन्तर सज्जनोंके निकट बैठकर सुने ॥ १५ ॥ राजाने पूछा—भगवन्! हे मुनिवर! कलियुगके निरन्तर बढ़नेवाले दोषसमूह तो भक्तिके मार्गमें विघ्नस्वरूप हैं, अतएव आप कृपा करके ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे साधक जन अपने मार्गसे कलियुगके दोषोंको हटा सकें ॥ १६ ॥ इसके अतिरिक्त युग, युगधर्म, प्रलय और कल्प तथा ईश्वरके रूप कालका परिमाण एवं महात्मा विष्णु(कृष्ण)की गति अर्थात् परमधामगमन भी कृपा करके मुझको सुनाइये ॥ १७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सत्ययुगमें उस समयके लोग सत्य, दया, तप और निरपेक्ष भावसे अभय दान–अर्थात् किसीको न सताना–इन चारो चरणोंसे पूर्ण धर्मका पालन करते हैं ॥ १८ ॥ सत्ययुगके लोग सन्तोषी, दयावान्, सबसे मित्रता रखनेवाले, शान्तशील, जितेन्द्रिय, सहनशील अर्थात् क्षमासम्पन्न, आत्माराम, समदर्शी और प्रायः योगाभ्यास करनेवाले होते हैं ॥ १९ ॥ त्रेतायुगमें धीरे धीरे धर्मका चौथाई भाग क्षीण हो जाता है। अर्थात् झूठ, हिंसा, असन्तोष और कलह–इन अधर्मके चरणोंकी वृद्धिसे क्रमशः धर्मके सत्य, दया, तप और अभयदान–ये चारो चरण चौथाई घट जाते हैं ॥२०॥ उससमयके लोगोंकी रुचि कर्मकाण्ड और जप, तपमें अधिक होती है। हिंसा और लम्पटताकी प्रवृत्ति लोगोंमें अधिक नहीं होती। धर्म-अर्थ-काम-निरत, वेदपाठी ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक होती है ॥ २१ ॥ हे राजन्! द्वापरमें पूर्वोक्त झूठ, हिंसा, असन्तोष और कलह–इन अधर्मके चरणोंकी वृद्धिसे धर्मके सत्य, दया, तप और अभयदान–इन चारो चरणोंका आधा भाग घट जाता है ॥२२॥ द्वापरके लोग यशस्वी, सुशील (उदार), स्वाध्यायनिरत, धनाढ्य, कुटुम्बी और प्रसन्न होते हैं एवं ब्राह्मण व क्षत्रियोंकी संख्या अधिक होती है ॥२३॥ कलियुगमें धर्मके चरणोंका चतुर्थांश शेष रहता है और प्रतिदिन बढ़रहे अधर्मके चरणोंसे धीरे धीरे क्षीण होते होते अन्तको वह भी नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥ कलियुगमें शूद्र और कैवर्त आदि अधम अन्त्यजोंकी ही संख्या अधिक होती है एवं कलियुगके लोग अत्यन्त लोभी, कुकर्मी, दयाशून्य, व्यर्थ झगड़नेवाले, अभागे और अत्यन्त तृष्णासे पूर्ण होंगे ॥ २५ ॥ राजन्! पुरुषमें सत्त्व, रजः और तम, ये गुण देखे जाते हैं। ये ही गुण कालकी प्रेरणासे आत्मामें प्रवर्तित होते हैं ॥ २६ ॥ जब मन, बुद्धि और इन्द्रियोंकी सत्त्वगुणमें अधिकताके साथ प्रवृत्ति होती है वही सत्ययुगका समय है। उससमय इसीसे लोगोंकी रुचि ज्ञान और तपमें होती है

॥२७॥ और जब मन आदिकी प्रवृत्ति रजोगुणसें अधिक होती है वही त्रेतायुगका समय है। उससमय लोगोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें होती है ॥ २८ ॥ ऐसे ही जब मन आदिकी प्रवृत्ति रजोगुणमिश्रित तमोगुणसें अधिक होती है वही द्वापर-युगका समय है। उससमय लोगोंसें लोभ, असन्तोष, अभिमान, दम्भ, मत्सरका प्रचार और सकाम कर्मोंकी रुचि होती है ॥ २९ ॥ जब मन आदिकी प्रवृत्ति केवल तमोगुणमें अधिक होती है वही कलियुगका समय है। उससमय लोगोंसें छल, झूठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय और दीनताकी वृद्धि और अधर्मकी रुचि होती है ॥ ३० ॥ कलियुगके प्रभावसे मनुष्य दूरदर्शी नहीं होंगे, अभागी और धनहीन होंगे, बहुत भोजन करेंगे, कामी होंगे, स्त्रियाँ असती (कुलटा) होंगी ॥ ३१ ॥ नगर लुटेरे और ठगोंसे परिपूर्ण होंगे, वेद पाखण्डसे दूषित हो जायँगे, राजालोग अपनी प्रजाको पालनेके बदले लूट खायँगे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य खाने और मैथुन करनेसें तत्पर होंगे–अपने सनातन आचरणोंको छोड़ देंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी लोग शौचसे शून्य होकर ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन न करेंगे। गृहस्थ कुटुम्बी लोग आप ही भिक्षा मांगेंगे। तपस्वी अर्थात् वानप्रस्थ वनमें न रहकर ग्राम और नगरोंमें रहेंगे। संन्यासीलोग धन जमा करेंगे ॥ ३३ ॥ स्त्रियोंके शरीर छोटे हो जायँगे। वे बहुत भोजन करेंगी। उनके बहुत सन्तान होंगे। वे सदैव अपने घरवाले पति आदिसे कटुवचन बोलेंगी; चोरी, छल आदिसे परिपूर्ण और लज्जासे शून्य होंगी और बड़े बड़े साहसके काम करेंगी ॥ ३४ ॥ वणिक्‌वृन्द नीच विचारवाले होकर क्रय-विक्रयसें लोगोंको ठगेंगे। उच्च कुलके लोग विना विपत्तिके भी भले लोगोंके न करनेयोग्य निन्दित जीविकाको उत्तम समझकर करेंगे ॥ ३५ ॥ सब प्रकार उत्तम स्वामी, यदि धनहीन होगा तो सेवक उसे छोड़ देंगे और विपत्तिसें पड़ेहुए पुराने और विश्वस्त सेवकको स्वामी लोग छोड़ देंगे। जो गऊ बूढ़ी हो जायगी और दूध न दे सकेगी उसको लोग छोड़ देंगे ॥ ३६ ॥ कलियुगमें लोग स्त्रीजित एवं स्त्रीकी सेवा करनेवाले होंगे। वे सुरतिसम्बन्धी सुहृद्भावको मुख्य समझेंगे, अतएव अपने पिता, भाई, सुहृद्‌गण और सजातीय इष्ट मित्रोंको छोड़कर हरएक काममें साली और सालोंकी स्त्रियोंसे सलाह लेंगे ॥ ३७ ॥ तापसवेषधारी शूद्र उच्च जातियोंसे अपनी पूजा और सेवा करावेंगे एवं धर्मको कुछ भी न जाननेवाले लोग उत्तम आसनपर बैठकर धर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ राजन्! कलियुगमें अन्न न मिलनेके कारण लोगोंके चित्त सर्वदा चिन्तित रहेंगे। नित्य अकाल रहनेसे लोगोंको घोर अन्नकष्ट रहेगा। सब अनावृष्टिके भयसे व्याकुल रहेंगे। उसपर 'कर' देना ही पड़ेगा जिससे उनकी और भी दुर्दशा होगी। लोगोंको खाने-पीनेको नहीं जुरेगा। इसप्रकार अन्न, वस्त्र, शय्या, स्नान, भूषण आदिसे रहित

प्रजागण पिशाचऐसे भयानक देख पड़ेंगे–उनके शरीरोंमें केवल हड्डियाँ रह जायँगी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ लोग दमड़ीकी कौड़ियोंके लिये मित्रता छोड़कर झगड़ा करेंगे यहाँतक कि स्वजनोंको भी मार डालेंगे और कभी कभी अपने परमप्रिय प्राण खो देंगे। मनुष्य ऐसी नीच प्रवृत्तिके हो जायँगे कि केवल अपना पेट पालने और स्त्रीभोग करनेमें तत्पर रहेंगे एवं अपने अशक्त बूढ़े माता, पिता और पुत्र तथा कुलीनकी कन्या जो अपनी धर्मपत्नी होगी उसका भी भरणपोषण नहीं करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ राजन्! कलियुगमें बहुतसे मनुष्योंके मन पाखण्ड-विश्वाससे ऐसे दूषित और भ्रष्ट हो जायँगे कि वे, जिनके चरणकमलोंमें तीनो लोकोंके ईश्वर ब्रह्मादिक शिर झुकाते हैं उन सम्पूर्ण जगत्के परमगुरु भगवान् अच्युतकी पूजासे विमुख हो जायँगे!!! ॥ ४३ ॥ राजन्! मरतेसमय, आर्त अवस्थामें, रोगमें, गिरते–पड़ते आदि सब प्रकारके संकटोंकी दशामें विवश होनेपर अचानक जिनका नाम मुखसे निकलनेमें उसी समय कर्मबन्धनसे मुक्त होकर प्राणी उत्तम गतिको पाता है–कलिकालमें उन्ही ईश्वरकी पूजा बहुतसे लोग न करेंगे!!! ॥४४॥ हे राजन्! जिससमय पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें विराजते हैं–प्रकट होते हैं–उसीसमय उनके प्रतापसे सब कलिकलुप और द्रव्य, देश तथा आत्माके दोष दूर हो जाते हैं ॥४५॥ हृदयकमलमें स्थित भगवान्का श्रवण, कीर्तन, चिन्तन पूजन वा आदर करनेसे एक जन्मकी कौन कहे, दश हजार जन्मके पातक तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ जैसे अग्नि सुवर्णके अन्य–धातुजनित मैलको मिटाकर उसे शुद्ध बना देता है वैसे ही चित्तमें प्रकट होतेही विष्णु भगवान् योगियोंकी अशुभ वासनाओंको मिटा देते हैं ॥ ४७ ॥ अनन्त भगवान्के ध्यानसे अन्तःकरण जैसा शुद्ध हो जाता है वैसा देवतोंकी उपासना, तप, प्राणायाम, मैत्री, तीर्थयात्रा, व्रत, दान और जप आदिसे नहीं होता ॥ ४८ ॥ अतएव हे राजन्! इससमय तुम तन, मन, वचनसे एकाग्र होकर हृदयमें उन्ही केशवका ध्यान करो। जिसका अन्तसमय निकट आगया हो वह इसप्रकार एकाग्र होकर हरिमें मन लगानेसे परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ मरनेके लिये प्रस्तुत लोग यदि इसप्रकार सर्वात्मा, सर्वाश्रय, भगवान् परमेश्वरका ध्यान करते हैं तो वह उनको सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ ५० ॥ राजन्! इस कलियुगमें सब दोषही दोष हैं, तथापि यह एक बड़ा श्रेष्ठ गुण है कि (कलियुगमें) केवल 'कृष्ण'के कीर्तनसे ही, मनुष्य,–कर्मबन्धनसे मुक्त होकर परमात्मामें लीन होजाता है ॥ ५१ ॥

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

राजन्! सत्ययुगमें निरन्तर विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञद्वारा यजन करनेसे और द्वापरमें उपासना करनेसे जो गति (मुक्ति) प्राप्त होती है वही कलियुगमें केवल नामकीर्तनसे मिलती है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय

परमार्थनिर्णय

श्रीशुक उवाच—कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ॥
कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्यन्त कालका परिमाण और युगोंका परिमाण भी[1] (तृतीय-स्कन्धमें) हम कहचुके हैं। अब कल्प और प्रलयका वर्णन करते हैं—सो सुनो ॥ १ ॥ एक सहस्र सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन पूर्ण होता है। उसी ब्रह्माके एक दिनको कल्प कहते हैं। एक कल्पमें चौदह मनु क्रमशः शासन करते हैं ॥ २ ॥ कल्पके उपरान्त उतनीही बड़ी ब्रह्माकी रात्रि होती है, जिसमें तीनो लोकोंका लय अर्थात् संहार होता है। यह नैमित्तिक प्रलय कहाता है। इस प्रलयमें भगवान् नारायण तीनो लोकोंको अपनी स्वयम्भू सृष्टिकर्ता ब्रह्मा नाम मूर्तिमें लीन करके शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ इसीप्रकार जब परमेष्ठी ब्रह्माकी आयुके दोनो परार्ध अर्थात् सौ वर्ष बीत जाते हैं तब महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतत्त्व—ये सातो प्रकृतियाँ लयको प्राप्त होती हैं, अर्थात् कालके द्वारा विनाशका कारण उपस्थित होनेपर महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतत्त्वके कार्यरूप इस ब्रह्माण्डवलयका प्रलय होता है। यही प्राकृतिक प्रलय है ॥ ५ ॥ ६ ॥ जब प्राकृतिक प्रलय होनेवाला होता है तब पृथ्वीपर सौ वर्षतक मेघ जलकी वर्षा नहीं करते। वर्षा न होनेसे अन्न भी नहीं उत्पन्न होता। उससमय सामायिक उपद्रवसे पीड़ित मनुष्य, भूखसे व्याकुल होकर राक्षसोंके समान एकएकको खाजाते हैं। इसप्रकार धीरे धीरे सब पृथ्वीवासियोंका क्षय हो जाता है। प्रलयकालका सूर्य अपनी घोर किरणोंसे समुद्रके, (प्राणियोंके) शरीरके और पृथ्वीके रस (जलके अंश)को सोख लेता है एवं समयपर

---

१ सत्ययुगका परिमाण १७२८००० वर्ष, त्रेतायुगका परिमाण १२९६००० वर्ष, द्वापरयुगका परिमाण ८६४००० वर्ष और कलियुगका परिमाण ४३२००० वर्ष हैं।

(वर्षाकालमें) छोड़ता नहीं है। इसके उपरान्त संकर्षण देवके मुखसे निकलकर प्रलयकालका अग्नि, वायुके वेगसे बढ़ता हुआ प्राणियोंसे शून्य पृथ्वीके पाताल आदि विवरोंको भस्म कर देता है ॥ ७–९ ॥ उससमय यह ब्रह्माण्ड ऊपर सूर्यकी किरणोंसे और नीचे अग्निकी ज्वालाओंसे जलता हुआ, जल रहे गोबरके पिण्डके समान देख पड़ता है ॥ १० ॥ फिर कुछ अधिक सौ वर्षतक प्रलयकालकी घोर आँधी चलती है, जिससे आकाशमें धूल छा जाती है ॥११॥ राजन् ! फिर विविध वर्णमें प्रलयकालीन मेघसमूह घोर शब्द करतेहुए, सौ वर्षतक हाथीकी सूँढ़के समान स्थूल धाराओंसे बराबर जलकी वर्षा करते रहते हैं। तब पाताल आदि विवरोंके अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व–ब्रह्माण्ड, बढ़ रहे प्रलयकालके महासागरमें मग्न हो जाता है, अर्थात् सर्वत्र केवल जल देख पड़ता है। तब पृथ्वीका गन्ध गुण जलमें लीन होजाता है और पृथ्वी भी गन्धरहित होकर जलमें मिल जाती है। फिर जलका रस गुण तेजमें लीन होजाता है और जल भी रसरहित होकर तेजमें मिल जाता है। फिर तेजका रूप गुण वायुमें लीन हो जाता है और तेज भी रूपरहित होकर वायुमें मिल जाता है। फिर वायुका स्पर्शगुण आकाशमें लीन होजाता है और स्पर्शरहित वायु भी आकाशमें मिल जाता है। फिर आकाशका शब्दगुण तामस अहंकारमें लीन होता है और अपने गुणके साथ ही आकाश भी उसीमें लीन होजाता है। इसीप्रकार हे कुरुश्रेष्ठ ! तैजस अहंकारमें दशो इन्द्रियाँ एवं वैकारिक अहंकारमें वृत्तिसमूहसहित इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता लयको प्राप्त होते हैं। फिर त्रिविध अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व सत्त्व आदि गुणोंमें लयको प्राप्त होता है। राजन् ! फिर कालकी प्रेरणासे प्रकृतिमें उसके सत्त्व आदि तीनो गुण लयको प्राप्त होते हैं। महाराज ! दिन रात्रि आदि कालके अवयवों-द्वारा प्रकृतिके परिणाम आदि भाव–विकार नहीं होते, अतएव उसका लय भी नहीं होता। वह प्रकृति, जिसको प्रधान या माया भी कहते हैं, अनादि और अनन्त है। वह अव्यक्त अर्थात् अस्तित्वके विकारोंसे रहित है, नित्य अर्थात् सर्वदा एकरूप है, अव्यय अर्थात् अपक्षयरहित है–क्योंकि कारणरूप है। वह वाणी और मन, दोनोसे अतीत है। उसमें लोकरूप रचनाविशेष नहीं है। वह सत्त्व, रज, तम, प्राण, बुद्धि, सम्पूर्ण इन्द्रिय, इन्द्रियोंके देवता, स्वप्न, जागरण, सुषुप्ति, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य आदि सबसे परे और पृथक् है। वह घोर निद्रिततुल्य चेष्टारहित शून्यवत् अतर्क्य है। वही सबका मूल परमपद कहकर प्रसिद्ध है ॥ १२–२१ ॥ राजन् ! यही प्राकृतिक प्रलय है, जिसमें कालकी प्रेरणासे विवश होकर पुरुष और प्रकृतिकी सब सत्त्व आदि शक्तियाँ उक्त प्रकारसे लयको प्राप्त होती हैं ॥ २२ ॥ [अब आत्यन्तिक प्रलय जिसको मोक्ष भी कहते हैं उसका वर्णन सुनो। आत्यन्तिक प्रलय ब्रह्मके ज्ञानसे होता है, उसमें

सब प्रपञ्च लयको प्राप्त होते हैं] राजन् ! बुद्धि, इन्द्रिय और पदार्थोंका आश्रय-ज्ञान, उनके रूपोंसे होता है । कारणकी अभिन्नतासे आदि-अन्तयुक्त दृश्य विषय, वस्तु अर्थात् सत् नहीं हैं । जैसे दीपक, चक्षु और रूप, तेजसे भिन्न अर्थात् स्वतन्त्र नहीं हैं वैसेही बुद्धि, इन्द्रियावकाश और इन्द्रियाँ भी कारणस्वरूप सत्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि वे कारणरूप ब्रह्मका कार्य हैं । (यदि शङ्का की जाय कि इसप्रकार कार्य कारणमें अभेदभाव माननेमें कार्यके असत् होनेपर कारण भी असत् प्रतीत होता है, तो उसका समाधान यह है कि—) वह कारणस्वरूप सत्य ब्रह्म असत्स्वरूप कार्यसे बिलकुल अलग है । अर्थात् ब्रह्म अपने प्रपञ्चसे अलग है, परन्तु प्रपञ्च उससे अलग नहीं है ॥ २३ ॥ २४ ॥ राजन् ! जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति ये अवस्थाएँ वास्तवमें बुद्धिकी हैं-आत्माकी नहीं हैं । अतएव बुद्धिके असत् पदार्थ होनेके उसकी अवस्थाएँ भी असत् हैं । (यदि कोई कहे कि 'ये अवस्थाएँ तो विश्व, तैजस और प्राज्ञ संज्ञाओंको प्राप्त आत्माकी हैं' तो उसका उत्तर देते हैं कि-) बुद्धिके साक्षीमात्र एक आत्माको विश्व, तैजस और प्राज्ञ मानकर उसमें अनेकत्वका आरोप, केवल मायाकृत मोहमात्र है ॥ २५ ॥ राजन् ! जैसे आकाशमें कभी मेघ होते हैं और कभी नहीं होते वैसे ही ब्रह्ममें यह विश्व है । आकाशके समान इस विश्वकी अवधि ब्रह्म सत् है, और मेघोंके समान उदय और अस्त होनेवाला यह विश्व असत् है । अथवा आदि और अन्तसे युक्त सावयव घट आदि पदार्थोंके समान यह विश्व असत् है और मृत्तिकाके समान अनादि अनन्त ब्रह्म सत् है ॥ २६ ॥ राजन् ! सब सावयव पदार्थोंके अवयव सत् कहे और मानेगये हैं, क्यों कि अवयवीके विना, उससे अलग अवयवोंकी प्रतीति होती है । जैसे वस्त्रके अवयव जो डोरे हैं वे वस्त्रसे अलग प्रतीत होते हैं, परन्तु वस्त्र उनसे अलग नहीं प्रतीत होता । वैसे ही पटतन्तुन्यायसे अवयवरूप सत् ब्रह्म विश्वके प्रपञ्चसे, कारण होकर भी, अलग प्रतीत होता है और अवयवीरूप असत् विश्व पटके समान उससे अभिन्न है ॥ २७ ॥ राजन् ! कार्य-कारणरूपसे जो कुछ परस्पर सापेक्ष सिद्ध हो वह सब भ्रम है और जिसका कुछ भी आदि अन्त है वह अवस्तु अर्थात् असत् है ॥ २८ ॥ प्रपञ्च, प्रकाशमान होनेपर भी, साक्षी आत्माके विना अणुमात्र भी निरूपणीय नहीं है और यदि आत्माके विना निरूपित हो तो वह भी चिद्रूप आत्माके सदृश, स्वयंप्रकाश होगा-आत्मवत् हो जायगा ॥ २९ ॥ राजन् ! सत्य एक ही होता है, सत्यकी अनेकता मिथ्या है । अज्ञलोग मोहवश सत्यको जो अनेक समझते हैं सो केवल घटाकाश गृहाकाशमें या घटके जल और सरोवरके जलमें अथवा आन्तरिक और बाह्यवायुमें क्रमशः एक ही आकाश, सूर्य और वायुको अनेक समझनेके समान उपाधिकृत भ्रान्तिमात्र है ॥ ३० ॥ जैसे व्यवहारके अनुसार सुनार भिन्न भिन्न गठन और प्रकारसे सुवर्णके कुण्डल, अँगूठी

आदि अनेक आभूषण बनाता है और लोग कुण्डल आदि रूपोंसे सुवर्णके अनेक नाम रख लेते हैं उसीप्रकार अहंभावयुक्त जन, लौकिक और वैदिक वाक्योंसे अधोक्षज भगवान्‌के विषयमें अनेक व्याख्या करते हैं ॥ ३१ ॥ राजन् ! जैसे सूर्यसे उत्पन्न और सूर्यहीसे प्रकाशित मेघ, सूर्यका आवरण होते हैं और मेघोंकी प्रतिबन्धकतासे सूर्यहीका अंश जो चक्षुइन्द्रिय है वह अपने रूप सूर्यको नहीं देख पाती, वैसे ही ब्रह्मके कार्यसे उत्पन्न एवं ब्रह्मके द्वारा प्रकाशित अहंकार ब्रह्मका आवरण है और अहंकारकी प्रतिबन्धकतासे ब्रह्महीका अंश जो जीव है सो अपने रूप ब्रह्मको नहीं देख पाता। राजन् ! जैसे सूर्यजनित मेघोंके हटजानेपर, चक्षु, अपने रूप सूर्यको देख पाती है वैसे ही जब जीवात्माकी उपाधि अहंकार, जिज्ञासा अर्थात् ब्रह्मज्ञानके अभ्याससे मिट जाता है तब यह जीवात्मा अपने रूप ब्रह्मको देख पाता और जानता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जब इसप्रकार विवेकरूप अस्त्रकी सहायतासे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काटकर आत्मज्ञान प्राप्त किया जाता है, वही मोक्ष या आत्यन्तिक प्रलय है ॥ ३४ ॥ हे शत्रुदमन ! कुछ सूक्ष्म बुद्धिवाले पण्डितोंका कथन है कि ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सब प्राणियोंकी नित्य सृष्टि और नित्य प्रलय होता है। नित्य शारीरिक अवस्थाओंका पलटना ही नित्य प्रलय है। कालके प्रबल वेगशाली प्रवाहमें शीघ्रताके साथ बह-रहे सब प्राणियोंकी प्रतिक्षण बदल रही अवस्थाएँ ही उनके शरीरोंके जन्म और लयका कारण हैं। राजन् ! ईश्वरकी मूर्ति काल, अनादि और अनन्त है। उस कालके द्वारा होनेवाली अवस्थाएँ उसीप्रकार नहीं देख पड़तीं जिसप्रकार असीम आकाशमें घूम रहे नक्षत्र और तारागणकी गतिकी अवस्थाएँ नहीं देख पड़तीं ॥ ३५–३७ ॥ राजन् ! मैंने इन नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य–चारो प्रलयोंका विवरण तुमको सुना दिया। महाराज ! कालकी गति ऐसी ही है ॥३८॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जगत्‌के विधाता, सब प्राणियोंके आश्रय–स्वरूप नारायणकी ये लीला-कथाएँ मैंने तुमको संक्षेप रीतिसे सुना दीं। निश्चय जानो कि स्वयं ब्रह्मा अपनी लम्बी चौड़ी पूर्ण आयुमें भी सम्पूर्ण रूपसे हरिके गुणोंका वर्णन नहीं करसकते ॥ ३९ ॥ विविध सांसारिक दुःखरूप दावानलकी ज्वालाओंसे जल रहा जो जीव शान्तिके लिये संसारसागरके पार जानेकी इच्छा रखता हो उसको चाहिये कि पुरुषोत्तम भगवान्‌की ललित लीला-कथाओंके सुधासम रसका निरन्तर सेवन करे ॥ ४० ॥ राजन् ! पहले अविनाशी नारायण ऋषिने यह भागवतपुराणसंहिता–जो मैंने तुमको सुनाई,–देवर्षि नारदको सुनाई थी और देवर्षि नारदने मेरे पूज्य पिता और गुरु वेदव्याससे पूर्वसमयमें कही थी ॥ ४१ ॥

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४२ ॥

हे महाराज ! द्वैपायनव्यासने प्रसन्न होकर यह वेदमयी भागवतसंहिता मुझको बताई और इसी संहिताको नैमिषारण्यमें महायज्ञके बीच, सूत, अट्ठासी हजार शौनकादिक ऋषियोंको उनके पूछनेके अनुसार सुनावेंगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय

संक्षेपसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश

श्रीशुक उवाच—अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥

शुकदेवजीने कहा—महाराज ! जिनके अनुग्रहसे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्र उत्पन्न हुये हैं उन विश्वव्यापक ब्रह्मस्वरूप भगवान् हरिका फिर मैं तुम्हारे आगे विशेष रूपसे वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ राजन् ! तुम 'मैं मरूँगा' इस अज्ञानी पशुओंकी ऐसी समझको छोड़ दो । ऐसा मृत्युभय अविवेकके कारण होता है । जैसे देह नष्ट होजाता है वैसे तुम नष्ट नहीं होगे, क्योंकि कोई समय ऐसा न था जब तुम न थे, अतएव तुम्हारा वर्तमान कालमें जन्म भी नहीं हुआ और न भविष्यमें तुम्हारा नाशही होगा । देह किसी समयमें नहीं होता, समय पाकर उत्पन्न होता है, अतएव समय पाकर नष्ट भी होजाता है ॥ २ ॥ तुम बीजाङ्कुर-न्यायके अनुसार पुत्र-पौत्रादि रूपसे संसारमें रहकर भी नहीं रहोगे, क्योंकि देहसे देह उत्पन्न होता है; यह जीवात्मा नहीं उत्पन्न होता । अग्नि, जिसप्रकार काष्ठमें रहकर भी उससे भिन्न है उसीप्रकार जीवभी शरीरमें रहता है, परन्तु उससे भिन्न है ॥ ३ ॥ जीव, स्वप्नावस्थामें अपने शिर आदि कटनेकी घटना स्वयं देखता है एवं जाग्रत् अवस्थामें देह आदिके पञ्चत्वको देखता है, सो वैसेही देहके धर्म जो जन्म-मरण हैं उनका अपने ऊपर आरोप करना जीवका अज्ञानकृत भ्रम-मात्र है, वास्तवमें यह जीव अज और अमर है ॥ ४ ॥ उपाधिरूप घटके टूट जाने-पर जैसे घटाकाश महाकाशमें मिलकर पूर्ववत् आकाश बना रहता है वैसेही देहके मरने (तत्त्वज्ञानके लीन होने) पर यह जीव फिर ब्रह्ममें लीन होता है ॥ ५ ॥ (तत्त्वज्ञानसे देह इसप्रकार लीन होता है—) आत्माका देहादिक उपाधियोंसे मायाकृत सम्बन्ध है । राजन् ! यह मन आत्माके देह, गुण और कर्मोंकी सृष्टि करता है और इस मनकी सृष्टि मायासे होती है । इसप्रकार स्वयं नहीं, किन्तु मायासम्बन्धिनी उपाधियोंके कारण जीवका आवागमन (गमनागमन) होता है ॥ ६ ॥ राजन् ! जैसे जब तैल, तैलाधार, बत्ती और

अग्निका संयोग होता है तब वह दीपक कहलाता है वैसेही जीवका, देह आदि उपाधियोंके संयोगसे तत्कृत जन्म होता है ॥ ७ ॥ यह जीवात्मा ज्योतिःस्वरूप है, सूक्ष्म और स्थूल–दोनो शरीरोंसे भिन्न है, आकाशके समान देह आदिका आधार है, विकाररहित है, अनन्त और उपमाशून्य है। जन्म, मरण–ये धर्म जीवात्माके नहीं, देहके ही हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज! 'आत्मा, इस दृश्य शरीरसे अलग है'–इस 'समझ' या अनुभवसे युक्त शुद्ध बुद्धिके द्वारा आपही अपनेमें स्थित आत्माका विचार करतेहुए, आप अपने चंचल मनको निश्चल करके हरिके चरणोंमें लगा दीजिये ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके शापसे तक्षक सर्प आपके शरीरको डसकर विषकी अग्निसे भस्म कर देगा, परन्तु तुम जो मृत्युको भी मारनेके लिये समर्थ ईश्वर हो उनको मृत्युके सम्पूर्ण कारण(भी)नहीं मार सकते ॥ १० ॥ 'जो मैं हूँ वही ब्रह्म है (इस भावनासे जीवात्माको शोक आदिसे मुक्ति मिलती है) और ब्रह्म है सो मैंही हूँ (इस भावनासे ब्रह्मका साक्षात्कार होता है)'–इस विवेक दृष्टिको प्राप्तकर अपनेको निराकार ब्रह्ममें लीन कर दो ॥ ११ ॥ तब देखोगे कि पैरमें काटनेवाला विषधर तक्षक सर्प और पञ्चतत्त्वरचितशरीरसहित सम्पूर्ण विश्व भी तुमसे भिन्न नहीं है ॥ १२ ॥

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥
हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥

वत्स ! तुमने आत्मविषयक कथा सुननेकी इच्छा प्रकट की थी, सो मैंने तुमको सुना दी। अब कहो–और कौन विश्वस्वरूप हरिकी कथा सुनकेकी इच्छा है ? ॥१३॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय

वेदविभाग वर्णन

सूत उवाच–एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षि-
द्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना
बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं कि—हे ऋषियो ! सब प्राणियोंमें अपनेको ही देखनेवाले, अतएव समदर्शी व्यासतनय श्रीशुकदेवजीसे यह भागवत पुराण सुनकर राजा

परीक्षितने निकट जा उनके चरणोंमें शिर रख दिया और हाथ जोड़कर कहा कि–"प्रभो ! मैं कृतार्थ होगया। आपने मुझपर परम कृपा की, जो करुणा करके मुझको अनादि अनन्त साक्षात् हरिकी कथा सुनाई और उनके मिलनेका उपाय बताया। संसारके तापमें तपेहुए मुझऐसे अज्ञ जनोंपर आपऐसे भगवद्भक्त साधु महात्माओंकी कृपाका होना, मेरी समझमें, कुछ बहुत विचित्र बात नहीं है। स्वामी ! उत्तमश्लोक हरिके गुणवर्णनसे परिपूर्ण यह पुराणसंहिता मैंने आपके श्रीमुखसे सुनी। भगवन् ! अब मुझको तक्षक आदि मृत्युके कारणोंसे तनिक भी भय नहीं है, क्योंकि मैं आपके बतायेहुए अभयमय निर्वाणरूप ब्रह्मको पा गया हूँ। ब्रह्मन् ! अब आज्ञा दीजिये–मैं मौनव्रत धारणकर सब विषयवासनाओंसे मुक्त एकाग्र चित्तको हरिमें लगाकर प्राणत्याग करना चाहता हूँ। भगवन् ! ज्ञान और विज्ञानकी निष्ठासे मेरा पूर्वसंस्कारसहित अज्ञान मिट गया। आपने भगवान्का परममङ्गलमय परब्रह्मरूप परमपद मुझको दिखा दिया ॥ १–७ ॥ सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो ! यों कहकर नरदेव परीक्षित्ने वेदव्यासके पुत्र भगवान् शुकदेवजीका पूजन किया और शुकदेवजी भी राजाको आज्ञा देकर परमहंस और भिक्षुओंके साथ जिधर चित्त चाहा उधरको वहाँसे चल दिये ॥ ८ ॥ राजा परीक्षित्ने भी बुद्धिके द्वारा मनको साक्षी-स्वरूप आत्मामें लगाकर उस आत्माको परमात्माके ध्यानमें लीन कर दिया। उससमय उनका शरीर भी वायु न चलनेसे निश्चल वृक्षके समान स्थिर हो गया। इधर ब्रह्मज्ञानसे जिनके सब सन्देह दूर हो गये हैं वह मौन साधे, योगावस्थामें, गङ्गाके किनारे पूर्वमुख कुशासनपर उत्तर-मुख होकर अवस्थित राजा परीक्षित् ब्रह्मके ध्यानमें लीन हो गये, उधर कुपित ऋषिकुमारका भेजाहुआ विषधर तक्षक नाग राजाको डँसने चला। राहमें तक्षकको कश्यपनाम एक ब्राह्मण मिले। तक्षकको पूछनेसे विदित हुआ कि वह विष-चिकित्सक हैं और अधिक धन पानेकी आशासे विषविनष्ट राजा परीक्षित्को पुनर्जीवित करने जा रहे हैं, और उनके विषसे भस्म हो गये बर्गदके वृक्षको फिर हरा कर देनेकी शक्ति उनके मन्त्रमें देखकर निश्चय भी हो गया कि वह अवश्य राजाको जिला देंगे। तब तक्षकने बहुतसा धन देकर उनको मार्गसे ही लौटा दिया और राजाके निकटतक जाने न दिया। फिर कामरूपी तक्षक ब्राह्मणके रूपसे राजाके निकट गया और आशीर्वादके फलमें गुप्तरूपसे रहकर राजाको डँस लिया। ब्रह्ममें लीन हो गये राजर्षि परीक्षित्का पञ्चतत्त्वमय शरीर विषकी आगसे उसी क्षण सब प्राणियोंके देखते देखते भस्म हो गया। यह दृश्य देखकर पृथ्वी, स्वर्ग और आकाशमें रहनेवाले सब प्राणी हाहाकार करनेलगे और सुर, असुर, मनुष्य आदि सभीको बड़ा विस्मय हुआ। राजर्षिके परमपद पानेपर परम प्रसन्न देवतालोग नगाड़े बजाने और धन्यवाद देतेहुए राजाके ऊपर फूल बर्साने

लगे—अप्सराओंके झुण्ड नाचने और गन्धर्वगण गुण गाने लगे। तक्षकके डँसनेसे अपने पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर जनमेजय दुःख और क्रोधसे अस्थिर हो उठे। परीक्षित्‌के पुत्र जनमेजयने हवनकुण्डमें सर्पोंकी आहुति देनेके लिये उसीसमय ऋषियोंकी बताई विधिके अनुसार सर्पयज्ञका अनुष्ठान किया। सर्पयज्ञमें मन्त्रशक्तिसे विवश सर्पसमूह आप ही आकर कुण्डमें गिरने और अग्निमें भस्म होनेलगे। यह देखकर तक्षक बहुत घबड़ाया और प्राणभयसे इन्द्रकी शरणमें गया। जनमेजयने जब देखा कि अनेकानेक सर्प आये और भस्म हो गये परन्तु तक्षक, जिसके लिये यज्ञ रचा गया वही नहीं आया, तब ऋषियोंसे कहा कि "आप लोग अधम सर्प तक्षकको क्यों नहीं बुलाते?" ॥ ९–१८ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—"हे राजेन्द्र! वह दुष्ट प्राण बचानेके लिये इन्द्रके सिंहासनमें जाकर लिपटा है। उस शरणागतकी रक्षा स्वयं इन्द्र कर रहे हैं; इसीकारण अबतक वह नहीं आया" ॥ १९ ॥ तब उदारबुद्धि राजा जनमेजयने फिर ऋत्विक् ऋषियोंसे कहा—"यदि ऐसा है तो आपलोग तक्षकके साथ इन्द्रको भी क्यों नहीं यज्ञकुण्डमें डालकर भस्म कर देते?" ॥ २० ॥ तब "हे तक्षक! तू अपने रक्षक इन्द्रसहित शीघ्र अग्निकुण्डमें गिर पड़"—यों कहकर ब्राह्मणोंने इन्द्रसहित तक्षकका यज्ञमें आह्वान किया ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके वचनोंसे इन्द्रका तक्षकयुक्त सिंहासन अपने स्थानसे चला और यह देखकर इन्द्र भी घबड़ाये। तक्षकसहित इन्द्रको ऊपरसे नीचे गिरते देख, इन्द्रके गुरु अङ्गिरातनय महर्षि बृहस्पतिने जनमेजयसे कहा कि—"राजन्! यह तक्षक अमृत पीकर अमर हो चुका है, अतएव मर नहीं सकता, और इन्द्रभी अजर अमर हैं। राजेन्द्र! अपनेही कर्मवश लोगोंको जीवन-मरण आदि गतियाँ मिलती हैं। सब लोग अपने अपने कर्मसे सुख या दुःख पाते हैं, कोई किसीको सुख या दुःखका देनेवाला नहीं है। किये-हुए कर्मोंके अनुसारही सर्प, चोर, अग्नि, जल, भूख-प्यास और रोग आदि अनेकों बहानोंसे मनुष्यकी मौत होती है। राजन्! अतएव अब आप इस हिंसाफलदायक घोर यज्ञको समाप्त करिये। देखिये, कितने निरपराध जीवों(सर्पों)की हत्या होगई! बस, यही समझकर क्रोधको शान्त करो कि सब प्राणी अपने किये कर्मोंका फल भोगते हैं" ॥ २२–२७ ॥ सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो! राजा जनमेजयने बृहस्पतिके वचनोंको मानकर उनकी पूजा की और सर्पयज्ञको वही समाप्त कर दिया ॥ २८ ॥ हे महामहर्षिगण! यही वह विष्णुकी दिग्विजयिनी अप्रतर्क्य महामाया है। इसी मायामें मोहित जीवसमूह—जो उन्ही परमात्मारूप विष्णुके अंश अर्थात् सूक्ष्मरूप हैं—मायाके तीनो गुणोंकी वृत्तियोंमें—काम, क्रोध, मद आदिमें फँसकर भौतिक शरीरोंको अपनातेहुए परस्पर बाध्य, बाधक बनते हैं ॥ २९ ॥ किन्तु जब आत्मजिज्ञासु पण्डित (सत् और असत्‌को

ठीक ठीक समझनेवाले) लोग आत्मतत्त्वके विचारमें तत्पर होते हैं तब यह दम्भ-रूपिणी माया उनके निकट अकुतोभय भावसे नहीं ठहर सकती। इस आत्माका तत्त्व जाननेसे उत्पन्न ब्रह्मानन्दमें मायाकृत अनेक विवाद नहीं हैं। संकल्प-विकल्पात्मक मन इसको पा नहीं सकता, केवल निश्चयात्मिका बुद्धिसे इसका अनुभव होता है ॥ ३० ॥ आत्मा और शरीरको सार्थक करनेवाला यही एक परमार्थ है, अतएव यह सृज्य (स्थूल शरीर व वासनामय सूक्ष्मशरीर), स्रष्टा (मन) और फल (संसार) एवं अहंकारात्मक जीवसे भी परे है। राजन्! यही आत्माका रूप अथवा ब्रह्मानन्द है। मुनिलोग अहंकार आदि मायाकी लहरोंसे निकलकर इसीमें रमते हैं ॥ ३१ ॥ जब योगीजन, "यह सत् नहीं है, यह सत् नहीं है"–इस विवेकसे देहादि असत् वस्तुओंको छोड़नेमें समर्थ होकर देहाभि-मानसे शून्य होजाता है तब सबको छोड़कर अनन्यभावसे–एकाग्रतासे इस अपने रूप अर्थात् ब्रह्मानन्दको पाकर इसीमें मिल जाते हैं ॥ ३२ ॥ जिनमें देह-गेहकेलिये "मैं हूँ, दूसरा है" या "मेरा है, पराया है"–इसप्रकार अविवेककृत भेदभाव या दुर्जनता नहीं है वे ही इस विष्णुके परम पदको पासकते और बता सकते हैं या बताते हैं ॥ ३३ ॥ जिस जिज्ञासुको इस अद्भुत आनन्दके अनुभवकी अभिलाषा हो उसको उचित है कि कोई कठोर या कटु वचन कहे तो सुनकरभी सह ले, किसीका अपमान न करे और इस असत् शरीरके लिये किसीसे वैर न करे ॥ ३४ ॥ जिन अकुण्ठबुद्धि महामेधावी गुरु भगवान् वेदव्यासके चरणोंकी कृपासे मुझको यह संहिता प्राप्त हुई उनको मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ शौनकजीने पूछा—हे सौम्य! वेदाचार्य व्यासजीके पैल आदि महात्मा शिष्योंने वेदोंके कितने विभाग किये–यह कथा हमको सुनाइये ॥ ३६ ॥ सूतजीने कहा—ब्रह्मन्! समाधि अवस्थामें अवस्थित परमेष्ठी ब्रह्माके हृदयरूप आकाशमें एक शब्द प्रकट हुआ। उस शब्दको एकाग्रतापूर्वक कानमें अङ्गुली लगालेनेसे हमलोग भी सुन पाते हैं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मन्! उस नादकी उपासनासे आत्माके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक मलको धोकर योगीजन आवा-गमनसे छूट जाते हैं ॥ ३८ ॥ फिर उसी नादसे त्रिमात्रात्मक ओंकार प्रकट हुआ। ओंकारकी उत्पत्तिका स्थान अव्यक्त है। वह स्वराट् अर्थात् हृदयाकाशमें स्वयं प्रकाशमान और भगवान् परब्रह्म परमात्माका चिन्ह अर्थात् बोधक है। कानोंमें अङ्गुली दे लेनेसे शब्दग्राहिणी श्रोत्र इन्द्रियकी वृत्तिके रुक जानेपर भी जिसके द्वारा इस स्फोटस्वरूप अव्यक्त ओंकारकी उपलब्धि होती है वही अप्रतिहत ज्ञान परमात्मा है [इन्द्रियकी वृत्ति बन्द होजानेपर जीव, उस इन्द्रियके विषयका अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि इन्द्रियोंकेही द्वारा जीवको (उन इन्द्रियोंके) विषयोंका ज्ञान अथवा अनुभव होता है] हृदयाकाशमें आत्मासे इस स्फोट-

स्वरूप ओंकारकी अभिव्यक्ति होती है और इसीसे वाणीका विकास और विस्तार होता है। यह स्वयं प्रकाशमान परमात्मा साक्षात् ब्रह्मका वाचक है। यह सब उपनिषद्, वेद और मन्त्रोंका सनातन बीज है। हे भृगुश्रेष्ठ! ओंकारसे गुण (सत्त्व, रजः, तमः), नाम (ऋक्, यजुः, साम), अर्थ (भूः, भुवः, स्वः) और वृत्तियों (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति)को धारण करनेवाले त्रिभावसम्पन्न अ-उ-म-ये तीन वर्ण अभिव्यक्त हुए॥ ३९-४२॥ भगवान् ब्रह्माने इन्ही तीन वर्णोंसे अन्तःस्थ, ऊष्म, स्वर, स्पर्शसंज्ञक ह्रस्व और दीर्घ अक्षरोंकी सृष्टि की॥ ४३॥ फिर चतुर्मुख विभु ब्रह्माने 'चातुर्होत्र' कर्मके कहनेकी इच्छासे अपने चारो मुखोंसे व्याहृति ओंकारसहित चार वेदोंको प्रकटकर, उन्हे वेदके उच्चारणमें निपुण अपने पुत्र मरीचि आदि महर्षियोंको पढ़ाया। उन धर्मप्रचारक महर्षियोंने अपने पुत्रोंको वेही वेद पढ़ाये॥ ४४॥ ४५॥ उन महर्षियोंके वंशज ऋषियोंने भी परम्पराक्रमसे ब्रह्मचर्यव्रतधारी अपने अपने पुत्रों और शिष्योंको वेदाध्ययन कराया। इसी प्रकार अर्थात् पठन पाठनसे चारो युगोंमें वेद वर्तमान रहते हैं। द्वापरके आदिमें महर्षियोंद्वारा वेदोंके विभाग किये गये। ऋषियोंने जब देखा कि सब प्राणी क्रमशः अल्पायु, प्रतिभाहीन और मन्दबुद्धि होते जाते हैं तब हृदयमें स्थित अच्युतकी आज्ञाके अनुसार वेदोंके कई विभाग कर दिये। (यह तो वेदविभागका साधारण क्रम कहा गया अब विशेष क्रम कहते हैं)। हे ब्रह्मन्! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें भी इन्द्र, शिव ब्रह्मादिक लोकपालोंने सनातन धर्मकी रक्षा करनेके लिये जब जाकर प्रार्थना की तब त्रिभुवनपति भगवान्के सत्त्वमय अंशसे सत्यवतीके गर्भमें स्थापित पराशर ऋषिके वीर्यद्वारा जन्म लिया और चार प्रकारसे वेदका विभाग करके वेदव्यास नामसे विख्यात हुए॥ ४६-४९॥ ब्रह्मन्! जैसे मणिकी खनिसे लोग मणियोंका संग्रह करते हैं वैसे ही व्यास भगवान्के ऋक्, यजुः, साम और अथर्व-इन चार वेदोंसे वर्गविभागपूर्वक मन्त्रोंको चुनकर भिन्न भिन्न वेदकी भिन्न भिन्न चार संहिताएँ बनाईं॥५०॥ महामति व्यासदेवने चार शिष्योंको क्रमशः चारो संहिताएँ पढ़ाईं। व्यासजीने पैलनाम शिष्यको ऋग्वेदकी बह्वृचनाम संहिता, वैशम्पायननाम शिष्यको यजुर्वेदकी निगद नाम संहिता, जैमिनिनाम शिष्यको सामवेदकी छन्दोगनाम संहिता और सुमन्तुनाम शिष्यको अथर्ववेदकी आङ्गिरसीनाम संहिता पढ़ाई॥ ५१-५३॥ पैल ऋषिने दो भाग करके, अपनी संहिता, इन्द्रप्रमिति और बाष्कलनाम दो शिष्योंको पढ़ाई। हे भार्गव! बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग किये और बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्रनाम शिष्योंको क्रमशः एक एक विभागका अध्ययन कराया। आत्मज्ञानी इन्द्रप्रमितिने भी अपनी संहिता अपने पुत्र महामति पण्डित माण्डूकेय ऋषिको पढ़ाई। माण्डूकेयने अपनी संहिताके दो भाग किये और एक

भाग अपने शिष्य देवमित्रको एवं एक भाग अपने पुत्र शाकल्यऋषिको पढ़ाया। देवमित्रने अपनी संहिता सौभरिआदि शिष्योंको पढ़ाई। शाकल्यने अपनी संहिताके पाँच विभाग किये एवं वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिरनाम पुत्रोंको क्रमशः एक एक भाग पढ़ाया। जातूकर्ण्यनाम एक शाकल्य-ऋषिके शिष्यभी थे–उन्होंने निरुक्त (वैदिकपदोंके अर्थकी व्याख्या)–सहित अपनी संहिताके चार विभाग किये और बलाक, पैल, जाबालि और विरजा नामक मुनियोंको क्रमशः एक एक भाग पढ़ाया। पूर्वोक्त बाष्कलमुनिके पुत्रने उक्त सम्पूर्ण बह्वृक् संहिताकी शाखाओंसे छाँटकर एक बालखिल्यनाम संहिता बनाई और बालायनि, भज्य एवं काशारनाम शिष्योंको पढ़ाई। शौनकजी! ऋग्वेदकी बह्वृक् नाम संहितासे उक्त ब्रह्मर्षियोंने इतनी शाखासंहिताएँ रचीं। इस ऋग्वेदके शाखा-विभागको श्रद्धासे सुननेवाले लोग सब प्रकारके महापापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ५४–६० ॥ भगवन्! अब यजुर्वेदकी शाखाओंका विभाग सुनिये। वैशम्पायन ऋषिके चरकनाम अध्वर्युपदधारी शिष्य हुए। उन्होंने गुरुके ब्रह्महत्यारूप पापको नष्ट करनेके लिये प्रायश्चित्तस्वरूप कठिन व्रत किया–इसीसे उनका नाम चरक पड़ा। वैशम्पायनके और एक शिष्य याज्ञवल्क्य ऋषि थे। उन्होंने घमण्डके साथ गुरुसे कहा कि–"भगवन्! इन स्वल्पशक्तिशाली शिष्योंके इस व्रताचरणसे क्या फल होगा? मैं अपूर्व सुकठिन व्रत करके आपके पापको निःशेष कर दूँगा" ॥६१॥ ॥६२॥ याज्ञवल्क्यका यह कथन वैशम्पायनको अच्छा नहीं लगा, अतएव उन्होंने क्रोध करके कहा कि–"तुम अपने गुरुभाइयोंको तुच्छ कहकर ब्राह्मणोंका अपमान करते हो, इसलिये तुम मेरे निकटसे चले जाओ। मैं तुमऐसे अभिमानीको अपना शिष्य बनाना नहीं चाहता। बस; तुमने जो कुछ मुझसे पढ़ा है वह शीघ्र मुझे लौटा दो" ॥ ६३ ॥ देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्य भी उसी समय पढ़ेहुए यजुर्वेदके मन्त्रोंको वमनरूपसे उगलकर वहाँसे चल दिये। उन वमनरूपसे पड़े-हुए यजुर्वेदके अत्यन्त मनोहर मन्त्रोंको देखकर अन्यान्य मुनियोंने लोलुपतावश तीतरपक्षीका रूप रखकर निगल लिया (ब्राह्मणरूपसे वमनको कैसे निगलते? इसीलिये उन्होंने तीतरका रूप रक्खा) वेही मन्त्र यजुर्वेदकी अत्यन्त मनोहर तैत्तिरीय शाखाके नामसे प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मन्! इसके उपरान्त गुरु वैशम्पायन भी जिनको न जानते हों ऐसे यजुर्वेदके अधिक मन्त्रोंके पानेकी अभिलाषासे याज्ञ-वल्क्य ऋषि ईश्वरस्वरूप सूर्यदेवकी भलीभाँति उपासना करतेहुए इसप्रकार स्तुति करनेलगे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यने कहा–"हे भगवन्! हे आदित्य! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप एकाकी होकर भी आत्मारूपसे, ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त चतुर्विध प्राणियोंका आवास जो यह विश्व-ब्रह्माण्ड है उसके भीतर और बाहर, आकाशके समान उपाधियोंसे अनावृत रहकर विराजमान हैं एवं

कालरूपसे, क्षण-लव-निमेष आदि अवयवोंसे सम्पन्न जो वर्षसमूह हैं उनके द्वारा जलको खींचते और बरसातेहुए इस संसारचक्रको चलाते और जगत्का पालन-पोषण करते हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे सविता! नित्य तीनो सन्ध्याओंमें अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकालमें वेदविहित सन्ध्याकर्म करके जो लोग आपकी उपासना और स्तुति करते हैं उन अपने भक्तोंके दुष्कृत, दुःख और दुष्कृत व दुःखके बीजस्वरूप अज्ञानको आप नष्ट कर देते हैं। हे भास्कर! तीनो लोकोंमें तपनेवाले आपके इस तेजोमय मण्डलका हम ध्यान करते हैं। आप आत्मास्वरूप अन्तर्यामी हैं। निज-निकेतनस्वरूप स्थावर और जङ्गम जीवोंकी जड़ मन आदि इन्द्रियों और प्राणोंको आप ही अपने उदयसे अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त करते हैं। हे ईश! जब रात्रिके समय अत्यन्त कराल मुखवाला अन्धकाररूप अजगर सम्पूर्ण विश्वको ग्रस लेता है तब प्रातःकाल आप ही निद्रासे मृततुल्य अचेत दशामें पड़ेहुए जीवोंको कृपादृष्टिद्वारा सचेत करके प्रतिदिन तीनो संध्याओंमें स्वधर्मस्वरूप आत्मोपासनाके कल्याणकारी कार्यमें प्रवृत्त करते रहते हैं; अतएव आप परम कृपालु हैं। भगवन्! आप राजाके समान अपने प्रकाशमय तेजसे असाधुजनोंके हृदयमें भयका संचार करतेहुए चारो दिशाओंमें घूमते हैं। आप जिस जिस दिशामें जाते हैं उस उस दिशाके दिक्पाल लोग, कमलकुसुमयुक्त जलसे पूर्ण अंजलियोंद्वारा अर्घ्य देतेहुए आपका पूजन करते हैं। भगवन्! मैं आपसे यजुर्वेदके ऐसे मन्त्र पानेकी प्रार्थना करता हूँ जो अन्य ऋषियोंको अविदित अथवा यथावत् न ज्ञात हों। इसी कामनासे मैं, त्रिभुवनके गुरु ब्रह्मादिक भी जिनकी वन्दना करते हैं उन आपके चरणकमलोंको भजता हूँ" ॥ ६६–७२ ॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनकजी! इसप्रकार उपासनापूर्वक स्तुति करनेसे प्रसन्न भगवान् सूर्यने अश्वरूपसे याज्ञवल्क्य ऋषिको उनकी प्रार्थनाके अनुसार वैसीही यजुर्वेदकी ऋचाएँ दीं जिनको उस समयतक अन्य मुनि लोग यथावत् नहीं जानते थे। अश्वरूप सूर्यके बाजस् (गर्दनके बाल अथवा वेग)से उत्पन्न होनेके कारण यजुर्वेदकी वह शाखा बाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई। उन यजुर्वेदके अपरिमित मन्त्रोंकी पन्द्रह शाखा या संहिता रचकर याज्ञवल्क्यजीने अपने कण्व, मध्यन्दिन आदि शिष्योंको उनका अध्ययन कराया ॥७३॥७४॥ हे भार्गव! अब सामवेदकी शाखाओंका विभाग कहते हैं। सामपाठी जैमिनि ऋषिने अपनी संहिताके दो भाग किये, उनमेंसे एक संहिता अपने पुत्र सुमन्तुको और दूसरी संहिता अपने पौत्र सुत्वान्को पढ़ाई ॥ ७५ ॥ हे द्विजवर! तदनन्तर जैमिनिके सुकर्मा नाम अत्यन्त मेधावी शिष्यने सामवेदरूप महावृक्षके एक सहस्र शाखाविभाग किये अर्थात् अवान्तर भेदसे एक सहस्र संहिताओंको रचा ॥ ७६ ॥ कोशलदेशीय हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि और एक अवन्ती नगरीका निवासी वेदपात्रोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण—इन तीन शिष्योंने

उन संहिताओंको सुकर्मासे पढ़ा ॥ ७७ ॥ पौष्यञ्जि, आवन्त्य और हिरण्यनाभके उत्तर देशीय पाँचसौ शिष्य हुए—उन्होंने क्रमशः पाँचसौ संहिताएँ उक्त तीनो ऋषियोंसे पढ़ीं। वे सामवेदके गानेमें निपुण पाँचसौ ब्राह्मण 'औदीच्य' नामसे प्रसिद्ध हुए। इन औदीच्योंमें कुछ (पूर्वदिशामें बसनेके कारण) प्राच्य भी कहे जाते हैं ॥ ७८ ॥ पौष्यञ्जिके लौगाक्षि, लाङ्गली, कुल्य, कुशीद और कुक्षि नाम पाँच शिष्य और भी थे; उनको पौष्यञ्जिने क्रमशः सामवेदकी शेष पाँचसौ संहिताएँ पढ़ाईं ॥ ७९ ॥

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ॥
शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

हिरण्यनाभके कृतनाभ शिष्यने अपनी संहिताकी चौबीस संहिताएँ रचकर अपने शिष्योंको पढ़ाईं। आत्मज्ञानी आवन्त्य ब्राह्मणने भी सामवेदकी शेष (बची हुई और और) शाखा संहिताएँ अपने अन्य शिष्योंको पढ़ाईं ॥ ८० ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

पुराणलक्षणवर्णन

सूत उवाच—अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ॥
संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—हे शौनकजी! अथर्ववेदके अधिकारी सुमन्तुने भी अपनी संहिता कबन्ध नाम शिष्यको पढ़ाई। कबन्धने दो भाग करके वह संहिता पथ्य और वेददर्श नामक शिष्योंको पढ़ाई ॥ १ ॥ शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायन ये वेददर्शके शिष्य हुए। वेददर्शने अपने संहिताके चार विभाग किये और क्रमशः एक एक विभाग इन शिष्योंको पढ़ाया। पथ्यने भी तीन भाग करके अपनी संहिता कुमुद, शुनक और अथर्ववेत्ता जाजलिको पढ़ाई। आङ्गिरस शुनक ऋषिने अपनी संहिताके दो भाग किये और बभ्रु व सैंधवायनको उनका अध्ययन कराया। सावर्ण्य आदि कई और ऋषि सैन्धवायनके शिष्य हुए। इनके सिवा नक्षत्रकल्प और शान्तिकल्पके प्रणेता काश्यप और आङ्गिरस नक्षत्रकल्प एवं शान्तिकल्पनामक ऋषि भी अथर्ववेदके चतुर्थ और पञ्चम आचार्य माने जाते हैं। मुनिवर! अब पौराणिकोंका विवरण सुनिये। वेदव्यासजीने छः पुराणसंहिता बनाकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ाईं। फिर मेरे पितासे त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण,

वैशम्पायन और हारीत–इन छः पौराणिकोंने एक एक संहिता पढ़ी और मैंने इन छहों ऋषियोंसे छहों संहिताएँ पढ़ीं। भार्गव! मैं, काश्यप, सावर्णि और परशुरामके शिष्य अकृतव्रण–इन चारोने व्यासके शिष्य रोमहर्षण सूतसे एक एक करके चार मूलसंहिताएँ पढ़ीं ॥ २–७ ॥ ब्रह्मन्! वेदशास्त्रके अनुसार ब्रह्मर्षियोंने पुराणके जो लक्षण कहे हैं उनको आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये ॥ ८ ॥ पुराणके विषयको भलीभाँति जाननेवाले विद्वानोंका कथन है कि सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मनुओंके अन्तर, वंश्य, वंश्यानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय–इन दश विषयोंका वर्णन जिसमें हो उसको पुराण कहना चाहिये। कुछ लोगोंका मत है कि इन दसो विषयोंका जिसमें पृथक् पृथक् निरूपण किया जाय वह महापुराण है और जिसमें पाँच विषय मुख्य रूपसे कहे गये हों एवं शेष पाँच विषयोंका वर्णन उन्हीं मुख्यरूपसे वर्णित पाँच विषयोंके अन्तर्गत हो वह पुराण है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ब्रह्मन्! उक्त सर्ग आदि विषयोंका विवरण इसप्रकार है। प्रकृतिके सत्त्व आदि तीनो गुण जब क्षोभको प्राप्त होते हैं तब उनसे महत्तत्त्व और महत्तत्त्वसे त्रिविध अहङ्कारकी उत्पत्ति होती है। अहङ्कारसे प्राणियोंकी सूक्ष्म इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय और अधिष्ठाता देवता प्रकट होते हैं। इसी सूक्ष्मसृष्टि या कारणसृष्टिका नाम 'सर्ग' है ॥११॥ इन ईश्वरके द्वारा अनुगृहीत महत्तत्त्व आदिका कार्य जो वासनामय चराचर प्राणियोंके स्थूलशरीर हैं वे बीज–वृक्षन्यायसे अर्थात् जैसे बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज उपजता है वैसेही परम्परापूर्वक उत्पन्न होते रहते हैं। इसी स्थूलसृष्टि या कार्यसृष्टिका नाम 'विसर्ग' है ॥ १२ ॥ इससंसारमें साधारणतः चर प्राणी चर प्राणियों (मछली आदि) और अचर प्राणियों (अन्न साग फल आदि) द्वारा अपना निर्वाह या जीवन धारण करते हैं और अचर प्राणी (वृक्ष आदि) स्वयं प्राप्त जल आदिसे जीवन धारण करते हैं। उसमें मनुष्योंने स्वभावसे, कामनासे या प्रेरणासे जो अपनी जीविका स्थिर की है उसीका नाम 'वृत्ति' है ॥ १३ ॥ अच्युत भगवान् हरेक युगमें पशु, पक्षी, मनुष्य ऋषि और देवताओंमें अवतार लेकर वेदविद्रोही दुष्टोंका दमन करनेके लिये लीला करते हैं उसीका नाम 'रक्षा' है ॥ १४ ॥ मनु, देवगण, मनुके पुत्र, इन्द्र सप्तऋषि और हरिके अंशावतार जिस नियत समयमें अपने अपने अधिकारके अनुसार अपना अपना कार्य करते रहते हैं उसीका नाम 'मन्वन्तर' है ॥ १५ ॥ ब्रह्मासे जिनकी विशुद्ध उत्पत्ति है उन मनु आदि राजोंके त्रैकालिक (भूत, भविष्य, वर्तमान) वंशका नाम 'वंश' है। और उन राजोंके तथा उन राजोंके वंशधरोंके चरित्र या वृत्तान्तका नाम 'वंश्यानुचरित' है ॥ १६ ॥ पण्डित लोगोंका कथन है कि स्वभाववश अथवा ईश्वरकी मायाके द्वारा इस विश्वका जो नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्यभेदसे चार प्रकारका प्रलय होता है उसीका नाम

'संस्था' है ॥ १७ ॥ अज्ञानवश कर्म करनेवाला जीव इस विश्वकी सृष्टि आदिका कारण है, उसीका नाम 'हेतु' है। किन्तु जीवात्मामें चैतन्यकी प्रधानतामाननेवाले उसको अनुशायी और उपाधिकी प्रधानता माननेवाले अव्याकृत कहते हैं ॥ १८ ॥ हे भार्गव! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति नामक अवस्थाओंमें जो मायाकृत विश्व, तैजस, प्राज्ञ नामक जीवकी वृत्तियाँ हैं उनसे साक्षीस्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाला और समाधि नामक तुरीय अवस्थामें उनसे भिन्न जो ब्रह्म है उसीका नाम 'अपाश्रय' है [अर्थात् संसारकी प्रतीति और बाधाका क्रमशः अधिष्ठान और अवधि है] ॥ १९ ॥ जैसे घट आदिमें मृत्तिका आदि पदार्थ युक्त भी हैं और भिन्न भी हैं एवं घट आदिके नाम और रूपोंमें केवल नाम–रूपमात्रसे उनकी सत्ता है वैसेही देहकी गर्भाधानसे लेकर मृत्युतक सब अवस्थाओंमें जो साक्षीस्वरूपसे युक्त होकर भी वास्तवमें उनसे भिन्न है वही उक्त 'अपाश्रय' या ब्रह्म है ॥ २० ॥ शौनकजी! जब चित्त स्वयं अथवा योगसे जाग्रत् आदि गुणमयी वृत्तियोंको छोड़कर शुद्ध और शान्त बन जाता है तभी इस शुद्ध आत्माका अनुभव या ज्ञान प्राप्त होता है एवं उस समय अविद्याके दूर होजानेसे सब प्रकारकी चेष्टाएँ (वासनाएँ) निवृत्त होजाती हैं ॥ २१ ॥ पुरातत्त्ववेत्ता पण्डितोंने इन उक्त लक्षणोंसे जाननेयोग्य छोटे और बड़े पुराणोंकी संख्या 'अठारह' बताई हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिङ्ग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड–ये उन अठारहो पुराणोंके नाम हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥
शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मन्! व्यास मुनिके शिष्य, शिष्योंके शिष्य और उनके भी शिष्य–प्रशिष्योंने जिसप्रकार वेदोंकी शाखाओंका विभाग किया सो मैंने आपको सुना दिया। इस कथाके सुननेसे अवश्यही ब्रह्मतेज बढ़ता है ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय

मार्कण्डेयकृत नारायणस्तुति

शौनक उवाच–सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ॥
तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

शौनकजीने सूतजीसे पूछा—हे साधु सूत! चिरकालतक जीते रहो, क्योंकि हे बहुज्ञ और वक्ता लोगोंमें श्रेष्ठ! तुम इस अज्ञानकृत आवागमनके

भ्रमजालमें भटक रहे मनुष्योंको उससे निकलनेकी राह दिखानेवाले हो ॥ १ ॥ हे सूत! लोग कहते हैं कि मृकण्डु ऋषिके पुत्र महात्मा मार्कण्डेयजीकी बड़ी आयु है और यह भी कहते हैं कि प्रलयरात्रि अर्थात् कल्पके अन्तमें भी—जब यह जगत् नहीं रहता, तब भी—वह बने रहे! भला यह कैसे हो सकता है? इसके सिवा भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी इसी वर्तमान कल्पमें हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हैं और उनकी उत्पत्तिके समयसे लेकर अबतक, नैमित्तिक या प्राकृतिक—किसी प्रकारका प्रलय नहीं हुआ है, तब वह किस प्रकारका प्रलय था जिससे वह बच रहे? और भी सुना जाता है कि मार्कण्डेयजीने अकेले ही प्रलयसागरके जलमें बहते बहते एक स्थानमें बरगदके वृक्षपर एक पत्तेमें लेटेहुए एक अद्भुतरूप बालकको देखा था—यह भी एक कौतूहलकी बात है। तुम महायोगी और पुराणोंके विषयोंको भलीभाँति समझनेवाले हो, अतएव मार्कण्डेयजीकी कथा कहकर हमारे संशयोंको दूर करो" ॥ २–५ ॥ **सूतजीने कहा**—महर्षि शौनकजी! यह प्रश्न आपने बहुत ही अच्छा किया, क्योंकि इससे 'एक पन्थ दो काम' होंगे। एक तो लोगोंका भ्रम मिट जायगा, दूसरे मार्कण्डेयकी कथाके प्रसङ्गमें कलिकलुषनाशिनी हरिचर्चा भी है ॥ ६ ॥ गर्भाधानसे लेकर यज्ञोपवीततक सब संस्कार हो जानेपर पिताके निकट वेदाध्ययनके अधिकारी होकर मार्कण्डेयजी गुरुकुलमें गये और वहाँ धर्मपूर्वक उन्होंने चारो वेद पढ़े। तप और स्वाध्यायपाठमें तत्पर रहकर मार्कण्डेयजी इन्द्रियदमनपूर्वक—शान्त स्वभावसे आजन्म ब्रह्मचारी बननेका विचार करके कठोर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेलगे। जटाधारी, बल्कल पहने, दण्ड-कमण्डलु लिये, यज्ञोपवीत, अक्षसूत्र, मौंजी-मेखला, कृष्णाजिन, कुश आदिसे सुशोभित नैष्ठिक ब्रह्मचारी मार्कण्डेयजी धर्मकी वृद्धिके लिये प्रातःकाल और सायंकाल—दोनो सन्ध्याओंमें अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें हरिकी पूजा और आराधना करनेलगे। मार्कण्डेयजीने आवश्यक बातचीतके सिवा बहुत बोलना छोड़ दिया। वह प्रातःकाल और सायंकाल—दोनो समय भिक्षा माँग लाते और गुरुके आगे रख देते थे। यदि गुरु भोजन करनेकी आज्ञा देते तो वह एकबार भोजन कर लेते और नहीं तो निराहार ही रह जाते थे ॥७–१०॥ इसप्रकार तप और स्वाध्यायपाठमें तत्पर रहकर हृषीकेश हरिकी आराधना करतेहुए मार्कण्डेयजीने हजारों—लाखों वर्ष बिता दिये, अर्थात् हरिकी आराधनाके प्रभावसे अत्यन्त दुर्जय मृत्युको भी जीत लिया ॥ ११ ॥ यह अद्भुत व्यापार देखकर ब्रह्मा, भृगु, भगवान् शंकर, दक्ष, ब्रह्माके अन्यान्य सब पुत्र, मनुष्यगण, पितृगण आदिक सम्पूर्ण प्राणियोंको बड़ाही विस्मय हुआ ॥ १२ ॥ हे शौनकजी! इसप्रकार तप, वेदपाठ और इन्द्रियसंयमद्वारा नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे महायोगी मार्कण्डेयका अन्तःकरण काम-क्रोध आदि क्लेशोंसे रहित हो गया और

वह शुद्ध हृदयसे एकाग्र होकर अधोक्षज हरिका ध्यान करनेलगे ॥ १३ ॥ इस-प्रकार महायोगपूर्वक हरिमें चित्त लगाते महायोगी मार्कण्डेयने छः मन्वन्तर बिता दिये ! इस सातवें स्वायंभुव मन्वन्तरमें मार्कण्डेयजीके महायोगका वृत्तान्त जानकर पुरन्दरको यह शङ्का हुई कि 'यह मुनिवर इस घोर तपसे मेरे पदको न कहीं लेलें'। इस शङ्कासे इन्द्रने मार्कण्डेयके तपमें विघ्न डालनेके लिये उनके पास गन्धर्व, अप्सरा, वसन्त, मलयाचलकी शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु, रजोगुणके बच्चे लोभ और मद आदि अपने आज्ञाकारी अनुचरोंको भेजा एवं वे भी उसीसमय मुनिके आश्रमको गये। मार्कण्डेयका आश्रम हिमाचलके निकट उत्तर-ओर था। उस आश्रमके निकट पुष्पभद्रा नदी बहती थी और उसके तटपर चित्रानाम शिला पड़ी थी। मुनिके आश्रमका स्थान बड़ाही रमणीक और पवित्र था। पवित्र वृक्ष और लताएँ उस स्थानकी शोभाको बढ़ा रही थीं। वृक्षोंपर पवित्र पक्षीगण बैठेहुए अपने मधुर शब्दोंसे आनेवालोंके मनको हरे लेते थे। पवित्र और स्वच्छ जलसे भरेहुए जलाशय भी सुशोभित थे। वहाँ सदमत्त भ्रमर अपना संगीत सुनातेहुए फिरते थे-कोकिलाएँ कलोल करती हुई बोलती थीं-प्रसन्नचित्त मयूरोंके झुण्ड पंख फैलाये हुए नटोंके समान नाचते थे और आनन्दसे मस्त हो रहे पक्षियोंके झुण्ड इधर उधर बेखटते विचरते थे ॥१४-१९॥ वहाँ पहुँचकर शीतलजलकणपूर्ण और कुसुमसमूहसुवासित होकर कामोद्दीपन करता हुआ मलयाचलका पवन डोलनेलगा ॥ २० ॥ उससमय वसन्तऋतुने प्रकट होकर वृक्षोंको फल और फूलोंसे सुशोभित कर दिया। फूलोंके गुच्छोंसे लदी हुई लताएँ और वृक्ष कामवश होकर परस्पर लिपटनेलगे। रात होतेही पूर्वदिशामें पूर्ण चन्द्रमा प्रकट हुआ। गन्धर्वगण गाने बजानेलगे और अप्सराएँ हाव-भावसहित नाचने लगीं। स्वर्गकी अप्सराओंके झुण्डका स्वामी कामदेव भी धनुषपर बाण चढ़ाये चोट करनेके लिये उद्यत देख पड़ा ॥२१॥२२॥ काम आदि इन्द्रके अनुचरोंने देखा कि हवन करनेके उपरान्त नेत्र मूँदे ध्यानावस्थित मार्क-ण्डेयजी अपने आसनपर साक्षात् अग्निके समान विराजमान हैं-उनका तेज ऐसा तीव्र है कि आक्रमण करना तो दूर रहा, हरएकको निकट जानेका भी साहस नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ अप्सराएँ उनके आगे नाचनेलगीं और गन्धर्वगण मृदङ्ग, वीणा, पणव आदि मनोहर बाजे बजाकर मधुर स्वरसे गानेलगे ॥ २४ ॥ उस समय अच्छा अवसर देखकर कामने धनुषपर पाँचों बाण चलानेके लिये चढ़ाये और वसन्त, लोभ, मद आदि इन्द्रके सेवक, मुनिके चित्तको चलायमान करनेकी चेष्टा करनेलगे ॥२५॥ गेंद उछालती हुई पुञ्जिकस्थली नाम परमसुन्दरी अप्सरा मुनिके आगे आगई। गेंदके पीछे चञ्चल दृष्टि डालती और दौड़तीहुई उस अप्स-राकी पतली कमर पीन पयोधरोंके भारसे बार बार लचक जाती थी और शिथिल

वेणीसे खिसक खिसककर फूलोंकी मालाएँ गिरती जाती थीं। उसके सूक्ष्म वस्त्र (दुपट्टे)को वायुने शरीरपरसे हटा दिया और कटिबन्धन टूट जानेसे नीचेका वस्त्र भी कुछ नाभिके नीचे खिसक गया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कामदेवने समझा कि बस अब क्या है–मुनिको जीत लिया। यह समझकर कामदेवने बाण चलाया, परन्तु जैसे जिसके दैव प्रतिकूल है अथवा जो ईश्वरसे विमुख है उसके सब उद्यम निष्फल हो जाते हैं वैसे ही कामदेव आदि सबका उद्यम व्यर्थ ही हुआ ॥ २८ ॥ हे मुनिवर! इसप्रकार मुनिके साथ बुराई करनेवाले वे सब उनके असह्य तेजसे आप ही जलनेलगे और जैसे सर्पको छेड़कर बालक भागने लगें वैसे ही वहाँसे अपना ऐसा मुह लेकर चल दिये ॥ २९ ॥ ब्रह्मन्! इन्द्रके अनुचरोंने इसप्रकार आक्रमण किया तथापि महामुनिने तनिक भी अहंकार या कोप नहीं किया, सो यह वैसे महात्मोंके लिये कोई विचित्र बात नहीं है ॥ ३० ॥ अनुचरगणसहित मदनको प्रभाहीन मलिन देखकर और उनसे महर्षिके प्रभावको सुनकर इन्द्र बहुत ही विस्मित हुए ॥ ३१ ॥ हे शौनकजी! तप-स्वाध्याय-संयमपूर्वक इस-प्रकार अपनेमें मन लगायेहुए मुनिपर अनुग्रह करनेके लिये नर-नारायणरूपी हरि भगवान् प्रकट हुए ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजीने नेत्र खोलकर देखा कि साक्षात् भगवान्का अंश नर और नारायण ऋषि सामने उपस्थित हैं। उनके श्याम और गौर शरीर परममनोहर हैं। वे चतुर्भुज हैं और रुरुचर्म व वल्कल पहनेहुए हैं। उनके कन्धेमें नवगणयुक्त यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है। अङ्गुलियोंमें कुशनिर्मित पैंती, हाथोंमें कमण्डलु, वेणुनिर्मित सरल दण्ड, पद्माक्षकी माला, जन्तुमार्जनी और शिरपर पिङ्गलवर्ण विद्युत्सदृशकान्तिशाली जटाजूट सुशोभित हैं। उनके शरीर बलिष्ठ, तेजसम्पन्न और ऊँचे हैं और वे विशुद्ध वेदकी ऋचाओंका पाठ कर रहे हैं। जान पड़ता है कि वे साक्षात् तपकी मूर्तियाँ हैं। बड़े बड़े श्रेष्ठ देवतोंके भी पूजनीय उन ऋषियोंको देखते ही मार्कण्डेयजी आसनसे उठ खड़ेहुए और सादर दण्डप्रणाम किया। उनके दर्शनसे प्राप्त आनन्दसे मुनिकी इन्द्रियोंको, मनको और शरीरको अनिर्वचनीय सुख और शान्ति प्राप्त हुई–शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखोंमें आनन्दके आँसू भर आनेसे वह भलीभाँति उनको देख न सके। मुनिने उठकर, हाथ जोड़, नम्रतापूर्वक, उत्सुकताके साथ मानो उनको हृदयसे लगा लेंगे–इसप्रकार गद्गद वाणीसे नर-नारायणरूप ईश्वरसे कहा 'नमो-नमः' ॥ ३३–३७ ॥ फिर मार्कण्डेयजीने भक्तिपूर्वक आसन लाकर उनको दिये और पैर धोकर अर्घ्य, चन्दन, धूप और माला आदि सामग्रियोंसे पूजा की। फिर अनुग्रहकारी पूज्यतम दोनो ऋषिश्रेष्ठ जब सुखपूर्वक आसनोंपर बैठे तब मुनिने फिर प्रणाम करके कहा कि–"हे विभो! मैं मन्दमति आपकी महिमाका वर्णन या स्तुति क्या करूँ? ब्रह्मा, शिव आदिके, सब देहधारियोंके और मेरे भी प्राणोंके

प्रवर्तक या प्रेरक चैतन्यस्वरूप आप ही हैं एवं उन प्राणोंकी चेष्टासे ही वाणी आदिका स्फुरण होता है और मन व अन्यान्य इन्द्रियाँ भी अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त होती हैं। इसप्रकार यद्यपि कोई भी स्वतन्त्र नहीं हैं तथापि काष्ठयन्त्रके समान आपहीके द्वारा प्रवर्तित वाणी आदिसे जो कोई आपका भजन करते हैं उनके–पिता आदिके समान केवल शरीरहीके नहीं, बरन्–आत्माके बन्धु (हितकारी) आप हैं। आप बड़े ही कृपालु हैं ॥ ३८–४० ॥ भगवन्! वास्तवमें आप अजन्मा हैं, अतएव किसीके भी पुत्र नहीं हैं। आप तीनो लोकोंके क्षेम (पालन)के लिये, ताप (त्रिविध दुःख) मिटानेके लिये और मोक्ष देनेके लिये ही इन दोनो रूपोंसे पृथ्वीपर प्रकट हुए हैं। केवल अभी नहीं, बरन् सदैव जगत्की रक्षाके लिये आप समय समयपर मत्स्य आदि अनेक शरीर रखते रहते हैं। नाथ! जैसे ऊर्णनाभि अर्थात् मकड़ा जालेको उगलकर फैलाता है और जबतक जी चाहता है तबतक उसमें खेलकर फिर निगल जाता है वैसेही निरपेक्षभावसे आप भी इस विश्व–प्रपञ्चको उपजाते और पालनपूर्वक उसमें क्रीड़ा करते एवं फिर इच्छानुसार अपनेमें लीन कर लेते हैं ॥ ४१ ॥ आपऐसे पालनकर्ता और चराचर जगत्के ईश्वर हैं। मैं आपके चरणकमलोंको भजता हूँ। क्योंकि जो लोग आपके चरणोंका आश्रय लेते हैं उन्हें कर्म, गुण, काल, पाप और ताप छू नहीं सकते। वेदज्ञ मुनिलोग इन्हीं चरणोंकी प्राप्तिके लिये निरन्तर इनकी पूजा, स्तुति, वन्दना और ध्यान करते रहते हैं ॥ ४२ ॥ मनुष्योंको सर्वत्र कालका भय है। मुक्ति देनेवाले आपके चरणोंकी शरणमें रहनेके सिवा उस भयके छूटनेका कोई और उपाय नहीं है। दो परार्धकी आयुवाले ब्रह्मा भी जब आपके स्वरूप कालसे अत्यन्त डरते हैं तब उनके उपजायेहुए साधारण प्राणियोंकी तो कोई बातही नहीं है ॥ ४३ ॥ आत्माके आवरण, निष्फल, तुच्छ, नश्वर एवं आत्माके सम्बन्धसे आत्मवत् सत् प्रतीयमान देह आदिके अनुराग अथवा अभिमानको छोड़कर सत्य ज्ञानस्वरूप, जीवात्माके गुरु (नियन्ता) अतएव कारण (माया)से परे परमात्मा जो आप हैं उनके अकुतोभय सर्वमङ्गलमय चरणोंको मैं भजता हूँ; क्योंकि इनके भजनेसे आपसे सभी वाञ्छित फल प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ ईश्वर! हे आत्माके बन्धु! आपकी मायाके सत्त्व रज और तम–ये तीनो गुण इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। हे भगवन्! यद्यपि सात्त्विकी, राजसी, तामसी–ये मायाकृत तीनो प्रकारकी लीलामयी मूर्तियाँ आपहीकी हैं, तथापि मुक्ति देनेवाली सात्त्विकी मूर्ति ही है। अन्यान्य राजसी और तामसी मूर्तियोंके भजनेमें दुःख, मोह, भय आदिसे शान्तिके बदले और भी अशान्ति बढ़ती है ॥ ४५ ॥ इसकारण हे ईश! प्रवीण पण्डितजन–आपकी शुद्ध सत्त्वमयी इस नारायण नाम मूर्ति और आपके भक्तोंकी शुद्धसत्त्व-

मयी इस नरनाम मूर्तिको ही भजते और पूजते हैं। सात्त्वत भक्त जन ईश्वरके सत्त्व अंशकोही सर्वश्रेष्ठ रूप समझते हैं–रज और तमको नहीं। इसका कारण यही है कि सत्त्वके सेवनसे शान्तिधाम वैकुण्ठलोक मिलता है–जहाँ किसी प्रकारका भय नहीं है एवं अकुतोभय होनेसे आत्माको सुख प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ स्वामिन्! आप वही अन्तर्यामी, शुद्धसत्त्वमय, व्यापक, विष्णुरूपी जगद्गुरु, परमदेव नरोत्तम, नारायण ऋषि, शुद्धस्वरूप, यतवाक् और वेदमार्गके प्रवर्तक हैं। हे भगवन्! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥ नाथ! जीवकी बुद्धि आपकी मायासे मोहित होरही है, इसी कारण उसका चित्त इन्द्रियोंके असत् विषयोंमें भटक रहा है; और यद्यपि आप नियन्तारूपसे उसकी इन्द्रियोंके अवकाशोंमें, प्राणोंमें, हृदयमें विद्यमान हैं तथापि वह आपको नहीं जानपाता। किन्तु वही पहले आपको न जाननेवाला जीव यदि आप जगद्गुरुके द्वारा प्रवर्तित वेदशास्त्रको देखता और विचारता है तो फिर साक्षात् आपको देख पाता है ॥ ४८ ॥

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं
मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ॥
तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं
वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

आपका बोध देहादि समूहमें छिपा हुआ है एवं आपका स्वभाव सांख्य आदि सम्पूर्ण मतोंके भिन्न भिन्न विषयोंके अनुरूप है। इसीकारण ब्रह्मा आदि विज्ञ विवेकी जन विशेष यत्न करके भी आपका तत्त्व नहीं समझते और मोहित होजाते हैं। आपका रहस्य केवल वेदसे ही जाना जासकता है। वेदके प्रकाशसे आपका गूढ़रूप देख पड़ता है। अतएव हे महापुरुष, महानुभाव! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ" ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

मार्कण्डेयको भगवान्की माया दिखाई देना

सूत उवाच–संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता ॥
नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—हे शौनकजी! भार्गवश्रेष्ठ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी जब इसप्रकार स्तुति कर चुके तब नरसखा नारायण ऋषिने प्रसन्न होकर उनसे कहा

कि–“हे ब्रह्मर्षिवर्य ! तप, स्वाध्याय, संयम, हमारी दृढ़ भक्ति और चित्तकी एकाग्रतासे तुम सिद्ध होगये। तुम्हारे इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतको देखकर वरदानी लोगोंके भी स्वामी हम अत्यन्त प्रसन्न हैं; अतएव जो चाहो सो ‘वर’ हमसे माँगो” ॥ १–३ ॥ मार्कण्डेयजीने कहा—“हे देवतोंके देवता जो ब्रह्मा आदिक हैं उनके भी ईश्वर ! हे शरणागत आर्तजनोंके कष्टोंको नष्ट करनेवाले अच्युत ! आपके दर्शनसेही मेरी सब कामनाएँ पूर्ण होगईं, बस–अब मैं और कुछ नहीं चाहता ॥ ४ ॥ चिरकालके योगाभ्याससे शुद्ध मनमें जिनके चरणकमलोंके दर्शनको पाकर साधारण जन भी ब्रह्मपदको पाते हैं वही आप मेरे नेत्रोंके सन्मुख उपस्थित हैं। इससे बढ़कर और क्या है जो मैं अब आपसे मागूँ ॥ ५ ॥ तथापि हे कमलनयन ! हे पुण्ययशवालोंमें श्रेष्ठ ! जिसमें मोहित होकर सम्पूर्ण लोक और लोकपालगण सत्वस्तुमें भेदभावना करते हैं–आपकी उस अद्भुत मायाको मैं देखना चाहता हूँ” ॥ ६ ॥ सूतजी कहते हैं—मुनिवर ! यों कहकर मुनिने भलीभाँति पूजा, बन्दना और स्तुति की। भगवान् ईश्वर नर-नारायण भी ‘तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी’–कहकर मुसकातेहुए बद्रिकाश्रमको गये ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय भी माया देखनेके समयकी प्रतीक्षा करतेहुए उसी अपने आश्रममें रहकर अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश और अपनेमें–सर्वत्र हरिकी भावना करके मानसिक पूजन सामग्रीसे (इन्हीं अग्नि आदिमें) प्रभुकी पूजा और आराधना करनेलगे। कभी कभी तो वह ऐसे प्रेममें विभोर और ध्यानमें मग्न हो जाते थे कि पूजाको भी भूल जाते थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! एक दिन इसी-प्रकार संध्याके समय पुष्पभद्रानदीके किनारे बैठेहुए भार्गवप्रवर मार्कण्डेयजी हरिकी उपासना कर रहे थे–इतनेमें अकस्मात् बड़े वेगसे प्रचण्ड आँधी चलने-लगी और उस आँधीके थपेड़ोंसे प्रचण्ड शब्द होनेलगा। आँधीके साथ ही चारो ओरसे घोर मेघोंने आकाश मण्डलको घेर लिया–बिजलियाँ कड़क कड़ककर चमकतीहुई मनमें भय उत्पन्न करनेलगीं और रथके धुरेके समान स्थूल बूंदोंसे मुसलधार पानी बरसने लगा ॥ १० ॥ ११ ॥ वैसे ही देख पड़ा कि मगर, घड़ियाल आदि भयानक जलजन्तुओंसे परिपूर्ण और उग्र गर्जन शब्दसे डरावते चारो समुद्र उमड़कर चारो ओरसे पृथ्वीतलको बोरतेहुए चले आ रहे हैं। उससमय वायुके वेगसे चंचल समुद्रजलमें बड़ी बड़ी लहरें उठकर आपसमें टकरानेलगीं और बड़े बड़े गहरे महाभयानक भँवर पड़नेलगे ॥ १२ ॥ अपने सहित चारो प्रकार (स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज)के चराचर प्राणियोंसे परिपूर्ण सम्पूर्ण जगत्को–आकाशमण्डलको ढकलेनेवाले अमितजल, प्रचण्ड बिजली और घोर आँधीसे, इसप्रकार विशेषरूपसे शारीरिक और मानसिक क्लेशसे पीड़ित होते तथा पृथ्वीको प्रलयसागरके जलमें मग्न होते देखकर, ज्ञानी होनेपर भी

मार्कण्डेयमुनि व्याकुल और बहुत ही भयभीत हुए ॥ १३ ॥ मुनिके देखते ही देखते उठ रही लहरोंसे भयानक और प्रचण्ड आँधीके थपेड़ोंसे क्षोभको प्राप्त उस महासागरने निरन्तर मुसलधार वर्षा कर रहे मेघोंके जलसे क्रमशः बढ़कर द्वीप-खण्ड और पर्वतसमूहसहित सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको जलमग्न कर दिया ॥ १४ ॥ ब्रह्मन् ! धीरे धीरे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, तारागण और दशो दिशाएँ अर्थात् तीनो लोक उस जलमें मग्न होगये; केवल वह महामुनिही बच रहे । मुनिकी जटाएँ फैल गईं और वह जड़ और अन्धेके समान उस जलमें इधरउधर बहनेलगे । मुनिको एक तो भूख और प्याससे कष्ट होनेलगा, दूसरे मगर और तिमिंगिल आदि जलजन्तु पीड़ित करनेलगे । इसप्रकार प्रचण्ड लहरों और वायुके थपेड़ोंसे व्याकुल और परिश्रमसे शिथिल मार्कण्डेय मुनि अपार अन्धकारमें पड़कर प्रलय-सागरके जलमें कभी नीचे जाकर और कभी ऊपर आकर भ्रमनेलगे ! उनको यह नहीं जान पड़ता था कि कौन दिशा किधर है या आकाश कहाँ है और पृथ्वी कहाँ है ॥ १५ ॥ १६ ॥ कभी वह डूबकर जलके नीचे बड़े गहरेमें चले जाते थे, कभी तरंगोंकी टक्करोंसे टकराते थे और कभी उनको लीलनेके लिये परस्पर लड़ रहे घोर जलजन्तुओंके पेटमें चले जाते थे ॥ १७ ॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी भय, कभी दुःख कभी (किनारे पहुँचनेकी आशासे) सुखको प्राप्त होते और कभी पीड़ासे मृतप्राय हो जाते थे ॥ १८ ॥ शौनकजी ! विष्णुकी मायासे आत्माके आवृत होनेके कारण मार्कण्डेयजी इसी प्रकार शत सहस्र अयुत (दस हजार लाख) वर्षतक अर्थात् अपरिमित समयतक उस महासागरके जलमें बहतेहुए गोते खाते रहे ॥ १९ ॥ एक समय बहते बहते मुनिने एक छोटासा टापू और उस टापूमें एक छोटासा फूला फला नवपल्लवशोभित बरगदके वृक्षका पौधा देखा ॥२०॥ उस वृक्षकी पूर्व ओर उत्तरके कोनेकी अर्थात् ईशान कोनकी शाखामें पत्रपुटपर सोयेहुए और अपनी कान्तिसे वहाँके अन्धकारको दूर कर रहे एक महामरकतमणि (पन्ना) के समान श्यामवर्ण परम सुन्दर बालकको देखकर मार्क-ण्डेयजी बहुतही विस्मित हुए । मार्कण्डेयजीने देखा कि उस बालकका मुखकमल श्रीसम्पन्न है, ग्रीवा शङ्खके समान है, वक्षःस्थल विशाल है, नासिका ऊँची और सुन्दर है, भ्रुकुटी कमानऐसी मनोहर हैं, श्वासासे डोल रही बड़ी बड़ी अलकें मुखमण्डलकी शोभाको और भी बढ़ारही है, दोनो कान शङ्खके भीतरी भागके समान वलयाकार हैं और उनमें दाड़िम (अनार) के फूल सुशोभित हैं, उज्वल-मधुर मुसकानकी कान्ति विद्रुमतुल्य अधरकी कान्तिसे मिलकर ललाई लिये देख पड़ती है, दोनो अपाङ्ग (नेत्रोंकी कोरें) कमलकोपके तुल्य अरुण हैं, चितवन मनोहर है, पीपलके पत्तेके समान चिकने उदरमें गम्भीर नाभि-श्वासा लेनेसें कम्पायमान त्रिबलीसे चञ्चल हो रही है । वह मधुर बालक सुन्दर अङ्गुलियुक्त दोनो हाथोंसे

कमलकोमल चरणके अँगूठेको मुखमें डालेहुए पीरहा है ॥ २१–२५ ॥ उस बालकको देखनेसे विप्रवरको परम आनन्द प्राप्त हुआ और सब थकन तथा पीड़ा मिट गई । मुनिका हृदयकमल और नयनकमल प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो उठे–शरीरमें रोमाञ्च होआया । बालकके अद्भुत भाव और रूपको देखकर मुनिवर शङ्कित हुए–तथापि 'तुम कौन हो ?' ऐसा प्रश्न करनेके विचारसे निकट जानेके लिये उसकी ओर आगेको बढ़े ॥ २६ ॥ पास पहुँचते ही भार्गव मुनि एकाएक बालककी श्वासाके साथ मच्छड़के समान उड़कर उसके उदरमें चले गये । वहाँ जाकर मुनिने देखा कि प्रलयके पहले जैसा यह जगत् देख पड़ता था वैसाही उस बालकके पेटमें अवस्थित है । इससे मुनिके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही और वह मोहित होकर कुछ निश्चय न करसके कि वास्तवमें यह क्या है ? ॥ २७ ॥ आकाश, अन्तरिक्ष, तारागण, पर्वतवृन्द, सम्पूर्ण सागर, सब द्वीप, सब खण्ड, दशो दिशाएँ, देवगण, असुरगण, सब वन, सब देश, सब नदियाँ, नगरनिचय, आकरसमूह, व्रजसमूह, चारो आश्रम–चारो वर्ण और उनकी सब वृत्तियाँ, पाँचो तत्त्व, सम्पूर्ण भौतिक पदार्थ, खेट (किसानोंके गाँव)-पुर-ग्राम आदि, युग-कल्प–आदि अनेक भेदोंसे भिन्न भिन्न संज्ञाओंको प्राप्त सब प्रकारका काल एवं और जो जो लोकव्यवहारके कारणभूत अन्यान्य पदार्थ हैं–सो सो सभी उस बालकके उदरमें मुनिको देख पड़े । मुनिने देखा कि बालकके उदरमें सम्पूर्ण विश्व सत्य पदार्थसा भासित होरहा है ॥ २८ ॥ २९ ॥ मुनिने वहाँ हिमालय-पर्वत, पुष्पभद्रानदी एवं जहाँ ऋषिश्रेष्ठ नर–नारायणके दर्शन प्राप्त हुए थे वह अपने आश्रमका स्थान भी देखा । इसप्रकार विश्वको देखते देखते उस बालकके उदरसे श्वासाके साथ बाहर निकलकर फिर मार्कण्डेयजी उसी प्रलयसागरके जलमें गिरपड़े ॥ ३० ॥ उसी पृथ्वीके उच्च प्रदेशमें लगेहुए वटवृक्षकी शाखामें पत्रपुटपर शयन कररहे और प्रेमपूर्ण निर्मल मुसकानसे मनोहर तिरछी चितवनसे अपनी ओर निहार रहे, उन बालरूप मुकुन्दको देखकर और नयनमार्गसे हृदयमें बिठाकर सन्तुष्टचित्त हो आलिङ्गन करनेके विचारसे निकट जानेके लिये फिर जैसे मुनिवर उधर चले वैसेही योगेश्वरोंके अधीश्वर लीलाशरीरधारी अन्तर्यामी वही बालरूप साक्षात् नारायणदेव ऋषिके निकटसे अन्तर्हित होगये और ऋषिका उद्यम वैसेही विफल होगया जैसे ईश्वरविमुख व्यक्तिकी सब चेष्टाएँ व्यर्थ होती हैं ॥ ३१–३३ ॥

तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः ॥
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मन् ! बालमुकुन्दके अदृश्य होते उनके साथही वह वटवृक्ष, वह जलमय महासागर और वह लोगोंका प्रलय–सब क्षणभरमें अदृश्य होगया, और मुनिने अपनेको वैसेही पहलेकी भाँति अपने आश्रममें नदीतटपर बैठेहुए देखा ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय

शिवका प्रसन्न होकर मार्कण्डेयको वर देना

सूत उवाच–स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥
वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—हे शौनकजी ! महर्षि मार्कण्डेयजी इसप्रकार योग-मायाके वैभव अर्थात् प्रभावको देखकर समझे कि यह सब विश्व नारायणकी इसी (देखीहुई) मायाद्वारा विरचित है, अतएव उन्हीं विष्णुके शरणागत होकर कहनेलगे कि–"हे हरि ! मैं, आर्तजनोंको अभय देनेवाले आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ–मुझपर कृपा करो। आपके भजन विना आपकी ज्ञानवत् भासमान इस अज्ञानमयी मायामें अपनेको ज्ञानी माननेवाले देवगण भी मोहित होते हैं। इस योगमायाके प्रभावको मैं मन्दमति कैसे कह सकता हूँ" ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ सूतजी कहते हैं—इसप्रकार चित्तको एकाग्र करके मार्कण्डेयजी फिर पूर्ववत् हरिको भजनेलगे। इसी अवसरमें एक दिन पार्वतीसहित नन्दीपर सवार भगवान् शङ्कर अपने अनुचरोंसहित आकाशमार्गसे जारहे थे; उन्होने और पार्वतीने भी देखा कि महातेजस्वी मार्कण्डेयजी आश्रममें समाधि लगाये बैठे हैं। पार्वतीने ऋषिपर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करसे कहा कि "भगवन् ! देखिये जैसे वायुके रुक जानेपर महासागरका जल निश्चल हो जाता है और उसके भीतर रहनेवाले मत्स्य, मगर आदि जीव भी स्थिर हो रहते हैं वैसेही यह तपस्वी ब्राह्मण भी समाधि लगाये निश्चल होकर तप कर रहा है–इसका आत्मा, इन्द्रियाँ, शरीर और मन–सब निश्चल अर्थात् एकाग्र हो रहे हैं। अतएव आप दर्शन देकर इसके तपको सफल करिये अर्थात् जो यह माँगे वह वाञ्छित वर दीजिये; क्योंकि आपही सब प्रकारकी सिद्धियों (फलों) के देनेवाले ईश्वर है" ॥ ३–५ ॥ शङ्करने पार्वतीसे कहा कि "हे उमा ! यह ब्रह्मर्षिवर अविनाशी पुरुष नारायणकी अनन्य भक्तिको पाचुके हैं, अतएव इनको किसी फलकी–मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं हैं। तथापि हे भवानी ! हम इनसे अवश्य मिलेंगे और बातें करेंगे, क्योंकि प्राणियोंके लिये इस संसारमें साधुसङ्गम होना ही एकमात्र परम लाभ है" ॥ ६ ॥ ७ ॥ सब विद्याओंके प्रकाशक, सब देहधारियोंके ईश्वर, सब

भक्तोंकी एकमात्र गति भगवान् शङ्कर यों कहकर मार्कण्डेय के निकट गये ॥ ८ ॥ किन्तु मुनिके अन्तःकरणकी प्रवृत्ति, सब बाहरी विषयोंसे हटकर हृदयस्थित आत्मामें लीन हो रही थी—वह विश्वको और अपने शरीरको भी भूलेहुए थे, अतएव उन्हे विश्वव्यापक साक्षात् भगवान् शिव और पार्वतीका आना नहीं विदित हुआ ॥ ९ ॥ भगवान् शिवने यह जानकर, वायु जैसे छिद्रमें घुस जाता है वैसेही योगमायावलसे उनके हृदयमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ बिजलीके समान प्रभाशाली जटाजूटसे सुशोभित, त्रिलोचन, दशभुज, उन्नत, बालसूर्यसदृश, व्याघ्रचर्म ओढ़े और हाथोंमें त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, चर्म, अक्षमाला, डमरू, कपाल, परशु आदिक लिये शिवरूपको एकाएक हृदयमें स्थित देखकर मुनिका ध्यान बँटगया और समाधि खुलगई । उन्होने आँखें खोलकर देखा कि वास्तवमें पार्वतीसहित, गणपरिवृत त्रैलोक्यके गुरु महादेव उसी वेषसे सामनेही उपस्थित हैं । मार्कण्डेयजी उठ खड़ेहुए और शिर नवाकर ईश्वरको प्रणाम किया । फिर स्वागत-सत्कारके उपरान्त आसन, पाद्य, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप और दीपक इत्यादिसे पार्षदगणसहित शिव–शिवाका पूजन किया । पूजाके उपरान्त मुनिने हाथ जोड़कर कहा कि "हे प्रभो! आप आत्मज्ञानमेंही सन्तुष्ट और इसीसे निष्काम निर्गुण और शान्त हैं, हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ? हे ईशान ! आप तो स्वयं सब जगत्को वांछित वर देकर सुखी करनेवाले हैं । आप वास्तवमें सत्त्वमय हैं, परन्तु लीलाके लिये इस रजस्तमःप्रकाशिका मूर्तिमें विराजमान हो रहे हैं, इसीसे आपको घोर भी कहते हैं । आपको वारंवार नमस्कार है" ॥ ११–१७ ॥ सूतजी कहते हैं—सज्जनोंकी एकमात्र गति भगवान् महादेव, इसप्रकार स्तुति करनेपर अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर हँसतेहुए मार्कण्डेयजीसे बोले कि "हे मुनिवर ! जो इच्छा हो सो हमसे माँगो । हम तीनो देव वरदानियोंमें श्रेष्ठ हैं । हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता—उससे मनुष्योंको मुक्ति मिलती है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण–सदाचारी, गर्व–मत्सरआदि विकारोंसे रहित, निष्काम, सब प्राणियोंपर स्नेह रखनेवाले, हमारे अनन्यभक्त, शत्रुताहीन और समदर्शी हैं,—सम्पूर्णलोक और लोकपाल एवं मैं, ब्रह्मा और साक्षात् ईश्वर स्वयं हरिभी उनकी उपासना, बन्दना और पूजा करते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ वे मुझमें, ब्रह्मामें, हरिमें, अपनेमें और सम्पूर्ण जगत्में तनिक भी भेदभावना नहीं रखते । अतएव पूर्वोक्त योग्यतासे श्रेष्ठ तुम ब्राह्मण, हमारे भी पूज्य हो ॥ २१ ॥ जलमय नदी-नदआदिक तीर्थ और शिलामय शालग्राम आदि देवता, वास्तवमें तीर्थ और देवता नहीं हैं । सच्चे तीर्थ और देवता आपही लोग हैं । क्योंकि वे तीर्थ और देवता बहुत कालतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और आप लोगोंके दर्शनमात्रसे मन पवित्र होजाता है ॥२२॥ हम अपनेही रूप ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं, क्योंकि वे, चित्तको एकाग्रकर तप, स्वाध्याय अर्थात् आलोचना, अध्ययनद्वारा

संयमपूर्वक हमारे वेदमय रूपका आधार हो रहे हैं ॥ २३ ॥ बड़े बड़े पातकी और चाण्डाल आदि अन्त्यज भी केवल आप लोगोंके नाम सुनने और दर्शन करनेसेही शुद्ध हो जाते हैं। और जिन्हे आप लोगोंसे बातचीत करनेका सौभाग्य मिलता है तो कृतार्थ वेही हो जाते हैं" ॥ २४ ॥ **सूतजी कहते हैं—** चन्द्रशेखर शिवके धर्मरहस्ययुक्त उक्त अमृतऐसे वाक्योंको सुनकर मुनिको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। उनका जी नहीं भरा–सुननेकी इच्छा बनीही रही ॥२५॥ विष्णुकी मायामें चिरकालतक भ्रमनेसे मार्कण्डेयजीको जो कुछ कष्ट हुआ था उसे शिवके अमृतमय वाक्योंने कानोंके द्वारसे हृदयमें पहुँचकर मिटा दिया। मार्कण्डेयजीने शङ्करसे कहा कि–"अहो! 'स्वयं जगदीश्वर होकर भी शासनके योग्य जनोंको प्रणाम करना–उनकी स्तुति करना' यह आप ईश्वरोंकी चर्या (आचरण) हमऐसे शरीरधारियोंके लिये अचिन्त्य है–हम इसे नहीं समझ सकते ॥ २६ ॥ २७ ॥ हमारी समझमें साधारण लोगोंको धर्मकी शिक्षा देनेके लिये वर्णाश्रम-धर्मके बनानेवाले आप लोग इसप्रकार धर्मका आचरण, अनुमोदन और क्रियमाण धर्मकी प्रशंसा करते रहते हैं ॥२८॥ जादूगरके विचित्र व्यापारोंके समान ये। आपके नमन आदि व्यवहार मायामय आचरणमात्र हैं। हे मायाधीश! इन व्यवहारोंसे आपका प्रभाव कम नहीं होता ॥ २९ ॥ आप इच्छापूर्वक मनसे विश्वकी सृष्टि करके आत्मा(चेतन)रूपसे इसके भीतर प्रविष्ट होकर स्वप्नदर्शी व्यक्तिके समान, कार्यकारी गुणोंके द्वारा कर्तारूपसे प्रतीत होते हैं। आप त्रिगुणात्मक, गुणोंके नियन्ता, एकमात्र, अद्वितीय, गुरु, ब्रह्ममूर्ति भगवान् हैं–आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे सर्वव्यापक! आपको देखनेसे मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण होगईं, अब मैं आपसे और कौन वर माँगू? आपके दर्शनसे लोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण और सफल हो जाती हैं ॥ ३०-३२ ॥ तथापि हे वरदानियोंमें श्रेष्ठ और काम वर्षाकरनेवाले ईश! मैं आपसे यही एक वर माँगता हूँ कि मुझको अच्युत भगवान्में भगवद्भक्तोंमें और आपमें अचल भक्ति प्राप्त हो" ॥ ३३ ॥ मुनिके इसप्रकार वेदवाक्योंसे स्तुति और पूजा करनेके उपरान्त पार्वतीकी इच्छाके अनुसार भगवान् शङ्करने कहा कि "हे महर्षि! अच्युत भगवान्की अटल भक्ति तो तुमको प्राप्तही है तथापि तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार मेरी कृपासे वह प्रतिदिन बढ़ती ही रहेगी। भगवद्भक्तोंमें और मुझमें भी तुम्हारी अचल भक्ति होगी। इसके अतिरिक्त तुम पूर्ण ब्रह्मवर्चस्वी अर्थात् बालब्रह्मचारी हो, अतएव कल्पके अन्ततक जीवित रहोगे। तुम अजर, अमर होगे। तुम्हारी कीर्ति और तुम्हारे पुण्यका कभी क्षय न होगा। तुमको तीनो कालका ज्ञान प्राप्त होगा। तुम आत्मज्ञानी, विरक्त और पुराण रचनेवाले आचार्य होगे" ॥ ३४-३६ ॥ **सूतजीने कहा—हे शौनकजी!** मुनिको इसप्रकार वर देकर जगदीश्वर भगवान् भवानीपति त्रिलोचन, भवानीसे हरिमायादर्शनादि मुनिके अद्भुत चरित्र कहतेहुए वहाँसे चलदिये ॥ ३७ ॥ हरि-

भक्तोंमें प्रधान वह भार्गवश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी भी इसप्रकार महायोगमहिमा पाकर, साक्षात् हरिमें तन्मय हो, तबसे इच्छानुसार विचरते रहते हैं ॥३८॥ शौनकजी! बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिकी देखी हुई भगवान्‌की मायाका यह अद्भुत वैभव मैंने आप लोगोंको सुनादिया ॥ ३९ ॥ हे मुनिवर! प्राणियोंकी सृष्टि और लयका कारण जो भगवान्‌की माया है उसके तत्त्वको न जाननेवाले लोगोंका कथन है कि 'मार्कण्डेयजीने सात कल्पमें पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान्‌की अनादिकालव्यापिनी माया देखी'। और जो लोग ज्ञाता हैं उनका कथन है कि 'मायाशिशुरूप हरिके उदरमें श्वासाके साथ सात बार भीतर जाकर और सात बार बाहर निकलकर केवल मार्कण्डेयनेही एक ही समयमें आकस्मिक सात कल्प (प्रलय) देखे' ॥ ४० ॥

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ॥
संश्रावयेत्संशृणुयादुतावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥

हे भृगुवर्य! जो कोई चक्रपाणि हरिके प्रभावसे पूर्ण इस उपाख्यानको सुनते हैं और जो सुनाते हैं, वे चित्तकृत कर्मजनित संसारबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं ॥४१॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय

तत्त्वमय अङ्ग-उपाङ्गयुक्त महापुरुषके रूपका निरूपण

शौनक उवाच—अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम् ॥
समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥

शौनक ऋषिने पूछा—हे भगवद्भक्त सूत! आपका कल्याण हो; आप सम्पूर्ण तन्त्रसिद्धान्तके तत्त्वको जाननेवाले और बहुज्ञ विद्वानोंमें श्रेष्ठ हैं। अतएव हम आपसे यह सुनना चाहते हैं कि श्रीपति नारायण जो चैतन्यघन ज्योतिःस्वरूप हैं, किन्तु तान्त्रिक उपासक लोग, उपासनाके समय उनके हाथ-पैर आदि अङ्ग, गरुड़ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि शस्त्र और कौस्तुभ आदि आभूषणोंकी कल्पना करते हैं। आप कृपा करके कहिये कि किन किन तत्त्वोंसे और कैसे हरिके अङ्ग, उपाङ्ग आदिकी कल्पना की जाती है? हमको क्रियायोग जाननेकी भी इच्छा है, इसलिये जिस क्रिया-निपुणतासे मनुष्योंको मुक्ति मिलती है, उसका भी वर्णन करिये ॥१–३॥ सूतजीने कहा—मैं अपने गुरुदेवोंको प्रणाम करके विष्णुकी उन विभूतियोंको आपके आगे कहता हूँ जिन्हे ब्रह्मा आदि आचार्योंने वेदों और तन्त्रोंमें कहा है ॥ ४ ॥ प्रकृति, गुण, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा—इन नव तत्त्वों और मनसहित ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्चतत्त्व—इन सोलह विकारोंसे विराट् पुरुषनिर्मित

हैं; उसी चेतन–युक्त विराट् मूर्तिमें यह त्रिभुवन देख पड़ता है ॥५॥ विराट् पुरुषके दोनो पैर यह पृथ्वी है और स्वर्गलोक मस्तक है, आकाश नाभि है, सूर्य नेत्र हैं, वायु नासिका है, दिशाएँ कान है, प्रजापतिगण मेढ़ू हैं, काल अपानवायु है, लोकपालगण भुजाएँ हैं, चन्द्रमा मन है, यमराज भौंहें हैं, लज्जा अधर है, लोभ ओष्ठ हैं, ज्योत्स्ना (चाँदनी) दशनावली है, भ्रम हास्य है, वृक्षवृन्द रोमपुञ्ज हैं, मेघमण्डल केशसमूह है [इसीप्रकार अनुक्त अङ्गोंकी भी कल्पना करलेनी चाहिये]। यह भूर्लोकस्थित मनुष्यशरीर निजपरिमाणसे सात बित्ता-भर लम्बा है वैसेही विराट् शरीर भी निजपरिमाणसे सात बित्तेका है। यही विराट् शरीरका रूप है ॥ ६–९ ॥ [यह विराट् पुरुषके अङ्गोंकी कल्पना है। अब उपाङ्ग आदिकी जिसप्रकार जिन तत्त्वोंसे कल्पना की जाती है, सो कहते हैं] विशुद्ध जीव चैतन्यही साक्षात् कौस्तुभमणि है और उसकी व्याप्त होनेवाली प्रभाही साक्षात् श्रीवत्स है। इन दोनो मुख्य आभूषणों(चिन्हों)को भगवान् हृदयमें धारण किये हुए हैं ॥ १० ॥ त्रिगुणात्मिका मायाही विचित्र वनमाला है, वेदसमूहही पीताम्बर है, और त्रिमात्रायुक्त प्रणव(ओं)ही ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) है। सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र ही दोनो मकराकृति कुण्डल हैं। सर्वलोकवन्दित ब्रह्मपद (ब्रह्मानन्द)ही किरीठ मुकुट हैं। 'प्रधान' ही अनन्त (शेषनाग) नामक अधिष्ठान या आसन है। धर्म–ज्ञान आदि प्रवृत्तियोंसे युक्त सतोगुणही आसनके ऊपर बिछौनेके स्थानपर स्थित पद्म हैं। तेज, उत्साह और बलसे युक्त प्राणतत्त्व (वायु)ही गदा है। जलतत्त्व शङ्ख है, तेजका तत्त्व सुदर्शन चक्र है। शरीरस्थित अवकाशरूप आकाशतत्त्वही असि (तर्वार) है और अज्ञा-नही ढाल है। साक्षात् 'काल'ही शार्ङ्गधनुष है और अनेक प्रकारके कर्मही अक्षय तर्कस हैं। विविध वासनामयी इन्द्रियाँही बाणपुञ्ज हैं। क्रियाशक्तियुक्त मनही रथ है और पञ्चतन्मात्राएँ (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श)ही उस रथका बाहर अभिव्यक्त रूप है। वर, अभय आदि इष्टदेव विराट् पुरुषकी मुद्राएँ (भावरचनाएँ जिन्हे भावभङ्गि भी कहते हैं) हैं ॥ ११–१६ ॥ सूर्यमण्डलही पूजाका स्थान है। आत्माका संस्कार (अन्तःकरणकी शुद्धि)ही दीक्षा अर्थात् परम पुरुषकी पूजाका अधिकार है। अपने पापोंका क्षयही परम पुरुषकी पूजा है ॥ १७ ॥ 'भग' शब्दके अर्थस्वरूप ऐश्वर्य आदि छः अलौकिक गुणही भगवान्‌के हाथमें स्थित लीलाकमल है। धर्म और यशही दोनो चामर (चँवर) हैं एवं अकुतोभय वैकुण्ठ (मोक्ष) धामही छत्र है। हे द्विजवर! ऋक्, यजुः और साम–ये तीनो वेदही यज्ञस्वरूप पुरुष अर्थात् विष्णु (क्योंकि श्रुति कहती हैं 'यज्ञो वै विष्णुः')का गरुड़ नाम वाहन है ॥ १८ ॥ १९ ॥ स्वस्वरूप–चित्रूप आत्मा (हरि)की कभी न नष्ट होने-वाली शक्तिही शोभा–सम्पत्तिमयी साक्षात् भगवती लक्ष्मीदेवी हैं और पञ्चरात्र आदि तन्त्रशास्त्रही भगवान्‌के श्रेष्ठ पार्षद 'विष्वक्सेन' हैं। अणिमा आदिक आठो

गुण (सिद्धियाँ)ही आठ नन्द आदिक द्वारपाल हैं। इस परम पुरुषकी पूजा या उपासना मूर्तिव्यूहसें और अन्तःकरणसें भी की जाती है। मूर्तिव्यूहसें तो वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामकी मूर्तियोंमें पूजा की जाती है और अन्तः-करणमें मन, अहङ्कार, बुद्धि, चित्त अथवा विषय, मन, वासना और ज्ञान आदि उपाधियोंसे उत्पन्न जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और मुक्तिसंज्ञक वृत्तियों (अवस्थाओं)में विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय-इन नामोंसे उपासना (ध्यान) की जाती है ॥ २०-२२ ॥ साक्षात् हरि (परमात्मा) इन अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध और आभरणोंसे उपलक्षित (दोनो प्रकारकी) चतुर्व्यूह मूर्तियोंमें विराजमान हैं ॥ २३ ॥ हे विप्रवर ! यही विराट्रूप भगवान् विष्णु ज्ञानमय वेदका मूलकारण सबके साक्षी और अपनी महिमासे परिपूर्ण हैं। यही अपनी मायाद्वारा इस जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और संहार करतेहुए ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन भिन्न भिन्न नामोंको प्राप्त होते हैं। तत्पर लोग इनको अनावृत ज्ञानरूपसे अपनेही हृदयमें पाजाते हैं। यही सगुण उपासना और निर्गुण उपासना है। पहले सगुण उपासना करनेसे ब्रह्मज्ञान होता है; फिर जीवन्मुक्त अवस्थामें 'अहं ब्रह्म भावना'से निर्गुण उपासना की जाती है ॥ २४ ॥ जो कोई प्रातःकाल उठकर शौच करनेके उपरान्त शुद्धचित्त हो केवल इसप्रकार कहकर स्थिर चित्तसे ईश्वरका ध्यान करता है कि-"हे कृष्ण ! हे अर्जुनके मित्र ! हे वृष्णिवंशतिलक ! हे विश्वद्रोही राजोंके वंशोंको जलानेवाले अग्नि ! हे अमोघवीर्य ! हे गोविन्द ! गोपीगण, गोपगण, और नारदआदि अनुगत भक्त आपकी तीर्थतुल्य जगत्पावनी, सोहावनी कीर्तिका कीर्तन और सुनना ही सब मङ्गलोंका आलय समझते हैं। हम सेवकोंकी रक्षा करो"-वह भी कुछ कालमें हृदयमें स्थित ब्रह्मका अनुभव कर सकता है ॥२५॥२६॥ शौनकजीने सूतजीसे फिर पूछा कि हे सूतजी ! आपने चतुर्मूर्ति नारायणका मूर्तिव्यूह तो सुनाया, अब विष्णुदत्त राजा परीक्षित्के पूछनेपर श्रीशुकदेवजीने जिसका वर्णन किया है वह, सूर्यरूप नारायणकी प्रत्येक मासमें तपनेवाली सहचरगणसहित बारह मूर्तियोंके नाम और कामका विवरण हम श्रद्धायुक्त सुननेवालोंको सुनाइये ॥ २७ ॥ २८ ॥ सूत-जीने कहा—सब देहधारियोंके आत्मा जो भगवान् विष्णु हैं उनकी अनादि मायासे निर्मित यह सूर्यमूर्ति-लोकव्यवहारके चक्रको चलातीहुई आकाशमण्डलमें विचरती रहती है। सम्पूर्ण जगत्के आत्मा (प्रकाशक) और आदिकर्ता सूर्यरूप नारायण वास्तवमें एकरूप हैं, तथापि, यही सम्पूर्ण वेदोक्त क्रियाओंका मूल (कारण)हैं-इस-लिये ऋषियोंने भिन्न भिन्न भावनाके अनुसार इनके उपाधिकृत अनेक नाम व रूपोंकी कल्पना कर ली है ॥ २९ ॥ ३० ॥ देश, काल, क्रिया (अनुष्ठान) कर्ता (ब्राह्मण), करण (स्रुवा स्रुक् आदि) कार्य यज्ञ आगम (मन्त्र) द्रव्य (व्रीहि अर्थात् धान आदिक), और फल (स्वर्गलोक आदि); सूर्य नारायणकी ये मायाकल्पित नौ उपाधियाँ कही गई हैं ॥३१॥ कालरूप भगवान् सूर्य, चैत्र आदि बारहो महीनोंमें

लोकयात्रानिर्वाहके लिये क्रमशः बारह मूर्तियोंसे प्रकाशमान होते हैं। उनके साथ बारह बारह अप्सरा आदि अनुगत गणभी इसप्रकार रहते हैं ॥ ३२ ॥ चैत्रमें धातानाम सूर्यके साथ कृतस्थली अप्सरा, हेति राक्षस, वासुकि नाग, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्यऋषि और तुम्बुरु गन्धर्व रहता है। वैशाखमें अर्यमानाम सूर्यके साथ पुलहऋषि, अथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व, प्रहेति राक्षस और कच्छनीर नाग रहता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जेठमें मित्र नाम सूर्यके साथ अत्रिऋषि, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, तक्षक गन्धर्व, रथस्वन यक्ष और हाहा नाम गन्धर्व रहता है ॥३५॥ आषाढमें वरुणनाम सूर्यके साथ वसिष्ठऋषि, रम्भा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, शुक्रनाम नाग, चित्रस्वन राक्षस और हूहू नाम गन्धर्व रहता है ॥ ३६ ॥ सावनमें इन्द्रनाम सूर्यके साथ विश्वावसु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, अङ्गिराऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और वर्यनाम राक्षस रहता है ॥३७॥ भादोंमें विवस्वान् नाम सूर्यके साथ उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्रनाम राक्षस, भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा, आसारण यक्ष और शङ्खपाल नाग रहता है ॥ ३८ ॥ माघमें पूषा नाम सूर्यके साथ धनंजय नाग, वातनाम राक्षस, सुषेण गन्धर्व, घृताची अप्सरा, गौतमऋषि और सुरुचिनाम. यक्ष रहता है ॥ ३९ ॥ फाल्गुनमें पर्जन्य नाम सूर्यके साथ ऋतुनाम यक्ष, वर्चस् नाम राक्षस, भरद्वाज ऋषि, सेनजित् अप्सरा, ऐरावत नाम नाग और विश्वनाम गन्धर्व रहता है ॥ ४० ॥ अगहनमें अंशुनाम सूर्यके साथ कश्यपऋषि, तार्क्ष्य नाम यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युत्शत्रु राक्षस और महाशङ्ख नाग रहता है ॥ ४१ ॥ पौषमें भगनाम सूर्यके साथ स्फूर्जनाम राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, अर्ण यक्ष, आयुनाम ऋषि, विप्रचित्ति अप्सरा, और कर्कोटक नाग रहता है ॥ ४२ ॥ आश्विनमें त्वष्टानाम सूर्यके साथ जमदग्नि ऋषि, कम्बलाश्व नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, शतजित् यक्ष और धृतराष्ट्रनाम गन्धर्व रहता है ॥ ४३ ॥ कार्तिकमें विष्णुनाम सूर्यके साथ अश्वतरनाग, रम्भा (दुसरी रम्भा) अप्सरा, सूर्यवर्चस् गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्रऋषि और मखापेत राक्षस रहता है ॥ ४४ ॥ हे मुनिवर! जो कोई नित्य सबेरे और सन्ध्यासमय भगवान् विष्णुरूप आदित्यकी इन विभूतियोंका स्मरण या कीर्तन करते हैं उनके पाप क्षीण होते रहते हैं। इसप्रकार गन्धर्व आदि छः अनुगतोंके साथ यह सूर्यनारायण, बारहो महीने त्रैलोक्यके चारो ओर विचरतेहुए सब लोगोंको ऐहलौकिक और पारलौकिक शुभ बुद्धि देते रहते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋषिगण ऋक्, यजुः और साम वेदके मन्त्रोंसे स्तुति करते हैं और गन्धर्वगण गुणगान करते हैं, अप्सराएँ आगे आगे नृत्य करती चलती हैं, नागगण रथका दृढ़ बन्धन बनते हैं, यक्षलोग रथयोजना करते हैं और बली राक्षसगण रथको पीछेसे ढकेलते चलते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ऐसेही अँगूठेकी एक पोरके बराबर जिनके शरीर हैं वे साठ

हजार बालखिल्यनाम निष्पाप ऋषिगण सूर्यकी ओर मुख किये पिछले पैरों आगे आगे स्तुति करते चलते हैं ॥ ४९ ॥

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥

हे मुनिवर ! अनादि, अनन्त, भगवान् हरि ईश्वर—इसीप्रकार प्रत्येक कल्पमें अंशविभाग करके उन मूर्तियोंसे सब लोगोंका पालन करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय

संक्षेपसे बारहो स्कन्धोंकी कथाओंका पुनः उल्लेख

सूत उवाच—**नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥**
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—अब मैं महान् (हरिभक्तिस्वरूप) धर्मको और विधाता कृष्णभगवान्को तथा परमपूज्य ब्राह्मणोंको प्रणाम करके संक्षेपसे सनातन धर्मोंका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ हे विप्रगण ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार लोगोंके सुननेयोग्य वह अद्भुत सम्पूर्ण हरिचरित्र मैंने सुना दिया ॥ २ ॥ इस कथाप्रसङ्ग (भागवत पुराण)में छः ऐश्वर्यगुणोंसे सम्पन्न, हृषीकेश, भक्तरक्षक, सब पापोंके हरनेवाले, साक्षात् नारायण हरिका स्वरूप बताया गया है ॥ ३ ॥ जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके मूलकारण गूढ़ परब्रह्मका स्वरूप दर्शाया गया है और ज्ञान—विज्ञानसम्पन्न ब्रह्मका उपाख्यान (व्याख्या) भी कहा गया है। भक्तियोगयुक्त वैराग्यकाभी भलीभाँति वर्णन किया गया है। "(प्रथम स्कन्धमें) परीक्षित्का उपाख्यान (जन्म आदि), नारदका उपाख्यान, विप्रके शापसे परीक्षित्का मरणाभिमुख हो गङ्गातटपर अन्न जल छोड़कर बैठना और ब्रह्मर्षि शुकदेवके साथ उनका संवाद—इन विषयोंका वर्णन हुआ है ॥ ४-६ ॥ (द्वितीय स्कन्धमें) योगाभ्यासपूर्वक अर्चि आदिलोगोंकी ऊर्ध्वगति, ब्रह्मा व नारदका संवाद, अवतारवर्णन और महत्तत्त्व आदिकी सृष्टि अर्थात् विराट्रूपका वर्णन पहलेही सुना चुके है ॥ ७ ॥ (तृतीयस्कन्धमें) विदुर व उद्धवका संवाद, फिर विदुर व मैत्रेयजीका संवाद, पुराणसंहिताविषयक प्रश्नोत्तर, प्रलयकालमें महापुरुषकी स्थिति, फिर प्राकृतिक सृष्टि, महत्तत्त्व आदिका सप्तविध सर्ग, फिर वैकारिक सर्ग अर्थात् विराट् पुरुषरूप ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, फिर स्थूल और सूक्ष्म कालकी गतियाँ, नाभिपद्मसे ब्रह्माकी उत्पत्ति, प्रलयसागरसे पृथ्वीका उद्धार करते समय वाराहकृत

हिरण्याक्षका वध, स्वर्ग मर्त्य पाताल आदिकी सृष्टि, रुद्रसृष्टि और फिर अर्धनारीनररूप ब्रह्मासे स्वायंभुव मनु और स्त्रियोंकी आदिप्रकृति या आदर्शरूपा शतरूपा रानीकी उत्पत्ति, कर्दम प्रजापति और धर्मकी सन्तानोंका विवरण, भगवान् महामुनि महामति कपिलदेवका अवतार और कपिल–देवहूतिसंवाद–इन विषयोंका वर्णन किया गया है ॥ ८–१३ ॥ (चतुर्थस्कन्धमें) ब्रह्मासे मरीचि आदि नव (सृष्टि बढ़ानेवाले) ब्रह्मर्षियोंके वंशका विवरण, दक्षयज्ञविनाश, ध्रुवचरित्र, फिर पृथुचरित्र और राजा प्राचीनबर्हि व नारदका संवाद–ये विषय सुनाये गये हैं। हे विप्रगण! (पञ्चमस्कन्धमें) प्रियव्रतका उपाख्यान, राजा नाभिकी कथा, ऋषभचरित और राजा भरतका वृत्तान्त, द्वीप–समुद्र–पर्वत–नदीयुक्त पृथ्वीमण्डलका वर्णन, ज्योतिश्चक्र, पाताल और नरकोंका विवरण–इन विषयोंका वर्णन किया गया है ॥१४–१६॥ (षष्ठस्कन्धमें) अजामिलोपाख्यान, प्रचेतागणसे दक्षका जन्म, दक्षकी कन्याओंसे देवता, असुर, मनुष्य, पशु, कीट, पतङ्ग, पक्षी, मृग आदिकी सृष्टि, वृत्रासुरका जन्म और वध, (सप्तम स्कन्धमें) दितिके दोनो पुत्रोंका निधन और तदन्तर्गत दैत्येश्वर महात्मा प्रह्लादका चरित्र; (अष्टमस्कन्धमें) मन्वन्तरवर्णन, गजेन्द्रमोक्ष, भिन्न भिन्न मन्वन्तरोंमें होनेवाले जगत्पति हरिके मत्स्य, कूर्म, हयग्रीव, नृसिंह, वामन आदि अवतारोंका वर्णन, अमृतके लिये देवासुर महासंग्राम–इतने विषयोंका वर्णन किया गया है। (नवमस्कन्धमें) राजवंशविवरण, इक्ष्वाकुका जन्म, इक्ष्वाकुके वंशमें महात्मा सुद्युम्नका जन्म, इलाका उपाख्यान, ताराका उपाख्यान, सूर्यवंशमें–शशाद, नृग, शर्याति, बुद्धिमान् ककुत्स्थ, खट्वाङ्ग, सौभरि और सगर व रामचन्द्र आदिके पापनाशक चरित्रों और वंशोंका विवरण तथा भार्गवेन्द्र परशुरामकृत महीतलके क्षत्रियमात्रका सर्वसंहार–एवं चंद्रवंशमें पुरूरवा, ययाति, नहुष, दुष्यन्तके पुत्र प्रतापी भरत, राजा निमि (का अङ्गत्याग और उनसे जनककुलकी उत्पत्ति), शन्तनु और उनके पुत्र भीष्मदेवका उपाख्यान, ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदुका वंश–जिसमें जगदीश्वर साक्षात् कृष्ण भगवान्ने जन्म लिया, उसका विवरण–ये विषय वर्णित हुए हैं। (दशमस्कन्धमें) वसुदेवके घरमें कृष्णका जन्म और गोकुलमें रहना, असुरारि हरिकी अनेकानेक अद्भुत बाललीलाएँ, पूतनावध, शकटभञ्जन, तृणावर्तवध, बकासुर और वत्सासुरका वध, अनुचरसहित धेनुकासुरका वध, प्रलम्बवध, चारों ओर फैलरहे दावानलसे गोपोंकी रक्षा, कालियनागदमन और नन्दमोक्ष वर्णित है ॥ १७–२१ ॥ इसीप्रकार हरिकी प्रसन्नताके लिये व्रजबालिकाओंकी व्रतचर्या, यज्ञकारी ब्राह्मणोंका अपनी स्त्रियोंको हरिमिलनसे कृतार्थ देखकर अपनी भूलपर पछताना, गोवर्धनधारण, इन्द्रमानभङ्ग, सुरभीसहित इन्द्रका आना और गोविन्दका अभिषेक, रासक्रीडा, शङ्खचूडवध,

अरिष्टासुर और केशीका वध, अक्रूरका आगमन, रामकृष्णकी यात्रा, व्रजवनिताओंका विलाप, मथुराकी सैर, धनुषभङ्ग, कुवलयापीड़ और चाणूर मुष्टिक आदि मल्ल तथा कंसका वध और सान्दीपिनि गुरुके मृतपुत्रका पुनरानयन–ये कथाएँ कही गई हैं। हे द्विजगण! मथुरानिवासके समय बलभद्र और उद्धवके साथ कृष्णने जिन जिन कर्मोंसे यादवोंको प्रसन्न किया, जरासन्धके द्वारा कईवार लाईगई सेनाका संहार, यवनेन्द्रको मुचुकुन्दके नयनाग्निमें भस्म कराना, द्वारका बसाना, सुधर्मा सभा और कल्पवृक्षको स्वर्गलोकसे द्वारकामें लेआना, युद्धमें बाधा डालनेवाले शिशुपाल आदिको मथकर रुक्मिणीको हर ले जाना, बाणासुरयुद्धमें शिवको मोहित करना–बाणासुरके बाहुओंको काटडालना, भौमासुरको मारकर उसकी लाईहुई सोलह हजार एकसौ कन्याओंका एक साथ पाणि-ग्रहण करना, शिशुपाल-पौण्ड्रक-शाल्व-दुर्मति दन्तवक्रका वध, शम्बरवध, द्विविदवध, पीठ–मुर और पञ्चजन नामक दैत्योंका वध, वाराणसीदहन और पाण्डवोंके द्वारा महाभारत रचाकर पृथ्वीका भार उतारना–ये विषय वर्णित हैं ॥ ३२–४१ ॥ (एकादश स्कन्धमें) विप्रशापके बहानेसे यादववंशका परस्पर विनाश, उद्धवका और वासुदेवका अद्भुत संवाद-जिसमें संपूर्ण आत्मविद्याका उपदेश और धर्मका विचार किया गया है, फिर योगमायाबलसे कृष्णचन्द्रका सशरीर परमधाम गमन–इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गया है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ (द्वादशस्कन्धमें) युगलक्षण, युगस्थिति, कलिकृत मनुष्योंका आन्तरिक विप्लव, चतुर्विध प्रलय, त्रिविध उत्पत्ति, बुद्धिमान् राजा परीक्षित्का देहान्त, वेदशाखाविभाग, महामुनिमार्कण्डेयजीकी उत्तम कथा, महापुरुषका विन्यास (कल्पना) और जगत्के आत्मा सूर्यके द्वादश व्यूहोंका वर्णन किया गया है" ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ हे द्विजवरो ! आपके पूछनेके अनुसार मैंने इन सब हरिके लीलामय अवतारोंके कर्मोंका कीर्तन किया है ॥ ४६ ॥ निश्चय जानो कि गिरते, पड़ते, पीड़ित अवस्थामें, भूखे–प्यासे–सब प्रकारके संकटोंमें यदि कोई शुद्धचित्त हो, उच्च स्वरसे 'हरये नमः' कहकर ईश्वरकी वन्दना करता है वह तत्क्षण सब पातकोंसे मुक्त होजाता है ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति हरिके सुयशयुक्त चरित्रोंको सुनता है एवं स्वयं भी हरिके नाम लेता है और चरित्र पढ़ता है उसके चित्तमें प्रवेश करके भगवान् अनन्त–हृदयस्थित वासना या मोहान्धकारको ऐसे दूर कर देते हैं जैसे अन्धकारको सूर्य अथवा मेघोंको प्रचण्ड वायु ॥ ४८ ॥ जिस कथामें भगवान् अधोक्षजकी चर्चा नहीं है वह असत् और मिथ्या है। जिस कथामें हरिके गुणगणवर्णनका प्रसङ्ग है वही सत्य है, वही मङ्गलदायिनी और पुण्यमयी है ॥ ४९ ॥ जो उत्तमश्लोक हरिके यशसे पूर्ण हो वही परमरमणीय और पल पल पर नित्य नवीन है, वही महान् उत्सवस्वरूप है, वही मनुष्योंके शोकसागरको सुखानेवाला है ॥ ५० ॥ विचित्र पदोंकी योजना एवं वाक्यविन्यासकी छटा

होनेपरभी जिन वचनोंमें हरिके जगत्पावन यशकी चर्चा नहीं है वे उपन्यास, काक-तुल्य विषयसेवी मनुष्योंको ही रुचते हैं; हंससदृश ज्ञानीजन उनमें नहीं रमते। जहाँ अच्युत हैं वही वस्तु निर्मल अन्तःकरणवाले साधुओंको अपनी ओर खींच सकती है ॥ ५१ ॥ छन्दोभङ्ग आदि अनेक दोष होनेपरभी अनन्त भगवान्के यशसे अङ्कित हरिनामयुक्त वचनही सार्थक हैं, क्योंकि सम्पूर्ण समाजके पापको नष्ट कर देते हैं। साधुजन ऐसेही वचन कहते, सुनते और गाते हैं ॥ ५२ ॥ विना हरिभक्तिके, निरञ्जन (उपाधिको मिटानेवाला) और नैष्कर्म्य (ब्रह्मप्रकाशक) वैराग्यसहित ज्ञानभी नहीं सोहता (अर्थात् पूर्ण कल्याणकारी नहीं होसकता)। कैसाही उत्तम कर्म क्यों न हो, यदि वह कृष्णार्पण नहीं किया गया तो कैसे सोह सकता है ? वह तो साधनकालमें और अन्तमें भी अभद्र अर्थात् दुःखमय है ॥ ५३ ॥ वर्णाश्रमाचारपालन, तप और वेदोक्त यज्ञादि कर्मोंमें श्रम करनेसे केवल यश और कीर्ति मिलती है, परन्तु परमपुरुषार्थरूप हरिके चरणकमलोंकी भक्ति केवल हरिगुणानुवादके कीर्तन, श्रवण और मननसेही प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ कृष्णचरणोंकी सुदृढ़ भक्तिसे अशुभका क्षय, कल्याणकी प्राप्ति, अन्तःकरणकी शुद्धि, परमात्मामें प्रेम और ज्ञानविज्ञानसम्पन्न वैराग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥ हे विप्रवरो ! आपलोग बड़ेही भाग्यशाली और धन्य हैं, क्योंकि अपने अन्तः-करणमें सबके आत्मा, सबके उपास्य देव, सर्वोपरि विराजमान, ईश्वर नारायण देवको स्थापित करके निरन्तर भजते हैं ॥ ५६ ॥ आपहीकी कृपासे मैं भी धन्य हुआ, क्योंकि जिसे मैंने पहले राजा परीक्षित्के प्रायोपवेशनके समय ऋषियोंकी सभामें महात्मा लोगोंके बीच श्रीशुकदेवजीके मुखसे सुना था उस परमात्माके तत्त्वका वर्णन करनेके लिये आपही लोगोंने प्रेरणा की ॥ ५७ ॥ हे विप्रगण ! यह सब प्रकारके अमङ्गलोंको मिटानेवाला भगवन्माहात्म्य (भागवत पुराण) आपके आगे मैंने कहा ॥ ५८ ॥ जो कोई पहरभर अथवा क्षणभरही अनन्यचित्त होकर इसको सुनाते हैं और जो कोई श्रद्धापूर्वक इसका एक श्लोक, आधा श्लोक, एक पद या आधा पद भी सुनते हैं वे दोनो अपने आत्माको पवित्र करते हैं ॥ ५९ ॥ एकादशी और द्वादशीको इसके सुननेसे आयुर्बलकी वृद्धि होती है। जो कोई उपवासपूर्वक यत्नसहित इस संहिताको पढ़ते हैं वे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाते हैं ॥ ६० ॥ पुष्कर, मथुरा, द्वारका आदि पुण्य तीर्थक्षेत्रोंमें उपवासपूर्वक यत्नसहित इस संहिताका पाठ करनेसे संसारभय दूर होजाता है ॥ ६१ ॥ इस संहिताका पाठ करनेसे सुननेवाले देवता, मुनि, सिद्ध, पितृगण, मनुष्य और राजा आदिक, सब कामनाएँ पूरी करते हैं ॥ ६२ ॥ इसका पाठ करनेवाले ब्राह्मणको चारो वेद पढ़नेका फल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पयःकुल्या, घृतकुल्या, मधुकुल्या, (दूध, घी आदिकी कृत्रिम नदी बनाकर) आदिके देनेका फल और भगवदुक्त परम पदभी इस संहिताके पाठसे प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस संहिताके

पाठ करनेसे ब्राह्मणको ब्रह्मज्ञान, क्षत्रियको ससागरा पृथ्वीका साम्राज्य, वैश्यको सब ऋद्धि सिद्धि और निधियाँ तथा शूद्रको सब पातकोंसे मुक्ति मिलती है॥६५॥ अन्य शास्त्र पुराणोंमें प्रत्येक पदमें कलिकलुषनाशन सर्वेश्वर हरिके नामोंका कीर्तन नहीं है, किन्तु इस पुराणसंहिताके प्रत्येक कथाप्रसङ्गमें विशेष रूपसे अशेष मूर्ति भगवान्‌के सुयशपूर्ण नामोंका कीर्तन किया गया है, अतएव यह सर्वश्रेष्ठ है ६६॥ स्वर्गपति इन्द्र, ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवगणभी पूर्ण रीतिसे जिनकी स्तुति नहीं कर-सकते उन अज, अनन्त, अच्युत, जगत्‌की सृष्टि स्थिति और प्रलय करनेवाली शक्तिसे सम्पन्न नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ॥६७॥उद्रेकको प्राप्त नवशक्तिके द्वारा अपने-हीमें उपरचित स्थावरजङ्गममय ब्रह्माण्डही जिसका आलय है, जो उपलब्धिमात्र सनातन स्वरूप है उस भगवान् नारायण नाम ब्रह्मको हम प्रणाम करते हैं ॥६८॥

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
प्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ॥
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥ ६९ ॥

अपनेही आनन्दमें परिपूर्ण अतएव अन्य वस्तुओंकी अपेक्षा न रखनेवाले भगवान् नारायणकी मनोहर लीलाओंने जिनके चित्तको अपनी ओर खींच लिया है और जिन्होने भगवत्सम्बन्धिनी इस परमार्थप्रकाशिनी पुराणसंहिताको जगत्में प्रकट किया है उन अशेषपापनाशन श्रीमान् वेदव्यासजीके पुत्र परमहंसचूडामणि भगवान् श्रीशुकदेवको वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय

पुराणोंकी श्लोकसंख्या

सूत उवाच—यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—हे शौनकजी ! ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुद्गण आदिक देवगण, दिव्य वचनोंसे जिसकी स्तुति करते हैं और सामवेदके जाननेवाले अङ्ग-पदक्रम उपनिषद्गणसहित वेदमन्त्रोंसे जिसके गुणोंको गाते हैं तथा योगीजन,

ध्यानावस्थामें तद्गत मनसे जिसको देखते हैं एवं सम्पूर्ण सुरासुरगण जिसके अन्तको नहीं पाते-उस परम इष्टदेवको प्रणाम है ॥ १ ॥ पीठपर वेगपूर्वक घूमरहे मन्दराचलकी नुकीली शिलाओंकी रगड़से खुजली मिटनेके कारण मिलनेवाले सुखसे निद्रितसे हो रहे कच्छपरूप भगवान्‌की वह निःश्वासवायु तुम्हारी रक्षा करे-जिसके संस्कारके लेशमात्र अनुवर्तनद्वारा संचालित सागरके जलकी लहरोंका क्षोभके मिससे निरन्तर गमनागमन अब भी नहीं रुकता ॥ २ ॥ अब मैं सब पुराणोंकी श्लोकसंख्या, इस भागवत पुराणका (मुख्य) विषय और बाँचने, बँचानेका प्रयोजन तथा दानविधि एवं दानका माहात्म्य—आप लोगोंके आगे कहता हूँ, सुनिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुराणमें दस हजार (१००००) पद्मपुराणमें पचपन हजार (५५०००), विष्णुपुराणमें तेईस हजार (२३०००), शिवपुराणमें चौबीस हजार (२४०००), श्रीमद् भागवत पुराणमें अट्ठारह हजार (१८०००), नारदपुराणमें पचीस हजार (२५०००), मार्कण्डेय पुराणमें नव हजार(९०००), अग्निपुराणमें चार सौ ऊपर पन्द्रह हजार(१५४००) भविष्यपुराणमें पाँच सौ ऊपर चौदह हजार (१४५००), ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अट्ठारह हजार (१८०००), लिङ्गपुराणमें ग्यारह हजार (११०००), बाराहपुराणमें चौबीस हजार (२४०००), स्कन्दपुराणमें इक्यासी हजार एक सौ एक(८११०१), वामनपुराणमें दस हजार (१००००), कूर्मपुराणमें सत्रह हजार (१७०००), मत्स्यपुराणमें चौदह हजार (१४०००), गरुड़पुराणमें उन्नीस हजार (१९०००) और ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार श्लोक हैं;[1] इसप्रकार उक्त सम्पूर्ण पुराणोंके श्लोकोंकी संख्या सब मिलाकर चार लाख है-उसमें श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अट्ठारह हजार है ॥४-९॥ सबसे प्रथम भगवान् नारायणने नाभिकमलमें अवस्थित भयभीत ब्रह्माको करुणापूर्वक इस भागवत संहिताका उपदेश किया था ॥ १० ॥ इस पुराणके आदि, मध्य और अन्तमें-सर्वत्र वैराग्यवर्णनपूर्वक हरिलीलाकथामय अमृत बहरहा है, जिसे पीकर सज्जन और देवगण भी तृप्त, सन्तुष्ट आनन्दित और कृतार्थ होते हैं ॥ ११ ॥ सब वेदान्त (वेदोंके सिद्धान्त)का सारांशस्वरूप जो ब्रह्म और आत्माकी ऐक्यभावनारूप अद्वितीय वस्तु है-उसकी प्राप्तिसे मिलनेवाली कैवल्य मुक्ति ही इस पुराणका मुख्य विषय अथवा प्रयोजन है ॥ १२ ॥ भाद्रपदकी पूर्णिमाके दिन सुवर्णके सिंहासनपर धर जो कोई इस भागवत पुराण (की पुस्तक)का दान करता है उसको परमगति प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ हे मुनिवर ! जबतक

---

१ पुराणोंके नाम और श्लोकसंख्याका निरूपण सब पुराणोंमें एकसा नहीं है। शिवपुराणके स्थानपर किसी किसी पुराणमें वायुपुराणका उल्लेख किया गया है किन्तु पुराण दोनों प्रामाणिक हैं। यह सब विरोध, कल्पभेदकृत है; ऐसा माननीय है। अन्यान्य अपरिहार्य विरोधोंके विषयमेंभी ऐसाही समझना चाहिये।

अमृतसागरसम यह भागवत कानोंतक नहीं पहुँचती तभीतक सज्जनसमाजमें अन्यान्य पुराणोंकी चर्चाका आदर होता है ॥ १४ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण–सब वेदान्तोंका सार तत्त्व है। जो व्यक्ति, इसके अमृतरसको पीकर तृप्त होगया है उसकी फिर अन्य किसी विषयमें प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे नदियोंमें गङ्गा, देवतोंमें विष्णु और भगवद्भक्तोंमें महादेवजी श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सम्पूर्ण पुराणोंमें यह भागवत पुराण श्रेष्ठ है। हे द्विजवरो! सब पवित्र क्षेत्रोंमें जैसे श्रीकाशीधाम परम श्रेष्ठ है वैसेही सब पुराणोंमें यह श्रीमद्भागवत पुराण श्रेष्ठ है। यह भागवत पुराण निर्मल है, अतएव भगवद्भक्त वैष्णवोंको परम प्रिय है। इसमें, परमहंसजन जिसको पासकते हैं वह अद्वितीय विशुद्ध परम ज्ञान विशेषरूपसे बताया गया है एवं ज्ञान-वैराग्य-भक्तिसहित सब कर्मोंकी निवृत्तिका आविष्कार किया गया है। जो कोई भक्ति-श्रद्धासहित इसको पढ़ता, सुनता या विचारता है उसको मुक्ति मिलती है–इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १५–१८ ॥ पूर्वसमय जिसने इस ज्ञानप्रदीप(भागवत)को ब्रह्माके निकट और फिर क्रमशः ब्रह्माके रूपसे नारदमुनिके निकट तथा नारदरूपसे निज अंशावतार वेदव्यासके निकट एवं वेदव्यासरूपसे ब्रह्ममय योगीन्द्र श्रीशुकदेवजीके निकट और करुणापूर्वक शुकदेवरूपसे राजापरीक्षित्के निकट प्रकट किया, उस विशुद्ध, निर्मल, शोकरहित, अमृतरूप (मोक्षस्वरूप) परम सत्य परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ जिन्होने मोक्षाभिलाषी ब्रह्माके निकट इस श्रेष्ठ पुराणको व्यक्त किया उन सर्वसाक्षी (अन्तर्यामी) भगवान् वासुदेवको नमस्कार है ॥ २० ॥

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ॥
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥

और जिन्होने सर्प और संसारसर्पद्वारा डँसे गये राजा परीक्षित्को यह दिव्य संहिता सुनाकर आवागमनके भ्रमजालसे मुक्त कर दिया उन ब्रह्ममें तन्मय होरहे जीवन्मुक्त योगिराज श्रीशुकदेवजीको भी प्रणाम है ॥ २१ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

समाप्तोऽयं द्वादशस्कन्धः ।

इति श्रीमद्भागवतं समाप्तम् ॥

॥ ओं तत्सत् ॥